श्री महाभागवत उपपुराण

SHRI MAHABHAGAVAT UPAPURANA

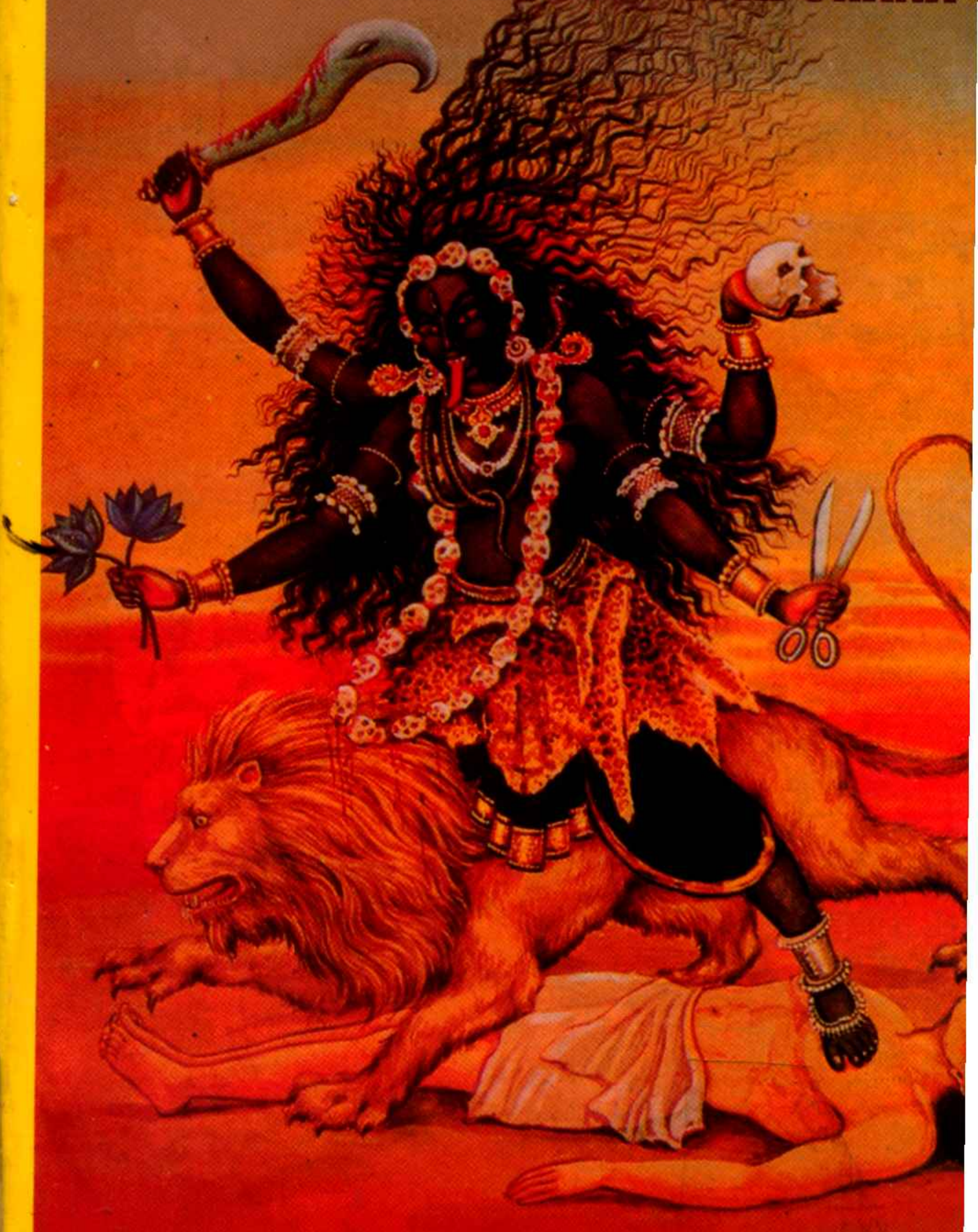

नव शक्ति प्रकाशन, वाराणसी

सम्पादक : आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी

नवशक्ति ग्रन्थमाला–२
Navashakti Series-2

श्रीमहाभागवत

उपपुराण

[हिन्दी अनुवाद सहित]

सम्पादक :

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी

Navashakti Series-2

SHRI MAHĀBHĀGAVATA
UPAPURĀṆA

with
Hindi Translation

Editor
Ācārya Mṛityuñjaya Tripāthī
Varanasi.

Translator
Dr. Premā Khullar
M.A., Ph. D. in Sanskrit
New Delhi.

Navashakti Prakashan
Chowkaghat, Varanasi.

1998

नवशक्ति ग्रन्थमाला–२

शाक्ततन्त्रप्रतिपादक

श्रीमहाभागवत
उपपुराण

Sri Mahabhagavata Upapurana :
Mrityunjaya Tripathi :
DSVV 18262

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी

वाराणसी

अनुवादिका

डॉ० प्रेमा खुल्लर

एम. ए., पी–एच. डी.

नई दिल्ली

नवशक्ति प्रकाशन

चौकाघाट, वाराणसी.

१९९८

प्रकाशक :
© नवशक्ति प्रकाशन
चौकाघाट, वाराणसी–२
दूरभाष : ३४२२३७

Publisher :
© Navashakti Prakashan
Chaukaghat, Varanasi-2
Phone : 342237

Dev Sanskrit Vishwavidyalaya Shantikunj Hardwar
18262
LIBRARY

प्रथम संस्करण : १९९८

First Edition : 1998

मूल्य : २५०/= रु०

Price : Rs. 250/=

491.5925
TRJ-S

मुद्रक :
साधना प्रेस
कॉटनमिल कॉलोनी
वाराणसी–२
दूरभाष : २१००९४

Printer :
SADHANA PRESS
Cotton Mill Colony
Varanasi-2
Phone : 210094

पूज्य गुरु देव

स्व. केदार नाथ तिवारी (सपत्नीक)

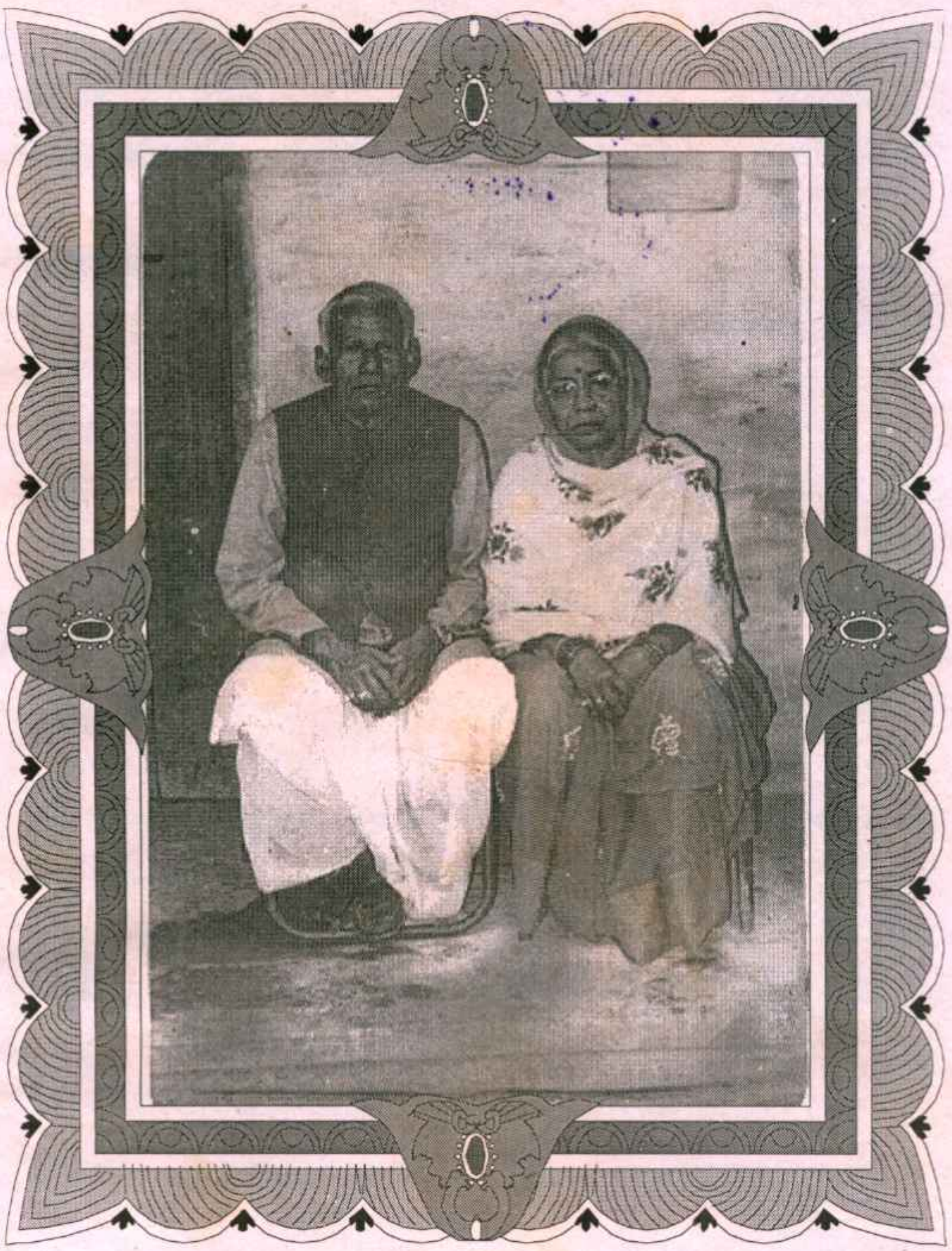

के कर कमलों में

सादर समर्पित यह पुष्पाञ्जली

प्रकाशकीय

शक्ति-साधना विश्व के सभी सम्प्रदायों में किसी न किसी रूप में सदैव विद्यमान रही है। शक्ति-साधना के मुख्य अवयव भारतीय वाङ्मय की ओर वैदिक सूक्तों, पौराणिक कथानकों, स्तोत्रों, काव्यों, लोककथाओं तथा लोकगीतों के माध्यम से सदैव समागमित रहे हैं।

देवपत्नियों के रूप में तथा षष्ठी देवी, मातृका पूजन, गायत्री-साधना, नवदुर्गा-उपासना, महाविद्या-उपासना से लेकर चौरामाता तथा शम्मो माता जैसी लोकदेवियों तक की पूजा भारतवर्ष में शक्ति-साधना की व्यापकता की पुष्टि स्वयमेव कर देती है।

आज दुर्गा सप्तशती, देवी भागवत तथा अनेक तान्त्रिक वाङ्मय शक्ति साधना के साहित्यिक साधन के रूप में प्रतिष्ठित हैं, किन्तु इन साधनों में एक मुख्य नाम उपेक्षित रहा है, वह है— **''महाभागवत उपपुराणम्''**। इस ग्रन्थ के माध्यम से हम शक्ति-साधना के इस अनुपम पुष्प को आप तक पहुँचा रहे हैं, जिसमें बहुत ही सहज ढंग से मुख्यत: भगवती काली के सती, पार्वती, गङ्गारूपों के साथ-साथ कृष्णावतार, राम की शक्ति साधना, महाविद्याओं की उत्पत्ति एवं उपासना, कामाख्या माहात्म्य, काली एवं शिव सहस्रनाम, गङ्गा शतनाम, जैसे स्तोत्रों का वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली तथा सहज ढंग से किया गया है।

शाक्त साधना का यह अपूर्व ग्रन्थ जनसामान्य तक पहुँच सके इस दृष्टि से हिन्दी टीका सहित प्रकाशित कर यह ग्रन्थ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

इसके प्रकाशन में सहयोगी, सम्पादक, अनुवादक, मुद्रक, तथा पाठक प्रकाशक की ओर से साधुवाद के पात्र हैं।

वसन्त पञ्चमी
२०५४ (१९९८)

लोकेश कृष्ण त्रिपाठी

पूर्वपीठिका

पुराण-रचना का उद्देश्य

वास्तव में भारतीय वाङ्मय में वेद और पुराण अन्योन्याश्रितरूपेण एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। पुराण वेदों की सूत्रात्मक ज्ञानराशि का भाष्यात्मक रूप प्रस्तुत करते हैं। इस विषय में प्रमाणस्वरूप यजुर्वेद के "**इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।**" (५/१५) का भाष्य ले सकते हैं। इसमें पुराण के वामनावतार का व्याख्यान किया गया है।

ऋषियों द्वारा पुराण और इतिहास के माध्यम से वेदों का ज्ञान प्राप्त करने का निर्देश दिया गया है। (**इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्**)। जिससे स्वत: सिद्ध है कि पुराणों की रचना का प्रमुख उद्देश्य है वेदतत्त्वों के ज्ञान को जनसाधारण तक पहुँचाना एवं वेदज्ञान का पोषण।

वेदों एवं पुराणों की उत्पत्ति एवं स्वरूप (पूर्वाक्रम) के सम्बन्ध में स्वयं पुराणों में मतभेद हैं।

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभि: कल्पशुद्धिभि:।
पुराणसंहिताश्चक्रे पुराणार्थविशारद:॥

(वि. पु. ३/६/१५)

विष्णु पुराण के उपर्युक्त श्लोक से सिद्ध होता है कि वेदों के ज्ञाता महर्षि वेदव्यास ने वेदों का विभाग करने के बाद प्राचीन कथाओं, आख्यानों, गीतों और जनश्रुतियों को एकत्र कर उनके आधार पर पुराणसंहिता की रचना की; किन्तु ब्रह्माण्डपुराण के अग्रलिखित श्लोक के अनुसार ब्रह्माजी ने सभी शास्त्रों में पहले पुराणों का स्मरण किया, तत्पश्चात् उनके मुख से वेद प्रकट हुए।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता:॥

(ब्रह्माण्ड पु. १/१/१/४०-४१)

महर्षि वात्स्यायन ने तो अपने "**न्यायदर्शन भाष्य**" में वेदों और पुराणों का आविर्भावकाल समान ही निर्धारित किया है।

जिस प्रकार वेद अपौरुषेय हैं, ऋषिगण उनके मन्त्रद्रष्टा हैं, ब्रह्मा प्रकटकर्त्ता हैं तथा महर्षि वेदव्यास विभिन्न संहिताओं के रूप में उनके सम्पादक हैं। उसी प्रकार से पुराणों की मूल सामग्री का कर्त्ता कोई अन्य नहीं, अपितु वेद-प्रतिपादित पुराणों के स्मर्ता ब्रह्मदेव और वक्ता उनके ऋषिगण हैं। वेदों की भाँति पुराणों का प्रादुर्भाव भी ब्रह्माजी द्वारा हुआ है। महर्षि वेदव्यास ने तो उनका सम्पादनमात्र किया है।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
उत्तमं सर्वलोकानां सर्वज्ञानोपपादकम्॥

(पद्मपुराण, सृ. ख. १/४५-४६)

के अनुसार ब्रह्माजी पुराणों को शतकोटि श्लोकात्मक, सभी लोकों में सब प्रकार से ज्ञानप्रतिपादक, धर्म, अर्थ एवं कामरूपी त्रिवर्ग साधक रूप में स्मरण करते हैं। कालान्तर में वे लोगों की ग्रहण-क्षमता का अभाव देखकर व्यास रूप में प्रत्येक द्वापरयुग में चार लाख श्लोकों और भेदों में उन्हीं की भूलोक में रचना करते हैं—

कालेन ग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः।
व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे-युगे॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ।
तदाष्टदशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम॥

(प. पु., सृष्टि ख. १/५१-५२)

पुराण मूलतः ब्रह्माजी की देन (रचना) है, भले ही इसका प्रतिपादन चाहे उनके द्वारा किया गया हो अथवा महर्षि व्यास द्वारा किया गया हो। महर्षि वेदव्यास ने पुराणसंहिता का सम्पादन कर उसे अपने शिष्य लोमहर्षण ऋषि को पढ़ाया, जिन्होंने सर्ग, प्रतिसर्ग मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित में विभक्त कर, लोमहर्षिणी संहिता का सम्पादन कर उसे आत्रेय, भारद्वाज, वशिष्ठ, शांसपायन, कश्यप, सावर्णि गोत्रों से सम्बन्धित क्रमशः सुमति, अग्निवर्चस्, मित्रासु, सुशर्मा, अकृतवर्ण, सोमदत्ति नामक छह शिष्यों को पढ़ाया। इन शिष्यों ने उक्त दोनों संहिताओं के आधार पर अलग-अलग संहिताओं की रचना की। इस प्रकार आठ पुराण संहिताओं की रचना हुई।

वायुपुराण एवं विष्णुपुराण के अनुसार, लोमहर्षिणिका, काश्यपिका, सावर्णिका, शांसपायनिका, ये चार ही संहितायें हैं, जिनमें जिज्ञासा, आख्यान, संवाद एवं प्रवृत्ति के अनुरोध से प्रसंगतः संक्षिप्त और विस्तृत अनेक कथानक जोड़े गये हैं।

इस प्रकार वेद-निहित ज्ञान ही वेदज्ञान है। जो इसे ग्रहण करने में अक्षम जिज्ञासुओं के लिये पुराणों के रूप में प्रकाशित हुआ। कालान्तर में पुराण-संहिताएँ ही पुराणों का आधार बनीं।

पुराण-लक्षण

पुराण नामधारी ग्रन्थों की अधिकता के कारण पुराणों का वर्गीकरण एक समस्या बन गयी। ब्रह्मवैवर्तपुराण में पुराण के कतिपय लक्षण इस प्रकार वर्णित हैं—

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिस्तेषां च पालनम्।
कर्मणा वासना वार्ता मनूनां चाक्रमेण च॥
वर्णनं प्रलयानाञ्च मोक्षस्य च निरूपणम्।
तत्कीर्तनं हरेरेव वेदानां च पृथक् पृथक्॥

(ब्र. वै. पु. ४.३३)

यद्यपि ये लक्षण पुराणों के सम्बन्ध में उनकी पूर्णता के लिए बनाये गये थे, परन्तु वर्तमान में किसी भी पुराण में ये समस्त लक्षण पूर्णतः नहीं मिलते।

कतिपय पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित पुराण के लक्षण बताये गये हैं।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

पुराण-भेद

वर्तमान समय में पुराणों के नाम पर सर्वाधिक ख्याति महापुराणों की ही है। इनके अतिरिक्त उपपुराण, इतिहास, पुराणसंहिता एवं औपपुराण आदि पुराणों के वर्ग भी पौराणिक ग्रन्थों में उल्लिखित किये गये हैं, परन्तु

''अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्''

के अधार पर यह निश्चित है कि पुराणों की सङ्ख्या १८ ही है। देवी भागवत के श्लोक—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं, वचतुष्टयम्।
अनापलिङ्गकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्॥ १/३/२

मद्वयं- १. मत्स्य, २. मार्कण्डेय; **भद्वयं**- १. भविष्य, २. भागवत; **ब्रत्रयं**- १. ब्रह्म, २. ब्रह्मवैवर्त, ३. ब्रह्माण्ड; **वचतुष्टयं**-१. वाराह, २. वामन, ३. वायु, ४. विष्णु, **अ, ना, प, लिं, ग,** क्रम से १-अग्नि, २ नारदीय, ३. पद्म, ४. लिङ्ग, ५. गरुड़; **कू, स्क** कम्रशः १. कूर्म २. स्कन्द पुराण।

इस प्रकार कुल पुराणों की सङ्ख्या एवं नामों का उल्लेख है।

देवता-भेद से— तत्तत् पुराणों के प्रतिपाद्य प्रमुख देवताओं के अनुसार **स्कन्दपुराण** के केदार खण्ड में उल्लिखित श्लोक—

अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः॥

के अनुसार— शिव, भविष्य, लिङ्ग, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वामन, वाराह, अग्नि तथा नारद इन दश पुराणों के प्रतिपाद्य देवता शिव हैं। ब्रह्म, पद्म, ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्त पुराणों के प्रतिपाद्य देव ब्रह्मा जी है। देवी भागवत एवं मार्कण्डेय पुराणों की प्रतिपाद्य देवी हैं तथा विष्णु और गरुड़ पुराणों के प्रतिपाद्य देवता श्रीहरि विष्णु हैं।

शरीरावयवभेद से— इसी प्रकार से शरीरावयव की दृष्टि से पुराणों का वर्गीकरण है, वह इस प्रकार है—

१. हृदय	—	पद्म पुराण
२. शिर	—	ब्रह्म पुराण
३. दक्षिण बाहु	—	विष्णु पुराण
४. वाम बाहु	—	शिव पुराण
५. जङ्घा	—	भागवत पुराण
६. नाभि	—	नारदीय पुराण
७. दक्षिणपाद	—	मार्कण्डेय पुराण
८. वाम पाद	—	अग्नि पुराण
९. दक्षिण सक्थि	—	भविष्य पुराण
१०. वाम सक्थि	—	ब्रह्मवैवर्त पुराण
११. दक्षिण गुल्फ	—	लिङ्ग पुराण
१२. वामगुल्फ	—	वाराह पुराण
१३. रोम	—	स्कन्द पुराण
१४. त्वचा	—	वामन पुराण
१५. पीठ	—	कूर्म पुराण
१६. स्नायु	—	मत्स्य पुराण
१७. मज्जा	—	गरुड़ पुराण
१८. अस्थि	—	ब्रह्माण्ड पुराण

गुणभेद से— सत् रजस् और तमस् इन गुणों के आधार पर भी पुराणों का जो वर्गीकरण उपलब्ध है वह इस प्रकार है—

१. सात्विक—	(१) विष्णु	(२) नारदीय	(३) भागवत
	(४) गरुड़	(५) पद्म	(६) वाराह
२. राजस्—	(७) ब्रह्माण्ड	(८) ब्रह्म वैवर्त	(९) मार्कण्डेय
	(१०) भविष्य	(११) वामन	(१२) ब्रह्म
३. तामस—	(१३) मत्स्य	(१४) कूर्म	(१५) लिंग
	(१६)शिव	(१७) स्कन्द	(१८) अग्नि

वर्ण्य विषय भेद से— वर्ण्य विषय के अनुसार पुराणों के ४ वर्ग किये गये हैं—

१. साहित्य का विश्व कोष— (१) गरुड़, (२) नारदीय (३) अग्नि
२. तीर्थव्रतादि वर्णन— (४) पद्म (५) स्कन्द (६) भविष्य
३. साम्प्रदायिक वर्णन— (७) लिङ्ग) (८) वामन (९) मार्कण्डेय
४. ऐतिहासिक वर्णन— (१०) ब्रह्माण्ड (११) वायु (१२) विष्णु
(१३) ब्रह्म वैवर्त (१४) भागवत
(१५) गरुड़ (१६) वाराह (१७) मत्स्य
(१८) कूर्म पुराण

(विभिन्न पुराणों का क्रम कृपया पूर्वपीठिका के अन्त में देखें)

इनके अतिरिक्त तमिल-ग्रन्थों में पुराणों के निम्न लिखित पाँच वर्गीकरण किये गये हैं।

१. ब्रह्मा सम्बन्धी— (१) ब्रह्म पुराण और (२) पद्म पुराण
२. सूर्य सम्बन्धी— (३) ब्रह्मवैवर्त पुराण
३. अग्नि सम्बन्धी— (४) अग्नि पुराण
४. शिव सम्बन्धी— (५) शिव पुराण (६) स्कन्द पुराण
(७) लिङ्ग पुराण (८) कूर्म पुराण
(९) वामन पुराण (१०) वाराह पुराण
(११) भविष्य पुराण (१२) मत्स्य पुराण
(१३) मार्कण्डेय पुराण (१४) ब्रह्माण्ड पुराण
५. विष्णु सम्बन्धी— (१५) नारद पुराण (१६) भागवत पुराण
(१७) गरुड़ पुराण (१८) विष्णु पुराण

उपर्युक्त प्रकार के प्राप्त पुराणों के वर्गीकरणों के आधार पर यह स्पष्ट है कि यद्यपि १८ पुराणों में से लगभग १० पुराणों में शिव की प्रधानता है, परन्तु शिवपुराण को १८ पुराणों की सूची में सम्मिलित नहीं किया गया है। स्कन्द पुराण (प्रभास खण्ड २/५-७) द्वारा १८ पुराणों में एक शिव पुराण को माना है परन्तु मत्स्य पुराण (५१/१८-१९), अग्निपुराण (२७२/४-५), नारदीय पुराण (१/९२/२६-२८), सौर पुराण (९/५-१२) द्वारा वायु पुराण को १८ पुराणों में माना है। देवी भागवत में भी वायु पुराण को १८ पुराणों में माना गया है। वायु पुराण की ऐतिहासिक पुराणों में मान्यता है। कूर्मपुराण में भागवत पुराण का तात्पर्य श्रीमद्भागवत पुराण से है। १८वीं शती के उत्तरार्द्ध में याज्ञवल्क्य स्मृति पर श्री वालम्भट्ट की टीका में वायवीय पुराण को शैव पुराण भी माना गया है।

इनके अतिरिक्त भी पुराणों के सम्बन्ध में बहुत ऐसे लेख एवं प्रकरण हैं, जिनमें सूचीबद्ध किये गये पुराणों में काफी मतभेद पाया जाता है। उन प्रकरणों का उल्लेख करने से पाठक उलझन में पड़ सकते हैं। यद्यपि ये ग्रन्थ भी उद्धरण-ग्रन्थ एवं प्रामाणिक ग्रन्थ माने गये हैं।

विभिन्न पुराणों में कतिपय पुराणों की श्लोक सङ्ख्या का उल्लेख है जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है—

(कृपया तालिका पूर्वपीठिका के अन्त में देखें)

श्लोक सङ्ख्या— विभिन्न पुराणों में जो श्लोकों की सङ्ख्या बतायी गयी है, उसमें भिन्नता है; क्योंकि सभी पुराण एक साथ लिखे नहीं गये; जिससे उनकी एक निश्चित सङ्ख्या ही उपलब्ध हो पाती।

विभिन्न पुराणों में श्लोकों की सङ्ख्या की विभिन्नता के कारण भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जब भी जिस पुराण की श्लोकसङ्ख्या का उल्लेख हुआ उस समय वही श्लोकसङ्ख्या उपलब्ध थी। वर्तमान में तो वह सङ्ख्या सर्वथा भिन्न है।

अत: अठारह पुराणों में हम वे ही पुराण मानते हैं, जिनकी श्लोकसङ्ख्या कतिपय पुराणों द्वारा बतायी गयी है।

उपपुराण

कतिपय पुराणों तथा याज्ञवल्क्यस्मृति में उपपुराणों की चर्चा है कि अठारह पुराणों की रचना के बाद महर्षियों ने पुराणों पर आधारित संक्षिप्त संस्करण के रूप में उपपुराणों की रचना की। कूर्म पुराण में भी इनकी सङ्ख्या १८ बतायी गयी है जिनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) आदि पुराण (२) नरसिंह पुराण (३) स्कन्द पुराण
(४) शिवधर्म पुराण (५) दुर्वासस् पुराण (६) नारदीय पुराण
(७) कपिल पुराण (८) वामन पुराण (९) औशनस पुराण
(१०) ब्रह्माण्ड पुराण (११) वरुण पुराण। (१२) कालिका पुराण
(१३) माहेश्वर पुराण (१४) साम्ब पुराण (१५) सौर पुराण
(१६) पाराशर पुराण (१७) मारीच पुराण (१८) भार्गव पुराण।

"अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु।
अष्टादश पुराणानि श्रुत्वा संक्षेपतो द्विजाः ॥"

(कूर्म० १/१/१६)

के अनुसार १८ पुराणों का अध्ययन करने के बाद उनके संक्षिप्त संस्करणरूप में उपपुराण बनाए।

मत्स्य पुराण ने केवल चार पुराणों को उपपुराण बताया है। ऐसा इसलिये सम्भव हो सकता है कि मत्स्य पुराण के समय मात्र चार ही उपपुराण रहे हों। अन्य उपपुराणों की रचना बाद में हुई हो।

प्रो. हज्रा ने अपनी पुस्तक **ए. बी. ओ.** (जिल्द २१, पृष्ठ ५१) एवं **स्टडीज इन उपपुराणाज** (जिल्द १) में यह कहा है कि उपपुराणों की रचना ६५० से ८०० ई. के बीच हुई। बहुत से उपपुराण इसके बाद में भी लिखे गये। परन्तु यह भी माना है कि उपपुराणों का उद्भव 'गुप्तकाल' के समय हो चुका था।

देवीभागवत, वृहद्धर्म पुराण, एकामरा पुराण जैसे अन्य पौराणिक ग्रन्थों में उपपुराणों के नाम बताये गये हैं। कूर्म पुराण की उपपुराणों की सूची में स्कन्द, वामन, ब्रह्माण्ड जैसे महापुराणों के नाम हैं जो १८ पुराणों की सूची में भी आते हैं। देवी भागवत में शिवपुराण, मानवपुराण, भागवत पुराण (श्रीमद्भागवत वैष्णव) का तथा मारीच पुराण एवं भार्गव पुराण के स्थान पर आदित्य पुराण का समावेश है।

कल्पतरु (लक्ष्मीधरकृत, जो १११०-११३० ई. के बीच प्रणीत है) में आदि, आदित्य, कालिका, देवी, नन्दी, नृसिंह, विष्णुधर्मोत्तर, विष्णुरहस्य, शिवधर्मोत्तर पुराणों की चर्चा है।

बृहद्धर्म पुराण ने, जो स्वयं को एक उपपुराण सिद्ध करता है, अपने पुराणों की सूची में शिवधर्म के साथ-साथ नन्दीश्वर, बृहद्नन्दीश्वर, धर्म, विष्णुधर्म, विष्णुधर्मोत्तर, क्रियायोगसार तथा बृहन्नारदीय जैसे नामों का उल्लेख किया है।

एकामरा पुराण ने नारदीय और काली उपपुराणों को छोड़कर सभी नये नाम गिनाये हैं। कुछ पुराणों के परिशिष्ट भाग को ही स्वतन्त्र उपपुराणों का नाम दे दिया गया है।

इनके अतिरिक्त भी मुद्गल, कल्कि, देवीपुराण, परानन्द पुराण, पशुपति पुराण, पुरुषोत्तम पुराण, अङ्गिरस पुराण, गणेश पुराण, पशुपति पुराण, आखेटक पुराण, भविष्योत्तर पुराण, मृत्युञ्जय पुराण, सूर्यपुराण, प्रभासक पुराण, हरिवंश पुराण, वासुकि पुराण, प्रज्ञा पुराण, वर्तमान समय में उपलब्ध हैं।

कुछ उपपुराणों के नाम प्रमुख पुराणों के समान ही हैं। प्रो. हज्रा ने तो उपपुराणों की सङ्ख्या १०० तक बतायी है, परन्तु सभी उपपुराण उपलब्ध नहीं हैं। जिन पुराणों को उपपुराण के रूप में बताया है उनके वर्ण्य विषय पुराणों के विषयों से बहुत सीमा तक मेल तो रखते हैं परन्तु सभी "**पुराणं पञ्चलक्षणम्**" के अनुरूप नहीं है। पुराणों में यह कहीं भी नहीं आया है कि पुराणों की जो श्लोकसङ्ख्या बतायी गयी है, उनमें उपपुराणों की श्लोकसङ्ख्या सम्मिलित है। इसलिये यह मानना अनुचित नहीं होगा कि पुराणों के संक्षिप्त रूप में उसी नाम से उपपुराणों की भी रचना की गयी है। उपपुराण या पुराण के नाम से जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमें से बहुत से ग्रन्थ अर्वाचीन हैं जिनमें पुराणों की शैली का अनुकरण है।

पुराणों का वर्ण्य विषय

पुराणों में इष्टदेव की प्रधानता देते हुए सर्ग, प्रतिसर्ग, देवता और ऋषियों के वंशवृत्त, मन्वन्तर और राजवंश-वृत्त वर्णित हैं। इनमें से पूर्वोक्त तीन विषयों में प्राचीन धर्म, आख्यान, तत्वज्ञान और सृष्टिवर्णन तथा दो विषयों में राजाओं के वंशवृत्त और इतिहास की सामग्री मिलती है।

इसके अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा, कर्मकाण्ड, दान, व्रत, भक्तियोग, विष्णु और विष्णु के अवतार, श्राद्ध, आयुर्वेद, संगीत, व्याकरण, ज्यौतिष, साहित्य, छन्दशास्त्र, नाट्यशास्त्र, शिल्प-शास्त्र, अर्थशास्त्र, राजधर्म इत्यादि चतुर्वर्ग साधक विषयों का समावेश हुआ है।

पुराणों का काल

यद्यपि प्राचीन चरित्र कोष (म. म. विद्यानिधि सिद्धेश्वरशास्त्रो) (प्रकाशन ई. १९६४) में उल्लिखित विवरण के अनुसार वर्तमान पुराणों का कालक्रम यह है—

		प्रो. हज्रा के अनुसार	पुराण निरीक्षण (त्र्यं. गु. काले)	हरिप्रसाद शास्त्री की प्रस्तावना
१.	ब्रह्मपुराण	१३वीं शताब्दी के पूर्व		ई.स. ३ शताब्दी
२.	पद्मपुराण	ई.स. ९००-१५००	ई.स. १४वीं शताब्दी	
३.	विष्णु पुराण	ई. स. ३००-५००		
४.	वायु पुराण	ई. स. ३५०-५५०		ई. स. ४००
५.	भागवत पुराण	ई. स. ५-१०वीं शताब्दी		ई. स. ८०० के पूर्व
६.	नारदीय पुराण	ई. स. ७००-१०००	ई. स. ५० के पूर्व	
७.	मार्कण्डेय पुराण	ई. स. ३००-६००		
८.	अग्निपुराण	ई. स. ६००-९००	ई.स. ५००-५५०	ई.स. ८००-९००
९.	भविष्य पुराण	ई. स. ६-७वीं शताब्दी		
१०.	ब्रह्मवैवर्त पुराण		ई.स. ८००-९००	ई.स. ८००-९००
११.	लिङ्ग पुराण			
१२.	वाराह पुराण	ई. स. १०वीं शताब्दी पूर्व		
१३.	स्कन्द पुराण			
१४.	वामन पुराण	ई. स. ६००-९००		ई.स. २ शताब्दी
१५.	कूर्म पुराण		ई स. ५०० के पूर्व	
१६.	मत्स्य पुराण	ई. २००-४००		ई. स. २ शताब्दी पूर्व
१७.	गरुड़ पुराण	ई. स. ९५०	ई. स. ३ शताब्दी	
१८.	ब्रह्माण्ड पुराण	ई. ३००-६००	ई.स. ४-५वीं शताब्दी	ई.स. ४-५ वी शताब्दी

तथापि वेदों की भाँति पुराण भी अनादि हैं। इनके रचयिता अन्य कोई नहीं, अपितु सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी भी पुराणों का स्मरण ही करते हैं—

"पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।"

(पद्मपुराण सृष्टि १/४५)

पुराणों का विस्तार एक अरब श्लोकों का माना गया है। प्रत्येक द्वापर में भगवान् स्वयं व्यासरूप में प्रकट होते हैं और पुराणों की रचना करते हैं। यह प्रकरण पद्मपुराण में आया है।

कालेन ग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः।
व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थे युगे युगे॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ।

तदष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्॥
अद्यापि देवलोकेषु शतकोटि प्रविस्तरम्।

(पद्म पुराण, सृष्टि १/५१-५३)

छान्दोग्योपनिषद् में पुराण को पाँचवां वेद माना गया है। ''इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्। '' (७/१/२)

इसलिए पुराणों का उद्भव वैदिककाल से मानना अनुपयुक्त न होगा।

द्वापर के महाभारतकाल के पौराणिक ग्रन्थ महाभारत में महर्षि वेदव्यास ने पुराणों की चर्चा की है। वाल्मीकि रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने भी पुराणों की चर्चा की है। तुलसीकृत रामायण में कहा गया है—

जेहि विधि सुखी होंहि पुरलोगा।
करहिं कृपा निधि सोई संयोगा॥
वेद पुरान सुनहिं मन लाई।
आपु कहहिं अनुजहिं समुझाई॥

इसका तात्पर्य यह है कि त्रेतायुग में वेद एवं पुराण थे।

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणयजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे देवाः दिविश्रिताः॥

(अथर्व. ११/७/२४)

स बृहतीं दिशमनुव्यचलत्।
तमितिहासश्च पुराणञ्च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्॥ ११॥
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च
नाराशंसीनाञ्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ १२॥

(अथर्व. १५ अनु. १ प्र. ६ मं.-११-१२)

अर्थात् यज्ञ के उच्छिष्ट द्वारा ईश्वर से यजुर्वेद सहित ऋग्वेद, सामवेद, छन्द और पुराण प्रकट हुए।

वेदों में सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया। पुराणों में ऐतिहासिक तत्कालीन गाथाओं का वर्णन किया गया है।

जिस प्रकार से वेद अनादि माने गये हैं उसी प्रकार पुराण भी अनादि हैं। वृहदारण्योपनिषद् एवं शतपथ ब्राह्मण जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों में यह आया है—

एवं वां अरेऽस्य महतो भूतस्य विश्वसिमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः ॥

(शत. १४/६/१००; वृहदा. २/४/११)

ब्रह्मसूत्र के मीमांसाभाष्य में शङ्कराचार्य ने इतिहास, पुराण को पौरुषेय मानकर प्रमाणान्तरमूलता अर्थात् वेद के पीछे गौण प्रमाण कहकर स्वीकारा है—

"इतिहासपुराणमपि पौरुषेयत्वात् प्रमाणान्तरमूलतामाकांक्षते।"

सायणाचार्य ने **"एतरेय ब्राह्मण"** ब्राह्मण के उपक्रम में लिखा है कि वेद के अन्तर्गत देवासुर-संग्राम के वर्णन का नाम इतिहास है और पहले यह असत् था और कुछ नहीं था, इत्यादि जगत् की प्रथम अवस्था प्रारम्भ करके सृष्टिप्रक्रिया विवरण का नाम पुराण है—

"देवासुर संयत्ता आसन्नित्यादय इतिहासाः इदं वा अग्रे नैव किञ्चिदासीदित्यादिकं जगतः प्रागवस्थामुपक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्।"

महाभारत के आदिपर्व के पौलोमपर्व के पुलोमाग्नि संवाद नामक पाँचवें अध्याय में शौनक जी कहते हैं—

पुराणमखिलं तात पिता तेऽधीतवान् पुरा।
कच्चित्त्वमपि तत्सर्वमधीषे लौमहर्षणे॥ १॥
पुराणे हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्।
कथ्यन्ते ये पुराऽस्माभिः श्रुतपूर्वाः पितुस्तव॥ २॥
तत्र वंशमहं पूर्वं श्रोतुमिच्छामि भार्गवम्।
कथयस्व कथामेतां कल्याः स्म श्रवणे तव॥ ३॥

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि महाभारत में जो पुराणों की चर्चा की गयी है उससे स्पष्ट है कि पुराणों में जो प्रसंग आये हैं उनका द्रष्टा तो कोई न कोई अवश्य है; क्योंकि वेदों और पुराणों में जो गाथाएँ एवं प्रकरण उल्लिखित किये गये हैं वे सर्वथा सत्य हैं। इन पर यत्किञ्चित् भी सन्देह नहीं किया जा सकता।

"अष्टादश पुराणानां वक्ता सत्यवतीसुतः।"

अठारहों पुराणों के वक्ता सत्यवतीपुत्र महर्षि व्यासजी हैं। उनसे मुनियों ने सुना और प्रत्येक कल्प में उन-उन देवता ऋषि मुनियों ने भिन्न भिन्न कल्पों में पुराण संहिता का निर्माण किया। भिन्न भिन्न कल्पों के धर्म तथा कथानक होने से पुराणों की कथाएँ एक दूसरे से मेल नहीं खातीं।

जहाँ पुराणों के नामक्रम एवं सङ्ख्या में अन्तर जान पड़ता है तो वह पुराण दूसरे कल्प का जानना चाहिये।

कलियुग के प्रारम्भ में शुकदेव ने परीक्षित को **श्रीमद्भागवत** का श्रवण कराया था। कलियुग के आज लगभग ५०९८ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। महाभारत में पुराणों की जो चर्चा आयी है उससे स्पष्ट है कि द्वापर में पुराण थे। द्वापर त्रेता युग की अवधि ८,६४,००० वर्ष थी। इससे भी पूर्व त्रेता युग के अन्त में भगवान् राम का अवतार हुआ था उन्हें वेद और पुराणों की शिक्षा महर्षियों द्वारा दी गयी थी।

इन तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए यही कहा जा सकता है कि पुराण रचना काल को किसी सीमा में नहीं बांधा जा सकता। पुराण और वेद अनादि हैं।

महाभागवत का पुराणत्व विवेचन

अष्टादश पुराणों में ''भागवत'' पुराण पञ्चम है। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि देवी भागवत, श्रीमद्भागवत, महाभागवत और लघु भागवत जैसे कई पौराणिक ग्रन्थ लिखे गये। इनमें अठारह पुराणों में देवी-भागवत पञ्चम है या श्रीमद्भागवत। इस पर अनिश्चितता है। दोनों पुराणों की श्लोक सङ्ख्या लगभग १८००० ही है। स्कन्द पुराण में देवी सम्बन्धी दो महापुराणों की चर्चा है। अतः अष्टादश पुराणों में देवी सम्बन्धी महापुराण 'देवी भागवत' ही भागवत नाम से प्रतिपादित प्रतीत होता है। देवीभागवत में 'गायत्री' और 'राधा' की विशेषता का वर्णन करते हुए भगवती परा प्रकृति का विशद चरित्र वर्णित है। ''महाभागवत पुराण के पुराणत्व विवेचन में बृहद्ध में पुराण ने इसे महापुराण की संज्ञा दी है। महाभागवत की एक प्राचीन प्रति की पुष्पिका में भी इसे महापुराण कहा गया है, किन्तु देवी भागवत ने स्वयं को महापुराण की सूची में रखा है।'' फिर भी अनेक पुराणों के अनुसार पुराणों के नाम एवं सङ्ख्या के आधार पर अष्टादश पुराणों की जो सूचियाँ प्राप्त है, उसमें न तो **देवी भागवत** है और न ही **महाभागवत**।

श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्ध अध्याय ४ में महर्षि व्यासजी नारदजी से श्रीमद्भागवत की रचना के पूर्व ही अपना खेद व्यक्त करते हुए कहते हैं कि वेद, वेदाङ्ग, महाभारत, अष्टादश पुराणों की रचना के बाद भी वे मनस्तोष का अनुभव नहीं करते। तब मनस्तोष प्राप्ति हेतु नारद की प्रेरणा से श्रीकृष्ण-भक्ति प्रतिपादक श्रीमद्भागवत पुराण की रचना करते हैं। इससे स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत अष्टादश, पुराणों, महाभारत आदि ऐतिहासिक एवं पौराणिक ग्रन्थों से परवर्ती पौराणिक ग्रन्थ है।

इसी पूर्व प्रकार से महाभागवत की रचना करने के सम्बन्ध में महर्षि सूत जी ने बताया है कि—

महर्षिर्भगवान् व्यासः सर्ववेदविदांवरः।
अशेषं धर्मशास्त्राणां वक्ता ज्ञानी महामतिः॥
कृत्वा त्वष्टादशैतानि पुराणानि महामुनिः।
न तृप्तिमभिलेभे स कथञ्चिदपि धर्मवित्॥
महापुराणं परमं यत्परं नास्ति भूतले।
भगवत्याः परं तत्त्वं माहात्म्यं यत्र विस्तृतम्॥

(महाभागवत उपपुराण, अ. १, श्लोक १४-१६)

इससे स्पष्ट है कि इस महाभागवत की रचना भी महर्षि व्यास द्वारा की गयी है, परन्तु अष्टादश पुराणों की रचना के बाद। इससे यह भी स्पष्ट है कि अष्टादश पुराणों में जो नाम भागवत महापुराण, श्रीमद्भागवत महापुराण या श्रीमद्भागवत पुराण के नाम से उल्लिखित किये गये हैं देवी भागवत महापुराण के ही है।

क्योंकि जो देवी आद्या प्रकृति, पराविद्या, ब्रह्मविद्या स्वर्ग एवं मोक्षदात्री हैं, उसके गुणों, एवं उसके प्रति नवधाभक्ति का वर्णन जिस देवीभागवत में किया गया है उस पुराण को महापुराण के नाम से जानना चाहिये। जिसमें पुराणोक्त सभी तत्व सन्निहित हैं तथा उसी देवी से सम्बद्ध इस भागवत को **भागवत महापुराण** समझना चाहिये।

यद्यपि महाभागवत उपपुराण किसी पुराण में वर्णित उपपुराणों की सूची में उल्लिखित नहीं है तथापि "दी कल्चरल हेरिटेज ऑफ इण्डिया" (भाग-२) तथा "मूल संस्कृत महाभागवत पुराण" एवं "कल्याण" वर्ष २४ अङ्क-१ (हिन्दू संस्कृति अङ्क) के "हिन्दू संस्कृति एवं पुराण" नामक लेख में इसे २७ उपपुराणों में से एक माना गया है। "ब्रह्म पुराण" की हिन्दी टीका की भूमिका में पं. तरणीश झा ने इस महाभागवत उपपुराण को एक "औपपुराण" मानकर १८ औपपुराणों की सूची दी है परन्तु किसी भी पुराण या उपपुराण में औपपुराण होने की चर्चा नहीं की गयी है। अतः इसे उपपुराण ही मानना संगत है।

रचनाकाल

महाभागवत अनेक स्थानों पर श्रीमद्भागवत से प्रभावित हुआ दृष्टिगोचर होता है। श्रीमद्भागवत की प्रतिस्पर्धा में इसका नाम महाभागवत रखा जाना श्रेष्ठता प्रतिपादित करने का प्रयास है। श्रीमद्भागवत के प्रेरक महर्षि नारद हैं तो महाभागवत

की प्रेरक स्वयं भगवती हैं, जो ब्रह्मलोक में वेदों के बीच जाने का निर्देश महर्षि व्यास को देती हैं।

तेनैव विधिना तुष्टा सर्वाणी भक्तवत्सला।
अदृष्टरूपा चाकाशे स्थित्वैवं वाक्यमब्रवीत्॥
यत्रासन् श्रुतयः सर्वा ब्रह्मलोके महामुने!
गच्छ तत्र परं तत्त्वं मम वेत्स्यसि निष्कलम्॥

(महाभाग १/२०-२१)

श्रीमद्भागवत के प्रतिपाद्य परब्रह्मस्वरूप कृष्ण महाभागवत के अनुसार काली के ही अंशावतार हैं।

विधिना प्रार्थिता देवी वसुदेवसुतः स्वयम्।
निजांशेनाभवत्कृष्णो देवानां कार्यसिद्धये॥

(महाभागवत ५०/१)

भागवत में रामायण एवं महाभारत की चर्चा भी की गयी है। महाभागवत में भी रामायण के प्रतिपाद्य राम एवं महाभारत के नायक पाण्डवों को भगवती का उपासक बताया गया है। रामायण के रावण को महाशक्ति का साधक बताया गया है।

रामस्तु प्राञ्जलिर्भूत्वा चोत्तराभिमुखस्ततः।
तुष्टाव जयलाभाय संग्रामे जयदायिनी॥

(महाभागवत ४३/९४)

तथा प्रार्थयतां तेषां पाण्डवानां महात्मनाम्।
प्रत्यक्षं सा भगवती समभ्येत्येदमब्रवीत्॥

(महाभागवत ५६/५)

देवीं त्रैलोक्यजननीं सम्प्रार्थ्य दशकन्धरः।
तस्या प्रसादात् त्रैलोक्यविजयी समभूत्पुरा॥

(महाभागवत ३६/६)

इस प्रकार महाभागवत श्रीमद्भागवत से परवर्ती ही सिद्ध होता है।

महर्षि व्यास के द्वारा महाभागवत के पूर्व भी देवीभागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण, कूर्म पुराण, मार्कण्डेय पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण , वाराह पुराण, नारदीय पुराणों में स्थान स्थान पर भगवती का चरित्र वर्णन एवं स्तवन करने के बाद भी महर्षि व्यास के विक्षोभ ''भगवत्या परं तत्त्वं माहात्म्यं यत्र विस्तृतम्'' के उल्लेख का कोई औचित्य नहीं प्रतीत होता।

ब्रह्मवैवर्त पुराण का प्रकृति खण्ड, सम्पूर्ण देवी भागवत, मार्कण्डेय पुराण की दुर्गा-सप्तशती तो आज भी शाक्त साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। महाभारत में पाण्डवों की शक्तिसाधना, हरिवंश पुराण की अम्बास्तुति, श्रीमद्भागवत में गोपिकाओं की कात्यायनी पूजा एवं रुक्मिणी की अम्बिका पूजा में शक्ति साधना के ही तत्त्व निहित हैं।

वेद की पराप्रकृति, उमा, हैमवती, मारकण्डेय पुराण की महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, ब्रह्मवैवर्त पुराण की पञ्चप्रकृति-दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, राधा, देवी भागवत का नवशक्त्यात्मक तथा विविध रूपों में वर्णित देवीतत्त्व, नारदीय पुराण में महाविद्याओं की महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती की यक्षिणियों के रूप में प्रस्तुति, ब्रह्माण्डपुराण के ललितोपाख्यान की ललिताम्बा के रूप में दश महा विद्याओं का भुवनेश्वरी रूप वर्णित है। यह अवश्य है कि उपर्युक्त पुराणों का प्रतिपाद्य भगवती न होकर अन्य देव हैं, परन्तु महाभागवत की प्रतिपाद्य काली ही पराप्रकृति हैं, जो दुर्गा नाम से ख्यात हैं, वही सती, पार्वती, गङ्गा आदि रूपों में लोकरक्षा करती हैं। अतः निस्सन्देह महाभागवत उक्त ग्रन्थों से परावर्ती होते हुए भी भगवती के अद्वितीय तत्व-रूप का प्रतिष्ठापक एक महान् ग्रन्थ है।

तान्त्रिक वाङ्मय की शाक्त साधना में नवदुर्गा की अपेक्षा दस महाविद्याओं की साधना का विशेष महत्त्व है। महाभागवत के सती-चरित्र-पसङ्ग में महाविद्याओं की उत्पत्ति और उपासना का वर्णन पराप्रकृति के अपर रूप में मिलता है। यहीं आगम-निगम की एकता का प्रतिपादन किया गया है।

महाभागवत में सूत-शौनक, जैमिनि-व्यास, आदि संवाद-पद्धतियों के साथ-साथ महादेव-नारद सम्वाद प्रमुख है। तान्त्रिक-वाङ्मय के मुख्यवक्ता महादेव या भैरव को महाभागवत पुराण का मुख्यवक्ता होना यह सिद्ध करता है कि इसकी रचना शक्ति-उपासनाकाल के स्वर्णिमकाल में हुई है।

इसमें गीता के विराटरूप दर्शन की शैली पर भगवती के चण्डरूप का दर्शन कराया गया है—

''एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्॥''

(श्रीमद्भगवद्गीता ११/९

''एवं समादाय वपुर्भयानकम्
जाज्वल्यमानं निजतेजसा सती।

कृत्वाट्टहासं सहसा महास्वनं,
सोत्तिष्ठमाना विरराज तत्पुरः ॥''

(महाभागवत ८/५३)

इस चण्डरूप दर्शन की परिणति भी विश्वरूपदर्शन की तरह होती है। अन्तर इतना ही है कि जहाँ अर्जुन विस्मयाविष्ट हैं वहाँ शिव भयभीत हैं—

जैसे गीता में—

''ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत॥''

(गीता ११/१४)

और महाभागवत में—

''इति तस्याः वचः श्रुत्वा भीतभीत इवास्थितः।
प्रोवाच वचनं शम्भुः कालीं भीमलोचनाम्॥

(महाभागवत ८/८८)

'द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इण्डिया' (भाग-२, पृष्ठ २८१) के अनुसार महाभागवत १०वीं या ११वीं ईस्वी की रचना है।

यद्यपि इसका काल विस्तार महाभारतादि से पूर्व तक पहुँचा है, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह गुप्तकाल से ईसा की ११वीं शती तक अपने वर्तमान रूप को प्राप्त कर चुका था।

महाभागवत का वर्ण्य विषय

इस विशाल पुराणग्रन्थ को यदि हम सात भागों में विभक्त कर पढ़ें तो यह अधिक सुविधाजनक होगा। इसके प्रथम भाग में सती अवतार, द्वितीय भाग में पार्वती अवतार, तृतीय भाग में गङ्गावतरण, चतुर्थ भाग में रामावतार, पञ्चम भाग में कृष्णावतार, षष्ठ भाग में इन्द्रकथा के माध्यम से ब्रह्महत्यादि महापातकों के नाश का उपाय, तथा सप्तम भाग में शिवपूजा का माहात्म्य विशदतया वर्णित है।

महाभागवत का प्रारम्भ गणेश, नर-नारायण एवं देवी की स्तुति के अनन्तर सूत-शौनक सम्वाद से होता है। शौनकादि ऋषियों के पूछने पर महर्षि सूत जी उन्हें बताते हैं कि इस भागवत को सर्वप्रथम भगवान् शङ्कर ने महर्षि नारद को, कालान्तर में व्यास ने जैमिनि ऋषि को सुनाया था, उसे सुनाते हुए सूतजी भागवत का महत्त्व बताते हैं—

तद्वक्तुं न महेशोऽपि शक्तो वर्षशतैरपि।
किमहं कथयिष्यामि सङ्ख्याविरहितं यतः॥ (म. भा. १/८)

शौनकादि ऋषियों के इस महाभागवत का क्रमिक-प्रकाश पूछने पर सूत जी ने आगे बताया कि अठारह पुराणों की रचना के बाद भी महर्षि व्यास को मनस्तोष नहीं हुआ; क्योंकि भगवती के परमतत्त्व की महिमा पर पूर्णत: कोई पुराण नहीं था और उनका मन उद्विग्न हो गया। महर्षि व्यास द्वारा कठोर तपश्चर्या से प्रसन्न देवी उन्हें वेदों के अध्ययन और गुणगान से प्रत्यक्ष दर्शन और उनकी मनो:कामनापूर्ण करने का रहस्य बताती हैं। महर्षि नारद ने ब्रह्मलोक में जाकर वेदों को प्रणाम कर उनसे अविनाशी ब्रह्मपद के विषय में जिज्ञासा की। वेदों द्वारा भगवती के गुणों के वर्णन और श्रुतियों द्वारा भगवती की स्तुति से प्रसन्न हो, देवी ने ज्योतिर्मय स्वरूप प्रकट किया—

दिव्यालङ्कारभूषाढ्यां दिव्यगन्धानुलेपनाम्।
सिंहपृष्ठे समारूढां कदाचिच्छववाहनाम्॥ (१/१४)

देवी के उस स्वरूप में कभी हजारों भुजाएँ, कभी श्यामवर्ण, कभी दो भुजाओं वाली, कभी चार भुजाओं वाली, कभी दश भुजाओं वाली, कभी अठारह भुजाओं वाली, कभी सौ भुजाओं वाली तथा कभी अनगिनत भुजाओं वाली, कभी 'विष्णुरूपा' कभी 'कृष्णरूपा' कभी 'ब्रह्मरूपा' कभी 'शिवरूपा' दिखायी देती थीं। पुन: उस देवी ने महर्षि व्यास के मनस्तोष हेतु अपने चरणकमल में अङ्कित कमल-पुष्प दिखाया। जिसमें महर्षि ने अद्भुत अक्षरयुक्त "महाभागवत पुराण" का अवलोकन किया। अपने आश्रम में आकर महर्षि व्यास ने स्नेहपूर्वक उसका प्रवचन किया था और मैंने (सूतजी ने) भी स्नेहपूर्वक सुना था।

इस पुराण में आगे महर्षि जैमिनि की जिज्ञासा के उत्तर में महर्षि व्यास ने देवीमाहात्म्य का विस्तार से वर्णन करते हुए यों कहा—

माहात्म्यमतुलं तस्या: क: शक्त: कथितं मुने!
शिवोऽपि पञ्चभिवक्त्रैर्यद्वक्तुं न शशाक ह॥
शम्भुर्वाराणसीक्षेत्रे मुमुक्षूणां नृणां स्वयम्।
तस्या एव महामन्त्रं यमस्मै गुरुणेरितम्॥

(महाभागवत २/१५-१६)

महर्षि व्यास ने आगे शिव-नारद सम्वाद में बताया कि नारद द्वारा शिवजी की प्रशंसा करते हुए यह पूछने पर कि—

"एवंविधानां भवतां तदुपास्यं हि दैवतम्।
तदवश्यं मया ज्ञेयं ब्रूहि मे तत्कृपामय॥"

भगवान् शङ्कर ने कहा—

यत्त्वया प्रस्तुतं तात तत्तु गुह्यतमं परम्।
न प्रकाश्यं कथं वत्स वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव॥

तब नारद जी ने हरिहर की स्तुति की। भगवान् विष्णु नारद को उक्त प्रसङ्ग जानने के लिये उपयुक्त मानते हैं, बाद में नारद की जिज्ञासा से भगवान् शङ्कर स्वकीय इष्ट देवता के विस्तृत वर्णन में बताते हैं—

अयमेको यथा ब्रह्मा तथा चायं जनार्दनः।
तथा महेश्वरश्चाहं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः॥
एवं हि कोटिकीटानां नानाब्रह्माण्डवासिनाम्।
सृष्टिस्थितिविनाशानां विधात्री सा महेश्वरी॥

(म. भा. ३/२-३)

आगे भगवान् महादेव देवी के रूप का वर्णन करते हुए सृष्टि करने की देवी की इच्छा का वर्णन, सृष्टि का क्रम वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस देवी ने सत्व, रज, तम गुणों से युक्त चैतन्यरहित पुरुष का सर्जन किया, उस पुरुष ने देवी की सृष्टि करने की इच्छा जानकर तीनों गुणों की अलग-अलग विशेषता रखने वाले तीन पुत्र पैदा किये, जो ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव कहलाये, पुनः उस देवी ने उस पुरुष को दो भागों में विभक्त किया, **एक 'जीव' दूसरा 'परब्रह्म'** कहलाया। पुनः—

माया विद्या च परमा चेत्येवं सा त्रिधाऽभवत्।
माया विमोहिनी पुंसां सा संसारप्रवर्तिका॥

पुनः उस देवी ने अपने पाँच और विभाग गङ्गा, दुर्गा, सावित्री, लक्ष्मी, सरस्वती के रूप में किया। पृथक्शः तीन गुणों से युक्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश को सृष्टि, पालन और संहार का कार्य सौंपकर अपने को पाँच रूपों में विभक्त कर उनकी नारी रूप में रहने की इच्छा प्रकट करके वह परादेवी भगवती अदृश्य हो गयी। उन देवताओं द्वारा तपस्या करने पर भगवती उनकी परीक्षाहेतु आती हैं। उस देवी द्वारा ली जाने वाली परीक्षास्वरूप ब्रह्मा को चार मुख तथा विष्णु को क्षीरसागर निवास मिला एवं पराप्रकृति देवीअपनी पूर्णकलाओं सहित महादेव जी को मिलीं।

आगे ब्रह्माजी द्वारा सृष्टि-रचना की गयी। प्रथमतः पञ्च-महाभूतों, मरीचि आदि दश मानस-पुत्रों, दक्ष आदि प्रजातियों एवं मानसी कन्या सन्ध्या

एवं कामदेव को उत्पन्न किया। तदनन्तर मनु और शतरूपा को उत्पन्न किया। (अ.१-३)

सती-विवाहप्रसङ्ग में ब्रह्मा द्वारा दक्ष प्रजापति को सती को पुत्री-रूप में पाने का परामर्श दिया जाना—

तस्मादत्र समुद्भूता मायां तां जगदम्बिकाम्।
पुत्रीं प्राप्य जगद्वन्द्यां स्वजन्म सफलं कुरु॥

दक्ष प्रजापति द्वारा एतदर्थ तीन हजार वर्षों तक तपस्या करना देवी का प्राकट्य और कन्या के रूप में दक्ष के यहाँ जन्म लेना—

तामेव प्रकृतिं पूर्णां गौराङ्गीं दीर्घलोचनाम्।
शशाङ्ककोटितुल्याभां फुल्लेन्दीवरलोचनाम्॥

समय आने पर सती-स्वयंवर, शिव को स्वयंवर में आमंत्रित न किया जाना, फिर भी शिव को ही सती द्वारा वरण किया जाना—

शिवाय नमः उच्चार्य मालां भूमौ समर्पयत्।
सत्या दत्तां च तां मालां दधार शिरसा हरः॥

इस प्रकार सती रूप में परा प्रकृति शिव को प्राप्त हुईं। (अ. ४)

दक्ष प्रजापति-विषाद प्रसङ्ग में सतीविवाह से अप्रसन्न दक्ष द्वारा शिव की निन्दा, और यज्ञ में सती शिव को आमंत्रित न करना, अन्य सभी देवताओं का यज्ञ में शामिल होना, दश महाविद्याओं का देवी रूप में प्रकट होना, सती का यज्ञ में आना और स्वयं यज्ञकुण्ड में प्रवेश कर जाना, नारद द्वारा सतीमरण की सूचना, शिव को पहुँचाना, सती के वियोग में शिव का विलाप करना, शिव का दक्ष-यज्ञ-स्थल पर आकर दक्ष को मारना, पुनः ब्रह्मा के कहने पर दक्ष को जीवित करना, दक्ष द्वारा शिव की स्तुति, तथा छाया सती वर्णन प्रसङ्ग में छाया सती को अपने सिर पर लेकर नृत्य करते हुए, भ्रमण करते हुए शिव ने ऐसा विचार किया—

सती त्वं मम भार्येति लोकलज्जां परित्यजन्।
मूर्ध्ना वहामि ते छायां भाग्यं मम महत्तरम्॥

छाया सती के मृत शरीर के जो अङ्ग जिस स्थान पर पर गिरे वहाँ सिद्ध पीठ के रूप में महातीर्थ हुए।

इसी प्रकार से इस महाभागवत पुराण में कामरूप आदि के माहात्म्य-वर्णन में ब्रह्मा, विष्णु और शिव द्वारा बहुत समय तपस्या करने के बाद देवी का प्रकट होना हिमालय पर्वतराज के यहाँ पार्वती के रूप में, शिव की जटा में गङ्गा

के रूप में प्रकट होने का रहस्य बताती है। पुनः वे हिमालय के यहाँ गङ्गा के रूप में जन्म लेती हैं, जिन्हें ब्रह्मा आदि देवता हिमालय पर्वतराज से माँगकर शङ्कर का गङ्गा से विवाह करते हैं। इस प्रकार गङ्गा शङ्कर की जटा में स्थापित हुईं। पुनः हिमवान् और मेनका की तपस्या से वह पराशक्ति उनके यहाँ कन्या रूप में प्रकट होती हैं और बताती हैं कि—

यदैवात्मा महाराज प्रत्यक्षमनुभूयते।
तदैव जायते मुक्तिः सत्यं सत्यं ब्रवीमि ते॥

Vishwavidyalaya LIBRARY 18862

इस प्रकार वे विज्ञानयोगोपदेश, ब्रह्म-विद्योपदेश, ब्रह्मयोगोपदेश, मोक्ष-योगोपदेश देते हुए बताती हैं कि— महाकाली, तारा, षोडशी भुवनेश्वरी, भैरवी, बगला, छिन्नमस्ता, महात्रिपुरसुन्दरी, धूमावती एवं मातङ्गी मेरे ही रूप हैं, जो मनुष्यों को मोक्ष तक पहुँचाने वाली हैं।

तथा—

''यस्तु संस्मृत्य मामन्ते प्राणं त्यजति भक्तितः।
सोऽपि संसारदुःखौघैर्बाध्यते न कदाचन॥

इस प्रकार पराप्रकृति देवी द्वारा सृष्टिरचना से हिमवान् और मेनका के यहाँ पार्वतीरूप में उत्पत्ति तक का वर्णन इस महाभागवत के प्रारम्भ के **अठारह** अध्यायों में किया गया है।

आगे नारद हिमवान् को अवगत कराते हैं कि—

विष्णुसम्मोहिनी लक्ष्मीः शिवसम्मोहिनी शिवा।
सोऽपि नित्यं महाकालो निजान्तर्यामिनीमिमाम्॥
महाकाली महायोगी समाधिस्थो निरीक्षते।
तपश्चरति चैतस्या आत्मनिश्चलमानसः॥
एवं प्राप्य पुनः पत्नीं व्यक्तयोगो भविष्यति।
अचिरेणैव भावेन ध्यानयोगेन शङ्करः॥

शिवतपोवर्णन प्रसङ्ग में भगवान् शिव हिमालय पर एकान्त में तप करने के लिए जाते हैं। पर्वतराज अपने को धन्य मानते हैं और शिव को निर्विघ्न तप करने के लिये आश्वस्त करते हैं।

तारकासुर को ब्रह्मा द्वारा अभय वरदान के कारण उसके भय से इन्द्र आदि देवताओं को त्रस्त कर तारकासुर स्वर्ग में आधिपत्य कर इन्द्र आदि देवताओं को वहाँ से निकाल देता है, ब्रह्मा द्वारा यह भी वरदान दिए जाने के कारण कि वह तारकासुर शिवपुत्र कार्तिकेय के द्वारा मारा जायेगा, देवता शिव की तपस्या को

भङ्ग करना चाहते हैं। इसी प्रसङ्ग में जब कामदेव अपने कामरूपी बाण से शिव पर प्रहार करता है तो शिव क्रोधित हो कामदेव को भस्म कर देते हैं। उनके तृतीय नेत्र से समुद्भूत वह अग्नि वडवानल के रूप में ब्रह्मा जी द्वारा समुद्र में स्थापित किया गया।

उस एकान्त निर्जन प्रदेश में स्थित ध्यानमग्न शिव से महादेवी ने कहा—

मामाद्यां प्रकृतिं देव लब्धुं पत्नीं महत्तपः।
चिरं करोषि तत्कस्मात्कामोऽयं नाशितस्त्वया॥

इस प्रकार उन भगवान् शिव को ज्ञात हुआ कि पार्वती ही आद्या प्रकृति भगवती हैं तब उन्होंने सहस्रनाम से उस देवी की स्तुति की।

तारकासुर से त्रस्त ऋषिगण, देवगण का हिमालय पर्वतराज से शिव-पार्वती विवाह का उपक्रम बनाना, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं के निवेदन करने पर कामदेव को जीवित कर दिया जाना, शिव-पार्वती-विवाह, कार्तिकेय जन्म वर्णन एवं ब्रह्मलोक में पालन, कुमार कार्तिकेय द्वारा तारकासुर का वध कर कैलाश पर पुनरागमन आदि प्रकरणों का मनोहर वर्णन किया गया है।

पैतीसवें अध्याय में गणपति जन्म कथा प्रसङ्ग वर्णित है। ३६वें अध्याय से शारदीय-महापूजा विधान वर्णन प्रसङ्ग में त्रैलोक्यजननी देवी की कृपा से त्रैलोक्य विजयी रावण के विषय में, ब्रह्मा, विष्णु की चिन्ता, भगवती-नारायण सम्वाद, रावण-वध प्रकरण में विष्णु का राम, शिव का हनुमान् एवं ब्रह्मा का जामवन्त, लक्ष्मी का जानकी के रूप में अवतरण। राम-विवाह, रामवनवास, जानकी-हरण, हनुमान् का दूतकर्म, लङ्का हेतु राम का प्रस्थान, राम-रावण युद्ध, रावण पर विजय हेतु ब्रह्मा द्वारा देवी उपासना का रामचन्द्र को निर्देश, इसी सन्दर्भ में देवी भागवत के मणिद्वीप के वर्णन जैसे दुर्गालोक का वर्णन, राम-कुम्भकर्ण युद्ध का वर्णन करते हुए राम द्वारा दुर्गा की शत्रुशमनी स्तुति, ब्रह्मकृत देवी सूक्त, शारदीय पूजा-विधान, कुम्भकर्ण मेघनाद वध तथा रावण-वध का वर्णन करते हुए ४८वें अध्याय में—

"तस्माच्छाक्तोऽथवाशैवः सौरोवा वैष्णवोऽथवा।
अवश्यं पूजयेद्देवीं शारदीय महोत्सवे॥"

शारदीय पूजा अवश्य करने का निर्देश दिया गया है।

४९वें अध्याय से ५४वें अध्याय तक काली के कृष्ण रूप में अवतार का प्रसङ्ग, गौरी-शङ्कर संवाद, ब्रह्मा देवी संवाद, विष्णु का पाण्डुपुत्र अर्जुन के रूप में अवतार ग्रहण करना, ब्रह्मा की प्रार्थना से देवी का कृष्ण के रूप में धराधाम में

अवतरण, पूतना तृणावर्त वध, यशोदा और नन्द का पूर्व जन्म वर्णन, रासलीला तथा वृषभासुर-वध, कंसवध और वसुदेव-देवकी के पुनर्मिलन का वर्णन किया है।

५५वें अध्याय में महाभारत युद्ध योजना प्रसङ्ग में हस्तिनापुर के राजनैतिक घटनाक्रम में पाण्डवों के जन्म से लेकर वनवासगमन तक का वर्णन करते हुए, वनयात्रा प्रसङ्ग में पाण्डवों का कामाख्या दर्शन, अज्ञातवास, महाभारत युद्ध, कृष्ण पाण्डव परमधामगमन का ५८वें अध्याय तक वर्णन किया है।

ग्रन्थ के ५९वें अध्याय में काली स्थान वर्णन प्रसङ्ग में दधीचि प्राण त्याग से देवराज इन्द्र पर ब्रह्महत्यादोष वर्णन, ब्रह्महत्या मुक्ति उपक्रम में इन्द्र का ब्रह्ममयीकाली— स्थान के अनुसंधान हेतु ब्रह्मा, विष्णु लोकगमन, देवताओं का देवी स्थान गमन, वहाँ द्वार पर उपस्थिति का वर्णन ६३वें अध्याय तक किया गया है।

६४वें अध्याय से ६५वें अध्याय तक क्रम से गङ्गा की ब्रह्म-द्रव के रूप में गान महोत्सव में उत्पत्ति, बलि संयमन के समय वामन भगवान् के पाद प्रक्षालन, भगीरथ द्वारा गंगा अवतरण हेतु तपस्या, शिव सहस्रनाम स्तोत्र, गङ्गा-निर्गमन, गङ्गा भूपृष्ठागमन, गङ्गा का समुद्रतीर पहुँचकर सगर पुत्रों का उद्धार कर पाताल प्रवेश, गङ्गा माहात्म्य एवं अष्टोतर शतनाम का वर्णन किया गया है।

महाभागवत के अंतिम ६ अध्याय में प्रारम्भिक तीन अध्यायों में आदि शक्तिपीठ कामाख्या माहात्म्य एवं कामाख्या कवच तथा ७९वें अध्याय में तुलसी तथा ८०वें अध्याय में रुद्राक्ष माहात्म्य वर्णन है।

महाभागवतकार आदि से ७९वें अध्याय तक विविधरूपों में शक्ति का प्रतिपादन करने के पश्चात् ८० एवं ८१वें अध्याय में शिव-पूजा की श्रेष्ठता वर्णन करने से नहीं चूकते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभागवत एक श्रेष्ठतम शाक्त पौराणिक ग्रन्थ है, जिसमें ब्रह्मवैवर्त, देवी भागवत आदि पुराणों के शाक्ततत्वों का सार, समग्र पौराणिक प्रमुख कथानक जैसे राम-कथा, कृष्ण-कथा, महाभारत, वृत्रवध, वामनावतार आदि का शक्ति वैशिष्ट्ययुक्त प्रतिपादन, वैदिक के साथ तान्त्रिक उपासना की श्रेष्ठता का वर्णन काली और कामाख्यापीठ की श्रेष्ठता प्रतिपादन के बीच काली और दुर्गा की एकरूपता सिद्ध करते हुए भगवती की श्रेष्ठता सम्पादन में विशेष सफलता लक्षित होती है।

आभार प्रकाश

इस प्रकार के महाभागवत ग्रन्थ की जानकारी देने के लिए गुरुवर स्वामी ऋद्धेश्वरानन्द तीर्थ, प्राचीन प्रति सुलभ कराने के लिए पं० ओम प्रकाश शास्त्री, ग्रन्थ को प्रचारित करने के लिए नवीन मूलरूप में सम्पादक डॉ० पुष्पेन्द्र कुमार एवं इसकी हिन्दी अनुवादिका डॉ० प्रेमा खुल्लर के प्रति यथाविधि कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ।

इस कार्य को मूर्तरूप देने के लिए सदैव सचेष्ट विन्ध्य ज्यौतिष साधना केन्द्र के सचिव आचार्य राकेश रंजन त्रिपाठी, नवशक्ति प्रकाशन के अधिकारी लोकेशकृष्ण त्रिपाठी, मुद्रक साधनाप्रेस के अधिकारी धर्मकीर्ति शास्त्री, अर्थ-सहायिका मीरा चतुर्वेदी के प्रति अपना आभार प्रकट करते हुए कालिकाम्बा से प्रार्थना करता हूँ कि वे करुणामयी इन सब के साथ-साथ इस ग्रन्थ के पाठक, प्रचारक आदि सबकी कामनाओं को पूर्णता प्रदान करें।

इस प्रकार लगभग सवा वर्ष के सतत उद्यम से सुसज्जित यह कुसुमाञ्जलि कालिसाधना-मार्ग प्रदर्शक अपने दिव्यधाम गमन के बाद भी सतत मेरा मार्ग दर्शन करने वाले पूज्य गुरुदेव श्री केदारनाथजी तिवारी और गुरुमाता के चरणों में सादर समर्पित हैं। उक्त गुरुवर्यों की परम्परा के सशरीर सम्पादक पण्डित आद्या प्रसाद द्विवेदी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के विना यह यज्ञ पूर्णाहुतिविहीन यज्ञ की तरह निष्फल होगा।

यदि कोई त्रुटि रही हो तो वह मेरी है, अच्छाई है तो आप सबकी— इस पवित्र भावना से मातृचरणानुरागी विद्वद्वृन्द की सेवा में यह कृति प्रस्तुत की जा रही है।

मकर संक्रान्ति
२०५४ वि.

मृत्युञ्जय त्रिपाठी

विभिन्न पुराणों के अनुसार पुराणों की श्लोकसङ्ख्या

क्र.सं.	पुराण का नाम	मत्स्यपुराण	वायुपुराण	नारदीय पुराण	श्रीमद्भागवतपु०	अग्नि पुराण	देवीभागवत पु०	शिव पुराण	ब्रह्मवैवर्त पु०
१.	ब्रह्म पुराण	१३०००	–	१००००	१००००	२५०००	१०७००	१००००	१००००
२.	पद्मपुराण	५५०००	५५०००	५५०००	५५०००		५५०००	५५०००	५९०००
३.	विष्णु पुराण	२३०००	२३०००	२३०००	२३०००	२३०००	२३०००	२३०००	२३०००
४.	वायु/शिवपुराण	२४०००	२४०००	२४०००	२४०००	२४०००	१०६००	२४०००	२४०००
		(वायु पु.)	(वायु पु.)	(शिव. पु.)	(शिव. पु.)	(वायु पु.)	(वायु पु.)	(शिव. पु.)	(शिव पु.)
५.	भागवत पुराण	१८०००	१८०००	१८०००	१८०००		१८०००	१८०००	१८०००
६.	नारदीय पुराण	२५०००	२५०००	२५०००	२५०००		२५०००	२५०००	२५०००
७.	मार्कण्डेय पुराण	९०००	९०००	९०००	९०००		९०००	९०००	९०००
८.	अग्नि पुराण	१६०००	१६०००	१५०००	१५४००	१२०००	१६०००	१६०००	१५४००
९.	भविष्य पुराण	१४५००	१४५००	१४०००	१४५००	१४०००	१८५००	१८५००	१४५००
१०.	ब्रह्मवैवर्त पुराण	१८०००	१८०००	१८०००	१८०००		१८०००	१८०००	१८०००
११.	लिङ्ग पुराण	११०००	११०००	११०००	११०००		११०००	११०००	११०००
१२.	वाराह पुराण	२४०००	२४०००	२४०००	२४०००		२४०००	२४०००	२४०००
१३.	स्कन्द पुराण	८१०००	८१०००	८११००	८११००	८४०००	८१०००	८४०००	८१०००
१४.	वामन पुराण	१००००	१००००	१००००	१००००		१००००	१००००	१००००
१५.	कूर्म पुराण	१८०००	१००००	१७०००	१७०००	८०००	१७०००	१७०००	१७०००
१६.	मत्स्य पुराण	१४०००	१४०००	१५०००	१४०००	१३०००	१८०००	१८०००	१८०००
१७.	गरुड़ पुराण	१८०००	१८०००	१९०००	१९०००	८०००	१९०००	१९०००	१९०००
१८.	ब्रह्माण्ड पुराण	१२२००	–	१२०००	१२०००	१२०००	१२१००	१२२००	१२०००
		४०३७००	३७०५००	४००१००	४०००००	२२३०००	३९०९००	४२१५००	४०७४००

विभिन्न पुराणों का क्रम-निर्धारण

	पद्म पुराण	विष्णु पुराण	शिव पुराण	भागवत पुराण	नारदीय पुराण	मार्कण्डेय पुराण	अग्नि पुराण	ब्रह्मवैवर्त पुराण	लिङ्ग पुराण	वाराह पुराण	स्कन्द पुराण	कूर्म पुराण	मत्स्य पुराण
१. ब्रह्म पुराण	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
२. पद्म पुराण	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
३. विष्णु पुराण	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
४. वायु पुराण	–	–	–	–	४	–	४	–	–	–	–	१७	४
४. शिव पुराण	४	४	४	४	–	४	–	४	४	४	४	४	–
५. श्रीमद्भागवत पुराण	५	५	९	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
६. नारदीय पुराण	६	६	८	६	६	६	६	६	७	६	६	७	६
७. मार्कण्डेय पुराण	७	७	६	७	७	७	७	७	८	७	७	८	७
८. अग्नि पुराण	८	८	७	८	८	८	८	८	९	८	८		८
९. भविष्य पुराण	९	९	५	१०	९	९	९	९	६	९	९	६	९
१०. ब्रह्म वैवर्त पुराण	१०	१०	१०	९	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	९	१०
११. लिङ्ग पुराण	११	११	११	११	११	नृसिंह	११	११	११	११	११	१०	११
१२. वाराह पुराण	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	११	१२
१३. स्कन्द पुराण	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१७	१३	१३	१२	१३
१४. वामन पुराण	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१३	१४	१४	१३	१४
१५. कूर्मपुराण	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१४	१५	१५	१४	१५
१६. मत्स्य पुराण	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१५	१६	१६	१५	१६
१७. गरुड़ पुराण	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१६	१७	१७	१६	१७
१८. ब्रह्माण्ड पुराण	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८

श्रीमहाभागवत उपपुराण

का

विषयक्रम

प्रथम अध्याय
(सूत-शौनकसंवाद)

- मङ्गलाचरण १
- श्रीमहाभागवत उपपुराण का क्रमिक प्रकाश ३
- महर्षि व्यास की तप:साधना ४
- वेदों द्वारा देवी का माहात्म्यगान ५
- वेदों द्वारा भगवती की स्तुति ६
- भगवती के विविध रूप ८
- महाभागवत पुराण का प्रवचन १०

द्वितीय अध्याय
(देवतोपासनावर्णन)

- देवीमाहात्म्य १४
- शिवनारदसंवाद १५
- नारदकृत हरिहरस्तुति १८

तृतीय अध्याय
(सूतशौनकसंवाद)

- महादेव द्वारा इष्ट देवता का वर्णन २१
- भगवती की सृष्टीच्छा २३
- देवी का रूप २३
- देवी की इच्छा : सृष्टिनिरूपण २४
- देवी का आदेश २५
- तीनों देवताओं की तपश्चर्या २७
- तीनों देवताओं का विवाह २७
- ब्रह्मा द्वारा जगत् की सृष्टि २९
- स्वायम्भुव मनु का जन्म ३०
- तीन कन्याओं का विवाह ३०
- ब्रह्मा एवं प्रकृतिदेवी का संवाद ३१

चतुर्थ अध्याय
(सतीविवाहवर्णन)

- सती-जन्म ३७
- सती-स्वयम्वर ३८
- सती-विवाह ४२

पञ्चम अध्याय
(दक्षप्रजापतिविषादवर्णन)

- शिवनिन्दक दक्ष को दधीचि का सत्परामर्श ४४
- शिवनिन्दा में दक्ष द्वारा अपना हार्द प्रकट करना ४८

षष्ठ अध्याय
(नन्दिकेश्वरवर्णन)

- नन्दिकृत शङ्करस्तुति ५५

सप्तम अध्याय
(दक्षप्रजाप्रतियज्ञारम्भवर्णन)

- नारद द्वारा दक्ष को सत्परामर्श ६०
- दक्ष का मन्त्रियों से परामर्श ६१
- दक्ष का सङ्कल्प ६२
- यज्ञ की व्यवस्था ६४
- यज्ञ का आरम्भ ६५

- दधीचि आदि ऋषियों का सभात्याग ६८
- भगवती का निर्णय ६९
- देवर्षि नारद का आगमन ७०

अष्टम अध्याय
(कालीरथगमनवर्णन)

- शिव-सतीसंवाद ७३
- सती का चण्डरूप ७९
- दश देवियाँ (महाविद्याएँ) ८३
- आगम एवं वेद की एकता ८५
- गुरुप्रदत्त मन्त्र की गोपनीयता ८६
- सती का रथ से दक्षनगर-प्रयाण ८८

नवम अध्याय
(छाया सती का अग्निप्रवेशवर्णन)

- सती देवी का अपनी माता से मिलन ९१
- रानी प्रसूति का स्वप्न ९२
- छाया सती की रचना ९९
- छायासती का दक्ष से संवाद १००
- छायासती का यज्ञवह्नि में प्रवेश १०३

दशम अध्याय
(दक्षयज्ञविध्वंसवर्णन)

- नारद द्वारा सतीमरण की सूचना १०५
- भगवान शङ्कर का विलाप १०५
- वीरभद्र को यज्ञ-विध्वंस का आदेश १०७
- वीरभद्र द्वारा यज्ञ-विध्वंस १०८
- भगवान् विष्णु का सङ्कल्प ११०
- वीरभद्र एवं विष्णु का युद्ध ११२
- वीरभद्र द्वारा दक्ष का शिरश्छेदन ११४
- ब्रह्मा द्वारा शङ्कर से निवेदन ११५
- वीरभद्र द्वारा दक्ष को छागमुण्ड प्रदान ११७
- दक्ष द्वारा भगवान् शङ्कर से क्षमायाच्ञा ११७
- दक्षकृत शङ्करस्तुति ११८

एकादश अध्याय
(छायासतीवर्णन)

- त्रिदेव कृत देवीस्तुति १२४
- सतीदेह को शिर पर रखकर भगवान् शङ्कर की भूपरिक्रमा १२८
- विष्णु द्वारा सतीदेह का चक्र से खण्डन १३१
- सती-देहपातस्थलों की सिद्धपीठों के रूप में प्रसिद्धि १३२
- शङ्कर की प्रसन्नता हेतु नारद का प्रेषण १३३

द्वादश अध्याय
(कामरूपआदि का माहात्म्यवर्णन)

- ब्रह्मा एवं विष्णु का शङ्कर के पास जाना १३९
- तीनों देवों की तप:साधना १४१
- कामरूप का माहात्म्य १४३
- हिमालय के घर में देवी का प्रादुर्भाव १४५

त्रयोदश अध्याय
(गङ्गाप्रादुर्भाववर्णन)

- देवताओं का आगमन १५६

◆ ब्रह्मा द्वारा हिमालय से कन्या की याच्ञा १५९
◆ गङ्गा का ब्रह्मा के निकट जाना १६१

चतुर्दश अध्याय
(गङ्गाविवाहवर्णन)

◆ देवताओं द्वारा महोत्सव का आयोजन १६३
◆ नारद द्वारा शङ्कर को स्वर्ग में लाना १६४
◆ शङ्कर का गङ्गा को लेकर कैलास पर्वत पर आगमन १६५

पञ्चदश अध्याय
(ब्रह्मविज्ञानयोगोपदेशवर्णन)

◆ पार्वती का जन्म १६७
◆ भगवती का प्रथम रूप १७०
◆ भगवती का द्वितीय रूप १७१
◆ भगवती का तृतीय रूप १७१
◆ हिमालयकृत देवीस्तुति १७२
◆ देवी द्वारा हिमालय को ब्रह्मविज्ञान-योग का उपदेश १७६

सोलहवाँ अध्याय
(ब्रह्मविद्योपदेशवर्णन)

◆ हिमालय द्वारा देवी से विद्या-विषयक प्रश्न १८०
◆ देवी द्वारा उत्तर १८०

सत्तरहवाँ अध्याय
(ब्रह्मयोगोपदेशवर्णन)

◆ पाञ्चभौतिकदेह १८६
◆ देह के चार भेद १८६
◆ देह के तीन भेद १८७
◆ देहोत्पत्तिक्रम १८७
◆ गर्भस्थिति में प्राणी का पश्चात्ताप १९०

अठारहवाँ अध्याय
(मोक्षयोगोपदेशवर्णन)
(श्रीपार्वतीगीता)

◆ महाविद्याओं के नाम १९७
◆ क्रियायोग से इनकी प्राप्ति १९८

उन्नीसवाँ अध्याय
(श्रीपार्वतीगीतामाहात्म्य) २०१

बीसवाँ अध्याय
(हिमालय-नारद संवाद)

◆ देवी की बाललीला २०४
◆ नारद-हिमालय संवाद २०६
◆ भगवान् शङ्कर की समाधि के भङ्ग का उपाय २०८

इक्कीसवाँ अध्याय
(शिवतपोवर्णन)

◆ शङ्कर का हिमालय पर आगमन २११
◆ हिमालय का शङ्करदर्शनहेतुगमन २१३
◆ पार्वती द्वारा पूर्वप्रसङ्ग का श्रावण २१६
◆ पार्वती की शङ्कर के पास जाने की इच्छा २१७

बाईसवाँ अध्याय
(कामदाहवर्णन)

◆ हिमालय द्वारा पार्वती का शङ्कर के पास पहुँचना २२१
◆ देवताओं द्वारा शङ्कर के सम्मोहन का प्रयास २२२

- शङ्कर के तपोभङ्ग के लिये कामदेव की नियुक्ति २२७
- इन्द्र द्वारा कामदेव को प्रतिरक्षा का वचन २३१
- कामदेव का दहन २३५

तेईसवाँ अध्याय

(काली सहस्रनाम स्तोत्र)

- देवी का स्वरूप-दर्शन २३९
- शिवप्रोक्त देवी के सहस्रनाम २४१
- देवी की शङ्कर को पतित्वेन ग्रहण की स्वीकृति २६२
- कालीसहस्रनामपाठमाहात्म्य २६३

चौबीसवाँ अध्याय

(पार्वतीविवाहोपक्रम)

- शङ्कर का पार्वती के पास जाना २६५
- पिता की अनुज्ञा लेने के लिये पार्वती का शङ्कर को परामर्श २६६
- शङ्कर द्वारा सप्तर्षियों को हिमालय के पास भेजना २६८
- हिमालय की शङ्कर से पार्वती-विवाह हेतु स्वीकृति २७१

पच्चीसवाँ अध्याय

(शिवविवाहवर्णन)

- शङ्कर द्वारा हिमालय को विवाह-समय की सूचना २७२
- मरीचि आदि का प्रस्थान २७५
- नारद ब्रह्मलोक में २७७

छब्बीसवाँ अध्याय

(विवाहहेतु देवता-समागम)

- पर्वतराज के भवन का अलङ्करण २७९
- विवाह हेतु देवताओं द्वारा शङ्कर की बारात सजाना २८०

सत्ताईसवाँ अध्याय

(शिव का हिमालय के घर आगमन)

- शङ्कर द्वारा कामदेव को पुनर्जीवनदान २८६
- देवताओं द्वारा आरब्ध विवाहमहोत्सव में शङ्कर का सौम्य रूप २८६

अट्ठाईसवाँ अध्याय

(पार्वतीविवाहमङ्गल)

- हिमालय का कन्यादान २९०
- हिमालय द्वारा शङ्कर की स्तुति २९२
- शङ्कर द्वारा यज्ञों में हिमालय का अंश नियत करना २९३
- शङ्कर का हिमालय (कैलास) पर स्थायी निवास २९३

उनतीसवाँ अध्याय

(शिव-पार्वतीविहारवर्णन)

- अभिरमण से पृथ्वी की व्याकुलता २९६
- देवताओं द्वारा पार्वती से अभिरमण से पृथक् होने की स्तुति २९८

तीसवाँ अध्याय

(कार्त्तिकियजन्मवर्णन)

- पार्वती द्वारा अभिरमण से विरति ३०२
- भैरव की उत्पत्ति ३०२
- वायु द्वारा शङ्कर के वीर्य का विकिरण ३०३
- उस वीर्य का कृत्तिकाओं द्वारा अभिधारण ३०[illegible]

- ब्रह्मलोक में कार्त्तिकेय का जन्म ३०५
- नामकरण ३०६
- कार्त्तिकेय की उत्पत्ति को माता-पिता से छिपाना ३०७
- अध्यायपाठ का माहात्म्य ३०८

इकतीसवाँ अध्याय
(कुमारागमनवर्णन)

- कार्त्तिकेय द्वारा ताकरकासुर के वध हेतु सन्नद्धता ३१०

बत्तीसवाँ अध्याय
(कार्त्तिकेय-तारकासुरसंग्रामवर्णन)

- इन्द्रसहित कार्त्तिकेय का तारकासुर से विविध तरह से संग्राम ३१४

तेतीसवाँ अध्याय
(तारकासुरवधवर्णन)

- तारकासुर द्वारा कार्त्तिकेय पर शक्तिप्रहार ३१८
- तारकासुर एवं कार्त्तिकेय का खड्गयुद्ध ३२०
- कार्त्तिकेय द्वारा तारकासुर का वध ३२०

चौतीसवाँ अध्याय
(कार्त्तिकेय का कैलासपुरगमन)

- देवताओं द्वारा कार्त्तिकेय की स्तुति ३२२
- शङ्करपार्वती को कार्त्तिकेय का परिचय कराया जाना ३२२
- शङ्कर द्वारा महोत्सव का आयोजन ३२२
- विष्णु द्वारा पार्वतीपुत्र बनने की इच्छा ३२३
- गणेश-जन्मविषयक प्रश्न ३२४

पैतीसवाँ अध्याय
(गणपतिजन्मकथावर्णन)

- शङ्कर-पार्वती का वनविहार ३२५
- पार्वती द्वारा हरिद्राचूर्ण से गणपति की रचना ३२५
- शङ्कर द्वारा गणपति का शिरश्छेदन ३२७
- पार्वती के कथन से गणपति-शरीर पर गजमस्तक का आरोपण ३२८
- शङ्कर द्वारा पश्चात्ताप ३२९
- शङ्कर पार्वती का कैलास पर स्थायी आवास ३३०
- देवीचरितपारायण का माहात्म्य ३३०
- देवी की वार्षिकी पूजा ३३०
- देवी की महापूजा के विषय में नारद का प्रश्न ३३३

छत्तीसवाँ अध्याय
(वार्षिकी शारदीय महापूजा)

- वार्षिकी पूजा से प्रसिद्ध रावण ३३४
- रावण के कुकृत्य ३३५
- रावणवध के लिये विष्णु से देवताओं का निवेदन ३३६
- विष्णु के कहने से ब्रह्मा आदि का देवी के पास जाना ३३९
- देवी का रूप ३४०
- देवी से विष्णु का निवेदन ३४०
- देवी द्वारा रावण वध का उपाय बताना ३४१

सैंतीसवाँ अध्याय

(रामावतारचरित्रवर्णन)

◆ विष्णु की देवताओं से सहयोग हेतु मन्त्रणा ३४७
◆ श्रीराम आदि चारों भाइयों का जन्म ३४९
◆ सीता आदि का जन्म ३४९

अड़तीसवाँ अध्याय

(जानकीहरणवर्णन)

◆ रामादि चारों भाइयों की दीक्षा ३५१
◆ विश्वामित्र के यज्ञ का संरक्षण ३५१
◆ श्रीरामविवाह ३५२
◆ राम के यौवराज्य का निश्चय ३५३
◆ राम का वनगमन ३५३
◆ राजा दशरथ की मृत्यु ३५४
◆ भरत का राम के पास जाना ३५५
◆ शूर्पणखा को विरूप करना ३५६
◆ रावण द्वारा सीताहरण ३५७
◆ जटायुवध ३५८
◆ देवी का लङ्का छोड़ने का निश्चय ३५९

उनतालीसवाँ अध्याय

(रावणमन्त्रणावर्णन)

◆ राम का ऋष्यमूक पर्वत पर आगमन ३६०
◆ सुग्रीव से मैत्री ३६०
◆ सुग्रीव के वानरों द्वारा सीता का अन्वेषण ३६१
◆ हनूमान् का समुद्र लाँघ कर लङ्का में प्रवेश ३६१
◆ हनूमान्-देवी संवाद ३६२
◆ हनूमान् द्वारा अशोकवाटिका-ध्वंस ३६४
◆ लङ्कादहन ३६४
◆ हनूमान् द्वारा लङ्का में सीता की उपस्थिति की सूचना ३६५
◆ श्रीरामचन्द्र का लङ्काप्रस्थान ३६५
◆ विभीषण द्वारा लङ्कात्याग ३६५

चालीसवाँ अध्याय

(रावणयुद्धभङ्गवर्णन)

◆ श्रीराम का समुद्र पर सेतुस्थापन ३६७
◆ रावण को सेतुबन्धन से व्याकुलता ३६८
◆ श्रीराम का देवीपूजन का निश्चय ३६८
◆ श्रीराम का रावण से युद्ध आरम्भ ३७०
◆ रावण का रथभङ्ग ३७३

इकतालीसवाँ अध्याय

(ब्रह्मा एवं रामचन्द्र की मन्त्रणा)

◆ ब्रह्मा द्वारा श्रीराम को देवी-पूजा का परामर्श ३७६

बयालीसवाँ अध्याय

(श्रीराम एवं ब्रह्मा की मन्त्रणा)

◆ ब्रह्मा के परामर्श से श्रीराम द्वारा देवी की अकालपूजा ३८०
◆ एक ऐतिहासिक कथानक ३८३

तेतालीसवाँ अध्याय

(दुर्गालोक का वर्णन)

◆ शिवलोकवर्णन ३९२
◆ विष्णुलोकवर्णन ३९३
◆ गौरीलोकवर्णन ३९३
◆ गोलोकवर्णन ३९४

- देवीलोकवर्णन ३९४
- देवीमहिमा ३९५
- रत्नद्वीपवर्णन ३९८
- देवी का ऐश्वर्य ४००
- पौराणिकी मूर्ति की पूजा ४०४

चौवालीसवाँ अध्याय

(श्रीराम-कुम्भकर्णयुद्धवर्णन)

- श्रीरामकृत भगवती-स्तुति ४०६
- आकाशवाणी ४०८
- कुम्भकर्ण का युद्धभूमि-प्रस्थान ४०९

पैंतालीसवाँ अध्याय

(देवीस्तुतिवर्णन)

- ब्रह्मा द्वारा वेदोक्त देवीसूक्त ४११
- अकाल-पूजा ४१४
- देवी का वरदान ४१४

छयालीसवाँ अध्याय

(शारदीय पूजाविधान)

- अकालपूजामहोत्सवविधि ४१८
- सात्त्विकी, राजसी, तामसी पूजा ४२०
- तामसी पूजा का निषेध ४२१
- महाष्टमी के दिन उपवास का महत्त्व ४२२

सैंतालीसवाँ अध्याय

(रावणवधवर्णन)

- कुम्भकर्णवध ४२४
- मेघनाद का युद्धभूमि में गमन ४२४
- श्रीराम द्वारा देवीपूजा ४२८
- मेघनादवध ४३०
- रावण का युद्धभूमि में प्रस्थान ४३१
- रावणवध ४३३
- विभीषण द्वारा रावण का अन्तिम संस्कार ४३५

अड़तालीसवाँ अध्याय

(शारदीय पूजानुष्ठान तथा रामायणवर्णन)

- महोत्सव का विधिपूर्वक विसर्जन ४३६
- शारदीय पूजा महोत्सव की अनिवार्यता ४३७

उनचासवाँ अध्याय

(ब्रह्मा एवं भगवती का संवाद)

- शङ्कर की इच्छापूर्ति ४४०
- काली का कृष्ण रूप में अवतार का निश्चय ४४२
- शङ्कर तथा काली के अनुगामियों का भूलोक में आगमन ४४२
- राक्षसों द्वारा भूलोक में प्राणियों को पीड़ा ४४४
- पाँच पाण्डवों का भूलोक में अवतरण ४४६
- कुरुक्षेत्र में कौरव-पाण्डवों के युद्ध की देवी द्वारा भविष्यवाणी ४४७

पचासवाँ अध्याय

(श्रीकृष्ण-प्रादुर्भावर्णन)

- बलराम एवं कृष्ण की उत्पत्ति ४५१
- कंस द्वारा देवकी के पुत्रों की हत्या का निश्चय ४५४
- यशोदा एवं देवकी की सन्ततियों का विनिमय ४५६

- वसुदेव द्वारा भगवती की स्तुति ४६३
- कंस द्वारा देवकी की कन्या का वध ४६८

इक्यावनवाँ अध्याय

(पूतना एवं तृणावर्तवध)

- पूतनावधकथा ४७०
- तृणावर्तवधकथा ४७३
- राधाचरित ४७५
- कृष्ण के अन्य साथी ४७५

बावनवाँ अध्याय

(दक्षप्रसूतिरूप नन्द-यशोदावर्णन)

- यशोदाकथा ४७८
- दक्ष एव प्रसूति को देवी का वरदान ४७९

तिरपनवाँ अध्याय

(रासक्रीड़ावर्णन)

- रास-क्रीड़ा ४८२
- महारास-क्रीड़ा ४८४
- वृषभासुर का वध ४८७

चौवनवाँ अध्याय

(वसुदेव-देवकी को दर्शन)

- नारद से कंस को वास्तविकता का ज्ञान ४८९
- राम-कृष्ण को लाने हेतु अक्रूर का गोकुलगमन ४९०
- अक्रूर के साथ राम-कृष्ण का मथुरा-आगमन ४९०
- कुवलय हाथी का वध ४९३
- कंस-वध ४९४
- राजा उग्रसेन का अभिषेक ४९६
- राम-कृष्ण के यज्ञोपवीतादि संस्कार ४९८

पचपनवाँ अध्याय

(द्यूत में पाण्डवों का पराजय)

- अर्जुन आदि पाँच पाण्डव ४९९
- धृतराष्ट्रपुत्रों से वैर ५००
- सत्परामर्श हेतु अक्रूरगमन ५००
- श्रीकृष्ण का द्वारकापुरी में वास ५०१
- रुक्मिणी-स्वयंवर ५०२
- जाम्बवती-परिणय ५०३
- पाण्डवों द्वारा साम्राज्यस्थापन ५०४
- जरासन्ध-वध ५०५
- युधिष्ठिर का राजसूययज्ञ ५०५
- शिशुपाल-वध ५०६
- पाण्डवों का द्यूत में पराभव ५०६
- द्रौपदी का अपमान ५०७
- पाण्डवों का वनवास ५०७

छप्पनवाँ अध्याय

(कीचकवधवर्णन)

- पाण्डवों द्वारा कामरूप में भगवती-पूजा ५०९
- पाण्डवों को भगवती का वरदान ५०९
- युधिष्ठिरकृत भगवती-स्तुति ५११
- पाण्डवों का अज्ञातवास ५१३
- कीचकवध ५१५
- दुर्गाकवच ५१९
- कौरवों द्वारा गोहरण का असफल प्रयास ५२३
- अभिमन्युविवाह ५२३

◆ महाभारतयुद्ध ५२३

सतावनवाँ अध्याय

(महाभारतयुद्धवर्णन)

◆ युद्ध न करने का सत्परामर्श ५२५
◆ पाण्डवों द्वारा युद्ध के आरम्भ में देवी स्तुति ५२६
◆ भीष्मपितामहवध ५३०
◆ अभिमन्युवध ५३१
◆ जयद्रथवध ५३१
◆ द्रोणवध ५३१
◆ घटोत्कचवध ५३१
◆ कर्णवध ५३२
◆ शल्यवध ५३२
◆ दुर्योधनवध ५३२
◆ भीष्मपितामह का प्राणत्याग ५३३

अठावनवाँ अध्याय

(कृष्ण का स्वस्थानगमन)

◆ मन्त्रिपरिषद् को सूचना ५३५
◆ पाण्डवों का द्वारिका में आगमन ५३६
◆ पाण्डवों की भी स्वीकृति ५३७
◆ श्रीकृष्ण का स्वस्थानप्रयाण ५३८
◆ कृष्णावतारचरितश्रवणमाहात्म्य ५४१

उनसठवाँ अध्याय

(ब्रह्ममयी महाकाली का स्थानवर्णन)

◆ रम्य स्थान ५४२
◆ रम्य नगर ५४३
◆ रम्य मन्दिर ५४३
◆ रम्य सिंहासन ५४३
◆ रम्य दर्शन ५४४

साठवाँ अध्याय

(देवराज इन्द्र को ब्रह्महत्यादोष)

◆ वृत्रासुरकथा ५४८
◆ दधीचि का अस्थिदान ५५१
◆ वृत्रासुरवध ५५२

इकसठवाँ अध्याय

(ब्रह्ममयी-स्थानानुसन्धानवर्णन)

◆ इन्द्र द्वारा ब्रह्महत्यानिवारण की जिज्ञासा ५५३
◆ इन्द्र द्वारा अश्मेधयज्ञ ५५४
◆ देवर्षि नारद की असहमति ५५४
◆ गुरु गौतम ने ब्रह्महत्यानिवारण का उपाय बताया ५५७
◆ कालीदर्शनहेतु इन्द्र की व्यग्रता ५५९
◆ ब्रह्मा एवं विष्णु से इन्द्र का परामर्श ५६०

बासठवाँ अध्याय

(ब्रह्मा, विष्णु एवं शङ्कर का इन्द्र के साथ देवी के स्थान पर गमन)

◆ सभी देवताओं का भगवती का गुणगान करते हुए उनके स्थान पर पहुँचना ५६६

तिरसठवाँ अध्याय

(देवराज-ब्रह्महत्याहरणोपाख्यान)

◆ पुष्पहारिकाओं द्वारा देवीस्थान का सङ्केत ५६८
◆ गणेश द्वारा देवताओं को भगवती के सम्मुख प्रस्तुत करना ५७०

- देवी-स्थान की धूलि ही ब्रह्महत्या नाश का एकमात्र उपाय ५७६
- देवीमन्दिरदर्शनमाहात्म्य ५७७

चौसठवाँ अध्याय
(गङ्गा का द्रवमय होना)

- गङ्गावतरण कथा ५७९

पैंसठवाँ अध्याय
(बलिपातालयात्रावर्णन)

- राजा बलि द्वारा इन्द्र का राज्यापहरण ५८४
- बलि के दमन हेतु विष्णु का वामनरूप में अवतरित होना ५८५
- वामन का बलि से त्रिपाद भूमि का माँगना ५८६
- शुक्राचार्य द्वारा विरोध ५८६
- बलि द्वारा त्रिपाद भूमि का दान ५८९
- तीन पैरों में तीनों लोकों को नापकर बलि को पाताल में भेजना ५८९

छासठवाँ अध्याय
(भगीरथ-गङ्गासंवादवर्णन)

- गङ्गा द्वारा ब्रह्मा को वास्तविकता बताना ५९१
- राजा भगीरथ की तपस्या ५९३
- गङ्गावतरण हेतु शङ्कर को सन्नद्ध करना ५९७

सतसठवाँ अध्याय
(शिवसहस्रनाम)

- राजा भगीरथ द्वारा शिव की सहस्र नामों से स्तुति ६००
- स्तोत्र-पाठमाहात्म्य ६१८

अड़सठवाँ अध्याय
(गङ्गानिर्गमन)

- सन्तुष्ट धरणी द्वारा राजा के सामने एक उचित प्रस्ताव ६२४
- गङ्गा के आनयनहेतु राजा का स्वर्गलोक जाना ६२५
- धरणी द्वारा गङ्गा की स्तुति ६२६
- राजा द्वारा गङ्गा से भूलोक चलने के लिये निवेदन ६२७
- मेरुपर्वत होते हुए गङ्गा का भूलोक में आगमन ६३०

उनहत्तरवाँ अध्याय
(गङ्गा का भूतल पर आगमन)

- हिमालय पर गङ्गा का अवतरण ६३३
- गङ्गादशहरा ६३६
- माता-पिता को गङ्गा का मार्गदर्शन ६३८
- गङ्गा का दक्षिणप्रवाह ६३९

सत्तरवाँ अध्याय
(गङ्गासमुद्रतीरप्राप्तिवर्णन)

- गङ्गा का हरद्वार में अवतरण ६४०
- गङ्गा का प्रयाग में अवतरण ६४०
- गङ्गा का काशी में अवतरण ६४१
- तीन स्थानों में गङ्गा की दुर्लभता ६४१
- भैरव का भ्रमनाश ६४२
- जह्नु की जङ्घा से गङ्गा का निःसरण ६४४
- जह्नुमुनि द्वारा गङ्गास्तुति ६४४
- गङ्गा का समुद्रतट पर पहुँचना ६४९

इकहत्तरवाँ अध्याय

(गङ्गा का विवरस्थल से पातालप्राप्तिवर्णन)

◆ सगरपुत्रों का उद्धार ६५०

◆ गङ्गावतरणाख्यानपाठ-का माहात्म्य ६५२

बहत्तरवाँ अध्याय

(गङ्गानाममाहात्म्यवर्णन)

◆ गङ्गानाममाहात्म्य ६५५

◆ गङ्गास्नान के उद्देश्य से की गयी यात्रा का माहात्म्य ६५७

◆ गङ्गायात्री को यानसुविधा का माहात्म्य ६५९

◆ गङ्गादर्शन का माहात्म्य ६६०

◆ सर्वान्तक व्याध का दृष्टान्त ६६०

◆ धर्मराज द्वारा गङ्गा की प्रशंसा ६६३

तिहत्तरवाँ अध्याय

(गङ्गामाहात्म्यवर्णन)

◆ प्रातः गङ्गास्नान का फल ६६५

◆ गङ्गातट पर श्राद्धकर्म ६६७

◆ गङ्गा में मल-मूत्रविसर्जन का निषेध ६६९

◆ गङ्गा की असाधारणता ६७०

◆ तीन स्थानों में गङ्गा की दुर्लभता ६७०

◆ गङ्गा की मिट्टी से किये गये तिलक का महत्त्व ६७०

चौहत्तरवाँ अध्याय

(धनाधिप-मुक्ति का वर्णन)

◆ मुक्तिविशेष ६७३

◆ धनाधिप वैश्य की कथा ६७४

◆ गङ्गामाहात्म्य ६७५

पचहत्तरवाँ अध्याय

(भगवती गङ्गा के १०८ नाम)

◆ गङ्गा के १०८ नाम ६७९

◆ स्तोत्रपाठ का माहात्म्य ६८२, ६८४

◆ काशीक्षेत्र का वैशिष्ट्य ६८३

◆ सागरसङ्गमक्षेत्र का वैशिष्ट्य ६८३

छिहत्तरवाँ अध्याय

(कामाख्यापीठमाहात्म्य)

◆ कामरूप तीर्थ का माहात्म्य ६८६

◆ लौहित्य नद में स्नान की महिमा ६९०

◆ मन्त्रजप में मुहूर्त आदि का निषेध ६९०

सतहत्तरवाँ अध्याय

(महाकामाख्याकवचवर्णन)

◆ महाकाली का ध्यान ६९२

◆ अन्य नौ महाविद्याएँ ६९३

◆ देवी की पूजा ६९४

◆ कामाख्या स्थित शिव की पूजा ६९५

◆ रुद्राक्षधारण का महत्त्व ६९५

◆ देवीकवच ६९५

◆ कामाख्याकवच ६९७

अठहत्तरवाँ अध्याय

(योनिपीठमाहात्म्यवर्णन)

◆ विशेष दिन पूजा का महत्त्व ७००

◆ बिल्वपत्र से पूजा का महत्त्व ७००

◆ लौहित्य में स्नान कर देवीपूजा का माहात्म्य ७०३

उन्नासीवाँ अध्याय

(तुलसीमाहात्म्यवर्णन)

- तुलसी-माहात्म्य ७०५
- तुलसीवन में विष्णु की पूजा का महत्त्व ७०७
- तुलसीस्तोत्र ७०९
- आमलकीवृक्ष ७११
- बिल्ववृक्ष ७११

अस्सीवाँ अध्याय

(रुद्राक्षमाहात्म्य)

- शरीर पर रुद्राक्षधारण का प्रभाव ७१३
- हाथ पर रुद्राक्ष धारण का प्रभाव ७१४
- कान पर रुद्राक्ष धारण का प्रभाव ७१४
- रुद्राक्षयुक्त अलङ्करण का प्रभाव ७१४
- रुद्राक्ष के विना की गयी पूजा निष्फल ७१४
- रुद्राक्षमाला से मन्त्रजप का महत्त्व ७१५
- एकमुख रुद्राक्ष की महिमा ७१५

इक्यासीवाँ अध्याय

(महादेव-नारदप्रश्नोत्तरकथन)

- घोर कलिकाल में शिवपूजा का माहात्म्य ७१७
- शिवपूजापद्धति ७१८
- प्रसादग्रहण में विधि-निषेध ७२०
- गङ्गासागर-माहात्म्य ७२१
- उपसंहार ७२३

श्रीमहाभागवत
उपपुराण
[हिन्दी अनुवाद सहित]

॥ क्लीं ॥

❋ श्रीगणेशाय नमः ❋

श्रीमहाभागवत उपपुराण

[सूत-शौनक-संवाद]

प्रथम अध्याय

[श्रीमहाभागवत का प्राकट्य]

मङ्गलाचरण

देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः।
विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः॥ १॥

गणेशवन्दना— देवराज इन्द्र के मुकुट में शोभायमान मन्दार–पुष्पों के पराग की लालिमा से युक्त, भगवान् गणाधिपति के चरणकमलों के पवित्र धूलि–कण हमारे विघ्नों का नाश करें।। १।।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ २॥

नर–नारायणवन्दना— मनुष्यों में श्रेष्ठ नर एवं नारायण को तथा देवी सरस्वती और व्यास मुनि को प्रणाम करने के बाद ही इस महाभागवत उपपुराण का पारायण प्रारम्भ करना चाहिये।। २।।

यामाराध्य विरिञ्चिरस्य जगतः स्रष्टा हरिः पालकः,
संहर्ता गिरिशः स्वयं समभवद्ध्येया च या योगिभिः।
यामाद्यां प्रकृतिं वदन्ति मुनयस्तत्त्वार्थविज्ञाः परां,
तां देवीं प्रणमामि विश्वजननीं स्वर्गापवर्गप्रदाम्॥ ३॥

देवीवन्दना— जिस देवी की आराधना के फलस्वरूप, ब्रह्मा इस समग्र जगत् की रचना करते हैं, विष्णु इसका पालन करते हैं तथा भगवान् शङ्कर इसका यथासमय संहार करते हैं; योगिजन जिसका निरन्तर ध्यान करते हैं; तथा तत्त्वार्थज्ञाता मुनिजन जिस आद्या प्रकृति को परा विद्या (अध्यात्मविद्या=ब्रह्मविद्या) कहते हैं; ऐसी स्वर्ग एवं अपवर्ग (मोक्ष) का फल देने वाली जगन्माता देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।। ३।।

या स्वेच्छयास्य जगतः प्रविधाय सृष्टिं,
सम्प्राप्य जन्म च तथा पतिमाप शम्भुम्।
उग्रैस्तपोभिरपि यां समवाप्य पत्नीं,
शम्भुः पदं हृदि दधे परिपातु सा वः॥ ४॥

जिस देवी ने स्वेच्छा से इस जगत् की रचना की, तथा जिसने स्वयं भी इस जगत् में जन्म लेकर भगवान् शङ्कर को अपने पति के रूप में वरण किया; तथा भगवान् शङ्कर ने भी जिसे उग्र तपश्चर्या द्वारा पत्नी के रूप में प्राप्त कर उसके चरणों को अपने हृदय पर स्थान दिया, वह पूजनीया देवी तुम लोगों की रक्षा करे॥ ४॥

नैमिषारण्य में सूत–शौनक संवाद

एकदा नैमिषारण्ये शौनकाद्या महर्षयः।
पप्रच्छुर्मुनिशार्दूलं सूतं वेदविदां वरम्॥ ५॥

एक बार शौनक आदि महर्षियों ने, नैमिषारण्य में एकत्र होकर, वेदों के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ श्रीसूत मुनि से निवेदन किया॥ ५॥

महर्षय०— पुराणं साम्प्रतं ब्रूहि स्वर्गमोक्षसुखप्रदम्।
विस्तृतं परमं यत्र देव्या माहात्म्यमुत्तमम्॥ ६॥

"हे महामते! अब आप हमें ऐसे किसी पुराणशास्त्र का श्रवण कराइये, जो स्वर्ग एवं मोक्ष के सुखों का प्रदाता हो, तथा जिसमें देवी भगवती की उत्तम महिमा (गुणों) का विस्तृत वर्णन हो॥ ६॥

जायते नवधा भक्तिर्यस्य संश्रवणेन वै।
दिव्यज्ञानविहीनानां नृणामपि महामते!॥ ७॥

जिसके श्रवणमात्र से ही दिव्यज्ञानरहित साधारण मानवों के हृदय में भी उस परम भगवती देवी के प्रति नवधा भक्ति का उदय होने लगे"॥ ७॥

सूत उवाच—एतदुक्तं महेशेन नारदाय महात्मने।
पुराणं परमं गुह्यं महाभागवताह्वयम्॥ ८॥

सूत— "महर्षियो! ऐसा पुराण तो श्रीमहाभागवत नामक परम गोपनीय पुराण ही है, जिसको सर्वप्रथम स्वयं भगवान् शङ्कर ने ब्रह्मर्षि नारद को सुनाया था॥ ८॥

तदाह भगवान् व्यासः श्रद्धया भक्तिशालिने।
स्वयं जैमिनये पूर्वं पुनस्तद्वो ब्रवीम्यहम्॥ ९॥

उसी पुराण को आगामी काल में भगवान् व्यास ने भी श्रद्धापूर्वक

भक्तहृदय जैमिनि ऋषि को सुनाया था तथा उसी पुराण का प्रवचन मैं अब आप लोगों के सम्मुख करूँगा।। ९।।

गोपनीयं प्रयत्नेन न प्रकाश्यं कदाचन॥ १०॥

इस पुराण को प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये। अनधिकारी (अयोग्य) पुरुष को कभी नहीं सुनाना चाहिये।। १०।।

एतस्य श्रवणे पाठे यत्पुण्यं लभते द्विजः।
तद्वक्तुं न महेशोऽपि शक्तो वर्षशतैरपि।
किमहं कथयिष्यामि सङ्ख्याविरहितं यतः''॥ ११॥

इसके श्रवण एवं स्वाध्याय (पाठ) से ब्राह्मण को जो पुण्य अधिगत होता है, उस पुण्य का वर्णन भगवान् शङ्कर सौ वर्ष पर्यन्त भी पूर्णतः नहीं कर सकते तो फिर मैं साधारण पुरुष उसका वर्णन कर ही क्या सकता हूँ; क्योंकि वस्तुतः इस पुण्यपाठ के गुणों की गणना नहीं की जा सकती''।। ११।।

श्री महाभागवत उपपुराण का क्रमिक प्रकाश

श्रुत्वैवं विस्मयाविष्टा ऋषयस्त्वतिहर्षिताः॥
पुनरूचुर्मुनिश्रेष्ठाः सूतं वेदविदां वरम्॥ १२॥

इस पुराण के विषय में महात्मा सूत के ये वचन सुनकर वे शौनक आदि महर्षि अतीव आश्चर्यचकित एवं हर्षविभोर हो उठे। अतः उन मुनिवरों ने उन वेदज्ञ, सूत मुनि से पुनः यह निवेदन किया।। १२।।

ऋषय०— **यथा पुराणश्रेष्ठं तत्प्रकाशमभवत्क्षितौ।**
एतदाचक्ष्व तत्त्वेन कृपया मुनिपुङ्गव!॥ १३॥

ऋषिगण— ''हे मुनिपुङ्गव! यह उत्तम महाभागवत पुराण संसार में जिस क्रम से विद्वानों के सम्मुख प्रकाश में आया, उसे हमें कृपया विस्तार से बताइये''।। १३।।

सूत०— **महर्षिर्भगवान् व्यासः सर्ववेदविदां वरः।**
अशेषं धर्मशास्त्राणां वक्ता ज्ञानी महामतिः॥ १४॥

सूत— भगवान् व्यास सभी वेदज्ञ विद्वानों में श्रेष्ठ हैं, वे समग्र धर्मशास्त्रों के प्रवक्ता भी हैं, ज्ञानी हैं एवं बहुत ही बुद्धिमान् हैं।। १४।।

कृत्वा त्वष्टादशैतानि पुराणानि महामुनिः।
न तृप्तिमभिलेभे स कथञ्चिदपि धर्मवित्॥ १५॥

उन धर्मवेत्ता महामुनि को, अट्ठारह (१८) पुराणों की रचना के बाद भी, पूर्ण मनस्तोष नहीं मिला।। १५।।

महापुराणं परमं यत्परं नास्ति भूतले।
भगवत्याः परं तत्त्वं माहात्म्यं यत्र विस्तृतम्॥ १६॥

क्योंकि उन्होंने इस भूतल पर ऐसा कोई महापुराण न देखा था, न सुना था कि जिसमें भगवती के परमतत्त्व एवं उनकी महिमा का एकान्ततः विस्तार से वर्णन हो।। १६।।

तत्कथं वर्णयिष्येऽहमिति चिन्तापरायणः।
देव्यास्तत्त्वमविज्ञाय क्षुब्धचित्तो बभूव सः॥ १७॥

(उन्होंने विचार किया–) 'तब मैं विना जाने इन भगवती के दिव्य चरित्र का अनुपम वर्णन कैसे कर सकूँगा?' इस तरह उन महर्षि का चित्त देवी भगवती के विषय में, अज्ञ होने के कारण, उद्विग्न हो गया।। १७।।

यस्यास्तत्त्वं न जानाति महाज्ञानी महेश्वरः।
यस्या हि परमं तत्त्वं ज्ञातव्यमतिदुष्करम्॥ १८॥

वे सोचने लगे कि भगवान् शङ्कर भी जिस देवी की वास्तविकता पूर्णतः नहीं जानते. क्योंकि उनकी वास्तविकता जानना अतीव दुर्गम है (तो मैं अज्ञ कैसे जान पाऊँगा!)।। १८।।

महर्षि व्यास की तपःसाधना

विचिन्त्यैवं महाबुद्धिश्चकार परमं तपः।
गत्वा हिमवतः पृष्ठं दुर्गाभक्तिपरायणः॥ १९॥

यह सोचकर उन महर्षि ने दुर्गा देवी में एकान्तनिष्ठा (श्रद्धा) रखते हुए, हिमालय पर्वत पर जाकर, निर्जन स्थान में बैठकर, तपःसाधना की।। १९।।

तेनैव विधिना तुष्टा शर्वाणी भक्तवत्सला।
अदृष्टरूपा चाकाशे स्थित्वैवं वाक्यमब्रवीत्॥ २०॥

महर्षि की कठोर तपश्चर्या से सन्तुष्ट हुई तथा भक्तों पर पुत्रवत् स्नेह रखने वाली उन भगवती दुर्गा ने, आकाश में अदृश्य रहते हुए, ये वचन कहे–।। २०।।

''यत्रासन् श्रुतयः सर्वा ब्रह्मलोके महामुने!
गच्छ तत्र परं तत्त्वं मम वेत्स्यसि निष्कलम्॥ २१॥

''महामुने! आप ब्रह्मलोक में जाइये, जहाँ चारों वेद साक्षात् विराजमान हैं। वहाँ आप मेरे विषय में, जो कुछ भी ज्ञातव्य है वह सब, पूर्णतः जान लेंगे।। २१।।

प्रत्यक्षतां गमिष्यामि तत्रैव श्रुतिभिः स्तुता।
तत्र सम्पादयिष्यामि तवाभिलषितं च यत्''॥ २२॥

वहाँ, वेदों द्वारा मेरा गुणगान किये जाने पर, मैं तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन दूँगी और तुम्हारी मनःकामना भी पूर्ण करूँगी''।। २२।।

तच्छ्रुत्वा भगवान् व्यासो ब्रह्मलोकं तदा ययौ।
वेदान् प्रणम्य पप्रच्छ किं ब्रह्मपदमव्ययम्॥ २३॥

तब देवी भगवती का यह आदेश सुनकर, महर्षि व्यास ब्रह्मलोक पहुँचे। वहाँ पहुँचकर चारों वेदों को प्रणाम किया और उनसे अविनाशी ब्रह्मपद के विषय में अपनी जिज्ञासा प्रकट की।। २३।।

वेदों द्वारा देवी का माहात्म्यगान

ऋषेस्तद्वचनं श्रुत्वा विनयावनतस्य वै।
वेदाः प्रत्येकशः प्राहुस्तत्क्षणान्मुनिपुङ्गवम्॥ २४॥

उन विनीत ऋषि का यह निवेदन सुनकर सभी वेदों ने उन मुनिश्रेष्ठ से अपना पृथक् पृथक् मन्तव्य यों सुनाया—।। २४।।

ऋग्वेद०— **यदन्तःस्थानि भूतानि यतः सर्वं प्रवर्तते।**
यदाह तत्परं तत्त्वं साक्षाद्भगवती स्वयम्॥ २५॥

ऋग्वेद— ''महर्षे! सभी प्राणी जिसमें अन्तर्भुक्त हैं और जिससे यह समग्र जगत् प्रवृत्त होता है तथा जिसको विद्वज्जन 'परमतत्त्व' कहते हैं, वह तो साक्षात् भगवती देवी ही हैं''।। २५।।

यजुर्वेद०— **या यज्ञैरखिलैः सर्वैरीश्वरेण समिज्यते।**
यतः प्रमाणं हि वयं सैका भगवती स्वयम्॥ २६॥

यजुर्वेद— ''जो तत्त्व ईश्वर द्वारा समग्र यज्ञों से पूर्णतया पूजा जाता है, वह तत्त्व एकमात्र स्वयं भगवती देवी ही हैं''— इसमें हम चारों वेद प्रमाण हैं''।। २६।।

सामवेद०— **ययेदं धार्यते विश्वं योगिभिर्या विचिन्त्यते।**
ययेदं भासते विश्वं सैका दुर्गा जगन्मयी॥ २७॥

सामवेद— ''जिस तत्त्व के द्वारा यह समग्र विश्व पालित होता है, और जिसका सभी योगी एकान्ततः ध्यान करते हैं तथा जिससे यह समग्र जगत् अवभासित होता है, वह एकमात्र जगन्मय तत्त्व स्वयं भगवती दुर्गा ही हैं''।। २७।।

अथर्व०— यां प्रपश्यन्ति देवेशीं भक्त्यानुग्रहिणो जनाः।
तामाहुः परमं ब्रह्म दुर्गां भगवतीं पुमान्॥ २८॥

अथर्ववेद— ''स्वकीय ऐकान्तिक साधना से भक्तजन जिस देवी का साक्षात्कार कर पाते हैं, वह परम तत्त्व एकमात्र भगवती दुर्गा ही हैं''॥ २८॥

सूत०— श्रुतीरितं निशम्येत्थं व्यासः सत्यवतीसुतः।
दुर्गां भगवतीं मेने परं ब्रह्मेति निश्चितम्॥ २९॥

सूत— उन सत्यवतीपुत्र महर्षि व्यास ने, इन चारों श्रुतियों के ये प्रवचन सुनकर निश्चयपूर्वक उस भगवती दुर्गा को ही एकान्ततः परब्रह्म तत्त्व मान लिया॥ २९॥

श्रुतयस्त्वेवमुक्त्वा ताः पुनरूचुर्महामुनिम्।
प्रत्यक्षं दर्शयिष्यामो यथास्माभिरुदाहृतम्॥ ३०॥

उन चारों वेदों ने उक्त वचन कहकर, पुनः कहना प्रारम्भ किया— ''अभी हमने जो कुछ भी तुम से कहा है, उस का हम तुम्हें प्रत्यक्ष प्रमाण भी देंगे॥ ३०॥

चारों श्रुतियों द्वारा भगवती की स्तुति

इत्येवमुक्त्वा श्रुतयस्तुष्टुवुः परमेश्वरीम्।
सर्वदेवमयीं शुद्धां सच्चिदानन्दविग्रहाम्॥ ३१॥

महामुनि से यह कहकर उन वेदों ने सच्चिदानन्दस्वरूप, सभी देवताओं में व्याप्त, शुद्ध, परमेश्वरी भगवती दुर्गा की स्तुति यों प्रारम्भ की—॥ ३१॥

श्रुतय०—''दुर्गे विश्वमपि प्रसीद परमे सृष्ट्यादिकार्यत्रये,
ब्रह्माद्याः पुरुषास्त्रयो निजगुणैस्त्वत्स्वेच्छया कल्पिताः।
नो ते कोऽपि च कल्पकोऽत्र भुवने विद्येत मातर्यतः,
कः शक्तः परिवर्णितुं तव गुणांल्लोके भवे दुर्गमान्॥ ३२॥

श्रुतियाँ बोलीं— ''हे भगवति दुर्गे! आप हम पर प्रसन्न हों। इस विश्व की सृष्टि, पालन एवं संहार—इन तीन विशिष्ट कार्यों में ब्रह्मा आदि तीनों देवता, अपने अपने स्वभाव के अनुसार, आपकी इच्छा से ही व्याप्त हैं। इसके विपरीत, इस संसार में आप पर नियन्त्रण रखनेवाला कोई भी नहीं है; क्योंकि हे माता! इस लोक में आप के गुणों के वर्णन की क्षमता कौन रखता है!॥ ३२॥

त्वामाराध्य हरिर्निहत्य समरे दैत्यान् रणे दुर्जयान्,
त्रैलोक्यं परिपाति, शम्भुरपि ते धृत्वा पदं वक्षसि।

त्रैलोक्यक्षयकारकं समपिबद् यत् कालकूटं विषं,
किं ते वा चरितं वयं त्रिजगतां ब्रूमः परत्र्यम्बिके!॥ ३३॥

आपकी आराधना के बल पर ही, भगवान् विष्णु युद्धभूमि में कठिनता से जीतने योग्य राक्षसों को मार कर इस त्रिलोकी की रक्षा करने में समर्थ हुए हैं और इसी आराधना के बल पर भगवान् शङ्कर भी नृत्यमुद्रा में अपनी छाती पर आपके चरण रखकर समग्र त्रिलोकी का संहार करने में तथा कालकूट (हालाहल) विष पीने में समर्थ हुए। हे तीनों लोकों की रक्षिके, भगवति परा दुर्गे! हम आप के किन किन गुणों का वर्णन करें!।। ३३ ।।

या पुंसः परमस्य देहिन इह स्वीयैर्गुणैर्मायया,
देहाख्याऽपि चिदात्मिकापि च परिस्पन्दादिशक्तिः परा।
त्वन्मायापरिमोहितास्तनुभृतो यामेव देहस्थितां,
भेदज्ञानवशाद् वदन्ति पुरुषं तस्यै नमस्तेऽम्बिके!॥ ३४॥

हे अम्बिके! प्रत्येक प्राणी के शरीर में जो परम पुरुष की शक्ति है, उसे अपने गुणों के कारण, आप की माया के वशीभूत कोई दार्शनिक 'देहात्मिका शक्ति' मानता है तो कोई 'चिदात्मिका शक्ति', या फिर कोई उसे 'स्पन्दनात्मिका शक्ति' ही मान बैठा है। यों, ये सभी विद्वान् आप की माया के वश में होकर उस परम पुरुष (तत्त्व) के विषय में भेद-ज्ञान की बातें करते हैं; अतः आप को प्रणाम है।। ३४।।

स्त्रीपुंस्त्वप्रमुखैरुपाधिनिचयैर्हीनं परं ब्रह्म यत्,
त्वत्तो या प्रथमं बभूव जगतां सृष्टौ सिसृक्षा स्वयम्।
सा शक्तिः परमाऽपि यच्च समभून्मूर्तिद्वयं शक्तितस्-
त्वन्मायामयमेव तेन हि परं ब्रह्मापि शक्त्यात्मकम्॥ ३५॥

वास्तविक स्थिति यह है कि सर्वप्रथम यह परब्रह्म स्त्री-पुरुष आदि उपाधिसमूह से रहित था। तदनन्तर, आप के हृदय में जगत्सृष्टि की इच्छा जाग्रत् हुई। इसके बाद, आप की वह इच्छाशक्ति ही मूर्तिद्वय (दो शरीर=स्त्री-पुरुष) के रूप में प्रकट हुई। अतः हमारा मन्तव्य तो यह है कि वह परब्रह्म भी आप की मायामय शक्ति का ही एक रूप है।। ३५।।

तोयोत्थं करकादिकं जलमयं दृष्ट्वा यथा निश्चयस्-
तोयत्वेन भवेद् ग्रहोऽप्यभिमतां तथ्यं तथैव ध्रुवम्।
ब्रह्मोत्थं सकलं विलोक्य मनसा शक्त्यात्मकं ब्रह्म तत्-
शक्तित्वेन विनिश्चितः पुरुषधीः पारं परब्रह्मणि॥ ३६॥

जैसे जल से बने ओले (करक) आदि का जल के ही रूप में ग्रहण होता है, उसी तरह, इस जलीय दृष्टान्त के आधार पर, हम कह सकते हैं कि यह समग्र जगत् ब्रह्म से उद्भूत है और वह ब्रह्म भी शक्तिस्वरूप है। अत: सभी पुरुषों की बुद्धि भी अन्त में परब्रह्म से भी ऊपर आप को ही शक्ति स्वरूप मान बैठती है।। ३६।।

षट्चक्रेषु लसन्ति ये तनुमतां ब्रह्मादय: षट्शिवास्,
ते प्रेता भवदाश्रयाच्च परमेशत्वं समायान्ति हि।
तस्मादीश्वरता शिवे! नहि शिवे त्वय्येव विश्वाम्बिके,
त्वं देवि! त्रिदशैकवन्दितपदे दुर्गे! प्रसीदस्व न:''॥ ३७॥

इन देहधारियों के शरीरों में स्थित छह चक्रों में छह शिव वास करते हैं। उन देहधारियों के देहावसान के बाद वे प्रेतावस्था में रहते हैं, आपके आश्रय के बल पर वे छहों शिव ईश्वरभाव (परमेशत्व) को प्राप्त कर लेते हैं। अत: हे शिवे! वह वास्तविक ईश्वरत्व शिव में नहीं, अपितु हे जगन्माता आप में ही है। अतएव, समग्र देवता भी आपके श्रीचरणों में नतमस्तक रहते हैं। इसलिये हे माता दुर्गे! आप हम पर प्रसन्न हों''।। ३७।।

भगवती के विविध स्वरूप

सूत०—इत्येवं श्रुतिवाक्यैस्तु श्रुतिभि: संस्तुता सती।
स्वरूपं दर्शयामास जगदम्बा सनातनी॥ ३८॥

सूत– इस प्रकार श्रुतियों वेदों द्वारा कृत स्तुति से प्रसन्न वह अविनाशी (सनातन) जगदम्बा भगवती अपने नानाविध रूपों में प्रकट हुई।। ३८।।

ज्योतीरूपा हि सा देवी सर्वप्राणिव्यवस्थिता।
व्यासस्य संशयं छेत्तुं स्वतन्त्राकृतिमादधे॥ ३९॥

उस देवी भगवती ने, व्यासमुनि के सन्देह की निवृत्ति हेतु, सर्वप्रथम उनके सम्मुख सभी प्राणियों में स्थित स्वकीय ज्योतिर्मय स्वरूप (आकार) प्रकट किया।। ३९।।

स्फुरत्सूर्यसहस्राभां चन्द्रकोटिसमद्युतिम्।
सहस्रबाहुभिर्युक्तां दिव्यास्त्रैरभिसंवृताम्॥ ४०॥

फिर उन्होंने अपना वह रूप दिखाया जिससे हजारों देदीप्यमान सूर्यों की आभा प्रकट हो रही थी। फिर वह रूप भी दिखाया जिनसे करोड़ों चन्द्रमाओं की शीतल कान्ति छिटक रही थी और वह रूप भी दिखाया

जिसमें उनकी हजारों भुजाएँ दिखायी दे रही थीं, जिनमें हजारों अस्त्र-शस्त्र शोभित हो रहे थे।। ४०।।

दिव्यालङ्कारभूषाढ्यां दिव्यगन्धानुलेपनाम्।
सिंहपृष्ठे समारूढां कदाचिच्छववाहनाम्॥ ४१॥

किसी रूप में वे दिव्य अलङ्कारों से अलङ्कृत थीं। कहीं उनके शरीर पर विविध गन्धद्रव्यों का लेपन था। कभी किसी रूप में वे सिंह- पीठासीन और कहीं मृत शरीर (शव) पर नृत्य करती हुई दिखायी देती थीं।। ४१।।

चतुर्भिर्बाहुभिर्युक्ता नवीनजलदप्रभा।
द्विभुजा च चतुर्हस्ता तथा दशभुजा क्षणे॥ ४२॥

कहीं उनके रूप में चार भुजाएँ ही दिखायी देती थीं। कहीं उनका रूप नवीन श्यामवर्ण मेघ के तुल्य दिखायी देता था। कहीं वे दो भुजा तथा चार हाथों वाली या दूसरे ही क्षण वे दश भुजाओं वाली दिखायी दे जाती थीं।। ४२।।

अष्टादशभुजा क्वापि शतसङ्ख्याभुजा तथा।
अनन्तबाहुभिर्युक्ता दिव्यरूपधरा क्षणे॥ ४३॥

कभी वे देवी अट्ठारह (१८) भुजाओं वाली, कभी एक सौ भुजाओं वाली तथा कभी वे अगणनीय भुजाओं वाली दिखायी देती थीं। क्षणमात्र में ही वे दिव्य रूप में प्रकट हो जाती थीं।। ४३।।

कदाचिद्विष्णुरूपा च वामे च कमलालया।
राधया सहिताकस्मात्कदाचित्कृष्णरूपिणी॥ ४४॥

कभी वे विष्णुरूप में दिखायी देती थीं, जिनके वामभाग में कमला (लक्ष्मी) विराजमान थीं। फिर अकस्मात् कृष्ण के रूप में दिखायी देती थीं जिनके साथ राधा शोभायमान थीं।। ४४।।

वामाङ्गाधिगता वाणी कदाचिद् ब्रह्मरूपिणी।
कदाचिच्छिवरूपा च गौरी वामाङ्गसंस्थिता॥ ४५॥

कभी वे ब्रह्मा के रूप में दिखायी देती थीं जिनके वाम पार्श्व में सरस्वती विराजमान थीं। कभी वे शिवरूप में वामभागस्थित गौरी के साथ दिखायी देती थीं।। ४५।।

एवं सर्वमयी देवी कृत्वा रूपाण्यनेकधा।
व्यासस्य संशयच्छेदं चकार ब्रह्मरूपिणी॥ ४६॥

इस तरह उन देवी ने क्रमशः सभी देवताओं के रूप में विविध

प्रकार से स्वयं को, उन व्यास मुनि के संशयविच्छेद हेतु, प्रकट किया। वास्तव में तो वे ब्रह्मरूप (निराकार) ही थीं।। ४६।।

एवं रूपाणि चालोक्य पराशरसुतो मुनिः।
तां ज्ञात्वा परमं ब्रह्म जीवन्मुक्तो बभूव ह॥ ४७॥

यों वे पराशर ऋषि के पुत्र व्यासमुनि, उस देवी के ये विविध रूप देखकर उनको परब्रह्म जानकर उनके विषय में संशयमुक्त हो गये।। ४७।।

देवी द्वारा श्रीमहाभागवत उपपुराण का प्रकाश (प्रदर्शन)

सूत०— **ततो भगवती देवी ज्ञात्वा तस्याभिवाञ्छितम्।**
स्वपादतलसंलग्नं पङ्कजं समदर्शयत्॥ ४८॥

सूत– तब उस देवी ने व्यासमुनि की मनःकामना को ध्यान में रखते हुए उनको अपने चरण में अङ्कित कमल-पुष्प दिखाया।। ४८।।

मुनिस्तस्य सहस्रेषु दलेषु परमाक्षरम्।
महाभागवतं नाम पुराणं समलोकयत्॥ ४९॥

व्यास मुनि ने उस कमल–पुष्प की हजारों पङ्खुड़ियों में लिखित, अद्भुत अक्षरयुक्त **महाभागवत पुराण** का अवलोकन किया।। ४९।।

प्रणम्य शिरसा देवीं नानास्तुतिभिरादरात्।
जगाम स्वाश्रमं भूयः कृतकृत्यः स्वयं द्विजाः॥ ५०॥

एतदनन्तर हे ब्राह्मणों! वे व्यासमुनि, देवी को विविध स्तुतियों से सम्मानसहित शिर से प्रणाम कर, अपने को कृतकृत्य मानते हुए, पुनः अपने आश्रम पर चले आये।। ५०।।

महाभागवत पुराण का प्रवचन

यथा तत्पङ्कजे दृष्टं पुराणं परमाक्षरम्।
महाभागवतं पुण्यं प्रकाशमकरोत्तथा॥ ५१॥

अपने आश्रम पर आकर व्यास मुनि ने, जैसा उस कमल के पुष्प में देखा था तदनुसार उस परमाक्षरयुक्त महाभागवत पुराण का प्रवचन प्रारम्भ किया।। ५१।।

स्नेहात्तु कथितं तेन श्रुतं चाधिगतं मया।
स्नेहाद्वः कथयिष्यामि गोपनीयं प्रयत्नतः॥ ५२॥

(महर्षि सूत उन शौनक आदि ऋषियों से यों बोले–) उन व्यास भगवान् ने इस उपपुराण का स्नेहपूर्वक प्रवचन किया था और मैंने भी उनसे

स्नेहपूर्वक श्रवण किया था। उसी स्नेह से मैं आप लोगों को भी इसका प्रवचन करूँगा। परन्तु आप लोग यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करें। इसे किसी अनधिकारी (अयोग्य) पुरुष को न सुनावें।। ५२।।

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
महाभागवतस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ५३॥

क्योंकि हजारों अश्वमेध यज्ञ या सैकड़ों वाजपेय यज्ञ भी इस महाभागवत उपपुराण के प्रवचन–पुण्य की सोलहवीं कला (अंश) की समानता नहीं कर सकते।। ५३।।

उपसंहार

एवं महाभागवतं प्रकाशमभवत् क्षितौ।
परित्राणाय लोकानां महापातकिनामपि॥ ५४॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे सूतशौनकसंवादे महाभागवतप्रकाशवर्णन नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

इस तरह, इस महाभागवत उपपुराण का, महापातकियों[1] तथा लोक के उद्धार हेतु, इस भूमण्डल पर प्रकाश (प्राकट्य=अवतरण) हुआ।। ५४।।

इस महाभागवत उपपुराण में
सूतशौनक-संवाद रूप
'महाभागवतप्रकाश' वर्णन नामक
प्रथम अध्याय समाप्त।।

---

१. ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुस्तत्संसर्गश्च पञ्चमम्॥
[मनु० ११.५४]

द्वितीय अध्याय

[देवतोपासनावर्णन]

जैमिनि की महापुराणश्रवणविषयक जिज्ञासा

सूत०— श्रुत्वा बहुपुराणानि जैमिनिर्मुनिपुङ्गवः।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ व्यासं पप्रच्छ सादरम्॥ १॥

सूत— मुनिश्रेष्ठ जैमिनि ने, भगवान् वेदव्यास से अनेक पुराणों का श्रवण करने के बाद, भूमि में दण्ड की तरह लम्बे लेटते हुए प्रणाम कर, उनसे यह नम्र निवेदन किया—॥ १॥

जैमिनि०— सर्ववेदविदां श्रेष्ठ! नमस्ते मुनिपुङ्गव!
त्वत्तोऽधिकतरो लोके वक्ता नास्ति महामते!॥ २॥

जैमिनि— "सभी वेदज्ञों में श्रेष्ठ हे मुनिपुङ्गव! आप को प्रणाम है। हे महामते! इस संसार में आज आप से बढ़कर पुराणों का कोई अच्छा (प्रामाणिक) वक्ता नहीं है॥ २॥

श्रुत्वा तव मुखाम्भोजे कथां पुण्यतमां मुने!
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि न संशयः॥ ३॥

"आप के श्रीमुखकमल से पुण्यप्रद कथाएँ सुन कर मेरे सभी प्रकार के आध्यात्मिक संशय निवृत्त हो गये हैं, इस कारण मैं कृतार्थ (कृतकृत्य) हो गया हूँ—इसमें मुझे कोई संशय नहीं है॥ ३॥

अथान्यच्छ्रोतुमिच्छामि चिरं यन्मे हृदि स्थितम्।
जगतामादिभूता या दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी॥ ४॥

"अब मैं कुछ उस विषय में भी सुनना चाहता हूँ जो मेरे हृदय में बहुत समय से दोलायमान हो रहा है। वह यह है—कठिन से कठिन दुःखों को भी नष्ट करने वाली इस जगत् की आदिभूत दुर्गादेवी हैं॥ ४॥

त्रैलोक्यजननी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
यस्याः पादाम्बुजद्वन्द्वं दधद्धृदयपङ्कजे॥ ५॥
विश्वेशः शवरूपेण ब्रह्मादीनां च दुर्लभम्।
तस्या अतुलमाहात्म्यं संक्षेपेण त्वयोदितम्॥ ६॥

जो कि इस जगत् की माता और सत् चित् आनन्द रूपवाली हैं। तथा

जिनके दोनों चरणकमलों को भगवान् शङ्कर शवरूप से अपने हृदय पर धारण किये हुए हैं, जो कि ब्रह्मादिक देवों को भी दुर्लभ हैं। ऐसी उस देवी की अनुपम महिमा आपने, प्रसङ्ग आने पर भी, बहुत संक्षेप में कही है।। ५–६।।

न तृप्तिस्तेन जाता मे इदानीं विस्तरेण तु।
कथयस्व महाभाग नमस्ते मुनिपुङ्गव!॥ ७॥

किन्तु उस (संक्षिप्त महिमा-श्रवण) से मेरे हृदय की तृप्ति (सन्तोष) नहीं हुई। अतः हे महाभाग, मुनिपुङ्गव! कृपया अब कुछ अधिक विस्तार से उन देवी की महिमा का वर्णन करें।। ७।।

दुर्लभं मानुषं देहं बहुजन्मशतात् परम्।
प्राप्य तन्न श्रुतं येन विफलं तस्य जीवनम्॥ ८॥

यह मनुष्य शरीर बहुत कठिनाई से मिला करता है। सैकड़ों योनियों में जन्म लेने के बाद किसी महान् पुण्यप्रताप से ही यह मिल पाता है। ऐसे दुर्लभ देह को पा कर भी जिसने उस भगवती की महिमा नहीं सुनी तो उसका जीवन निरर्थक ही समझिये''।। ८।।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य व्यासः सत्यवतीसुतः।
प्रशंस्य मुनिशार्दूलं जैमिनिं प्रत्युवाच तम्॥ ९॥

उन जैमिनि के उक्त वचन सुनकर, सत्यवती पुत्र भगवान् व्यास ने जैमिनि मुनि की बहुत प्रशंसा की और अन्त में उनको यह उत्तर दिया।। ९।।

व्यास०— **साधु साधु महाबुद्धे जैमिने! भक्तिमानसि।**
ज्ञानवानसि हे वत्स! भद्रं पृच्छसि साम्प्रतम्॥ १०॥

व्यास— ''हे महाबुद्धिशाली जैमिनि मुनि! तुम बहुत ही उत्तम चरित्र वाले हो तथा देवी में दृढ़ भक्ति से युक्त हो। तुम असाधारण ज्ञानी हो, तभी तो वत्स! तुमने ऐसा अनुपम प्रश्न मुझसे पूछा है।। १०।।

यच्छ्रुत्वा न पुनर्जन्म लभन्ते मनुजा भुवि।
महापातकिनो मर्त्या भक्तिधर्मविवर्जिताः॥ ११॥

जिसका उत्तर सुनने के प्रभाव से, उन मनुष्यों का भी इस लोक में पुनर्जन्म नहीं होता जो ब्रह्महत्या आदि महापातकों में लिप्त रहते हैं या जिनके हृदय में भक्ति या धर्म का लेश भी नहीं होता।। ११।।

यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापी ब्रह्महत्यादिपापतः।
तां श्रोतुमिच्छसे यस्मात्तस्मात्त्वं भाग्यवानसि॥ १२॥

देवी की जिस महिमा को सुनकर महान् पापी भी अपने किये ब्रह्म-हत्यादि पापों से छुटकारा पा जाता है, उसी महिमा (गुणगान) को तुम सुनना चाहते हो। अतः तुम बहुत भाग्यशाली हो''।। १२।।

देवीमाहात्म्य

तावत् सर्वाणि पापानि ब्रह्महत्यादिकान्यपि।
यावन्न दुर्गाचरितं भवेत् कर्णगतं मुने!॥ १३॥

भो जैमिने! ये सभी ब्रह्महत्या आदि महापातक भी उस पापी को तभी तक घेरे रह सकते हैं जब तक कि वह भगवती दुर्गा का पुण्यमय चरित्र नहीं सुन पाता।। १३।।

कृतपापशतोऽप्येतच्छृणोति यदि मानवः।
तं दृष्ट्वा यमराड् दण्डं त्यक्त्वा पतति पादयोः॥ १४॥

भले ही किसी पापी मनुष्य ने अपने जीवन में सैकड़ों पाप किये हों, परन्तु यदि उसने एक बार भी भगवती दुर्गा का पवित्र चरित्र-श्रवण कर लिया है, तो उस महिमा-श्रवण के प्रभाव से यमराज भी, उस मनुष्य के सामने आकर, अपना यमदण्ड छोड़कर, उसके चरणों में सिर झुकाता है।।१४।।

माहात्म्यमतुलं तस्याः कः शक्तः कथितुं मुने!
शिवोऽपि पञ्चभिर्वक्त्रैर्यद्वक्तुं न शशाक ह॥ १५॥

हे मुने! उस देवी के अनुपम गुणों का माहात्म्य कौन वर्णन कर सकता है, जबकि भगवान् शङ्कर भी अपने पाँचों मुखों से उस माहात्म्य का पूर्णतः वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं।। १५।।

शम्भुर्वाराणसीक्षेत्रे मुमुक्षूणां नृणां स्वयम्।
तस्या एव महामन्त्रं यमस्मै गुरुणेरितम्॥ १६॥

भगवान् शङ्कर वाराणसी क्षेत्र में आकर मोक्ष चाहने वाले पुरुषों को स्वयं भगवती देवी का वह तारकमन्त्र सुनाते हैं, जो हमें अपने गुरु से प्राप्त हुआ था।। १६।।

स्वयं तु तरसागत्य तारकं ब्रह्मसंज्ञकम्।
कर्णेऽब्रुवन्महामोक्षं निर्वाणाख्यं प्रयच्छति॥ १७॥

और स्वयं शीघ्रता से आकर वे ब्रह्मसंज्ञक तारक मन्त्र भी उसके कान में सुनाते हैं जो निर्वाण नामक महामोक्ष का प्रदाता है।। १७।।

सर्वेषामेव मन्त्राणां निर्वाणपददायिनी।
सैका हि बीजं विप्रर्षे जैमिने मोक्षदायिनी॥ १८॥

"हे विप्रों में ऋषिभूत जैमिने! वह निर्वाण एवं मोक्ष पद देने वाली भगवती देवी ही सब मन्त्रों की एकमात्र बीजभूत है।। १८।।

तत्रत्यानां समस्तानां मन्त्राणां तां महामते!
वेदाः प्राहुरधिष्ठात्रीं देवतां मोक्षदायिनीम्॥ १९॥

हे महामते! वेदों ने भी स्वयं अपने में वर्णित सभी मन्त्रों की एकमात्र अधिष्ठात्री देवता उस मोक्ष प्रदान करने वाली भगवती दुर्गा को ही माना है।। १९।।

शशका मशकाद्याश्च ये चान्ये प्राणिनो भुवि।
तेषां मोक्षप्रदानाय शम्भुर्वाराणसीपुरे॥ २०॥
दुर्गेति तारकं ब्रह्म स्वयं कर्णे प्रयच्छति।
शृणुष्वावहितस्तत्ते जैमिने मुनिसत्तम!॥ २१॥

लोक में शशक (खरगोश) या मशक (मच्छर) आदि छोटे–से छोटे प्राणियों को भी मोक्ष देने के लिये आतुर भगवान् शङ्कर, वाराणसी नगरी में, 'दुर्गा' यह तारक महामन्त्र उनके कान में सुनाते हैं। उसी मन्त्र का मैं भी तुम्हारे सम्मुख वर्णन करूँगा। हे जैमिने! उसे तुम सावधानी से सुनो।। २०–२१।।

वक्ष्ये माहात्म्यमतुलं दुर्गायास्त्वतिविस्तरात्।
शिवनारदसंवादं महापातकनाशनम्॥ २२॥

मैं तुम्हें शिव और नारद ऋषि के संवाद के रूप में देवी भगवती का वह श्रेष्ठ माहात्म्य सुनाऊँगा जो महापातकों को भी विनष्ट करने की सामर्थ्य रखता है।। २२।।

शिव–नारद संवाद

मन्दरस्य गिरेः पृष्ठे सर्वे देवाः समागताः।
ऋषयश्च सगन्धर्वाः सर्वे तत्र समागताः॥ २३॥

एक बार, मन्दराचल पर सभी देवता एकत्र हुए, साथ ही गन्धर्वों सहित सभी ऋषि भी वहाँ पहुँचे।। २३।।

तस्मिन् गिरिवरे रम्ये नानावृक्षसमाकुले।
सुगन्धिकुसुमोत्फुल्लगन्धामोदितदिङ्मुखे॥ २४॥
सुमेरुशृङ्गसङ्काशे पृष्ठे मन्दरपर्वते।

उपविष्टं महादेवं महर्षिर्नारदो मुनिः।
विष्णुं विलोक्य पप्रच्छ प्राञ्जलिर्विनयान्वितः॥ २५॥

नानाविध वृक्षों से घिरे हुए, अनेक तरह के पुष्पों की गन्धों से सुगन्धित वायुमण्डल वाले, सुमेरु पर्वत के सदृश उस मन्दराचल पर विराजमान भगवान् शङ्कर से महर्षि नारद ने विष्णु को देखकर हाथ जोड़कर विनयपूर्वक पूछा–।। २४–२५।।

नारद०— **त्रिजगद्वन्द्य देवेश भक्तानुग्रहकारक!॥ २६॥**
त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः शुद्धात्मा ब्रह्मसंज्ञकः।
त्वमेव वस्तुतस्तत्त्वं जानासि परमेश्वर!॥ २७॥

नारद– "हे तीनों लोकों के वन्दनीय! हे देवताओं के स्वामिन्! हे भक्तों पर परम अनुग्रह करने वाले, आप ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, शुद्ध आत्मा हैं। आप ही वास्तविक तत्त्व के ज्ञाता है।। २६–२७।।

न जानन्त्यपरे देवा ऋषयो वा जगत्पते!
त्रिजगत्पावनीं गङ्गां मूर्ध्ना वहसि सादरम्॥ २८॥

हे जगत् के स्वामिन्! कोई भी दूसरे देवता या ऋषि उस तत्त्व को नहीं जानते। आपने तीनों लोकों को पवित्र करने वाली गङ्गा को ससम्मान अपने शिर पर धारण कर रखा है।। २८।।

शशाङ्कं रम्यमालोक्य तच्छिरोभूषणं कृतम्।
त्वं मे कथय सर्वज्ञ यत्त्वां पृच्छामि साम्प्रतम्॥ २९॥

आपने रमणीय चन्द्रमा को अपने मस्तक का अलङ्कार बना रखा है। हे सर्वज्ञ! (उनके साक्ष्य से) आप मेरे प्रश्न का उत्तर दें जो मैं अभी आप से पूछ रहा हूँ।। २९।।

युष्माकं तपसोपास्यं दैवतं किं महेश्वर!
त्वं यथा भगवान् विष्णुर्ब्रह्मापि जगतां पतिः॥ ३०॥

हे महेश्वर! आप अपनी तप साधना में किस देवता की उपासना करते हैं? आप जैसे हैं वैसे ही भगवान् विष्णु या जगत्पति ब्रह्मा भी हैं।। ३०।।

एतान् सम्भजते भक्त्या जायते परमं पदम्।
यादृक् त्वद्वचसा लोके शक्तो वक्तुं न भूतले॥ ३१॥

इनकी भक्ति (उपासना) करने से परम पद प्राप्त हो जाता है; परन्तु लोक में आप का जो सामर्थ्य है उसका वर्णन करने में कोई समर्थ नहीं है ।। ३१।।

एवंविधानां भवतां यदुपास्यं हि दैवतम्।
तदवश्यं मया ज्ञेयं ब्रूहि मे तत् कृपामय"॥ ३२॥

ऐसे महिमामण्डित आप लोगों का भी जो देवता उपास्य हो उसे मैं जानना चाहता हूँ। कृपया उसके विषय में मुझे कुछ बताइये"॥ ३२॥

व्यास०— इति तस्य वचः श्रुत्वा महादेवः पुनः पुनः।
विचार्य तमुवाचेदं जैमिने मुनिपुङ्गव!॥ ३३॥

व्यास— हे मुनिपुङ्गव जैमिनि! नारद के ये वचन सुनकर, महादेव जी उन पर बारम्बार विचार करते हुए, अन्त में यों बोले—॥ ३३॥

श्रीमहादेव०—"यत्त्वया प्रस्तुतं तात तत्तु गुह्यतमं परम्।
न प्रकाश्यं कथं वत्स वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव!"॥ ३४॥

महादेव— "वत्स! तुमने जिस विषय में प्रश्न किया है उस का उत्तर अत्यन्त गोपनीय है। वह तो किसी भी दशा में दूसरे को नहीं बताया जा सकता। हे मुनिपुङ्गव! उसे मैं तुम को कैसे बता दूँ"॥ ३४॥

व्यास०— इत्युक्तो देवदेवेन नारदस्तत्र संस्थितः।
प्राञ्जलिर्जगतां नाथं प्राह नारायणं विभुम्॥ ३५॥

व्यास— भगवान् शङ्कर (महादेव) का यह उत्तर सुनकर नारद मुनि ने, वहीं बैठे बैठे, तीनों लोकों के स्वामी सर्वव्यापी भगवान् विष्णु से हाथ जोड़कर निवेदन किया—॥ ३५॥

"भक्तानुकम्पी भगवान् देवदेवो महेश्वरः।
वक्तुं कृपणतां धत्ते समुपास्यं स्वदैवतम्।
त्वमाज्ञापय देवेश प्रणतानां कृपाकर!"॥ ३६॥

"यद्यपि भगवान् शङ्कर देवदेवेश हैं, अतएव ये 'महादेव' कहलाते हैं, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले भी हैं; परन्तु मेरे द्वारा पूछे गये अपने उपास्य देवता को बताने में ये मुझसे कृपणता कर रहे हैं। हे दीनदयालो! आप इन्हें परामर्श दीजिये कि ये मुझे अपना उपास्य देव बता दें"॥ ३६॥

नारायण०—"किं कार्यं तेन ते तात युष्माकं देवता वयम्॥ ३७॥
अस्मानेव समाराध्य परं पदमवाप्स्यसि।
अस्माकं दैवतेनात्र भवतः किं प्रयोजनम्?"॥ ३८॥

विष्णु— "तात नारद! उनका उपास्यदेवता जानने का आज तुम्हें क्या प्रयोजन पड़ गया? अरे! तुम्हारे उपास्य देवता तो हम हैं ही। हमारी

आराधना करके ही तुम उच्चतम पद तक पहुँचोगे। फिर हमारा उपास्य देवता जानने से तुम्हें क्या मिलेगा?"।। ३७–३८।।

व्यास०— एवं तस्यापि तद्वाक्यमाकर्ण्य मुनिसत्तमः।
तुष्टाव स्तुतिवाक्यैस्तु शिवविष्णू कृताञ्जलिः ॥ ३९ ॥

व्यास— इस तरह मुनिवर नारद ने, भगवान् विष्णु के उपेक्षामय वचन सुनकर भी निराश न होते हुए, उन दोनों शिव और विष्णु देवताओं की स्तोत्रवाक्यों से यों स्तुति प्रारम्भ की।। ३९।।

नारदकृत हरिहरस्तुति

नारद०— "प्रसीद विश्वेश्वर देवदेव प्रसीद नारायण वासुदेव!
प्रसीद सर्पाभरणोज्वलाङ्ग प्रसीद मां कौस्तुभभूषिताङ्ग ॥ ४० ॥

नारद ने, शिव एवं विष्णु—दोनों की स्तुति करते हुए, भगवान् विष्णु से कहा— "हे विश्वेश्वर, हे देवाधिदेव! आप मुझ पर प्रसन्न हों। हे नारायण, हे वासुदेव! आप मुझ पर प्रसन्न हों। हे सर्परूप आभूषणों से भूषित शरीरवाले शिव! तथा कौस्तुभमणि से भूषित अङ्गों वाले विष्णु! आप दोनों मुझ पर प्रसन्न होवें।। ४०।।

प्रसीद गङ्गाधर मां शरण्य, प्रसीद चक्रायुध मां वरेण्य!
प्रसीद विश्वेश्वर मां दिगम्बर, प्रसीद विश्वेश्वर मां गदाधर! ॥ ४१ ॥

"हे गङ्गाधर! हे शरणागतरक्षक! मुझ पर प्रसन्न हों। हे चक्रायुध विष्णु! हे देवश्रेष्ठ शिव! आप मुझ पर कृपा करें। हे विश्वेश्वर, हे दिगम्बर! आप मुझ पर प्रसन्न हों। हे जगत्पति हे गदाधर! आप भी मुझ पर प्रसन्न हों।। ४१।।

नमस्त्रिपुरनाशाय, कंसासुरविघातिने।
अन्धकासुरनाशाय, तृणावर्तविनाशिने ॥ ४२ ॥

हे त्रिपुरासुर के नाशक! हे कंसासुर के मारने वाले! हे अन्धक असुर के विघातक! हे तृणावर्त राक्षस को पञ्चतत्त्व में विलीन करने वाले!।।४२।।

नमस्ते पञ्चवक्त्राय विष्णवे ते नमो नमः।
गरुड़ासनसंस्थाय वृषारूढाय ते नमः" ॥ ४३ ॥

हे पाँच मुखों वाले शिव! हे विष्णु! आपको बार बार प्रणाम है। हे गरुड़ पर विराजमान रहने वाले विष्णु! तथा वृषभ (बैल) की सवारी करने वाले शिव! आपको प्रणाम है"।। ४३।।

व्यास०— इत्येवं संस्तुवन्तं तं दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमम्।
विलोक्य भगवान् विष्णुः प्राह देवं महेश्वरम् ॥ ४४ ॥

व्यास— इस प्रकार देवर्षिवर्य नारद द्वारा स्तुति किये जाते देखकर, भगवान् विष्णु भगवान् शङ्कर को सङ्केत करते हुए उनसे यों बोले— ।। ४४ ।।

विष्णु०— **"भक्तोऽयं ज्ञानवान् देव! विनीतो ब्रह्मणः सुतः।**
अनुग्राह्यस्त्वयावश्यं यतस्त्वं भक्तवत्सलः" ॥ ४५ ॥

विष्णु— "हे महादेव! ये ब्रह्मपुत्र नारद विनम्र एवं ज्ञानयुक्त दिखायी देते हैं। इन पर आपको अवश्य अनुग्रह करना चाहिये; क्योंकि आप भक्तों पर कृपा करने वाले देवता के रूप में प्रसिद्ध हैं" ।। ४५ ।।

व्यास०— **महेश्वरोऽपि तेनोक्तं वाक्यमाकर्ण्य विष्णुना।**
"भद्रं मेऽवहितं प्राह प्रणतानां कृपाकरः" ॥ ४६ ॥

व्यास— उन भगवान् विष्णु द्वारा कहे हुए ये वचन सुनकर महादेव जी बोले— "भो विष्णु! आप भी भक्तों पर कृपा करने वाले हैं। आपने यह परामर्श देते हुए उचित ही कहा है" ।। ४६ ।।

ततः पुनर्महादेवं महाज्ञानी महामतिः।
नारदः परिपप्रच्छ देवदेवं कृपानिधिम् ॥ ४७ ॥

फिर महान् ज्ञानवान् एवं महामति नारद ने देवाधिदेव कृपालु महादेव से यों पूछा— ।। ४७ ।।

नारद०— **"त्वामुपास्य तथा विष्णुं ब्रह्माणं च जगत्पतिम्।**
इन्द्रादयो लोकपालाः सम्प्रापुः परमं पदम् ॥ ४८ ॥

नारद का प्रश्न— "हे भगवन्! ये इन्द्र आदि लोकपाल भी आप की, भगवान् विष्णु की तथा जगत्पति ब्रह्मा की आराधना करके ही अपने वर्तमान उच्च पद तक पहुँचे हैं ।। ४८ ।।

युष्माकं यत्समाराध्यं दैवतं पूर्णमव्ययम्।
तन्मे कथय देवेश यदि ते मय्यनुग्रहः ॥ ४९ ॥

हे देवेश! यदि आप मुझ पर कृपा करना चाहते हैं तो आप मुझे यह बताइये कि वह कौन पूर्ण एवं अविनाशी देवता है, जिसकी आप लोग भी आराधना करते हैं? ।। ४९ ।।

एतादृशं महैश्वर्यं यत्प्रसादाच्च लब्धवान्।
तच्चेद्वदसि मे देव तदा सोऽनुग्रहो मयि" ॥ ५० ॥

जिसकी कृपा से आप ने इतना महान् ऐश्वर्य (देवाधिदेव का उच्चतम पद) प्राप्त किया है, यदि आप वस्तुतः मुझ पर कृपालु हैं तो उस विशिष्ट देवता के विषय में बताने का मुझ पर अनुग्रह कीजिये" ।। ५० ।।

व्यास०— इत्येवं प्रतिभाषितो मुनिवरं श्रीनारदं शङ्करः,
कृत्वादौ प्रणिधानमेव सततं योगीश्वरं सादरम्।
श्रीदुर्गाचरणाम्बुजं हृदि मुहुर्ध्यायन् यदेकं परं,
पूर्णब्रह्म तदेव निर्मलमतिर्वक्तुं समारब्धवान्॥ ५१॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे देवतोपासनावर्णनं
नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

व्यास– भगवान् शङ्कर ने मुनिवर नारद द्वारा उपर्युक्त प्रश्न किये जाने पर यह उत्तर दिया–

''किसी भी योगिराट् साधक को, उस देवता की प्राप्ति हेतु सर्वप्रथम दृढ़ सङ्कल्प करना चाहिये। फिर उसे भगवती दुर्गा के पवित्र चरणकमलों का ध्यान करना प्रारम्भ करना चाहिये जो कि एकान्ततः परब्रह्मस्वरूप हैं।''

इस तरह उन शुद्धबुद्धि भगवान् शङ्कर ने उस परम तत्त्व के विषय में महामुनि नारद को विस्तार से बताना प्रारम्भ किया॥ ५१॥

श्री महाभागवत उपपुराण के अन्तर्गत
देवतोपासनावर्णन नामक
द्वितीय अध्याय सम्पन्न॥

तृतीय अध्याय

[सूत-शौनक संवाद]

महादेव द्वारा स्वकीय इष्ट देवता का विस्तृत वर्णन

श्रीमहादेव०—**"या मूलप्रकृतिः शुद्धा जगदम्बा सनातनी।**
सैव साक्षात्परं ब्रह्म सास्माकं देवताऽपि च॥ १॥

जिसे हम व्यवहार में शुद्ध सनातन जगदम्बा भगवती (दुर्गा) कहते हैं, वही इस संसार की मूल प्रकृति है। वही साक्षात् परब्रह्म है और वही हमारी इष्ट देवता भी है।। १।।

अयमेको यथा ब्रह्मा तथा चायं जनार्दनः।
तथा महेश्वरश्चाहं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः॥ २॥

यद्यपि लौकिक शास्त्रों में ये अकेले ब्रह्मा इस जगत्सृष्टि के कर्ता, भगवान् विष्णु इसके पालक तथा मैं शङ्कर इस सृष्टि का संहारक कहलाता हूँ।। २।।

एवं हि कोटिकीटानां नानाब्रह्माण्डवासिनाम्।
सृष्टिस्थितिविनाशानां विधात्री सा महेश्वरी॥ ३॥

परन्तु वस्तुतः अनेक ब्रह्माण्डों में रहने वाले करोड़ों प्राणियों की सृष्टि, पालन एवं संहार करने वाली एकमात्र भगवती दुर्गा ही हैं।। ३।।

अरूपा सा महादेवी लीलया देहधारिणी।
तयैतत् सृज्यते विश्वं तयैव परिपाल्यते॥ ४॥

वे महेश्वरी वस्तुतः रूपरहित हैं। अपनी लीला (चरित्र) करने के लिये अनेक प्रकार के देह धारण करती रहती हैं। उन्हीं के द्वारा इस समस्त जगत् की सृष्टि होती है तथा उन्हीं के द्वारा इसका पालन होता है।। ४।।

विनाश्यते तयैवान्ते मोह्यते च तया जगत्।
सैव स्वलीलया पूर्णा दक्षकन्याभवत् पुरा॥ ५॥

और अन्त में, उन्हीं की इच्छा से इस समस्त सृष्टि का विनाश (प्रलय) होता है। यह समस्त जगत् उसी भगवती द्वारा मोहावस्था तक पहुँचाया हुआ है। पूर्वकाल में, कभी वे भगवती, जगत् को अपनी लीला दिखाने हेतु, दक्षकन्या के रूप में अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित प्रकट हुईं थीं।। ५।।

तथा हिमवतः पुत्री तथा लक्ष्मीः सरस्वती।
अंशेन विष्णोर्वनिता सावित्री ब्रह्मणस्तथा''॥ ६॥

बाद में, फिर कभी वे भगवती अपने कुछ अंशों से सम्पृक्त होकर नगाधिराज हिमालय की पुत्री पार्वती के रूप में, तथा लक्ष्मी और सरस्वती के रूप में भगवान् विष्णु की पत्नी तथा 'सावित्री' के रूप में जगत्स्रष्टा ब्रह्मा की पत्नी प्रसिद्ध हुई''॥ ६॥

नारद०— **''यदि प्रसन्नो देवेश मयि प्रीतिरनुत्तमा।**
तदा कथय मे नाथ विस्तरेण महामते!॥ ७॥

इसी प्रसङ्ग में नारद ने पूछा—''हे देवेश! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, यदि आपका मुझ पर अगाध अनुग्रह है तो हे नाथ! हे महामते! मुझे वह प्रसङ्ग विस्तार से सुनाइये॥ ७॥

यथा सा प्रकृतिः पूर्णा दक्षकन्याभवत् पुरा।
यथा च तां हरः प्राप पत्नीं ब्रह्मस्वरूपिणीम्॥ ८॥

जिस प्रकार वह पूर्ण भगवती प्रकृति पूर्वकाल में दक्ष प्रजापति की कन्या के रूप में अवतरित हुई और जिस प्रकार आपने शिव के रूप में उस ब्रह्मरूपिणी कन्या को स्वकीय पत्नी के रूप में स्वीकार किया॥ ८॥

पुनश्च सा यथा जाता हिमालयगृहे सुता।
तथा भूयोऽपि तां प्राप महादेवस्त्रिलोचनः॥ ९॥

आगामी समय में, फिर वही भगवती पर्वतराज हिमालय की पुत्री के रूप में प्रकट हुईं। वहाँ भी आप तीन नेत्रों वाले महादेव ने उन पर्वतराज की कन्या को स्वकीय पत्नी के रूप में स्वीकार किया॥ ९॥

यथा सा सुषुवे पुत्रौ महाबलपराक्रमौ।
कार्तिकेयगणेशौ द्वौ षडाननगजाननौ''॥ १०॥

फिर उस पार्वती ने जिस प्रकार महान् शक्तिसम्पन्न एवं प्रभूत बलशाली दो पुत्रों को जन्म दिया। उनमें पहला था छह मुखों वाला **कार्तिकेय** तथा दूसरा था हाथी के मुखवाला **गणेश**''॥ १०॥

श्रीमहादेव०—**आसीज्जगदिदं पूर्वमनर्कशशितारकम्।**
अहोरात्रादिरहितमनग्निकमदिङ्मुखम्॥ ११॥

महादेव— नारद! एक समय था जब यह जगत् सूर्य, चन्द्रमा एवं नक्षत्रों से विहीन था। अतः न तो दिन एवं रात्रि का विभाजन था, न अग्नि का ही कोई रूप था, न चारों दिशाओं की विभाजक कोई रेखा ही थी॥ ११॥

शब्दस्पर्शादिरहितमन्यत्तेजोविवर्जितम्।
तत्तद्ब्रह्मेति यच्छ्रुत्या सदेकं प्रतिपद्यते॥ १२॥

उस समय, यह समस्त जगत् शब्द, स्पर्श आदि इन्द्रियविषयों से रहित था, सभी प्रकार के तेज से शून्य (होने के कारण अन्धकारावृत) था। उस समय यहाँ एकमात्र उस ब्रह्म की सत्ता थी, जिसे वेदशास्त्र सत् (अविनाशी) एवं एकमात्र (केवल) रूप में प्रतिपादित करते हैं।। १२।।

स्थिता प्रकृतिरेका सा सच्चिदानन्दविग्रहा।
शुद्धज्ञानमयी नित्या वाचातीता सुनिष्कला॥ १३॥

उस समय, केवल सत् चित् आनन्द विग्रह (शरीर) वाली, शुद्ध ज्ञानरूप, नित्य एवं वाणी से अवर्णनीय भगवती प्रकृति वर्तमान थी, जिसका कोई विभाजन (=अंश, कला) नहीं था।। १३।।

दुर्गमा योगिभिः सर्वव्यापिनी निरुपद्रवा।
नित्यानन्दमयी सूक्ष्मा गुरुत्वादिभिरुज्झिता॥ १४॥

वह भगवती योगियों द्वारा भी कठिनतया बोधगम्य थी और इस जगत् में सर्वत्र व्याप्त थी। वह विघ्न-बाधादि उपद्रवों से रहित तथा नित्यानन्दस्वरूप एवं सूक्ष्म थी तथा वह गुरुत्व महत्त्व आदि गुणों से रहित भी थी।। १४।।

भगवती की सृष्टीच्छा–

सृष्टीच्छा समभूत्तस्या मुदा सद्यस्तदैव हि।
अरूपापि दधे रूपं स्वेच्छया प्रकृतिः परा॥ १५॥

उस परा प्रकृति भगवती को, एक समय प्रमोदावस्था में, तत्काल उसी समय नयी सृष्टि (जगत्-निर्माण) करने की इच्छा हुई और वस्तुतः नीरूप (रूपरहित) होते हुए भी उसने अपनी इच्छा से एक रूप (आकार) ग्रहण किया।। १५।।

देवी का रूप

भिन्नाञ्जननिभा चारुफुल्लाम्भोजवरानना।
चतुर्भुजा रक्तनेत्रा मुक्तकेशी दिगम्बरा।
पीनोत्तुङ्गस्तनी भामा सिंहपृष्ठनिषेदुषी॥ १६॥

(रूप धारण करने पर) वह ऐसी लग रही थी मानों अञ्जन (कृष्ण) पर्वत का कोई अंश हो, उस का मुख ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों खिला हुआ कमल का फूल हो, वह चार भुजाओं वाली थी, उसके नेत्र लाल थे, केश

खुले थे और वह निर्वस्त्र (दिगम्बर) थी उसके स्तन स्थूल एवं अत्यधिक उभरे हुए थे। वह देखने में सुन्दर थी तथा सिंह की पीठ पर विराजमान थी।।१६।।

ततस्तु स्वेच्छया स्वीयै रजःसत्त्वतमोगुणैः।
ससर्ज पुरुषं सद्यश्चैतन्यपरिवर्जितम्॥ १७॥

तब उसने स्वेच्छा से सत्त्व, रजस् एवं तमस्—तीन गुणों से एक पुरुष का सर्जन किया, जो चैतन्य से रहित था।।। १७।।

तं जातं पुरुषं वीक्ष्य सत्त्वादित्रिगुणात्मकम्॥ १८॥
सिसृक्षामात्मनस्तस्मिन् समाक्रामयदिच्छया।

उस सत्त्व आदि गुणत्रय से युक्त उत्पन्न पुरुष को देखकर भगवती ने अपने अनुरूप सृष्टि करने की इच्छा उसमें सञ्चारित की।। १८।।

देवी की इच्छा : सृष्टिनिरूपण

ततः स शक्तिमान् सृष्ट्वा पुत्रान् गुणत्रयैः॥ १९॥

तब उस शक्तिमान् पुरुष ने उस भगवती की हार्दिक इच्छा जानकर, तीनों गुणों में से एक–एक की विशेषता रखने वाले तीन पुत्र पैदा किये।।१९।।

त्रयो बभूवुः पुरुषा ब्रह्मविष्णुशिवाह्वयाः।
तथापि जायते नैव सृष्टिरेवं विलोक्य सा॥ २०॥
द्विधा चक्रे पुमांसं तं जीवं च परमं तथा।
त्रिधा चकार चात्मानं स्वेच्छया प्रकृतिः स्वयम्॥ २१॥

वे तीनों ही पुरुष थे, उनके क्रमशः ये नाम थे— ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव। परन्तु उनसे भी जगत् की यह सृष्टि आगे न बढ़ती देखकर उस देवी ने। (अपने) उस पुरुष को द्विधा विभक्त कर दिया। उन में एक 'जीव' कहलाया और दूसरा 'परब्रह्म'। तथा इसी तरह उस प्रकृति देवी ने, अपने भी, स्वेच्छा से, तीन विभाग कर लिये।। २०–२१।।

माया विद्या च परभा चेत्येवं सा त्रिधाभवत्।
माया विमोहिनी पुंसां सा संसारप्रवर्तिका॥ २२॥

यह भगवती प्रकृति स्वयं ही माया, विद्या एवं परा नाम से त्रिधा विभक्त हो गयी। उनमें 'माया' जगत् के प्राणियों को विमुग्ध कर इस संसार की सञ्चालिका बनी।। २२।।

परिस्पन्दादिशक्तिर्या पुंसां सा परमा मता।
तत्त्वज्ञानात्मिका चैव सा संसारनिवर्तिका॥ २३॥

सभी प्राणियों के शरीर को प्राणरूप से सञ्चालन (परिस्पन्दन) करने वाली 'परा' शक्ति कहलायी, तथा तत्त्वज्ञानवाहिनी शक्ति 'विद्या' कहलायी; जिसके आधार पर कोई भी जिज्ञासु संसार से सदा के लिये निर्वृत हो सकता है।। २३।।

मायाकृतो हि जीवस्तां व्यपनेक्षत्तदा मुने!
तां तां समाश्रितास्तेऽपि पुरुषा विषयैषिणः।
बभूवुर्मुनिशार्दूल! मत्तास्तन्मायया तदा॥ २४॥

हे मुने! तब एक समय आया कि 'माया' के वश में होकर प्राणियों ने उस आद्या शक्ति (भगवती) को भुला दिया और उस उस विषय का आलम्बन लेकर वे विषयाभिलाषी प्राणी उसी के होकर रह गये हे मुनिशार्दूल! उस माया के वशीभूत वे जीव धीरे धीरे प्रमत्त हो गये।। २४।।

सा तृतीया परा विद्या पञ्चधा याऽभवत्स्वयम्।
गङ्गा दुर्गा च सावित्री लक्ष्मीश्चैव सरस्वती॥ २५॥

तब उस तीसरी परा शक्ति ने स्वयं को पाँच भागों में विभक्त कर लिया उस शक्ति के उन पाँच रूपों के क्रमशः ये नाम हैं— १. गङ्गा, २. दुर्गा, ३. सावित्री, ४. लक्ष्मी एवं ५. सरस्वती।। २५।।

सा प्राह प्रकृतिः पूर्णा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्।
''प्रत्यक्षगा जगद्धात्री योज्य सृष्टौ पृथक् पृथक्॥ २६॥

तब उस पूर्णा प्रकृति (आद्या शक्ति) ने ब्रह्मा, विष्णु एवं महादेव— तीनों देवों से ''इस जगत् की सृष्टि में जगन्माता आद्याशक्ति ने उनका पृथक् पृथक् उपयोग कर यह कहा—।। २६।।

देवी का आदेश

सृष्ट्यर्थं हि पुरा यूयं मया सृष्टा निजेच्छया।
तत् कुरुध्वं महाभागा यथेच्छा जायते मम॥ २७॥

पूर्वकाल में मैंने ही स्वेच्छा से तुम लोगों का, इस सृष्टिरचना के लिये, निर्माण किया था महाशयो! आप लोग वही कीजिये, जो मेरी इच्छा है।। २७।।

ब्रह्मा सृजतु भूतानि स्थावराणि चराणि च।
विविधानि विचित्राणि चासङ्ख्येयमसंयतः॥ २८॥

१. ब्रह्मा प्राणियों की सृष्टि करें, उनमें स्थावर (पर्वत आदि) एवं चर (नर, पशु–पक्षी आदि) सभी कुछ सम्मिलित हैं। यह सृष्टिसमूह विविध भी होगा और विचित्र भी, अगणित भी होगा और असंयत भी।। २८।।

विष्णुरेव महाबाहुः करोतु प्रतिपालनम्।
निहत्य जगतः क्षोभकारकान् बलिनां वरः॥ २९॥

२. महाबाहु महाबली विष्णु जगत् में उपद्रवकारक प्राणियों मार कर इस सृष्टि का पालन करें।। २९।।

शिवस्तमोगुणाक्रान्तः शेषे सर्वमिदं जगत्।
नाशयिष्यति नाशेच्छा यदा मे सम्भविष्यति॥ ३०॥

और ३. तमोगुण से युक्त शिव सुखपूर्वक विश्राम करें। इस जगत् को सर्वथा प्रलीन करने की जब मेरी इच्छा होगी तब उस इच्छा से इस जगत् का प्रलय करेंगे।। ३०।।

परस्परं च सृष्ट्यादिकार्येषु त्रिषु वै ध्रुवम्।
विधातव्यं हि साहाय्यं युष्माभिः पुरुषत्रयैः॥ ३१॥
अहं च पञ्चधा भूत्वा सावित्र्याद्या वराङ्गनाः।
भवतां वनिता भूत्वा विहरिष्ये निजेच्छया॥ ३२॥

आप लोग तीनों परस्पर सहमत होते हुए इन सृष्ट्यादि कार्यों में निरन्तर लगे रहें। आप तीनों पुरुषों को मेरे इस जगत्सृष्टिकार्य में पूर्ण सहयोग करना चाहिये। इधर मैं भी सावित्री आदि नारियों के रूप में पाँच भागों में विभक्त होकर आप लोगों की नारी के रूप में स्वेच्छा से विहार करूँगी।। ३१–३२।।

तथा शम्भुश्च सम्भूय सर्वजन्तुषु योषितः।
प्रसविष्यामि भूतानि विविधानि निजेच्छया॥ ३३॥
ब्रह्मंस्त्वं मानुषीं सृष्टिं कुरुष्व मम शासनात्।
साम्प्रतं नान्यथा सृष्टिर्विस्तृतेयं भविष्यति"॥ ३४॥

तथा शम्भु (महादेव) के साथ मिलकर विविध प्राणियों की स्त्रियों में स्वेच्छा से गर्भ धारण करने की कामना जाग्रत् करती रहूँगी। ब्रह्मदेव! आप मेरी आज्ञा से मानवसृष्टि के अभिवर्धन पर पूर्ण ध्यान रखें अब इस सृष्टि के विस्तार का अन्य कोई उपाय अवशिष्ट नहीं है"।। ३३–३४।।

इत्युक्त्वा तान्महाविद्या प्रकृतिः सा परात्परा।
स्वयमन्तर्दधे तेषां ब्रह्मादीनां च पश्यताम्॥ ३५॥

आकर्ण्य च वचस्तस्या ब्रह्मा सृष्टिं प्रचक्रमे॥ ३६॥

उन देवताओं को यह कह कर वह परा विद्यारूप भगवती ब्रह्मादि देवों के देखते ही देखते, स्वयं अन्तर्हित हो गयी। तथा उसका आदेश सुनकर तदनुसार ब्रह्मा ने सृष्टि का कार्य आरम्भ किया।। ३५–३६।।

तीनों देवताओं द्वारा तपश्चर्या

पूर्णां तां प्रकृतिं लब्धुं पत्नीभावेन संयतः।
तपसाराधितुं भक्त्या समारेभे महेश्वरः॥ ३७॥

उधर संयतेन्द्रिय महादेव ने उस पूर्णा प्रकृति को स्वकीय पत्नीभाव से प्राप्त करने के लिये भक्तिभाव से तपश्चर्या आरम्भ की।। ३७।।

तज्ज्ञात्वा ज्ञाननेत्रेण विष्णुः परमपूरुषः।
सोऽपि तामेव संलब्धुं तपस्तप्तुमुपाविशत्॥ ३८॥

इस बात को स्वकीय दिव्य चक्षु से जानकर भगवान् विष्णु ने भी उस देवी को स्वकीय पत्नी रूप में प्राप्त करने के लिये तपस्या प्रारम्भ की।। ३८।।

तज्ज्ञात्वा भगवान् ब्रह्मा सृष्टिं त्यक्त्वा सुनिश्चलः।
अभिलाषेण तेनैव तपसे समुपाविशत्॥ ३९॥

इसी बात को जब ब्रह्माजी ने भी जाना तो वे भी सृष्टि का कार्य स्थगित कर, उसी देवी को प्राप्त करने की इच्छा से, एक स्थान पर बैठकर तपश्चर्या में लग गये।। ३९।।

एवं समाराधयतां त्रयाणां प्रकृतिः स्वयम्।
तपसस्तु परीक्षार्थं तेषामन्तिकमाययौ॥ ४०॥

यों आराधना में बैठे उन तीनों देवताओं की परीक्षा हेतु वह प्रकृति भगवती स्वयं उनके पास आयी।। ४०।।

तीनों देवताओं का विवाह

कृत्वा तु भीषणां मूर्तिं ब्रह्माण्डक्षोभकारिणीम्।
तां दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तो ब्रह्माऽभूद् विमुखस्तदा॥ ४१॥

सर्वप्रथम वह देवी भगवती ब्रह्मा के सम्मुख अपना ऐसा भीषण रूप धारण कर पहुँची कि जिसे देखकर समग्र ब्रह्माण्ड भी डर जाय। ब्रह्मा ने उसे देखते ही भयभीत होकर अपना मुख दूसरी दिशा में घुमा लिया।। ४१।।

सापि तत्सम्मुखं प्रायात्ततोऽपि विमुखस्थितः।
एवं चापि चतुर्दिक्षु चतुर्वारं समागमत्॥ ४२॥

ब्रह्मा द्वारा दूसरी तरफ मुख घुमा लेने पर वह उधर भी पहुँची। तब ब्रह्मा ने अपना मुख तीसरी तरफ, घुमा लिया। इस तरह वह देवी चार बार चारों दिशाओं से उस ब्रह्मा के सम्मुख आयी।। ४२।।

सोऽपि भूत्वा चतुर्वक्त्रो भीतभीतस्तदैव हि।
तपस्त्यक्त्वा भयत्रस्तः पलायनपरोऽभवत्॥ ४३॥

इस तरह वे ब्रह्मा, चार मुख वाले होकर बहुत अधिक भयभीत होते हुए तपश्चर्या छोड़कर वहाँ से भाग गये।। ४३।।

अथ सा प्रययौ तत्र विष्णुः परमपूरुषः।
तपश्चरति संयत्तो महाभयकरी द्रुतम्॥ ४४॥

तब वह देवी, उसी भयङ्कर रूप में वहाँ भी पहुँची, जहाँ परम पुरुष भगवान् विष्णु तपस्या में संलग्न थे।। ४४।।

तथा दृष्ट्वा च तां सोऽपि परं भीतस्तदाभवत्।
सहस्त्रशीर्षाः पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
मुद्रिताक्षस्तपस्त्यक्त्वा मग्नोऽभूज्जलमध्यतः॥ ४५॥

देवी का वह भयङ्कर रूप देखकर वे भी बहुत अधिक डर गये। यद्यपि वे विष्णु सहस्त्र शिर वाले, सहस्त्र आँखों वाले एवं सहस्त्र पैरों वाले कहलाते थे तो भी वे भयवश आँखें मूँदकर, तपश्चर्या को बीच में ही छोड़कर, जल (समुद्र) के बीच जाकर छिप गये।। ४५।।

एवं भग्ने च तपसि तयोः सा भीमरूपिणी।
महेशसन्निधिं प्रायान्न च ध्याननिवारणे॥ ४६॥
समर्थाभून्महेशस्य कदाचिदपि सा स्वयम्॥ ४७॥

यों, उन दोनों देवताओं के तप में विघ्न डालकर वह भयङ्कराकृति देवी महादेव के सम्मुख पहुँची। परन्तु वह अपना भयङ्कर रूप दिखा कर भी, किसी भी तरह, उन महादेव को अपनी तपस्या से च्युत नहीं कर सकी।। ४६–४७।।

ज्ञात्वा विज्ञानमात्रेण प्रकृतिं भीमरूपिणीम्।
परीक्षार्थं समायातां समाधौ संस्थितो हरः॥ ४८॥

अपितु महादेवजी को ज्यों ही ज्ञात हुआ कि प्रकृति देवी अपनी भीमाकृति से उनकी परीक्षा लेने आ रही हैं तो वे और भी अधिक गाढ़ समाधि में निमग्न हो गये।। ४८।।

तेन तुष्टा भगवती स्वयं प्रकृतिरुत्तमा।
पूर्णैव गिरिशं प्राप स्वर्गे गङ्गास्वरूपिणी॥ ४९॥

महादेव जी के इस कार्य से प्रसन्न होकर वह श्रेष्ठ प्रकृति देवी अपनी पूर्ण कला (अंश) के साथ स्वयं महादेव जी के पास पहुँच गयी तथा स्वर्ग में गङ्गा के रूप में रहने लगी।। ४९।।

अंशेन भूत्वा सावित्री प्राक्स्वीकृतबलेन च।
पतिमाप विधिं देवी तथा लक्ष्मीः सरस्वती।
भूत्वा प्राप पतिं विष्णुं निजांशेन महामते॥ ५०॥

और स्वकीय अंशभूत सावित्री के रूप में, पूर्वप्रतिज्ञानुसार ब्रह्माजी को अपना पति वरण कर लिया। उधर सरस्वती और लक्ष्मी के रूप में विष्णु को अपने अंश का पति स्वीकार कर लिया।। ५०।।

ब्रह्मा द्वारा जगत् की सृष्टि

अथ भग्नसमाधिस्तु ब्रह्मा लोकपितामहः।
सृष्ट्वा क्षित्यादिभूतानि तत्त्वानि च महामते!
ससर्ज तनयाँश्चापि मानसान् दश तत्क्षणात्॥ ५१॥

तब महामते! कुछ समय बाद इस जगत् के पितामह ब्रह्मा की समाधि टूटी तो उन्होंने पृथ्वी आदि पाँच महाभूतों की सृष्टि की। साथ ही उन्होंने अपने दश मानसपुत्रों को भी जन्म दिया।। ५१।।

मरीचिमत्रिं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा।
प्रचेतसं वसिष्ठं च नारदं च तथा भृगुम्॥ ५२॥
पुलस्त्यं सर्व एवैते दश तुल्या महामते!
ससर्ज दक्षप्रमुखान् प्रजाधीशाँश्च मानवान्॥ ५३॥

उन दश पुत्रों के नाम क्रमशः ये हैं—१. मरीचि, २. अत्रि, ३. पुलह, ४. क्रतु, ५. अङ्गिरा, ६. प्रचेता, ७. वसिष्ठ, ८. नारद, ९. भृगु तथा १०. पुलस्त्य। महामते! उनके ये दशों पुत्र समान शक्तिसम्पन्न थे। उस ब्रह्मा ने दक्ष आदि मानवप्रजापतियों की भी सृष्टि की।। ५२–५३।।

सन्ध्यां च मानसीं कन्यां कामं चापि मनोभवम्॥ ५४॥
स्त्रीपुंसानां विमोहार्थं स्वर्गे मर्त्ये रसातले।
स्वयं नियोजयामास पुरुषं कामरूपिणम्॥ ५५॥
पौष्पाँश्च सायकान् पञ्च धनुः पुष्पमयं तथा।
सर्वलोकविमोहाय ददौ तस्मै प्रजापतिः॥ ५६॥

साथ ही उन्होंने स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल लोकवासी स्त्रियों एवं पुरुषों में परस्पर मोह संवर्धन हेतु मानसी कन्या सन्ध्या एवं मन में उत्पन्न काम की सृष्टि की। उन ब्रह्मा ने उस कामरूप पुरुष को स्वयं नियुक्त किया और उसको इस कार्य की सिद्धि हेतु पाँच पुष्पमय बाण एवं एक पुष्पों से निर्मित धनुष् भी सम्मोहनार्थ प्रदान किया।। ५४–५६ ।।

स्वायम्भव मनु का जन्म

ततो ब्रह्मा द्विधा चक्रे स्वकीयं वपुरुत्तमम्॥ ५७॥

फिर उस ब्रह्मा प्रजापति ने अपने ही उत्तम शरीर को दो भागों में विभक्त कर दिया।। ५७ ।।

वामार्धं शतरूपाख्या जाता स्त्री चारुरूपिणी।
दक्षिणार्धां समभवन्नाम्ना स्वायम्भुवो मनुः॥ ५८॥

उनमें, वाम भाग से शतरूपा नामक एक सुन्दर मनोहर स्त्री तथा दक्षिण भाग से स्वायम्भुव नामक मनु उत्पन्न हुए।। ५८ ।।

स तां जग्राह चार्वङ्गीं भार्यार्थे चारुहासिनीम्।
प्रविद्धां पञ्चबाणेन पञ्चभिः कुसुमायुधैः॥ ५९॥

उस सुन्दर अङ्गों वाली, मनोहर हास्य वाली कामदेव के पाँच पुष्पवाणों से पीड़ित हुई शतरूपा को स्वायम्भुव मनु ने, अपनी भार्या के रूप में स्वीकार किया।। ५९ ।।

स तस्यां शतरूपायां तिस्रः कन्याः सुतद्वयम्।
उत्पादयामास तदा मनुः स्वायम्भुवो मुने!॥ ६०॥

हे महामुने! तब उस स्वायम्भव मनु ने उस शतरूपा से तीन कन्याएँ एवं दो पुत्र उत्पन्न किये।। ६० ।।

आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिश्चैव कन्यकाः।
प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ देवर्षिसत्तम!॥ ६१॥

हे देवर्षिश्रेष्ठ! उन तीन कन्याओं के नाम थे– १. आकूति २. देवहूति एवं ३. प्रसूति और उस के दो पुत्रों के नाम थे–१. प्रियव्रत एवं २. उत्तानपाद।। ६१ ।।

तीन कन्याओं का विवाह

आकूतिं रुचये प्रादान्मध्यमां कर्दमाय च।
दक्षाय प्रददौ कन्यां तृतीयां चारुरूपिणीम्॥ ६२॥

उस स्वायम्भुव मनु ने अपनी ज्येष्ठ कन्या आकूति रुचि को प्रदान

की, मध्यम कन्या (देवहूति) कर्दम ऋषि को और सब से सुन्दर तीसरी कन्या उसने दक्ष प्रजापति को दे दी।। ६२।।

कर्दमो जनयामास देवहूत्यां सुता नव।
अरुन्धतीप्रभृतयो वसिष्ठादींस्त्रियश्च ताः॥ ६३॥

कर्दम ऋषि ने देवहूति से अरुन्धती आदि नौ पुत्रियाँ उत्पन्न की। उन स्त्रियों का वसिष्ठ आदि ऋषियों विवाह हुआ।। ६३।।

दक्षस्यापि समुद्भूताः कन्यकाश्च चतुर्दश।
अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा चारिष्टा सुरसा तिमिः॥ ६४॥
मनुः क्रोधवशा ताम्रा विनता कद्रुरेव च।
स्वाहा भानुमती चेति तासामाख्याः प्रकीर्तिताः॥ ६५॥

उधर दक्ष प्रजापति को भी (प्रसूति से) चौदह कन्याएँ उत्पन्न हुईं। इनके नाम क्रमशः ये हैं– १. अदिति, २. दिति, ३. दनु, ४. काष्ठा, ५. अरिष्टा, ६. सुरसा, ७. तिमि। ८. मनु, ९. क्रोधवशा, १०, ताम्रा, ११. विनता, १२, कद्रु, १३, स्वाहा एवं १४. भानुमती।। ६४–६५।।

तां स्वाहामग्नये प्रादात् कश्यपाय त्रयोदश।
कश्यपस्तासु पत्नीषु प्रजा नानाविधाः स्वयम्॥ ६६॥
उत्पादयामास ततस्तैर्व्याप्तमखिलं जगत्।
एवं ससर्ज भगवान् ब्रह्मा सर्वमिदं जगत्॥ ६७॥

दक्ष प्रजापति ने इन कन्याओं में से स्वाहा का विवाह अग्नि के साथ कर, अवशिष्ट तेरह कन्याएँ विवाहपद्धति से कश्यप ऋषि को सौंप दीं। कश्यप जी ने उन से अनेक प्रकार की सन्तानें उत्पन्न कीं।

धीरे–धीरे समग्र जगत् उन प्राणियों से व्याप्त हो गया। इस तरह भगवान् ब्रह्मा ने इस सम्पूर्ण जगत् का सर्जन किया।। ६६–६७।।

ब्रह्मा एवं प्रकृति देवी का संवाद

तं प्राह प्रकृतिर्देवी भूत्वांशेन महामते!
सावित्री, यां द्विजाः सर्वे सन्ध्यात्रयमुपासते॥ ६८॥

प्रकृति देवी ने ब्रह्मा से कहा–''हे महामते! मेरे ही अंश से सावित्री उद्भूत हुई थीं, जिसकी कि ब्राह्मणजन तीनों सन्ध्याओं में उपासना करते हैं।। ६८।।

तथांशेन समुत्पन्ना लक्ष्मीश्चापि सरस्वती।
त्रिजगत्पालकं विष्णुं पतिं प्राप स्वलीलया॥ ६९॥

तथा मेरे ही अंश से उत्पन्न सरस्वती और लक्ष्मी ने तीनों लोकों के पालक विष्णु को अपनी इच्छा से पतिरूप में वरण किया॥ ६९॥

भवन्तौ विषयासक्तौ ब्रह्मविष्णू बभूवतुः।
शिवोऽभूत्परमो योगी साक्षात्तां प्रकृतिं पराम्।
अन्विच्छन् पूर्णभावेन पत्नीं देवर्षिसत्तमः!॥ ७०॥

आप दोनों—ब्रह्मा एवं विष्णु, विषयासक्त होकर शीघ्रता कर गये। परन्तु देवश्रेष्ठ शिव परम (उत्कृष्ट) योग द्वारा उस परा प्रकृति देवी को अपने लिये पूर्णतः पत्नीभाव में लाने के लिये कठोर तपःसाधना करते रहे॥ ७०॥

तथा तपस्यतस्तस्य शम्भोः प्रकृतिरुत्तमा।
प्रसन्ना वचनं प्राह प्रत्यक्षं जगदम्बिका॥ ७१॥

इस प्रकार कठोर तपस्या में संलग्न उन महादेव से प्रसन्न होकर स्वयं जगन्माता भगवती प्रकृति देवी ने ये वचन कहे—॥ ७१॥

प्रकृति०— **"किं तेऽभिलषितं शम्भो वरं तद्वरयस्व मे।**
दास्यामि परमप्रीत्या तपसा समुपासिता"॥ ७२॥

प्रकृति— "हे शम्भो! तुम्हारी हार्दिक इच्छा क्या है? उसे तुम मुझसे कहो, मैं तुम्हें वह सब कुछ प्रदान करूँगी; क्योंकि मैं तुम्हारी इस कठोर तपस्या से अत्यधिक प्रभावित हूँ"॥ ७२॥

शिव०— **"सा पूर्वं प्रकृतिः शुद्धा यस्याः पञ्च वराङ्गनाः।**
समवाप्स्यसि चास्माँस्तान् ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्॥ ७३॥

शिव— "प्राचीन काल में भगवती प्रकृति शुद्ध (पूर्ण) थीं। आगे चलकर उन्हीं के अंश से पाँच श्रेष्ठ स्त्रियों की सृष्टि हुई। वे पाँचों ही हम तीनों देवताओं ब्रह्मा, विष्णु और मुझे मिलने की बात थी॥ ७३॥

तत्र प्राप्तासि सावित्री भूत्वांशेन विधातरम्।
तथा विष्णुं निजांशेन भूत्वा लक्ष्मीः सरस्वती॥ ७४॥

वहाँ आपके अंश से उद्भूत सावित्री देवी ब्रह्मा को पत्नी रूप से मिल गयी तथा आपके ही अंश से उद्भूत सरस्वती और लक्ष्मी विष्णु को प्राप्त हो गयी॥ ७४॥

किन्तु मां परमा पूर्णा प्रकृतिः स्वयमेव हि।
त्वमेहि जन्म सम्प्राप्य कुत्रचिन्निजलीलया"॥ ७५॥

किन्तु मुझे तो आप पूर्णा प्रकृति के ही स्वयं मिलने की बात थी, जो कि कहीं स्वेच्छा से जन्म लेकर मुझे पतिरूप में वरण करती"॥ ७५॥

प्रकृति०— ''पूर्णा प्रकृतिरेवाहं भविष्ये तव गेहिनी।
सम्भूय मायया चारुदेहा दक्षप्रजापतेः॥ ७६॥

प्रकृति— ''मैं पूर्णा प्रकृति के रूप में ही तुम्हारी धर्मपत्नी बनूँगी; जब मैं दक्ष प्रजापति के घर में अपनी इच्छा से सुन्दर कन्या के रूप में जन्म लूँगी।। ७६।।

यदा देहाभिमानेन भवष्यिति मयि त्वयि।
अनादरस्तु दक्षस्य तदांशेन विमोह्य तम्॥ ७७॥
माययैव गमिष्यामि भूयः स्वस्थानमुत्तमम्।
तदा त्वया मे विच्छेदो भविष्यति महेश्वर!॥ ७८॥

वहाँ जब देहाभिमान के कारण, दक्ष प्रजापति द्वारा तुम्हारा और मेरा अपमान होगा। तब अपने अंश से उसे विमुग्ध कर अपनी माया द्वारा स्वस्थान को पुनः लौट जाऊँगी। हे महेश्वर! तब मेरा तुम्हारा सम्बन्ध विच्छिन्न होगा।। ७७-७८।।

तदा त्वमपि कुत्रापि नैव स्थास्यसि मां विना।
एवं हि परमा प्रीतिरावयोः सम्भविष्यति''॥ ७९॥

उस समय तुम्हारा चित्त भी इतना चञ्चल हो जायगा कि तुम मेरे विना कहीं भी स्थिर न रह पाओगे। इसी तरह तुम्हारी और मेरी प्रीति स्थायी हो पायगी''।। ७९।।

श्रीमहादेव०—इत्युक्त्वा सा महेशानं प्रकृतिः परमेश्वरी।
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ हरः प्रीतमना अ भूत्॥ ८०॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे सूतशौनकसंवादे सृष्टिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

महादेव बोले— हे मुनिश्रेष्ठ! वह परमेश्वरी प्रकृति देवी महेश्वर को ये वचन कहकर अन्तर्हित हो गयी। भगवान् शङ्कर भी देवी के उन वचनों को सुनकर अतीव प्रसन्न हुए।। ८०।।

श्री महाभागवत उपपुराण में
सूत-शौनकसंवाद के रूप में सृष्टिवर्णन नामक
तृतीय अध्याय समाप्त।।

चतुर्थ अध्याय

[सती-विवाहवर्णन]

श्रीमहादेव०— **अथैकदा जगत्स्रष्टा प्राह दक्षं प्रजापतिम्।**
हर्षयन् शृणु पुत्र! त्वं वक्ष्ये तव हितं वचः ॥ १ ॥

श्रीमहादेव जी– एक समय जगत्स्रष्टा ब्रह्मा दक्ष प्रजापति को प्रमुदित करते हुए परामर्श देने लगे–"हे पुत्र! सुनो, मैं तुम्हें तुम्हारे हित की बात कह रहा हूँ।। १ ।।

"प्रकृतिः परमा पूर्णा शम्भुनाराधिता स्वयम्।
याचिता वनिताभावं तथेत्यङ्गीकृतं तया॥ २ ॥

वह यह है–पूर्णा परा प्रकृति की स्वयं शङ्कर ने अपनी पत्नी बनाने के लिये आराधना की थी। उसकी आराधना से प्रसन्न होकर प्रकृति ने भी उन की पत्नी बनना स्वीकार किया था।। २ ।।

तस्मादवश्यं कुत्रापि समुत्पन्ना महेश्वरी।
पतिमाप्स्यति सा नूनं तत्र मे नास्ति संशयः ॥ ३ ॥

अतः वह महेश्वरी अवश्य ही कहीं न कहीं उत्पन्न होंगी और इस शम्भु को अपना पति बनायँगी–इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।। ३ ।।

सा यथा त्वत्सुता भूत्वा हरपत्नी भविष्यति।
तथा प्रार्थय सद्भक्त्या महोग्रतपसा च ताम्॥ ४ ॥

अब ऐसी प्रार्थना करो कि जिससे वह महेश्वरी तुम्हारी पुत्री बनकर शम्भु को अपने पतिभाव में वरण करे। तुम उग्र तपस्या और भक्ति द्वारा उन्हें प्रसन्न कर इस कार्य के लिये सन्नद्ध करो।। ४ ।।

सा यस्य तनया लोके सम्भविष्यति भाग्यतः।
सफलं जीवनं तस्य धन्यास्तत्पितरोऽपि च॥ ५ ॥

सौभाग्य से वह महेश्वरी इस लोक में जिसकी पुत्री बनकर जन्म लेगी उसका जीवन सफल हो जायगा और उसका कुल भी धन्य कहलायगा।। ५ ।।

तस्मादत्र समुद्भूतां मायां तां जगदम्बिकाम्।
पुत्रीं प्राप्य जगद्वन्द्यां स्वजन्म सफलं कुरु॥ ६ ॥

अतः उस जगन्माता माया को तुम अपने घर में जन्म लेने के लिये

सहमत करो। उस जगद्वन्द्या महेश्वरी को अपनी पुत्री के रूप में प्राप्त कर तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा''।। ६ ।।

दक्ष०— ''एवमेव पितर्नूनं यतिष्ये तव शासनात्।
यथा सा मत्सुता साक्षात्प्रकृतिः सम्भविष्यति''॥ ७॥

दक्ष— ''आप उचित कह रहे हैं, पिता! आप के आदेश का पालन करते हुए मैं यह प्रयत्न करूँगा कि वे प्रकृति महेश्वरी मेरे घर में पुत्रीरूप से उत्पन्न हों''।। ७।।

श्रीमहादेव०— **इत्युक्त्वा वेधसं दक्षः प्रजापतिरतिद्रुतम्।**
क्षीरोदतीरमासाद्य समाराधयदम्बिकाम्॥ ८॥

महादेव— ऐसा कहकर, वह दक्ष प्रजापति शीघ्र ही क्षीर समुद्रतट पर पहुँच कर अम्बिका की आराधना में तत्पर हो गया।। ८।।

दिव्यवर्षसहस्राणां निनाय त्रितयं मुने!
आराधयन् भगवतीमुपवासादिभिः परैः॥ ९॥

वहाँ उस दक्ष प्रजापति ने तीन हजार दिव्य वर्ष तक उपवासादि व्रतों के सहारे कठोर तपस्या करते हुए जगदम्बिका की आराधना की।। ९।।

तथा तपस्यतः सापि प्रत्यक्षमभवच्छिवा।
स्निग्धाञ्जननिभा चारुवरबाहुचतुष्टयैः॥ १०॥

अन्त में, वह जगन्माता उस तरह कठोर तपस्या करते हुए दक्ष प्रजापति के सम्मुख साक्षात् प्रकट हुईं। उनका रूप कृष्णवर्ण था और उनको सुन्दर चार भुजाएँ थीं।। १०।।

खड्गाम्बुजाभयकरा नीलोत्पलरसेक्षणा।
सुचारुदशना चारुमुण्डमालाविभूषिता॥ ११॥

उनके एक हाथ में तलवार थी, और एक हाथ में कमल का फूल तथा एक हाथ अभय मुद्रा में दिखायी दे रहा था। उनके नेत्र नीले कमल के समान सुन्दर थे, उनकी दन्तपक्ति दर्शनीय थीं, तथा वे सुन्दर मुण्डमालाओं से अलङ्कृत थीं।। ११।।

दिगम्बरा मुक्तकेशी मणिजालविभूषिता।
सिंहपृष्ठे समारूढा मध्याह्नार्कशतप्रभा॥ १२॥

वे निर्वस्त्र थीं, उनके केश खुले हुए थे, वे मणिरत्नसमूह से विभूषित थीं। वे सिंह की पीठ पर विराजमान थीं। मध्याह्न के सैकड़ों सूर्यों के समान उनका शरीर देदीप्यमान था।। १२।।

सा प्राह दक्षं —"किं वत्स मत्तः प्रार्थयसि द्रुतम्।
तत्प्रीत्याहं प्रदास्यामि तव भावात् प्रजापते!"॥ १३॥

वह दक्ष प्रजापति से यों बोलीं—"वत्स! तुम मुझसे क्या माँगना चाहते हो, शीघ्र बताओ! प्रजापते! मैं तुम्हारी प्रसन्नता हेतु तुम्हारी कोई भी मनःकामना पूर्ण करूँगी"।। १३।।

दक्ष०— **"यदि प्रसन्ना मातस्त्वं मयि दासे तवानघे।**
तदा मम सुता भूत्वा जन्म प्राप्नुहि मद्गृहे"॥ १४॥

दक्ष— "माता! यदि आप अपने इस निष्पाप दास पर वस्तुतः प्रसन्न हैं तो आप मेरी पुत्री बनकर मेरे घर में उत्पन्न हों"।। १४।।

श्रीदेवी०— **"शम्भुना प्रार्थिता पत्नीकामेनाहं स्वयं पुरा।**
सा मन्ये कुत्रचिज्जन्मेदानीमङ्गीकृतं पुरा॥ १५॥

श्रीदेवी— "बीते समय में कभी भगवान् शङ्कर ने मुझको अपनी पत्नी के रूप में चाहा था। उस समय मैंने उनको वचन दिया था कि मैं आगे चलकर संसार में जन्म लूँगी।। १५।।

तज्जन्म प्राप्य ते गेहे भविष्ये हरगेहिनी।
तपसानेन तुष्टाहं पूर्णैव प्रकृतिः स्वयम्॥ १६॥

मैं अब वह जन्म तुम्हारे घर में लूँगी और वहीं से भगवान् शङ्कर की पत्नी बनूँगी। मैं पूर्ण प्रकृति हूँ। तुम्हारी तपस्या से मैं सन्तुष्ट हूँ।। १६।।

लसत्कनकगौराङ्गी भविष्ये तव नन्दिनी।
चार्वङ्गी सौम्यरूपा च स्थास्येऽहं तावदेव हि॥ १७॥
यावत्ते तपसः पुण्यं क्षीणत्वं नाभ्युपैति वै।
क्षीणे तु तपसः पुण्ये मयि मन्दादरो भवान्॥ १८॥

तुम्हारी पुत्री के रूप में मेरा वर्ण चमकते सोने की तरह का होगा। मेरा समग्र शरीर सुन्दर होगा। मेरा स्वभाव सरल होगा। परन्तु मैं तुम्हारे घर में तभी तक ठहरूँगी जब तक कि तुम्हारा पुण्य क्षीण न हो और उसके प्रभाव से तुम मेरा अनादर न करने लगो।। १७–१८।।

भविष्यति तदैवाहं पुनरेतादृशीं तनुम्।
धृत्वा तव पुरो गत्वा गमिष्ये स्वीयमालयम्।
विमोह्य मायया सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥ १९॥

तब मैं पुनः अपनी यही आकृति धारण कर, तुम्हारे सामने आकर,

सम्पूर्ण चराचर जगत् को अपनी माया से मुग्ध करती हुई अपने स्थायी धाम चली जाऊँगी"।। १९।।

श्रीमहादेव०—इत्युक्त्वा त्रिजगन्माता दक्षं प्रकृतिरुत्तमा।
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ! सहसा तस्य पश्यतः॥ २०॥
दक्षोऽपि स्वपुरीं गत्वा वेधसे तं न्यवेदयत्।
वरो यः स जगद्धात्र्या दत्तः प्रीत्या प्रजापतिः॥ २१॥

महादेव– हे मुनिश्रेष्ठ! वह तीनों लोकों की माता उत्तमा प्रकृति देवी दक्ष प्रजापति को यह उत्तर देकर उन के देखते ही देखते वहीं अन्तर्हित हो गयी। उधर दक्ष प्रजापति ने भी अपनी पुरी में लौटकर ब्रह्मा को वह समग्र घटना सुनायी कि कैसे उस जगन्माता ने मुझ दक्ष प्रजापति को मुँह माँगा वर दिया।। २०–२१।।

सती का जन्म

अथ सा प्रकृतिः पूर्णा स्वयमाद्या सनातनी।
प्रपेदे जन्मना दक्षपत्नीं सर्वगुणाश्रयाम्॥ २२॥
ततः प्रसूतिः सुषुवे कन्यामेकां शुभेऽहनि॥ २३॥

तब आद्या एवं सनातनी (अविनाशिनी) पूर्णा प्रकृति ने स्वयं सर्वगुणालंकृत दक्षपत्नी को अपने जन्म से सम्पृक्त किया। तब उस प्रसूति (दक्षपत्नी) ने किसी शुभ दिन में एक कन्या को जन्म दिया।। २२–२३।।

तामेव प्रकृतिं पूर्णां गौराङ्गीं दीर्घलोचनाम्।
शशाङ्ककोटितुल्याभां फुल्लेन्दीवरलोचनाम्।
अष्टाभिर्बाहुवल्लीभिर्भ्राजमानां शुभाननाम्॥ २४॥

वह कन्या और कोई नहीं, अपितु पूर्णा प्रकृति भगवती स्वयं थी। उसके शरीर का वर्ण गौर था, वह विशाल नेत्रों वाली थी। उनके शरीर की आभा करोड़ों चन्द्रमाओं के समान थी। और आँखें खिले कमल फूल की तरह दर्शनीय थीं उनका शरीर आठ भुजाओं से युक्त था, मुख पवित्र था।। २४।।

तथाभूत् सर्वतः पुष्पवृष्टिर्दुन्दुभयस्तथा।
आकाशे शतशो नेदुर्दिशश्चासन् सुनिर्मलाः।

उनके जन्म के समय हर्ष प्रकट करने के लिये पुष्पवृष्टि होने लगी तथा आकाश में स्थान–स्थान पर सैकड़ों नगाड़े बजने लगे।। २५।।

दक्षः श्रुत्वा समागत्य दृष्ट्वा तां तनयां तदा।
प्रहृष्टमानसोऽकार्षीन्महोत्सवमतीव सः॥ २६॥
सतीति चाकरोन्नाम दशमेऽहनि बन्धुभिः॥ २७॥

सभी दिशाएँ स्वच्छ (निर्मल) हो गयीं। दक्ष ने जब यह शुभ समाचार सुना तो उन्होंने भी वहाँ आकर तथा अपनी कन्या को देखकर प्रसन्न मन से एक महोत्सव का आयोजन किया। और दसवें दिन पारिवारिक जनों को एकत्र कर उसका 'सती'—यह नाम रखा।। २६–२७।।

ववृधे सा प्रतिदिनं चारुतां च समादधे।
वर्षासु स्वर्णदीवेन्दुज्योत्स्नेव शरदि स्वयम्॥ २८॥

वह कन्या ज्यों ज्यों बढ़ती गयी त्यों त्यों उसके शरीर की सुन्दरता भी बढ़ने लगी। वह वर्षा में गङ्गा या शरदृतु में चन्द्रमा की चाँदनी की तरह स्वयं बढ़ने लगी।। २८।।

सती–स्वयम्वर

अथैकदा विलोक्यैव तां दक्षो रुचिराननाम्।
विवाहार्हां विवाहार्थं चिन्तयामास चेतसा॥ २९॥

यों, एक समय आया कि दक्ष ने उस कन्या के मुखकमल की शोभा देखकर निश्चय किया कि यह कन्या तो विवाहयोग्य हो गयी है। तब दक्ष ने अपने मन में कन्या के विवाह हेतु यों चिन्तन प्रारम्भ किया।। २९।।

कन्येयं क्व प्रदेया वा प्रकृतिः परमा च या।
अनया हि वरस्तस्मै तदैव हि प्रतिश्रुतः॥ ३०॥

कि यह कन्या किसे दी जाय! उस समय उसके ध्यान में आया कि ये तो साक्षात् भगवती है, और इन्होंने इस जन्म में स्वयं किसी की पत्नी बनने का सङ्कल्प कर रखा है।। ३०।।

तस्मात्तदन्यथा नैव भविष्यति कथञ्चन।
कृतेऽपि बहुयत्नेऽद्य मया सर्वात्मनापि च॥ ३१॥

परन्तु हम कितना भी प्रयत्न सब तरह से कर लें तो भी इनके उस सङ्कल्प को हम अन्यथा कैसे कर सकते हैं!।। ३१।।

यस्यांशसम्भवा रुद्रा ममाज्ञावशवर्तिनः।
तमाहूय सुरूपेयं दातव्या सर्वथा नहि॥ ३२॥

जिस शिव के अंश से ये रुद्र उत्पन्न हैं, वे तो मेरे आज्ञाकारी

(वशवर्ती=अधीन) हैं। अतः उसे ससम्मान बुलाकर तो मैं अपनी इस सुन्दर कन्या को किसी भी दशा में नहीं दे सकता।। ३२।।

आहूय त्रिदशश्रेष्ठान् दैत्यगन्धर्वकिन्नरान्।
शिवशून्यां सभां कृत्वा तमनाहूय शूलिनम्॥ ३३॥

तब, उस दक्ष प्रजापति ने ऐसी सभा के आयोजन का निश्चय किया जिसमें सभी प्रमुख देवताओं, दैत्यों, गन्धर्वों और किन्नरों को तो बुलाया जाय परन्तु त्रिशूलधारी शिव को न बुलाया जाय, जिससे उस सभा में शिव न आ पावें।। ३३।।

स्वयंवरमुदे यागः कर्तव्यः सर्वथा मया।
तत्र तत्तु भवेदेव यद्विधेर्मनसि स्थितम्॥ ३४॥

उस स्वयम्वर के प्रसङ्ग में मुझे यज्ञ भी करना होगा। उस समय जो कुछ विधाता ने अपने मन में सोच रखा है वही होगा।। ३४।।

इति निश्चित्य सुमनाः समाहूय सुरासुरान्।
विना शिवं सभां चक्रे तदा सत्याः स्वयंवरे॥ ३५॥

ऐसा निश्चय कर उस सती के स्वयम्वर-प्रसङ्ग में प्रसन्न मन से दक्ष प्रजापति ने देव और दैत्यों को बुलाकर ऐसी सभा का आयोजन किया जिसमें शिव को नहीं बुलाया गया।। ३५।।

तस्य चित्रमये हर्म्ये सापि चित्रमयी सभा।
देवदैत्यमुनीन्द्राणां कान्त्यातीव व्यराजत॥ ३६॥

उस दक्ष प्रजापति के विविधतायुक्त सुन्दर भवन में आयोजित वह विविधतामयी सभा भी वहाँ एकत्र श्रेष्ठ देवों, दैत्यों और मुनीन्द्रों की कान्ति से अत्यधिक शोभासम्पन्न हो गयी।। ३६।।

तेजसा सूर्यसङ्काशा कान्त्या चन्द्रसमा तथा।
दिव्यमालाम्बरधराः किरीटकनकोज्ज्वलाः॥ ३७॥

वहाँ उपस्थित उन देवताओं का तेज सूर्य के समान एवं कान्ति चन्द्रमा के समान थी। वे दिव्य वस्त्र एवं माला धारण किये हुए थे। उनके शिर पर सोने के मुकुट शोभायमान थे।। ३७।।

विरेजुस्त्रिदशेन्द्राश्च सभायां मुनिसत्तम!
तेषां रथाश्वनागेन्द्रैर्मणिहेमपरिष्कृतैः॥ ३८॥

हे मुनिवर! ऐसे देवताप्रमुख उस सभा में विराजमान थे जिनके रथ, घोड़े और हाथी मणियों, मोतियों एवं सुवर्ण से अलङ्कृत थे।। ३८।।

ध्वजैश्छत्रैः पताकाभिर्नानावर्णैः समन्ततः।
सर्वैः परिष्कृता दक्षपुरी कान्त्या व्यराजत॥ ३९॥

उन पर नाना वर्ण की ध्वजाएँ, छत्र एवं पताकाएँ चारों तरफ लगी हुई थीं। इन सबसे वह दक्षपुरी अत्यन्त शोभायमान थी॥ ३९॥

भेरीमृदङ्गपणवैः शतशोऽथ सहस्रशः।
विनेदुस्तेन शब्देन सर्वतः पूरितं नभः॥ ४०॥

उस विशेष अवसर पर भेरी (नगाड़ा), मृदङ्ग एवं पणव (ढोल) आदि वाद्य इतनी अधिक मात्रा में बज रहे थे कि उनकी ध्वनि समग्र आकाश में व्याप्त हो गयी॥ ४०॥

गानं सुललितं चक्रुर्गन्धर्वास्तत्र संसदि।
ननर्तुश्चाप्सरोमुख्याः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ४१॥

उस सभा में गन्धर्वों ने अपने सुललित गायन से सदस्यों का मन मोह लिया। इसी तरह सैकड़ों हजारों अप्सराओं ने अपने नृत्य से सबको प्रमुदित कर दिया॥ ४१॥

अथ प्रजापतिर्दक्षः काले प्राप्ते सुलक्षणे।
आनयामास तां कन्यां सतीं त्रैलोक्यसुन्दरीम्॥ ४२॥

तब प्रजापति दक्ष ने, समय आने पर, शुभ मुहूर्त में उस त्रैलोक्यसुन्दरी अपनी कन्या सती को उस सभा में बुलवाया॥ ४२॥

तत्रागता सती चारुकान्त्या परमया मुदा।
विबभौ मुनिशार्दूल! सौन्दर्यप्रतिमैव सा॥ ४३॥

हे मुनिशार्दूल! वहाँ आने पर, वह परम सुन्दरी सती अपनी कान्ति से इतनी शोभित थी मानों कोई अवर्णनीय सुन्दरता की मूर्ति हो॥ ४३॥

एतस्मिन्नेव काले तु महेशः समुपागतः।
स्थितोऽन्तरिक्षे वृषभोपरि सर्वपरो यतः॥ ४४॥

इसी अवसर पर, महादेव भी उस सभा की तरफ आ निकले। उन्होंने आकाश में ही सबसे ऊपर अपने वृषभ पर बैठे बैठे उस सभा का अवलोकन किया॥ ४४॥

अथालोक्य सभां तां च शिवेन रहितां तदा।
प्रजापतिरुवाचेदं सतीं परमसुन्दरीम्॥ ४५॥

वहाँ उस सभा को शिवविहीन देखकर प्रजापति दक्ष ने उस परम सुन्दरी सती को यह कहा॥ ४५॥

"मातरेते समायाताः सुरासुरगणास्तथा।
ऋषयश्च महात्मान एतेषु गुणशालिनम्॥ ४६॥
वृणु त्वं मालया चारुरूपिणं यत्र ते रुचिः"॥ ४७॥

"पुत्रि! ये एक से एक सुन्दर देवता, दैत्य, ऋषि और मुनि एकत्र हैं। इनमें से तुम जिसको अपने अनुरूप गुणसम्पन्न समझो और जिसमें तुम्हारी रुचि हो उस सुन्दर व्यक्ति को यह माला पहना कर उसे अपने पति के रूप में वरण कर लो"॥ ४६–४७॥

इत्युक्ता तेन सा देवी सती प्रकृतिरूपिणी।
शिवाय नम उच्चार्य मालां भूमौ समर्पयत्।
सत्या दत्तां च तां मालां दधार शिरसा हरः॥ ४८॥

यह कहे जाने पर उस प्रकृतिरूपिणी सती देवी ने "शिव को प्रणाम है"—कहते हुए वरमाला को भूमि पर रख दिया। सती द्वारा चढ़ायी गयी उस माला को भगवान् शङ्कर ने अपने शिर से उठा लिया॥ ४७–४८॥

आविर्भूय ततः स्थानाद्दिव्यरूपधरस्तदा।
रत्नशोभितसर्वाङ्गः शशिकोटिसमप्रभः॥ ४९॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः।
प्रफुल्लपङ्कजप्रख्यनयनत्रितयोज्ज्वलः ॥ ५०॥
तां मालां स समादाय सत्या दत्तां सदाशिवः।
सहसान्तर्दधे हृष्टः सर्वदेवस्य पश्यतः॥ ५१॥

यों, भगवान् सदाशिव अकस्मात् ही उस सभा में प्रकट हुए, जिनका शरीर दिव्य रूपधारी था, जिनके सभी अङ्ग रत्नमय अलङ्करणों से शोभित थे, जिनकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओं के समान थी। जो दिव्य मालाओं एवं वस्त्रों से शोभित थे, जिन पर सर्वत्र चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का लेपन था, जिनके तीनों नेत्र विकसित कमलपुष्प की तरह शोभित हो रहे थे। सती द्वारा चढ़ायी गयी उस माला को लेकर सभी देवताओं के देखते देखते, प्रसन्न मन से वहीं अन्तर्हित हो गये॥ ४९–५१॥

तस्मै सती ददौ मालां तेन दक्षप्रजापतिः।
तस्यां मन्दादरः किञ्चिद् बभूव मुनिपुङ्गव॥ ५२॥

हे मुनिपुङ्गव! क्योंकि सती ने उस (भगवान् शङ्कर) को वह वरमाला दे दी अतः दक्ष प्रजापति के मन में सती के प्रति आदर कुछ कम हो गया॥ ५२॥

अथ ब्रह्माब्रवीद्वाक्यं दक्षं सर्वप्रजापतिम्।
सहान्यैर्मानसैः पुत्रैर्मरीच्यादिमुनीश्वरैः॥ ५३॥

तब पितामह ब्रह्मा ने उस दक्ष प्रजापति को यह बात कही। इसमें ब्रह्मा के अन्य मानसपुत्र मरीचि आदि मुनीश्वरों की भी सहमति रही।। ५३।।

ब्रह्मा०— **"कन्या तवेयं देवेशं शिवं वृतवती वरम्।**
तमाहूय विधानेन सुतां त्वं देहि यत्नतः"॥ ५४॥

ब्रह्मा—"हे प्रजापति! तुम्हारी इस कन्या ने भरी सभा में देवाधिदेव शिव का वरण किया है। अतः तुम उन्हें ससम्मान बुलाकर इस कन्या को यथाविधि प्रदान करो"।। ५४।।

सती–विवाह

इति तस्य वचः श्रुत्वा स्मृत्वा प्रकृतिभाषितम्।
समानीय महेशानं तस्मै दक्षो ददौ सतीम्॥ ५५॥

ब्रह्मा के ये वचन सुनकर दक्ष प्रजापति को प्रकृति भगवती द्वारा पहले कही गयी बात भी स्मरण हो आयी। अतः उसने भगवान् शङ्कर को सम्मानपूर्वक बुलाकर उन्हें कन्यादान कर दिया।। ५५।।

सोऽप्युद्वाहविधानेन पाणिं जग्राह हर्षितः।
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च नारदाद्या महर्षयः॥ ५६॥
तुष्टुवुर्वेदवाक्यैस्तु शुश्रूषू तौ सतीशिवौ।
ववर्षुः पुष्पवृष्टिं च सर्व एव दिवौकसः॥ ५७॥

भगवान् शङ्कर ने भी प्रसन्न मन से शास्त्रसम्मत विवाहविधि द्वारा उस सती का प्राणिग्रहण किया। इस बात से ब्रह्मा, विष्णु एवं नारद आदि ऋषि सन्तुष्ट हुए। उन सती और शिव को वेदों द्वारा की गयी उनकी स्तुति सुनायी। इस अवसर पर सभी देवताओं ने पुष्पवृष्टि की।। ५६–५७।।

नेदुर्दुन्दुभयश्चापि शतशोऽथ सहस्रशः।
सर्वे प्रहृष्टा अभवन् देवगन्धर्वकिन्नराः॥ ५८॥

इस हर्ष के अवसर पर, सब तरफ सैकड़ों हजारों नगाड़े बजने लगे तथा देवता, गन्धर्व एवं किन्नर सभी इस घटना से प्रसन्न दिखायी देने लगे।। ५८।।

दक्षस्तून्मादचित्तोऽभूत् सतीं चापि व्यगर्हयत्।
चेतसा वीक्ष्य विश्वेशं जटाभस्मविभूषितम्॥ ५९॥

परन्तु दक्ष प्रजापति इस घटना के बाद विक्षिप्त (उन्मादचित्त) सा हो गया। उसने इस घटना के लिये अपनी कन्या को दोषी ठहराना आरम्भ कर दिया; क्योंकि उसको शङ्कर का वास्तविक जटा–भस्म वाला रूप रुचिकर (अच्छा) नहीं लगा।। ५९ ।।

ततः सतीं समादाय सर्वलोकैकसुन्दरीम्।
महेशः प्रययौ प्रस्थं हिमाद्रेरतिशोभनम्॥ ६०॥

तब शङ्कर सर्वलोक में विशिष्ट सुन्दर सती को साथ लेकर हिमालय के अतिरमणीय शिखर पर सौभाग्यरात्रि मनाने चले गये।। ६९ ।।

हरेण सार्धं यातायां सत्यां दक्षप्रजापतेः।
दिव्यज्ञानं समभवद्विलुप्तं मुनिपुङ्गव!॥ ६१॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे
शिवनारदसंवादे सतीविवाहवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

हे मुनिपुङ्गव! उस सती ने ज्यों ही भगवान् शङ्कर के साथ अपने मातृगृह से प्रस्थान किया उसी समय दक्ष प्रजापति का स्वभावतः प्राप्त दिव्यज्ञान भी विलुप्त हो गया।। ६१ ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में शिवनारदसंवाद
के अन्तर्गत 'सतीविवाहवर्णन' नाम
चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

पञ्चम अध्याय

[दक्षप्रजापति-विषादवर्णन]

शिवनिन्दक दक्ष को दधीचि का सत्परामर्श

श्रीमहादेव०— **ततो रुरोद दुःखार्तः क्षीणपुण्यः प्रजापतिः।**
विनिन्दन् शङ्करं देवं तथा दाक्षायणीमपि॥ १॥

श्रीमहादेव— सती के चले जाने के बाद, दक्ष प्रजापति, जिसके पुण्य क्षीण हो चुके थे, शङ्कर एवं सती (दाक्षायणी) की निन्दा करते हुए रुदन (विलाप) करने लगा।। १।।

तं दृष्ट्वा दुःखसन्तप्तहृदयं मुनिपुङ्गव!
दधीचिस्तमुवाचेदं ज्ञानी शिवपरायणः॥ २॥

हे मुनिपुङ्गव! उस दक्ष को इस तरह दुःखी एवं सन्तप्तहृदय देखकर ज्ञानी एवं शिवभक्तिपरायण दधीचि ने यों समझाया।। २।।

दधीचि०— **''किं रोदिषि सतीं मोहादज्ञात्वा परमं शिवम्।**
सती च बहुभाग्येन जाता तव गृहे सुता॥ ३॥

दधीचि— ''हे दक्ष प्रजापति! तुम मोह के कारण सती तथा शङ्कर की वास्तविकता नहीं जानते। यह तो तुम्हारा पुण्यमय भाग्य था कि सती ने तुम्हारे घर में जन्म लिया।। ३।।

सतीयमाद्या प्रकृतिः स्वयमेवाशरीरिणी।
शिवः परः पुमान् साक्षादत्र मा संशयं कुरु॥ ४॥

सती ही आद्या प्रकृति है, यह तो अशरीरी अर्थात् जन्म-मरण से रहित है; उसी तरह शिव भी साक्षात् आदिपुरुष हैं। इन दोनों के विषय में तुम्हें अन्यथा सन्देह नहीं करना चाहिये।। ४।।

उग्रैरपि तपोभिर्या ब्रह्मेन्द्रादिसुरासुरैः।
दृश्यते न कदाचित्तां प्राप्य पुत्रीं प्रजापते!॥ ५॥

प्रजापते! ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता एवं दैत्य जिसे उग्र तप द्वारा भी प्राप्त नहीं कर पाते उसे तुमने पुत्री के रूप में प्राप्त कर लिया।। ५।।

अज्ञात्वा कुरुषे निन्दां कथं मोहेन तां सतीम्।
तयैव वञ्चितो नूनं महामोहस्वरूपया''॥ ६॥

अब, किस मोह में पड़कर, तुम उनके विषय में कुछ भी न जानते हुए भी उनकी निन्दा कर रहे हो! ज्ञात होता है कि तुम उन महामोहस्वरूपा देवी से बहुत अधिक धोखा खा रहे हो"।। ६ ।।

दक्ष०— "स चेत्परः पुमान् शम्भुरनादिर्जगदीश्वरः।

प्रेतभूमिप्रियः कस्माद्विरूपाक्षस्त्रिलोचनः।

भिक्षुको भस्मलिप्ताङ्गो भवेद्वापि कथं मुने॥ ७॥

दक्ष— "मुनिवर! मुझे यह बताइये कि यदि वे शङ्कर आदिपुरुष, अनादि एवं जगत् के स्वामी हैं तो उन्हें श्मशानभूमि क्यों प्रिय है? वह विरूपाक्ष क्यों है? तथा त्रिलोचन क्यों हैं? वे भिक्षावृत्ति क्यों स्वीकार किये हुए हैं? अपने समग्र शरीर में भस्म क्यों लपेटे रहते हैं?"।। ७ ।।

दधीचि०— **नित्यानन्दमयः पूर्णः स हि सर्वेश्वरेश्वरः"॥ ८॥**

समाश्रयन्ति तं ये वै नापि ते दुखभागिनः।

स भिक्षुर्भगवान् शम्भुरिति ते दुर्मतिः कथम्॥ ९॥

दधीचि— "भगवान् शङ्कर तो पूर्ण एवं नित्य आनन्दमय हैं, सभी ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। जो मनुष्य उनका आश्रय लेते हैं वे कभी दुःखभागी नहीं होते। ऐसे वे भगवान् शङ्कर 'भिक्षुक हैं'—यह विपरीत बुद्धि तुम्हें कैसे हो गयी?।। ८–९ ।।

ब्रह्माद्यैस्त्रिदशश्रेष्ठैर्योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।

यस्य तत्परमं रूपं लक्षितुं नैव शक्यते॥ १०॥

ब्रह्मा आदि देव प्रमुख तथा तत्त्वदर्शी योगी भी जिसका परम (वास्तविक) रूप नहीं देख सकते।। १० ।।

तमज्ञात्वा तथा शम्भुं विरूपं निन्दसे कथम्?

सर्वत्रगामी भगवान् सर्वस्थश्च सदाशिवः॥ ११॥

उन भगवान् शङ्कर के विषय में वास्तविकता जाने विना तुम उनकी निन्दा क्यों कर रहे हो? उन भगवान् सदाशिव की तो सर्वत्र गति है और वे सर्वत्र व्याप्त हैं।। ११ ।।

श्मशाने वा पुरे रम्ये विशेषो नास्य दृश्यते।

अपूर्वः शिवलोकः स विष्णुब्रह्मादिदुर्लभः॥ १२॥

उनके लिये श्मशान या कोई रमणीय नगर—दोनों में कोई भेद नहीं है। शिवलोक तो ऐसा अपूर्व है कि उसे पाना विष्णु एवं ब्रह्मा आदि के लिये भी दुर्लभ है।। १२ ।।

वैकुण्ठो ब्रह्मलोकश्च यस्य नैव कलासमः।
तथा स्वर्गेऽपि कैलासं पुरं देवसुदुर्लभम्॥ १३॥

वैकुण्ठ या ब्रह्मलोक उस शिवपुर के एक अंश (भाग) की तुलना भी नहीं कर सकते तथा स्वर्ग में रहने वाले देवताओं के लिये भी कैलास में वास कर पाना दुर्लभ ही समझिये।। १३।।

नानादेवसमाकीर्णं सन्तानकवनावृतम्।
स्वर्गाधिपपुरं यस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥ १४॥

जहाँ अनेक देवता रहते हैं, जहाँ कल्पवृक्षों की वनपंक्तियाँ खड़ी हैं—ऐसा देवराज इन्द्र का नगर भी उस शिवलोक के सोलहवें अंश की समानता नहीं कर सकता।। १४।।

मर्त्येऽपि रम्या नगरी पुरी वाराणसी परा।
मुक्तिक्षेत्रात्मिका चैव देवा ब्रह्मपुरोगमाः॥ १५॥
अपि मृत्युं समिच्छन्ति किं पुनर्मानवादयः।
एवं दिव्यालयस्तस्य महेशस्य परात्मनः॥ १६॥

इस मर्त्यलोक में भी एक रमणीय नगरी है, जिस का नाम वाराणसी है। वह परात्मक मुक्तिक्षेत्र है। जहाँ ब्रह्मा आदि देवता भी अपनी मृत्यु होना सौभाग्य मानते हैं, साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या! उस परमात्मा सदाशिव भगवान् शङ्कर का वह दिव्य वासस्थान इतना महिमामण्डित है।। १५–१६।।

विना श्मशानमावासो नास्तीति तव दुर्मतिः॥ १७॥

'श्मशान के अतिरिक्त उनका कोई अन्य वास नहीं है'— ऐसा मानना तुम्हारी मिथ्यादृष्टि ही है।। १७ ।।

सत्यमेवंविधं देवं त्रिलोकेशं सदाशिवम्।
कदाचिदपि मोहेन नैव निन्द्यात् सुरेश्वरम्॥ १८॥
सतीमपि महेशानीं साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणीम्।
बहुभाग्यवशाज्जातां पुत्रीभावेन ते गृहे''॥ १९॥

सचमुच ही ऐसा अपूर्व देवता तो, जो कि तीनों लोकों का स्वामी है, सदाशिवस्वरूप है अतः किसी व्यामोह में पड़कर ऐसे देवाधिदेव की निन्दा नहीं करनी चाहिये। न आद्या भगवती जो कि साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी हैं, उनकी निन्दा करनी चाहिये। अरे! तुम्हारे परम सौभाग्य के कारण ही उन भगवती ने तुम्हारे घर में जन्म लिया था''।। १८–१९।।

श्रीमहादेव०— एवमुक्तोऽपि बहुधा मुनिना तत्त्वदर्शिना।
न मेने परमेशानमसदाचारवर्जितम्।
प्रोवाच वचनैश्चापि गर्हयँस्तं मुहुर्मुहुः ॥ २० ॥

श्रीमहादेव— इस प्रकार उन तत्त्वदर्शी दधीचि मुनि द्वारा अत्यधिक समझाये जाने पर भी वह दक्ष प्रजापति नहीं माना और उन सदाचारी परमेश्वर भगवान् शङ्कर के विषय में निन्दात्मक कटुवचन ही बोलता रहा।। २०।।

रुरोदाक्षिप्य तनयां सतीं चापि स नारद!॥ २१ ॥

और हे नारद! अपनी पुत्री सती की निन्दा करता हुआ यों विलाप करता रहा—"हे वत्से! हे पुत्रि! हे सति! तूँ तो मुझे मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय थी।। २१।।

"हे वत्से! सति! हा पुत्रि! त्वं प्राणसदृशी मम।
विहाय मां क्व यासि त्वं क्षिप्त्वा शोकमहार्णवे ॥ २२ ॥

"तूँ मुझे छोड़कर, शोकसागर में डुबा कर कहाँ चली गयी? हे पुत्रि! तूँ तो मनोहर अङ्गों वाली है, तुझे तो मनोहर विस्तरों पर सोना चाहिये था।। २२।।

हा पुत्रि चारुसर्वाङ्गि महार्हशयनोचिते।
प्रेतभूमौ कथं स्थेयं त्वया पत्या विरूपिणा"!॥ २३ ॥

आज तूँ अपने कुरूप पति के साथ श्मशान भूमि में कैसे अपना समय बिता रही होगी?"।। २३।।

तच्छ्रुत्वा स पुनः प्राह दधीचिर्मुनिसत्तमः।
सान्त्वयन् प्रियवाक्येन पाणिना चक्षुषी मृजन्॥ २४॥

यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ दधीचि ने उस प्रजापति को प्रिय वचनों से पुनः सान्त्वना दी। तथा उसकी आँखों से निकले आँसू पोंछे।। २४।।

दधीचि०—

"प्रजापते ज्ञानवतां प्रवीर त्वं मूर्खवद्रोदिषि किं महात्मन्!
विज्ञाय देवेशमशेषतोऽपि छिन्नं न तेऽज्ञानमिदं तु चित्रम्॥ २५ ॥

दधीचि— "हे महात्मन्! प्रजापते! तुम तो ज्ञानियों में श्रेष्ठ हो। फिर मूर्ख (अज्ञानी) पुरुष की तरह क्यों रो रहे हो? यह कितने आश्चर्य की बात है कि तुम उस देवेश के विषय में सब कुछ जानते हो तो भी उनके विषय में तुम्हारा अज्ञान अभी तक विनष्ट नहीं हुआ—कैसी विचित्र बात है।। २५।।

क्षितौ जले वा गगने रसातले याः सन्ति नार्यः पुरुषास्तथा च ये।
तयोस्तु ते रूपमयाः समागता इत्येवमाकर्णय शुद्धचेतसा॥ २६॥

इस पृथ्वी पर, समुद्र में, आकाश में, पाताल में, जितने भी सुन्दर पुरुष या नारियाँ उस स्वयंवर सभा में आये थे वे सब उन दोनों के रूप थे। इस बात पर तुम शुद्ध हृदय से क्यों नहीं विचार करते!।। २६।।

नूनं महेशानमनादिपूरुषं स्वयं विजानीहि यथार्थतः परम्।
सतीं च विद्धि त्रिगुणां परात्परां चिदात्मरूपां प्रकृतिं प्रजापते!॥ २७॥

हे प्रजापति! तुम उस महेश्वर को यथार्थतः अनादि (प्रथम) पुरुष जान लो और इसी तरह त्रिगुणात्मिका परा भगवती तथा चिदात्मरूपा प्रकृति को विषय में भी अच्छी तरह समझ लो।। २७।।

सम्प्राप्य भाग्येन सतीं परात्परां विश्वेश्वरं तत्पतिभावतोऽपि।
न मन्यसे यत्खलु भाग्यमात्मनः प्रतप्यसे त्वं विधिनात्र वञ्चितः॥ २८॥

सौभाग्य से तुम परात् परा भगवती सती को अपनी पुत्री के रूप में तथा आदिविश्वेश्वर भगवान् को उनके पति के रूप में प्राप्त करके भी उन दोनों को कोई महत्त्व नहीं दे रहे हो—यह तुम्हारा दौर्भाग्य ही माना जायगा।। २८।।

सत्यं शृणुष्व शोकार्तः श्रेयःप्रेप्सुः प्रजापते!
प्रकृतिं पुरुषं चापि विजानीहि सतीं शिवम्''॥ २९॥

प्रजापते! तुम शोकमग्न भी हो, और अपने लिये सुख की कामना भी कर रहे हो तो मैं इस विषय में तुम्हें सत्य निष्कर्ष बता रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुन लो। हमारे शास्त्रों में जिन्हें प्रकृति एवं पुरुष कहा गया है ये दोनों यही सती एवं शिव हैं''।। २९।।

शिवनिन्दा में दक्ष द्वारा अपना हार्द प्रकट करना

दक्ष०— **''सत्यं वदसि मे पुत्रीं सतीं प्रकृतिरूपिणीम्।**
शिवं पुराणपुरुषं त्रिलोकेशं मुनीश्वर!॥ ३०॥

दक्ष— ''हे मुनीश्वर! आप प्रकृतिरूपिणी मेरी पुत्री सती के तथा त्रिलोकाधिपति पुराणपुरुष शिव के विषय में उचित ही कह रहे होंगे।। ३०।।

श्रुत्वापि न भवेद् बुद्धिस्तथापि परमार्थतः।
महेशान्नापरो देव इत्येवं मुनिसत्तम!॥ ३१॥

परन्तु आपका यह उचित कथन सुनकर भी हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे मन में यह बात बैठ नहीं रही है कि महेश से बढ़कर कोई श्रेष्ठ देवता नहीं है।। ३१।।

ऋषयः सत्यवचसः कथयन्ति च यद्यपि।
तथापि शम्भुः परम इत्येवं न मतिर्मम॥ ३२॥

यद्यपि ऋषिजन सत्य वचन ही बोलते हैं अतः उन पर श्रद्धा एवं विश्वास करना चाहिये; परन्तु 'यह शङ्कर सर्वोत्कृष्ट है'—ऐसा मैं मानने को सन्नद्ध नहीं हूँ।। ३२।।

शिवं च यदसूयामि तस्य मूलं निबोधय।
पूर्वं ब्रह्मा मम पिता यदा समसृजत्प्रजाः॥ ३३॥

इस शिव की मैं निन्दा कर रहा हूँ—इसमें मेरा मूल अभिप्राय पहले समझ लें। जब मेरे पिता ब्रह्मा जी ने इस सृष्टि की रचना की थी।। ३३।।

तदा प्रादुर्बभूवुश्च रुद्रा एकादशैव हि।
सर्वे ते तुल्यवपुषस्तथा भीमपराक्रमाः॥ ३४॥

तब वे एकादश रुद्र भी उत्पन्न हुए थे। ये समान शरीर तथा भयानक बल वाले थे।। ३४।।

भीमरूपा महात्मानः क्रोधरक्तविलोचनाः।
द्वीपिचर्माम्बरधरा जटामण्डितमस्तकाः॥ ३५॥

वे अतिसाहसी, भीमाकार थे तथा निरन्तर क्रोध से उनके नेत्र लाल रहते थे। वे चीते का चर्म पहनते थे, और शिर पर लम्बी लम्बी जटाएँ रखते थे।। ३५।।

ते ब्रह्मसृष्टिलोपार्थमुद्यताश्चाभवँस्ततः।
ततो निरीक्ष्य तान् ब्रह्मा सृष्टिलोपार्थमुद्यतान्॥ ३६॥

ये कभी इस ब्रह्मा द्वारा निर्मित सृष्टि को नष्ट करने को उद्यत हुए, तो ब्रह्मा जी ने उनको वैसा कार्य करने में उद्यत देखकर।। ३६।।

आज्ञया शमयामास मामप्युच्चैरुवाच ह।
'यथैते भीमकर्माणः प्रशमं यान्ति चैव हि।
तथा कुरु सुत क्षिप्रं वशे नय ममाज्ञया'॥ ३७॥

उन्होंने कठोर आदेश देकर इन्हें शान्त किया। साथ ही मुझे भी ऐसा निर्देश दिया कि वे प्रबल पराक्रमी रुद्र आगे ऐसा उपद्रव न करने पावें। मेरी आज्ञा से इन्हें वश में करो।। ३७।।

इत्येवं ब्रह्मवचनाद्भीतास्ते भीमविक्रमाः।
स्थिता मद्वशगाः सर्वे गतप्रश्रयविक्रमाः॥ ३८॥
तदारभ्य ममवशा इमे जाता महामुने!॥ ३९॥

यों ब्रह्मा जी के आदेश तथा मेरी आज्ञा के कारण ये रौद्रकर्मा रुद्र भयभीत होकर मेरे वश में रहने लगे। हे महामुने! तब से ये एकादश रुद्र अपना आश्रयस्थल एवं बल छोड़कर मेरे अधीन हो गये।। ३८–३९।।

यस्यांशसम्भवा एते रुद्रा भीमपराक्रमाः।
ममाज्ञावशगास्तस्य किं श्रेष्ठत्वं ममाग्रतः!॥ ४०॥

अब मैं पूछता हूँ कि जिसके अंश से सम्भूत ये एकादश रुद्र मेरे अधीन हैं तो इनका जन्मदाता मुझसे श्रेष्ठ कैसे होगा?।। ४०।।

सती मे यादृशी कन्या रूपेण च गुणेन च।
त्वयैव ज्ञायते सम्यक् किं तेऽन्यत् प्रवदाम्यहम्॥ ४१॥

मेरी पुत्री तो रूप और गुणों में जैसी है वह तो आप स्वयं जानते हैं। उसके विषय में मैं आप से अधिक क्या कहूँ!।। ४१।।

तस्याः किं भर्तृयोग्यः स्यान्ममाज्ञावशगः शिवः।
सत्पात्रे विहितं दानं पुण्यकीर्तिकरं भवेत्॥ ४२॥

क्या उसको अपने अनुरूप पति मेरी आज्ञा में रहने वाला यह शिव ही मिला था! सत्पात्र को अधिकृत कर किया दान ही पुण्यप्रद एवं यशःप्रद हुआ करता है।। ४२।।

अतः सत्पात्रमालोक्य कन्यां दद्याद्विचक्षणः।
कुलं शीलं तथा रूपं विचार्य सह बान्धवैः॥ ४३॥

अतः बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह सत्पात्र देख कर ही उसे दान करे। जिसे पुत्री का दान किया जा रहा है, उसके कुल, शील, रूप एवं उसके परिवार के विषय में पहले जान लेना चाहिये।। ४३।।

दद्याद् दुहितरं प्राज्ञः सत्पात्राय महामुने!
इत्यादीनि विचार्यैव पूर्वं सत्याः स्वयंवरे॥ ४४॥
मया न स समाहूतः कुलशीलविवर्जितः।
शृणु यच्चेतसि मम स्फुटमेव वदामि ते॥ ४५॥

अतः महामुने! विद्वान् पुरुष को सत्पात्र के लिये ही दान करना चाहिये– यह सोचकर प्रारम्भ में सती के स्वयम्बर में मैंने इस कुल एवं शील से हीन शिव को नहीं बुलाया था। बस! मेरे मन में जो बात थी, मैंने आप को स्पष्ट बता दी।। ४४–४५।।

यावदेते महारुद्रा ममाज्ञावशवर्तिनः।
यस्यांशसम्भवा मां स साकमेष्यति वै शिवः॥
तावत्तस्मिन् मम त्वीर्ष्या सत्यमेव वदामि ते॥ ४६॥

जब तक ये एकादश महारुद्र जिसके अंश से सम्भूत हैं मेरी आज्ञा के अधीन हैं, वह शिव मेरे सामने जब-जब आयगा, तब तब मेरी ईर्ष्या उसमें बनी रहेगी। यह मैं आप से सत्य कहता हूँ।। ४६।।

तद्विद्वेषफलं शम्भुर्यदा दातुं भवेत् क्षमः।
तदैव पूज्यः स मया प्रतिज्ञैषा दृढा मम''॥ ४७॥

वह शम्भु इस विद्वेष का फल मुझे देने में समर्थ हो जायगा तभी मैं उसमें पूज्य भाव बना पाऊँगा। यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है''।। ४७।।

श्रीमहादेव०—

एवं स दक्षस्य वचो मुनीश्वरः
श्रुत्वा दधीचिर्मनसा व्यचिन्तयत्।
अयं महामूढमतिः प्रजापति-
र्नूनं भवान्या च शिवेन वञ्चितः॥ ४८॥

श्री महादेव— इस तरह उन मुनीश्वर दधीचि ने दक्ष के वचन सुनकर विचार किया कि यह प्रजापति तो बहुत ही मन्दबुद्धि है। अवश्य ही इस पर शङ्कर एवं भवानी— दोनों का कोप है।। ४८।।

कायेन वाचा मनसापि ये जनाः
समाश्रयन्तीह सतीमहेश्वरौ।
न ते विजानन्त्यपि ये विमोहिता
न ज्ञायतेऽसौ कथमेव मूढधीः॥ ४९॥

जो काय, वाक् एवं मन से भक्तिपूर्वक सती एवं महेश्वर का आलम्बन लिये हुए हैं उनकी बात तो छोड़ दीजिये; परन्तु सांसारिक माया मोह में जो आसक्त है वे भी ऐसा नहीं बोलते। पता नहीं, यह मन्दबुद्धि प्रजापति उन दोनों महाप्राणों के विषय में ऐसा क्यों बोल रहा है?।। ४९।।

विज्ञेन केनापि जनेन यद्यसौ
प्रशक्यते ज्ञापयितुं कुधीर्जनः।
तद्भक्तिहीनो जगतीह को जन-
स्तदा न मुक्तिं समुपैति नारद!॥ ५०॥

हे नारद! किसी दुर्बुद्धि द्वारा ऐसी बात कही जाय तो कोई विद्वान् उसे समझाकर सत्य मार्ग पर लगा सकता है; परन्तु कोई श्रद्धा भक्ति वाला पुरुष ऐसी बात करे तो इस संसार में उसे कौन समझा सकता है! ऐसा आदमी इस मिथ्यावाद से छुटकारा नहीं पा सकता।। ५०।।

एवं विचिन्त्यैव ययौ निकेतनं
न किञ्चदुक्त्वा स मुनिः पुनस्तदा।
दक्षः स्वकीयं गृहमाविवेश
दुःखेन निःश्वस्य पुनः पुनर्मुने!॥ ५१॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे दक्षप्रजापतिविषादवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

ऐसा सोचकर वे दधीचि मुनि उस प्रजापति को आगे कुछ न कहकर पुनः अपने आश्रम को लौट गये और हे महामुने! वह दक्ष प्रजापति दुःख से बार बार लम्बी श्वास लेता हुआ अपने घर में चला गया।। ५१।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'दक्षप्रजापतिविषादवर्णन' नामक
पञ्चम अध्याय समाप्त॥

षष्ठ अध्याय

[नन्दिकेश्वर-वर्णन]

श्रीमहादेव०— अथागते महादेवे हिमाद्रेः पृष्ठमुत्तमम्।
सत्या सार्धं ततः सर्वे देवास्तत्र समागताः ॥ १ ॥

श्रीमहादेव जी— यों उन देवाधिदेव भगवान् शङ्कर के अपनी पत्नी सती के साथ हिमालय पर्वत शिखर पर आ जाने के बाद देवता भी वहाँ आकर एकत्र हुए।। १।।

महर्षयस्तथा याता देवपत्न्यस्तथोरगाः।
गन्धर्वाश्च समायाताः किन्नर्यश्च सहस्रशः ॥ २ ॥

इसी प्रकार, महर्षिगण, देवताओं की पत्नियाँ, नागयोनि के प्रमुख देवता, गन्धर्व तथा हजारों किन्नरियाँ भी वहाँ एकत्र हो गयीं।। २।।

गिरीन्द्रवनिता मेरुतनया मेनकापि च।
सखीभिः सहिता याता मुनिपत्न्यस्तथागताः ॥ ३ ॥

सुमेरुपुत्री हिमालयपत्नी मेनका भी अपनी सखियों एवं अन्य मुनिपत्नियों के साथ वहाँ पहुँची।। ३।।

मुमुचुस्त्रिदशाः पुष्पवृष्टिं परमहर्षिताः।
ननृतुश्चाप्सरोमुख्या गन्धर्वपतयो जगुः ॥ ४ ॥

इस प्रमोद के अवसर पर देवताओं ने पुष्पवृष्टि की, अप्सराएँ नाचने लगीं और गन्धर्वों ने विशेष गायन प्रारम्भ किया।। ४।।

यथाचारं स्त्रियश्चक्रुर्महोत्सवपुरःसरम्।
प्रमथा हृष्टमनसः प्रणेमुस्तौ सतीशिवौ ॥ ५ ॥

वहाँ की स्त्रियों ने, इस शुभ अवसर पर, कुलाचार के अनुसार सभी कृत्य किये तथा प्रमथगण ने उन दम्पती सती एवं शिव को प्रणाम किया।। ५।।

ननृतुः करवाद्यं च चक्रुर्गानध्वनिं तथा।
अथ प्रणम्य देवेशं सतीं च सुरसत्तमाः ॥ ६ ॥
विसृष्टास्तेन ते याताः स्वं स्वं स्थानं सुरोत्तमाः।
तथैवान्ये ययुः स्वीयं स्थानं परमहर्षिताः ॥ ७ ॥

इन्होंने तालियाँ बजा बजा कर मनोहर नृत्य किया, विशेष गाना–बजाना किया। फिर देवताओं ने उन दोनों को प्रणाम करते हुए अनुपम हर्षोद्गार प्रकट किये। अन्त में, उन दोनों भगवान् शङ्कर एवं भगवती सती ने वहाँ उपस्थित सभी जनों को प्रसन्नतापूर्वक विदाई दी। तब वे लोग प्रसन्नमन से पुनः अपने अपने स्थान पर चले गये।। ६–७ ।।

स्त्रियश्च प्रययुः सर्वा मेनाद्या मुनिपुङ्गव!
मेना विलोक्य चार्वङ्गी सतीं परमसुन्दरीम्॥ ८॥

हे मुनिपुङ्गव! इसी तरह वहाँ इस अवसर पर उपस्थित मेनका आदि स्त्रियाँ भी पुनः अपने अपने स्थान को लौट गयीं। जाते जाते भी मेनका ने उस मनोहर अङ्गों वाली परम सुन्दरी सती को देखकर।। ८।।

चेतसा चिन्तयामास धन्यास्या जननी तु या।
अहमेनां समागत्य प्रत्यहं रुचिराननाम्॥ ९॥
आराध्य पुत्रीभावेन प्रार्थयामि न संशयः।
एवं विचिन्त्य मनसा सतीं त्रिजगदम्बिकाम्॥ १०॥
विस्मृता न कदाचित्तु गिरिराजस्य गेहिनी।
आगत्यानुदिनं चापि सतीं शङ्करगेहिनीम्॥ ११॥

मन में विचार किया–"वह माता धन्य है जिसने इस सती को जन्म दिया होगा। मैं भी आज से प्रतिदिन आकर इन सुमुखी से प्रार्थना करूँगी कि ये आगामी जन्म में मेरी पुत्री बनें"। मन में ऐसा विचार कर, वह हिमालयपत्नी मेनका उस शङ्करपत्नी सती को, कभी भी विस्मृत न करती हुई, प्रतिदिन वहाँ आकर उसकी पूजा करने लगी।। १०–११ ।।

प्रीतिं संवर्धयामास तस्याः परमभावतः।
अथैकदा समायातो नन्दी बुद्धिमतां वरः॥ १२॥

इस तरह उन सती देव में हिमालय पत्नी के श्रद्धा और प्रेमभाव बढ़ते ही गये। तब एक बार बुद्धिमान् नन्दी वहाँ आये।। १२ ।।

दक्षस्यानुचरो ज्ञानी शिवभक्तिपरायणः।
प्रणनाम महेशानं दण्डवत्पतितो भुवि॥ १३॥

वे प्रमुख शिवभक्त थे, ज्ञानी थे, परन्तु दक्ष के सेवक थे। उन्होंने भूमि पर लेटकर भगवान् शङ्कर को दण्डवत् प्रणाम किया।। १३ ।।

स प्राह देवदेवाहं दक्षस्यानुचरः प्रभो!
शिष्यो दधीचिविप्रर्षेस्त्वत्प्रभावविदः सतः॥ १४॥

वे बोले—"भगवान्, देवाधिदेव! मैं दक्ष का अनुचर (सेवक) तो अवश्य हूँ, परन्तु महर्षि दधीचि का शिष्य हूँ, अतः उनकी कृपा से आपका प्रभाव (सामर्थ्य) भी जानता हूँ।। १४।।

न मां मोहय देवेश शरणागतवत्सल!
जानामि त्वां परात्मानं साक्षात्परमपूरुषम्॥ १५॥

हे देवेश! हे शरणागतवत्सल! आप मुझे मोह में न डालें। मैं आप को साक्षात् आदि पुरुष तथा परमात्मा का रूप समझता हूँ।। १५।।

सतीं च मूलप्रकृतिं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्।
एवमुक्त्वा महादेवं भक्तानुग्रहकारिणम्॥ १६॥
तुष्टाव नन्दी परया भक्त्या गद्गदया गिरा॥ १७॥

और इस माता सती को मूल प्रकृति के रूप में इस जगत् की सृष्टि-स्थिति एवं प्रलय कर्त्री समझता हूँ।" यह कहकर उस नन्दी ने भक्तानुग्रहकारी भगवान् शङ्कर को परम भक्तिमयी गद्गद वाणी से यों सन्तुष्ट किया—।। १६–१७।।

नन्दिकृत शङ्करस्तुति

नन्द्युवाच—

"त्वमादिर्लोकानां परमपुरुषः सर्वजगतां
विधाता सम्पाता शिव प्रलयकर्ता त्वमपि च।
त्वमैश्वर्योपेतस्त्वमपि युवको वृद्ध इति च
त्वमेकं ब्रह्म त्वं सुरवर भवानीश वरद!॥ १८॥

"हे सब का मनोऽभिलाष पूर्ण करने वाले, देवाधिदेव, भवानीश! आप इस सृष्टि के आदिभूत हैं, अतः सम्पूर्ण जगत् में आदि पुरुष हैं, इस सृष्टि के रचयिता हैं, पालक हैं और संहारकारक भी हैं। आप षड्विध ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं, आप युवक भी हैं, वृद्ध भी हैं; क्योंकि ब्रह्मरूप से आप सर्वत्र व्याप्त हैं।। १८।।

अचिन्त्यं ते रूपं जितशशिसमूहं हिमरुचिं
शशाङ्कार्धभ्राजद्विमलमुखपङ्क्तेन्दुरुचिरम्।
स्फुरन्मौलौ सर्पामलमणिभुजङ्गाभरणकं
नमामि ब्रह्माद्यैर्नमितपदपङ्केरुहयुगम्॥ १९॥

हे भगवन्! आप का रूप अचिन्त्य है, हजारों चन्द्रमाओं के समूह की कान्ति को भी परास्त कर रहा है, आप शीतलता के अभिलाषी हैं, इसीलिये

आप के मस्तक पर अर्धचन्द्र की कला निरन्तर शोभायमान रहती है। आपके शिर पर चलते-फिरते सर्प ही अलङ्कार का रूप धारण किये हुए हैं। ब्रह्मा आदि देवता भी आपके चरणकमलों में नित्य नतमस्तक रहते हैं ।। १९ ।।

त्वां नित्यं परिपूजयन्ति भुवि ये गायन्ति नामानि ते
मन्त्रं सम्प्रति सञ्जपन्ति सततं भक्त्याप्यभक्त्याथ वा।
तेऽपि त्वत्पदवीमुपेत्य सततं स्वर्गे रमन्ते प्रभो
को दीनेषु दयापरः पशुपते त्वां देवदेवं विना॥ २०॥

हे प्रभो! जो श्रद्धालुजन भक्तिपूर्वक या भक्ति के विना ही आप का नित्य पूजन-अर्चन करते है, स्तोत्रगान करते हैं, नामकीर्तन करते हैं, निरन्तर मन्त्रजाप करते हैं; वे आप के चरणों में आकर निरन्तर स्वर्ग-सुखभोग का मार्ग प्रशस्त करते हैं। हे पशुपते! आपके अतिरिक्त दीनों पर दया करने वाला कौन है!"।। २०।।

श्रीमहादेव०—नन्दिनेवं स्तुतो देवो महेशः प्राह तं मुने।
किं तेऽभिलषितं नन्दिन् वृणु तत्प्रददामि ते॥ २१॥

श्रीमहादेवजी— हे मुने! नन्दी के द्वारा यों स्तुति किये जाने पर प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर उससे यों बोले— "हे नन्दिन्! तुम्हारी मन:कामना क्या है, मुझे स्पष्ट बताओ? उसे मैं पूर्ण करूँगा"।। २१।।

नन्द्युवाच— सदा त्वन्निकटस्थायी दासतां जगदीश्वर!
त्वत्तो याचे तथा नित्यमनुपश्यामि चक्षुषा"॥ २२॥

नन्दी— "हे जगदीश्वर! मैं इतना ही चाहता हूँ कि आपकी सेवा करता हुआ निरन्तर आपके समीप रहूँ। मैं आप से और क्या चाहूँ, आप मुझे इतना ही वर दीजिये कि मैं जहाँ भी रहूँ, बराबर आपके दर्शन करता रहूँ।। २२।।

शिव०— यथा सम्प्रार्थितो वत्स भविष्यति तथा ध्रुवम्।
सदा मन्निकटे वासो नूनं तव भविष्यति"॥ २३॥

भगवान् शङ्कर— "वत्स! जैसी तुम प्रार्थना कर रहे हो, वही होगा। आगे से तुम सदा मेरे निकट ही रहोगे"।। २३।।

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या स्तोष्यन्ति भुवि मानवाः।
तेषां न विद्यते किञ्चिदशुभं भुवनत्रये॥ २४॥

अथ च, तुम्हारे द्वारा कहे गये इस स्तोत्र से जो भी मुनष्य मेरी स्तुति करेंगे उनका इन तीनों लोकों में कोई अमङ्गल नहीं होगा।। २४।।

मर्त्येऽपि सुचिरं स्थित्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयुः।
त्वमेषां प्रमथानां मे श्रेष्ठो भूत्वा महामते॥ २५॥
वसेह मत्पुरे नन्दिन् भक्तोऽसि मम च प्रियः॥ २६॥

हे महामति! वे मर्त्यलोक में रहकर अपना प्रारब्ध कर्म पूर्ण कर, अन्त में मोक्ष प्राप्त करेंगे और तुम मेरे इन प्रमथगणों के प्रधान बनकर नन्दिन! तुम सदा मेरे सम्मुख रहोगे; क्योंकि तुम मेरे परमभक्त बन चुके हो, अतः मेरे प्रिय पात्र हो गये हो"॥ २५-२६॥

श्रीमहादेव०—एवं वरमनुप्राप्य नन्दीप्रमथवृन्दपः।
बभूव मुनिशार्दूल महादेवप्रभावतः॥ २७॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे नन्दिकेश्वरवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

श्रीमहादेवजी— हे मुनिशार्दूल! यों भगवान् शङ्कर से वर प्राप्त कर वह नन्दी उस प्रमथसमूह का प्रधान बन गया। इसमें भगवान् शङ्कर की कृपा का ही एकमात्र प्रभाव था॥ २७॥

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'नन्दिकेश्वरवर्णन' नामक
षष्ठ अध्याय समाप्त॥

सप्तम अध्याय

[दक्षप्रजापतियज्ञारम्भवर्णन]

श्रीमहादेव०—अथ शम्भुः सतीं प्राप्य भृशं कामप्रपीडितः।
प्रमथानाह भगवान्नन्दिनं च महाबलम्॥ १॥

श्री महादेव जी– उधर, भगवान् शङ्कर ने सती को प्राप्त करने के बाद अतीव काममुग्ध होकर, प्रमथ एवं महाबलशाली नन्दी को आज्ञा दी–॥ १॥

"प्रमथा यूयमेतस्मात् स्थानात्किञ्चित् सुदूरतः।
कुरुध्वं च स्थितिं शीघ्रं सुचिरं मम शासनात्॥ २॥
यदा युष्मान् स्मरिष्यामि तदा यास्यथ मेऽन्तिकम्।
न ममाज्ञां विना कोऽपि समायातु कदाचन"॥ ३॥

"प्रमथो! तुम लोग, मेरी आज्ञा से इस स्थान से कुछ दूर रहकर यहाँ पहरा दो। मैं जब तुम्हें स्मरण करूँ तभी तुम मेरे पास आना। मेरी आज्ञा के विना कोई भी मेरे पास न आवे"॥ २–३॥

इति शम्भोर्वचः श्रुत्वा प्रमथाः सर्वं एव ते।
महेशसन्निधिं त्यक्त्वा स्थिताः किञ्चित्सुदूरतः॥ ४॥

भगवान् शङ्कर का यह आदेश सुनकर सभी प्रमथ उनके समीप से हटकर कुछ दूर जाकर बैठ गये॥ ४॥

ततः स निर्जने तस्मिन् सत्या सार्धं महेश्वरः।
यथाभिलषितं रेमे दिवारात्रं महामुने!॥ ५॥

महामुने! तब भगवान् शङ्कर एकान्त में भगवती सती के साथ दिनरात यथेच्छ रहस्यालाप में मग्न हो गये॥ ५॥

आनीय वन्यपुष्पाणि मालां निर्माय शोभनाम्।
दत्त्वा सतीं कौतुकेन कदाचित् स ददर्श ह॥ ६॥

कभी वे वन में पैदा होने वाले फूल इकट्ठा कर उन की सुन्दर मालाएँ बनाकर सती को देते और भगवती सती उन मालाओं की रचना आश्चर्यपूर्वक देखती रह जाती॥ ६॥

कदाचित् प्रेमभावेन मुखं फुल्लाम्बुजोपमम्।
अमृजत् पाणिना स्वेन रुचिरं परमादृतः॥ ७॥

कभी वे परम स्नेह के साथ भगवती सती के कमल के समान विकसित अतएव सुन्दर मुख का अपने हाथ से मर्दन करते।। ७।।

कदाचिद् गह्वरे रेमे कदाचित् पुष्पकानने।
कदाचित् सरसां तीरे रेमेऽभिलषितं यथा॥ ८॥

कभी वे किसी गुफा में जाकर उनके साथ रमण करते, कभी किसी फुलवारी में छिपकर। कभी किसी नदी के तट पर जाकर ही यथेच्छ अभिरमण प्रारम्भ करते।। ८।।

दृष्टिं व्यापारयामास नान्यत्र क्षणमण्वपि।
विना सतीं महादेवः सती चापि शिवं विना॥ ९॥

कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय ऐसा कुछ हो गया था कि न तो भगवान् शङ्कर को ही भगवती सती के अतिरिक्त अन्य कुछ सूझता था, न भगवती सती को भगवान् शङ्कर के अतिरिक्त लोक में अन्य कुछ दिखायी देता था।। ९।।

कदाचित् प्रययौ सत्या कैलासेऽपि महेश्वरः।
प्रययौ यत्र कुत्रापि पुनः सत्या महागिरेः॥ १०॥
प्रस्थं हिमवतः शम्भुः समायाति स नारद!
तया विहरमाणोऽसौ दशवर्षसहस्रकम्।
दिनं वा रजनीं वापि ज्ञातवान्न महामते॥ ११॥

हे नारद! कभी भगवान् शङ्कर भगवती को साथ लेकर कैलास पर्वत पहुँच जाते, या फिर कभी हिमालय के किसी रम्य कूट पर चले जाते! इस तरह भगवान् शङ्कर ने भगवती सती के साथ अभिरमण करते हुए दश हजार वर्ष बिता डाले।

महामते! इतने दीर्घकाल तक भगवान् शङ्कर एवं भगवती सती को परस्पर प्रेमालाप करते हुए न दिनों का ज्ञान रहा, न रात्रियों का ही।। १०-११।।

एवं हिमवतः पृष्ठे सती त्रैलोक्यमोहिनी!
समास्थिता महादेवं विमोह्य निजमायया॥ १२॥
मेनका समयं ज्ञात्वा गत्वा चानुदिनं सतीम्।
पुत्रीभावेन सततं प्रार्थयामास भक्तितः॥ १३॥

यों जब वह त्रैलोक्यसुन्दरी सती शङ्कर को स्वमोहिनी माया से विमुग्ध कर एकत्र रहती हुई उनके साथ अभिरमण में समय बिता रही थी। हिमालयपत्नी मेनका भावपूर्वक प्रतिदिन उचित समय पर भगवती सती के

पास जाकर उनसे अगले जन्म में अपनी पुत्री बनने की प्रार्थना करती रहती थी।। १२–१३।।

व्रतं चकार चारभ्य महाष्टम्यामुपोषिता।
वर्षं यावत्सिताष्टम्यां सम्पूज्य हरगेहिनीम्॥ १४॥

और उन्होंने महाष्टमी से आरम्भ कर उपवास के साथ वर्षपर्यन्त भगवती सती की का व्रत किया।। १४।।

पुनर्देवीं महाष्टम्यां सम्पूज्य विधिवन्मुने!
उपोषिता व्रतं पूर्णं चकार गिरिगेहिनी।

महामुने! यों, उस मेनका ने प्रत्येक मास की शुक्लाष्टमी को व्रत रखकर आगामी वर्ष की महाष्टमी तिथि पर भगवती सती की विधिवत् पूजा करते हुए अपना व्रत पूर्ण किया।। १५।।

ततः प्रसन्ना भूत्वा तु सती शङ्करगेहिनी।
अङ्गीचक्रे 'भविष्यामि सुता तव न संशयः'॥१६॥

तब शङ्करपत्नी भगवती सती ने उस मेनका पर प्रसन्न होकर स्वीकार किया कि वह आगामी जन्म में अवश्य ही उसकी पुत्री बनेगी– इसमें कोई सन्देह नहीं।। १६।।

एवं सत्या वचः श्रुत्वा मेनका हृष्टमानसा।
श्रद्धयाहर्निशं देवीं संस्थिता गिरिमन्दिरे॥ १७॥

भगवती सती के ये वचन सुनकर प्रसन्नचित्त हुई मेनका ने हिमालय के घर में मन्दिर बनवाकर भगवती सती की प्रतिदिन पूजा प्रारम्भ की।। १७।।

दक्षश्चानुदिनं शम्भुं निनिन्दासौ विमोहितः॥ १८॥

और उधर दक्ष प्रजापति भी, अपने दौर्भाग्यवश, प्रतिदिन भगवती की निन्दा करता रहा।। १८।।

शम्भुश्चापि न मेने तं सम्मान्यत्वेन नारद!
अप्रीतिरेवम्भूताभूत् तयोरन्योन्यमद्भुता॥ १९॥

नारद! इस कारण, भगवान् शङ्कर भी दक्ष प्रजापति को कोई बहुत सम्मान नहीं देते थे। इस तरह उन दोनों– शङ्कर और दक्ष का यह अद्भुत द्वेष परस्पर बढ़ता ही गया।। १९।।

नारद द्वारा दक्ष प्रजापति को सत्परामर्श

शिवदक्षप्रजापत्योरतीव मुनिसत्तम!
अथैकदा समागत्य नारदो ब्रह्मणः सुतः।
प्रोवाच वचनं दक्षप्रजापतिमिदं मुने!॥ २०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यों उन दोनों का पारस्परिक द्वेष निरन्तर बढ़ ही रहा था कि इसी बीच, एक बार ब्रह्मा के पुत्र नारद ने वहाँ आकर दक्ष प्रजापति से ये वचन कहे— ।। २० ।।

"प्रजापते त्वया नित्यं निन्द्यते यन्महेश्वरः।
तेन क्रुद्धः स च यथा कर्तुमिच्छति तच्छृणु॥ २१॥
नूनं त्वामेत्य भवतः पुरं भूतगणैः सह।
भस्मास्थिवर्षणं कृत्वा सकुलं नाशयिष्यति॥ २२॥
स्नेहान्निवेदितं तुभ्यं न प्रकाश्यं कदाचन।
उपायं मन्त्रिभिः सार्धं मन्त्रयाशु विचक्षणैः"॥ २३॥

"हे प्रजापति! तुम निरन्तर भगवान् शङ्कर की निन्दा करते रहते हो। इस निन्दात्मक व्यवहार से क्रुद्ध होकर, इसके प्रतिफल में वे जो करना चाहते हैं उसे भी सुन लो। वे शीघ्र ही अपने गणों के साथ यहाँ आकर भस्म और हड्डियाँ बिखेर कर तुम्हारा भी, तुम्हारे कुल सहित, विनाश कर देंगे। यह उनकी योजना है। इसे गुप्त ही रखना, किसी अन्य से न कहना। मैंने यह तुम्हें स्नेहवश बता दिया है। तुम इसका उपाय अपने मन्त्रियों के परामर्श से निश्चित कर लो" ।। २१–२३ ।।

इत्युक्त्वाकाशमार्गेण स ययौ निजमालयम्॥ २४॥

यह कहकर नारदमुनि आकाशमार्ग से पुनः अपने आश्रम पर लौट गये ।। २४ ।।

दक्ष प्रजापति का मन्त्रियों से परामर्श

दक्षोऽपि मन्त्रिणः सर्वानाहूयेदमभाषत।
"यूयं तु मन्त्रिणः सर्वे सर्वदा हितकारकाः॥ २५॥

तब, दक्ष प्रजापति ने भी अपने सब मन्त्रियों को बुलाकर यों कहा— "आप सब मेरे मन्त्री हैं, मेरे हित की ही बात सदा सोचते रहते हैं ।। २५ ।।

चेष्टितं मद्विपक्षेण न केनाप्यवधीयते।
अथ मां नारदः प्राह महर्षिः समुपेत्य वै॥ २६॥
मत्पुरे शिव आगत्य सर्वभूतगणैः सह।
वर्षांभस्मास्थिरक्तानां करिष्यति न संशयः।
तदत्र यद्विधेयं हि साम्प्रतं ब्रूत तन्मम"॥ २७॥

मेरे विरोधी मेरे विषय में क्या सोच रहे हैं?— ऐसा कोई भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। अभी नारद मुनि मेरे पास आये थे। उन्होंने बताया कि शिव

मेरे इस नगर में अपने सभी भूतगणों के साथ आकर, यहाँ भस्म, हड्डी एवं रक्त की वर्षा करेंगे। इसमें कोई सन्देह न करे इसका हमें कैसे प्रतिरोध करना चाहिये?— यह बात आप विचार कर मुझे बतावें।'' ।। २६–२७ ।।

इति दक्षवचः श्रुत्वा मन्त्रिणः सर्व एव ते।
ऊचुर्हि वचनं चेदं भयत्रस्ता महामुने॥ २८॥

महामुने! दक्ष के ये वचन सुनकर वे सब मन्त्री भयभीत होकर यों बोले– ।। २८ ।।

मन्त्रिण०— **''शिवेन देवदेवेन कथमेवं करिष्यते।**
अनये कारणं नैव चास्माभिरुपलक्ष्यते॥ २९॥
त्वं तु बुद्धिमतां श्रेष्ठः सर्वशास्त्रविशारदः।
आज्ञापय यथा युक्तं ततो भद्रं विरच्यते॥ ३०॥

मन्त्रीगण— ''देवाधिदेव शिव के साथ हम कैसे विरोध कर पायँगें! इस सङ्कट से निस्तारण का हमें कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। परन्तु प्रजापति! आप तो बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं, और सब शास्त्रों के ज्ञाता भी हैं। आप ही इसका कोई प्रतीकारात्मक उपाय बताइये। हम उसे सफल बनाने का प्रयास करेंगे'' ।। २९–३० ।।

दक्ष का सङ्कल्प

दक्ष०— **''अहं यज्ञं करिष्यामि सर्वा आहूय देवताः।**
विना श्मशानसंवासं शिवं भूतगणाधिपम्॥ ३१॥
विष्णुं यज्ञेश्वरं देवं सर्वविघ्ननिवारकम्।
मखसंरक्षकत्वेन परिकल्प्य प्रयत्नतः॥ ३२॥

दक्ष— ''मैं सब देवताओं को आमन्त्रित कर एक यज्ञ करूँगा। उसमें श्मशानवासी शिव को नहीं बुलाऊँगा और सर्वविघ्ननिवारक देवाधिदेव, यज्ञाधिपति विष्णु को उक्त यज्ञ का संरक्षक बनाऊँगा ।। ३१–३२ ।।

एवं पुण्यक्रियारम्भे कृते भूतपतिः शिवः।
कथमायास्यति पुरं पुण्यकर्मयुतं मम॥ ३३॥

यों, यह पुण्य कार्य आरम्भ होने पर हम देखेंगे कि कैसे वह भूतपति शिव हमारे इस पुण्य कार्य में विघ्न डालने आ पायगा!'' ।। ३३ ।।

श्रीमहादेव०— **तथोक्तवति दक्षे तु तस्य ते मन्त्रिणस्तदा।**
भद्रमेतन्महाराजेत्येवमूचुः प्रजापतिम्॥ ३४॥

ततः प्रजापतिर्गत्वा क्षीरोदतटमाश्रितम्।
विष्णुं सम्प्रार्थयामास यज्ञरक्षणकारणात्॥ ३५॥

श्री महादेव— दक्ष के द्वारा ऐसा कहे जाने पर उसके मन्त्री उस प्रजापति को यों बोले— "हाँ महाराज! आप सर्वथा उचित कह रहे हैं।" इसके बाद वह दक्ष प्रजापति क्षीरसागर के तट पर जाकर अपने यज्ञ के संरक्षण हेतु भगवान् विष्णु से प्रार्थना करने लगा।। ३४–३५।।

ततः प्रसन्नो भगवान् विष्णुः परमपूरुषः।
मखसंरक्षणार्थाय स्वयं प्रायाच्च तत्पुरम्॥ ३६॥
तत आहूतवान् दक्षो देवानिन्द्रपुरोगमान्॥ ३७॥
ब्रह्माणमथ देवर्षीन् ब्रह्मर्षींश्च पुरोगमान्।
सेन्द्रान् यक्षांश्च गन्धर्वान् पितृन् दैत्यांश्च किन्नरान्॥ ३८॥
अद्रींश्च सर्वानाहूय तस्मिन् यज्ञमहोत्सवे।
विद्वेषाद्वर्जितः शम्भुस्तत्पत्नी च सती मुने॥ ३९॥

तब उन आदिपुरुष विष्णु ने प्रसन्न होकर उस यज्ञ के संरक्षण हेतु दक्षपुरी की तरफ प्रस्थान किया। तब दक्ष प्रजापति ने इन्द्र आदि देवताओं को आमन्त्रित किया। ब्रह्मा को, प्रधान प्रधान देवर्षियों तथा ब्रह्मर्षियों को, इन्द्रादि देवताओं सहित यक्षों, गन्धर्वों एवं किन्नरों को, पितरों को, दैत्यों को तथा सभी पर्वतों को उस यज्ञमहोत्सव में आमन्त्रित किया; परन्तु हे मुने! विद्वेषवश भगवान् शङ्कर तथा उनकी धर्मपत्नी सती को उसने नहीं बुलाया।। ३६–३९।।

सर्वांस्तान् कथयामास—"मम यज्ञमहोत्सवे।
मया शिवस्तु नाहूतः सती नापि शिवप्रिया॥ ४०॥

वहाँ उपस्थित हुए उन सब लोगों से दक्ष प्रजापति ने यों निवेदन किया— "मैंने अपने इस यज्ञमहोत्सव में न तो शिव को बुलाया है, न शिवपत्नी सती को।। ४०।।

अत्र ये नागमिष्यन्ति ते स्युर्भागबहिष्कृताः।
नारायणस्तु भगवानादिः परमपूरुषः॥ ४१॥
रक्षार्थं मम यज्ञस्य स्वयमेव समागतः।
तस्मात्त्यक्तभयाः सर्वे समागच्छन्तु मन्मखे"॥ ४२॥

यहाँ जो इस यज्ञ में सम्मिलित नहीं होंगे उन्हें उनका यज्ञीय भाग नहीं मिलेगा। तथा आदि परमपुरुष भगवान् नारायण (विष्णु) स्वयं इस यज्ञ

की रक्षा हेतु आये हैं। अतः आप लोग, किसी का भी भय न मानकर, मेरे इस यज्ञ में सम्मिलित हों"।। ४१–४२।।

एवं तस्य वचः श्रुत्वा भीता एव सुरादयः।
शिवशून्यामपि सभामागताः सर्व एव हि॥ ४३॥

उस प्रजापति का वचन सुनकर, (समग्र स्थिति जानकर) यद्यपि वहाँ उपस्थित देवता आदि आमन्त्रित लोग भय मान रहे थे, फिर भी शिव-रहित उस सभा में शिव को छोड़कर अन्य सभी लोग उपस्थित हुए।। ४३।।

विष्णुं समागतं श्रुत्वा यज्ञरक्षणतत्परम्।
निर्भीताः सकला आसन् देवाश्चान्येऽपि शङ्करात्॥ ४४॥

जब उन्होंने सुना कि इस यज्ञ की रक्षा हेतु स्वयं भगवान् विष्णु आये हुए हैं तो उन सब के मन से शङ्कर का भय निकल गया।। ४४।।

यज्ञ की व्यवस्था

अदित्याद्याः सुताः सर्वाः समानीय विना सतीम्।
वस्त्रालङ्कारनिचयैस्तोषयामास सादरम्॥ ४५॥

दक्ष प्रजापति ने उस यज्ञ में, सती को छोड़कर, अदिति आदि सभी पुत्रियों को भी बुलाया एवं उन सभी को ससम्मान वस्त्र, आभूषणादि देकर सन्तुष्ट किया।। ४५।।

महाद्रिसदृशं चक्रे अन्नानां सञ्चयं मुने!
पयोदधिघृतादीनां महानद्यः प्रकल्पिताः॥ ४६॥

हे मुने! उसने, उस अवसर पर, पर्वत के समान ऊँची अन्नराशि एकत्र कर दी। दूध, दही, घी की मानो नदियाँ बहा दी गयीं।। ४६।।

अथान्यद्वस्तु यज्ञार्थं द्रव्यं तेषां तु सञ्चयम्।
रसानां सागरसममन्येषां गिरिणा समम्॥ ४७॥

कहने का तात्पर्य यह है कि उस यज्ञ में जिस किसी भी वस्तु की आवश्यकता पड़ी, उसका इतना विशाल भण्डार वहाँ कर दिया गया कि उस अवसर पर उसकी कोई कमी अनुभव नहीं हुई। द्रव प्रदार्थों का भी इतना भण्डार बना दिया था कि मानों उनका सागर ही हिलोरे मारता हुआ दिखायी दे रहा था। दूसरे द्रव्यों का भी पर्वतों जितना ऊँचा सञ्चय था।। ४७।।

चक्रे प्रजापतिर्दक्षस्ततो यज्ञः प्रवर्तत।
वसुधाभृत् स्वयं वेदी स्वयं कुण्डे हुताशनः॥ ४८॥

यह सब संग्रह करने के बाद, दक्षप्रजापति ने वह यज्ञ प्रारम्भ

किया। उस समय यह पृथ्वी ही यज्ञवेदी बन गयी तथा यज्ञकुण्ड में स्वयं साक्षात् अग्निदेव विराजमान हुए।। ४८।।

जज्वालोर्ध्वामलशिखो विधूमो मुनिसत्तम!
वेदपाठनियुक्ताश्च समासंस्तत्र ये मखे॥ ४९॥

हे मुनिसत्तम! उस समय ऊँची लपटों वाले वे अग्निदेव निर्धूम दिखायी दे रहे थे। तथा वहाँ यज्ञ में जो वेदपाठी नियुक्त किये गये थे वे सभी योग्य थे।। ४९।।

स्वयं यज्ञः समायातस्तत्र वेद्यां महामते!
नारायणस्तु भगवानादिः परमपूरुषः।
यज्ञसंरक्षकस्वामी जगतां रक्षकः स्वयम्॥ ५०॥

महामते! स्वयं यज्ञभगवान् उस अवसर पर साक्षात् उपस्थित थे। तथा आदिपुरुष, 'जगद्रक्षक, भगवान् नारायण (विष्णु) भी उस यज्ञ के संरक्षक के रूप में स्वयं उपस्थित थे।। ५०।।

यज्ञ का आरम्भ

एवं प्रवृत्ते यज्ञे तु दधीचिर्ज्ञानिनां वरः॥ ५१॥
अदृष्ट्वा शिवमेवैकं दक्षमाह महामतिः।

इस तरह यज्ञ प्रारम्भ होने पर, ज्ञानियों में श्रेष्ठ तथा बुद्धिमान् दधीचि ऋषि ने एकमात्र भगवान् शिव को न देखकर, दक्ष प्रजापति से पूछा ।। ५१।।

दधीचि०— **"प्रजापते महाप्राज्ञ यज्ञोऽयं यादृशस्त्वया।**
क्रियते न कदाप्येवं भूतो वा न भविष्यति॥ ५२॥
यत्रैते त्रिदशाः सर्वे समागत्य स्वयं स्वयम्।
गृह्णन्ति चाहुतिं साक्षात्प्रलभ्य निजभागतः॥ ५३॥

दधीचि— "हे महाप्राज्ञ प्रजापते! आप ने जैसा यह यज्ञ प्रारम्भ कराया है ऐसा यज्ञ तो न पहले कभी हुआ था, न आगे ही कभी होगा कि जिसमें सभी देवता स्वयं आकर आहुति (अपना भाग) ग्रहण कर रहे हैं।। ५२–५३।।

प्राणिनः सर्व एवात्र दृश्यन्ते वै समागताः।
दृश्यते न कथं शम्भुस्त्रिदशानामधीश्वरः"?॥ ५४॥

इस तरह सभी प्राणी यहाँ आये हुए हैं; परन्तु देवाधिदेव शङ्कर यहाँ कहीं नहीं दिखायी देते?"।। ५४।।

दक्ष०— "न मया स समाहूतो यज्ञेऽस्मिन् मुनिसत्तम।
पुण्यकर्मणि लब्धो न स इत्येष महेश्वरः"॥ ५५॥

दक्ष– "हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने उसको इस शुभ अवसर पर बुलाया ही नहीं; क्योंकि मेरी मान्यता है कि ऐसे पुण्यकार्यों में उसकी उपस्थिति उचित नहीं है"।। ५५।।

दधीचि०— "यथा विविधरत्नेन देहः सम्भूषितोऽपि च॥ ५६॥
न शोभते जीवहीनः सर्वथापि प्रजापते!
तथेश्वरं विना यज्ञः श्मशानमिव दृश्यते"॥ ५७॥

दधीचि— प्रजापते! जैसे सर्वविध आभूषणों से अलङ्कृत शरीर जीव (प्राण) के विना निरर्थक है उसी तरह यह यज्ञ भी उस ईश्वर (शिव) के विनां श्मशान के तुल्य दिखायी दे रहा है।। ५६–५७।।

दक्ष०— "त्वं केन वा समाहूतः कथमागतवानसि?
पृष्टस्त्वं केन वा दुष्ट! यदेवं वदसि द्विज"?॥ ५८॥

दक्ष– "अरे ब्राह्मण! तुझको किसने बुलाया है! तूँ यहाँ विना बुलाये कैसे चला आया? रे दुष्ट! तुझसे कौन पूछ रहा है या सम्मति माँग रहा है कि तूँ इस तरह बोले चला जा रहा है! ।। ५८।।

दधीचि०— "आहूतो वाप्यनाहूतस्त्वयाहं तव दुर्मखे।
शृणोषि यदि मे वाक्यं तदाह्वय सदाशिवम्॥ ५९॥

दधीचि– "अपने इस कुत्सित यज्ञ में बुलाया गया या नहीं बुलाया गया, इस बात को छोड़। अब भी तूँ मेरी बात मान ले और भगवान् सदाशिव को अपने इस यज्ञ में ससम्मान बुला ले।। ५९।।

विना तेन कृतो यज्ञः कदाचिन्न फलप्रदः।
यथाऽर्थवर्जितं वाक्यं श्रुतिहीनो यथा द्विजः॥ ६०॥

उनके विना तुम्हारा यह यज्ञ कभी फलप्रद नहीं होगा। जैसे निरर्थक वाक्य तथा विना वेद पढ़ा; लिखा ब्राह्मण निष्फल हुआ करता है।। ६०।।

गङ्गाहीनो यथा देशस्तथा यज्ञः शिवं विना।
पतिहीना यथा नारी पुत्रहीनो यथा गृही॥ ६१॥

वह देश जिसमें गङ्गा (नदी) न हो और वह यज्ञ जिसमें शिव न आहूत हों, वह नारी जिस का कोई पति न हो, वह गृहस्थ जिसका कोई पुत्र न हो– ये सब निरर्थक ही हैं।। ६१।।

यथा काङ्क्षा निर्धनानां तथा यज्ञः शिवं विना।
दर्भहीना यथा सन्ध्या तिलहीनं च तर्पणम्।
यथा होमो हविर्हीनस्तथा हीनश्च शम्भुना॥ ६२॥

जैसे दरिद्रों की इच्छा पूर्ण नहीं होती वैसे शिव के विना कोई यज्ञ पूर्ण नहीं हुआ करता; जैसे कुश के विना सन्ध्या तथा तिल के विना पितृतर्पण पूर्ण नहीं हुआ करता या जैसे हवि के विना होम, वैसे शिव के विना कोई यज्ञ पूर्ण नहीं हुआ करता।। ६२।।

यो विष्णुः स महादेवः शिवो नारायणः स्वयम्।
नानयोर्विद्यते भेदः कदाचिदपि कुत्रचित्॥ ६३॥
एवं विनिन्दते यः स स्वयमेव हि गर्हितः।
एकं द्विषन्तमपरो न प्रसन्नः कदाचन॥ ६४॥

जो विष्णु है वही शिव है और जो शिव है वही विष्णु है। इन दोनों में कहीं कोई भेद नहीं है। अतः जो इनमें से किसी एक की निन्दा करता है, जनता में स्वयं उसी की निन्दा होने लगती है। इनमें से किसी एक से द्वेष रखने पर दूसरा आप पर प्रसन्न रहे— यह सम्भव नहीं।। ६३–६४।।

शिवापमानकामेन क्रियते यत्त्वया मखः।
एतेन शम्भुः संकुद्धो यज्ञं ते नाशयिष्यति॥ ६५॥

शिव का अपमान करने की इच्छा से तुमने यह जो यज्ञ आयोजित किया है इस से शम्भु तुम पर क्रुद्ध ही होंगे और तुम्हारा यह यज्ञ नष्ट कर देंगे"।। ६५।।

दक्ष०— "सर्वस्य जगतो गोप्ता यस्य गोप्ता जनार्दनः।
तत्र श्मशानसंवासी शम्भुर्मे किं करिष्यति!॥ ६६॥
यदि चायाति मे यज्ञे प्रेतभूमिप्रियः शिवः।
तदा विष्णुः स्वचक्रेण वारयिष्यति ते शिवम्"॥ ६७॥

दक्ष— "सम्पूर्ण जगत् के पालक जनार्दन जिसके रक्षक हों, वहाँ वह श्मशान में रहने वाला शिव मेरा क्या बिगाड़ लेगा! यदि वह भूत प्रेतों के साथ रहने वाला शिव मेरे इस यज्ञ में आया, तो विष्णु उस शिव को अपने चक्र से दूर भगा देंगे"।। ६६–६७।।

दधीचि०— "भवादृशो न मूढोऽयं भगवान् पुरुषोऽव्ययः।
येनार्थेन स्वयं युद्धं करिष्यति विमोहितः॥ ६८॥

यत्त्वया दृश्यते शम्भो रक्षार्थं समुपागतः।
यथा रक्षिष्यति मखं चक्षुषा द्रक्ष्यसेऽचिरात्''॥ ६९॥

दधीचि– ''अरे प्रजापति! वह अविनाशी भगवान् विष्णु तुम्हारी तरह मूर्ख नही हैं कि पागल होकर तुम्हारे लिये उनसे युद्ध करें। तूँ जो यह समझ रहा है कि वे भगवान् शिव से तुम्हारे इस यज्ञ की रक्षा कर देंगे, तो वह तेरे यज्ञ की जैसी रक्षा करेंगे– वह कुछ समय बाद तुम्हें स्वयं ज्ञात हो जायगा!।। ६८–६९।।

दधीचि आदि ऋषियों का सभा-त्याग

श्रीमहादेव:०—इति तस्य वचः श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः॥ ७०॥
दक्षः स्वकीयानाहेदमिमं दूरयत द्विजम्।
दधीचिरपि तं दक्षं प्राह सन्मुनिपुङ्गवः॥ ७१॥

श्रीमहादेव– यों दधीचि के कहे वचन सुनकर दक्ष प्रजापति ने अत्यधिक क्रुद्ध होकर लाल नेत्र करते हुए अपने अनुचरों से कहा–''देखते क्या हो! इस ब्राह्मण को यज्ञ से दूर भगा दो।'' यह सुनकर उन मुनिश्रेष्ठ दधीचि ने दक्ष को कहा–।। ७०–७१।।

दधीचि ''किं मां दूरयते मूढ दूरीभूतोऽसि मङ्गलात्।
शिवस्य क्रोधजो दण्डः पतिष्यत्यचिरेण तु।
तव मूर्धनि नास्त्यत्र संशयो दुर्मते क्वचित''॥ ७२॥

दधीचि–''रे मूर्ख! तूँ मुझे क्या दूर भगा रहा है! तेरा सौभाग्य तो पहले ही तुझ से दूर हट गया है! बहुत शीघ्र ही तेरे शिर पर भगवान् शिव का क्रोधपात होगा हे कुमति! इसमें अब कहीं कोई सन्देह नहीं है''।। ७२।।

इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो मध्याह्नार्कसमप्रभः।
निर्जगाम सभामध्याद् दधीचिर्मुनिसत्तमः॥ ७३॥
दुर्वासा वामदेवश्च च्यवनो गौतमादयः।
शिवतत्त्वविदः सर्वे पश्चादुत्थाय निर्ययुः॥ ७४॥

यह कह कर क्रोध से लाल नेत्र कर मध्याह्न के सूर्य के समान तमतमाते हुए वे मुनिश्रेष्ठ दधीचि उस सभा से उठकर चल दिये। उनके साथ ही दुर्वासा, वामदेव, च्यवन एवं गोतम आदि ऋषि भी सभा से उठकर चल दिये; क्योंकि ये सभी शिवतत्त्व के उपासक थे।। ७३–७४।।

गतेषु तेषु सर्वेषु दक्षः शेषद्विजातये।
द्विगुणां दक्षिणां दत्त्वा महायज्ञं समारभत्॥ ७५॥

इन ऋषियों के यज्ञसभा से चले जाने पर दक्ष ने अवशिष्ट ब्राह्मणों को द्विगुण दान–दक्षिणा देकर अपना महायज्ञ प्रारम्भ कराया।। ७५।।

उक्तः स बन्धुभिः सर्वैरपि देवीं सतीं नहि॥ ७६॥
समानयत्त्वत्र यज्ञे कदाचिदपि नारद!
प्रक्षीणपुण्यस्तेनावामन्यत प्रकृतिमुत्तमाम्॥ ७७॥
तदैव वञ्चितो दक्षो महामायास्वरूपया।
अथ ज्ञात्वा तु तत्सर्वं सर्वज्ञा जगदम्बिका॥ ७८॥

हे नारद! परिवार के सदस्यों द्वारा कहे जाने पर भी उसने सती का अपमान बन्द नहीं किया; क्योंकि उसका पुण्य क्षीण हो चुका था, अतः वह उस श्रेष्ठ प्रकृति भगवती का अपमान करने पर ही तुला रहा वस्तुतः वह दक्ष प्रजापति भगवती की माया से मुग्ध हो चुका था, इसीलिये वह निरर्थक प्रलाप तथा उन्मत्तवत् कार्य कर रहा था। भगवती जगदम्बिका ने (अपने योगबल से) दक्ष प्रजापति के यज्ञ की समग्र घटनाएँ जान लीं।। ७६–७८।।

भगवती का निर्णय

चिन्तयामास पार्श्वस्था शम्भोर्गिरिवरोपरि।
"प्रार्थिता गिरिराजस्य पत्न्याहं मेनया स्वयम्॥ ७९॥
पुत्रीभावेन सद्भक्त्या विनयात् प्रेमभावतः।
अङ्गीचक्रे भविष्यामि सुताहं नात्र संशयः॥ ८०॥

अतः हिमालय पर विराजमान भगवान् शङ्कर के पास बैठी हुई उन्होंने विचार किया– "कभी हिमालय की पत्नी मेनका ने उनसे अपनी पुत्री होने का वचन माँगा था। मैंने भक्ति, प्रेम एवं विनय भाव से उनकी पुत्री बनना स्वीकार किया था, अतः अब मैं उनकी पुत्री बनूँगी–इसमें कोई संशय नहीं है।। ७९–८०।।

पूर्वं सम्प्रार्थयामास यदा मां स प्रजापतिः।
तदा तस्मै मयाप्युक्तं यदा मन्दादरो भवान्॥ ८१॥
भविष्यति क्षीणपुण्यस्तदा सम्मोह्य मायया।
त्यक्ष्यामि ध्रुवमित्येवं सोऽयं काल उपस्थितः॥ ८२॥

दक्ष प्रजापति को भी, उसके तपःसाधना प्रसङ्ग में बता दिया था कि मैं तुम्हारे घर में जन्म अवश्य लूँगी, परन्तु जब मेरा आदरभाव वहाँ कम हो जायगा। या तुम्हारा पुण्य क्षीण हो जायगा तो तुम्हें मैं मायामुग्ध कर अवश्य छोड़ दूँगी। अब उन दोनों वचनों को पूर्ण करने का समय आ गया है।। ८१–८२।।

प्रजापतिः क्षीणपुण्यो मयि मन्दादरोऽधुना।
तं परित्यज्य यास्यामि स्थानं तन्निजलीलया॥ ८३॥

क्योंकि आज उस प्रजापति का पुण्य क्षीण हो चुका है, और मुझमें उसका आदर भी कम हो गया है। अतः अपनी लीला करके मैं उस स्थान (प्रजापति के घर) को छोड़ दूँगी॥ ८३॥

ततश्च हिमवद्गेहे प्राप्य जन्म महेश्वरम्।
पतिमाप्स्यामि देवेशं भूयः प्राणैकवल्लभम्''॥ ८४॥

और फिर हिमालय के घर में जन्म लेकर इन्हीं महादेव को प्राणप्रिय पति के रूप में पुनः वरण करूँगी''॥ ८४॥

एवं विचिन्त्य मनसा दक्षकन्या महेश्वरी।
क्षणं प्रतीक्षमाणाभूद् दक्षयज्ञविनाशने॥ ८५॥

मन में यह निश्चय कर उस महेश्वरी दक्षकन्या ने दक्षयज्ञविध्वंस के समय की प्रतीक्षा करने लगीं॥ ८५॥

देवर्षि नारद का आगमन

एतस्मिन्नेव काले तु नारदो ब्रह्मणः सुतः।
दक्षालयात् समायातो यत्रास्ति भगवान् हरः॥ ८६॥

इसी समय ब्रह्मा के पुत्र नारद दक्ष प्रजापति के घर से चलकर भगवान् शङ्कर के पास आये॥ ८६॥

त्रिधा प्रदक्षिणीकृत्य देवदेवं त्रिलोचनम्।
''सर्व एव समाहूतास्तेन तस्मिन्महामखे॥ ८७॥

और उन देवाधिदेव त्रिलोचन भगवान् शङ्कर की तीन बार प्रदक्षिणा कर बताया— ''उस दक्ष प्रजापति ने अपने यहाँ महायज्ञ में सभी को बुलाया है॥ ८७॥

देवा मनुष्या गन्धर्वाः किन्नरोरगपर्वताः।
ये चान्ये प्राणिनः सन्ति स्वर्गे मर्त्ये च भूतले॥ ८८॥

देवताओं को भी, मनुष्यों को भी, गन्धर्वों को भी, किन्नरों को भी, नागों को भी, पर्वतों को, या यों कहिये कि स्वर्ग, मर्त्य एवं रसातल के सभी निवासियों को आमन्त्रित किया है॥ ८८॥

ते सर्वे तेन चाहूता युवामेव विवर्जितौ।
युवाभ्यां रहितां वीक्ष्य पुरीं तस्य प्रजापतेः॥ ८९॥

दुःखेनाहं परित्यज्य समायातस्तवान्तिकम्।
उचितं युवयोस्तत्र गमनं मा चिरं कुरु"॥ ९०॥

यों उसने केवल आप दोनों को छोड़ कर सभी को बुलाया है। उस दक्ष प्रजापति की पुरी को आप लोगों से शून्य देखकर मैं दुःखी हुआ और सब कुछ छोड़कर आप लोगों के पास भागा आया, आप लोगों का वहाँ जाना उचित है। इसमें आप दोनों विलम्ब न करें"।। ८९–९०।।

शिव०— "किं तत्र गमनेनैव प्रयोजनमथावयोः।
यथारुचि तथा यज्ञं स करोतु प्रजापतिः"॥ ९१॥

शिव— "हम दोनों का वहाँ जाने से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? वह प्रजापति जैसा चाहे अपना यज्ञ सम्पन्न करे।" ।। ९१।।

नारद०— "तवापमानमन्विच्छन् यद्येवं स महाध्वरम्।
निष्पादयति लोकानां तदावज्ञा भवेत्त्वयि॥ ९२॥

नारद— "आप का अपमान करके यदि वह अपना महायज्ञ सम्पन्न कर लेगा तो इसमें आप की अवमानना होगी।। ९२।।

तज्ज्ञात्वा यज्ञभागं वै गृहाण परमेश्वर!
विघ्नं वाऽऽचर तद्यज्ञे अचिरं त्रिदशेश्वर"!॥ ९३॥

यह समझते हुए, हे परमेश्वर! आप वहाँ चलकर अपना यज्ञ भाग ग्रहण करें। अन्यथा, हे देवाधिपति! वह ऐसा न करने दे तो उस यज्ञ में शीघ्र विघ्न उत्पन्न कीजिये"।। ९३।।

शिव०— "न तत्राहं गमिष्यामि न सत्येषा मम प्रिया।
आगतेऽपि च नो यज्ञभागं मे सम्प्रदास्यति"॥ ९४॥

शिव— "नारद! मैं तो वहाँ नहीं जाऊँगा, न मेरी यह प्रिया सती ही जायगी। वहाँ जाने पर भी वह हमारा यज्ञभाग हमें नहीं देगा"।। ९४।।

*श्रीमहादेव०—*इत्येवं शम्भुना प्रोक्तो महर्षिर्नारदस्तदा।
सतीमाह "जगन्मातर्गमनं तूचितं तव॥ ९५॥

श्रीमहादेव जी बोले— यों भगवान् शङ्कर द्वारा महर्षि नारद को उत्तर दिये जाने के बाद, नारद ने भगवती सती से कहा— "जगन्माता! आपका तो वहाँ जाना उचित ही है।। ९५।।

कन्या पितृगृहे श्रुत्वा महायज्ञमहोत्सवम्।
कथं धैर्यं समास्थाय स्थातुमुत्सहते गृहे॥ ९६॥

कोई भी कन्या अपने पितृगृह में हो रहे विशिष्ट यज्ञ की बात सुनकर भी अपने श्वसुरगृह में कैसे चुपचाप बैठी रह सकती है!।। ९६ ।।

भगिन्यस्तव या दिव्यास्ताः सर्वास्तु समागताः।
ताभ्यः सम्प्रददौ नानाविधं स्वर्णादिभूषणम्॥ ९७॥

आप की अन्य जितनी भी दिव्य बहनें हैं वे सभी वहाँ अपने पतियों के साथ आयी हैं। उन सभी को उसने स्वर्णादि के आभूषण देकर सम्मानित किया है।। ९७।।

त्वमेका वर्जिता तेन यथा दर्पात् सुरेश्वरि!
तथा त्वं दर्पनाशाय यतस्व जगदम्बिके!॥ ९८॥

हे सुरेश्वरि! उस दक्ष ने आपको ही अभिमानवश नहीं बुलाया है। अतः हे जगन्माता! आप उसके इस अभिमाननाश हेतु कुछ प्रयत्न कीजिये।। ९८।।

शिवस्तु परमो योगी समः पूजापमानयोः।
न गमिष्यति तद्यज्ञे न विघ्नं वा करिष्यति"॥ ९९॥

ये आपके पतिदेव शिव तो परमयोगी हैं, इन्हें अपने मान या अपमान में कोई अन्तर नहीं ज्ञात होता। अतः ये तो उस यज्ञ में जायँगें नहीं, न वहाँ कोई विघ्न ही करेंगे"।। ९९।।

इत्युक्त्वा दक्षतनयां महर्षिर्नारदस्तदा।
प्रणम्य शङ्करं प्रायाद्दक्षस्य निलयं पुनः॥ १००॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे
दक्षप्रजापतियज्ञारम्भवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

देवर्षि नारद उस दक्षसुता भगवती सती से यों कहकर, भगवान् शङ्कर को यथोचित प्रणाम कर पुनः दक्ष की यज्ञसभा में लौट गये।। १००।।

श्री महाभागवत नामक उपुराण में
'दक्षप्रजापतियज्ञारम्भ का वर्णन'
नामक सप्तम अध्याय समाप्त॥

अष्टम अध्याय

[कालीरथगमनवर्णन]

श्रीमहादेव०— **इत्याकर्ण्य मुनीन्द्रस्य वचनं दक्षकन्यका।**
गन्तुमैच्छत् पितुर्यज्ञे शिवमाह शिवाङ्गना॥ १॥

श्रीमहादेव— नारद मुनि के ये वचन सुनकर दक्षकन्या सती ने पिता के घर में हो रहे यज्ञ में जाने की इच्छा की, तथा उन्होंने भगवान् शङ्कर से कहा—।। १।।

सती०— **"प्रभो देवमहेशान पिता दक्षः प्रजापतिः।**
करोति सुमहायज्ञं बहुसञ्चयपूर्वकम्॥ २॥

सती— "हे प्रभो, देवदेवेश! मेरे पिता दक्ष प्रजापति बहुत सा द्रव्य सञ्चित कर अपने घर में विशाल यज्ञ का आयोजन किये हुए हैं।। २।।

आवयोर्गमनं तत्र न्याय्यं चेतसि राजते।
समुपस्थितयोर्नूनं सम्मानं स करिष्यति"॥ ३॥

हम दोनों का भी उसमें सम्मिलित होना उचित लग रहा है। यदि हम वहाँ पहुँच जायँ तो उन्हें हमारा सम्मान भी करना ही पड़ेगा"।। ३।।

शिव०— **"नैवं सति प्रिये चिन्तां मनसापि समाचर।**
अनाहूतस्य गमनं मरणं च द्वयं समम्॥ ४॥

भगवान् शङ्कर— "प्रिये! तुम्हें ऐसी बात मन से भी नहीं सोचनी चाहिये; क्योंकि विना बुलाये जाना मरण के समान ही समझा जाता है।। ४।।

यक्षविद्याधरकुले गर्वितो मम हेलनम्।
करोति निलयं तस्य गन्तव्यं न कदाचन॥ ५॥

तुम्हारे पिता को मेरा यक्ष एवं विद्याधर कुलों में स्वच्छन्द विचरण करना अच्छा नहीं लगता। अतः उस घर में हमें कभी नहीं जाना चाहिये।। ५।।

ममापमानमेवेच्छन् कुरुते स महाध्वरम्।
यदि यामि च तत्राहं त्वं यासि यदि वा सति॥ ६॥
आवयोस्तत्र सम्मानं पिता ते न करिष्यति।
श्वशुरस्यालये गच्छेद् यदि तत्रास्ति गौरवम्॥ ७॥

मेरा अपमान करने के लिये उसने इस यज्ञ का आयोजन किया है। यदि वहाँ तुम जाओ, या मैं जाऊँ, वह हम तुम्हारे पिता दोनों का ही किसी

भी दशा में सम्मान नहीं करेंगे। श्वसुरगृह में तभी जाना चाहिये जब वहाँ उसका सम्मान हो।। ६–७।।

अगौरवं चेद्गमनं मरणादतिरिच्यते।
जामाता श्वशुरस्थानेऽपेक्षते परमादरम्॥ ८॥

वहाँ जाने से यदि अपमान होता है तो वह अपमान मृत्यु से बढ़कर कष्टदायी होता है और जामाता तो श्वसुरगृह में जा कर अपने अधिक से अधिक सम्मान की अपेक्षा रखता है।। ८।।

श्वशुरोऽपि तमादृत्य स्वालयेषु समानयेत्।
अनादरं च श्वशुरो जामातरि विवर्जयेत्॥ ९॥

श्वसुर को भी उसको अपने घर में आदर कर लाना चाहिये। ऐसा करके वह अपना ही आदर करता है। अतः श्वसुर को जामाता का अपमान करने से दूर रहना चाहिये।। ९।।

अन्यथा धर्महानिः स्यात् सत्यं सत्यं वरानने!
जामातुर्द्वेषतः पापं जायते हि सुदारुणम्॥ १०॥

अन्यथा धर्महानि होगी। हे सुमुखि! मैं तुम्हें यह वास्तविकता (सचाई) बता रहा हूँ कि जामाता के साथ द्वेष करने से श्वसुर को अत्यधिक कष्टदायी पाप भोगना पड़ता है।। १०।।

तस्माद्विवर्जयेद् द्वेषं जामातरि विचक्षणः।
जामातापि न कुर्याद्वै श्वशुरस्याप्रियं क्वचित्॥ ११॥

अतः बुद्धिमान् श्वसुर को जामाता में अपमान–बुद्धि नहीं रखनी चाहिये। हाँ, उधर जामाता को भी ऐसा कुछ नहीं करना चाहिये जो श्वसुर को अप्रिय लगे।। ११।।

कुर्वन् स निरयं याति बहुजन्मशतान्यपि।
अमानितो नैव गच्छेत् कदाचिच्श्वशुरालयम्॥ १२॥

ऐसा करता हुआ जामाता भी हजारों वर्ष तक नरक में कष्ट भोगता है। अतः मेरा मानना तो यही है कि किसी भी जामाता को अपमानित होकर श्वसुरगृह कदापि नहीं जाना चाहिये।। १२।।

यत्र कुत्रचिदाह्वानं विनैव गमनं प्रिये।
मरणेन समं प्रोक्तं किं पुनः श्वशुरालये॥ १३॥

हे प्रिये! अन्यत्र भी कहीं विना बुलाये जाना उचित नहीं कहलाता है, फिर श्वसुरगृह में विना बुलाये जाना तो मृत्यु से भी बढ़कर कहलाता है।। १३।।

तदहं न गमिष्यामि श्वशुरस्यालयेऽधुना।
अप्रियं तत्र गमनं यतो दक्षप्रजापतेः॥ १४॥

अतः, इस समय मैं तो तुम्हारे पिता के घर नहीं जाऊँगा, क्योंकि मेरा वहाँ जाना तुम्हारे पिता को प्रिय नहीं लगेगा।। १४।।

श्वशुरप्रीतिकरणाद्रूपवृद्धिः प्रजायते।
प्रजावृद्धिर्धर्मवृद्धिरपि सञ्जायते सति!॥ १५॥

हे सति! श्वसुर के मनोनुकूल व्यवहार करने से जामाता की रूपवृद्धि होती है, प्रजा (सन्तति) वृद्धि होती है, धर्म की वृद्धि भी होती है।। १५।।

अप्रीतिकरणाद्धानिर्जायते च तथा प्रिये!
तन्न गच्छामि यज्ञेऽस्मिन् पितुस्तव सुरोत्तमे॥ १६॥

तथा हे प्रिये! उसके अनुकूल व्यवहार न करने से उस जामाता की हानि ही होती है। अतः हे सुरोत्तमे! मैं तो तुम्हारे पिता के घर जा नहीं पाऊँगा।। १६।।

भाषतेऽहर्निशं दक्षो मां दरिद्रं सुदुःखिनम्।
अनाहूते मयि गते तद्वक्ष्यति विशेषतः॥ १७॥

मुझे दक्ष प्रजापति वैसे ही दिनरात दीन–हीन तथा दरिद्र एवं दुःखी कहता रहता है; विना बुलाये जाने पर तो वह मुझे और अधिक कटुवचन कहने लगेगा।। १७।।

अनाह्वानं च दुर्वाक्यं न सह्यं श्वशुरालये।
आयान्तं वीक्ष्य दुहितुः पतिं श्वशुर एत्य तम्॥ १८॥
समर्चयेद्यथाशक्ति धर्मलोपोऽन्यथा भवेत्।
एवमेवंविधो यत्र सम्मानः प्रतिपादितः॥ १९॥

श्वसुरगृह में न बुलाया जाना, और ऐसे में जाने पर वहाँ कटुवचन सुनना सह्य नहीं होता। होना तो यह चाहिये कि पुत्री के पति (जामाता) को आता हुआ देखकर श्वसुर को आगे बढ़कर उसको यथाशक्ति सम्मान देना चाहिये, अन्यथा उसके धर्म का लोप होना निश्चित है। यों, जहाँ इस तरह का सम्मान व्यवहार में वृद्धजनों द्वारा अनुमोदित है।। १८–१९।।

तत्रापमानलाभाय को गच्छति सुबुद्धिमान्।
तत्क्षमस्व महेशानि! पितुस्तव महाध्वरे।
नावयोर्गमनं युक्तं विनाह्वानं सुरार्चिते"॥ २०॥

वहाँ अपमान कराने के लिये कौन बुद्धिमान् श्वसुरगृह जाना उचित समझेगा! अतः हे महेशानि! इस यज्ञ के अवसर पर आपके पिता के घर न जाने के लिये मुझे क्षमा करें। अतः हे देवपूज्ये! विना बुलाये हम दोनों का वहाँ जाना उचित नहीं।। २०।।

सती०— **"यदुक्तं सत्यमेवैतत् प्रभो नास्त्यत्र संशयः।**
गतस्य हि कदाचित् ते सम्मानं स करिष्यति"॥ २१ ॥

सती— "प्रभो! आप का कथन उचित ही है—इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु यह भी सम्भव है कि वहाँ जाने पर पिता जी हमारा सम्मान ही करें!"।। २१।।

शिव०— **"न तादृशस्तव पिता यदाह्वानं विना गतम्।**
कदाचिन्नो सभामध्ये सम्मानेन ग्रहीष्यति॥ २२॥
मन्नामस्मरणादेव निन्दते मामहर्निशम्।
स करिष्यति सम्मानं ममेति तव दुर्मतिः॥ २३॥

भगवान् शङ्कर— "तुम्हारे पिता ऐसे नहीं है कि विना बुलाये जाने पर भी सम्भवतः वे हमारा सम्मान करने के लिये आगे आवें। तुम्हारे पिता तो मेरा नाम स्मरण आते ही दिन रात मेरी निन्दा में लगे रहते हैं। वे मेरा सम्मान करेंगे—यह तुम्हारी मिथ्यादृष्टि (भ्रम) मात्र है"।। २२–२३।।

सती०— **"त्वं याहि वा महादेव मा वा कुरु यथारुचि।**
अहं यास्यामि तत्राज्ञां देहि मां त्वं महेश्वर॥ २४॥
कन्या पितृगृहे श्रुत्वा महायज्ञमहोत्सवम्।
कथं धैर्यं समास्थाय स्थातुमुत्सहते गृहे॥ २५॥
असम्मान्याः समाहूता लभन्ते यत्र पूजनम्।
सम्मान्यस्तु समाकर्ण्य कं धैर्यं समाश्रयेत्॥ २६॥
अन्यत्र विद्यतेऽपेक्षा चाह्वानस्य महेश्वर॥ २७॥

सती— "महादेव! आप जायँ या न जायँ—यह आपकी रुचि (मर्जी) है। परन्तु, हे महेश्वर! आप मुझे आज्ञा दीजिये। मैं तो जाना ही चाहूँगी। यह कैसे सम्भव है कि कन्या के पितृगृह में किसी उत्सव का आयोजन हो और कन्या अपनी ससुराल में चुपचाप बैठी रहे। ऐसे अवसर पर तो विना बुलाये गया पुरुष भी सम्मान पा जाता है। इसलिये, जिसका सम्मान होना वहाँ अवश्यम्भावी है वह कैसे अपने घर में चुपचाप बैठा रह सकता है! और

फिर हे महेश्वर! निमन्त्रण–आमन्त्रण की तो अन्यत्र आवश्यकता हुआ करती है।। २४–२७।।

गन्तुं पितृगृहे कन्या नाह्वानं समपेक्षते।
तस्मात्पितृगृहे नूनं गमिष्याम्यनुमन्यताम्॥ २८॥

ससुराल में या पितृगृह में गमनहेतु कन्या को इस की विशेष आवश्यकता नहीं होती। अतः मैं अपने पितृगृह अवश्य जाऊँगी। आप मुझे अनुमति दीजिये।। २८।।

मम तत्र गतायाश्च सम्मानं कुरुते यदि।
तदोक्त्वा पितरं तुभ्यं दापयिष्यामि चाहुतिम्॥ २९॥

वहाँ जाने पर, यदि मेरा सम्मान हुआ तो, मैं पिता से कहकर आपको भी आहुति (यज्ञभाग) दिलाऊँगी।। २९।।

ममाग्रे यदि ते निन्दां करिष्यति विमूढधीः।
तदा तस्य महायज्ञं नाशयामि न संशयः"॥ ३०॥

यदि वह (मेरा) मूर्ख (पिता) वहाँ मेरे सम्मुख तुम्हारी निन्दा करने लगेगा तो मैं उसका वह यज्ञ विध्वस्त कर दूँगी—इसमें आप कोई संशय न करें"।। ३०।।

शिव०— **"न तत्र गमनं युक्तं कदाचिदपि ते सति!**
ब्रवीमि सत्यं सम्मानस्तत्र ते न भविष्यति॥ ३१॥

शङ्कर– "हे सति! मैं तुम्हें पुनः यही सम्मति दे रहा हूँ कि तुम्हारा वहाँ जाना कथमपि उचित नहीं है। मैं सत्य कह रहा हूँ, वहाँ तुम्हारा सम्मान नहीं होगा।। ३१।।

मन्निन्दनमसह्यं ते करिष्यति पिता तव।
प्राणान् हास्यति तच्छ्रुत्वा तस्य त्वं किं करिष्यसि"॥ ३२॥

अपने पिता द्वारा की गयी मेरी निन्दा तुम सहन नहीं कर पाओगी! उसे सुनकर तुम अपन प्राण छोड़ दोगी। तुम अपने पिता को क्या हानि पहुँचा पाओगी"।। ३२।।

सती०— **"यास्याम्येव महादेव सत्यं मत्पितुरालये।**
तदाज्ञापय वा नो वा सत्यं सत्यं वदामि ते॥ ३३॥

सती– "हे शङ्कर! अब मेरी तरफ से सत्य सुन लीजिये! मैं तो अपने पितृगृह जाऊँगी ही, भले ही आप आज्ञा दें या न दें!"।। ३३।।

शिव०—

''मद्वाक्यमुल्लङ्घ्य पुनः पुनः किं ब्रवीषि गन्तुं पितुरालये वचः।
प्रयोजनं वात्र किमस्ति सत्यं ब्रूहि स्फुटं तत्कथये तदुत्तरम्॥ ३४॥

शङ्कर— ''मेरी बात को न मान कर, तुम बार बार अपने पितृगृह जाने की बात कर रही हो, स्पष्ट क्यों नहीं बताती हो कि वहाँ तुम्हारा जाने का वास्तविक प्रयोजन क्या है? तो मैं उसका भी उत्तर दूँ।। ३४।।

असम्मानभयं येषां वर्तते न दुरात्मनाम्।
त एव तत्र गच्छन्ति यत्रासम्मानसम्भवः॥ ३५॥

जिस कुबुद्धि को अपने अपमानित होने का कोई भय नहीं होता वही वहाँ जाता है, जहाँ असम्मान होने की आशङ्का हो।। ३५।।

मान्यः कदापि नो गच्छेदपूजकगृहे सति।
अपूजकस्य या पूजा न सा पूजेति भण्यते॥ ३६॥

जिसको अपना सम्मान प्रिय हो, वह असम्मान करने वाले के घर कभी नहीं जाता। असम्मान करने वाले के घर जाने पर यदि कुछ सम्मान (पूजा) मिल भी गया तो वह वास्तविक सम्मान नहीं कहलाता।। ३६।।

मन्निन्दनश्रुतौ चेन्न प्राप्तिस्ते जायते सति!
मन्निन्दकगृहे कस्माद्धेतोस्त्वं गन्तुमिच्छसि''॥ ३७॥

हे सति! यदि तुम्हारा मेरी निन्दा सुनने में कोई प्रयोजन नहीं है तो तूँ मेरी निन्दा करने वाले के घर क्यों जाना चाहती हो!''।। ३७।।

सती०— ''त्वन्निन्दनश्रुतौ शम्भो न प्राप्तिर्जायते मम।
तच्छ्रोतुमिच्छुर्नो वापि तत्र गन्तुं समुत्सहे॥ ३८॥

सती— ''हे शम्भो! तुम्हारी निन्दा सुनने में कोई रुचि नहीं है। न मैं तुम्हारी निन्दा करने वाले के घर ही जाना चाह रही हूँ।। ३८।।

यदैव त्वां परित्यज्य सर्वानाहूय दैवतान्।
समारभन्महायज्ञमसम्मानस्तदैव हि॥ ३९॥

वास्तविकता तो यह है कि मेरे पिता ने तुम्हे बुलाये विना ही अन्य सभी देवताओं को बुलाकर जब इतने विशाल यज्ञ का आयोजन कर लिया तभी उसने तुम्हारा अपमान कर दिया!।। ३९।।

जातस्तव महेशान तत् समालोकते प्रजा।
यद्येनं स महायज्ञं सम्पादयति मत्पिता॥ ४०॥

त्वामनादृत्य दर्पेण तदा ते कोऽपि नो जनः।
आहुतिं श्रद्धयोपेतः सम्प्रदास्यति भूतले॥ ४१॥

यह अपमान प्रजा द्वारा देखा जा रहा है। यदि मेरा पिता तुम्हारा अनादर कर अभिमानवश इस महायज्ञ का सम्पादन कर लेता है, तो फिर कोई हमारा आदमी हममें श्रद्धा रखता हुआ भूतल पर आहुति क्यों डालेगा।। ४०–४१।।

ततोऽहं तत्र यास्यामि तदाज्ञापय वा न वा।
प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखम्॥ ४२॥

इसलिये मैं वहाँ पहुँचूँगी भले ही आप आज्ञा दें या न दें। उस समय यदि आपको यज्ञभाग (आहुति) न मिला तो मैं उस यज्ञ को विध्वस्त कर डालूँगी''।। ४२।।

शिव०— **''वारितापि महादेवि न शृणोषि वचो मम।**
अपकर्म स्वयं कृत्वा परं दूषयते कुधीः॥ ४३॥

शङ्कर— महादेवि! समझाने पर भी तूँ मेरी बात पर ध्यान नहीं दे रही है। अरी मूर्ख! स्वयं अनुचित कर दूसरों पर क्यों उसे आरोपित कर रही है।। ४३।।

जानामि वाग्बहिर्भूतां त्वामहं दक्षकन्यके।
यथारुचि कुरु त्वं च ममाज्ञां किं प्रतीक्षसे!''॥ ४४॥

अरी दक्ष की पुत्रि! मैं देख रहा हूँ कि तूँ आज्ञा से बाहर होती जा रही है। तो तेरी जो इच्छा हो वह कर! मेरे आदेश की क्या प्रतीक्षा कर रही है!''।। ४४।।

सती का चण्ड रूप

श्रीमहादेव०— **एवमुक्ता महेशेन तदा दाक्षायणी सती।**
चिन्तयामास सा क्रुद्धा क्षणमारक्तलोचना॥ ४५॥

श्रीमहादेव— भगवान् शङ्कर के ऐसा कहे जाने पर उस दक्षपुत्री सती ने क्षण भर में ही क्रुद्ध होकर लाल नेत्र करते हुए विचार किया।। ४५।।

सम्प्रार्थ्य मामनुप्राप्य पत्नीभावेन शङ्करः।
अधिक्षिपत्यद्य तस्मात्प्रभावं दर्शयाम्यहम्॥ ४६॥

जिन शङ्कर ने कठोर तपस्या करने के बाद मुझको पत्निभावेन प्राप्त किया था। आज वही मुझको अपमानित कर रहे हैं, तो अब मैं इन्हें अपना प्रभाव दिखाँऊगी।। ४६।।

देवी का भीमरूप

शम्भुः समीक्ष्य तां देवीं क्रोधविस्फुरिताधराम्।
कालाग्नितुल्यनयनां मीलिताक्षस्तदाऽभवत्॥ ४७॥

तब भगवान् शङ्कर ने क्रुद्ध हुईं उन सती भगवती को देखा, जिनके ओष्ठ क्रोध से फड़क रहे थे तथा नेत्र प्रलयाग्नि के समान लाल हो गये थे। यह देखकर भगवान् शङ्कर ने अपने नेत्र मूँद लिये।। ४७।।

सहसा भीमदंष्ट्रास्या साट्टहासं तदाकरोत्।
तन्निशम्य महादेवो भीतभीतो विमुग्धवत्॥ ४८॥

सती ने सहसा अट्टहास किया, जिससे उनके खुले मुख में भयङ्कर लम्बी लम्बी दाढें दिखायी दीं। उस अट्टहास को सुनकर भगवान् शङ्कर बहुत अधिक भयभीत एवं हतप्रभ हो गये।। ४८।।

कष्टेनोन्मील्य नेत्राणि तां ददर्श भयानकाम्।
एवं संवीक्ष्यमाणा सा सहसा तेन नारद!॥ ४९॥

कुछ क्षण बाद, बहुत कष्टपूर्वक जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं तो उन्हें देवी का भयानक रूप दिखायी दिया। हे नारद! उन शङ्कर द्वारा यों देखी जाती हुई वह देवी।। ४९।।

त्यक्त्वा हेमपटीमासीद् वृद्धावस्थासमप्रभा।
दिगम्बरा लसत्केशा ललज्जिह्वा चतुर्भुजा॥ ५०॥

अपने शरीर की सुवर्णमयी आभा छोड़कर वृद्धावस्था के समान आभावाली हो गयीं। वह निर्वस्त्र थीं, उसके केश खुले हुए थे, जिह्वा मुख से बाहर निकल कर लपलपा रही थी। उसके चार भुजाएँ थीं।। ५०।।

कालानललसद्देहा स्वेदाक्तेन तनूरुहा।
महाभीमा घोररावा मुण्डमालाविभूषणा॥ ५१॥

उसके देह से प्रलयाग्नि के समान लपटें निकल रही थीं, उसके रोम रोम से स्वेद (पसीना) निकल रहा था। वह देखने में महाभयङ्कर लग रही थीं। भयङ्कर चीत्कार कर रही थीं, उसने आभूषण के रूप में मुण्डमालाएँ धारण कर रखी थीं।। ५१।।

उद्यत्प्रचण्डकोट्याभा चन्द्रार्धकृतशेखरा।
उद्यदादित्यसङ्काशा किरीटोज्ज्वलमस्तका॥ ५२॥

उसके शरीर से करोड़ों प्रचण्ड आभाएँ निकल रही थीं, मस्तक पर

अर्धचन्द्र शोभित हो रहा था। वह उदय होते सूर्य के सदृश अरुणवर्ण वाली थी। उसने मस्तक पर चमकता किरीट (मुकुट) धारण कर रखा था।। ५२।।

एवं समादाय वपुर्भयानकं
जाज्वल्यमानं निजतेजसा सती।
कृत्वाट्टहासं सहसा महास्वनं
सोत्तिष्ठमाना विरराज तत्पुरः॥ ५३॥

इस प्रकार भयानक शरीर धारण कर वह सती अपने शरीर से ज्वालाएँ छोड़ती हुई भयानक शब्द वाला अट्टहास (ठहाका) करती हुई उठ कर उन भगवान् शङ्कर के सम्मुख खड़ी हो गयी।। ५३।।

तथाविधां कायवतीं निरीक्ष्य तां
विहाय धैर्यं सह चेतसा तदा।
चकार बुद्धिं स पलायने भयात्
समभ्यधावच्च दिशो विमुग्धवत्॥ ५४॥

वैसे भयानक शरीर वाली उस सती को देखकर, मन से धैर्यविहीन होकर, उन भगवान् शङ्कर ने वहाँ से भाग जाने का मन बनाया और वे हतप्रभ होकर इधर उधर दिशाओं में दौड़ने लगे।। ५४।।

तं धावमानं गिरिशं विलोक्य वै
दाक्षायणी वारयितुं पुनः पुनः।
चकार मा भैरिति शब्दमुच्चकैः
साट्टाट्टहासं सुमहाभयानकम्॥ ५५॥

इस तरह निरुद्देश्य दौड़ते हुए भगवान् शङ्कर को जब उस दक्षपुत्री सती ने देखा तो उन्होंने उनको बार बार रोका। और जोर से चिल्ला कर कहा— आप मुझ से डरिये नहीं, परन्तु साथ ही भयङ्कर अट्टहास भी करती रहीं।। ५५।।

निशम्य तद्वाक्यमतीव सम्भयात्
तस्थौ न शम्भुः क्षणमप्यमुत्र वै।
दिगन्तमागन्तुमतीव वेगतः
समभ्यधावद् भयविह्वलस्तदा॥ ५६॥

परन्तु भगवान् शङ्कर, उस सती द्वारा कहीं रुकने की बात सुनकर भी वहाँ एक क्षण नहीं रुके और वे भयभीत होकर दिशाओं के अन्तिम किनारों तक दौड़ते ही रहे।। ५६।।

एवं पतिं वीक्ष्य भयाभिभूतं
दयान्विता सा पतिवारणेच्छया।
सर्वासु दिक्षु क्षणमग्रतः स्थिता
तदा च भूत्वा दश मूर्तयः पराः ॥ ५७ ॥

इस तरह अपने भयभीत पति को दौड़ते हुए देखकर उस सती को उन पर दया आ गयी और उन्हें रोकने की इच्छा से क्षणभर में ही दशों दिशाओं में अपनी दश मूर्तियाँ बनाकर उनके सम्मुख खड़ी हो गयीं ।। ५७ ।।

सन्धावमानो गिरिशोऽतिवेगतः
प्राप्नोति यां यां दिशमेव तत्र ताम्।
भयानकां वीक्ष्य भयेन विद्रुतो
दिशं तथान्यां प्रति चाप्यधावत ॥ ५८ ॥

यों अत्यधिक वेग से दौड़ते हुए वे पर्वतवासी शङ्कर जिधर भी जाते थे वहाँ आगे उसी भयानक मूर्ति को खड़ी देखकर दूसरी दिशा की तरफ मुख कर उधर ही दौड़ने लगते थे ।। ५८ ।।

न प्राप्य शम्भुर्हि भयोज्झितां दिशं
तत्रैव सम्मुद्रितचक्षुरास्थितः।
उन्मील्य नेत्राणि ददर्श तां पुरः
श्यामां लसत्पङ्कजसन्निभाननाम् ॥ ५९ ॥

इस तरह दौड़ते दौड़ते भगवान् शङ्कर को जब कोई भी दिशा निर्भय (निरापद) नहीं दिखायी दी तब वे आँख मूँद कर एक स्थान पर खड़े हो गये। बहुत समय बाद, जब उन्होंने आँखें खोलीं तो खिले कमल पुष्प के समान सुन्दर मुखवाली श्यामा देवी ही सामने दिखायी दीं ।। ५९ ।।

हसन्मुखीं पीनपयोधरद्वयां
दिगम्बरां भीमविशाललोचनाम्।
विमुक्तकेशीं रविकोटिसन्निभां
चतुर्भुजां दक्षिणसम्मुखस्थिताम् ॥ ६० ॥

उनका मुख कमल के समान खिला हुआ था, दोनों पयोधर स्थूल थे, वे निर्वस्त्र थीं, उनकी आँखें भयङ्कर एवं विशाल थीं। केश खुले हुए थे, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान थीं। उनके चार भुजाएँ थीं। वे दक्षिण दिशा में सामने खड़ी थीं ।। ६० ।।

दश देवियाँ (महाविद्याएँ)

एवं विलोक्य तां शम्भुरतिभीत इवाब्रवीत्।
"का त्वं श्यामा सती कुत्र गता मत्प्राणवल्लभा ?" ॥ ६१ ॥

अत्यधिक भयभीत होते हुए भगवान् शङ्कर यों बोले— "आप श्यामवर्ण वाली नारी कौन हैं? मेरी प्राणप्रिया सती कहाँ गयी?" ।। ६१ ।।

सती०— "न पश्यसि महादेव सतीं मां पुरतः स्थिताम्।
काली तारा च लोकेशी कमला भुवनेश्वरी ॥ ६२ ॥
छिन्नमस्ता षोडशी च सुन्दरी बगलामुखी।
धूमावती च मातङ्गी नामान्यासामिमानि वै" ॥ ६३ ॥

सती— "हे देवाधिदेव! महादेव! अपने सामने खड़ी मुझ सती को भी नहीं पहचान रहे हो? काली, तारा, लोकेश्वरी कमला, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, षोड़शी, सुन्दरी, बगलामुखी, धूमावती एवं मातङ्गी—ये सब मेरे ही नाम हैं ।। ६२–६३ ।।

शिव०— "कस्याः किं नाम देवि त्वं विशिष्य च पृथक् पृथक्।
कथयस्व जगद्धात्रि सुप्रसन्नासि मे यदि ?" ॥ ६४ ॥

शिव— "हे जगन्माता! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो इन देवियों में किसका क्या नाम है और क्या कार्य है—यह सब मुझे पृथक् पृथक् बताइये" ।। ६४ ।।

देवी०— "येयं ते पुरतः कृष्णा सा काली भीमलोचना ॥ ६५ ॥

देवी (सती)— "हे शम्भो! आपके सामने जो यह भीम (भयङ्कर) नेत्रों वाली देवी खड़ी हैं इसका नाम *काली* है ।। ६५ ।।

श्यामवर्णा च या देवी स्वयमूर्ध्वं व्यवस्थिता।
सेयं तारा महाविद्या महाकालस्वरूपिणी ॥ ६६ ॥
सव्येतरेयं या देवी विशीर्षातिभयप्रदा।
इयं देवी छिन्नमस्ता महाविद्या महामते! ॥ ६७ ॥

ऊपर की तरफ जो श्यामवर्णा देवी खड़ी हैं वह यह महाकालस्वरूपिणी महाविद्या *तारा* हैं और आपके दक्षिण (सव्येतर) की तरफ जो शिरोविहीन एवं अतिभयङ्कर देवी खड़ी हैं, उस देवी का नाम *छिन्नमस्ता* है। हे महामते! यह भी महाविद्यास्वरूपा है ।। ६६–६७ ।।

वामे तवेयं या देवी सा शम्भो भुवनेश्वरी।
पृष्ठतस्तव या देवी बगला शत्रुसूदिनी॥ ६८॥

हे शम्भो! तुम्हारे वामभाग (उत्तर) में जो देवी खड़ी हैं उसका नाम *भुवनेश्वरी* है। आपके पीछे (पश्चिम में) जो देवी खड़ी हैं वह शत्रुविनाशिनी *बगला* देवी हैं।। ६८।।

वह्निकोणे तवेयं या विधवारूपधारिणी।
सेयं धूमावती देवी महाविद्या महेश्वरी॥ ६९॥

आपके आग्नेय कोण में, विधवा के रूप में जो देवी खड़ी हैं। वह *धूमावती* देवी हैं। यह महेश्वरी भी महाविद्यारूपा हैं।। ६९।।

नैर्ऋत्यां तव या देवी सेयं त्रिपुरसुन्दरी।
वायौ यत्ते महाविद्या सेयं मातङ्गकन्यका॥ ७०॥

आपके नैर्ऋत्य कोण में जो देवी खड़ी हैं उसे *त्रिपुरसुन्दरी* कहते हैं, आपके वायव्य कोण में जो देवी खड़ी हैं वह महाविद्या मातङ्गकन्या (मातङ्गी) हैं।। ७०।।

ऐशान्यां षोडशी देवी महाविद्या महेश्वरी।
अहं तु भैरवी भीमा शम्भो मा त्वं भयं कुरु॥ ७१॥

आपके ईशान कोण में जो देवी खड़ी हैं वह महाविद्या महेश्वरी *षोडशी* देवी हैं और मैं जो आपके सामने भयङ्कर आकृतिवाली खड़ी हूँ, मेरा नाम *भैरवी* है। अतः हे शम्भो! आप इनमें से किसी से भी भय न मानिये।। ७१।।

एताः सर्वाः प्रकृष्टास्तु मूर्तयो बहुमूर्तिषु।
भक्त्या सम्भजतां नित्यं चतुर्वर्गफलप्रदाः।
सर्वाभीष्टप्रदायिन्यः साधकानां महेश्वर!॥ ७२॥

ये सब, अन्य देवियों में प्रधान देवियाँ हैं। हे शङ्कर! भक्तिभाव से इनकी उपासना करने वाले साधक पुरुषों को ये चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) के सभी फल प्रदान करने वाली तथा उनकी सभी मनःकामनाएँ पूर्ण करनेवाली हैं।। ७२।।

मारणोच्चाटनक्षोभमोहनद्रावणानि च।
वश्यस्तम्भनविद्वेषाद्यभिप्रेतानि कुर्वते॥ ७३॥

शत्रु का मारण, उच्चाटन, क्षोभण, मोहन, द्रावण, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण आदि जो भी साधक को अभिप्रेत हैं, ये देवियाँ उस को देने वाली हैं।। ७३।।

इमाः सर्वा गोपनीया न प्रकाश्याः कदाचन।
तासां मन्त्रं तथा यन्त्रं पूजाहोमविधिं तथा॥ ७४॥

इन सब देवियों की सिद्धियाँ गोपनीय हैं। इनके मन्त्र, यन्त्र, पूजा तथा होम की विधि— इन्हें किसी साधारण पुरुष के सम्मुख प्रकट नहीं करना चाहिये।। ७४।।

पुरश्चर्याविधानं च स्तोत्रं च कवचं तथा।
आचारं नियमं चापि साधकानां महेश्वर॥ ७५॥
त्वमेव वक्ष्यसि विभो नान्यो वक्तात्र विद्यते।
त्वदुक्तागमशास्त्रं तु लोके ख्यातं भविष्यति॥ ७६॥

हे महेश्वर! इनका पुरश्चर्याविधान, स्तोत्र या कवच तथा साधकों के आचार एवं नियम आप ही बताने में समर्थ होंगे। हे विभो! इनका दूसरा कोई वक्ता इस संसार में नहीं है। इस विषय में आपके द्वारा प्रोक्त *आगमशास्त्र* ही प्रमाणरूप में प्रसिद्धि प्राप्त करेगा।। ७५–७६।।

आगम एवं वेद की एकता

आगमश्चैव वेदश्च द्वौ बाहू मम शङ्कर!
ताभ्यामेव धृतं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥ ७७॥

हे शङ्कर! आगम (दर्शन एवं तन्त्रशास्त्र) और वेद— ये दोनों मेरी दो भुजाएँ हैं। इस स्थावर (पर्वत आदि) तथा जङ्गम (प्राणी) रूप समग्र जगत् को ये ही दोनों धारण किये हुए हैं।। ७७।।

यस्त्वेतौ लङ्घयेन्मोहात् कदाचिदपि मूढधीः।
सोऽधः पतितहस्ताभ्यां गलितो नात्र संशयः॥ ७८॥

जो कोई मूर्ख प्रमादवश इन दोनों (आगम एवं वेद) के आदेशों का उल्लङ्घन करता है उसके हाथ (कुष्ठ रोग से) गलकर शरीर से पृथक् होकर गिर पड़ते हैं— इसमें सन्देह नहीं है।। ७८।।

तावेव श्रेयसां हेतू दुरूहावतिदुर्घटौ।
सुधीभिरतिदुर्ज्ञेयौ पारावारविवर्जितौ॥ ७९॥

ये दोनों ही मनुष्यों के लिये मङ्गलप्रद हैं, परन्तु दोनों ही कठिनता से समझ में आने योग्य तथा कठिनता से ही साधनायोग्य हैं। विद्वज्जन भी इनका तत्त्व कठिनता से समझ पाते हैं। इन का आदि या अन्त नहीं है।। ७९।।

यश्चागमं वा वेदं वा समुल्लङ्घ्यान्यथा भजेत्।
तमुद्धर्तुमशक्ताऽहं सत्यमेव न संशयः॥ ८०॥

जो आगम या वेद का विपरीत अर्थ कर अन्यथा साधना करता है, उसका उस पाप से मैं भी उद्धार नहीं कर पाती— इसमें कोई सन्देह नहीं है।। ८०।।

विविच्य चानयोरैक्यं मतिमान् धर्ममाचरेत्।
कदाचिदपि मोहेन भेदयेन्न विचक्षणः॥ ८१॥

इन दोनों को (गुरुमुख द्वारा) विवेकपूर्वक ग्रहण कर, बुद्धिमान् पुरुष को धर्म का आचरण करना चाहिये। चतुर पुरुष कभी भी इन दोनों में भेद मानकर प्रमादवश कोई आचरण न करे।। ८१।।

आसां ये साधकास्ते तु सभायां वैष्णवा वताः।
मय्यर्पितान्तःकरणा भवेयुः सुसमाहिताः॥ ८२॥

इन देवियों के साधक भक्त विद्वत्सभा में 'वैष्णव' की तरह रहते हैं। वे अपने अन्तःकरण (चित्त) को मुझे समर्पित करके ही सम्यक् प्रकार से समाधि (साधना) कर पायेँगे।। ८२।।

गुरुप्रदत्त मन्त्र-यन्त्र की गोपनीयता

मन्त्रं यन्त्रं च कवचं दत्तं यद् गुरुणा स्वयम्।
गोपनीयं प्रयत्नेन तत्प्रकाश्यं न कुत्रचित्॥ ८३॥

मन्त्र, यन्त्र या कवच— जो गुरु ने कृपा करके स्वयं दिये हों, उनको प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये। साधारण (अनजान) पुरुष के सम्मुख उन्हें कभी प्रकट न करना चाहिये।। ८३।।

प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्यात्प्रकाशादशुभं भवेत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गोपयेत् साधकोत्तमः॥ ८४॥

उसके प्रकट करने से साधक की साधना में हानि होती है, तथा अशुभ (पाप) भी हो सकता है। अतः श्रेष्ठ साधक को ये सब (मन्त्र आदि) अत्यधिक प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखने चाहिये।। ८४।।

इति ते कथितं कर्म महादेव महामते!
अहं तव प्रियतमा त्वं च मेऽतिप्रियः पतिः॥ ८५॥

हे महामते! महादेव! मैंने आपको इन देवियों का कर्म बता दिया। और मैं तो आपकी प्रियपत्नी सती हूँ, और आप मेरे अतिप्रिय पति हैं।। ८५।।

पितुः प्रजापतेर्दर्पनाशायाद्य व्रजाम्यहम्।
तदाज्ञापय देवेश त्वं न गच्छसि चेत्ततः॥ ८६॥

आज मैं अपने पिता का अभिमान चूर्ण करने के लिये जाना चाहती हूँ। हे देवेश! यदि आप न जाना चाहें तो मुझे ही आदेश दें।। ८६।।

इति देव! ममाभीष्टं त्वयि वानुमताप्यहम्।
गच्छामि यज्ञनाशाय पितुर्दक्षप्रजापतेः"॥ ८७॥

हे देव! अब मेरा यही अभीष्ट है कि मैं अपने पिता दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने के लिये जाऊँ। यदि इसमें आप की भी अनुमति मिल जाय तो बहुत अच्छा हो"।। ८७।।

श्रीमहादेव०—इति तस्याः वचः श्रुत्वा भीतभीत इव स्थितः।
प्रोवाच वचनं शम्भुः कालीं भीमविलोचनाम्॥ ८८॥

श्री महादेव– यों डरे हुए के समान चुपचाप खड़े भगवान् शङ्कर ने देवी के ये वचन सुनकर, भयङ्कर नेत्रों वाली काली से यह निवेदन किया–।। ८८।।

शिव०— "जाने त्वां परमेशानीं पूर्णां प्रकृतिमुत्तमाम्।
अजानता मया मोहाद्यदुक्तं क्षन्तुमर्हसि॥ ८९॥

शिव– हे परमेश्वरि भगवति! मैं आप उत्तमा प्रकृति को अब पूर्ण रूप से जान पाया हूँ। अतः इससे पूर्व, प्रमाद या अज्ञान के कारण मैंने आपके विषय में जो कुछ भी अनुचित कह दिया हो उसे आप क्षमा करें।। ८९।।

त्वमाद्या परमा विद्या सर्वभूतेष्ववस्थिता।
स्वतन्त्रा परमा शक्तिः कस्ते विधिनिषेधकः॥ ९०॥

आप तो आद्या परा विद्या हैं, सभी प्राणियों में व्याप्त हैं, आप स्वतन्त्र पराशक्ति हैं, आपका नियन्ता तथा निषेधक कौन हो सकता है!।। ९०।।

त्वं चेद् गमिष्यसि शिवे दक्षयज्ञविनाशने।
का मे शक्तिस्त्वां निषेद्धुं कथं तत्रास्मि वा क्षमः॥ ९१॥

हे शिवे! यदि आप दक्षयज्ञविध्वंस के लिये जाना ही चाह रही हैं तो मुझमें क्या सामर्थ्य या शक्ति है कि मैं आप को वहाँ जाने से रोक सकूँ!।। ९१।।

यच्चोक्तं पतिभावेन मया ते ह्यप्रियं वचः।
तत्क्षमस्व महेशानि यथारुचि कुरुष्व च"॥ ९२॥

मेरा तो विनम्र निवेदन यही है कि मैंने पतिरूप में अब तक जो भी कभी कुछ अप्रिय कह दिया हो, उसे आप क्षमा करें। तथा इस विषय में आप की जो भी इच्छा हो वही करें"।। ९२।।

श्रीमहादेव०— एवमुक्ता महेशेन तदा सा जगदम्बिका।
ईषत्सुहास्यवदना वचनं चेदमब्रवीत्॥ ९३॥

श्रीमहादेव जी— भगवान् शङ्कर द्वारा ऐसा कहे जाने के बाद उस जगन्माता देवी ने स्मित हास्य करते हुए ये वचन कहे।। ९३।।

"त्वं तिष्ठ सर्वप्रमथैरत्र देव महेश्वर!
याम्यहं मत्पितुर्गेहे साम्प्रतं यज्ञदर्शने"॥ ९४॥

हे महेश्वर! आप इन सभी प्रमथों के साथ यहीं ठहरें। अब मैं अपने पिता के घर यज्ञ देखने के लिये जा रही हूँ"।। ९४।।

सती देवी का रथ से दक्षनगर-प्रयाण

इत्युक्त्वा स महादेवं ताराप्यूर्ध्वं व्यवस्थिता।
एकरूपा समभवत् सहसा तत्र नारद॥ ९५॥
अन्याश्च मूर्तयश्चाष्टौ सहसान्तर्हितास्तदा।
अथ शम्भुः समालोक्य गन्तुकामां सुरेश्वरीम्॥ ९६॥
प्रमथानाह भगवान्— "रथमानयतोत्तमम्।
युतं चायुतसिंहेन रत्नजालविराजितम्"॥ ९७॥

हे नारद! महादेव को यह कहकर वह ऊपर खड़ी हुई तारा भी अकस्मात् एकरूप हो गयी और अन्य आठ मूर्तियाँ सहसा वहीं अन्तर्हित हो गयीं। तब भगवान् शङ्कर ने उस सुरेश्वरी की अपने पितृगृह जाने की इच्छा जानकर प्रमथों को यह आदेश दिया— "एक ऐसा उत्तम रथ लाओ जिसमें दश हजार सिंह जुते हुए हों और जो रत्नमालाओं से आवृत हो"।। ९५-९७।।

तच्छ्रुत्वा तत्क्षणादेव प्रमथाधिपतिः स्वयम्।
रथं समानयत् सिंहैरयुतैर्युतमाशुगैः॥ ९८॥

यह आदेश सुनकर उन प्रमथों का प्रधान स्वयं ऐसा रथ लाया, जिसमें हजारों शीघ्रगामी सिंह जुते हुए थे।। ९८।।

तं रत्नजालसंयुक्तं रथं पर्वतसन्निभम्।
नानाविधपताकाभिः सर्वतः समलंकृतम्।
वायुप्रवेगैः सिंहैश्च युतं चायुतसङ्ख्यकै॥ ९९॥

वह रथ रत्नजाल से भलीभाँति अलङ्कृत था, वह पर्वत की तरह विशाल था और अनेक प्रकार की पताकाओं से सुसज्जित था और जिसमें वायुवेग से चलने वाले हजारों सिंह जुते हुए थे।। ९९।।

तां समारोपयामास प्रमथाधिपतिः स्वयम्॥ १००॥

प्रमथों के प्रधान ने स्वयं सती देवी को उस रथ में बैठाया।। १००।।

तस्मिन् रथे स्थिता काली विबभौ भीमरूपिणी।
सुमेरुशृङ्गमारूढा मेघपंक्तिरनुत्तमा।
त्रासयन्ती जगत् सर्वं युगान्ते मुनिसत्तम!॥ १०१॥

वह भयङ्कर रूप वाली काली देवी उस रथ में बैठकर ऐसी शोभित हुई मानो सुमेरु पर्वत पर कोई विशाल मेघों की माला (पंक्ति) ठहरी हुई हो हे मुनिश्रेष्ठ! (उस रथ में विराजमान प्रलयकाल में संसार को भयभीत करती देवी को देखकर सम्पूर्ण जगत् उद्विग्न हो रहा था।)।। १०१।।

ततो नन्दी रथं तूर्णं चोदयामास बुद्धिमान्॥ १०२॥

तब बुद्धिमान् सारथि नन्दी ने उस रथ को शीघ्र ही आगे बढ़ाया।। १०२।।

रुरोद शोकदुःखार्तः शम्भुः सोऽपि महामते!॥ १०३॥

हें महामते! यों अपने पितृगृह जाती हुई सती देवी को देखकर शोकसन्तप्त भगवान् शङ्कर उस समय अचानक रुदन करने लगे।। १०३।।

कालीं क्रोधान्वितां दृष्ट्वा चलिताः सर्वदेहिनः।
चण्डांशुरपि सम्भीतः पततीति धरातले।
संक्षुब्धाः सागराश्चासन् दिशो व्याकुलितास्तथा॥ १०४॥

उस क्रुद्ध काली देवी को देखकर सभी प्राणी चञ्चल हो उठे। सूर्य देवता भी उन्हें देखकर उस समय ऐसे दोलायमान हो रहे थे कि मानो वे भी आकाश से भूमि पर गिर पड़ेंगें। सभी समुद्र विक्षुब्ध हो उठे और सभी दिशाएँ भी व्याकुल हो गयीं।। १०४।।

वायुर्ववौ महावेगः, सूर्यं निर्भिद्य भूतले।
पेतुरुल्काश्च शतशो महाऽमङ्गलसूचकाः॥ १०५॥

उस समय वायु प्रबल वेग से चलने लगा। सैकड़ों उल्काएँ सूर्य से पृथक् हो होकर भूमि पर गिरने लगीं। ये सभी शकुन निकट भविष्य में होने वाले महा अमङ्गल के सूचक थे।। १०५।।

प्रायाच्च दक्षनिलयं स रथश्च क्षणार्धतः।
दृष्ट्वा तां भयसन्त्रस्ताः सतीं दक्षालयस्थिताः॥ १०६।।

श्रीमहाभागवते उपपुराणे कालीरथगमनं नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥

इस तरह सती देवी का वह रथ क्षणमात्र में ही दक्ष प्रजापति के आवास पर पहुँच गया। वहाँ उपस्थित जनसमूह भी उस सती भगवती का वह रूप देखकर भय से व्याकुल हो उठा।। १०६ ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'कालीरथ-गमनवर्णन' नामक
अष्टम अध्याय समाप्त।।

नवम अध्याय

[छाया सती का अग्निप्रवेश-वर्णन]

सती देवी का अपनी माता से मिलन

श्रीमहादेव०— अथ दाक्षायणी देवी मुक्तकेशी शुभस्तनी।
अवतीर्य रथात्तूर्णं प्रययौ मातृसन्निधिम्॥ १॥

श्रीमहादेव— तब वह खुले केश एवं शुभ स्तनों वाली दक्षपुत्री सती शीघ्र ही रथ से उतर कर सर्वप्रथम अपनी माता के पास पहुँची।। १।।

दक्षपत्नी प्रसूतिस्तु पुत्रीं दृष्ट्वा चिरागताम्।
क्रोडं कृत्वा मुखाम्भोजं वाससा परिमृज्य च।
चुम्बयन्ती सतीं प्राह विलपन्ती मुहुर्मुहुः॥ २॥

बहुत समय बाद घर में आयी सती को देखकर दक्षपत्नी प्रसूति ने उस को अपनी गोद में खींच लिया और अपनी साड़ी से बार बार उसका मुख पोंछने लगी और उसका चुम्बन लेने लगी। तथा उसने बराबर विलाप करते हुए सती से कहा—।। २।।

प्रसूति०— "मातस्त्वं सर्वदेवेशं पतिं प्राप्य सदाशिवम्।
अशोच्यासि गतास्यस्मान् क्षिप्त्वा शोके महार्णवे॥ ३॥

प्रसूति— "पुत्रि! तुम तो अपने देवाधिदेव पति को पाकर इस घर से चली गयी और हमें शोकसागर में निमग्न कर गयी।। ३।।

त्वमाद्या परमा शक्तिस्त्रिजगज्जननी स्वयम्।
त्वं ममोदरजातासि भाग्यं मम महत्तरम्॥ ४॥
दूरभूतोऽद्य मे शोकश्चिरेणाधिगतः सतिः।
यत्त्वां पश्यामि मद्गेहे कृपया समुपस्थिताम्॥ ५॥

हे पुत्रि! तूँ तो स्वयं आद्या शक्ति है, अतएव तीनों लोकों की माता है। तूँ मेरी कोंख से पैदा हुई हैं; अतः मैं अपना सौभाग्य मानती हूँ। आज तुम्हें इस घर में देख कर मेरा शोक दूर हो गया है।। ४–५।।

पितापि तव दुर्बुद्धिरज्ञात्वा परमं शिवम्।
तमेव विद्विषन्मोहात्कुरुते यज्ञमत्तमम्॥ ६॥

न त्वामसावाह्वयति न शिवं परमेश्वरम्।
उक्तोऽपि बहुधास्माभिर्मुनिभिश्च विचक्षणैः"॥ ७॥

परन्तु तेरे दुर्बुद्धि पिता ने तुम्हारे पति परमेश्वर शिव का महत्त्व न समझते हुए और मोहवश उनसे विद्वेष करते हुए इस विशाल यज्ञ का आयोजन करके भी उसमें न तुमको तथा न तुम्हारे पति को ही आमन्त्रित किया है। यद्यपि इस विषय में हम परिवार वालों ने तथा अनेक बुद्धिमान् मुनियों ने उनको बहुत समझाया है"।। ६–७।।

सती०— "शिवं यज्ञेश्वरं देवं सर्वदैवतदैवतम्।
अनादृत्य पिता यज्ञं कुरुते सर्वदैवतैः॥ ८॥
निर्विघ्नेन समाप्तिस्तु नैवास्य परिदृश्यते।
ममैवं जायते बुद्धिर्मन्यत्रां कोऽपि किञ्चन"॥ ९॥

सती— "सभी देवताओं में श्रेष्ठ, यज्ञेश्वर भगवान् शङ्कर का अनादर कर मेरे पिता ने अन्य देवताओं को मिलाकर यह यज्ञ आरम्भ तो कर लिया है, परन्तु मुझे इसकी निर्विघ्न परिसमाप्ति होती नहीं दिखायी देती। मुझे ऐसा ही लग रहा है; भले ही अभी कोई मेरी बात माने या न माने"।। ८–९।।

रानी प्रसूति का स्वप्न

प्रसूति०— "शृणु वत्से मया स्वप्ने यद्रात्राववलोकितम्॥ १०॥

प्रसूति— पुत्रि! आज रात्रि में, जब मैं स्वप्नावस्था में थी, मैंने जो कुछ देखा, उसे सुन।। १०।।

अतीव भयदं घोरं तुमुलं लोमहर्षणम्।
यत्र दक्षो देवगणैर्महायज्ञे व्यवस्थितः॥ ११॥

वहाँ मैंने भयङ्कर, रोम कँपा देनेवाला युद्ध देखा। जहाँ दक्ष प्रजापति देवगणों के साथ महायज्ञ में बैठा हुआ था।। ११।।

तत्राकस्मात् समायाता काचिद्देवी महेश्वरी।
महामेघप्रभाश्यामा मुक्तकेशी दिगम्बरा॥ १२॥

वहाँ अकस्मात् (अचानक) कोई महेश्वरी देवी प्रकट हुईं, जो महामेघ के समान काली थी, जिसके केश खुले हुए थे, और जो निर्वस्त्र भी थीं।। १२।।

चतुर्भुजा अट्टहासा ज्वलन्नेत्रत्रयोज्ज्वला।
तां दृष्ट्वा चकितो दक्षः पप्रच्छ विनयान्वितः॥ १३॥

जिसकी चार भुजाएँ थीं, जो बार बार अट्टहास कर रही थी। जिसके तीनों नेत्र जलते अङ्गारों के समान थे। उसे देखकर, दक्ष प्रजापति ने उससे बहुत ही विनम्र भाव से पूछा— ।। १३ ।।

"कासि कस्यासि दयिता कथमत्र समागता?"
सा प्राह "किं न जानासि सती ते तनया ह्यहम्" ॥ १४ ॥

"आप कौन हैं? किसकी भार्या हैं? यहाँ किस प्रयोजन से आयी हैं?" वह बोली— "क्या तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हारी ही पुत्री सती हूँ" ।।१४।।

ततो दक्षः शिवं निन्दन्नुवाच बहुधा वचः।
तच्छ्रुत्वा सा महाक्रोधाद्यज्ञवह्नौ विवेश ह॥ १५ ॥

यह सुनकर दक्ष ने भगवान् शङ्कर की अनके प्रकार से निन्दा करना प्रारम्भ किया। उसे सुनकर उस सती ने अतीव क्रोधवश उस यज्ञ कुण्ड में छलांग लगा दी।। १५।।

ततश्च भीमकर्माणः प्रमथाः कोटिशः क्षणात्।
समायाता भीमरूपास्ततश्च पुरुषो महान्॥ १६॥
महोग्रकर्मा चायातः कालान्तकयमोपमः।
स तु विष्णुमुखान् देवान् विनिर्जित्य महाध्वरम्॥ १७॥
बभञ्ज प्रमथैः सार्द्धं दक्षमुण्डं समच्छिनत्।
प्रजापतिर्वक्त्रहीनो यज्ञकुण्डतटे स्थितः॥ १८॥

उसके बाद, क्षणभर में ही करोड़ों भयङ्कर कृत्य वाले प्रमथ वहाँ आ पहुँचे। जिनकी आकृतियाँ भी भयङ्कर ही थीं। उनके पीछे ही पीछे उनसे भी अधिक शक्तिशाली कोई पुरुष भी वहाँ प्रकट हुआ। वह प्रलयकाल की मृत्यु के समान दिखायी दे रहा था। उन सबने उस यज्ञ के रक्षक विष्णु आदि प्रमुख देवों को जीतकर उस यज्ञ को विध्वस्त कर दिया। साथ ही दक्ष प्रजापति का शिर भी काट लिया। तब वह प्रजापति मुखविहीन होकर उस यज्ञकुण्ड के समीप बैठा ही रह गया।। १६–१८।।

महोग्ररूपिणः क्रुद्धाः खादितुं तं समुद्यताः।
कौपीनवाससः सर्वे जटामुकुटमण्डिताः॥ १९॥

वे महान् उग्ररूप वाले प्रमथ उस दक्ष को खाने के लिये दौड़े। वे सभी शरीर पर वस्त्र के नाम पर केवल कौपीन (लँगोटी) पहने हुए थे। जटा ही उनका एकमात्र मुकुट थीं।। १९।।

विभूतिलिप्तसर्वाङ्गाः शूलपाशासिपाणयः।
पिबन्ति शोणितं तस्य नृत्यन्ति च हसन्ति च॥ २०॥

उन्होंने अपने समग्र शरीर पर भस्म लपेट रखी थी। उनमें से किसी के हाथ में शूल था, किसी के हाथ में पाश (रस्सी) तो किसी के हाथ में तलवार थी। वे उसका रक्तपान कर नाचने एवं हँसने लगे।। २०।।

दृष्ट्वैवं तु तदा सर्वे दक्षस्य पुरवासिनः।
व्याकुला रोदमानाश्च हाहाकारपरायणाः॥ २१॥

यह सब देखकर उस दक्षपुर के निवासी प्रजाजन घबराकर रोने लगे, और हाहाकार करने लगे।। २१।।

ततो ब्रह्मा तु सम्प्रार्थ्य देवदेवं सदाशिवम्।
समानीय स्वयं प्राह "दक्षं जीवय जीवय।
'यज्ञं समापय विभो देवदेव प्रसीद माम्'॥ २२॥

तब पितामह ब्रह्मा ने उस देवाधिदेव भगवान् सदाशिव को, विविध प्रकार से प्रार्थना कर, शान्त किया। तथा उनसे बार–बार निवेदन किया कि वे दक्ष को पुनर्जीवित कर दें एवं यज्ञ को निर्विघ्न सम्पन्न होने दें। 'हे विभो! हे देवाधिदेव! आप हम पर प्रसन्न हों'।। २२।।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दक्षं स समजीवयत्।
दत्त्वैकं छागमुण्डं तु शिवनिन्दनकारणात्॥ २३॥

इस तरह ब्रह्मा द्वारा किये गये बारम्बार के प्रार्थना–वचन सुनकर भगवान् शङ्कर ने दक्ष को पुनर्जीवित कर दिया तथा शिव–निन्दा का दण्ड देते हुए, उस दक्ष के शरीर पर बकरे का शिर लगा दिया।। २३।।

एवं दृष्टो मया स्वप्नो रजन्याः शेष एव हि॥ २४॥

हे पुत्रि! मैंने यह स्वप्न उस समय देखा जब रात्रि का कुछ ही भाग शेष था। (अर्थात् उस समय ब्राह्म मुहूर्त हो गया था।)।। २४।।

सा च त्वं श्यामवर्णाद्य समायातासि मत्पुरम्।
यथा स्वप्ने मया दृष्टा तथा साक्षात् प्रदृश्यसे॥ २५॥

और आज ही हे श्यामवर्ण वाली! आप भी इस नगर में आ गयी। अब तो वह सब कुछ सत्य होता दिखायी दे रहा है, जो मैंने अभी रात्रि में स्वप्न में देखा था।। २५।।

भवितव्यं यथादृष्टं दक्षस्यापि प्रजापतेः।
यतस्त्वां स्वप्नसन्दृष्टां तथैव हि विलोकये॥ २६॥

अब तो तुम्हारे पिता दक्ष प्रजापति का भी वही भवितव्य (होने वाला) है जो मैंने स्वप्न में देखा है; क्योंकि मैंने स्वप्न में जिस देवी को देखा था उसका रूप (आकृति) तुम्हारे ही समान था।। २६।।

मातः कदाचित्तत् स्वप्नं विफलं सम्भविष्यति।
शिवनिन्दाफलं प्राप्य मूर्खत्वं सोऽपि हास्यति॥ २७॥
युवां ज्ञास्यति विद्वेषमचिरेणैव हास्यति।
त्वं चिरं जीव हे पुत्रि न ते हानिः कदाचन॥ २८॥

पुत्रि! हो सकता है कि मेरा वह स्वप्न सम्भवतः निष्फल हो जाय। शिवनिन्दा के कारण जो मूर्खता की जा रही है वह भी समाप्त हो जाय। तुम दोनों के वास्तविक रूप जानकर यह विद्वेष भी शीघ्र नष्ट हो जायगा। हे पुत्रि! तुम चिरकाल तक जीवित रहो, तुम्हें कोई कष्ट न हो।। २७-२८।।

भूयात् स्वप्ने वियोगस्तु दृष्ट आयुश्च वो भवेत्।
त्वं यस्य स ह्यशोच्यश्च धन्यश्च स हि भाग्यवान्।
नाहं त्वया कदाचित्तु त्यक्तव्या जननी तव''॥ २९॥

स्वप्न में वियोग होता रहे; परन्तु व्यवहार में तुम्हारी आयु बनी रहे। तूँ जिसकी (पत्नी) है, वह गुण-दोष के लिये अविचारणीय है। वह धन्य है। वह भाग्यवान् है। मैं इतना ही चाहती हूँ कि तूँ मुझे कभी न छोड़ना; क्योंकि मैं तेरी माँ हूँ''।। २९।।

श्रीमहादेव०— एवं सम्प्राप्य सम्मानं सती नत्वा च मातरम्।
अनुज्ञाता तया तूर्णं ययौ दक्षस्य सन्निधिम्॥ ३०॥

श्रीमहादेव जी— इस तरह भगवती सती ने अपनी माता से सम्मान प्राप्त कर, फिर उन्हें प्रणाम कर उनसे अनुमति लेकर वे शीघ्र ही दक्ष के पास पहुँची।। ३०।।

एतस्मिन्नेव काले तु दक्षस्य पुरवासिनः।
परस्परं समाजस्थाः ''किमेतन्महदद्भुतम्॥ ३१॥
सती कनकगौराङ्गी सौम्यरूपा वाराङ्गना।
भीमरूपा कथमभून्नवीनजलदप्रभा॥ ३२॥
मुक्तकेशी भीमदंष्ट्रा क्रोधादीप्तविलोचना।
द्वीपिचर्मपरीधाना वीरबाहुचतुष्टया॥ ३३॥
कथमेवं समायाता यज्ञेऽस्मिन् सुरसंसदि॥ ३४॥

इसी समय दक्ष के पुरवासीजन परस्पर इकट्ठे होकर सोचने लगे—

"अरे! यह कैसी अद्भुत बात है! यह सती तो पहले सुवर्ण की तरह गौर शरीर, सौम्य और सुन्दर स्त्री थी। आज नये मेघ के समान श्यामवर्ण की कैसे हो गयी! यह भयङ्कर क्यों लगती है? इसके केश खुले क्यों है? इसकी दाढें खुली हुई और भयङ्कर क्यों हो गयीं? क्रोध से इस के नेत्र लाल क्यों हो रहे हैं? इसने अपने शरीर पर चीते का चर्म क्यों लपेट रखा है? इसकी चार भुजाएँ कैसे हो गयीं? यह इस रूप में, इस यज्ञ के अवसर पर देवसभा में कैसे आ गयी?।। ३१–३४।।

मन्ये जगदिदं क्रोधाद् ग्रसन्तीव क्षणार्धतः।
न जाने का गतिर्वा स्यादद्य दक्षप्रजापतेः॥ ३५॥

यह ऐसी क्रुब्ध लग रही है मानो क्षणभर में समग्र जगत् का भक्षण कर जायगी! न जाने आज दक्ष प्रजापति की क्या गति होगी!।। ३५।।

कृत्वापमानमस्यास्तु यज्ञं तु कुरुते सुरैः।
नूनं तस्य फलं दातुं क्रुद्धैषा समुपागता॥ ३६॥

इसका अपमान कर देवताओं ने इस यज्ञ का समायोजन किया है, उसी का दण्ड देने के लिये मानो यह यहाँ क्रुद्ध हो कर आयी है!।। ३६।।

संहारकाले या विष्णुं ब्रह्माणमपि नाशयेत्।
सैषा चेन्नाशयेद्यज्ञं विष्णुर्वा किं करिष्यति!"॥ ३७॥

प्रलयकाल में जो इन ब्रह्मा एवं विष्णु का भी संहार कर डालती है, वह यदि इस साधारण यज्ञ को विध्वस्त कर डाले तो उसका विष्णु क्या कर सकेंगे!"।। ३७।।

अथागत्य सती यज्ञशालायां तं प्रजापतिम्।
ददर्श शिवविद्वेषोद्भवहर्षसमाकुलम्॥ ३८॥

तब उन भगवती सती ने यज्ञशाला में आकर उस दक्ष प्रजापति को देखा, जो शिव के विद्वेषजनित हर्ष से युक्त था।। ३८।।

तां दृष्ट्वा हव्यभोक्तारो देवाश्च ऋषयस्तथा।
बृहस्पतिः सुराश्चापि समकम्पन्त साध्वसात्॥ ३९॥

उसे देखकर, यज्ञ में अपने भाग ग्रहण करने वाले देवता, ऋषि, बृहस्पति एवं साधारण देवता भय से काँप उठे।। ३९।।

निश्चलाक्षास्त्यक्तकार्यास्तामेव ददृशुः पराम्।
देवाः सर्वे महात्मानः पटे चित्रार्पिता इव॥ ४०॥

उस परा देवी को देखकर उन्होंने अपने कार्य छोड़ दिये, उनके

नेत्र खुले रह गये। उस समय सभी देवता ऐसे स्तब्ध हो गये मानो किसी वस्त्र पर अङ्कित कोई चित्र हो!।। ४०।।

न नमन्ति भयात् केचित् साक्षाद्दक्षभयात् सुराः।
प्रणेमुर्मनसा कालीं देवीं संहारकारिणीम्॥ ४१॥

वहाँ बैठे देवता, दक्ष प्रजापति के भय से, उन्हें (सती को) प्रणाम नहीं कर पाये, अतः उन्होंने मन ही मन उस संहारकारिणी काली भगवती को प्रणाम किया।। ४१।।

ततो दक्षो विलोक्यैव सर्वानेव तथाविधान्।
दिक्ष्वक्षिणी प्रसार्यैव सर्वतः समलोकयत्॥ ४२॥

तब दक्ष प्रजापति ने, उस सभी देवताओं की यह स्थिति देखकर, चारों तरफ आखें फैला कर देखा।। ४२।।

ततो ददर्श तां कालीं क्रोधाद्दीप्तविलोचनाम्।
मुक्तकेशीं त्यक्तवस्त्रां धूमाञ्जनचयप्रभाम्॥ ४३॥

और उसने क्रोध से जलते नेत्रों वाली, खुले केशों वाली, निर्वस्त्र एवं धुएँ के समान श्यामवर्णवाली उस काली भगवती को देखा और उससे पूछा—।। ४३।।

दक्ष०— **"कासि कस्यासि दुहिता वनिता विगतत्रपा।**
कथमत्र समायाता सतीव समलक्ष्यसे?
किं वा शिवालयात् पुत्रि सती मे त्वं समागता?"॥ ४४॥

दक्ष— "अरी निर्लज्ज! तूँ कौन है? किसकी लड़की है? और किसकी पत्नी है? तूँ यहाँ क्यों आयी है? तूँ तो सती की तरह दिखायी दे रही है? या तूँ वस्तुतः ही शिव के घर से आयी मेरी कन्या सती है"?।। ४४।।

सती०— **"पितः! किमेतत्त्वां कन्यां मां न जानासि ते सतीम्॥ ४५॥**
त्वं मे पिताहं त्वत्कन्या पितरं त्वां नतास्म्यहम्"॥ ४६॥

सती— "अरे पिताजी! आप को यह क्या हुआ? आप अपनी पुत्री मुझ सती को भी नहीं पहचान रहे हैं? आप मेरे पिता हैं, मैं आपकी पुत्री हूँ, आप पिता को मैं प्रणाम करती हूँ"।। ४५–४६।।

दक्ष०— **"किं मातरेवं कस्मात्त्वं श्यामा भूतासि हा सति!।**
लसत्कनकगौराङ्गी शरच्चन्द्रसमप्रभा।
दिव्यवस्त्रपरीधाना पूर्वमासीर्गृहे मम॥ ४७॥

दक्ष– "पुत्रि! तुम्हारी यह दशा क्यों हो गयी? तुम श्यामवर्ण कैसे हो गयी हो? तुम तो पहले मेरे यहाँ सुवर्णवत् गौरवर्ण थी? शरद् ऋतु के चन्द्र के समान तुम्हारी कान्ति थी, तुम दिव्य वस्त्र धारण करती थी?।। ४७।।

सा त्वं विगतवस्त्राद्य सभायामागतासि किम्?
कथं वा मुक्तकेशी त्वं कथं वा भीमलोचना?॥ ४८॥

वह तुम आज विना कोई वस्त्र पहने इस भरी सभा में क्यों आयी हो? तुम्हारे केश खुले क्यों हैं? तुम्हारे नेत्रों से भयङ्करता क्यों प्रकट हो रही है?।। ४८।।

किमयोग्यं पतिं लब्ध्वा प्राप्ता त्वमीदृशीं दशाम्?
मम यज्ञमहोत्साहे त्वं नाहूता मया पुनः?॥ ४९॥

क्या (शिव जैसे) अयोग्य पति को पाकर तुम्हारी यह दशा हो गयी है? या फिर तुम को मैंने अपने इस यज्ञ महोत्सव में नहीं बुलाया—इसलिये तुम अप्रसन्न हो?।। ४९।।

शिवपत्नीत्वहेतोर्वै न तु स्नेहाद्यभावतः।
भद्रं कृतवती या त्वं स्वयमेव समागता॥ ५०॥

शिवपत्नी होने के कारण मैंने तुमको यज्ञ में नहीं बुलाया, न कि अपनी पुत्री होने पर भी स्नेह न होने के कारण! चलो, तुमने अच्छा ही किया कि तुम स्वयं चली आयी!।। ५०।।

त्वदर्थे वस्त्रभूषादि स्थापितं परिगृह्यताम्।
हा सुते प्राणतुल्यासि सति त्रैलोक्यसुन्दरि!।
प्राप्यायोग्यं पतिं शम्भुं दुःखितासि सुलोचने"॥ ५१॥

तुम्हारे लिये वस्त्र, अलङ्कारादि रखे हुए हैं, इन्हें स्वीकार करो। हे त्रैलोक्यसुन्दरि! पुत्रि! तुम तो मुझे अपने प्राणों के समान प्रिय हो। हे शोभन नेत्रों वाली! तूँ अपने लिये शङ्कर जैसा अयोग्य पति पाकर तो दुःखी नहीं हो?"।। ५१।।

इति दक्षोदितं श्रुत्वा शिवनिन्दाकरं वचः।
रुषा ज्वलितसर्वाङ्गी चिन्तयामास सा सती॥ ५२॥

अपने पति शङ्कर के लिये दक्ष द्वारा कहे गये इन वचनों को सुनकर सती के सभी अङ्ग प्रज्वलित हो उठे, और उसने सोचा–।। ५२।।

"क्षणार्धेनैव पितरं समखं दैवतैः सह॥ ५३॥
शक्नोमि भस्मसात्कर्तुं पितृहत्याभयेन तत्।
न करिष्यामि किन्त्वेनं मोहये सह दैवतैः"॥ ५४॥

"इन सभी देवताओं के साथ अपने पिता को उसके यज्ञसहित भस्म करने में मैं समर्थ हूँ; परन्तु पितृहत्या के भय से ऐसा नहीं कर पा रही हूँ। फिर भी इन्हें देवताओं सहित सम्मोहित तो कर ही सकती हूँ"।। ५३–५४।।

छायासती की रचना

एवं विचिन्त्य मनसा सती दाक्षायणी तदा।
आत्मनस्तुल्यरूपा सा छायां समसृजत्क्षणात्॥ ५५॥

ऐसा मन में सोचकर उस दक्षपुत्री ने उसी क्षण समान आकृति वाली एक छायासती का निर्माण किया।। ५५।।

छायासतीं सती प्राह—"मद्वाक्यमवधारय।
त्वमेकं कुरु मत्कार्यं यज्ञमेनं विनाशय॥ ५६॥

और उस छायासती से सती ने कहा–"तूँ मेरी बात ध्यान से सुन। तूँ मेरा एक कार्य कर कि इस यज्ञ का विनाश कर दे।। ५६।।

उक्त्वा बहुविधं वाक्यं पित्रा सह सुलोचने!
शिवनिन्दाकरं वाक्यं श्रुत्वा पितृमुखान्मम।
विशस्व यज्ञवह्नौ त्वं रुषा ज्वलितविग्रहा॥ ५७॥

हे सुलोचने! मेरे पिता को अनेक तरह की बातें कहकर तथा मेरे पिता के मुख से शिव की निन्दा में प्रयुक्त वचनों को सुनकर तूँ क्रोध प्रकट करती हुई इस प्रज्वलित यज्ञकुण्ड मे कूद जा इस कारण तेरा शरीर भस्म हो जायगा।। ५७।।

अहमस्य सुतेत्यस्माद् गर्वितः शिवनिन्दनम्।
करोति तेन तं गर्वं त्वमाशु परिचूर्णय॥ ५८॥

मैं इसकी पुत्री हूँ–इस कारण मुझे दुर्बल समझ कर यह मेरा पिता मेरे सम्मुख मेरे पति भगवान् शङ्कर की निन्दा करता है, अतः तूँ इसके अभिमान का इसी क्षण मर्दन कर दे।। ५८।।

त्वयि वह्नौ प्रविष्टायां श्रुत्वा देवो महेश्वरः।
शोकसन्तप्तहृदयः समायास्यति निश्चितम्॥ ५९॥

निर्जित्य देवान् विष्णुं च यज्ञरक्षणतत्परम्।
नाशयिष्यति यज्ञं च पितरं च वधिष्यति''॥ ६०॥

तेरे अग्नि में प्रविष्ट होने की बात सुनकर मेरे पति भगवान् शङ्कर निश्चय ही शोकविह्वल होकर यहाँ आयँगे और इन सब देवताओं को तथा यज्ञ-रक्षाकार्य में लगे भगवान् विष्णु को जीत कर इस यज्ञ का विध्वंस कर देंगे। साथ ही मेरे पिता का भी वध कर देंगें''।। ५९–६०।।

एवमुक्त्वा महाकाली छायाकालीं हसन्मुखी।
स्वयमन्तर्हिता भूत्वा देवी गगनमास्थिता॥ ६१॥
भेरीमृदङ्गनादैश्च तूर्यशब्दैर्महोत्सवैः।
तत्राभवत्पुष्पवृष्टिरतीव मुनिपुङ्गव॥ ६२॥
नैतदालोकितं कैश्चिद् देवैर्वापि महर्षिभिः।
तन्मायामोहितैस्तस्या निकटे संस्थितैरपि॥ ६३॥

वह महाकाली उस छायासती को ऐसा आदेश देकर स्वयं प्रसन्नमुख अन्तर्हित होकर आकाश में जा विराजी। हे मुनिपुङ्गव! उसी समय वहाँ भेरी एवं मृदङ्ग तथा तुरही आदि वाद्य बजने लगे। हे मुनिश्रेष्ठ! वहाँ अत्यधिक पुष्पवृष्टि होने लगी। परन्तु यह सब कुछ न तो वहाँ उस समय न उसके निकट खड़े देवताओं ने ही देखा, न महर्षियों ने या पुरुषों ने ही देखा; क्योंकि वे सभी भगवती की माया से मुग्ध हो चुके थे।। ६१–६३।।

अथ छायासती क्रुद्धा प्राह दक्षं प्रजापतिम्॥ ६४॥

तब उस छाया सती ने क्रुद्ध होकर दक्ष प्रजापति से कहा–।। ६४।।

सती०— ''किं निन्दसि सतीं मोहाद्देवदेवं सनातनम्।
वाचं नियच्छ कल्याणं यदीच्छसि सुदुर्मते!॥ ६५॥

सती– ''रे कुबुद्धि! तूँ प्रमादवश जगन्माता सती एवं देवाधिदेव शङ्कर की इस तरह निन्दा क्यों कर रहा है? यदि तूँ अपना कल्याण चाहता है तो अपनी वाणी को नियन्त्रित कर।। ६५।।

छिन्दे जिह्वां महामूर्ख! शिवनिन्दाकरामिमाम्।
चिरं यत्परमेशानो निन्दितः सुरसंसदि॥ ६६॥

रे महामूर्ख! अन्यथा मैं तुम्हारी इस शिव की निन्दा करने वाली जिह्वा को काट, फेक दूँगी। तूँ बहुत समय से इस देवसभा में बैठकर शिव की निन्दा कर रहा है।। ६६।।

फलं समागतमिति तस्याद्यैव हि लक्षये।
यो निन्दति महेशानं सर्वलोकैककारणम्।
शिरश्छिनत्ति तेषां स परमात्मा सदाशिवः"॥ ६७॥

मुझे लगता है उसका कुफल प्राप्त करने का तेरा समय आ गया है; क्योंकि जो निखिल जगत् की उत्पत्ति में कारणभूत भगवान् महेश्वर की निन्दा करता है, परमात्मा सदाशिव उसका सिर शरीर से पृथक् कर देते हैं"।। ६७।।

दक्ष०— "बालिके स्वल्पमतिके मा पुनर्ब्रूहि मेऽग्रतः॥ ६८॥

दक्ष— मन्दबुद्धि बालिके! मेरे सामने फिर कभी उस शिव की प्रशंसा न करना।। ६८।।

जानामि तं दुराचारं प्रेतभूमिनिवासिनम्।
स्वयं समार्जितं बुद्ध्या पतिं भूतगणाधिपम्॥ ६९॥

मैं उस दुराचारी एवं प्रेत भूमि में के साथ रहने वाले, भूतों के पति एवं बुद्धिविहीन तेरे पति को अच्छी तरह जानता हूँ।। ६९।।

गत्वा स्वयोग्यं परमं सुखमाप्नोषि दुर्मते!
अहं प्रजापतिर्दक्षो देवदेवीषु गोचरः।
ममाग्रे किं शिवं स्तौषि यच्छ्रोतुं नैव शक्यते"॥ ७०॥

हे दुर्बुद्धि! तूँ उसी के पास रहकर सुख मानती है तो वहीं रह। मैं सभी देव और देवियों में प्रसिद्ध दक्ष प्रजापति हूँ। मेरे सामने तूँ उसकी क्या स्तुति कर रही है? जिसे सुनना मुझे सह्य नहीं है"।। ७०।।

छायासती०— "पुनर्ब्रवीमि हे दक्ष! यदि कल्याणमिच्छसि।
त्यज पापमतिं भक्त्या भज देवं सदाशिवम्॥ ७१॥
यदि मोहात् परात्मानं पुनर्निन्दसि शङ्करम्।
तदा त्वां समखं शम्भुर्नाशयिष्यति निश्चितम्"॥ ७२॥

छायासती— "रे दक्ष! मैं तुझे फिर समझा रही हूँ। यदि तूँ अपना हित चाहता है तो इस पापबुद्धि (मिथ्यादृष्टि) को छोड़ दे और भक्तिभाव से भगवान् सदाशिव की सेवा में लग जा। यदि मोह (प्रमाद) वश होकर फिर भी परमात्मस्वरूप भगवान् शङ्कर की निन्दा में ही लगा रहेगा तो वे यहाँ आकर तेरे यज्ञसहित तुझे विध्वस्त कर डालेंगे"।। ७१-७२।।

दक्ष०— "कुपुत्रि दुश्चरित्रा त्वं चक्षुषोर्मे बहिर्भव॥ ७३॥

दक्ष– "कुपुत्रि! तूँ दुष्टचरित्र वाली है, तूँ मेरी आँखों के सामने से दूर हट जा।। ७३ ।।

प्राप्ता यदा पतिं शम्भुं तदैव त्वं मृतासि मे।
पुनः पुनः स्मारयसि कथं रुद्रं निजं पतिम्॥ ७४॥

सचाई तो यह है कि जब तूने शम्भु को पतिरूप में वरण किया था तेरी मृत्यु तो मेरे लिये उसी दिन हो चुकी थी। अब तूँ मुझे क्या बार–बार अपने पति शम्भु का स्मरण करा रही है!।। ७४ ।।

तुषानल इवान्तस्थो येन मे वर्धतेऽनलः।
त्वं मे कुपुत्रि दुर्बुद्धिः शिवं पतिमुपागता॥ ७५॥

उसे सुनकर मेरा क्रोध तुष की अग्नि की तरह अन्दर ही अन्दर प्रज्वलित हो रहा है। कुपुत्रि! तेरा मन्दभाग्य था कि तुझे शम्भु जैसा निकृष्ट पति मिला।। ७५ ।।

त्वद्दर्शनेन मद्देहो दह्यते शोकवह्निना।
सा त्वं मे चक्षुषोर्बाह्यं शीघ्रं भव दुरात्मिके!
भर्तुर्गुणानुवादं ते मा कुरुष्व ममाग्रतः"॥ ७६॥

तुझे देखकर मेरा शरीर शोकाग्नि से प्रतप्त हो रहा है। अतः हे दुरात्मिके! तूँ मेरी आँखों से दूर हो जा। मेरे सामने अपने पति का व्यर्थ गुणगान न कर"।। ७६ ।।

श्रीमहादेव०— एवमुक्ता तु सा देवी छायाकाली रुषान्विता॥ ७७॥
दधौ भयानकां मूर्तिं ज्वलन्नेत्रत्रयोज्ज्वलाम्।
नक्षत्रलोकसम्प्राप्तमस्तकां विस्तृताननाम्॥ ७८॥
आपादलम्बिसंमुक्तकेशपाशविराजिताम्।
मध्याह्नार्कसहस्राभां युगान्तजलदप्रभाम्॥ ७९॥

श्रीमहादेव जी– दक्ष प्रजापति द्वारा यों धमकाये जाने पर, वह छायासती क्रुद्ध होती हुई अपना भयानक रूप बना बैठी। उस समय उसके तीनों नेत्र क्रोध से अभिभूत होकर लाल अङ्गार के समान लग रहे थे। उसका मस्तक आकाश में तारासमूह को स्पर्श कर रहा था, उसने अपना मुख पूर्णतः खोल दिया था। उसके केश खुलकर पीछे पैरों तक लटक रहे थे, उसके शरीर से मध्याह्न के हजारों सूर्यों के समान उष्ण किरणें निकल रही थीं, उसका शरीर प्रलयकाल के मेघों के समान काला पड़ गया था।। ७७–७९ ।।

ततः सा क्रोधदीप्ताङ्गी साट्टहासं मुहुर्मुहुः।
कृत्वा गम्भीरया वाचा दक्षमाह महेश्वरी॥ ८०॥

तब उस क्रोध से प्रदीप्त शरीर वाली महेश्वरी ने बार बार अट्टहास करके दक्ष प्रजापति से गम्भीर वाणी में यह कहा।। ८०।।

"अहं ते चक्षुषोर्बाह्यं भविष्यामि न केवलम्।
त्वज्जातदेहबाह्यापि भविष्याम्यचिरादिह"॥ ८१॥

"मैं अब तेरी आँखों से ही दूर नहीं हो जाऊँगी, अपितु तुझसे उत्पन्न इस शरीर से भी शीघ्र ही दूर हो जाऊँगी"।। ८१।।

एवं छायासती देवी क्रोधाद्दीप्तविलोचना।
पश्यतां सर्वदेवानां यज्ञवह्नौ समाविशत्॥ ८२॥

वह देवी छायासती, क्रोध से लाल नेत्रकर, सब देवताओं के देखते ही देखते, उस प्रज्वलित विशाल यज्ञकुण्ड में कूद गयी।। ८२।।

ततश्चचाल वसुधा वायुः सुतुमुलो ववौ।
पेतुः सूर्यं विनिर्भिद्य महोल्का धरणीतले॥ ८३॥

उसी क्षण पृथ्वी काँपने लगी, वायु भयङ्कर वेग से बहने लगी। सूर्य से बड़ी-बड़ी उल्काएँ (प्रज्वलित पिण्ड) टूट-टूटकर पृथ्वी पर गिरने लगीं।। ८३।।

दिशश्च व्याकुला ह्यासन् ववर्षुः शोणितं घनाः।
देवाः सर्वे विवर्णाः स्युः कुण्डेऽग्निर्निर्ववौ ततः॥ ८४॥

दिशाएँ भी व्याकुल हो उठीं। बादलों से रक्त की वर्षा होने लगी। सभी देवता विवर्ण (विकृत रूप वाले) हो गये तथा उस यज्ञकुण्ड की अग्नि बुझ गयी।। ८४।।

शृगालकुक्कुरैर्हव्यं भक्षितं यज्ञमण्डपे।
श्मशानवद्यज्ञगृहं समभूच्च क्षणार्धतः॥ ८५॥

उस समय गीदड़ एवं कुत्ते निर्भीकता के साथ उस यज्ञमण्डप में रखा हवनद्रव्य खाने लगे। यों वह यज्ञमन्दिर क्षणभर में ही श्मशानभूमि के समान हो गया।। ८५।।

दक्षोऽपि म्लानवदनो निःश्वासान् मुमुचे मुहुः।
पुनर्यथाकथञ्चिच्च यज्ञं प्रावर्तयन् द्विजाः॥ ८६॥

यह सब देखकर दक्ष प्रजापति का मुख भी मलिन हो गया। वह

बार–बार ऊँची श्वास छोड़ने लगा। तब ब्राह्मणों ने पुनः प्रयास कर जैसे तैसे यज्ञ प्रारम्भ किया।। ८६।।

देवास्तु चकिता आसन् भयात् पशुपतेर्मुने!
ऊचुः परस्परं सर्वे देवाश्चापि महर्षयः॥ ८७॥

हे मुने! देवता लोग पशुपति (महादेव) के भय से चकित (किङ्कर्तव्य-विमूढ़) हो गये थे। तब वे (देवता एवं वहाँ उपस्थित प्रधान ऋषि) परस्पर यों बात करने लगे–।। ८७।।

"वार्ताऽशुभा क्षणेनैव सञ्चरत्यतिदूरतः।
अद्यैव श्रोष्यति शिवः सत्या देहविसर्जनम्॥ ८८॥

"अशुभ बात बहुत शीघ्र और बहुत दूर तक फैल जाया करती है। सती देवी के इस प्रकार देहविसर्जन की बात आज ही भगवान् शङ्कर तक पहुँच जायगी।। ८८।।

स तु क्रुद्धो महाराजो जगत्संहारकारकः।
न जाने कस्य किं कुर्यात्किं वा सृष्टिं विलोपयेत्"॥ ८९॥

इसे सुनते ही जगत् का संहार करने की सामर्थ्य वाले वह देवाधिदेव शङ्कर क्रुद्ध होते हुए यहाँ आकर न जाने किसका क्या न कर डालें! ऐसा न हो कि वे इस समग्र सृष्टि का ही विलोप कर दें"।। ८९।।

नारदस्तु सभामध्यादतर्कितरवोत्थितः।
कैलासं प्रययौ शीघ्रं महर्षिर्मुनिपुङ्गवः॥ ९०॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे छायासत्यग्निप्रवेशवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इसी समय मुनिश्रेष्ठ नारद, विना किसी से कुछ कहे, सभा से उठकर शीघ्र ही कैलास पर्वत की तरफ चल दिये।। ९०।।

श्री महाभागवत उपपुराण में
'छायासती का अग्निप्रवेशवर्णन' नामक
नवम अध्याय समाप्त॥

दशम अध्याय

[दक्षयज्ञविध्वंसवर्णन]

नारद द्वारा सती–मरण की सूचना

श्रीमहादेव०— अथागत्य मुनिश्रेष्ठो नारदो ब्रह्मणः सुतः।
अश्रुपूर्णेक्षणं प्राह देवदेवं त्रिलोचनम्॥ १॥

श्री महादेव– वे ब्रह्मा के पुत्र मुनिश्रेष्ठ (नारद) कैलाश पर्वत पर आकर रोते हुए देवाधिदेव त्रिलोचन भगवान् शङ्कर से यों बोले–।। १।।

नारद०— "देवदेव! नमस्तुभ्यं नारदोऽहं महेश्वर!
दक्षालयात् समायातो वार्तां त्वं श्रुतवान्नहि॥ २।।

नारद– "हे देवदेव, महेश्वर! आपको प्रणाम है, मैं नारद हूँ। दक्षपुरी से आ रहा हूँ। मुझे ज्ञात नहीं है कि आपने सुना है कि नहीं!।। २।।

दक्षयज्ञे गता देवी सती ते प्राणवल्लभा।
तव निन्दां ततः श्रुत्वा जहौ देहं रुषान्विता॥ ३॥

आप की प्राणप्रिया पत्नी सतीदेवी दक्षयज्ञ में गयी थी। वहाँ उसने आपकी निन्दा सुनकर क्रुद्ध हो अपनी देह का त्याग कर दिया।। ३।।

दक्षः सतिसतीत्येवमाक्षिप्य स मुहुर्मुहुः।
पुनर्दधौ मनो यज्ञे देवा गृह्णन्त चाहुतिम्"॥ ४॥

दक्ष ने बार बार सती, सती यह कहकर, पुनः यज्ञ पूर्ण करने में अपना ध्यान लगाया और सभी देवताओं ने आहुति लेना प्रारम्भ कर दिया"।। ४।।

इति नारदवक्त्रात् स श्रुत्वा दुःखपरं वचः।
रुरोद बहुधा शोकाद् देवदेवस्त्रिलोचनः॥ ५॥

यों नारद के मुख से यह दुःखद समाचार सुनकर वे देवाधिदेव त्रिलोचन भगवान् शङ्कर नाना प्रकार से शोक प्रकट करते हुए रोने लगे।। ५।।

भगवान् शङ्कर का सतीविषयक विलाप

"हा हा सति गता क्वासि त्यक्त्वा मां शोकसागरे।
त्वया विना कथं चाद्य जीवितं धारये ह्यहम्॥ ६॥

शङ्कर– "हे सति! तुम मुझे शोकसागर में निमग्न कर कहाँ चली गयी? तुम्हारे विना अब मैं कैसे अपना जीवन धारण करूँगा?।। ६ ।।

किं त्वं पितृगृहे गन्तुं निषिद्धा बहुधा मया।
तेन सञ्जातरोषा मां परित्यज्य गता शिवे!"॥ ७॥

क्या मैंने तुमको तुम्हारे पितृगृह जाने के लिये बार–बार निषिद्ध नहीं किया था? हे शिवे! फिर भी तुम मुझ पर क्रोध प्रकट करती मुझे छोड़कर चली ही गयी!"।। ७ ।।

विलप्यैवं बहुविधं महादेवस्त्रिलोचनः।
चुक्रोध रक्तनेत्रास्यो बभूव च महामुने!॥ ८॥

महामुने! इस तरह, नाना प्रकार से विलाप करते हुए उन देवाधिदेव लोचनत्रयधारी भगवान् शङ्कर के मुख और नेत्र क्रोध से लाल हो गये।। ८।।

रुद्रं क्रोधान्वितं दृष्ट्वा सर्वभूतानि तत्रसुः।
क्षुब्धमासीज्जगत्सर्वं चचाल वसुधा भृशम्॥ ९॥

रुद्र को यों क्रोधान्वित देखकर सभी प्राणी त्रास (भय) मानने लगे और वह समग्र जगत् क्षुब्ध हो उठा। सम्पूर्ण पृथ्वी भी अत्यधिक काँपने लगी।। ९।।

अथोर्ध्वनयनादग्निः प्रादुरासीन्महाद्युतिः।
तस्मादग्नेः समभवदेकः परमपूरुषः॥ १०॥

तब उनके ऊपर वाले नेत्र से एक बहुत चमक वाली अग्नि प्रकट हुई। उस अग्नि से एक परम पुरुष प्रकट हुआ।। १०।।

वीरभद्र को यज्ञ–विध्वंस का आदेश

प्रदधन्महतीं मूर्तिं कालान्तकयमोपमः।
ज्वलद्वह्निस्फुलिङ्गाभनेत्रत्रयभयानकः॥ ११॥

उसने प्रलयकाल की मृत्यु के समान विकराल रूप धारण किया। जिसके तीनों नेत्रों से जलते हुए अङ्गारों के समान आभा निकल रही थी।।११।।

विभूतिलिप्तसर्वाङ्गश्चन्द्रार्धकृतशेखरः।
मध्याह्नकोटिसूर्याभजटामण्डितमस्तकः॥ १२॥

उसके समग्र शरीर पर भस्म लिपटी हुई थी। उसके मस्तक पर अर्धचन्द्र शोभित हो रहा था। मध्याह्न के करोड़ों सूर्य की तरह देदीप्यमान मस्तक पर जटाएँ शोभित हो रही थीं।। १२।।

स प्रणम्य महादेवं देवदेवं महेश्वरम्।
त्रिश्च प्रदक्षिणीकृत्य कृताञ्जलिपुटोऽब्रवीत्॥ १३॥

उसने उन देवाधिदेव महादेव भगवान् शङ्कर को प्रणाम किया, तीन बार प्रदक्षिणा की, तथा वह हाथ जोड़कर यों बोला— ।। १३ ।।

"किं पितः करवाण्यद्य ब्रह्माण्डं सचराचरम्।
नाशयामि क्षणार्धेन यद्यनुज्ञां ददासि मे॥ १४॥

हे पिता! मैं क्या करूँ? आज्ञा दीजिये! क्या मैं इस स्थावर जङ्गम सहित सम्पूर्ण जगत् को आधे क्षण में नष्ट कर दूँ?।। १४ ।।

किमिन्द्राद्यान् सुरश्रेष्ठान् केशे धृत्वा तवाग्रतः।
आनयामि यमं मृत्युं नयामि वद चेद्विभो!॥ १५॥

यदि आप कहें तो हे विभो! इन्द्र आदि देवताओं को, उनके केश पकड़ कर आप के सम्मुख ले आऊँ या मृत्युराज यम को आपके सामने लाकर खड़ा कर दूँ।। १५।।

प्रतिज्ञा मे महेशान सत्यं सत्यं ब्रवीमि ते।
यथा त्वं शमनार्थाय कथयिष्यसि मामिह॥ १६॥
तथैव शमयिष्यामि अपि शक्रं सुरेश्वरम्।
अपि वैकुण्ठनाथश्चेत् तत्सहायं करिष्यति।
तदा तं कुण्ठितास्त्रं च करिष्येऽहं तवाज्ञया"॥ १७॥

हे महेश्वर! मैं आप को सत्य ही बता रहा हूँ कि मैंने प्रतिज्ञा कर रखी है कि आप जिसके शमन के लिये भी आज्ञा देंगे उसको यहाँ तक कि देवराज इन्द्र को भी बाँधकर आपके सामने ले आऊँगा, भले ही भगवान् वैकुण्ठाधिपति श्री विष्णु ही उनकी सहायता के लिये क्यों न आ जायँ, मैं उनके अस्त्रों को भी कुण्ठित कर दूँगा"।। १६-१७।।

शिव०— "त्वं नाम्ना वीरभद्रोऽसि प्रमथानां पतिः स्वयम्।
गत्वा दक्षपुरं यज्ञं नाशयाशु ममाज्ञया॥ १८॥
तत्सहायाश्च ये देवा मां परित्यज्य चागताः।
तेषामपि नियन्ता त्वं भव वत्स ममाज्ञया॥ १९॥
मन्निन्दनरतं वक्त्रं दक्षस्यापि प्रजापतेः।
छिन्धि गच्छ द्रुतं तत्र मा चिरं कुरु हे सुत"॥ २०॥

शङ्कर— "तुम्हारा नाम वीरभद्र है, तुम मेरे इन प्रमथों के प्रधान हो।

तुम मेरे आदेश से शीघ्र ही दक्षपुरी जाकर यज्ञ को विध्वस्त कर दो। वहाँ जो भी देवता, मेरा साथ छोड़कर उस के साथ यज्ञ में उपस्थित हैं। हे वत्स! उन्हें भी तूँ, मेरी आज्ञा से नियन्त्रित कर (मेरी निन्दा में लगे दक्ष प्रजापति का भी शिर काट डालहे पुत्र! अब तूँ विलम्ब न कर, वहाँ शीघ्र ही जा"।। १८–२०।।

इत्युक्त्वा वीरभद्रं स महादेवस्त्रिलोचनः।
निःश्वासान्मुमुचे तस्माद् गणा जाताः सहस्रशः॥ २१॥
सर्वे ते भीमकर्माणः सर्वे युद्धविशारदाः।
गदासिमुसलप्रासशूलपाषाणपाणयः ॥ २२॥

इस तरह उस महादेव त्रिलोचन ने वीरभद्र को आदेश देकर एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी। उस निःश्वास से हजारों गण प्रकट हुए। उन सभी के कृत्य भयङ्कर थे तथा वे सब युद्धकला में निपुण थे। उनमें से किसी के हाथ में गदा थी, किसी के हाथ में तलवार। किसी के हाथ में मूसल, प्रास (भाला) या शूल था तो कोई विशाल शिला ही उठाये हुए था।। २१–२२।।

तैर्वृतो वीरभद्रश्च प्रणम्य परमेश्वरम्।
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा निर्जगाम महामतिः॥ २३॥
सिंहनादं ततः कृत्वा सर्वे ते प्रमथाः क्षणात्।
ययुर्दक्षपुरीं यत्र यज्ञमारब्धवान् हि सः॥ २४॥

उनसे घिरा वीरभद्र भगवान् शङ्कर को प्रणाम कर तीन प्रदक्षिणाएँ कर निकल पड़ा। वे सब प्रमथ सिंहनाद करते हुए वीरभद्र के साथ चल दिये। वे शीघ्र ही दक्षपुरी पहुँच गये, जहाँ दक्ष ने पुनः यज्ञ प्रारम्भ कर दिया था।। २३–२४।।

वीरभद्र द्वारा यज्ञविध्वंस

अथ क्रुद्धो वीरभद्रः प्रमथानाह कोपितान्।
"यज्ञं नाशयत क्षिप्रं विद्रावयत वै सुरान्"॥ २५॥
ततस्ते प्रमथाः सर्वे बभञ्जुस्तं महाध्वरम्॥ २६॥

वहाँ जाकर वीरभद्र ने क्रोध दिला कर प्रमथों को आज्ञा दी। इस यज्ञ को तत्काल विध्वस्त कर दो और इन देवताओं को यहाँ से भगा दो। तब उन प्रमथों ने दक्ष के यज्ञ को विध्वस्त करना प्रारम्भ किया।। २५–२६।।

केचिदुत्पाद्य यूपांश्च चिक्षिपुश्च दिशो दश।
कश्चिन्निर्वापयामास कुण्डं हव्यं तथापरे॥ २७॥

बुभुजुः क्रोधताम्राक्षा देवान् व्यद्रावयँस्तथा।
एवं विध्वंसितं यज्ञं प्रमथैर्भीमरूपिभिः ॥ २८ ॥

किसी ने यज्ञस्तूपों को उखाड़ कर दसों दिशाओं में फैंक दिया, किसी ने यज्ञकुण्ड की अग्नि शान्त कर दी, किसी ने हव्य पात्रों को फोड़ दिया। किसी ने क्रोधाभिभूत होकर देवताओं को प्रताड़ित करना आरम्भ किया। इस तरह उन भीमरूपधारी प्रमथों ने उस यज्ञ को पूर्णतः विध्वस्त कर दिया।। २७–२८।।

दृष्ट्वा विष्णुरथागत्य प्रमथानब्रवीद्वचः।
"कथं विनाशितो यज्ञो युष्माभिर्देवता अपि।
कथं विद्राविता यूयं के तद्वदत मा चिरम् ?" ॥ २९ ॥

यह सब विष्णु भगवान् ने देखा तो वे वहाँ आये और प्रमथों से कहने लगे– "आप लोगों ने यह यज्ञ क्यों विध्वस्त कर दिया? और आप लोग इन देवताओं को क्यों मारपीट रहे हो? आप लोग कौन हैं? शीघ्र बताइये!"।। २९।।

प्रमथाः— "वयं श्रीदेवदेवेन प्रेषिताः प्रमथाः प्रभो।
शिवापमानजनकं नाशयामो महाध्वरम्" ॥ ३० ॥

प्रमथ– "हे प्रभो! हम लोगों को देवाधिदेव भगवान् शङ्कर ने शिव की अवमानना करने वाले इस महायज्ञ को विध्वस्त करने के लिये भेजा है"।। ३०।।

अथाह प्रमथान् क्रुद्धो वीरभद्रः प्रतापवान् ॥ ३१ ॥
"क्व च दक्षो दुराचारः शिवद्वेषपरायणः।
क्व च ते हव्यभोक्तारो धृत्वानयत मत्पुरः" ॥ ३२ ॥

तब प्रतापी एवं क्रुद्ध वीरभद्र ने प्रमथों को आदेश दिया– "वह शिव से द्वेष करने वाला दुराचारी दक्ष कहाँ है? उस यज्ञ का भाग लेने वाले वे देवता कहाँ है? उन सबको पकड़कर मेरे सामने लाओ"।। ३१–३२।।

इत्याज्ञप्ता गणाः क्रुद्धाः प्राभ्यधावन् दिशो दश।
गृहीत्वा त्रिदशान् सर्वान् ममर्दुः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ ३३ ॥

यह आदेश पाकर वे प्रमथ गण क्रुद्ध होकर दशों दिशाओं में इधर–उधर दौड़े और जहाँ जो मिला उसी देवता को पकड़ कर क्रोध में मारा–पीटा।। ३३।।

केचित् सूर्यं प्रगृह्यैव दन्तपंक्तिमचूर्णयन्।
कश्चिदग्निं बलाद् धृत्वा जिह्वां तस्य समच्छिनत्॥ ३४॥

किन्ही ने सूर्य (पूषा) को पकड़ा और उसके दाँत तोड़ दिये। किसी ने अग्निदेवता को बलपूर्वक पकड़कर उसकी जिह्वा ही काट डाली।। ३४।।

भयात् पलायमानस्य यज्ञस्य मृगरूपिणः।
कश्चिच्छिरोऽच्छिनन्नासां सरस्वत्याश्च कश्चन॥ ३५॥

किसी ने मृग का रूप धर कर डरकर भागते हुए यज्ञदेवता का ही शिर काट डाला। किसी ने सरस्वती की नाक काट डाली।। ३५।।

अर्यम्णश्चाच्छिनद् बाहू ओष्ठमङ्गिरसोऽपरः।
यमं बबन्ध कश्चिच्च नैर्ऋतं वरुणं तथा॥ ३६॥

किसी ने अर्यमा (बारह सूर्यों में से एक) की बाहु काट डाली। दूसरे ने अङ्गिरा ऋषि के ओष्ठ काट डाले। कोई यमराज को बांध कर ले आया। किसी ने निर्ऋति और वरुण देवता को ही पकड़ लिया।। ३६।।

प्रमथा ब्राह्मणान् दृष्ट्वा प्रणम्य विनयान्विताः।
"भयं त्यजत हे विप्रा यात याते" ति चाब्रुवन्॥ ३७॥

परन्तु उन प्रमथों ने (वेदपाठी) ब्राह्मणों को देखकर उनके सम्मुख विनीत भाव से कहा— "ब्राह्मणो! आप लोग डरें नहीं, आप लोग जाइये"।। ३७।।

तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणाः सर्वे वस्त्रालङ्करणादिकम्।
यज्ञलब्धं गृहीत्वैव प्रययुः स्वीयमालयम्॥ ३८॥

यह सुनकर सभी ब्राह्मण वहाँ यज्ञ में प्राप्त वस्त्र एवं आभूषणादि लेकर अपने-अपने घर चले गये।। ३८।।

सहस्राक्षो महाबुद्धिर्मायूरं वपुरास्थितः।
उड्डीय पर्वतं गत्वा छन्नः कौतुकमैक्षत॥ ३९॥

अपने को अधिक बुद्धिमान् समझने वाला सहस्रनेत्रधारी इन्द्र मोर के रूप में वहाँ से उड़कर, एक पर्वत पर जाकर छिप बैठा और वहीं से सब घटनाएँ देखने लगा।। ३९।।

भगवान् विष्णु का सङ्कल्प

एवं विद्रावितान् दृष्ट्वा प्रमथैर्देवपुङ्गवान्।
विष्णुर्नारायणो मौनी चिन्तयामास चेतसा॥ ४०॥

यों उन प्रमथों द्वारा सभी प्रमुख देवताओं को भगाया हुआ जानकर नारायणस्वरूप भगवान् विष्णु ने मौन भाव से मन में विचार किया—।। ४०।।

"दक्षो मूढमतिः शम्भुं विद्विषन् कुरुते मखम्।
तस्मै तादृक् फलं नो चेद्विफलं स्याच्छ्रुतीरितम्॥ ४१॥

"मन्दबुद्धि दक्ष ने भगवान् शङ्कर से विद्वेष करते हुए यह यज्ञ प्रारम्भ किया है। यदि उसे उस प्रकार का फल न मिला तो जो जैसी भावना से यज्ञ प्रारम्भ करता है उसे वैसा ही फल मिलता है— यह वेदवचन निष्फल हो जायगा।। ४१।।

शिवविद्वेषणेनैव विद्विष्टोऽस्मि न संशयः।
अहं शिवः शिवो विष्णुर्भेदो नास्त्यावयोर्यतः॥ ४२॥

शिव से विद्वेष करने पर मेरे साथ भी विद्वेष हो ही जाता है— इसमें कोई सन्देह नहीं; क्योंकि मैं ही शिव हूँ, तथा शिव ही विष्णु है। हम दोनों में कोई भेद नहीं है।। ४२।।

अनेन विष्णुरूपेण प्रार्थितोऽस्मि विशेषतः।
निन्दितोऽस्मि महादेवस्वरूपेणाहमेव हि॥ ४३॥

इसने विष्णु रूप से भले ही मेरी प्रार्थना की हो, परन्तु शिवरूप की तो निन्दा ही की है वह वस्तुतः मेरी ही निन्दा है।। ४३।।

अस्यापि भावद्वैविध्यं कर्मणा मनसापि च।
विधत्ते द्विविधं भावं करिष्याम्यहमेव तत्॥ ४४॥

इसने दो भावों से— एक कर्म से, दूसरे मन से— भक्ति की है। मैं भी इसका फल इसे दो भावों में ही दूँगा।। ४४।।

रक्षिता विष्णुरूपेण संहर्ता शिवरूपतः।
कृत्वा स्नेहात्स्वयं युद्धं लब्ध्वा तत्र पराजयम्॥ ४५॥
रुद्ररूपेण तं दक्षं शमयिष्याम्यसंशयम्।
पश्चात्तु यज्ञं सम्पूर्णं करिष्यामि सुरैः सह।
विष्णोराराधनस्यात्र फलमेतद्धि कीर्तितम्"॥ ४६॥

विष्णु रूप से मैं इसका रक्षक बनूँगा और शिवरूप से इसका नाशक। अतः मैं भी कृत्रिम भाव (स्नेह) से दिखाने मात्र के लिये युद्ध करूँगा और वहाँ अन्त में हार मानकर रुद्र रूप से उस दक्ष का संहार करूँगा, फिर यह यज्ञ भी देवताओं के साथ मिलकर पूर्ण कराऊँगा इसमें कोई सन्देह नहीं है, विष्णु के आराधन का इसको इतना ही फल मिलेगा।। ४५–४६।।

एवं निश्चित्य मनसा शङ्खचक्रगदाधरः।
प्रमथान् वारयामास सिंहनादं मुमोच ह॥ ४७॥

अथ क्रुद्धो वीरभद्रः प्राह विष्णुं सनातनम् ॥ ४८ ॥

"यों निश्चय कर, शङ्ख चक्र गदाधारी विष्णु प्रमथों को उस कार्य से रोकते हुए सिंहनाद करने लगे। विष्णु का यह सिंहनाद सुनकर क्रुद्ध हुए वीरभद्र ने उन अविनाशी विष्णु से यह कहा—।। ४७–४८ ।।

वीरभद्र एवं विष्णु का युद्ध

"विष्णो! यज्ञपुमांस्त्वं हि श्रूयतेऽस्मिन् महाध्वरे।
क्व स दक्षो दुराचारः शिवनिन्दापरायणः ॥ ४९ ॥

"हे विष्णो! सुना है आप ही इस महायज्ञ के 'यज्ञपुरुष' (यज्ञरक्षक) बने हो। आप बताइये कि वह दुराचारी, शिवनिन्दक दक्ष इस समय कहाँ है?।। ४९ ।।

समानीय स्वयं देहि न त्वं युद्धं मया कुरु।
प्रायशः शम्भुभक्तानां विशिष्टेषु त्वमग्रणीः ॥ ५० ॥

या तो तुम स्वयं लाकर उसे मुझको सौंप दो या फिर तुम मुझसे युद्ध करो। प्रायः विशिष्ट शम्भुभक्तों में तुम सर्वश्रेष्ठ हो ।। ५० ।।

विद्वेषिणां हितायापि त्वं चाप्येको व्यवस्थितः"।
ततः स्मित्वा प्राह विष्णुरहं योत्स्ये त्वया सह।
विजित्य मां रणे दक्षं नय पश्यामि ते बलम्" ॥ ५१ ॥

परन्तु आज विद्वेषियों का हित करने के लिये उनको तुम ही एक मिले हो"! तब भगवान् विष्णु ने वीरभद्र की यह बात सुनकर उससे मुस्करा कर यह कहा— "मैं तुमसे युद्ध करूँगा। मुझे युद्ध में जीतकर ही तुम दक्ष को ले जा सकोगे। आज मैं तुम्हारा बल देखूँगा"।। ५१ ।।

इत्युक्त्वा धनुरुद्यम्य शरजालमवाकिरत् ॥ ५२ ॥

यह कहकर, विष्णु ने धनुष् उठा कर उसके गणों पर वाणवर्षा आरम्भ की।। ५२ ।।

क्षतविक्षतसर्वाङ्गा गणास्तैरभवन् क्षणात्।
रक्तं वेमुश्च शतशो मूर्च्छिताश्च सहस्रशः ॥ ५३ ॥

उस वाणवर्षा से उन गणों के शरीर क्षण भर में ही क्षत–विक्षत हो गये। उनमें से सैकड़ों रक्त का वमन करने लगे और हजारों मूर्च्छित होकर गिर पड़े।। ५३ ।।

ततः स वीरभद्रोऽपि गदां चिक्षेप तं प्रति।
सा तद्देहमनुप्राप्य विदीर्णा शतधाऽभवत् ॥ ५४ ॥

तब वीरभद्र ने भी उन विष्णु पर गदा से प्रहार किया। वह गदा, विष्णु के देह का स्पर्श करते ही, सैकड़ों भागों में टूटकर गिर पड़ी।। ५४।।

विष्णुश्चापि गदामेव प्रचिक्षेप रुषान्वितः।
वीरभद्रं समासाद्य साप्यासीत्तु महामुने!॥ ५५॥

फिर विष्णु ने भी क्रुद्ध होकर वीरभद्र पर गदा से ही प्रहार किया। महामुने! उस गदा की भी, वीरभद्र का शरीर स्पर्श करते ही, वही दशा हुई।। ५५।।

ततः पुनरमेयात्मा क्रोधाद्दीप्तविलोचनः।
जग्राहान्यामपि गदामद्रिसारमयीं क्षणात्॥ ५६॥

तब उन अतुल समार्थ्यशाली विष्णु ने क्रोध से लाल नेत्र कर, पर्वत की तरह कठोर दूसरी गदा उठायी।। ५६।।

ततः खट्वाङ्गमादाय वीरभद्रो गदाधरम्।
सन्ताड्य बाहुदण्डे तं गदां भूमौ न्यपातयत्॥ ५७॥

उधर वीरभद्र ने खट्वाङ्ग (पाया जड़ी हुई काठ की पाटी के समान एक अस्त्र) लेकर गदाधारी विष्णु के हाथ पर प्रहार किया, जिससे वह गदा उनके हाथ से भूमि पर छूटकर गिर पड़ी।। ५७।।

ततः प्रकुपितो विष्णुश्चक्रं चिक्षेप तं प्रति।
सुदर्शनं महाघोरं ज्वलन्तं निजतेजसा॥ ५८॥

तब विष्णु ने क्रुद्ध होकर उस पर अपना वह प्रसिद्ध महाभयानक अपने तेज से प्रदीप्त सुदर्शन चक्र फेंका।। ५८।।

तं दृष्ट्वा वीरभद्रोऽपि शिवं संस्मार चेतसा।
तेन कण्ठगतं चक्रं मालेव विबभौ मुने!॥ ५९॥

उसे देखते ही वीरभद्र ने मन ही मन, भगवान् शङ्कर का स्मरण किया। उसके प्रभाव से, हे महामुने! वह सुदर्शन चक्र वीरभद्र के गले में जाकर माला की तरह शोभित हुआ।। ५९।।

ततः क्रुद्धो रणे विष्णुः खड्गं सूर्यशतप्रभम्।
जग्राह वीरभद्रं च निहन्तुं सोऽभ्यधावत॥ ६०॥

तब विष्णु ने क्रुद्ध होकर सैकड़ों सूर्यो के समान चमकवाली तलवार उठायी और वे उससे वीरभद्र को मारने के लिये दौड़े।। ६०।।

ततः खड्गं च तं विष्णुं वीरभद्रः प्रतापवान्।
हुङ्कारेण महाबाहुः स्तम्भयामास तत्क्षणात्॥ ६१॥

परन्तु वीरभद्र ने उसी समय अपनी एक प्रबल हुङ्कार से ही विष्णु एवं उनकी तलवार को स्तब्ध कर दिया।। ६१।।

ततः संस्तम्भितं विष्णुं वीरभद्रः समभ्यगात्।
शूलमुद्गरमुद्यम्य निहन्तुं क्रोधमूर्च्छितः॥ ६२॥

तब वह वीरभद्र कुद्ध होकर, स्तब्ध हुए विष्णु के पास पहुँचा और उसने क्रुद्ध हो कर त्रिशूल एवं मुद्गर से उन्हें मारने का प्रयास किया।। ६२।।

ततोऽभवद्देववाणी—''वीरभद्र! स्थितो भव।
किमात्मानं विस्मृतोऽसि क्रोधमासाद्य चाहवे॥ ६३॥

उसी समय आकाशवाणी हुई— ''वीरभद्र! ठहरो! युद्ध में क्रुद्ध होकर अपने आप को क्यों भूल रहे हो!।। ६३।।

यो विष्णुः स महादेवः शिवो नारायणः स्वयम्।
नानयोर्विद्यते भेदः कदाचिदपि कुत्रचित्''॥ ६४॥

क्या तुम नहीं जानते कि जो विष्णु हैं वे ही महादेव हैं और जो महादेव हैं वे ही विष्णु हैं। इनमें कहीं भी और कुछ भी भेद नहीं है''।। ६४।।

इति श्रुत्वा वीरभद्रो नत्वा विष्णुं शिवात्मकम्।
दक्षं गृहीत्वा केशेषु वाक्यमाह महामतिः॥ ६५॥

यह सुनकर वीरभद्र ने उन विष्णु को शिवस्वरूप मानकर प्रणाम करते हुए, दक्ष को उस की शिर की जटा पकड़कर वह महामति (वीरभद्र) यह वाक्य बोला—।। ६५।।

''येन वक्त्रेण देवेशं शिवं परमपूरुषम्।
निनिन्दिथ त्वं तद्वक्त्रं प्रहरामि प्रजापते!''॥ ६६॥

''प्रजापति! जिस मुख से तुम आदिपुरुष देवाधिदेव भगवान् शङ्कर की निन्दा करते रहे हो अब मैं तुम्हारे उस मुख पर ही प्रहार करूँगा''।। ६६।।

इत्युक्त्वा सम्प्रहार्यैव दक्षवक्त्रं पुनः पुनः।
नखाग्रेण प्रचिच्छेद क्रोधसंरक्तलोचनः॥ ६७॥

यों कहकर क्रुद्ध वीरभद्र उस दक्ष के मुख पर प्रहार करने लगा, तथा अन्त में अपने नखों के अग्रभाग से उसे नोंच डाला।। ६७।।

तथान्ये ते महादेवनिन्दामाकर्ण्य हर्षिताः।
तेषां जिह्वाः श्रुतीश्चापि चिच्छेद प्रमथाधिपः॥ ६८॥

तथा वहाँ जो अन्य लोग शिवनिन्दा सुनकर प्रसन्न हो रहे थे, उस प्रमथों के प्रधान ने, उनकी जिह्वा तथा कान भी काट डाले।। ६८।।

ब्रह्मा द्वारा शङ्कर से निवेदन

एवं विनष्टे यज्ञे तु विधिः कैलासमभ्यगात्।
प्रणम्य च महादेवं विधिलोपं न्यवेदयत्।
उवाच तं महादेवं "कथमेवं करोषि वा॥ ६९॥
सती नित्या जगद्धात्री जाता ब्रह्मस्वरूपिणी।
तस्या देहपरिग्राह इति भ्रान्तं विडम्बनम्॥ ७०॥

इस प्रकार, उस यज्ञ के विध्वस्त कर दिये जाने पर पितामह ब्रह्मा कैलास पर्वत पर गये। और महादेव को प्रणाम कर उनसे परम्परा के नष्ट होने की चर्चा की। उन्होंने महादेव जी से निवेदन किया– "आप जैसा बुद्धिमान् पुरुष यह सब कैसे कर रहा है? ब्रह्मस्वरूपा जगन्माता सती तो नित्य रूप से इस जगत् में वर्तमान है। 'उनका देहपात हो गया है'– यह विडम्बना (भ्रान्ति) मात्र है।। ६९–७०।।

सा तु दक्षविमोहाय महामाया जगन्मयी।
छायासती यज्ञकुण्डसन्निधौ स्थापिता तया॥ ७१॥
सैव छाया यज्ञवह्नौ मोहार्थं वै प्रजापतेः।
प्राविशत् प्राकृता देवी स्वयं गगनमास्थिता॥ ७२॥
तद्धि किं त्वं न जानासि कथमेवं करोषि वा॥ ७३॥

उस महामाया जगन्माता ने, केवल दक्ष को विमुग्ध करने (बहकाने) के लिये, उस यज्ञकुण्ड में पास अपनी छाया (कृत्रिम) सती को खड़ा कर दिया था। वही छाया, प्रजापति को दिखाने के लिये, यज्ञकुण्ड में प्रविष्ट हो गयी थी। वास्तविक सती देवी तो उस समय आकाश में खड़ी थीं। क्या आप इस सब वास्तविक घटना को नहीं जानते! फिर भी आप ऐसा क्यों कर रहे हैं?।। ७१–७३।।

आगच्छ देवदेवेश प्रणतेषु कृपां कुरु।
विधिसंरक्षकस्त्वं हि मा विधिं परिलोपय॥ ७४॥

अतः हे देवदेवेश! आइये और इन श्रद्धालु एवं विनयी लोगों पर कृपा कीजिये। आप तो विधि (परम्परा) के संरक्षक माने जाते हैं, फिर आप ही इस विधि का लोप करने के लिये क्यों सन्नद्ध हैं!।। ७४।।

अत्र यज्ञं समाप्यैव सहितोऽस्माभिरेव च।
सम्प्रार्थ्य परमेशानीं पुनर्द्रक्ष्यसि निश्चितम्॥ ७५॥

इस यज्ञ को सविधि समाप्त कराकर, हमारे साथ आप भी प्रार्थना किये जाने पर उस देवी का पुनः दर्शन कर पायँगें— यह सुनिश्चित है ।। ७५ ।।

तदागच्छ महादेव! दक्षस्य निलयं प्रति।
न तु गृह्णीष्व मां देव! नान्यथा कर्तुमर्हसि'' ॥ ७६ ॥

अतः, महादेव जी! आइये, दक्ष के निवास पर चला जाय। या फिर मुझे यहाँ सदा के लिये बन्धक बना लीजिये। इनके अतिरिक्त अब कोई अन्य (तीसरा) मार्ग नहीं है' ।। ७६ ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा शिवो दक्षालयं ययौ।
समागतं विलोक्यैव वीरभद्रो ननाम तम् ॥ ७७ ॥

ब्रह्मा जी के ये वचन सुनकर, भगवान् शङ्कर, दक्ष के निवास के लिये चल पड़े। उन्हें आया हुआ देखकर वीरभद्र ने उनको प्रणाम किया ।।७७ ।।

यज्ञ का पुनः प्रारम्भ

ततो ब्रह्मा पुनर्देवं सम्प्रार्थ्योवाच सम्भ्रमात्।
''आज्ञापय महेशान ! पुनर्यज्ञः प्रवर्तताम् ॥ ७८ ॥

एतदनन्तर वहाँ पहुँचने पर, ब्रह्मा जी ने भगवान् शङ्कर से प्रार्थना करते हुए आदरपूर्वक कहा— ''हे देवाधिदेव! अब यज्ञ प्रारम्भ करने की आज्ञा दीजिये'' ।। ७८ ।।

ततः शम्भुर्वीरभद्रं समाज्ञापयदुत्सुकम्।
''त्यज कोपं वीरभद्र पुनर्यज्ञं प्रकल्पय'' ॥ ७९ ॥

तब भगवान् शङ्कर ने उत्कण्ठित खड़े वीरभद्र को आज्ञा दी— ''वीरभद्र! अब क्रोध को छोड़ो तथा यज्ञ के पुनः प्रारम्भ होने की व्यवस्था करो'' ।। ७९ ।।

इत्याज्ञप्तो वीरभद्रो महादेवेन तत्क्षणात्।
पूर्ववत् कल्पयामास यज्ञं देवानमोचयत् ॥ ८० ॥

यों भगवान् शङ्कर का आदेश प्राप्त होने पर वीरभद्र ने उसी समय यज्ञ रोकने हेतु खड़े अपने सैनिकों को पीछे हटा लिया, देवताओं को मुक्त कर दिया और यज्ञ पूर्ववत् होने लगा ।। ८० ।।

ततो ब्रह्मा पुनः प्राह देवदेवं त्रिलोचनम्।
''दक्षं जीवयितुं चाज्ञां विधेहि परमेश्वर'' ॥ ८१ ॥

तब ब्रह्माजी ने देवाधिदेव भगवान् शङ्कर से पुनः निवेदन किया— ''हे परमेश्वर! दक्ष को भी पुनर्जीवित करने की आज्ञा दीजिये'' ।। ८१ ।।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य देवदेवस्य बुद्धिमान्।
दत्त्वैकं छागमुण्डं तु स दक्षं समजीवयत्॥ ८३॥

देवाधिदेव के ये वचन सुनकर बुद्धिमान् वीरभद्र ने पास में पड़े एक कटे बकरे का शिर दक्ष के शरीर पर लगाकर दक्ष को पुनर्जीवित कर दिया॥ ८३॥

"ईश्वरं ये विनिन्दन्ति ते मूकाः पशवो ध्रुवम्"।
एवं विविच्य दक्षाय छागमुण्डं ददौ मुने॥ ८४॥

हे मुने! 'ईश्वर (भगवान् शिव) की निन्दा करने वाले प्राणी मूक (गूँगे) पशु ही रहें तो अच्छा है'— यह सोचकर दक्ष के शरीर पर वह बकरे का मुख लगाया गया॥ ८४॥

ब्रह्मणा प्रार्थिताः सर्वे निर्भीताः पुनराययुः।
दत्त्वाहुतिं महेशाय दक्षो यज्ञं समापयत्॥ ८५॥

ब्रह्मा के कहने पर, यज्ञ छोड़कर भागे हुए लोग भी निर्भीक होकर पुनः लौट आये और देवाधिदेव शङ्कर को यज्ञभाग (आहुति) देकर वह यज्ञ समाप्त कराया॥ ८५॥

दक्ष द्वारा भगवान् शङ्कर से क्षमायाच्ञा

ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च दक्षं प्राह प्रजापतिम्।
"शिवं पूजय देवेशं नानास्तुतिभिरादरात्॥ ८६॥

फिर, ब्रह्मा एवं विष्णु ने दक्ष प्रजापति से यों कहा— "तुम सम्मानपूर्वक देवाधिदेव भगवान् शङ्कर की नाना स्तुतियों से पूजा करो॥ ८६॥

चिरं विनिन्द्य देवेशं यत्पापं समुपार्जितम्।
न चास्य स्थास्यति तदा वैरस्यं त्वत्कृते पुनः"॥ ८७॥

तुमने उन भगवान् की चिरकाल तक निन्दा कर जो पाप अर्जित किया है उस पूजा से, तुम्हारी उनके प्रति या उनकी तुम्हारे प्रति जो वैरस्य (वैराग्य) हो गया है, वह दूर हो जायगा"॥ ८७॥

तयोरिति वचः श्रुत्वा दक्षस्तं प्रणनाम ह।
"तस्माद्विमुक्तिकामस्त्वं स्तुहि देवं सनातनम्॥ ८८॥
आशु तुष्यत्ययं देवः स्वभावाच्छिवनामतः।
न चास्य स्थास्यति तदा वैरस्यं त्वत्कृते पुनः"॥ ८९॥

उन दोनों के वचन सुनकर दक्ष ने भगवान् शङ्कर को प्रणाम किया।

फिर उन दोनो ने उससे कहा— "यदि तुम अपना मोक्ष चाहते हो, तो तुम इस अविनाशी सनातन देवता की स्तुति करो ।। ८८ ।।

ये देवाधिदेव 'शिव' नाम कीर्तन से शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं। इस नामकीर्तन तथा स्तुतिपाठ से तुम दोनों के बीच की अरुचि सदा के लिये दूर हो जायगी" ।। ८९ ।।

तयोरिति वचः श्रुत्वा दक्षस्तं प्रणनाम ह।
स्तोतुं समारभद्देवं परमेश्वरमव्ययम् ॥ ९० ॥

उन दोनों देवताओं के वचन सुनकर दक्ष ने उस अविनाशी परमेश्वर की यों स्तुति प्रारम्भ की ।। ९० ।।

दक्षकृत शङ्कर स्तुति

दक्षः उ— "न त्वां जानाति विष्णुर्नच कमलरुहो योगविद्योगमुख्य!
एवं दुर्गम्यरूपं कथमतिकुमतिर्ज्ञातुमेवास्य योग्यः।
त्वं सर्वेषां च बुद्धिस्तव मतिवशगाः सर्व एवेह लोका-
स्तत्को मे वापराधस्तव मतिवशगस्यास्ति ते निन्दनेन ॥ ९१ ॥

हे योग के ज्ञाता! हे योगप्रधान! न तो आप का वास्तविक रहस्य ब्रह्मा ही जानते हैं, न विष्णु। जब यह रहस्य इतना कठिनाई से जानने योग्य है तो मेरे जैसे दुर्बुद्धि कैसे उसे जान सकता है! आप ही सबको सन्मार्गप्रेरक बुद्धि के प्रदाता हैं। यह समग्र संसार आपकी प्रेरक बुद्धि के ही वश में हैं। फिर मेरा क्या अपराध है; क्योंकि मैं भी तो आपकी उस प्रेरक बुद्धि से प्रेरित होकर ही आपकी निन्दा कर रहा था ।। ९१ ।।

त्वं शुद्धः परमः परात्परतरो ब्रह्मादिदेवार्चितः,
किं तेऽहं चरितं वदामि परमं किं वा स्वरूपं तव।
दासोऽहं शरणागतस्तव पदद्वन्द्वं विना का गतिः,
शम्भो तन्मेऽपराधं क्षमसि निजगुणैस्त्राहि पापार्णवान्माम् ॥ ९२ ॥

आप परम शुद्ध (निर्विकार) हैं। ब्रह्मा आदि देवों द्वारा पूजित हैं। आपके चरित्र तथा स्वरूप का वर्णन मैं क्या कर सकता हूँ! मैं तो आपकी शरण में पड़ा आप का दास हूँ। आप के चरणों के विना मेरा अन्य कौन शरणस्थल है? अतः हे शम्भो! मेरे अपराधों को क्षमा करें तथा अपने गुणों से मुझ को पापसमुद्र से बाहर निकालिये ।। ९२ ।।

त्वं देवः परमेश्वरो जगति ये दीना महान्तोऽपि च,
ते सर्वे तव मूर्तयः पशुपते त्वं विश्वरूपो यतः।

तस्मिन्नेव हि संस्थिते मम कथं निन्दाकृतं पातकं,
दीनं मां शरणागतं करुणया विश्वेश्वर त्राहि माम्॥ ९३॥

आप परमेश्वर हैं, उत्कृष्ट देवता हैं। संसार के छोटे बड़े सभी प्राणी आपकी ही मूर्ति हैं; क्योंकि हे पशुपते! आप सर्वव्यापी हैं। उसी संसार में मैं भी हूँ। तो मैं आपकी निन्दा का भागी कैसे बना! अतः हे विश्वेश्वर! आपके शरणागत मुझ दीन हीन की आप कृपया रक्षा करें।। ९३।।

त्वत्पादपङ्कजरजः शिरसा विधृत्य
ब्रह्मा हरिश्च सुरवृन्दविवन्द्यपादः।
यत्त्वां सभागतमिहात्मदृशा सुरेशं
पश्यामि भाग्यमतुलं मम पूर्वजानाम्॥ ९४॥

आपके चरणकमलों की धूल को शिर पर धारण कर ही ब्रह्मा या विष्णु के चरण सभी देवताओं के समूह द्वारा पूजित हैं। आप जैसे देवेश को मैं अपनी इस यज्ञसभा में देख पा रहा हूँ, यह मेरे पूर्वजों के अतुल्य सौभाग्य का ही फल है।। ९४।।

त्वं कुबुद्धिः सुबुद्धिश्च सर्वेषां देहिनामिह।
निन्दनीयश्च वन्द्यश्च नापराधस्ततो मम''॥ ९५॥

आप ही सब प्राणियों को कुबुद्धि या सुबुद्धि के दाता हैं, उसी से आप की निन्दा या स्तुति होती रहती है; इसमें मेरा क्या अपराध है''।। ९५।।

एवं सम्प्रार्थितः शम्भुराशुतोषः प्रजापतिम्।
आकृष्य निजपाणिभ्यामुद्दधार दयानिधिः॥ ९६॥

यों दक्ष प्रजापति द्वारा प्रार्थित दयानिधि भगवान् शङ्कर ने उस दक्ष को अपने हाथों से खींचकर स्नेहपूर्वक अपने हृदय से लगा लिया।। ९६।।

शिवाङ्गस्पर्शनादेव कृतकृत्यः प्रजापतिः।
जीवन्मुक्तमिवात्मानं मेने भाग्यं महत्तरम्॥ ९७॥

भगवान् शङ्कर के अङ्गों का स्पर्श करते ही दक्ष प्रजापति अपने को कृतकृत्य मान बैठा। और अपने को सौभाग्यशाली मानता हुआ जीवन्मुक्त समझने लगा।। ९७।।

विविधैरुपहारैश्च पूजयामास शङ्करम्।
कायेन मनसा वाचा भक्त्या परमया युतः॥ ९८॥

तब उसने काय वाक् एवं मन से परम श्रद्धा के साथ विविध उपहार प्रदान कर भगवान् शङ्कर का सम्मान किया।। ९८।।

ब्रह्मा जी का भगवान् शङ्कर से निवेदन

ततो ब्रह्मा महादेवं पुनः प्रोवाच भक्तितः।
"भक्तानुकम्पी भगवान् त्वमेव हि सदाशिवः॥ ९९॥

तदनन्तर पितामह ब्रह्मा ने भगवान् शङ्कर से नम्रतापूर्वक निवेदन किया— "हे भगवन् सदाशिव! आप तो सदैव भक्तों पर दया करने वाले रहे हैं।। ९९।।

सानुग्रहेण भवता निशम्य वचनं मम।
यतः प्रजापतिर्दक्षो रक्षितः परमेश्वर!॥ १००॥

हे परमेश्वर! आपने मेरा वचन अनुग्रहपूर्वक मानकर दक्ष प्रजापति की रक्षा की है।। १००।।

विहाय देवास्त्वां यज्ञे यास्यन्ति यदि कुत्रचित्।
तादृशीं च दशां नूनं लभिष्यन्त्येव तत्क्षणात्॥ १०१॥

आगामी काल में यदि कोई देवता, आपके विना किसी यज्ञ में सम्मिलित होंगे तो उस यज्ञ की भी तत्क्षण वही दशा होगी जो इस दक्ष प्रजापति के यज्ञ की हुई थी।। १०१।।

ये त्वां विना सुराश्चान्यान् यजन्ते च नराधमाः।
हतयज्ञा भविष्यन्ति महापातकिनश्च ते"॥ १०२॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे दक्षयज्ञविध्वंसनवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

और, जो हीन पुरुष अपने यज्ञ में आप को छोड़कर अन्य देवों को महत्त्व देंगे, उन्हें उस यज्ञ का कोई फल नहीं मिलेगा, अपितु वे पाँच महापातकों के भागी भी होंगे" ।। १०२।।

श्री महाभागवत उपपुराण में
'दक्षयज्ञविध्वंसवर्णन' नामक
दशम अध्याय समाप्त॥

एकादश अध्याय
[छाया-सतीवर्णन]

श्रीमहादेव०— एवं यज्ञे तु सम्पूर्णे महादेवः पुनः पुनः।
सतीवियोगदुःखार्तो रुरोद प्राकृतो यथा॥ १॥

श्रीमहादेव जी बोले— "यों दक्ष का यज्ञ सम्पूर्ण होने पर सती-वियोग से दुःखी होकर भगवान् शङ्कर साधारण जन की तरह विलाप करने लगे।। १।।

ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च तमुवाच महेश्वरम्।
किं रोदिषि महाज्ञानिन् भ्रान्तवत्त्वं विमोहितः॥ २॥

तब ब्रह्मा एवं विष्णु ने भगवान् शङ्कर से यों कहा— हे महाज्ञानिन्! आप किसी साधारण भ्रान्त (प्रमत्त) की तरह क्यों मोहवश रो रहे हैं?।। २।।

पूर्णब्रह्ममयी देवी जगदम्बा सनातनी।
महाविद्या विश्वकर्त्री विश्वचैतन्यरूपिणी॥ ३॥

वह सती देवी तो पूर्ण ब्रह्ममय है, जगन्माता है, अविनाशी है, महा-विद्यास्वरूप एवं जगत् का निर्माण करने वाली तथा विश्वचैतन्यस्वरूपा है।। ३।।

यस्या मायावशात् सर्वे वयं चापि विमोहिताः।
तस्या देहपरित्याग इति भ्रान्तिविडम्बनम्॥ ४॥

जिसकी माया के कारण सभी प्राणी तथा हम भी कभी कभी मुग्ध हो जाते हैं, उस का देहत्याग करना तो भ्रममात्र है।। ४।।

मृत्युञ्जयस्त्वं भगवान् यत्प्रसादान्महेश्वर!
तस्या देहपरित्यागो मोहपात्रं न वास्तवम्॥ ५॥

हे परमेश्वर! जिसकी कृपा से आप 'मृत्युञ्जय' कहलाते हैं, उसका देहत्याग मानना मोहमात्र है, वास्तविक नहीं।। ५।।

वयं त्रयस्तु पुरुषास्तस्या एव हि मूर्तयः।
एषा तु तव निन्दा न तस्या निन्दा प्रजायते॥ ६॥

हम तीनों (ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश) तो उसी भगवती की प्रतिमूर्ति हैं।

इस तरह रोना–कलपना तुम्हारी निन्दा नहीं, अपितु उस भगवती की निन्दा है।। ६।।

तन्निन्दा तु महापापजनिका परमेश्वर!
यस्य सञ्जायते पापं सा तं त्यजति निश्चितम्॥ ७॥

हे परमेश्वर! उसकी निन्दा तो महापापों को उत्पन्न करने वाली है। और जो पापलिप्त हो जाता है उसे वे भगवती निश्चित ही त्याग देती हैं।। ७।।

धर्मिष्ठं सा महादेवी न जहाति कदाचन।
अधर्मिणः परित्यागे न पित्रादिविवेचना॥ ८॥

इसके विपरीत धर्माचरण करने वाले का वह महादेवी कभी त्याग नहीं करतीं। पापी के परित्याग में वे अपने पिता आदि सम्बन्धियों को भी कोई महत्त्व नहीं देतीं।। ८।।

विद्यतेऽस्या धर्ममात्रं सम्बन्धो न तु लौकिकः।
धर्मं यः कुरुते सोऽस्याः पिता माता च बान्धवः॥ ९॥

वे केवल धर्म का सम्बन्ध मानती हैं, अन्य कोई लौकिक सम्बन्ध नहीं। जो धर्माचरण करता है वही इसका पिता माता तथा अन्य सम्बन्धी है।। ९।।

अधर्मकारी परमः पशुरेव, न बान्धवः।
तस्मात्प्रजापतिं दक्षं तन्निन्दनपरायणम्॥ १०॥
कृतपापं विलोक्यैव सा तत्याज महेश्वरी।
यद्यस्य पुत्रीभावेन सा तिष्ठति परा स्वयम्॥ ११॥
तदा कथं स्याद्दमनं दुर्दान्तस्य प्रजापतेः।
इत्यस्मात् सा महादेवी धर्मकर्मफलप्रदा॥ १२॥

अधर्म का आचरण करने वाला तो पशु के समान है, उससे बन्धु आदि सम्बन्ध क्या जोड़ना! इसीलिये उन्होंने अपने साक्षात् पिता दक्ष प्रजापति को भी, जब वह उसकी निन्दा करने लगा। यों, वह पाप का संग्रह करने लगा तो भगवती महेश्वरी ने उसका भी परित्याग कर दिया। यदि वे परा जगदम्बा उसके साथ अपने पुत्रीभाव का ममत्व रखती तो। इस दुर्दान्त प्रजापति का कैसे दमन हो पता! अतः वे महादेवी तो धर्म कर्म का ही फल प्रदान करने वाली हैं।। १०–१२।।

त्यक्त्वातिपापिनं पूर्वं स्वयं स्वस्थानमाययौ।
सा क्षणेनापि किं हन्तुमसमर्था प्रजापतिम्॥ १३॥

वे अत्यधिक पापपङ्कनिमग्न अपने पिता को त्याग कर पहले अपने स्थान पर चली गयीं। अन्यथा वे चाहतीं तो क्या उसी समय उस प्रजाप्रति का वध नहीं कर सकती थीं!।। १३ ।।

तथापि यत्कृतोपेक्षा तल्लोकान् प्रति शिक्षितुम्।
धर्मोपदेशकर्त्री सा यद्येवं न समाचरेत्॥ १४॥

तदा लोकाः कथं धैर्यं विदध्युः पितरं प्रति।
तस्मात्सा परमा नित्या मोहयन्ती प्रजापतिम्॥ १५॥
माययान्तर्हिता भूत्वा स्वयं गगनमास्थिता।
शोकं त्यज, महादेव! वह्नौ छायासती गता॥ १६॥

तथापि उन्होंने लोकशिक्षा हेतु अपने पिता को दण्ड देने में उस समय उपेक्षा की। दूसरों को धर्मोपदेश करने वाली वे यदि ऐसा न करतीं। तो अन्य साधारणजन अपने पापी पिता के लिये दण्ड न देने में कैसे धैर्य धारण करते! अतः उस परादेवी ने अपने पिता को सम्मुग्ध कर पहले माया से अन्तर्हित होकर (आत्महत्या पाप से बचने के लिये) स्वयं आकाश में जा विराजी। और प्रज्वलित यज्ञकुण्ड में छायासती को कुदाया। अतः हे महादेव! आप शोकविह्वल न होइये।। १४–१६ ।।

शिव०— **"यदुक्तं सत्यमेवैतत् सती मे प्रकृतिः परा।**
नित्या ब्रह्ममयी सूक्ष्मा नैव देहं जहौ स्वयम्॥ १७॥

शङ्कर– "हे ब्रह्मन्! यह तो आप ठीक ही कह रहे हैं कि वह सती परा प्रकृति नित्य ब्रह्मस्वरूप एवं सूक्ष्मविग्रह थी, अतः उसने स्वयं देहत्याग नहीं किया।। १७।।

किन्तु कुत्र गता सा मे सती प्राणैकवल्लभा।
पश्यामि चेच्छान्तमना भवामि परमेश्वरीम्"॥ १८॥

परन्तु वह मेरी प्राणप्रिया सती आज है कहाँ? यदि मैं उस परमेश्वरी को देख पाऊँ तो मेरा मन शान्त हो जाय।। १८।।

त्रिदेवा०— **"स्तुवीमस्तां जगद्धात्रीं सर्वलोकैकवन्दिताम्।**
तदैव सुप्रसन्ना सा पुनर्दृश्या भविष्यति"॥ १९॥

"आओ, हम सब मिलकर उस त्रिजगद्वन्दिता परमेश्वरी की स्तुति करें। हो सकता है, उस स्तुति से प्रसन्न होकर वे पुनः प्रकट हो जायँ"।। १९।।

श्रीमहादेव०— एवं निश्चित्य ते देवाः शम्भुना सह नारद!
तुष्टुवुस्तां महादेवीं साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणीम्॥ २०॥

महादेव— ऐसा निश्चय कर, हे नारद! वे दोनों— ब्रह्मा एवं विष्णु, शिव के साथ उस साक्षात् ब्रह्मरूपिणी महादेवी की स्तुति करने लगे॥ २०॥

त्रिदेवकृत देवीस्तुति

त्रिदेवा०— "त्वं नित्या परमा विद्या जगच्चैतन्यरूपिणी।
पूर्णब्रह्ममयी देवी स्वेच्छया धृतविग्रहा॥ २१॥

"आप अविनाशी परा विद्या हैं, जगत् में चैतन्यरूप हैं। पूर्ण ब्रह्मस्वरूप हैं, महादेवी हैं, तथा स्वेच्छा से कोई भी शरीर धारण करने वाली हैं॥ २१॥

अद्वैतं ते परं रूपं वेदागमसुनिश्चितम्।
नमामो ब्रह्म विज्ञानगम्यं परमगोपितम्॥ २२॥

आपके उस अद्वैत रूप को हम प्रणाम करते हैं, जो वेद तथा आगम द्वारा सुनिश्चित हैं, जो विज्ञान से ही ज्ञेय है तथा परम गुह्य है॥ २२॥

सृष्ट्यर्थं सशरीरा त्वं प्रधानं पुरुषः स्वयम्।
कल्पितं श्रुतिभिस्तेन द्वैतरूपा त्वमुच्यसे॥ २३॥

आप सृष्टि की इच्छा से शरीर धारण करती हैं, और स्वयं प्रधान पुरुष बनती हैं— ऐसा वेदों का मानना है। अतः आप द्वैतरूप कहलाती हैं॥ २३॥

तत्रापि त्वां विनाऽपूर्णः पुरुषः शवरूपवत्।
अतः सर्वेषु देवेषु तव प्राधान्यमुच्यते॥ २४॥

वहाँ भी प्रधान पुरुष आप के विना शव (मृतशरीर) रूप हैं, अपूर्ण हैं, अतः सभी देवी–देवताओं में आप की ही प्रधानता बतायी गयी है॥ २४॥

तां त्वामेवंविधां देवीमचिन्त्यचरिताकृतिम्।
किं खर्वबुद्धयः स्तोतुं समर्थाः स्मो वयं शिवे॥ २५॥

हे शिवे! ऐसे गुणों वाली आप देवी को, जिनके नानाविध अचिन्त्य चरित्र हैं, हम स्थूलबुद्धि वाले कहाँ तक स्तुति करने में समर्थ हो सकते हैं!॥ २५॥

अस्मांश्च स्वेच्छया त्वं हि सृष्ट्वा संहरसि स्वयम्।
तस्मात् स्तोतुं समर्थः को भवेदिह जगत्त्रये॥ २६॥

आप हम लोगों की भी स्वेच्छा से सृष्टि कर, जब चाहें तब हमारा

संहार कर देती हैं। अतः इन तीनों लोकों में आप की स्तुति करने में कौन समर्थ है!।। २६।।

त्वन्मायामोहिताः सर्वे ज्ञानिनो मानवा इव।
वयं तत्त्वां कथं स्तोतुं शक्ताः स्मः परमेश्वरीम्॥ २७॥

इस संसार में ज्ञानी पुरुष भी सामान्य मनुष्य की तरह आपकी माया से मुग्ध होते देखे गये हैं, अतः आप परमेश्वरी की स्तुति करने में हम भी कहाँ समर्थ हैं!।। २७।।

त्वमस्माकं चेतना च बुद्धिः शक्तिस्तथैव च।
विना त्वां शववत्सर्वे स्तोष्यामस्त्वां कथं वयम्॥ २८॥

आप हमारी चेतना हैं, बुद्धि हैं, शक्ति हैं; अतः आप के विना हम सभी शव के तुल्य हैं। तो हम आपकी स्तुति करने में कैसे समर्थ हो सकते हैं!।। २८।।

यत्त्वं गुणैस्त्रिभिर्बध्वा विमोहयसि मायया।
अज्ञानिन इवास्मांश्च कस्त्वां विज्ञातुमुत्सहेत्॥ २९॥

आप तीनों गुणों द्वारा हम सबको, अज्ञानियों की तरह, स्वमाया से बाँधे रखती हैं। अतः, आपको वास्तविक रूप से जानने का कौन साहस कर सकता है!।। २९।।

दृष्टं तु तादृशं रूपमस्माभिर्दक्षवेश्मनि।
तथैव दर्शनं देहि कृपया परमेश्वरि!॥ ३०॥

हे परमेश्वरि! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो आप हमको उसी रूप में दर्शन दें जो हमने दक्ष प्रजापति के घर में देखा था।। ३०।।

त्वामदृष्ट्वा जगद्धात्रीं विवर्णाः स्मो महेश्वरीम्।
ततः प्राणमिवात्मानं लक्षयामो शवा वयम्"॥ ३१॥

आप को महेश्वरी जगन्माता के उस रूप में देखे विना हमलोग विह्वल हो रहे हैं। प्राणरूपी आत्मा अपने प्राण की तरह उस दर्शन के विना हम अपने को शव के रूप में ही समझ रहे हैं"।। ३१।।

श्रीमहादेव०— एवं स्तुता महादेवी दृष्ट्वा देवविषण्णताम्।
शिवं च व्याकुलं दृष्ट्वा गगने दर्शनं ददौ॥ ३२॥

तीनों देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुत उस महादेवी ने, इन सभी देवों

को दु:खी देखकर, और उनमें भी शिव को अधिक व्याकुल देखकर आकाश में उपस्थित होकर उन्हें दर्शन दिये।। ३२।।

भूत्वा तु यादृशी काली दक्षयज्ञे समागता।
छाया च यादृशी वह्नौ प्रविष्टा निजमायया॥ ३३॥

जिस रूप में वे काली देवी दक्षयज्ञ के अवसर पर आयी थीं, या जिस रूप में वे स्वकीय माया से यज्ञकुण्ड की अग्नि में प्रविष्ट हुई थीं।। ३३।।

प्रकृतिं तादृशीं तेऽपि ददृशुर्निश्चलेक्षणाः।
शिवमाह महादेवी— "महादेव स्थिरो भव॥ ३४॥
पुनस्त्वां प्रतिलप्स्यामि हिमालयसुता स्वयम्।
भूत्वा मेनोदराज्जाता सा सत्यं तद्ब्रवीमि ते॥ ३५॥

उन सभी देवताओं ने वैसी ही उस प्रकृति देवी के दर्शन अपनी आँखें स्थिर करके किये। तब उस देवी ने भगवान् शङ्कर से कहा— "महादेव! आप शान्त हों। मैं हिमालय पर्वतराज की पुत्री बनकर मैना के गर्भ से उत्पन्न होकर आपसे पुन: मिलूँगी। इसे आप सत्य समझें।। ३४–३५।।

न मया सम्परित्यक्तस्त्वं कदाचिन्महेश्वर।
तवैव हृदयस्थानं महाकालीपराश्रयः॥ ३६॥

हे महेश्वर मैंने आप का परित्याग नहीं किया है। परा महाकाली का वास तो आपका हृदयस्थान ही है।। ३६।।

तस्मात्त्वं हि महाकालो जगत्संहारकारकः।
त्वं प्रभुत्वाभिमानेन किञ्चिन्मामुक्तवानसि॥ ३७॥

परन्तु, आप महाकालस्वरूप जगत्संहारकारक हैं, इसी अभिमान में आपने मुझको कुछ तुच्छ बातें कह दी थीं।। ३७।।

अहं तेनापराधेन साक्षात्पत्नीस्वरूपतः।
न स्थास्यामि कियत्कालं भव शान्तमनाः शिव॥ ३८॥

उसी अपराध के कारण, मैं अब कुछ समय के लिये आपकी साक्षात् पत्नीरूप में तो नहीं रह पाऊँगी। परन्तु फिर भी हे शिव! आप धैर्य रखिये।। ३८।।

उपायं कथयाम्येकं कुरु शम्भो तदेव हि।
प्रतिलप्स्यसि मां नूनं पूर्वतोऽधिकरूपिणीम्॥ ३९॥

हे शम्भो! मैं आपको एक उपाय बता रही हूँ, तदनुसार करें। उससे आप मुझको पहले से भी अधिक सुन्दर रूप में प्राप्त कर सकेंगे।। ३९।।

मम छाया यज्ञवह्नौ प्रविष्टा या महेश्वर।
तां मूर्ध्नि कृत्वा मां प्रार्थ्य भ्रम पृथ्वीमिमां शिव॥ ४०॥

हे महेश्वर! प्रज्वलित यज्ञकुण्ड में जो मेरी छाया प्रविष्ट हुई थी उसके शरीर को शिर पर रखकर मेरी प्रार्थना करते हुए हे शिव! आप इस समग्र पृथ्वी का परिभ्रमण करें।। ४०।।

स देहो बहुधा भूत्वा पतिष्यति धरातले।
तत्र तद्धि महापीठं भविष्यत्यघनाशनम्॥ ४१॥

वह शरीर, अनके भाग होकर, समय समय पर पृथ्वी पर जहाँ जहाँ गिरता जायगा वहाँ वहाँ एक एक पापनाशक शक्तिपीठ बन जायगा।। ४१।।

योनिः पतिष्यते यत्र तत्तु पीठोत्तमं परम्।
तत्र स्थित्वा तपस्तप्त्वा पुनर्मां प्रतिलप्स्यसे"॥ ४२॥

जहाँ उस शरीर का योनिभाग गिरेगा वहाँ प्रधान शक्तिपीठ बनेगा। वहाँ रहकर तपश्चर्या करते हुए आप मुझे पुनः प्राप्त कर सकोगे"।। ४२।।

इत्युक्त्वा सा महादेवं समाश्वास्य पुनः पुनः।
बभूवान्तर्हिता सद्यः सहसा मुनिपुङ्गव॥ ४३॥

हे मुनिपुङ्गव! ऐसा कहते हुए वह देवी, इसी तरह भगवान् शङ्कर को बार–बार शान्त्वना देते हुए, शीघ्र ही अचानक वहीं अन्तर्हित हो गयी।। ४३।।

ब्रह्माद्यास्त्रिदशश्रेष्ठाः स्वस्वस्थानं विनिर्ययुः॥ ४४॥
ततः शिवः समागत्य पुनर्दक्षालये मुने।
प्रिये सति सतीत्येवं रुरोद प्राकृतो यथा।
यज्ञशालां प्रविश्यैव छायासत्याः शरीरकम्॥ ४५॥

उधर वे ब्रह्मा आदि तीनों देवप्रमुख भी अपने अपने स्थान को लौट गये। हे मुने! परन्तु भगवान् शङ्कर पुनः दक्ष की यज्ञशाला में पहुँचे और वहाँ, हे सति, हे सति! यों कहते हुए साधारण पुरुष की तरह रुदन करने लगे। यज्ञशाला में प्रविष्ट होते ही उन्होंने छाया सती के देदीप्यमान शरीर को।। ४५।।

ददर्श दीप्यमानं स भूमिष्ठं मुद्रितेक्षणम्।
अक्षुण्णां तां विलोक्यैव निद्रितां प्राकृतामिव॥ ४६॥

देखा, जो आँखें मूँदे हुए भूमि पर पड़ा था। उस समय वह शरीर ऐसा लग रहा था मानो वे देवी साधारण पुरुष की तरह सो रही हैं।। ४६।।

शोकसन्तप्तहृदयः प्राहेदं वचनं शिवः।
''सति तेऽहं पतिः शम्भुस्त्वत्समीपमुपागतः॥ ४७॥

तब शोक से सन्तप्तहृदय भगवान् शङ्कर यों बोले— ''हे सति! मैं तुम्हारा पति शम्भु तुम्हारे पास आया हूँ।। ४७।।

उत्तिष्ठ त्वं पूर्ववन्मां कथं न परिभाषसे।
कृतागसं मां दक्षं च क्षिप्त्वा शोकमहार्णवे॥ ४८॥
स्वयमन्तर्हितास्यस्मान्मोहयन्ती स्वमायया।
न त्वां कदाचित्त्यक्ष्यामि मम प्राणैकवल्लभाम्॥ ४९॥

अतः उठो! आज तुम पहले की तरह मुझसे संलाप क्यों नहीं कर रही हो! तुम मुझ अपराधी को तथा पिता दक्ष को शोक में निमग्न कर स्वयं अन्तर्धान हो गयी हो! और हम लोगों को अपनी माया से मुग्ध कर गयी हो! हे प्राणप्रिये! तुम विश्वास रखो कि मैं तुम्हारा कभी परित्याग नहीं करूँगा।। ४८–४९।।

प्रगृह्य परमामोदात्कियत्कालं भ्रमाम्यहम्''॥ ५०॥

मैं तुम्हें अत्यधिक हर्ष से उठाकर कुछ समय तक (पृथ्वी पर) परिभ्रमण करूँगा।। ५०।।

सती-देह को शिर पर रखकर भगवान् शङ्कर की भूपरिक्रमा

एवं विलप्य बहुधा शम्भुः प्राकृतलोकवत्।
बाहुभ्यां तां समालिङ्ग्य जग्राह शिरसा मुने!॥ ५१॥

यों वे भगवान् शङ्कर साधारणजन की तरह बहुत ही विलाप करने लगे। हे महामुने! भगवान् शङ्कर उस छाया सती के देह को बाहुओं से पकड़ कर शिर पर रख लिया।। ५१।।

छायासत्यास्तु तं देहं धृत्वा शिरसि शङ्करः।
सम्प्राप्य परमं मोदं ननर्त धरणीतले॥ ५२॥
ब्रह्मादयः सुराधीशा देवा इन्द्रपुरोगमाः।
अपूर्वं रथमास्थाय गगने द्रष्टुमागमन्॥ ५३॥

छायासती के उस शरीर को शिर पर धारण कर गवान शङ्कर अत्यधिक हर्ष प्रकट करते हुए भूमि पर नाचने लगे। उस समय, देवराज इन्द्र को आगे कर ब्रह्मा आदि प्रमुख देव अपूर्व रथ पर बैठकर उस दृश्य को देखने के लिये गगनमण्डल में चले आये।। ५२–५३।।

पुष्पवृष्टिः समभवत्प्रमथाश्च दिशो दश।
मुखवाद्यं ततश्चक्रुर्ननृतुश्च लसज्जटाः॥५४॥
कदाचिच्छिरसा धृत्वा कदाचिद्दक्षिणे करे।
कदाचिद्वामहस्ते च कदाचित् स्कन्धदेशके।
कदाचिद्वक्षसि प्रीत्या परिनृत्यन् सदाशिवः॥५५॥

दिव्य पुष्पवृष्टि होने लगी उधर प्रमथगण दशों दिशाओं में भी प्रसन्न होकर मुख से बजाये जाने वाले बाजे बजाने लगे और अपनी जटाएँ फहरा फहरा कर नाचने लगे। उधर भगवान् शङ्कर भी कभी उस देह को शिर पर रखकर, कभी दाहिने हाथ में लेकर कभी बाएँ हाथ मे लेकर, कभी कन्धे पर रखकर, कभी छाती पर रखकर प्रीतिपूर्वक नाचने लगे।। ५४–५५।।

ननर्त चरणाघातैः कम्पयन् धरणीतलम्।
चन्द्रलोकस्थितश्चन्द्रो ललाटे तिलकोऽभवत्॥५६॥

वे अपने पैरों के आघात से पृथ्वी को कँपाने लगे। चन्द्रलोक स्थित चन्द्रमा भय के मारे उनके मस्तक पर आकर स्थिर हो गये।। ५६।।

ज्वलज्जटाविनिक्षिप्ता बभूवुस्तारकागणाः।
सूर्यलोकस्थितः सूर्यः कण्ठे भूषणतां गतः॥५७॥

और तारागण उनकी देदीप्यमान जटा में आकर शोभित होने लगे। तथा सूर्यलोकस्थित सूर्य वहाँ आकर उनके कण्ठ का आभूषण बन गये।।५७।।

कूर्मानन्तौ पीडितौ तां धरणीं त्यक्तुमुद्यतौ।
नृत्यवेगप्रवृद्धेन वायुना च महीधराः।
सुमेरुप्रमुखाश्चेलुर्वृक्षा इव महामुने!॥५८॥

इस पृथ्वी को निरन्तर काँपती देखकर उसको धारण करने वाले कूर्म (कछुआ) तथा शेषनाग भी अपना अपना स्थान छोड़कर भागने को सन्नद्ध हो गये तथा नृत्य के वेग के कारण उठी वायु के प्रभाव से काँपते हुए सुमेरु आदि पर्वत भी वृक्षों की तरह डगमगा गये।। ५८।।

एवं भूतानि संक्षोभ्य नृत्यन् सर्वां वसुन्धराम्।
बभ्राम शिरसा धृत्वा छायासत्यङ्गविग्रहम्॥५९॥
शिवस्तु परमामोदो मनसैवं व्यचिन्तयत्॥६०॥

इस तरह महामुने! भगवान् शङ्कर प्राणियों को क्षुब्ध कर नृत्य करते रहे और समग्र पृथ्वी पर घूमते तथा उस छायासती के शरीर को प्रसन्नता से शिर पर उठाये हुए उन्होंने मन में यह विचार किया–।। ५९–६०।।

"सति त्वं मम भार्येति लोकलज्जां परित्यजन्।
मूर्ध्ना वहामि ते छायां भाग्यं मम महत्तरम्"॥ ६१॥

हे सती! 'तुम मेरी पत्नी हो'— इस लोकलज्जा का भी परित्याग कर मैं तुम्हारी देह को शिर पर रखकर घूम रहा हूँ, यह मेरा सौभाग्य है' ।। ६१ ।।

एवं स आत्मनो भाग्यमुपवर्ण्य सदाशिवः।
अतीव परमामोदो ननर्त च मुहुर्मुहुः॥ ६२॥

यों वे सदाशिव अपने भाग्य की सराहना करते हुए बहुत ही प्रमुदित होकर बार बार नाचते रहे।। ६२।।

क्षुब्धमासीज्जगत्सर्वं पक्षिणो मृतका इव।
अकालप्रलयं भूता गणयामासुरग्रतः॥ ६३॥

इससे सम्पूर्ण जगत् विचलित हो गया। पक्षी भी मृतप्राय हो गये। प्राणियों ने समझ लिया कि अब हम लोगों के सम्मुख प्रलयकाल उपस्थित हो गया है।। ६३।।

ब्रह्माज्ञया तु ऋषयश्चक्रुः स्वस्त्ययनं महत्।
देवास्तु चिन्तयामासुः किमिदं समुपस्थितम्॥ ६४॥

तब, पितामह ब्रह्मा के आदेश से ऋषिगण स्वस्तिवाचन करने लगे। उधर देवसमूह भी सोचने लगा कि यह सब क्या होने जा रहा है?।। ६४।।

उपायं नैव पश्यामो जगद्रक्षा कथं भवेत्!
दक्षोऽस्माकं विनाशाय जगतोऽस्य क्षयाय च॥ ६५॥
आरब्धवान् कुयज्ञं स शिवविद्वेषकारणात्।
शम्भुरानन्दसम्मग्नो विघूर्णनयनः प्रभुः॥ ६६॥

हम लोगों को कोई उपाय नहीं सूझ रहा है कि अब इस जगत् की रक्षा कैसे होगी! इस पापी दक्ष ने हमारे तथा जगत् के विनाश के लिये ही शिव से द्वेष रखते हुए यह भ्रष्ट यज्ञ प्रारम्भ किया था। उधर भगवान् शङ्कर इसी (नृत्य) में आनन्द मानते हुए सभी को टेढ़ी आँखें करके देख रहे हैं।। ६५-६६।।

न चिन्तयति लोकानां विपत्तिं समुपस्थिताम्।
कथं शान्तो भवेद्देवो जगत्संहारकारकः॥ ६७॥

वे संसार के प्राणियों के सम्मुख, उनके कारण, आ रही विपत्ति को कोई महत्त्व नहीं दे रहे हैं। ये जगत् के संहारकारक भगवान् शङ्कर कैसे शान्त हों?"।। ६७।।

विष्णु०—

"ब्रवीम्युपायं त्रिदशा यत्नतः कुरुताधुना।
उक्तं तदा महादेव्या छायादेव्यास्तु विग्रहम्।
भूतले विविधो भूत्वा पतिष्यति सुनिश्चितम्॥ ६८॥
यत्र तत्र च देहोऽयं खण्डशः प्रपतिष्यति।
तत्तत्स्थानं महापीठं पुण्यतीर्थं भविष्यति॥ ६९॥
तया यदुक्तं तन्मिथ्या कदाचिन्न भविष्यति।
पतिष्यति धरापृष्ठे छायासत्यास्तु विग्रहः॥ ७०॥

विष्णु— "मैं एक उपाय बताता हूँ, यदि आप उसे पूर्ण कर सकें। उस महादेवी ने उस समय छायादेवी के शरीर के विषय में कहा था कि यह भूतल पर निश्चित ही अनेक भाग होकर गिरेगा। यह देह जहाँ जहाँ खण्ड खण्ड होकर गिरेगा। वह स्थान पुण्यतीर्थ के रूप में 'महापीठ' नाम से प्रसिद्ध होगा। उस देवी ने जो कहा है, वह कभी मिथ्या नहीं हो सकता। उस छायासती का शरीर अब ही भूतल पर गिरेगा।। ६८–७०।।

अहं तु सृष्टिरक्षार्थं कृत्वा साहसमुत्तमम्।
परमानन्दमग्नस्य महेशस्य शिरःस्थितम्॥ ७१॥
खण्डशः पातयिष्यामि छायासत्याः शरीरकम्।
सुदर्शनेन चक्रेण प्रभोः शम्भोरजानतः॥ ७२॥

मैं इस समग्र सृष्टि की रक्षा हेतु साहस करके परम आनन्द में डूबे इन भगवान् शङ्कर के शिर पर स्थित इस छायाशरीर को शङ्कर के न जानते हुए सुदर्शन चक्र से काटकर विभक्त करके गिरा दूँगा।। ७२।।

एवं मयि कृते नूनं जगद्रक्षणकारिणी।
सैव ब्रह्ममयी देवी मां रक्षिष्यति शङ्करात॥ ७३॥

मेरे द्वारा ऐसा किये जानेपर, वह जगद्रक्षिका देवी ही उस क्रोधी शङ्कर से मेरी रक्षा करेंगी"।। ७३।।

देवी०— प्रभो विष्णो जगन्नाथ यद्येवं कर्तुमर्हसि॥ ७४॥
तदैव जगतां रक्षा न चेत्प्रलयमेष्यति॥ ७५॥

देवी—"देव जगन्नाथ! हे समर्थ विष्णु! यदि आप ऐसा कर सकें तभी इस जगत् की रक्षा हो सकेगी। अन्यथा प्रलय हो जायगा"।। ७४–७५।।

श्रीमहादेव०— ततो विष्णुर्महाबाहुर्जगतः परिपालकः।
छायासत्याः शरीरं स पातयामास खण्डशः॥ ७६॥

सुदर्शनेन चक्रेण महाभीत इवेश्वरात्।
आनन्दमग्नचित्तस्य शिरसः परमेशितुः॥ ७७॥
नृत्यमानो यदा शम्भुः क्षिपते चरणौ भुवि।
तदैव प्राक्षिपच्चक्रं छायादेहं चकर्त सः॥ ७८॥

श्रीमहादेव— तब वे जगद्रक्षक महाबाहु भगवान् विष्णु उस छाया सती के शरीर को सुदर्शन चक्र से खण्ड खण्ड कर गिराने लगे, यद्यपि ऐसा करते हुए उन्हें भगवान् शङ्कर से भय लग रहा था कि कहीं वह चक्र नृत्य करते हुए आनन्दमग्न भगवान् शङ्कर के शिर को न लग जाय। अतः उन्होंने अपना सुदर्शन चक्र तब तब चलाया जब नाचते हुए उनका चरण भूमि पर गिरता था, और उससे छायासती का देह खण्डित होता गया।। ७६–७८।।

विष्णुचक्रेण सञ्छिन्नास्तद्देहावयवाः पृथक्।
निपेतुः पृथिवीपृष्ठे स्थाने स्थाने महामुने॥ ७९॥
महातीर्थानि तान्येव मुक्तिक्षेत्राणि भूतले।
सिद्धिपीठा हि ते देशा देवानामपि दुर्लभाः॥ ८०॥

हे महामुने! छायासती के खण्डित शरीर के वे भाग जहाँ जहाँ गिरे वे स्थान लोक में महातीर्थ (मुक्तिक्षेत्र) के रूप में प्रसिद्ध हो गये। वे सिद्धपीठ देश देवताओं को भी दुर्लभ थे।। ७९–८०।।

तेषु देवीं समुद्दिश्य होमपूजादिकं तु यत्।
कुरुते कोटिगुणितं फलं तस्य महामुने॥ ८१॥
तत्र जप्त्वा महादेवीं साक्षात्पश्यति मानव।
पातकी मुच्यते पापाद् ब्रह्महत्यादिकादपि॥ ८२॥

वहाँ देवी का उद्देश्य कर जो होम या पूजन आदि किया जाता है। हे महामुने! वह सब करोड़ों गुण अधिक फल देता है। वहाँ देवी का मन्त्र जपने वाला साधक देवी का साक्षात् दर्शन पा जाता है। ऐसा पातकी भी, जिसने वहाँ मन्त्रजाप किया हो, अपने ब्रह्महत्यादि पापों से छुटकारा पा जाता है।। ८२।।

भूमौ निपतितास्ते तु छायाङ्गावयवाः क्षणात्।
जग्मुः पाषाणतां सर्वलोकानां हितहेतवे॥ ८३॥

वे छाया शरीर के अवयव जिस क्षण भूमि पर गिरते थे उसी समय वे सर्वलोक के हित की कामना से पत्थर बन जाते थे।। ८३।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च तथेन्द्राद्याः सुरा मुने।
आगत्याहुर्वचस्तेषु सेवार्थे परमेश्वरीम्॥ ८४॥

हे महामुने! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं इन्द्र आदि देवता वहाँ आकर परमेश्वरी से अपना कोई सेवाकार्य बताने का निवेदन करने लगे।। ८४।।

एवं छायासतीदेहे निकृत्ते चक्रपाणिना।
निर्भारं स्वशिरो ज्ञात्वा शिवो धैर्यमुपेत्य च॥ ८५॥
ददर्श व्याकुलं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥ ८६॥

यों, चक्रपाणि विष्णु द्वारा छायासती का देह खण्डित कर देने के बाद अपने शिर से भार उतरा हुआ समझ कर भगवान् शङ्कर ने कुछ देर धैर्य धारण किया। फिर उन्होंने इस समग्र स्थावर जङ्गमात्मक जगत् को व्याकुल देखा।। ८५-८६।।

शङ्कर की क्रोध-शान्ति के लिये नारद का प्रेषण

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्नारदं ब्रह्मणः सुतम्।
शान्त्यर्थं देवदेवस्य प्रेषयामास सन्निधिम्॥ ८७॥

इसी बीच भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा के पुत्र नारद को भगवान् शङ्कर के पास, उन्हें प्रसन्न करने के लिये, यह कहकर भेजा-।। ८७।।

"गच्छ नारद भद्रं ते शिवं सान्त्वय मत्कृते।
त्वमेवात्र समर्थोऽसि ब्रह्मपुत्रो महामतिः॥ ८८॥

"हे नारद! आपका कल्याण हो! आप भगवान् शङ्कर के पास जायँ, और मेरे विषय में उन्हें शान्त कीजिये। इस कार्य में आप ही समर्थ हैं; क्यों कि आप ब्रह्मा के पुत्र हैं तथा अतीव बुद्धिमान् हैं।। ८८।।

शिवः सतीवियोगेन दुःखार्तः परमेश्वरः।
कस्य किं प्रकरोत्येष लयं वा जगतां विभुः॥ ८९॥

ये शङ्कर परमेश्वर होते हुए भी सती के विरह में दुःख से पीड़ित हैं। ये इतने समर्थ हैं कि जगत् में कब, किसको, क्या हानि न पहुँचा दें- कोई यह नहीं कह सकता।। ८९।।

यथा शान्तमना भूत्वा तिष्ठत्यद्य महेश्वरः।
तथा कुरु महाबुद्धे सान्त्वयस्व सदाशिवम्"॥ ९०॥

अतः जिस किसी उपाय से भी ये महेश्वर शान्त होकर बैठें- हे महाबुद्धे! वही उपाय कीजिये।। ९०।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा नारदः प्रययौ ततः।
सम्मुखे देवदेवस्य कृताञ्जलिरुपस्थितः॥ ९१॥

भगवान् विष्णु के ये वचन सुनकर महर्षि नारद, वहाँ से चलकर, देवाधिदेव भगवान् शङ्कर के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले—।। ९१ ।।

नृत्यन् स नारदं दृष्ट्वा कृताञ्जलिपुटं स्थितम्।
प्राह "मे क्व गता साध्वी सती प्राणैकवल्लभा ?"॥ ९२॥

उन भगवान् शङ्कर ने नाचते हुए, महर्षि नारद को हाथ जोड़े खड़े देखकर, उनसे पूछा— "मेरी प्राणप्रिया साध्वी सती कहाँ गयी?"।। ९२ ।।

नारद०— **"भव शान्तमनाः शम्भो सतीं लप्स्यसि सर्वथा।**
अस्त्येव ते सती नित्या गच्छन्तीं च विहायसा॥ ९३॥

नारद— "हे शङ्कर! आप अपने चित्त को शान्त कीजिये। एक समय आयगा कि आप अपनी प्राणप्रिया को पुनः प्राप्त करेंगे। आपकी पत्नी सती तो नित्य अविनाशी है।। ९३ ।।

दृष्ट्वापि प्रत्ययो नैव जातः किं परमेश्वर!
अकाले प्रलयं नैव कुरु शम्भो स्थिरो भव॥ ९४॥

हे परमेश्वर! आपको आकाश में खड़ी हुई उन सती को देखकर भी विश्वास नहीं हुआ? हे शम्भो! आप शान्त होइये! असमय में जगत् के लिये प्रलय की स्थिति न पैदा कीजिये"।। ९४ ।।

शिव०— **"युष्माकं किं करोम्येव कथं वदसि नारद!**
अकाले प्रलयं वापि करोमि कुत्र चाप्यहम् ?॥ ९५॥

भगवान् शङ्कर— "हे नारद! मुझे बताओ तो कि मैं तुम लोगों को क्या हानि पहुँचा रहा हूँ? मैं कैसे और कहाँ असमय में प्रलय करने जा रहा हूँ?।। ९५ ।।

सतीविरहदुःखार्तश्छायासत्यास्तु विग्रहम्।
प्राप्य विस्मृतदुःखोऽहमभवं तच्च केन वा।
शिरसः सोऽप्यपहृतो देहो दुष्टविचेतसा"॥ ९६॥

मैं तो सती के विरह में दुःखी होकर छायासती के शरीर को पाकर अपना दुःख भूलने का प्रयास कर रहा था कि किसी दुष्टहृदय ने उसको भी मुझ से छीन लिया!"।। ९६ ।।

नारद०— **"भव शान्तमना देव सर्वं ते कथयाम्यहम्।**
प्रसीदास्मान्महादेव त्यज नृत्यं लयप्रदम्॥ ९७॥

नारद— "आप शान्त तो होइये। मैं सब कुछ आपको स्पष्टतः बताने जा रहा हूँ। आप हम पर प्रसन्न होइये, और इस प्रलयकारी नृत्य को छोड़िये।।। ९७।।

त्वन्नृत्येन विपन्नेयं वसुधापि निमज्जति।
पर्वताश्चलिताः सर्वे देवाः स्वर्गं तथात्यजन्॥ ९८॥
नाशमेति जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ९९॥

आपके नृत्य से दुःखी होकर यह पृथ्वी भी विनष्ट हो जायगी। आप देख नहीं रहे हैं कि सभी पर्वत, आपके नृत्य के कारण चलायमान हैं, भय के कारण सभी देवता स्वर्ग से भाग गये हैं। यह समग्र जगत् देव, असुर एवं मनुष्यों सहित विनष्ट हो जायगा।। ९९।।

त्वया तु स्वकृतश्चासौ प्रलयो नैव दृश्यते।
कथं नृत्यच्छलेनेदं विश्वं नाशयसि प्रभो!॥ १००॥

तुम तो अपने कृत्य में लगे हो! उसके कारण होने वाला यह जगत् का प्रलय तुम्हें नहीं दिखायी दे रहा है! हे प्रभो! क्यों नृत्य के बहाने (ब्याज) से इस जगत् को नष्ट करने पर तुले हो!।। १००।।

किमीदृशं कर्मसु यत्स्वकीयार्थं विनाशयेत्॥ १०१॥
त्रैलोक्यरक्षको विष्णुर्दृष्ट्वा विपदमद्भुताम्।
त्वां सान्त्वयितुकामोऽसौ धृत्वा चक्रं सुदर्शनम्।
प्रक्षिप्य शनकैश्छायासतीदेहं समाच्छिनत्॥ १०२॥

अैसे कर्मों में आसक्त रहने से क्या लाभ होगा जो अपने प्रयोजन (हित) को ही नष्ट कर दे। जगत् पर अद्भुत सङ्कट आया देखकर त्रैलोक्य रक्षक विष्णु ने आपको शान्त करने के लिये सुदर्शन चक्र धारण कर उसे फेंक फेंक कर छायासती के देह को धीरे धीरे खण्ड खण्ड कर दिया।। १०२।।

स देहः खण्डशो भूमौ यत्र तत्र समापतत्।
महापीठास्तत्र जाताः कामरूपादयः प्रभो॥ १०३॥

वह देह खण्डित होकर जहाँ तहाँ गिर पड़ा। हे प्रभो! वह जहाँ जहाँ गिरा वहाँ कामरूप आदि सिद्धपीठ बन गये।। १०३।।

उक्तं तया जगद्धात्र्या समाराधितया त्वया।
पूर्वमेव हि देहोऽयं पतिष्यति धरातले॥ १०४॥
खण्डशो बहुधा भूत्वा महापीठप्रसिद्धये।
तस्माद्विष्णुस्तथा चक्रे भव शान्तः सदाशिव!"॥ १०५॥

क्योंकि उस जगन्माता ने आपको भी आराधना करने पर, पहले ही बता दिया था कि मेरा यह शरीर धरातल पर जहाँ जहाँ खण्डित होकर गिरेगा, और वहाँ वहाँ अनेक महापीठ प्रसिद्धि को प्राप्त करेंगे। भगवान् विष्णु ने इसीलिये यह कार्य किया है। अतः आप शान्त होइये!''।। १०४–१०५।।

श्रीमहादेव०—एवमुक्तस्तु मुनिना त्यक्तनृत्यः सदाशिवः।
विनिःश्वसन्मुहुर्विष्णुं शशाप कमलापतिम्॥ १०६॥

श्रीमहादेव– नारद मुनि द्वारा यों कहे जाने पर, भगवान् शङ्कर ने नृत्य करना छोड़कर (क्रोध से) ऊँची ऊँची श्वास छोड़ते हुए कमलापति भगवान् विष्णु को यों शाप देना प्रारम्भ किया–।। १०६।।

''विष्णुर्मानुषरूपेण जनिष्यति महीतले।
त्रेतायां सूर्यवंशेऽसौ मम शापेन निश्चितम्॥ १०७।।

''नारद! यह तुम्हारा विष्णु, मेरे शाप के कारण, निश्चित रूप से त्रेतायुग आने पर सूर्यवंश में मनुष्यरूप में उत्पन्न होगा।। १०७।।

तत्रातिरम्या तत्पत्नी सतीव प्राणवल्लभा।
छायां संस्थाप्य सन्त्यक्त्वा माययान्तर्हिता स्वयम्॥ १०८॥

वहाँ इसकी अतिसुन्दर पत्नी, जो कि मेरी प्राणप्रिया सती की तरह माया से अपनी छाया रखकर स्वयं अन्तर्हित हो जायगी।। १०८।।

भविष्यति ततश्चासौ मायया विप्रमोहितः।
आनन्दमग्नचित्तश्च भूत्वा यास्यति दूरतः॥ १०९॥

तब यह (विष्णु) माया से मुग्ध होकर आनन्दमग्न चित्त से दूर चला जायगा।। १०९।।

ततो यथा मां चक्रेऽसौ छायापत्नीवियोगिनम्।
क्रूरराक्षसवद्विष्णुस्तथा राक्षसपुङ्गवः॥ ११०॥

एनं करिष्यति क्रूरश्छायापत्नीवियोगिनम्।
शोकसन्तप्तहृदयः स यथाहं भविष्यति''॥ १११॥

तब जैसे इसने क्रूर राक्षस की तरह मुझ को आज छायासती से वियुक्त कर दिया, उसी तरह कोई बलवान् राक्षस इसको भी इसकी छायापत्नी से वियुक्त कर देगा। हे महामुने! मैं आप से सत्य कह रहा हूँ कि इसकी

छायामयी पत्नी के हर लिये जाने पर, शोकसन्तप्त हृदय से मेरी तरह यह भी जङ्गल जङ्गल भटकेगा! अर्थात् इसकी भी वही दशा होगी, जो आज मेरी है''।। ११०–१११।।

श्रीमहादेव०—एवं शप्त्वा शिवो विष्णुं स्वस्थचित्तोऽभवत्ततः।
प्रसार्य त्रीणि नेत्राणि ददर्श च जगत्त्रयम्॥ ११२॥

श्रीमहादेव जी बोले— यों भगवान् शङ्कर विष्णु जी को शाप देकर स्थिरचित्त हुए। तब उन्होंने अपने तीनों नेत्रों से इस त्रिलोकी को देखा।। ११२।।

दृष्ट्वा योनिं कामरूपे रोमाञ्चितकलेवरः।
कामव्याकुलितोत्कण्ठो बभूव गिरिशः स्वयम्॥ ११३॥

तब उन्हें छायासती के देह का योनि भाग कामरूप में दिखायी दिया, इससे उत्पन्न हर्ष के कारण उन्हें रोमाञ्च हो गया। तब वे पर्वतवासी शिव काम से व्याकुल होकर उस देवी को पुनः प्राप्त करने के लिये उत्कण्ठित हो गये।। ११३।।

दृष्टमात्रे तु सा योनिः काममुग्धेन शम्भुना।
पृथ्वीं विभिद्य पातालं गच्छन्तीव बभूव ह॥ ११४॥

काममुग्ध शम्भु के द्वारा देखे जाते ही देवी का वह योनिभाग पृथ्वी फोड़कर पाताल में प्रविष्ट होता हुआ सा लगा।। ११४।।

दृष्ट्वैवं शङ्करः सत्या भूत्वांशेन गिरिः स्वयम्।
दधार योनिं हृष्टात्मा वर्णयन् भाग्यमात्मनः॥ ११५॥

ऐसा देखकर भगवान् शङ्कर ने प्रसन्नमन हो, अपना सौभाग्य मानते हुए, स्वयं पर्वत रूप से उस योनिभाग को धारण कर लिया।। ११५।।

सर्वेषु तेषु पीठेषु कामरूपादिषु स्वयम्।
पाषाणलिङ्गरूपेण ह्यधिष्ठाय व्यसेवत॥ ११६॥

और, उन सभी कामरूप आदि पीठों में स्वयं भगवान् शङ्कर पाषाण के बने लिङ्ग के रूप में स्थित होकर वास करने लगे।। ११६।।

सस्मार पूर्वं तद् वृत्तं यदुक्तं हि तया मुने!
योनिपीठे तपस्तप्त्वा पुनर्लब्ध्वा महेश्वरीम्॥ ११७॥

हे मुने! उन्होंने वहाँ उस पूर्व वृत्त का स्मरण किया जो कि उस सती ने उनसे कहा था कि योनिपीठ में तपश्चर्या कर आप पुनः सती देवी को प्राप्त कर पायँगें।। ११७।।

ततः शान्तमना भूत्वा योगचिन्तापरोऽभवत्।
विहायसा मुनिश्चापि ययौ स्वस्थानमुत्तमम्॥ ११८॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे छायासतीवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

तब भगवान् शङ्कर शान्तचित्त होकर योगचिन्तन में तत्पर हो गये। और उधर नारद मुनि भी आकाश मार्ग से अपने श्रेष्ठ वासस्थान पर चले गये॥ ११८॥

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'छायासती वर्णन' नामक
एकादश अध्याय समाप्त॥

द्वादश अध्याय

[कामरूप आदि का माहात्म्य-वर्णन]

श्रीमहादेव०— गत्वा तु नारदः श्रीमान् विष्णोः सन्निकटं ततः।
अथाब्रवीद् यथावृत्तं देवदेवस्य चेष्टितम्॥ १॥

श्रीमहादेव जी बोले— पुनः श्रीमान् नारद मुनि वहाँ से भगवान् विष्णु के पास पहुँचे। और वहाँ देवाधिदेव शङ्कर का वह व्यवहार, जो कुछ उन्होंने किया था, सब कुछ विस्तार से सुनाया।। १।।

दोनों देवों का शङ्कर के पास जाना

अभिशापादिकं श्रुत्वा शिवस्याकुलितं तथा।
ब्रह्मणा सहितो विष्णुः कामरूपं समभ्यगात्॥ २॥
द्रष्टुं देवं महेशानं शोकव्याकुलमानसम्।
अश्रुधाराभिसंसिक्तगात्रं सान्त्वयितुं तथा॥ ३॥

तब भगवान् विष्णु शिव का दिया हुआ अभिशाप आदि तथा उन की व्याकुलता सुनकर ब्रह्मा के साथ कामरूप पहुँचे। वहाँ उन्होंने शोकव्याकुलितचित्त देवाधिदेव शङ्कर को, जिनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी, देखा और उनको सान्त्वना दी।। २–३।।

तौ दृष्ट्वा भगवान् शम्भुर्मुक्तकण्ठो रुरोद ह।
पत्नीमाक्षिप्य बहुधा सतीं प्राकृतलोकवत्॥ ४॥

उन दोनों प्रमुख देवों को देखकर भगवान् शङ्कर भी सती के लिये गला फाड़कर रुदन करने लगे, मानो कोई साधारण आदमी रो रहा हो।। ४।।

ब्रह्मविष्णू०— "किमेवं देवदेवेश मृषा रोदिषि शङ्कर।
विद्यमानामपि सतीं दृष्ट्वा ज्ञात्वापि मूढवत्"॥ ५॥

ब्रह्मा एव विष्णु— "हे देवाधिदेव, शङ्कर! देवी सती को विद्यमान देख जानकर भी, यों मूर्खों की तरह क्या रुदन कर रहे हो"।। ५।।

शिव०— "सत्यं वदसि जानामि सतीं प्रकृतिरूपिणीम्।
नित्यां ब्रह्ममयीं शुद्धां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्॥ ६॥

भगवान् शङ्कर— "आप लोग सत्य ही कह रहे हैं, मैं भी जानता हूँ

कि वह प्रकृतिरूपिणी सती नित्या है, ब्रह्मरूपा है, शुद्ध (निर्विकार) है; इस जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय करने वाली है।। ६।।

दृष्ट्वा स्वचक्षुषा दक्षयज्ञभङ्गोत्तरं मया।
तथैव तां न दृष्ट्वैव पत्नीभावेन पूर्ववत्॥ ७॥

दक्ष–यज्ञविध्वंस के बाद मैंने उनको अपनी इन्हीं आँखों से देखा भी है; परन्तु वे आज मेरे पास पहले के समान मेरी पत्नी के रूप में उपस्थित नहीं हैं।। ७।।

स्वगृहे मे मनोऽतीव व्याकुलं जायतेऽधुना।
कथं पुनर्लभिष्यामि पूर्ववत्तां महेश्वरीम्।
उपायं ब्रूहि मे ब्रह्मन्! विष्णो! त्वं चापि साम्प्रतम्"॥ ८॥

अतः अब मेरा मन, अपने घर में भी बहुत व्याकुल रहता है। मैं उसे पहले की तरह पत्नीभाव में कैसे प्राप्त कर पाऊँगा? हे ब्रह्मन्! हे विष्णो! अब आपलोग इसका कोई उपाय बताइये।। ८।।

ब्रह्मविष्णू०— **"भूत्वा शान्तमना देवः कामरूपेऽत्र संस्थितः।**
तामेव मनसि ध्यात्वा तपश्चर समाहितः॥ ९॥
महापीठोऽयमत्रैव साक्षात् सा परमेश्वरी।
प्रत्यक्षफलदा देवी साधकानां न संशयः॥ १०॥
माहात्म्यमस्य पीठस्य वक्तुं वा केन शक्यते॥ ११॥

ब्रह्मा एवं विष्णु— "हे देव आप शान्तचित्त होकर इसी कामरूप में रहकर उस देवी का ध्यान करते हुए तपःसाधना कीजिये; क्योंकि यह महापीठ है। यहीं वह साक्षात् भगवती परमेश्वरी भक्तों, साधकों को प्रत्यक्षफल प्रदान करती है—इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस पीठ का वास्तविक माहात्म्य कौन कह सकता है!।। ९–११।।

त्वमेव सर्वं जानासि सर्वज्ञः परमेश्वरः।
किमावां कथयिष्यावो भव शान्तमनाः शिव!"॥ १२॥

केवल आप ही उसे जानते हैं; क्योंकि आप सर्वज्ञ परमेश्वर हैं। हम आपको इस विषय में आप से अधिक क्या बता सकते हैं! हे शिव! आप अपने चित्त को शान्त कीजिये!"।। १२।।

शिव०— **"अत्रैवाहं तपश्चोग्रं चरिष्ये सुसमाहितः।**
तथापि कथितोऽप्येवं युवाभ्यामपि चाधुना"॥ १३॥

शिव— "मैं अब समाहितचित्त होकर यहाँ ही उग्र तपःसाधना

करूँगा— ऐसा मेरा निश्चय था। अब तो आप की भी सम्मति मिल ही गयी है"।। १३।।

तीनों देवों की तपःसाधना

श्रीमहादेव०—इत्युक्त्वा स शिवः शान्तस्तपस्तेपे समाहितः।
कामरूपमहापीठे ध्यायँस्तां परमेश्वरीम्॥ १४॥

श्रीमहादेव जी— यों कहकर उन भगवान् शङ्कर ने शान्तभाव से समाधिनिष्ठ होकर उस कामरूप महापीठ में परमेश्वरी देवी का ध्यान करते हुए उग्र तपःसाधना प्रारम्भ की।। १४।।

ब्रह्मा विष्णुश्च तत्रैव महापीठे ततः स्थितः।
समाहितमनास्तीव्रं चचार परमं तपः॥ १५॥

इसी तरह ब्रह्मा एवं विष्णु ने भी उसी महापीठ में समाहित चित्त से कठोर तपश्चर्या करना प्रारम्भ किया।। १५।।

बहुकाले गते देवी प्रसन्ना जगदम्बिका।
प्रत्यक्षाभूज्जगन्माता तेषां त्रैलोक्यमोहिनी॥ १६॥

यों बहुत समय बीतने पर, वह जगन्माता त्रैलोक्यमोहिनी देवी उन तीनों देवों के सम्मुख प्रसन्नतापूर्वक प्रकट हुईं।। १६।।

प्रोवाच च महादेवी किं तेऽभिलषितं वद॥ १७॥

और बोली— आप लोगों की जो मनःकामना है उसे कहें।। १७।।

शिव०— "यथा हि कृपया पूर्वं स्थिता मद्देहिनी स्वयम्।
तथैव हि पुनश्चापि भव त्वं कृपयेश्वरि"॥ १८॥

शिव— "हे महेश्वरि! आप कृपापूर्वक पहले की तरह मेरी गृहस्वामिनी बनकर मेरे घर में रहें"।। १८।।

देवी०— अतस्त्वामचिरेणैव हिमालयसुता स्वयम्।
द्विधा भूत्वा भविष्यामि सत्यमेव महेश्वर।
यतस्तां शिरसा हर्षात् कृत्वा मन्नृत्यतत्परः॥ १९॥
अहं तेनांशतो भूत्वा गङ्गा जलमयी स्वयम्।
त्वामेव पतिमापन्ना भविष्ये तव मूर्धनि॥ २०॥

देवी— "मैं तुम्हें सत्य बता दूँ कि मैं यहाँ से चलकर शीघ्र ही हिमालय की पुत्री बनूँगी और वहीं तुम से मिलूँगी। हे महेश्वर! मैं वहाँ दो रूपों में प्रकट होऊँगी। एक जलमयी गङ्गा, जिसे आपने मुझे लेकर नृत्य करते

समय शिर पर धारण किया था। मैं उसी के एक अंश में प्रकट होकर आपको पति मानकर जलमयी गङ्गा के रूप में आपके शिर पर विराजमान रहकर आप की सेवा करूँगी।। १९–२०।।

अपरा पार्वती भूत्वा पत्नीभावेन शङ्कर!
स्थास्यामि तव गेहेऽहं पूर्णैव हि महामते!॥ २१॥

हे शङ्कर महामते! दूसरी, पार्वती के रूप में आपके घर में पत्नी भाव से नित्य पूर्णा रूप से रहूँगी'।। २१।।

महादेव०—ततो भगवती देवी यथाभिलषितं वरम्।
ब्रह्मणे विष्णवे दत्त्वा स्वयमन्तर्हिताभवत्॥ २२॥

महादेव— तब वे भगवती उन ब्रह्मा एवं विष्णु को भी यथाभिलषित वर देकर स्वयं अन्तर्ध्यान हो गयीं।। २२।।

ततः सापि महादेवी द्विधा भूत्वा हिमालयम्।
प्रययौ मेनकागर्भे स्वयं दुर्गाऽभवत्ततः।
ज्येष्ठा गङ्गाभवद्देवी कनिष्ठा पार्वती शुभा॥ २३॥

फिर वह महादेवी हिमालय जाकर दो अंशों में मेनका के गर्भ में पहुँची। और वहाँ से वह दुर्गा के रूप में प्रकट हुई। उनमें ज्येष्ठ पुत्री का नाम हुआ गङ्गा एवं कनिष्ठ पुत्री का नाम हुआ पार्वती।। २३।।

शिवस्तु हृष्टचित्तः सन् कामरूपे महामतिः।
कामाख्यानिकटे भूयश्चचार परमं तपः॥ २४॥

उधर प्रसन्नचित्त महामते भगवान् शङ्कर कामरूप में ही। कामाख्या देवी के सम्मुख पुनः उग्र तपः साधना में लीन हो गये।। २४।।

महापीठस्य माहात्म्याद्देवी भगवती स्वयम्।
महेशाय प्रसन्नाभूदभीष्टं च ददौ तथा॥ २५॥

उस महापीठ के माहात्म्य से स्वयं भगवती भगवान् शङ्कर पर प्रसन्न हुई तथा उन्हें यथाभीरिप्सन वर प्रदान किया।। २५।।

एवमन्यो यदा कश्चित्तस्मिन् पीठे महेश्वरीम्।
समाराधयते तस्य मनोऽभीष्टं प्रयच्छति॥ २६॥

इसी तरह उस पीठ पर अन्य कोई साधक यदि तप करता है तो वह भगवती उसकी भी मनःकामना अवश्य पूर्ण करती हैं।। २६।।

कामरूप का माहात्म्य

नारदः०— "कामरूपस्य माहात्म्यं कथयस्व महेश्वर"।
यत्र साक्षाद्भगवती प्रत्यक्षफलदायिनी॥ २७॥
आनुपूर्व्येषु पीठेषु श्रेष्ठं यत्परमेश्वर।
यतस्त्वयापि तत्रैव तपसाराधितेश्वरी॥ २८॥

नारद— "हे महेश्वर! कामरूप सिद्धपीठ की महिमा का वर्णन कीजिये। जहाँ साक्षात् भगवती प्रत्यक्षफलदात्री हैं और जो परम्परागत पीठों में सर्वश्रेष्ठ रूप से विराजमान है। जहाँ कि आपने भी उस जगदीश्वरी की आराधना की है"।। २७–२८।।

श्रीमहादेव०— पीठानि चैकपञ्चाशदभवन्मुनिपुङ्गव।
अङ्गप्रत्यङ्गपातेन छायासत्या महीतले॥ २९॥
तेषु श्रेष्ठतमः पीठः कामरूपो महामते।
यत्र साक्षाद्भगवती स्वयमेव व्यवस्थिता॥ ३०॥

श्रीमहादेवजी— हे मुनिवर! ये इक्कावन (५१) देवीपीठ कहलाते हैं। जहाँ कि इस भूतल पर उन छायासती के अङ्ग–प्रत्यङ्गों का पात हुआ है। उनमें हे महामते! कामरूप सर्वप्रधान है। जहाँ वह भगवती देवी साक्षात् (प्रत्यक्ष रूप से) विराजमान हैं।। २९–३०।।

तत्र गत्वा महापीठे स्नात्वा लोहित्यवारिणि।
ब्रह्महापि नरः सद्यो मुच्यते भवबन्धनात्॥ ३१॥

वहाँ जाकर लोहित (ब्रह्मपुत्र) नदी में स्नान करके ब्रह्महत्या करने वाला पापी भी साधना करके भवबन्धन से मुक्त हो जाता है।। ३१।।

ब्रह्मपुत्रः स्वयं साक्षाद् द्रवरूपी जनार्दनः।
तस्मिन्नेव कृतस्नानो मुच्यते सर्वपातकात्॥ ३२॥
तत्र स्नात्वा विधानेन पितॄन् सन्तर्प्य भक्तितः।
कामेश्वरीं नमस्कुर्यान्मन्त्रेणानेन साधकः॥ ३३॥
कामेश्वरीं च कामाख्यां कामरूपनिवासिनीम्।
"तप्तकाञ्चनसङ्काशां तां नमामि सुरेश्वरीम्"॥ ३४॥

जहाँ ब्रह्मपुत्र नद स्वयं जल रूप से जनार्दन के रूप में विराजमान हैं। साधक उसमें स्नान कर सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। वहाँ विधिपूर्वक

स्नान कर, पितरों को भक्तिपूर्वक सन्तृप्त कर साधक इस मन्त्र से कामरूपनिवासिनी कामाख्या नामक कामेश्वरी भगवती को प्रणाम करे— ।। ३४ ।।

ततो मानसकुण्डादितीर्थं गत्वा विधानतः।
कृत्वा स्नानादिकं क्षेत्रं प्रविश्य च यथाविधि॥ ३५॥
दृष्ट्वा पीठं नरः सद्यो मुक्तो भवति नान्यथा॥ ३६॥

'तपे हुए सुवर्ण के समान वर्णवाली उस भगवती को प्रणाम करता हूँ।' तब मानसकुण्ड में जाकर विधिपूर्वक। स्नानकर, उस पवित्र क्षेत्र में प्रविष्ट होकर यथाविधि पीठ के दर्शन कर साधक मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इसका कोई अन्य मार्ग नहीं है।। ३५–३६।।

तत्र तन्त्रोक्तविधिना सम्पूज्य परमेश्वरीम्।
जपहोमादिकं कृत्वा यादृशं फलमश्नुते॥
तद्वक्तुं नैव शक्नोमि कोटिभिर्वक्त्रकैपि॥ ३७॥

वहाँ तन्त्रशास्त्र में कही गयी विधि से परमेश्वरी भगवती की पूजा कर जप होम आदि के द्वारा जो मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर सकता है। मैं करोड़ों मुख से भी उसका वर्णन करने में समर्थ नहीं हूँ।। ३७।।

यस्य सञ्जायते मृत्युस्तस्मिन् क्षेत्रे महामुने!।
स मुक्तिमेति सद्यो वै सत्यं सत्यं न संशयः॥ ३८॥
किमत्र बहुनोक्तेन यत्र क्षेत्रे महामुने।
देवा मरणमिच्छन्ति किं पुनर्मानवादयः॥ ३९॥

हे महामुने! जिस पुरुष की उस क्षेत्र में मृत्यु होती है। वह वस्तुतः तत्काल ही मुक्त हो जाता है– इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे महामुने! यहाँ अधिक कहने से क्या लाभ जिस क्षेत्र में आकर देवता भी अपना मरण चाहते हैं, साधारण मानवों की तो बात ही क्या?।। ३८–३९।।

इति ते कथितं वत्स संक्षेपेण महामुने।
कामरूपस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥ ४०॥
तस्मिन् क्षेत्रे शिवः स्तुत्वा महेशीं तपसि स्थितः॥ ४१॥

हे महामुने! इस तरह मैंने तुमसे इस कामरूप सिद्धपीठ क्षेत्र का माहात्म्य संक्षेप में बता दिया। यह कामरूप क्षेत्र का माहात्म्य सभी पापों का नाशक है। जिस क्षेत्र में विराजमान् रहकर भगवान् शङ्कर ने साक्षात् महेश्वरी की आराधना की है।। ४०–४१।।

हिमालय के घर में देवी का प्रादुर्भाव

सती हिमवतो गेहं द्विधा भूत्वा समभ्यगात्।
एवं दक्षगृहे जाता स्वयं प्रकृतिरुत्तमा॥ ४२॥

भगवती सती हिमालय के घर जाकर दो रूप में उसी तरह प्रकट हुई जैसे भगवती प्रकृति दक्ष के घर प्रादुर्भूत हुई थीं।। ४२।।

संस्थाप्य परमां कीर्तिं लोकानां त्राणहेतवे।
जगाम मेनकागर्भं पुनर्लब्धुं महेश्वरम्॥ ४३॥

जगत् की रक्षा हेतु अपनी श्रेष्ठ कीर्ति स्थापित कर भगवान् शङ्कर को पुनः प्राप्त करने के लिये वह मेनका के गर्भ में प्रविष्ट हुई।। ४३।।

य इदं चरितं देव्या महापातकनाशनम्।
श्रृणोति परया भक्त्या स शिवत्वमवाप्नुयात्॥ ४४॥

जो भगवती देवी का यह पवित्र महापातकों को भी नष्ट करने वाला चरित्र परम श्रद्धा तथा भक्ति के साथ सुनता है वह अन्त में शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है।। ४४।।

देवा मनुष्या गन्धर्वा यक्षराक्षसचारणाः।
तस्याज्ञावशगाः सर्वे भवन्तीह न संशयः॥ ४५॥

और सभी देवता, मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, चारण साधक की आज्ञा के वशीभूत हो जाते हैं– इसमें कोई सन्देंह नहीं।। ४५।।

अव्याहताज्ञः सर्वत्र भवेत्संश्रवणान्नरः।
भवत्यवश्यं दुर्गं च सुदुष्करमपि क्षणाद्॥ ४६॥

इस चरित्र के श्रवण प्रभाव से साधक पुरुष की कठिन से कठिन आज्ञा भी कहीं नहीं रुक पाती। इसका क्षण भर में ही सुदुर्गम क्षेत्र में पहुँचकर भी पालन होता है।। ४६।।

श्रवणान्नाशमायाति पापं जन्मान्तरार्जितम्।
रिपवः संक्षयं यान्ति, वंशवृद्धिः प्रजायते॥ ४७॥

इस जन्म की तो बात ही क्या, पूर्वजन्म का पाप भी इस चरित्र के सुनने के बाद तत्काल विनष्ट हो जाता है। उसके शत्रु विनष्ट हो जाते हैं। उसके कुल की वृद्धि निरन्तर होती रहती है।। ४७।।

संसारे जन्म चासाद्य नैतदाकलितं हि यैः।
तेषां जन्म वृथा मर्त्ये सत्यमेव महामते!॥ ४८॥

हे महामते! इस संसार में जन्म लेकर जिन्होंने भगवती की आराधना नहीं की, उन का इस संसार में जन्म निरर्थक ही मानना चाहिये।। ४८।।

श्रुत्वेदं चरितं देव्याः संसारव्याधिभेषजम्।
जीवन्मुक्तो भवेत् सद्यो यदि स्यादतिपातकी॥ ४९॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे कामरूपादिमहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

भगवती देवी का यह चरित्र भवरोग-नाश की एकमात्र औषध है। इसको सुनने वाला महापातकी पुरुष भी तत्काल ही जीवन्मुक्त हो जाता है।। ४९।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'कामरूपादिमाहात्म्यवर्णन' नामक
द्वादश अध्याय समाप्त॥

त्रयोदश अध्याय
[गङ्गाप्रादुर्भाव-वर्णन]

श्रीमहादेव० — शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि द्विधा भूत्वा स्वयं सती।
यथाऽभवन्मेनकायाः गर्भे हिमवतः सुता॥ १॥

श्रीमहादेव जी बोले— हे वत्स! अब मैं तुम्हें वह प्रकरण विस्तार से सुनाऊँगा जिसमें भगवती सती स्वयं दो रूप में मेनका के गर्भ में आकर हिमालय की पुत्री बनी। उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो।। १।।

तत्रादौ समभूद्गङ्गा निजांशेन सितप्रभा।
स्थातुं शिरसि शम्भोः सा भूत्वा द्रवमयी मुने॥ २॥

हे मुने! वहाँ पहले वह भगवती देवी अपने एक अंश से श्वेत कान्तिवाली गङ्गा के रूप में प्रादुर्भूत हुईं, जो जलरूप में भगवान् शङ्कर के शिर पर विराजमान रहेंगी।। २।।

तत्पश्चात् समभूद्गौरी पूर्णा शङ्करगेहिनी।
सा हि यत्प्रेमभावेन शरीरार्धं महेशितुः॥ ३॥

बाद में, वह भगवती पूर्णा गौरी (पार्वती) के रूप में प्रादुर्भूत हुई, जो भगवान् शङ्कर की धर्मपत्नी बनी। जो अत्यधिक प्रेमभाव के कारण भगवान् शङ्कर के शरीर का अर्धभाग बन बैठी।। ३।।

गङ्गा का प्रादुर्भाव

तत्राभूत् सा यथा गङ्गा तच्छृणुष्व महामते!
तच्छ्रुत्वा मुच्यते पापी ब्रह्महापि नरः क्षणात्॥ ४॥

हे महामते! वहाँ गङ्गा का प्रादुर्भाव जैसे हुआ— उसे सुनो। जिसे सुनकर ब्रह्महत्या आदि करने वाला पापी पुरुष भी क्षणभर में ही मुक्त हो जाता है।। ४।।

सुमेरुतनया मेना गिरिराजस्य गेहिनी।
तां जन्मनि सुता प्राप निजांशेन महेश्वरी॥ ५॥

वह महेश्वरी सुमेरुपर्वतपुत्री (हिमालयपत्नी) मेनका की सुता के रूप में जन्म लेने के लिये स्वीकार कर उसके गर्भ में पहुँची।। ५।।

गङ्गा समभवद्गर्भे सती गिरिवराङ्गना।
सुषुवे च सुतां चारुसर्वाङ्गी रुचिराननाम्॥ ६॥
वैशाखे मासि शुक्लायां तृतीयायां दिनार्धके॥ ७॥
गङ्गा समभवच्छुक्ला सुचारुमुखपङ्कजा।
त्रिनेत्रा असितापाङ्गी चतुर्बाहुविशोभिता॥ ८॥

इस तरह उस मेनका ने सती को गङ्गा के रूप में अपने गर्भ में धारण किया। और समय आने पर उसने सर्वाङ्गसुन्दरी, शोभन आकृतिवाली एक पुत्री को वैशाख मास में शुक्ल पक्ष की तृतीया के दिन मध्याह्न के समय जन्म दिया। यों वह श्वेतवर्ण वाली शोभनमुखाकृतियुक्त, तीन नेत्रों वाली, काली भौहों वाली, चार भुजाओं से शोभित गङ्गा प्रादुर्भूत हुई।। ७–८।।

हिमालय के घर में उत्सव

अथाद्रिराजः श्रुत्वा तु पुत्रीं जातां समुत्सुकः।
मङ्गलं चाकरोद्दानं विप्रेभ्यः प्रददौ बहु॥ ९॥

जब गिरिराज हिमालय ने अपने घर में पुत्री का जन्म होना सुना तो वह उत्कण्ठित होकर माङ्गलिक कार्यों में प्रवृत्त हुआ, तथा ब्राह्मणों को बहुत सा दान किया।। ९।।

ववृधे सा पितुर्गेहे कलेव शशिनः सिते।
वर्षासु च यथा नित्यं नदी तोयेन वर्धते॥ १०॥

वह गङ्गा भी पिता के घर में, शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह, अथवा जैसे वर्षाऋतु आने पर नदियों में जल बढ़ने लगता है, उसी तरह वह प्रतिदिन बढ़ने लगी।। १०।।

अथैकदा गिरीन्द्रस्तां क्रोडे कृत्वा पुरान्तरे।
उपविष्टस्तदायातो नारदो ब्रह्मणः सुतः॥ ११॥
गङ्गां द्रष्टुं भगवतीं ज्ञात्वा जातां निजांशतः।
प्रकृतिं यां समाराध्य कामरूपे स्थितो हरः॥ १२॥

एतदनन्तर, कभी गिरिराज हिमालय उस पुत्री गङ्गा को अपनी गोद में लेकर बैठे थे कि उसी समय ब्रह्मा के पुत्र नारद मुनि, भगवती देवी को, जिसकी भगवान् शङ्कर कामरूप में विराजमान हो कर आराधना कर रहे हैं, गङ्गा के रूप में अपने अंश से उस घर में उत्पन्न हुआ जानकर, वहाँ दर्शन हेतु आये।। ११–१२।।

गिरिराजस्तमालोक्य प्रणम्य चरणद्वयम्।
प्रक्षाल्याचमनं कृत्वा प्रोवाच विनयान्वितः।

पर्वतराज हिमालय ने नारद मुनि को देखकर उन्हें प्रणाम कर उनके चरण धोकर, उसका आचमन कर विनम्रभाव से यह निवेदन किया—।

हिमालय०— "मुने! भाग्यवशादेव लभ्यते तव दर्शनम्।
दृष्टोऽसि साम्प्रतं ब्रह्मन्कथं तेऽत्र समागमः" ॥ १३ ॥

हिमालय— "महामुने! मेरे सौभाग्य से ही आज मुझे आपका यह शुभ दर्शन हो पाया है। हे ब्रह्मन्! बताइये, आज आप यहाँ किस प्रयोजन से पधारे हैं?॥ १३॥

नारद०— "श्रुतमेतन्मया लोकात्कन्या सर्वाङ्गसुन्दरी।
काचित्तव गृहे जाता तां द्रष्टुमहमागतः" ॥ १४ ॥

नारद— "जब मैंने लोगों से सुना कि आपके घर में कोई सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या अवतरित हुई है तो उसी के दर्शन करने हेतु मैं चला आया हूँ"॥ १४॥

हिमालय०— "अहो बहुतरं भाग्यमेतस्माच्च नमामि च।
यदेनां द्रष्टुकामस्त्वमागतो देवदुर्लभः" ॥ १५ ॥

हिमालय— "यह मेरा परम सौभाग्य है, इसके लिये मैं आपको पुनः प्रणाम करता हूँ कि उसे देखने के लिये आप जैसे विशिष्ट मुनि यहाँ पधारे जिनका मिलना देवताओं को भी दुर्लभ है!"॥ १५॥

नारद०— "त्वं धन्यः कृतकृत्यश्च सर्वसौभाग्यसंयुतः।
यतस्तवैषा तनया देवानामपि दुर्लभा" ॥ १६ ॥

नारद— "महाभाग! पर्वतराज! मैं क्या, तुम ही धन्य हो, कृतकृत्य हो, सर्वसौभाग्यसम्पन्न हो कि तुम्हारे घर में ऐसी देवताओं को भी दुर्लभ कन्या प्रादुर्भूत हुई है"॥ १६॥

श्रीमहादेव०— इत्युक्त्वा गिरिराजं च मुनिः परमकौतुकात्।
तस्याङ्कात्तां निजाङ्केऽसावानयत् परमादृतः ॥ १७ ॥
मुनिर्विधाय तां क्रोडे गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्।
धन्योऽस्मीत्यब्रवीद्वाक्यं रोमाञ्चितवपुस्ततः ॥ १८ ॥

महादेव जी— पर्वतराज को यह कहकर महामुनि ने उत्सुकतापूर्वक उस त्रैलोक्यपावनी गङ्गा रूप कन्या को सम्मानपूर्वक उसकी गोद से अपनी

गोद में लेकर 'मैं धन्य हुआ'– यों कहा। उस समय उनके समग्र शरीर में रोमाञ्च हो आया।। १७–१८।।

ततः प्राह गिरिं हृष्टो मुनीन्द्रो नारदः स्मयन्।
"पुत्रीं यथार्थतः किं त्वं ज्ञातवानसि वा न वा?"॥ १९॥

तब वे मुनिराज नारद स्मित हास्य करते हुए पर्वतराज से यों बोले– "पर्वतराज! तुम अपनी पुत्री के विषय में यथार्थ रूप से जानते हो कि नहीं!"।। १९।।

हिमालय०— "ज्ञायते मम कन्येयं चार्वङ्गी शुभलक्षणा।
नान्यस्तु ज्ञायते कश्चिद्विशेषो मुनिपुङ्गव!"॥ २०॥

हिमालय– "हे मुनिराज! मैं तो इतना ही जानता हूँ कि यह मेरी कन्या सुन्दर अङ्गों तथा शुभ लक्षणों से युक्त है। बस, इससे अधिक मैं इसके विषय में कुछ नहीं जानता"।। २०।।

नारद०— "या मूलप्रकृतिः सूक्ष्मा दक्षकन्याभवत्पुरा।
नाम्ना सती सैव देवी निजांशेन महामते॥ २१॥
कन्या तवेयं सम्भूता प्रतिलब्धुं हरं पतिम्॥ २२॥

नारद– "हे महामति! पहले जो दक्ष के घर में मूल प्रकृतिदेवी अवतरित हुई थीं, वही सती अब आपके घर में अपने एक अंश से प्रादुर्भूत हुई हैं। यह भी, अपने पति के रूप में, महादेव का ही वरण करेगी।। २१–२२।।

गङ्गेति क्रियते नाम सर्वपातकनाशनम्।
लोकानां त्राणकर्त्रीयं महापातकनाशिनी॥ २३॥

इसका 'गङ्गा' यह नाम रख रहा हूँ, जो कि सभी पापों का नाशक है। यह गङ्गा जगत् का कल्याण करने वाली है तथा सभी पाँचों महापातकों का नाश करने वाली है।। २३।।

विवाहोऽस्याः स्वर्गपुरे भविष्यति महागिरे!
शिव एव हि भर्तास्याः पूर्वमेव सुनिश्चितः॥ २४॥

हे विशाल पर्वत! इसका विवाह स्वर्ग में होगा। इसके पति के रूप में भगवान् शङ्कर का पहले से ही चयन हो चुका है।। २४।।

एनां स्वर्गपुरं नेतुं ब्रह्मा लोकपितामहः।
भवन्तं स्वयमागत्य प्रार्थयिष्यति यत्नतः॥ २५॥

लोकपितामह ब्रह्मा, इन्हें स्वर्गपुर ले जाने के लिये, आप से माँगने हेतु स्वयं आयँगे।। २५।।

तदा त्वया समर्प्यैषा ब्रह्मणे चारुरूपिणी।
स तु नीत्वा स्वर्गपुरे शिवमाहूय सादरम्॥
सम्प्रदास्यति तस्मै ते पुत्रीमेनां शुभाननाम्''॥ २६॥

समय आने पर, आप इन्हें पितामह ब्रह्मा को सौंप देंगे और वे इन्हें स्वर्गपुर में ले जाकर वहाँ भगवान् शङ्कर को सादर बुलाकर आप की इस सुन्दर आकृतिवाली कन्या को उन्हें समर्पित कर देंगें''॥ २६॥

हिमलाय०— ''त्वं ज्ञाता विषयाणां हि भूतभव्यभविष्यताम्।
विज्ञानचक्षुषा सर्वं प्रत्यक्षमिव पश्यसि॥ २७॥
विधात्रा विहितं यत्तु तद्भविष्यति नान्यथा।
तदहं किं करिष्यामि नेश्वरेच्छा वृथा भवेत्''॥ २८॥

हिमालय— ''महामुनि नारद! आप भूत भविष्यत् वर्तमान—सभी विषयों के ज्ञाता हैं। आप अपनी विज्ञानदृष्टि से सबकुछ प्रत्यक्ष की तरह देख लेते हैं। विधाता ने जो कुछ लिख दिया वह तो उसी तरह होगा, अन्यथा नहीं। इसमें मैं विशेष कर भी क्या सकता हूँ; क्योंकि ईश्वरेच्छा सबसे बलवती होती है॥ २७–२८॥

महादेव०— इत्युक्तो गिरिराजेन स मुनिः प्रययौ द्रुतम्।
यत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥ २९॥
तं प्रणम्याह स मुनिः प्रहृष्टात्मा महामतिः॥ ३०॥

महादेव बोले— गिरिराज से यों कहकर वे महर्षि नारद वहाँ से शीघ्र ही चल दिये और जहाँ सर्वलोकपितामह भगवान् ब्रह्मा विराजमान थे वहाँ पहुँचे। उनको प्रणाम कर वे महामति महामुनि यों बोले—॥ २९–३०॥

नारद०— ''प्रभो सती समुत्पन्ना हिमालयगृहे पुनः।
निजांशेनाभवदियं गङ्गा परमसुन्दरी।
पूर्णापि देवी तत्रैव सम्भविष्यत्युमापि च''॥ ३१॥

नारद— ''हे प्रभो! हिमालय के पवित्र गृह में वह भगवती सती अपने अंश से परमसुन्दरी गङ्गा के रूप में पुनः अवतरित हुई हैं। निकट भविष्य में वह देवी अपने पूर्ण अंशों से भगवती उमा के रूप में प्रकट होंगी''॥ ३१–३२॥

ब्रह्मा०— ''सत्यं जानामि जाता सा हिमालयगृहेऽधुना।
निजांशेन महादेवी गङ्गा त्रैलोक्यपावनी॥ ३२॥

ब्रह्मा— ''हाँ, नारद! मैं भी यह बात भलीभाँति जानता हूँ कि वह

महादेवी निज अंश से अब हिमालय के घर में त्रैलोक्यपावनी गङ्गा के रूप में अवतरित हुई हैं।। ३२।।

महेशपूर्वपत्नी सा महेशमभियास्यति।
शिवोऽपि तामनुप्राप्य निर्वृतिं लप्स्यते पराम्॥ ३३॥
किन्तु छायासती देहं धृत्वा मूर्ध्नि यदा हरः।
आनन्दमग्नचित्तः सन्ननर्त धरणीतले॥ ३४॥
तदा तस्य शिरःसंस्थं छायादेहं हरिः स्वयम्।
चकर्तास्या मतेनैव जगद्रक्षणहेतवे॥ ३५॥

वह महेश की पूर्वपत्नी हैं, अतः अब भी वह उन्हीं महादेव का वरण करेंगी। भगवान् शङ्कर भी उन्हें प्राप्त कर परम सन्तोष का अनुभव करेंगे किन्तु विगत समय में, आनन्दमग्न भगवान् शङ्कर छायासती के देह को शिर पर रखकर जब समग्र भूमण्डल पर नर्तन कर रहे थे उस समय उनके शिर पर छायादेह को भगवान् विष्णु ने जगत् की रक्षा हेतु कई भागों में काट डाला था।। ३३–३५।।

तेनापराधेनाद्यापि रुष्टोऽस्मान् प्रति शङ्करः।
तस्य किं वा करिष्यामि कथं तुष्टो भवेच्छिवः॥ ३६॥

उस अपराध के कारण, भगवान् शङ्कर आज भी हम लोगों से रुष्ट हैं। अब हम कैसे क्या करें कि वे हमसे पुनः सन्तुष्ट हो जाँय"।। ३६।।

नारदःउ— **"शृणु ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यद्विद्वेषो महेशितुः।**
प्रसन्नता भवेदस्मान् प्रति येनात्र वै प्रभो!॥ ३७॥
गिरीणामधिपः श्रीमान् दाता परमधर्मवित्॥ ३८॥

नारद— "हे ब्रह्मन्! मैं आपको एक उपाय बताता हूँ, जिससे भगवान् शङ्कर का हमारे प्रति यह क्रोध विनष्ट हो जायगा। अथ च, वे हमलोगों से प्रसन्न भी हो जायँगें। हे प्रभो! यह गिरिराज श्रीमान् हिमालय परमदानी एवं उत्कृष्ट धार्मिक प्रवृत्ति के हैं।। ३८।।

तत्सन्निधिं समागच्छ सार्धमिन्द्रादिदैवतैः।
भिक्षयाऽर्थय तां गङ्गां तदा नूनं स दास्यति॥ ३९॥

उनके पास, इन्द्र आदि देवप्रमुखों को साथ लेकर जाइये, तथा भिक्षा के रूप में उनसे उनकी पुत्री गङ्गा को माँग लीजिये। वे अवश्य दे देंगें।। ३९।।

ततश्च तां समानीय स्वर्गपुर्यां महोत्सवम्।
कृत्वा शम्भुं समाहूय गङ्गां देहि प्रयत्नः॥ ४०॥

फिर उस कन्या को स्वर्गपुरी में लाकर, एक विशिष्ट महोत्सव का आयोजन कर, वहाँ भगवान् शङ्कर को बुलाकर उन्हें उस गङ्गा को सौंप दीजिये।। ४०।।

यथा छायासती तस्य स्थिता मूर्ध्नि तथैव हि।
इयं द्रवमयी भूत्वा संस्थास्यति सुनिश्चितम्।
तदैव तुष्टो भगवान् भविष्यति महेश्वरः''॥ ४१॥

जैसे वह छाया सती इन भगवान् शङ्कर के शिर पर विराजमान थीं वैसी यह जलमयी गङ्गा भी उनके शिर पर शोभित रहेंगी। तभी वे महेश्वर हमलोगों से सन्तुष्ट होंगे।। ४१।।

ब्रह्मा०— ''पुत्र त्वं तु चिरंजीव यदेवमुक्तवानसि॥ ४२॥

ब्रह्मा– ''तुम्हारी आयु बढ़े! तुमने तो बहुत अच्छा उपाय बता दिया''।। ४२।।

यद्येवं स्यात्तदा शम्भुः प्रीतियुक्तो भविष्यति।
गच्छ पुत्र! द्रुतं तत्र देवानिन्द्रपुरोगमान्।
कथयस्व यथावृत्तमायान्तु मम सन्निधिम्''॥ ४३॥

यदि ऐसा हो जाय तो भगवान् शङ्कर अवश्य प्रसन्न हो जायँगें। अ.तः अब तुम शीघ्र ही जाओ, और इन्द्र आदि देवताओं को सूचना दो कि वे मेरे पास आवें। उन्हें ये सब बातें भी बता देना''।। ४३।।

श्रीमहादेव०— इत्युक्तो ब्रह्मणा प्रीतः प्रययौ नारदो मुनिः।
यत्र देवा महात्मानः सन्तीन्द्राद्या महामते॥ ४४॥

श्रीमहादेव जी– हे महामते! नारद मुनि को ब्रह्मा द्वारा इतना कहे जाने पर, वे प्रसन्न होते हुए वहाँ पहुँचे जहाँ महाभाग इन्द्र आदि देवता थे और यों बोले–।। ४४।।

नारद०— ''देवराज समायातो ब्रह्मलोकादहं प्रभो।
युष्माकं सन्निधिं पित्रा समादिष्टो महात्मना॥ ४५॥

नारद– ''हे प्रभो, देवराज! मैं अभी अभी ब्रह्मलोक से आ रहा हूँ। मुझ को पितामह ब्रह्मा ने आप लागों के पास यह कहकर भेजा है कि।। ४५।।

मर्त्ये हिमवतो गेहे पुत्री जाता स्वयं सती।
भागार्धेन महादेवी गङ्गा त्रैलोक्यपावनी॥ ४६॥

मनुष्यलोक में, पर्वतराज हिमालय के घर स्वयं सती देवी अपने

आधे अंश के रूप में उसकी पुत्री त्रिलोकपार्वती महादेवी गङ्गा बनकर प्रकट हुई हैं।। ४६।।

तामानेतुं स्वर्गपुरं ब्रह्मा यास्यति भूतलम्।
यूयमागच्छत क्षिप्रं मर्त्ये गन्तुं सुरोत्तमाः"॥ ४७॥

ब्रह्माजी उस पुत्री को स्वर्ग लाने के लिये स्वयं मनुष्यलोक जायँगें। हे देवश्रेष्ठो! अतः आप लोग तय्यार होकर तत्काल उनके यहाँ पहुँचिये"।। ४७।।

देवा०— "किं ब्रवीषि मुनिश्रेष्ठ मर्त्ये जाता स्वयं सती।
वृत्तमेतन्महेशाय कथितं किं न वा मुने॥ ४८॥

देवसमूह— "हे मुनिश्रेष्ठ! आप क्या कह रहे हैं? क्या वस्तुतः मर्त्यलोक में भगवती सती स्वयं प्रकट हुई हैं, आपने यह बात भगवान् शङ्कर से भी बतायी है कि नहीं?"।। ४८।।

नारद०— "आनीय तां देवपुरे ततो यास्यामि शङ्करम्।
द्रुतमागच्छत सुरा ब्रह्मणो निकटं ततः"॥ ४९॥

"उसको देवपुरी में लाकर शङ्कर भगवान् के पास जाऊँगा, हे देवगण आप शीघ्र ब्रह्मा जी के निकट पहुँचें"।। ४९।।

श्रीमहादेव— तथेत्युक्त्वा सुरगणा जग्मुर्ब्रह्मपुरं तदा॥ ५०॥

श्रीमहादेव जी बोले— "ठीक है" कहकर वे देवगण तत्काल ब्रह्मलोक को प्रस्थान कर गये।। ५०।।

इन्द्राद्यास्ते मुनिश्रेष्ठ! हर्षोत्फुल्लमुखाम्बुजाः।
प्रणेमुश्च महात्मानं ब्रह्माणं जगतः पतिम्।
ऊचुः कृताञ्जलिपुटाः किमाज्ञापयसि प्रभो!॥ ५१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वे इन्द्र आदि देवता वहाँ प्रसन्न आकृति से जगत्पति महात्मा ब्रह्मा के सम्मुख प्रणत हुए। और हाथ जोड़कर उन्होंने ब्रह्मा से पूछा—"प्रभो क्या आदेश है?"।। ५१।।

ब्रह्मा०— "सती हिमवतो गेहे जाता गङ्गा महेश्वरी।
भागार्धेन तथैवोमा तत्रैव हि भविष्यति॥ ५२॥

ब्रह्मा— "पर्वतराज हिमालय के घर में भगवती देवी अपने एक अंश से गङ्गा के रूप में अवतरित हुई हैं। बाद में भगवती उमा भी वहीं प्रकट होंगीं।। ५२।।

साम्प्रतं तां स्वर्गपुरं यास्यामो नेतुमुत्तमाम्।
भवन्तः स्वनिकेताच्च समागच्छन्तु माचिरात्॥ ५३॥
इन्द्रः कुबेरो वरुणः सोमसूर्याग्निमारुताः।
समायान्तु मया साकं बुद्धिमांश्चैव नारदः"॥ ५४॥

अभी उन गङ्गा को स्वर्ग में लाने के लिये हिमवान् के घर चलेंगे। आप लोग अपने स्थान से आने में विलम्ब न लगावें। इन्द्र, कुबेर, वरुण, सोम, सूर्य, अग्नि, वायु एवं बुद्धिमान् नारद सभी मेरे साथ चलें"।। ५३–५४।।

श्रीमहादेव०— तथेत्युक्त्वा ययुर्देवा इन्द्राद्या मुनिपुङ्गव!॥ ५५॥
ब्रह्मा महर्षिणा तेन नारदेन ययौ द्रुतम्।
हिमाद्रिसन्निधिं गङ्गायाचने कृतमानसः॥ ५६॥

श्रीमहादेव जी— "ठीक है" कहकर हे मुनिपुङ्गव! वे इन्द्र आदि देव चले। ब्रह्मा जी भी मुनिवर नारद के साथ हिमालय से गङ्गा को माँगने का मन बनाकर शीघ्र ही वहाँ पहुँचे।। ५५–५६।।

गङ्गा द्वारा हिमालय को स्वप्न में सन्देश

तदहःपूर्वरात्रे तु गङ्गा गिरिवरं स्वयम्।
स्वप्ने प्राह महादेवी ज्ञात्वा देवविचेष्टितम्॥ ५७॥

उस दिन की पूर्व रात्रि में नगाधिराज को, स्वयं स्वप्न में आकर, महादेवी भगवती ने देवों के आगामी क्रियाकलाप की सूचना दी।। ५७।।

स्वप्नं सन्दर्शयामास रजन्याः शेष एव हि।
शुक्ला त्रिनयना काचिद् देवी मकरवाहना।
उवाच प्रमुखे स्थित्वा पितुस्ते तनया ह्यहम्॥ ५८॥
"आद्या प्रकृतिरेकैव साहं दक्षप्रजापतेः।
पुत्री सती पितुर्यज्ञे शिवं त्यक्तवती पतिम्॥ ५९॥

उस रात्रि के अन्तिम भाग में शुक्लवस्त्रधारिणी, तीन नेत्रों वाली, मकर पर आरूढ़ देवी ने। अपने पिता के सम्मुख स्वप्न में खड़े होकर उनसे कहा—"आपकी पुत्री मैं एवं आद्या प्रकृति भगवती देवी, जो कि कभी दक्षप्रजापति के घर उत्पन्न हुई थीं, एक ही हैं। उस दक्ष की पुत्री सती ने दक्ष के द्वारा विहित यज्ञ में अपने पति (शिव) को त्याग दिया।। ५८–५९।।

शिवस्तु मद्वियोगार्तः कामरूपे व्यवस्थितः।
तपश्चरति मां लब्धुं पत्नीभावेन वै पुनः॥ ६०॥

तब वह शिव उस सती के वियोग में कामरूप सिद्धपीठ में आकर मुझको पुनः स्वकीय पत्नीभाव से प्राप्त करने हेतु तप कर रहे हैं।। ६०।।

त्वयाप्याराधिता चाहं पुत्रीभावेन भावितः॥ ६१॥
तेनाहं त्वद्‌गृहे जाता भागार्धेन तु साम्प्रतम्।
भागार्धेनापरेणापि भविष्यामि तवात्मजा॥ ६२॥

उधर आपने भी मुझको पुत्रीभाव से पाने के लिये तपस्या की थी। आपकी तपस्या से प्रसन्न होकर, देवी के एक अंश के रूप में मैं अभी आपके घर में उत्पन्न हुई हूँ। दूसरे अंश से भी, कुछ समय बाद, मैं आपकी पुत्री बनूँगी।। ६१-६२।।

मां नेतुमागमिष्यन्ति ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः।
त्वां सम्प्रार्थ्य स्वर्गपुरं यास्यामि सह तैः सुरैः॥ ६३॥

जब ब्रह्मा आदि देवप्रमुख मुझको आप से माँग कर स्वर्गपुरी में ले जायँगे। मैं उनके साथ स्वर्गपुरी (इन्द्रपुरी) चली जाऊँगी।।

लप्स्यामि च पतिं शम्भुं देवैर्दत्तं महात्मभिः।
मदर्थं मा शुच पितः कदाचिदपि मोहितः।
पूर्वमुक्तमतस्तात! नानुशोचितुमर्हसि''॥ ६४॥

वहाँ उन विशिष्ट देवताओं द्वारा प्रदान किये जाने पर मैं अपने पति भगवान् शङ्कर को पुनः प्राप्त करूँगी। हे पिता! तब आप मेरे मोह में पड़कर किसी प्रकार के शोक में मग्न न हो जायँ। पिताजी! मैंने आप से पहले ही बता दिया है ताकि उस समय आप किसी प्रकार की चिन्ता न करने लगें''।। ६४।।

इत्येवमुक्त्वा सा स्वप्ने गङ्गा शैलाधिपं मुने।
अन्तर्हिताऽभवत्तत्र गिरिराट् प्रबुबोध च॥ ६५॥
विचारयामास सर्वं यदुक्तं गङ्गया ततः।
मोह आसीत्पुरा यो वै तं तत्याज महागिरिः॥ ६६॥

हे महामुने! वह गङ्गा देवी नगाधिराज हिमालय को स्वप्न में ऐसा कहकर वहीं अन्तर्धान हो गयी। और उसके पिता (हिमालय) की नींद खुली। उसने उस सब पर विचार किया जो अभी स्वप्न में गङ्गा ने उसको बताया था। (इस पर विचार करने के बाद) गिरिराज को गङ्गा के प्रति पहले जो मोह था, वह सब विगलित हो गया।। ६५-६६।।

देवताओं का आगमन

अथायाताः सुरास्ते तु ब्रह्माद्या मुनिपुङ्गव!।
हिमालयगृहे गङ्गां नेतुकामा महौजसः॥ ६७॥

हे मुनिपुङ्गव! वे महान् सामर्थ्यशाली ब्रह्मा आदि देवता हिमालय के घर से उस गङ्गा को लेने के लिये वहाँ पधारे।। ६७।।

स प्रणम्य गिरिश्रेष्ठस्तानुवाच महामतिः।
"कथमत्रागता देवाः कथयध्वं यथार्हथ?"॥ ६८॥

उस महामति गिरिराज ने उन देवताओं को प्रणाम कर पूछा—'आप लोग यहाँ किस प्रयोजन से पधारे हैं? आपलोग अपना मनोऽभिलाष स्पष्ट बतावें?"।। ६८।।

देवा०— "दाता त्वं सर्वलोकेषु गीयसे भूधराधिप!।
भिक्षार्थमागताः स्मोऽद्य तवान्तिकमतो गिरे"॥ ६९॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा स्मृत्वा स्वप्नकथां गिरिः॥ ७०॥

देवता— "हे नगाधिराज! आप इस जगत् में सभी दानदाताओं में श्रेष्ठ कहलाते हैं। हिमवन्! आज हम आपके पास एक भिक्षा माँगने आये हैं।"

नगाधिराज को उनकी बात सुनकर, विगत रात्रि वाला स्वप्न स्मरण हो आया।। ६९-७०।।

भाषितं नारदेनापि प्रोवाच वचनं तदा।
ततः सञ्चिन्त्य मनसा देवानाह महागिरिः॥ ७१॥

इस विषय में नारद मुनि ने भी पहले कभी चर्चा की ही थी। यह सब मन में स्मरण कर पर्वतराज देवताओं से बोले—।। ७१।।

"त्रैलोक्यस्याधिपा यूयं कथं भिक्षार्थिनः सुराः।
किं प्रदास्यामि युष्मभ्यं तन्मे वदत साम्प्रतम्"॥ ७२॥

हिमालय— "श्रीमन्! आप लोग तो इस त्रिलोकी के अधिपति हैं। अप लोगों को भिक्षा माँगने की क्या आवश्यकता पड़ गयी? मैं अकिञ्चन आप लोगों को क्या कुछ दे सकता हूँ?" उसे बताइये।। ७२।।

ब्रह्मा०— "शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि यदर्थं समुपागताः।
इमे देवास्तव पुरं सर्वरत्नसुशोभिताः॥ ७३॥

ब्रह्मा— "हे वत्स! सुनो! मैं तुम्हें अपना वह प्रयोजन बताता हूँ, जिसके लिये हम इन रत्नालङ्करणधारी देवताओं के साथ तुम्हारे पास इस सुन्दर नगर में आये हैं।। ७३।।

प्रकृतिः परमा जाता दक्षपुत्री स्वयं सती।
शिवं वृतवती साध्वी पतिं त्रिभुवनेश्वरम्॥ ७४॥

पहले कभी परा प्रकृति देवी सती ने साध्वी दक्षपुत्री के रूप में अवतरित होकर त्रिभुवनपति भगवान् शङ्कर को अपने पति के रूप में वरण किया था।। ७४।।

दक्षस्तु शिवनिन्दासु रतः कुमतिरीश्वरम्।
शिवं द्विषन्महायज्ञमारभद्गिरिपुङ्गव!॥ ७५॥

हे गिरिश्रेष्ठ! उस दुर्बुद्धि दक्ष ने शिव की निन्दा में ही मग्न रहकर परमात्मा शिव से विद्वेष करते हुए महायज्ञ का आयोजन किया।। ७५।।

सर्वानेवाह्वयत्तत्र देवानिन्द्रपुरोगमान्।
विष्णुं मां च महामोहाद्वर्जयित्वा सतीशिवौ॥ ७६॥

उसमें उसने इन्द्र आदि देवताओं, भगवान् विष्णु तथा मुझ को—सभी को बुलाया, परन्तु वह मोहवश उसमें सती एवं भगवान् शङ्कर को न बुलाने का प्रमाद कर बैठा।। ७६।।

तेन क्रुद्धा महादेवी गन्तुं दक्षपुरं स्वयम्।
समुद्यता महेशेन निषिद्धा बहुधा गिरे!॥ ७७॥

हे पर्वतराज! इस बात से क्रुद्ध होकर महादेवी सती, भगवान् शङ्कर द्वारा पुनः पुनः निषिद्ध किये जाने पर भी, स्वयं दक्षपुर जाने के लिये सन्नद्ध हुई।। ७७।।

प्रभुत्वाभिमतेनेति शम्भुर्जातोऽपराधकृत्।
तेन क्रुद्धा शिवं त्यक्त्वा दक्षगेहं गता सती॥ ७८॥

उस निषेध करने में शङ्कर ने सती पर अपना, पति के रूप में, प्रभुत्व प्रकट किया; इस अपराध से भी वह सती देवी खिन्न हुई और उनका भी त्याग कर वह दक्ष के घर पहुँच गयी।। ७८।।

दक्षोऽपि मायया मुग्धः शिवमेव व्यनिन्दयत्।
तेन तं च परित्यज्य शिवं चाप्यपराधिनम्॥ ७९॥
विमोह्य मायया देवी छायया मृतरूपया।
नित्या ब्रह्ममयी पूर्णा स्वयमन्तर्हिताभवत्॥ ८०॥

वहाँ भी माया से मुग्ध दक्ष भगवान् शिव की निन्दा ही करता रहा। अतः उससे भी वह देवी खिन्न हो गयी और उन दोनों दक्ष एवं शिव के ही त्याग का निर्णय कर दोनों को ही मुग्ध करते हुए अपनी माया से स्वकीय मृत छायामूर्ति का निर्माण कर वह नित्य ब्रह्ममयी स्वयं आकाश में जाकर अन्तर्धान हो गयी।। ७९–८०।।

तेन शोकेन दुःखार्तः शिवस्त्रिभुवनेश्वरः।
तां छायां शिरसा धृत्वा ननर्त धरणीतले ॥ ८१ ॥

उसके वियोग में दुःखी त्रिभुवनपति भगवान् शङ्कर ने उस छाया सती को शिर पर धारण कर समग्र भूमण्डल पर ताण्डव नृत्य करना प्रारम्भ किया।। ८१ ।।

तेन नृत्येन भुवनं रसातलगमोद्यतम्।
दृष्ट्वा विष्णुं देवगणा ऊचू रक्ष जगत्त्रयम् ॥ ८२ ॥

उस भीषण नृत्य के प्रभाव से यह समग्र जगत् पाताल में धँसने की स्थिति में आ गया। यह देखकर देवताओं ने भगवान् विष्णु से इस समग्र जगत् की रक्षा के निमित्त प्रार्थना की।। ८२ ।।

ततश्चक्रेण भगवान् विष्णुः परमपूरुषः।
छायासत्यास्तु तं देहं प्रचिच्छेद शनैः शनैः ॥ ८३ ॥

तब आदि पुरुष भगवान् विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से छाया सती के उस देह को शनैः शनैः खण्डशः विभक्त कर दिया।। ८३ ।।

स तद्देहविनियोगेन दुःखितः परमेश्वरः।
अद्यापि रुष्ट आस्तेऽस्मान्प्रति भूधरपुङ्गव! ॥ ८४ ॥

हे गिरिराज! उस सती देह के वियोग से दुःखी भगवान् शङ्कर आज भी हम लोगों से अप्रसन्न हैं।। ८४ ।।

सैव दाक्षायणी देवी साम्प्रतं तव वेश्मनि।
अंशेन तनया जाता गङ्गा त्रिभुवनेश्वरी ॥ ८५ ॥

अब वही दक्षपुत्री त्रिभुवनस्वामिनी सती आपके घर में अपने एक अंश से गङ्गा के रूप में प्रकट हुई हैं।। ८५ ।।

शिवस्य पूर्वपत्नीयं शिवमेव हि लप्स्यति।
केवलं रुष्टचित्तोऽस्मान्प्रति स्थास्यति शङ्करः ॥ ८६ ॥

क्योंकि यह पूर्व में शिव की पत्नी रह चुकी हैं, अतः अब भी उनकी पत्नी बनेंगी—यह तो निश्चित है। परन्तु इससे भगवान् शङ्कर का हमारे प्रति क्रोध यथावत् रह जायगा।। ८६ ।।

अतस्त्वं यदि चास्मभ्यं कन्यामेनां प्रयच्छसि।
तदा स्वर्गपुरं नीत्वा महोत्सवपुरःसरम् ॥ ८७ ॥

अतः यदि आप हमें अपनी यह कन्या दे दें तो हम इसे स्वर्गपुरी में ले जाकर वहाँ एक वृहत् उत्सव का आयोजन करें।। ८७।।

महेशाय समर्प्यैव प्राप्स्यामो निर्वृतिं पराम्।
या देवी पूर्णभावेन भविष्यत्यपरा सुता॥ ८८॥

तां त्वमेव महेशाय सम्प्रदास्यसि सादरम्।
एनां देहि त्वियं नीत्वा ददामः शम्भवे गिरे!"॥ ८९॥

उसमें इस कन्या को भगवान् शङ्कर को समर्पित करें तो हमें सन्तोष एवं शान्ति प्राप्त होगी। हाँ, अब जो देवी आप के यहाँ पूर्णरूप में अवतरित होंगी उन्हें भले ही आप स्वयं ससम्मान भगवान् शङ्कर को सौंप देना; परन्तु इस (गङ्गा) को आप हमें दे दें। हे गिरे! हम इसे ले जाकर भगवान् शङ्कर को समर्पित करेंगे"।। ८८–८९।।

हिमालय०— **"कन्यायाः न पितुर्गेहे स्थितिर्भवति शाश्वती।**
परार्थाय भवेत्कन्या न स्वकीया कदाचन"॥ ९०॥

हिमवान्— " 'कन्या की स्थिति पिता के घर में सदा नहीं रहती। यह कभी न कभी तो दूसरे के हाथों सौंपी जानी ही है। अतः किसी भी कन्या को हम सदा के लिये अपनी नहीं कह सकते'।। ९०।।

जानाम्येवं बहुविधं तथापि मम चेतसि।
गङ्गाविरहजं दुःखं दुःसहं सम्भविष्यति"॥ ९१॥

यह बात मैं भी जानता हूँ। तो भी मेरा यह हृदय गङ्गाविरह से उत्पन्न दुःख को कठिनता से ही सह पायगा"।। ९१।।

श्रीमहादेव०— **एवमुक्त्वा गिरिश्रेष्ठः साश्रुपूर्णविलोचनः।**
रुरोद बहुधा गङ्गां क्रोडे कृत्वा महामतिः॥ ९२॥

महादेव जी— ऐसा कहकर वह महामति गिरिवर आँखों में आँसू भरकर तथा गङ्गा को गोद में लेकर अनेक तरह से विलाप (रुदन) करने लगा।। ९२।।

गङ्गा प्राह—"पितस्त्वं तु त्यज शोकं कृते मम।
प्रयच्छ ब्रह्मणे चास्मै यास्ये स्वर्गं तु साम्प्रतम्॥ ९३॥

तब उससे गङ्गा ने यों कहा—"पिताजी! आप मेरे लिये शोक न करें तथा मुझे ब्रह्मा जी को दे दें। मैं अब स्वर्गपुरी में जाऊँगी।। ९३।।

नाहं तव विदूरस्था न मे दूरस्थितो भवान्।
त्वं भक्तो भक्तिगम्याहं सदैव निकटे स्थिता"॥ ९४॥

मैं आप से दूर नहीं हूँ, न आप ही मुझसे दूर हैं। आप मेरे भक्त हैं, मैं भक्तिभाव से ही किसी को प्राप्त होती हूँ। अतः मैं सदा ही आपके निकट रहूँगी'॥ ९४॥

एवमुक्त्वा तु पितरं प्रणम्य गिरिनन्दिनी।
ब्रह्मणो निकटं प्रायाद्गन्तुं भूतपतिं पतिम्॥ ९५॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे गङ्गागमनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

ऐसा कहकर वह पर्वतराजपुत्री, पिता को प्रणाम कर, अपने पति भूताधिप भगवान् शङ्कर की प्राप्ति हेतु, ब्रह्मा जी के पास चली गयी॥ ९५॥

महाभागवत उपपुराण में
'गङ्गागमनवर्णन' नामक
तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥

चतुर्दश अध्याय

[गङ्गा-विवाहवर्णन]

श्रीमहादेव०— ततो ब्रह्मा गिरीन्द्रानुमतो गङ्गां महामुने!
कमण्डलौ समादाय प्रायात् स्वर्गपुरं द्रुतम्॥ १॥

श्रीमहादेव०— हे महामुने! तब वे लोकपितामह ब्रह्मा पर्वतराज हिमालय की अनुमति लेकर उस गङ्गा को अपने कमण्डलु में रखकर, स्वर्गपुरी की तरफ, शीघ्रता से चल दिये।। १।।

अथ मेना समागत्य गिरीन्द्रस्यान्तिकं तदा।
अदृष्ट्वा तनयां वाचमुवाच गिरिपुङ्गवम्॥ २॥

उसके कुछ देर बाद, उनकी पत्नी मेनका ने उन गिरिराज के पास आकर तथा वहाँ अपनी पुत्री (गङ्गा) को न देखकर गिरिराज को यह कहा—।। २।।

मेनका०— "क्व गता मे सुता राजन् गङ्गा प्राणसमा प्रभो!
संस्थिता तु तवाङ्के सा केन नीता वद प्रभो?"॥ ३॥

मेनका— "हे राजन्! हे स्वामिन्! मेरी प्राणों के समान प्रिय पुत्री गङ्गा कहाँ गयी? अभी तो आप की गोद में बैठी थी, प्रभो! उसे कौन ले गया?"

श्रीमहादेव०— ततः साश्रुपरीताक्षः प्राह तस्यै हिमालयः।
गङ्गाया गमनं स्वर्गे याच्ञया ब्रह्मणोऽपि च॥ ४॥

श्रीमहादेवजी बोले— तब वे पर्वतराज, अपनी आँखों में आँसू भरकर, उससे बोले— "ब्रह्मा के द्वारा याच्ञा किये जाने पर मैंने उनके साथ गङ्गा को इन्द्रपुरी भेज दिया"।। ४।।

तच्छ्रुत्वा तु मुनिश्रेष्ठ गङ्गाविच्छेददुःखिता।
रुरोद गिरिराजस्य पत्नी मेनातिविस्तरम्॥ ५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह सुनकर गङ्गा के वियोग से दुःखी वह पर्वतराज की पत्नी मेनका करुण विलाप करने लगी।। ५।।

ततस्तां सान्त्वयामास गिरीन्द्रो ज्ञानिनां वरः।
श्रावयन् भाषितं सर्वं गङ्गायाः स्वयमेव हि॥ ६॥

उस समय ज्ञानियों में श्रेष्ठ पर्वतराज ने मेनका को सान्त्वना दी। और गङ्गा द्वारा स्वयं कही बात भी सुना दी।। ६।।

मेनका का गङ्गा को शाप

ततः स्वतनयां रोषाच्छशाप गिरिगेहिनी।
असम्भाष्य गतां स्वर्गं गङ्गां प्राणसमामपि॥ ७॥
'मातरं मामसम्भाष्य गता यस्मात्त्रिविष्टपम्।
ततो द्रवमयी भूत्वा पुनरेहि धरातलम्'॥ ८॥

तब उस हिमालय पत्नी मेनका ने क्रोधवश अपनी प्राणों के समान प्रिय कन्या को, जो कि माता से विना सम्मति लिये इन्द्रपुरी (स्वर्ग) चली गयी थी, 'गङ्गा मुझ माता से बिना कहे स्वर्ग चली गयी है अतः उसे एक दिन पुनः जल के रूप में इस भूतल पर लौटना पड़ेगा'– यह शाप दे दिया।। ७–८।।

एवं कृत्वाभिशापं तु मेना हिमवतोऽङ्गना।
प्रविवेश गृहं देवी गिरिराजोऽपि नारद!॥ ९॥

हे नारद! यों वह गिरिराजपत्नी मेनका अपनी कन्या को शाप देकर हिमालय के साथ पुनः अपने घर में चली गयी।। ९।।

देवताओं द्वारा महोत्सव का आयोजन

अथ स्वर्गपुरे देवा गङ्गां नीत्वा समुत्सुकाः।
अकार्षुर्मङ्गलं तस्या विवाहार्थं महामते!॥ १०॥

हे महामते! उधर देवगणों ने गङ्गा को स्वर्ग में ले जाकर, उसके विवाहहेतु मङ्गलोत्सव का आयोजन किया।। १०।।

नारदं प्रेषयामास ब्रह्मा हृष्टमनास्तदा।
कामरूपं महापीठं शम्भुमानेतुमादरात्॥ ११॥

तब ब्रह्माजी ने प्रसन्नमन से नारद को, भगवान् शङ्कर को ससम्मान लाने के लिये, कामरूप सिद्धपीठ भेजा।। ११।।

ततः स नारदो गत्वा कामरूपे महेश्वरम्।
ददर्श ध्यानसन्निष्ठं योगचिन्तापरायणम्॥ १२॥

नारद ने कामरूप जाकर योगशास्त्र में पारङ्गत भगवान् शङ्कर को वहाँ समाधि लगाये बैठे देखा।। १२।।

निवृत्तेन्द्रियकार्यं हि महायोगविचिन्तकम्।
मध्याह्नार्कसहस्राभं स्फुरदिन्दुविलोचनम्॥ १३॥

उस समय उन भगवान् शङ्कर की सभी इन्द्रियाँ अपने विषयों से दूर थीं, उनका मन महायोग चिन्तन में रत था। वे मध्याह्न के हजारों सूर्य के सदृश देदीप्यमान थे। उनके नेत्र चमकते चन्द्रमा के समान शोभित थे।। १३ ।।

एवं विलोक्य देवेशं नारदस्तत्र संस्थितः।
चिन्तयामास भीतात्मा ध्यानभङ्गे महेशितुः॥ १४॥

ऐसा देखकर महर्षि ने कुछ समय वहाँ ठहर कर प्रतीक्षा की; क्योंकि उन्हें भय था कि यदि भगवान् की समाधि में बाधा पड़ी तो वे अप्रसन्न न हो जाँय।। १४ ।।

''यद्येनं कथये देव्याः सत्या हिमवतो गृहे।
जन्माभूदिति तत्तस्य ध्यानभङ्गो भविष्यति॥ १५॥

उस समय उन्होंने यह भी सोचा कि यदि मैं इनसे यह बताऊँ कि पर्वतराज हिमालय के घर में सती देवी का जन्म हो गया है तो इनका ध्यानभङ्ग हो जायगा।। १५ ।।

न चेद्वदामि तद्भ्रष्टप्रतिज्ञोऽहं भवामि च।
किं वा श्रुत्वा सतीदेव्याः पुनर्जन्म महेश्वरः।
तुष्ट्या परमया युक्तो मयि प्रीतो भविष्यति''॥ १६॥
इति सञ्चिन्त्य शनकैः शम्भोरन्तिकमाययौ।
उवाच नारदो देवं योगैकासक्तमानसम्॥ १७॥

यदि न बताऊँ तो मैं प्रतिज्ञाच्युत कहलाऊँगा अथवा हो सकता है, ये भगवान् शङ्कर सती देवी का पुनर्जन्म सुन कर परम सन्तुष्ट होते हुए मुझसे प्रसन्न ही हो जायँ। यह सोचकर वे (नारद) धीरे–धीरे भगवान् शङ्कर के पास पहुँचे और समाधिनिष्ठ भगवान् शङ्कर से यों बोले–।। १६–१७ ।।

नारद०— **''देवदेव! नमस्ये त्वां प्रसन्नो मे जगद्गुरो!॥ १८॥**

नारद– ''हे देवाधिदेव, हे जगद्गुरो! मैं आपको प्रणाम कर रहा हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न होइये।। १८ ।।

यस्ते सतीं समानेतुं प्रत्युद्यातस्त्वदन्तिकात्।
जाता तव सती भूयस्त्वामिच्छन्ती पतिं प्रभो।
तां ग्रहीतुं समागच्छ त्यज योगविचिन्तनम्''॥ १९॥

मैं अब आप को सती से मिलाने के लिये ले चलने आया हूँ। हे प्रभो! आपसे वियुक्त आपकी वह सती आपको पुनः पतिरूप में वरण करना चाहती

है। अतः अब उसे ग्रहण करने के लिये मेरे साथ पधारिये और इस योगक्रिया को छोड़िये''।। १९।।

श्रीमहादेव०— इति श्रुत्वा महादेवो ध्यानं त्यक्त्वा तदैव हि।
''क्वास्ति मे सा सतीत्येवमुक्त्वा तस्थौ महीतले॥ २०॥

ततस्तं प्राह देवर्षिर्जाता हिमवतः सुता।
अंशेन सा सती देवी गङ्गा नाम्ना सुलोचना॥ २१॥

तां ब्रह्मा तु समानीय स्वर्गे सर्वसुरैः सह।
त्वमेहि परिगृह्णीष्व पत्नी ते चारुरूपिणी॥ २२॥

श्रीमहादेव— ऐसा सुनते ही भगवान् शङ्कर ध्यानभावना छोड़कर उसी समय ''मेरी वह सती कहाँ है?''— यह कहकर भूमि पर बैठ गये। तब नारद ने उनको बताया कि वह हिमालय की पुत्री के रूप में प्रकट हुई है। वह सती देवी, अपने एक अंश में, शुभनयना गङ्गा के रूप में उत्पन्न हुई हैं। उन्हें ब्रह्मा जी आपको समर्पित करने हेतु सब देवताओं के साथ स्वर्ग में अपने कमण्डलु में ले आये हैं। हे प्रभो! आप को वहाँ सादर लिवा ले जाने के लिये मुझको यहाँ भेजा है। अतः आप पधारें और उस मनोहर रूपवाली अपनी पत्नी को स्वीकार करें''।। २०–२२।।

ततः कमण्डलौ ब्रह्मणः पश्य तां चारुरूपिणीम्।
स्थितामंशेन त्रैलोक्यपावनीं शिवगेहिनीम्॥ २३॥
महेशस्तां प्रगृह्यैव ततः प्रायान्महामते!॥ २४॥

हे महामते! यह सुनते ही भगवान् शङ्कर शीघ्र ही इन्द्रपुरी पहुँचे। तथा वहाँ ब्रह्मा के कमण्डलु में उस सुन्दरवदना, त्रैलोक्यपावनी अपनी गृहस्वामिनी को देखकर महेश्वर उसे बलपूर्वक पकड़कर वहाँ से कैलास के लिये चल पड़े।। २३–२४।।

कैलासं सुप्रसन्नात्मा समस्तैः प्रमथैर्वृतः।
स्थिता कमण्डलौ या तु सैव मायापुरं हरम्॥ २५॥
प्राप्य द्रवमयी भूत्वा वसुधामपि सागमत्।
स्वर्गाद् ब्रह्मनदीरूपा समुपागत्य भूतलम्॥ २६॥

कैलास पर पहुँचकर, प्रमथों से घिरे हुए उनका मन प्रसन्न हुआ। जो गङ्गा कमण्डलु में विराजमान थी वही गङ्गा स्वर्ग से जलमयी होकर ब्रह्मनदी के रूप में भूतल पर आयी।। २५–२६।।

उद्धृत्य सागरं वंशं प्राप्य सागरमम्बुधिम्।
पातालं प्राप्य लोकानां परित्राणाय नारद॥ २७॥

हे नारद! वहाँ सगर राजा के वंशजों का उद्धार करती हुई वह सागर नामक समुद्र में मिलकर पातालवासी प्राणियों का हित करने भी पहुँच गयी।। २७।।

एवं हिमगिरेः पुत्रीं भूत्वांशेन सती मुने!
पतिमाप महादेवं प्रसन्ना जगदम्बिका॥ २८॥

हे मुने! यों हिमगिरि की पुत्री के रूप में उस जगन्माता सती देवी ने पुनः प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर को पतिरूप में प्राप्त किया।। २८।।

अपरापि मुनिश्रेष्ठ ततस्तु सा सती स्वयम्।
सम्भूयापि च पूर्णैव पतिमाप च शङ्करम्॥ २९॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे गङ्गाविवाहवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उसके बाद सती देवी ने अपने दूसरे पूर्ण अंश से भी यहाँ उत्पन्न होकर भगवान् शङ्कर को ही पतिरूप में वरण किया।। २९।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'गङ्गाविवाहवर्णन' नामक
चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥

पञ्चदश अध्याय

[ब्रह्मविज्ञानयोगोपदेश-वर्णन]

पार्वती का जन्म

नारद०— "ब्रूहि देव महेशान यथा सा परमेश्वरी।
बभूव मेनकागर्भे पूर्णभावेन पार्वती॥ १॥

नारद— हे देव, महेश्वर! यद्यपि वह देवी महेश्वरी मेनका के गर्भ में अपने सम्पूर्ण अंश से जैसे आयी आप हमें बताइये।। १।।

श्रुतं बहुपुराणेषु ज्ञायतेऽपि च यद्यपि।
जन्मकर्मादिकं तस्यातस्तथापि परमेश्वर॥ २॥
श्रोतुं तदिष्यते त्वत्तो यतस्त्वं वेत्सि तत्त्वतः।
तद्वदस्व महादेव! विस्तरेण महामते!"॥ ३॥

यद्यपि उसके जन्म–कर्म आदि को मैंने बहुत से पुराणों के माध्यम से अन्यत्र भी सुना है और मुझे ज्ञात भी है तो भी हे परमेश्वर! मैं वह सब आप से सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आप उसे यथार्थ रूप से अधिक अच्छी तरह जानते हैं। अतः हे महामते! हे महादेव! उसे आप कृपया मुझे विस्तार से सुनाइये"।। २–३।।

*श्रीमहादेव०—*त्रैलोक्यजननी दुर्गा ब्रह्मरूपा सनातनी।
प्रार्थिता गिरिराजेन तत्पत्न्या मेनयापि च॥ ४॥
महोग्रतपसा पुत्रीभावेन मुनिपुङ्गव!
प्रार्थिता च महेशेन सतीविरहदुःखिना॥ ५॥

श्रीमहादेव— हे मुनिश्रेष्ठ! जगन्माता भगवती दुर्गा अविनाशिनी एवं ब्रह्मस्वरूपिणी हैं, उसको अपनी पुत्री रूप में प्राप्ति के लिये हिमालय तथा उस की पत्नी मेनका ने भी आराधना की थी।। ४।।

उधर सती के वियोग से दुःखी भगवान् शङ्कर भी उसको पुनः पत्नीभाव से प्राप्ति के लिये उग्र तप कर रहे थे।। ५।।

प्रययौ मेनकागर्भे पूर्णब्रह्ममयी स्वयम्॥ ६॥
ततः शुभदिने मेना राजीवसदृशाननाम्।
सुषुवे तनयां देवीं सुप्रभां जगदम्बिकाम्॥ ७॥

अतः वह पूर्णब्रह्मरूपा भगवती देवी मेनका के गर्भ में आयी। फिर किसी शुभ दिन उस कमलवत् सुन्दर मुखवाली एवं प्रभायुक्त, जगन्माता को मेनका ने अपनी कोंख से पैदा किया।। ६–७।।

ततोऽभवत् पुष्पवृष्टिः सर्वतो मुनिसत्तम।
पुण्यगन्धो ववौ वायुः प्रसन्नाश्च दिशो दश॥ ८॥
तथाद्रिराजः श्रुत्वा तु पुत्रीं जातां शुभाननाम्।
तरुणादित्यकोट्याभां त्रिनेत्रां दिव्यरूपिणीम्॥ ९॥
अष्टहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रार्धकृतशेखराम्।
मेने तां प्रकृतिं सूक्ष्मामाद्यां जातां स्वलीलया॥ १०॥

इस शुभ अवसर पर हे मुनिश्रेष्ठ! सब तरफ से पुष्पवृष्टि होने लगी। पवित्र सुगन्ध से मिश्रित वायु सब तरफ बहने लगी तथा सभी दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं तथा पर्वतराज हिमालय भी अपने घर में पुत्री का जन्म सुनकर प्रसन्न हुए। उस पुत्री की आभा करोड़ों बाल सूर्यों के समान थी, उसके तीन नेत्र थे, वह दिव्य रूपवाली थी, उसके आठ हाथ थे, उसकी आँखें विशाल थीं, उसके मस्तक पर अर्धचन्द्र शोभित था। उसे वे नगाधिराज स्वलीला से समुद्भूत सूक्ष्मा आद्या प्रकृति देवी मानते थे।। ८–१०।।

तदा हृष्टमना भूत्वा विप्रेभ्यो प्रददौ बहु।
धनं वासांसि च मुने दोग्ध्रीर्गाश्च सहस्रशः।
द्रष्टुं प्रतिययौ चाशु बन्धुभिः परिवारितः॥ ११॥

इस शुभ अवसर पर उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत मात्रा में दान किया। जिसमें धन भी था, वस्त्र भी थे और हजारों दूध देने वाली गौएँ भी थीं। पुत्री को देखने के लिये उनके पारिवारिक जन सब तरफ से आने लगे।। ११।।

ततस्तमागतं ज्ञात्वा गिरीन्द्रं मेनका तदा।
प्रोवाच "तनयां पश्य राजन् राजीवलोचनाम्।
आवयोस्तपसा जाता सर्वभूतहिताय च॥ १२॥

उस समय मेनका नगाधिराज को घर में आया देखकर, उनसे बोली– "हे राजन्! आप अपनी इस कमलनयना पुत्री को देखिये जो यह हम दोनों के तप के प्रभाव से, सभी प्राणियों के हित में हमारे घर में उत्पन्न हुई है"।। १२।।

ततः सोऽपि निरीक्ष्यैनां ज्ञात्वा तां जगदम्बिकाम्॥ १३॥
प्रणम्य शिरसा भूमौ कृताञ्जलिपुटः स्थितः।
प्रोवाच वचनं देवीं भक्त्या गद्गदया गिरा॥ १४॥

तब उस नगाधिराज ने भी अपनी पुत्री को देखा और उसको जगदम्बिका मानते हुए। उन्हें शिर से प्रणाम कर, हाथ जोड़कर वह भूमि पर खड़े हो गये। और गद्गद वाणी में उन भगवती से यों बोले–।। १३–१४।।

हिमालय— का त्वं मातर्विशालाक्षि चित्ररूपा सुलक्षणा।
न जाने त्वामहं वत्से यथावत्कथयस्व माम्''॥ १५॥

हिमावान्— हे माता! हे विशाल नेत्रों वाली! विचित्ररूपवाली, शुभलक्षणों से युक्त आप कौन हैं?— मैं तुम्हें नहीं जानता, कृपया इस विषय में कुछ विस्तार से बताइये।। १५।।

श्रीदेवी०— ''जानीहि मां परां शक्तिं महेश्वरकृताश्रयाम्।
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानमूर्तिं सर्वप्रवर्तिकाम्॥ १६॥

श्रीदेवी— ''मुझे पराशक्ति समझिये। मैं महेश्वर (शिव) पर आश्रित हूँ। मैं अविनाशी, ऐश्वर्य तथा विज्ञानस्वरूप हूँ। मैं आप सब को अपने अपने कार्य में प्रवृत्त कराने वाली हूँ।। १६।।

ब्रह्मविष्णुमहेशादिजननीं सर्वमुक्तिदाम्।
सृष्टिस्थितिविनाशानां विधात्रीं जगदम्बिकाम्॥ १७॥

ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर की जननी (उत्पादिका) हूँ, सभी को मुक्ति देने वाली हूँ। सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय का नियन्त्रण करती हूँ। मैं जगत् की माता हूँ।। १७।।

अहं सर्वान्तरस्था च संसारार्णवतारिणी।
नित्यानन्दमयी नित्या ब्रह्मरूपेश्वरीति च॥ १८॥

मैं सर्वव्यापिका हूँ। साधक को भवसागर से पार करने वाली हूँ। मैं नित्यानन्दमयी, नित्या, ब्रह्मरूपा एवं जगदीश्वरी हूँ।। १८।।

युवयोस्तपसा तुष्टा पुत्रीभावेन लीलया।
जाता तव गृहे तात बहुभाग्यवशात्तव''॥ १९॥

हे तात! आप दोनों (पति–पत्नी) के तप से सन्तुष्ट होकर मैं स्वेच्छा से तुम्हारे घर में, पुत्रीरूप में तुम्हारे सौभाग्य से उत्पन्न हुई हूँ''।। १९।।

हिमालय०—

''मातस्त्वं कृपया गृहे मम सुता जातासि नित्यापि यद्,
भाग्यं मे बहुजन्मजन्मजनितं मन्ये महत्पुण्यदम्।
दृष्टं रूपमिदं परात्परतरां मूर्तिं भवान्या अपि,
माहेशीं प्रति दर्शयाशु कृपया विश्वेशि तुभ्यं नमः''॥ २०॥

हिमवान्— "हे माता! आप नित्य होते हुए भी मेरे घर में पुत्रीरूप से उत्पन्न हुईं— यह मेरे बहुत से जन्म जन्मान्तरों से अर्जित पुण्ययुक्त सौभाग्य का फल है। आप का यह रूप तो मैंने देख लिया, अब हे विश्वेश्वरि! मैं आपके भवानी महेश्वरी वाले रूप के भी दर्शन करना चाहता हूँ। कृपया मुझे उसी रूप का दर्शन कराइये! मैं आपको प्रणाम करता हूँ"।। २०।।

देवी०— **ददामि चक्षुस्ते दिव्यं पश्य मे रूपमैश्वरम्।**
छिन्धि हृत्संशयं विद्धि सर्वदेवमयीं पितः!"॥ २१॥

श्रीदेवी— पिताजी! मैं आपको दिव्यचक्षु प्रदान करती हूँ। उससे आप मेरा वह अद्भुत सर्वदेवमय रूप देखिये। उससे आप के सभी संशय मिट जायँगें और आप मुझे सर्वदेवमयी जान सकेंगें।। २१।।

भगवती का प्रथम रूप

श्रीमहादेव०— **इत्युक्त्वा तं गिरिश्रेष्ठं दत्त्वा विज्ञानमुत्तमम्।**
स्वरूपं दर्शयामास दिव्यं माहेश्वरं तदा॥ २२॥

श्रीमहादेव जी बोले— उस भगवती ने यहकहर उन पर्वतश्रेष्ठ हिमालय को दिव्यदृष्टि प्रदान कर उसके सहारे से अपने इस दिव्य महेश्वरी स्वरूप का दर्शन कराया।। २२।।

शशिकोटिप्रभं चारुचन्द्रार्धकृतशेखरम्।
त्रिशूलवरहस्तं च जटामण्डितमस्तकम्॥ २३॥

जिससे करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्ति निकल रही थी। जिसके मस्तक पर अर्धचन्द्र विराजमान था। हाथ में एक श्रेष्ठ त्रिशूल था, मस्तक पर जटाएँ शोभित हो रही थीं।। २३ ।।

भयानकं घोररूपं कालानलसहस्त्रभम्।
पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं च नागयज्ञोपवीतिनम्॥ २४॥

वह रूप घोर और भयानक था; क्योंकि उससे हजारों कालाग्नियों की लपटें निकल रही थीं। उसके पाँच मुख और तीन नेत्र थे। उन्होंने लम्बे काले सर्प को यज्ञोपवीत की तरह धारण कर रखा था।। २४।।

द्वीपिचर्माम्बरधरं नागेन्द्रकृतभूषणम्।
एवं विलोक्य तद्रूपं विस्मितो हिमवान् पुनः।
प्रोवाच वचनं "माता रूपमन्यत् प्रदर्शय"॥ २५॥

उन्होंने चीते का चर्म वस्त्र के तथा और साँपों को आभूषण के रूप में धारण कर रखा था। उनका यह रूप देखकर विस्मित (भयचकित)

हुआ पर्वतराज हिमालय फिर बोला— "हे माता! अपना कोई अन्य रूप दिखाइये"?।। २५ ।।

भगवती का दूसरा रूप

ततः संहृत्य तद्रूपं दर्शयामास तत्क्षणात्।
रूपमन्यन्मुनिश्रेष्ठ! विश्वरूपा सनातनी॥ २६ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तब भगवती ने अपना वह रूप छिपाकर उसी समय दूसरा रूप विस्वरूपा दिखाया।। २६ ।।

शरच्चन्द्रनिभं चारुमुकुटोज्ज्वलमस्तकम्॥ २७॥
शङ्खचक्रगदापद्महस्तं नेत्रत्रयोज्ज्वलम्।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्॥ २८ ॥

वह रूप शरदृतु के चन्द्रमा के समान कान्तिमान् था। उनका मस्तक सुन्दर मुकटों से शोभित था। वह चारों हाथों में क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म (कमलपुष्प) लिये हुई थी। वह तीन नेत्रों से भी शोभित थी। दिव्यमाला एवं वस्त्रधारण किये हुई थी। उसने अपने शरीर पर दिव्यगन्ध का लेप कर रखा था।। २७–२८।।

योगीन्द्रवृन्दसम्वन्द्यं सुचारुचरणाम्बुजम्।
सर्वतः पाणिपादं च सर्वतोक्षिशिरोमुखम्॥ २९ ॥

उनके सुन्दर चरणकमलों को योगियों का समूह नमन कर रहा था। उसके हाथ एव पैर सब तरफ थे। उसी तरह आँखें, शिर एवं मुख भी सब तरफ दिखायी दे रहे थे।। २९ ।।

दृष्ट्वा तदेतत् परमं रूपं स हिमवान् पुनः।
प्रणम्य तनयां प्राह विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥ ३०॥

वे पर्वतराज हिमालय उस भगवती का यह रूप देखकर उन्हें प्रणाम कर आश्चर्यपूर्वक विस्तारित नेत्रों द्वारा अपनी पुत्री से यों बोले—।। ३०।।

भगवती का तीसरा रूप

हिमालय०—"मातस्तवेदं परमं रूपमैश्वरमुत्तमम्।
विस्मितोऽस्मि समालोक्य रूपमन्यत् प्रदर्शय॥ ३१ ॥

हिमवान्— "हे माता! आप का यह ईश्वरीमयरूप और भी अधिक विस्मयकारी है। कृपया अपना और भी कोई रूप दिखाइये?।। ३१।।

त्वं यस्य सो ह्यशोच्यो हि धन्यश्च परमेश्वरि।
अनुगृह्णीष्व मातर्मां कृपया त्वां नमो नमः"॥ ३२ ॥

हे परमेश्वरि! आप का जिसने आश्रय ले लिया, उसके विषय में किसी अन्य को कोई चिन्ता नहीं करनी वह धन्य है। हे माता! कृपया मुझ पर अनुग्रह कीजिये। आपको मैं बार बार प्रणाम करता हूँ''।। ३२।।

श्रीमहादेव०— **इत्युक्ता सा तदा पित्रा शैलराजेन पार्वती।**
तद्रूपमपि संहृत्य दिव्यं रूपं समादधे॥ ३३॥

श्रीमहादेव जी— इस प्रकार पिता हिमालय द्वारा प्रार्थित वह पार्वती अपने उस रूप को भी छिपाकर दिव्य रूप (विग्रह) में प्रकट हुईं।। ३३।।

नीलोत्पलदलश्यामं वनमालाविभूषितम्।
शङ्खचक्रगदापद्ममभिव्यक्तं चतुर्भुजम्॥ ३४॥

उस रूप में उनका शरीर नील कमल की तरह श्यामवर्ण था। वह वनमाला धारण किये हुए थी। उसके चारों हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म स्पष्टतः शोभित थे।। ३४।।

एवं विलोक्य तद्रूपं शैलानामधिपस्ततः।
कृताञ्जलिपुटः स्थित्वा हर्षेण महता युतः॥ ३५॥
स्तोत्रेणानेन तां देवीं तुष्टाव परमेश्वरीम्।
सर्वदेवमयीमाद्यां ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्॥ ३६॥

तब वे पर्वतराज भगवती का वह दिव्यरूप देखकर हाथ जोड़कर परम हर्ष के साथ उस भगवती परमेश्वरी को जो कि स्वयं ब्रह्मा विष्णु एवं शिव है, सर्वदेवमय है, आद्या प्रकृति है, इस अधोलिखित स्तोत्र से सन्तुष्ट करने लगा—।। ३५–३६।।

हिमालयकृत देवी-स्तुति

हिमालय०—

''मातः सर्वमयि प्रसीद परमे विश्वेशि विश्वाश्रये,
त्वं सर्वं नहि किञ्चिदस्ति भुवने तत्त्वं त्वदन्यच्छिवे!
त्वं विष्णुर्गिरिशस्त्वमेव नितरां धातासि शक्तिः परा,
किं वर्ण्यं चरितं त्वचिन्त्यचरिते ब्रह्माद्यगम्यं मया॥ ३७॥

हिमवान्— हे माता! आप मुझ पर प्रसन्न होइये। आप सकलरूपमयी हैं। आप परमा शक्ति हैं। विश्वेश्वरी हैं। विश्वाधार हैं। आप ही इस विश्व में सबकुछ (सारभूत) हैं। हे शिवे आपको छोड़कर यहाँ सब कुछ तुच्छ (निस्सार) है। आप ही विष्णु हैं, आप ही शिव हैं, आप ही ब्रह्मा हैं। आप ही पराशक्ति हैं।

हे अचिन्त्यचरिते! आपके चरित्र का वर्णन मैं कैसे करूँ! आपका चरित्रवर्णन तो ब्रह्मा आदि के द्वारा भी अज्ञेय है।। ३७।।

त्वं स्वाहाखिलदेवतृप्तिजननी विश्वेशि त्वं वै स्वधा,
पितृणामपि तृप्तिकारणमसि त्वं देवदेवात्मिका।
हव्यं कव्यमपि त्वमेव नियमो यज्ञस्तपो दक्षिणा,
त्वं स्वर्गादिफलं समस्तफलदे देवेशि तुभ्यं नमः॥ ३८॥

हे विश्वेश्वरि! आप स्वाहा के रूप में सभी देवताओं को तृप्त करने वाली और स्वधा के रूप में सभी पितरों की तृप्ति करने वाली हैं। आप ही हव्य (देवभोज्य) है, आप ही कव्य (पितृभोज्य), नियम, यज्ञ, तप एवं दक्षिणा (दान) हैं। आप ही स्वर्गादि का फल हैं। हे समस्त फलदात्रि! देवेश्वरि! आप को बार-बार प्रणाम है।। ३८।।

रूपं सूक्ष्मतमं परात् परतरं यद्योगिनो विद्यया
शुद्धं ब्रह्ममयं वदन्ति परमं मातः सुदृप्तं तव।
वाचा दुर्विषयं मनोऽतिगमपि त्रैलोक्यबीजं शिवे,
भक्त्याहं प्रणमामि देवि वरदे विश्वेश्वरि त्राहि माम्॥ ३९॥

हे माता! आपका रूप सूक्ष्मतम है, पर से परतर है, जिसे योगिजन विद्या (अपने अध्ययन) द्वारा परम शुद्ध सुप्रकाशित ब्रह्ममय बताते हैं। वह वाणी द्वारा अवर्णनीय है, मन से अतीव अगम्य (अबोध्य) है। वह त्रैलोक्य का मूलबीज है। हे शिवे! हे देवि! मैं आप को भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ। हे विश्ववेश्वरि वरदात्रि! आप मेरी रक्षा करें।। ३९।।

उद्यत्सूर्यसमप्रभां मम गृहे जातां स्वयं लीलया,
देवीमष्टभुजां विशालनयनां बालेन्दुमौलिं शिवाम्।
उद्यत्कोटिशशाङ्ककान्तिनयनां बालां त्रिनेत्रां परां,
भक्त्या त्वां प्रणमामि विश्वजननीं देवि प्रसीदाम्बिके!॥ ४०॥

आप मेरे घर में अपनी लीला प्रकट करने के लिये ही प्रादुर्भूत हुई हैं। आपके शरीर की शोभा उगते सूर्य की अरुण कान्ति के समान है। आप आठ भुजाओं वाली देवी हैं। आपके विशाल नेत्र हैं। आपके शिर पर बाल चन्द्र शोभित है। आप सबका कल्याण करने वाली हैं। आपके नेत्र उगते हुए करोंड़ों चन्द्रमा की कान्ति से युक्त हैं। आपके तीन नेत्र हैं। आप परा शक्ति हैं। आप जगन्माता को मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ। हे देवि! हे माता! आप मुझ पर प्रसन्न हों।। ४०।।

रूपं ते रजताद्रिकान्तिविमलं नागेन्द्रभूषोज्ज्वलं,
घोरं पञ्चमुखाम्बुजत्रिनयनैर्भीमैः समुद्भासितम्।
चन्द्रार्धाङ्कितमस्तकं धृतजटाजूटं शरण्ये शिवे,
भक्त्याहं प्रणमामि विश्वजननिं त्वां त्वं प्रसीदाम्बिके ॥ ४१ ॥

हे शरणदायिनि! आप का रूप रजतपर्वत के समान श्वेत कान्ति से युक्त है। सर्परूपी आभूषणों से अलङ्कृत है अतएव भयानक है। आप के पाँच मुखकमल तथा तीन भयङ्कर नेत्र हैं। आपका मस्तक अर्धचन्द्र से शोभित है। उस पर सुन्दर जटाजूट हैं। हे शिवे! हे जगन्माता! मैं आपको भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ हे माता! आप मुझ पर प्रसन्न हों।। ४१।।

रूपं शारदचन्द्रकोटिसदृशं दिव्याम्बरं शोभनं,
दिव्यैराभरणैर्विराजितमलं कान्त्या जगन्मोहनम्।
दिव्यैर्बाहुचतुष्टयैर्युतमहं वन्दे शिवे भक्तितः,
पादाब्जं जननि प्रसीद निखिलब्रह्मादिदेवस्तुते ॥ ४२ ॥

हे शिवे! आप का रूप शरद् ऋतु के करोड़ों चन्द्रमा की तरह कान्तिमान् है। दिव्य वस्त्रों से युक्त तथा सुन्दर, दिव्य आभूषणों से अलङ्कृत एवं अत्यधिक कान्ति से युक्त है। वह जगत् का मोहक है। आप का विग्रह चार दिव्य भुजाओं से सम्पृक्त है। अतः मैं भक्तिपूर्वक आपके चरणकमलों में वन्दना करता हूँ। ब्रह्मा आदि सभी देव आपकी स्तुति करते हैं हे माता! आप प्रसन्न होइये।। ४२।।

रूपं ते नवनीरदद्युतिरुचि फुल्लाब्जनेत्रोज्ज्वलं,
कान्त्या विश्वविमोहनं स्मितमुखं रत्नाङ्गदैर्भूषितम्।
विभ्राजद्वनमालया विलसितोरस्कं जगत्तारिणि,
भक्त्याहं प्रणतोऽस्मि देवि कृपया दुर्गे प्रसीदाम्बिके! ॥ ४३ ॥

हे जगत्तारिणि! आपका रूप नव मेघ की तरह आभायुक्त है, आपके नेत्र खिले कमल पुष्प की तरह हैं। यह रूप कान्ति से जगत् को मोहने वाला है, आप के मुख पर मन्द हास्य झलक रहा है। रत्नजटित बाजूबन्द आभूषणों से युक्त हैं। आपका वक्षःस्थल सुन्दर वनमाला से शोभित है। हे दुर्गे! मैं आपके प्रति भक्तिपूर्वक नतमस्तक हूँ। हे माता! आप कृपा कर मुझ पर प्रसन्न हों।। ४३।।

मातः कः परिवर्णितुं तव गुणं रूपं च विश्वात्मकं
शक्तो देवि जगत्त्रये बहुगुणैर्देवोऽथवा मानुषः।

तत् किं स्वल्पमतिर्ब्रवीमि करुणां कृत्वा स्वकीयैर्गुणै-
र्नो मां मोहय मायया परमया विश्वेशि तुभ्यं नमः॥ ४४॥

हे माता! इस संसार में कौन देवता या मनुष्य आप के इस विश्वमय रूप तथा गुणों का वर्णन करने में समर्थ है तब फिर मैं अल्पबुद्धि क्या वर्णन कर सकता हूँ। अतः आप कृपाकर अपने गुणों से तथा अपनी बलवती माया से मुझे सम्मुग्ध न करें। हे विश्वेश्वरि! मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥ ४४॥

अद्य मे सफलं जन्म तपश्च सफलं मम।
यत्त्वं त्रिजगतां माता मत्पुत्रीत्वमुपागता॥ ४५॥

हे देवि! आज मेरा जन्म तथा समग्र तप सफल हो गया कि आप जगज्जननी मेरे घर में मेरी पुत्री के रूप में प्रादुर्भूत हुईं॥ ४५॥

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं मातस्त्वं निजलीलया।
नित्यापि मद्गृहे जाता पुत्रीभावेन वै यतः॥ ४६॥

मैं धन्य हूँ, मेरे सभी कार्य पूर्ण हो गये, क्योंकि हे माता! आप नित्य होते हुए भी मेरे घर में पुत्रीरूप से प्रादुर्भूत हुईं॥ ४६॥

किं ब्रुवे मेनकायाश्च भाग्यं जन्मशतार्जितम्।
यतस्त्रिजगतां मातुरपि माता भवेत्तव''॥ ४७॥

मैं अपनी पत्नी मेनका के अनेक जन्मों से अर्जित भाग्य की क्या सराहना करूँ कि वह आज तीनों लोकों की माता की भी माता बन गयी!'॥ ४७॥

श्रीमहादेव०—एवं गिरीन्द्रतनया गिरिराजेन संस्तुता।
बभूव सहसा चारुरूपिणी पूर्ववन्मुने॥ ४८॥

श्रीमहादेव जी— हे मुने! यों वह पार्वती, गिरिराज द्वारा स्तुति किये जाने के बाद, पुनः सहसा सुन्दर आकृतिवाली बन गयीं॥ ४८॥

मेनकापि विलोक्यैवं विस्मिता भक्तिसंयुता।
ज्ञात्वा ब्रह्ममयीं पुत्रीं प्राह गद्गदया गिरा॥ ४९॥

मेनका ने भी उसका यह सुन्दर रूप देखकर आश्चर्यचकित हो, उसे अपनी ब्रह्ममयी पुत्री जानकर, उससे भक्तिपूर्वक गद्गद वाणी से यों कहा—॥ ४९॥

मेनका०— ''मातः स्तुतिं न जानामि भक्तिं वा जगदम्बिके!
तथाप्यहमनुग्राह्या त्वया निजगुणेन हि॥ ५०॥

मेनका— "हे जगन्माता! मैं स्त्रीजाति में उत्पन्न न तो कोई भक्ति का विधान जानती हूँ, न स्तुति आदि का। तो भी हे माता! आप मुझ पर अपने गुणों के प्रभाव से अनुग्रह कीजिये।। ५०।।

त्वया जगदिदं सृष्टं त्वमेवैतत्फलप्रदा।
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वं व्याप्याधितिष्ठसि"॥ ५१॥

आपने ही इस समस्त जगत् की सृष्टि की है। आप ही इसके कर्मफल की प्रदाता हैं। आप सभी की आधारभूत हैं तथा आप सब में व्याप्त होकर विराजमान हैं।। ५१।।

श्रीदेवी०— **"त्वया मातस्तथा पित्राप्यनेनाराधिता ह्यहम्।**
महोग्रतपसा पुत्रीं लब्धुं मां परमेश्वरीम्॥ ५२॥

श्रीदेवी— "हे माता! आपने तथा मेरे इन पिता ने उग्र तपस्या द्वारा मेरी आराधना कर मुझ अविनाशी को भी अपनी पुत्री के रूप में प्राप्त कर लिया।। ५२।।

युवयोस्तपसस्तस्य फलदानाय लीलया।
नित्या लब्धवती जन्म गर्भे तव हिमालयात्"॥ ५३॥

आपके उस अपूर्व तप का फल प्रदान करने के लिये अपनी लीला से, नित्य होती हुई भी मैंने हिमालय के माध्यम से आपकी कोंख में आकर जन्म लिया"।। ५३।।

श्रीमहादेव०—ततो गिरीन्द्रस्तां देवीं प्रणिपत्य पुनः पुनः।
पप्रच्छ ब्रह्मविज्ञानं प्राञ्जलिर्मुनिसत्तम!॥ ५४॥

श्रीमहादेव जी— हे मुनिश्रेष्ठ ! तब पर्वतराज ने उस देवी को बारबार प्रणाम कर, हाथ जोड़कर ब्रह्मविज्ञान के विषय में प्रश्न किया।। ५४।।

हिमालय०— **मातस्त्वं बहुभाग्येन मम जातासि कन्यका।**
ब्रह्माद्यैर्दुर्लभा योगिदुर्गमया निजलीलया॥ ५५॥

हिमालय— "आप मेरे सौभाग्य से मेरी कन्या के रूप में मेरे घर पधारी हैं। आप की लीलाएँ ब्रह्मा आदि देवों द्वारा भी कठिनता से समझी जाती हैं तथा योगिजन भी आप को कठिनता से ही जान पाते हैं।। ५५।।

अहं तव पदाम्भोजं प्रपन्नोऽस्मि महेश्वरि!
यथाञ्जसा तरिष्यामि संसारापारवारिधिम्॥ ५६॥

हे महेश्वरि! मैं आपके चरणकमलों में बार-बार प्रणाम करता हूँ। जिससे कि सरलता से ही मैं इस भवसागर को पार कर जाऊँगा।। ५६।।

यस्मात् कालस्य कालस्त्वं महाकालीति गीयसे।
तस्मात्त्वं शाधि मातर्मा ब्रह्मविज्ञानमुत्तमम्॥ ५७॥

क्योंकि आप मृत्यु की भी मृत्यु बनकर 'महाकाली' कहलाती हैं, अतः, हे माता! आप मुझे उत्तम ब्रह्मविज्ञान के विषय में कुछ बताइये।। ५७।।

श्रीपार्वतीगीता—**शृणु तात प्रवक्ष्यामि योगसारं महामते!।**
यस्य विज्ञानमात्रेण देही ब्रह्ममयो भवेत्॥ ५८॥

पार्वती— हे तात! हे महामते! मैं तुम्हें योग का वह तत्त्व समझाऊँगी, जिसके जानने मात्र से प्राणी ब्रह्मरूप हो जाता है।। ५८।।

गृहीत्वा मम मन्त्रान्वै सद्गुरोः सुसमाहितः।
कायेन मनसा वाचा मामेव हि समाश्रयेत्॥ ५९॥

साधक किसी सद्गुरु से मेरी आराधना का मन्त्र जानकर अपना चित्त समाहित कर शरीर, मन और वाणी से मेरा ही आश्रय ग्रहण करे।। ५९।।

मच्चित्तो मद्गतप्राणो मन्नामजपतत्परः।
मत्प्रसङ्गो मदालापो मद्गुणश्रवणे रतः॥ ६०॥

वह मुझमें अपने चित्त तथा प्राण लगा दे। मेरे नाम के कीर्तन में संलग्न हो जाय। दिन रात मेरे ही विषय में चर्चा करता रहे। मेरे ही विषय में बातचीत करे और मेरे ही गुणों के श्रवण में निरन्तर लगा रहे।। ६०।।

भवेन्मुमुक्षू राजेन्द्र मयि भक्तिपरायणः।
मदर्चाप्रीतिसंसक्तमानसः साधकोत्तमः॥ ६१॥

हे राजेन्द्र! किसी भी उत्तम मुमुक्षु साधक को मेरी ही भक्ति में लग जाना चाहिये। मेरी पूजा, मेरी प्रीति में ही अपने चित्त को लगाये रखना चाहिये।। ६१।।

पूजायज्ञादिकं कुर्याद् यथाविधिविधानतः।
श्रुतिस्मृत्युदितैः सम्यक् स्ववर्णाश्रमवर्णितैः॥ ६२॥

वह शास्त्रानुमोदित विधि-विधान से मेरी पूजा तथा यज्ञादिक करें, जो श्रुति, स्मृति में स्ववर्णाश्रम धर्म के लिये उचित बता रखा हो।। ६२।।

सर्वयज्ञतपोदानैर्मामेव हि समर्चयेत्।
ज्ञानात् सञ्जायते मुक्तिर्भक्तिर्ज्ञानस्य कारणम्॥ ६३॥

सभी यज्ञ, तप तथा दान कर्मों से मेरी ही पूजा अर्चना करे; क्योंकि ज्ञान से मुक्ति होती है तथा इस ज्ञान में भक्ति कारण होती है।। ६३।।

धर्मात् सञ्जायते भक्तिर्धर्मो यज्ञादिको मतः।
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थं ममेदं रूपमाश्रयेत्॥ ६४॥

धर्माचरण से भक्ति प्राप्त होती है। यज्ञादिक से धर्म प्राप्त किया जा सकता है। अतः किसी भी मुमुक्षु साधक को धर्मप्राप्ति के लिये मेरे इस रूप का आलम्बन ग्रहण करना चाहिये।। ६४।।

सर्वाकाराहमेवैका सच्चिदानन्दविग्रहा।
मदंशेन परिच्छिन्ना देहाः स्वर्गौकसां पितः॥ ६५॥

हे पिता! मैं ही सर्वाकार हूँ। मैं सत् चित् आनन्द विग्रहवाली हूँ। सभी देवताओं के देह मेरे ही अंश से युक्त हैं।। ६५।।

तस्मान्मामेव विध्युक्तैः सकलैरेव कर्मभिः।
विभाव्य प्रजपेद्भक्त्या नान्यथा भावयेत् सुधीः॥ ६६॥

अतः बुद्धिमान् पुरुष शास्त्रविधि के कथित सभी कर्मों से, विचारपूर्वक, मेरी ही भक्ति करें, अन्यथा नहीं।। ६६।।

एवं वियुक्तकर्माणि कृत्वा निर्मलमानसः।
आत्मज्ञानसमुद्युक्तो मुमुक्षुः सततं भवेत्॥ ६७॥

निर्मलचित्त तथा आत्मज्ञान प्राप्ति में लगा हुआ मोक्ष का इच्छुक साधक शास्त्रविधि से कहे हुए ऐसे कर्मों को निरन्तर करता रहे।। ६७।।

घृणां वितत्य सर्वत्र पुत्रमित्रादिकेष्वपि।
वेदान्तादिषु शास्त्रेषु सन्निविष्टमना भवेत्॥ ६८॥
कामादिकं त्यजेत् सर्वं हिंसां चापि विवर्जयेत्।
एवं कृत्वा परां विद्यां जानीते नात्र संशयः॥ ६९॥

सर्वत्र पुत्र–मित्रादि में उपेक्षा (अनासक्ति) दिखाता हुआ तथा वेदान्तादि शास्त्रों के स्वाध्याय में ध्यान लगाकर। सभी कामभोगादि विकारों का तथा हिंसा का परित्याग कर दे। ऐसा करके ही वह मुमुक्षु परा विद्या का अधिग्रहण कर पायगा– इसमें कोई संशय नहीं है।। ६८–६९।।

यदैवात्मा महाराज! प्रत्यक्षमनुभूयते।
तदैव जायते मुक्तिः सत्यं सत्यं ब्रवीमि ते॥ ७०॥

हे महाराज! मैं आप को सत्य (सारभूत) बात बता दूँ कि जब आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है तभी 'मुक्ति' कहलाती है।। ७०।।

किं त्वेतद् दुर्लभं तात मद्भक्तिविमुखात्मनाम्।
तस्माद्भक्तिः परा कार्या मयि यत्नान्मुमुक्षुभिः॥ ७१॥

परन्तु हे तात! यह (मुक्ति) मेरी भक्ति से विमुख (दूर) लोगों के लिये दुर्लभ ही है। अत: मुमुक्षुजनों को यत्नपूर्वक मेरी भक्ति में मन लगाना चाहिये।। ७१।।

त्वमप्येवं महाराज! मयोक्तं कुरु सर्वदा।
संसारदुःखैरखिलैर्बाध्यसे न कदाचन''॥ ७२॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे विज्ञानयोगोपदेशवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

हे महाराज! यदि आप भी मेरे द्वारा बतायी गयी इस विधि से आचरण करें तो सभी सांसारिक दु:खों से मुक्ति प्राप्त कर लें तथा ये दु:ख आप को कभी बाधा नही पहुँचायें।। ७२।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'विज्ञानयोगोपदेशवर्णन' नामक
पञ्चदश अध्याय समाप्त॥

सोलहवाँ अध्याय

[ब्रह्मविद्योपदेशवर्णन]

हिमालय० — "विद्या वा कीदृशी मातर्यतो मुक्तिः प्रजायते।
आत्मा वा किंस्वरूपश्च तन्मे ब्रूहि महेश्वरि ?" ॥ १ ॥

हिमवान्— "हे माता! वह विद्या कौन सी है जिससे मुक्ति अधिगत की जा सकती है? और आत्मा का क्या स्वरूप है? ये दोनों बातें मुझको स्पष्टतः समझाइये?" ।। १ ।।

श्रीपार्वती० — "शृणु तात प्रवक्ष्यामि या संसारनिवर्तिका।
विद्या तस्याः स्वरूपं हि संक्षेपेण महामते! ॥ २ ।।

श्रीपार्वती— "हे तात! मैं तुम्हें अब उस विद्या के विषय में बताऊँगी जो संसारसागर से मुक्ति दिलाने वाली है, हे महामते! मैं तुम्हें उसका स्वरूप भी संक्षेप से बताऊँगी ।। २ ।।

बुद्धिप्राणमनोदेहाहंकृतीन्द्रियतः पृथक्।
अद्वितीयश्चिदात्माहं शुद्ध एवेति निश्चितम् ॥ ३ ॥

बुद्धि, प्राण, देह, अहङ्कार तथा पाँचों इन्द्रियों से पृथक् रहने वाला, अहम्बुद्धिरूप चिदात्मा पूर्णतः शुद्ध (विकाररहित) है— यह बात सुनिश्चित है ।। ३ ।।

संवेत्ति येन ज्ञानेन विद्या तद्ध्यानमुच्यते ॥ ४ ॥

जिस ज्ञान से विद्या जानी जाती है उसे 'ध्यान' कहते हैं ।। ४ ।।

आत्मा निरामयः शुद्धो जन्मनाशादिवर्जितः।
बुद्ध्याद्युपाधिरहितश्चिदानन्दात्मको मतः।
आनन्दः सुप्रभः पूर्णः सत्यज्ञानादिलक्षणः ॥ ५ ॥

आत्मा निर्विकार है, शुद्ध है, जन्म तथा क्षय आदि से दूर है। वह बुद्धि आदि उपाधियों से रहित है, चिदानन्दस्वरूप है, आनन्दमय है, प्रभायुक्त है, पूर्ण है, सत्य ज्ञान आदि चिह्नों से युक्त है ।। ५ ।।

एक एवाद्वितीयश्च सर्वदेहगतः परः।
स्वप्रकाशेन देहादीन् भासयन् सुसमास्थितः ॥ ६ ॥

वह एक ही है, अद्वितीय है, सभी देहों में व्याप्त है, पर है, देहादियों को अपने प्रकाश से उद्भासित करता रहता है।। ६।।

इत्यात्मनः स्वरूपं ते गिरिराज मयोदितम्।
एवं विचिन्तयेन्नित्यमात्मानं सुसमाहितः॥ ७॥

यों, हे गिरिराज! यही आत्मा का स्वरूप है जो मैंने तुमको बता दिया! मुमुक्षु को आत्मा के विषय में इन्हीं लक्षणों से विचार करना चाहिये।। ७।।

अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिं विवर्जयेत्।
रागद्वेषादिदोषेभ्यो हेतुभूता हि सा यतः॥ ८॥

अनात्मभूत शरीर आदि में आत्मबुद्धि का त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि ऐसी बुद्धि (विचार) राग, द्वेष आदि विकारों की हेतु है।। ८।।

रागद्वेषादिदोषेभ्यः सदोषं कर्म सम्भवेत्।
ततः पुनः संसृतिश्च तस्मात्तां परिवर्जयेत्''॥ ९॥

क्योंकि रागद्वेष आदि के कारण सदोष कर्मों की उत्पत्ति सम्भव है, इनसे आगे संसार का क्रम पुनः चल पड़ता है; अतः उसका परित्याग करना आवश्यक है''।। ९।।

हिमालय— ''अशुभादृष्टजनका रागद्वेषादयः शिवे!।
कथं जनैः परित्याज्यास्तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि॥ १०॥

हे शिवे! अशुभ अदृष्ट के उत्पादक ये राग द्वेष आदि मनुष्यों द्वारा कैसे छोड़े जायँ?— यह आप मुझे बताइये।। १०।।

कुर्वन्ति येऽपकाराणि कथं तान् सहते जनः।
तेषु रागश्च विद्वेषः कथं वा न भवेत्तयोः''॥ ११॥

विकारों से युक्त होकर जिस प्रकार मनुष्य दूसरे मनुष्य का अहित करते हैं, उन्हें दूसरे मनुष्य कैसे सह लेते हैं? उनका इन विकारों में राग या विद्वेष किस प्रकार नहीं होता? यह भी बताइये।। ११।।

पार्वती— ''अपकारः कृतः कस्य तदेवाशु विचारयेत्।
विचार्यमाणे तस्मिंश्च द्वेष एव न जायते॥ १२॥

श्रीपार्वती— ''हमने किसका अपकार किया है? इसी पर तत्काल विचार करना चाहिये। ऐसा विचार करने पर उसमें द्वेष नहीं हो पाता।। १२।।

पञ्चभूतात्मको देहो मुक्तो जीवो यतः स्वयम्।
वह्निना दह्यते वापि शिवाद्यैर्भक्षितोऽपि वा॥ १३॥

यह देह तो पञ्चभूतात्मक है। आत्मा इनसे अतिरिक्त है। वह देह या तो अग्नि द्वारा दग्ध हो जाता है या उसे गीदड़ आदि पशु खा जाते हैं।। १३।।

तथापि यो विजानाति कोऽपकारोऽस्ति तस्य वै।
आत्मा शुद्धः स्वयम्पूर्णः सच्चिदानन्दविग्रहः॥ १४॥

तो भी इस बात को जो जानता है, उसका अपकार क्या होगा! क्योंकि आत्मा तो शुद्ध है, स्वयं में पूर्ण है तथा सत् चित् आनन्द विग्रह वाला होता है।। १४।।

न जायते न म्रियते निर्लेपो न च दुःखभाक्।
विच्छिद्यमाने देहेऽपि नापकारोऽस्य जायते॥ १५॥

वह (आत्मा) न पैदा होता है, न मरता है। वह तो निर्लेप है। न उसे कोई दुःख होता है न सुख। यहाँ तक कि इस देह के नष्ट हो जाने पर भी उसका कोई अपकार नहीं होता।। १५।।

यथा गेहान्तरस्थस्य नभसः क्वापि लक्ष्यते।
गृहेषु दह्यमानेषु गिरिराज! तथैव हि॥ १६॥
हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतः।
तावुभौ भ्रान्तहृदयौ नायं हन्ति न हन्यते॥ १७॥

हे गिरिराज! जैसे घर के जल जाने पर उसके अन्तःपाती आकाश का दाह नहीं होता, उसी तरह मारने वाला यदि यह सोचता है कि मैंने इसको मार दिया, या फिर मरने वाला सोचे कि मुझको इसने मारा तो ये दोनों ही भ्रान्त हैं। वस्तुतः न कोई मरता है, न मारता है।। १७।।

स्वस्वरूपं विदित्वैवं द्वेषं त्यक्त्वा सुखी भवेत्।
द्वेषमूलो मनस्तापो द्वेषः संसारकारणम्॥ १८॥
मोक्षविघ्नकरो द्वेषस्तं यत्नात् परिवर्जयेत्''॥ १९॥

इस तरह साधक अपनी वास्तविकता पहचान कर सांसारिक द्वेष को त्यागकर सुखी रहता है। यहाँ तक यह द्वेष ही मोक्ष में विघ्नकारक है। अतः मुमुक्षु को यत्नपूर्वक इसका परित्याग करना चाहिये''।। १८-१९।।

हिमालय०— ''देहस्यापि न चेद् देवि न जीवस्य परात्मनः।
नापकारोऽत्र विद्येत नैतौ दुःखस्य भागिनौ।
तत्कस्य जायते दुःखं यत्साक्षादनुभूयते?॥ २०॥

हिमवान्— ''हे देवि! यदि देह या परात्मा जीव— दोनों को ही यह

अपकार नहीं लगता, तो ये दोनों दुःख के भागी नहीं हुए, फिर इस दुःख का भोक्ता कौन है? जब कि हमें व्यवहार में इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है।। २०।।

अन्यो वा कोऽस्ति देहेऽस्मिन् दुःखभोक्ता महेश्वरि!।
एतन्मे ब्रूहि तत्त्वेन मयि ते यद्यनुग्रहः"॥ २१ ॥

हे महेश्वरि! क्या इन दोनों के अतिरिक्त इस देह में कोई अन्य है, जो इस दुःख का भोक्ता है? यदि आप का मुझ पर अनुग्रह है तो इस बात को मुझे आप स्पष्ट बताइये।। २१।।

श्रीपार्वती— **"नैव दुःखं हि देहस्य नात्मनोऽपि परात्मनः।**
तथापि जीवो निर्लेपो मोहितो मम मायया॥ २२ ॥
सुख्यहं दुःख्यहं चैव स्वयमेवाभिमन्यते।
अनाद्यविद्या सा माया जगन्मोहनकारिणी॥ २३ ॥

पार्वती— "वस्तुतः यह दुःख न तो देह को होता है, न परात्मा को ही। परन्तु यह जीव निर्लेप होता हुआ भी मेरी माया से मुग्ध होकर, 'मैं सुखी हूँ', 'मैं दुःखी हूँ'— ऐसा स्वयं ही अभिमान करता है। यह मायारूप अविद्या अनादिकाल से जगत् को मुग्ध करती आ रही है।। २२-२३।।

जातमात्रं हि सम्बद्धस्तया सञ्जायते पितः!
संसारी जायते तेन रागद्वेषादिसंकुलः॥ २४॥

हे पिताजी! यह प्राणी संसार में जन्म लेते ही उस माया से सम्पृक्त हो जाता है और उसे, उसी माया के माध्यम से, राग द्वेष आदि सताने लगते हैं।। २४।।

आत्मा स्वलिङ्गं तु मनः परिगृह्य महामते!
निलीना वासना यत्र संसारे वर्ततेऽवशः॥ २५॥

हे महामते! यह आत्मा स्वकीय लिङ्गभूत मन को ग्रहण कर लेता है, जहाँ रहती हुई वासना प्राणी को संसार में विवश होकर घुमाती रहती है।। २५।।

विशुद्धः स्फटिको यद्वद्रक्तपुष्पसमीपतः।
तत्तद्वर्णयुतो भाति वस्तुतो नास्ति रञ्जनम्।
बुद्धीन्द्रियादिसामीप्यादात्मनोऽपि तथा गतिः॥ २६॥

(इसी बात को एक उदाहरण से यों समझिये—) जैसे स्फटिक विशुद्ध (स्वच्छ=श्वेत) होता है, परन्तु वही किसी रक्त पुष्प के पास रख दिया

जाय तो वह रक्त वर्ण का दिखायी देने लगता है। वस्तुतः राग नाम की कोई चीज वहाँ नहीं है। बुद्धि, इन्द्रिय आदि की समीपता से आत्मा की भी यही स्थिति हो जाती है।। २६।।

मनो बुद्धिरहङ्कारो जीवस्य सहकारिणः।
स्वकर्मवशतस्तात! फलभोक्तार एव ते॥ २७॥

इस कार्य में देह में रहने वाले मन, बुद्धि एवं अहङ्कार इस जीव के सहकारी हैं।। २७।।

सर्वं वैषयिकं तात! सुखं वा दुःखमेव वा।
त एव भुञ्जते, नात्मा निर्लेपः प्रभुरव्ययः॥ २८॥
सृष्टिकाले पुनः पूर्ववासनावासितैः सह।
जायते जीव एवं हि वसत्याभूतसम्प्लवम्॥ २९॥

हे तात! स्वकर्मवश ये ही सब फल के भोक्ता बनते हैं। हे तात! यहाँ सभी सुख या दुःख विषय से सम्बद्ध हैं। वे देह आदि ही कृतकर्म का फल भोगते हैं; आत्मा नहीं; क्योंकि आत्मा तो निर्लेप, अविनाशी एवं स्वतन्त्र है। सृष्टिकाल में वह पुनः पूर्वजन्म की वासनाओं से सम्पृक्त होकर ये देहादि जन्म लेते हैं। जीव उनमें अन्ततक रहता है। यों समग्र प्राणियों में यह कर्म का चक्र चलता रहता है।। २८-२९।।

ततो ज्ञानविचारेण त्यक्त्वा मोहं विचक्षणः।
सुखी भवेन्महाराज! इष्टानिष्टोपपत्तिषु॥ ३०॥
देहमूलो मनस्तापो देहः संसारकारणम्।
देहः कर्मसमुत्पन्नः कर्म च द्विविधं मतम्॥ ३१॥
पापं पुण्यं च राजेन्द्र! तयोरंशानुसारतः।
देहिनः सुखदुःखं स्यादलङ्घ्यं दिनरात्रिवत्॥ ३२॥

अतः, इस ज्ञानविचार द्वारा बुद्धिमान् प्राणी को संसार का मोह त्याग देना चाहिये। हे महाराज! इष्ट अनिष्ट—दोनों ही स्थितियाँ आने पर मनुष्य को सुखी रहना चाहिये; क्योंकि यह मनस्ताप देह तक सीमित है और यह देह ही संसार (जन्म-मरण) का कारण है। हे राजेन्द्र! प्राणियों का देह कर्म से उत्पन्न होता है और यह कर्म पाप और पुण्य भेद से दो प्रकार का है। इन दोनों (पाप-पुण्यों) के भाग के अनुसार देही को सुख-दुःख होते रहते हैं। ये दिन एवं रात्रि की तरह निरन्तर आते रहते हैं।। ३०-३२।।

स्वर्गादिकामः कृत्वापि पुण्यं कर्म विधानतः।
प्राप्य स्वर्गं पतत्याशु भूयः कर्म प्रचोदितम्॥ ३३॥

इनमें, स्वर्गादि की कामना करता हुआ साधक विधिपूर्वक पुण्यकर्म कर स्वर्ग को प्राप्त करके, उस कर्मफल के क्षीण होने पर वह स्वर्ग से च्युत हो जाता है।। ३३ ।।

तस्मात् सत्संयमं कृत्वा विद्याभ्यासपरायणः।
विमुक्तसङ्गः परमं सुखमिच्छेद्विचक्षणः'' ॥ ३४॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे ब्रह्मविद्योपदेशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अतः बुद्धिमान् पुरुष को संयमपूर्वक, विद्याभ्यास करते हुए, सङ्ग (वासना) त्यागकर परमसुख (मोक्ष) की ही इच्छा करनी चाहिये'' ।। ३४ ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'ब्रह्मविद्योपदेशवर्णन' नामक
सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥

सत्तरहवाँ अध्याय

[ब्रह्मयोगोपदेशवर्णन]

हिमालय॰— "दुःखस्य कारणं देहः पञ्चभूतात्मकः शिवे!
यतस्तद्विरहाद्देही न दुःखैः परिभूयते ॥ १ ॥
सोऽयं सञ्जायते मातः कथं देहो महेश्वरि!
तं प्राप्य सुकृतान् कामान् कृत्वा स्वर्गमवाप्स्यति ॥ २ ॥

हिमालय— "हे शिवे! यदि दुःख का कारण यह पञ्चभूतात्मक देह है; अतः यह देही (आत्मा) उस देह के न रहने पर किसी प्रकार के दुःखों से त्रस्त नहीं होता। हे माता महेश्वरि! इस देह की रचना कैसे होती है कि जिसको प्राप्त कर सुकृत कर्म करता हुआ देही स्वर्ग प्राप्त करता है? ।। १-२ ।।

क्षीणपुण्यः कथं जीवो जायते च पुनर्भुवि।
तद् ब्रूहि विस्तरेणाशु यदि ते मय्यनुग्रहः" ॥ ३ ॥

फिर पुण्यों के क्षीण होने पर वह जीव पुनः मर्त्यलोक में आकर क्यों कैसे जन्म लेता है?— यह सब मुझे विस्तार से बताइये? यदि आप का मुझ पर अनुग्रह है" ।। ३ ।।

पाञ्चभौतिक देह

श्रीपार्वती॰— "क्षितिर्जलं तथा तेजो वायुराकाश एव च।
एतैः पञ्चभिराबद्धो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ॥ ४ ॥
प्रधानं पृथिवी तत्र शेषाणां सहकारिता।
उक्तश्चतुर्विधः सोऽयं गिरिराज निबोध मे ॥ ५ ॥

श्रीपार्वती— "पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश— इन पाँचों भूतों से बन्धा हुआ यह देह "पाञ्चभौतिक' कहलाता है ।। ४ ।।

इनमें पृथ्वी प्रधान है, अवशिष्ट चार भूत उसके सहकारी हैं। हे गिरिराज! यह देह चार प्रकार का कहलाता है, उसे मुझ से सुनो! ।। ५ ।।

देह के चार भेद

अण्डजाः स्वेदजाश्चैवोद्भिज्जाश्चैव जरायुजाः।
अण्डजाः पक्षिसर्पाद्याः स्वेदजा मशकादयः ॥ ६ ॥

१. अण्डज, २. स्वेदज, ३. उद्भिज्ज एवं ४. जरायुज! इनमें 'अण्डज' देह पक्षी एवं सर्प आदि कहलाते हैं। 'स्वेदज' मच्छर आदि कहलाते हैं।। ६।।

वृक्षगुल्मप्रभृतयश्चोद्भिज्जा हि विचेतनाः।
जरायुजा महाराज मानुषाः पशवस्तथा॥ ७॥

वृक्ष, झाड़ी आदि 'उद्भिज्ज' कहलाते हैं जो अचेतन होते हैं। और महाराज! मनुष्य एवं पशु 'जरायुज' कहलाते हैं।। ७।।

शुक्रशोणितसम्भूतो देहो ज्ञेयो जरायुजः।
भूयः स त्रिविधो ज्ञेयः पुंस्त्रीक्लीबविभेदतः॥ ८॥

वीर्य एवं रक्त से उद्भूत देह 'जरायुज' कहलाता है। फिर यही देह स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक भेद से भी त्रिविध कहलाता है।। ८।।

देह के तीन भेद

शुक्राधिक्येन पुरुषो भवेत् पृथ्वीधराधिप!
रक्ताधिक्ये भवेन्नारी तयोः साम्ये नपुंसकम्॥ ९॥

हे पर्वतराज! यह शुक्र की अधिकता से 'पुरुष' कहलाता है, रक्त की अधिकता से 'स्त्री' तथा इन दोनों (रक्त एवं वीर्य) की समानता से 'नपुंसक' कहलाता है।। ९।।

देहोत्पत्तिक्रम

स्कर्मवशतो जीवो नीहारकलया युतः।
पतित्वा धरणीपृष्ठे व्रीहिमध्यगतो भवेत्॥ १०॥

स्वकर्म के वशीभूत यह जीव निष्कासन-पद्धति से इस भूतल पर आकर व्रीहि (धान=खाद्य) के मध्य पहुँचता है।। १०।।

स्थित्वा तत्र चिरं भुक्त्वा भुज्यते पुरुषैस्ततः।
ततः प्रविष्टं तद् गुह्यं पुंसो देहे प्रजायते।
रेतस्तेन स जीवोऽपि भवेद्रेतोगतस्तदा॥ ११॥
ततः स्त्रियाऽभियोगेन ऋतुकाले महामते!।
रेतसा सहितः सोऽपि मातृगर्भं प्रयाति हि॥ १२॥

वहाँ चिर काल तक ठहर कर वह मनुष्यों द्वारा खाया जाता है, वह वहाँ पुरुष की देह में कुछ समय गुप्त रहता है। फिर वहाँ वह वीर्य बन जाता है। महामते! उससे वह जीव भी उस वीर्य के साथ मिल जाता है। तब

ऋतुकाल में पुरुष का स्त्री से संयोग होने पर वीर्य के साथ वह जीव भी माता के गर्भ में चला जाता है।।। ११–१२।।

ऋतुस्नाता भवेन्नारी चतुर्थेऽहनि तद्दिनात्।
आषोडशदिनाद्राजन् ऋतुकाल उदाहृतः॥ १३॥
अयुग्मदिवसे नारी जायते पर्वतर्षभ!॥ १४॥
जायते च पुमांस्तत्र युग्मके दिवसे पितः॥ १५॥

ऋतुकाल— जब माता चौथे दिन ऋतुस्नान करती है उस दिन से सोलहवें दिन तक का समय हे राजन! 'ऋतुकाल' कहलाता है। इसमें १–५–७ आदि अयुग्म दिनों में गर्भ ठहरने पर नारी का जन्म होता है, तथा हे पिता! २, ४, ६ आदि युगल दिनों में गर्भ ठहरने पर 'पुरुष' की उत्पत्ति होती है।। १३–१५।।

ऋतुस्नाता तु कामार्ता मुखं यस्य समीक्षते।
तदाकृतिः सन्ततिः स्यात्तत्पश्येद्भर्तुराननम्॥ १६॥
तद्रेतो योनिरक्तेन युक्तं भूत्वा महामते।
दिनेनैकेन कललं जरायुपरिवेष्टितम्।
भूत्वा पञ्चदिनैरेव बुद्बुदाकारतामियात्॥ १७॥

ऋतुस्नान के बाद कामार्ता नारी जिस पुरुष का मुख सर्वप्रथम देखती है। उसी की आकृति के समान उसके सन्तान उत्पन्न होती है। अतः पतिव्रता नारी को ऐसे समय में अपने पति का ही मुख देखना चाहिये। हे महामति! (पति) का वीर्य नारी के रक्त (रज) से मिलकर एक ही दिन में कलल (गर्भ) रूप में जरायु के वेष्टित हो जाता है। और आगे पाँच दिन बाद ही वह बुलबुले की आकृति धारण कर लेता है।। १६–१७।।

या तु चर्माकृतिः सूक्ष्मा जरायुः सा निगद्यते।
शुक्रशोणितयोर्योगस्तस्मिन् सञ्जायते यतः॥ १८॥

उसके ऊपर जो पतली चर्म (झिल्ली) वेष्टित हो जाती है वही 'जरायु' कहलाती है; क्योंकि उसमें शुक्र एवं रज का योग हो जाता है।। १८।।

तत्र गर्भो भवेद्यस्मात्तेन प्रोक्तो जरायुजः।
ततस्तत् सप्तरात्रेण मांसपेशीत्वमाप्नुयात्॥ १९॥

वहाँ जो गर्भ रहता है वह 'जरायुज' कहलाता है। फिर वह सात रात्रियों में मांसपेशियों का रूप धारण कर लेता है।। १९।।

पक्षमात्रेण सा पेशी तच्छोणितपरिप्लुता।
ततश्चाङ्कुर उत्पन्नः पञ्चविंशतिरात्रिषु॥ २०॥

एक पक्ष (१५ दिन) आते आते वे मांसपेशियाँ रक्त से परिप्लुत हो जाती हैं। उसके बाद पचीस रात्रियों में उसमें अङ्कुर उत्पन्न हो जाता है।।२०।।

स्कन्धो ग्रीवा शिरःपृष्ठोदराणि च महामते!
पञ्चधाङ्गानि जायन्ते एवं मासेन च क्रमात्॥ २१॥

हे महामते! एक मास बाद क्रमशः उसमें स्कन्ध, ग्रीवा, शिर, पीठ, उदर—यों पाँच प्रकार से अङ्ग दिखायी देने लगते हैं।। २१।।

द्वितीये मासि जायन्ते पाणिपादादयस्तथा।
अङ्गानां सन्धयः सर्वे तृतीये सम्भवन्ति हि॥ २२॥

दूसरे मास में उसमें हाथ पैर के आकर बन जाते हैं। और तीसरे मास में उन अङ्गों की सन्धियाँ बन जाती हैं।। २२।।

अङ्गुल्यश्चापि जायन्ते चतुर्थे मासि सर्वतः।
अभिव्यक्तिश्च जीवस्य तस्मिन्नेव हि जायते॥ २३॥

चौथे महीने में उन हाथ—पैरों में सब तरफ अंगुलियाँ भी उद्भूत हो जाती हैं। उसी समय, उस गर्भ में जीव की अभिव्यक्ति भी होने लगती है।। २३।।

ततश्चलति गर्भोऽपि जनन्या जठरे स्थितः।
श्रोत्रे नेत्रे तथा नासा जायन्ते मासि पञ्चमे॥ २४॥

और वह गर्भ माता के पेट में इधर उधर हिलने—डुलने लगता है। तथा कान, आँख, नाक भी पाँचवें महीने में प्रकट होने लगते हैं।। २४।।

तथैव च मुखं श्रोणिर्गुह्यं तस्मिन् प्रजायते।
पायुर्मेढ्रमुपस्थं च कर्णच्छिद्रद्वयं तथा॥ २५॥

उसी समय मुख, कटि एवं लिङ्ग भी उद्भूत हो जाते हैं। इसी तरह गुदा, शिश्न, योनि, दोनों कानों में छिद्र भी प्रकट हो जाते हैं।। २५।।

तथैव मासि षष्ठे तु नाभिश्चापि भवेन्नृणाम्।
सप्तमे केशरोमाद्या जायन्ते च तथाष्टमे॥ २६॥
विभक्तावयवत्वं च जायते गर्भमध्यतः।
विहाय श्मश्रुदन्तादीन् जन्मान्तरसमुद्भवात्॥ २७॥

छठे मास में पुरुषों को नाभि उत्पन्न हो जाती है। सातवें मास में नाल तथा रोम और आठवें मास में सभी अङ्ग पृथक् पृथक् दिखायी देने लगते हैं।

अब दूसरे जन्म से पैदा हुए गर्भ में यही अन्तर रहता है कि उसे केवल दाढ़ी मूँछ एवं दाँत नहीं आते।। २६–२७।।

समस्तावयवा एवं जायन्ते क्रमतः पितः!
नवमे मासि जीवस्तु चैतन्यं सर्वशो लभेत्॥ २८॥

हे पिता! यों इस गर्भ के क्रमशः सभी अङ्ग प्रत्यङ्ग दिखायी देने लगते हैं। नवम मास में तो इस गर्भ में जीव भी स्थायी रूप से रहने लगता है जिससे यह गर्भ चेतन हो जाता है।। २८।।

गर्भस्थिति में पश्चात्ताप

मातृभुक्तानुसारेण वर्धते जठरे स्थितः।
प्राप्य वै यातनां घोरां खिद्यते च स्वकर्मतः॥ २९॥

वह गर्भ माता के भोजन के अनुसार माता के पेट में बढ़ता रहता है। परन्तु वह वहाँ भयङ्कर यातना सहता है, और पूर्वकृत कर्मों पर खेद प्रकाश करता रहता है।। २९।।

स्मृत्वा प्राक्तनदेहोत्थकर्माणि बहुदुःखतः।
मनसा वचनं ब्रूते विचार्य स्वयमेव हि॥ ३०॥

उस समय, पूर्वजन्म के देह से कृतकर्मों को अत्यधिक दुःख के साथ स्मरण कर वह स्वयं ही मानसिक रूप से विचार करता है—।। ३०।।

''एवं दुःखमनुप्राप्य भूयो जन्म लभेत्क्षितौ।
अन्यायेनार्जितं वित्तं कुटुम्बभरणं कृतम्॥ ३१॥

''नौ मास तक ऐसा दुःख प्राप्त करने के बाद भी इस मर्त्यलोक में जन्म लेकर मैंने केवल अन्याय से धन कमाया, तथा उससे कुटुम्बमात्र का पालन किया।। ३१।।

नाराधिता भगवती दुर्गा दुर्गतिहारिणी।
यद्यस्मान्निष्कृतिर्मे स्याद्गर्भदुःखात्तदा पुनः॥ ३२॥
विषयान्नानुसेविष्ये विना दुर्गां महेश्वरीम्।
नित्यं तामेव भक्त्याहं पूजये यतमानसः॥ ३३॥

इस लम्बे अन्तराल में मैंने दुर्गविनाशिनि को भगवती दुर्गा की आराधना की। परन्तु यदि अब इस गर्भ दुःख से छुटकारा मिल जाय तो फिर मैं सांसारिक विषयभोगों का सेवन माँ दुर्गा भगवती की आज्ञा के विना कभी नहीं करूँगा। अब तो निरन्तर भक्तिपूर्वक निगृहीत मन से उन्हीं भगवती की आराधना करूँगा।। ३२–३३।।

वृथा पुत्रकलत्रादिवासनावशतोऽसकृत्।
निविष्टसंसारमनाः कृतवानात्मनोऽहितम्॥ ३४॥

मैंने स्त्री–पुत्रादि की वासना में फँस कर बार बार सांसारिक भोग-विलास में ही मन लगाये रखा। यों मैंने अपना अहित ही किया।। ३४।।

तस्येदानीं फलं भुञ्जे गर्भदुःखं दुरासदम्।
तत्र भूयः करिष्यामि वृथा संसारसेवनम्''॥ ३५॥

यों, ऐसी दुःसह गर्भयातना सहकर उसका मैं फल भोग रहा हूँ। अब मैं ऐसी पापकर्ममय संसार की वासना में नहीं फसूँगा''।। ३५।।

इत्येवं बहुधा दुःखमनुभूय स्वकर्मतः।
अस्थियन्त्रविनिष्पिष्टो निर्याति योनिवर्त्मना॥ ३६॥

इस तरह स्वकर्मानुसार बहुत सा दुःख भोगकर वह गर्भस्थ अस्थियन्त्र में पिसता हुआ योनिमार्ग से निकलता है।। ३६।।

सूतिवातवशाद् घोरनरकादिव पातकी।
मेदोऽसृक्प्लुतसर्वाङ्गो जरायुपरिवेष्टितः॥ ३७॥
ततो मन्मायया मुग्धस्तानि दुःखानि विस्मृतः।
अकिञ्चित्करतां प्राप्य मांसपिण्ड इव स्थितः॥ ३८॥

वह पापी प्रसूतिजन्य वायु के कारण घोर नरक की तरह मेद, रक्त, से सब तरफ लिपटे और जरायु से घिरे हुए। मेरी माया से सम्मुग्ध होकर उन दुःखों को भूलता हुआ किङ्कर्तव्यविमूढ़ होकर मांसपिण्ड की तरह पड़ा रहता है।। ३७–३८।।

सुषुम्ना पिहिता नाडी श्लेष्मणा यावदेव हि।
तावद्वक्तुं न शक्नोति सुव्यक्तवचनं त्वसौ॥ ३९॥
न गन्तुमपि शक्नोति बन्धुभिः परिरक्ष्यते।
श्वमार्जारादिदंष्ट्रिभ्यो दृप्तः कालवशात्ततः॥ ४०॥

जब तक सुषुम्ना नाड़ी कफ से ढकी हुई रहती है तब तक वह स्पष्ट ध्वनि में न कुछ बोल पाता है, न अपने आप चल फिर सकता है। उस समय कुत्ते, बिल्ली आदि दांत वाले पशुओं से उसकी रक्षा उसके परिवार वाले ही करते हैं।। ३९–४०।।

यथेष्टं भाषते वाक्यं गच्छत्यपि सुदूरतः।
ततश्च यौवनोद्रिक्तः कामक्रोधादिसंयुतः॥ ४१॥

जब वह क्रमशः सुव्यक्तवाणी बोलने लगता है, दूर दूर तक चलने

लगता है, तब वह यौवन में उन्मत्त होकर काम क्रोध आदि दुर्गुणों से युक्त होने लगता है।। ४१।।

कुरुते विविधं कर्म पापपुण्यात्मकं पितः!
कुरुते कर्मतन्त्राणि देहभोगार्थमेव हि॥ ४२॥

हे पिता! तब वह पाप–पुण्यमिश्रित विविध कर्म करने लगता है। तथा साथ ही देह की रक्षा तथा भोग हेतु भी नाना प्रकार के स्वच्छन्द कर्म करने लगता है।। ४२।।

स देहः पुरुषाद्भिन्नः पुरुषः किं समश्नुते।
प्रतिक्षणं क्षरत्यायुश्चलत्पर्णस्थतोयवत्॥ ४३॥

वह देह उस पुरुष (जीव) से भिन्न है। पुरुष क्या भोग करेगा! उसकी आयु धीरे धीरे उसी तरह क्षीण होने लगती है जैसे हिलते हुए पत्ते पर स्थित जल नीचे गिरने लगता है।। ४३।।

स्वप्नोपमं महाराज सर्वं वैषयिकं सुखम्।
तथापि न भवेद्धानिरभिमानस्य देहिनाम्॥ ४४॥

हे महाराज! ये समस्त सांसारिक सुख स्वप्न में प्राप्त सुख के समान हैं। तो भी प्राणी अपने वृथाभिमान का त्याग नहीं कर पाते।। ४४।।

न चैतद्वीक्षते देही मोहितो मम मायया।
वीक्षते केवलान्भोगाँस्तत्र शाश्वतिकानिव॥ ४५॥

यह प्राणी मेरी माया से मुग्ध होकर अपनी क्षणभङ्गुरता को नहीं स्मरण रखता, केवल विषयभोगों को ही अविनाशी समझता है।। ४५।।

अकस्माद् ग्रसते कालः पूर्णे चायुषि भूधर!
यथा व्यालोऽन्तिके प्राप्तं मण्डूकं ग्रसते क्षणात्॥ ४६॥

हे पर्वतराज! जैसे कोई सर्प समीप आये मेंढक को तत्काल खा जाता है उसी तरह मृत्यु भी, इस देही की आयु पूर्ण होने पर, इसे ग्रस लेती है।। ४६।।

"हा हन्त जन्मैतदपि विफलं यातमेव हि।
एवं जन्मान्तरमपि विफलं जायते तथा॥ ४७॥

"बहुत खेद की बात है कि मेरा यह जन्म भी निरर्थक ही चला गया। इसी तरह, हो सकता है, आगामी जन्म भी निरर्थक ही चला जाय"।। ४७।।

निष्कृतिर्विद्यते नैव विषयाननुसेविनाम्।
तस्मादात्मविचारेण त्यक्त्वा वैषयिकं सुखम्।

शाश्वतैश्वर्यमन्विच्छन्मदर्चनपरो भवेत्॥ ४८॥
तदैव जायते भक्तिरियं ब्रह्मणि निश्चला॥ ४९॥

सांसारिक विषयभोगों का सेवन करनेवालों को दुःख से किसी भी तरह छुटकारा नहीं मिल सकता। अतः साधक आत्मचिन्तन द्वारा विषय जन्य सुख से दूर रहकर शाश्वत सुख की कामना करता हुआ मेरी पूजा–अर्चना में ही निरन्तर ध्यान लगावे, तभी उसकी ब्रह्म में निश्चल भक्ति हो पायगी।। ४८–४९।।

देहादिभ्यः पृथक्त्वेन निश्चित्यात्मानमात्मना।
देहादिममतां मिथ्याज्ञानजां परिसन्त्यजेत्॥ ५०॥

अतः विवेकी देहादि से अपने को पृथक् समझकर मिथ्यादृष्टिजन्य देहादि की ममता को अपने से दूर हटा दे।। ५०।।

पितस्त्वं यदि संसारदुःखान्निर्वृत्तिमिच्छसि।
तदाराधय मां भक्त्या ब्रह्मरूपां समाहितः''॥ ५१॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे ब्रह्मयोगोपदेशवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

हे पिता! आप यदि इस भव–बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं, तो मुझ ब्रह्मरूपिणी आद्या शक्ति की, समाहित चित्त से भक्तिपूर्वक, आराधना कीजिये''।। ५१।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'ब्रह्मयोगोपदेशवर्णन' नामक
सत्तरहवाँ अध्याय समाप्त॥

अट्ठारहवाँ अध्याय

[मोक्षयोगोपदेशवर्णन]

(श्रीपार्वतीगीता)

हिमालय०— ''अनाश्रितानां त्वां देवि मुक्तिश्चैनैव विद्यते।
कथं समाश्रयेत्त्वां तत्कृपया ब्रूहि मे तदा॥ १॥

हिमालय— ''हे देवि! जब आपके चरणारविन्दों का आश्रय ग्रहण न करने वालों की मुक्ति नहीं होती तो वह आश्रय कैसे ग्रहण करें?— कृपया इस विषय में विस्तार से बताइये।। १।।

सन्ध्येयं कीदृशं रूपं मातस्तव मुमुक्षुभिः।
त्वयि भक्तिः पराः कार्या देहबन्धविमुक्तये''॥ २॥

हे माता! आपके कौन से रूप का मुमुक्षुओं को ध्यान करना चाहिये? तथा भवबन्धन से मुक्त होने के लिये उन्हें आपकी पराभक्ति किस विधि से करनी चाहिये?''।। २।।

श्रीपार्वती०— ''मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये[1]।
तेषामपि सहस्त्रेषु कोऽपि मां वेत्ति तत्त्वतः॥ ३॥

श्रीपार्वती— ''हजारों मनुष्यों में कोई एक ही मनुष्य सिद्धि प्राप्ति के लिये प्रयास करता है। और उन प्रयास करनेवालों में से कोई कोई ही मुझको यथार्थ रूप से जान पाता है।। ३।।

रूपं मे निष्कलं सूक्ष्मं वाचातीतं सुनिर्मलम्।
निर्गुणं परमं ज्योतिः सर्वव्याप्यैककारणम्॥ ४॥

मेरा रूप अखण्ड है, सूक्ष्म है, वाणी से अवर्णनीय है, निर्मल है, निर्गुण है, परम ज्योतिर्मय है, सर्वव्यापी है तथा एककारण है।। ४।।

निर्विकल्पं निरालम्बं सच्चिदानन्दविग्रहम्।
ध्येयं मुमुक्षुभिस्तात! देहबन्धविमुक्तये॥ ५॥

यह निर्विकल्प है, निराधार है, सत् चित् आनन्द विग्रहवाला है। हे तात! मुमुक्षु साधकों को भवबन्धन से मुक्त होने के लिये इसी का ध्यान करना चाहिये।। ५।।

---

१. तु०— श्रीमद्भगवद्गीता, सप्तम अध्याय, तृतीय श्लोक।

अहं मतिमतां तात! सुमतिः पर्वताधिप!
पृथिव्यां पुण्यगन्धोऽहं रसोऽप्सु शशिनः प्रभा ॥ ६ ॥

हे पर्वतराज, हे तात! मैं बुद्धिमानों में स्थित बुद्धि हूँ। मैं ही पृथिवी में स्थित पुण्य गन्ध हूँ। जल में मैं रस-रूप हूँ। चन्द्रमा की श्रेष्ठ कान्ति भी मैं ही हूँ।। ६ ।।

तपस्विनां तपश्चास्मि तेजश्चास्मि विभावसोः।
कामरागादिरहितं बलिनां बलमप्यहम् ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ तपस्वियों में मैं तप हूँ। सूर्य में मैं तेज हूँ। बलवानों में मैं काम–रागादिरहित बल हूँ।। ७ ।।

सर्वकर्मसु राजेन्द्र कर्म पुण्यात्मकं तथा।
छन्दसामस्मि गायत्री बीजानां प्रणवोऽस्म्यहम् ॥ ८ ॥

हे राजेन्द्र! सभी कर्मों में मैं श्रेष्ठ पुण्यकर्म हूँ। वेद में मुझे गायत्री समझो। सभी मन्त्रबीजों में मुझे ॐ (ह्रीं) यह प्रणव अक्षर समझो ।। ८ ।।

धर्माविरुद्धः कामोऽस्मि सर्वभूतेषु भूधर!
एवमन्येऽपि ये भावाः सात्त्विका राजसास्तथा ॥ ९ ॥

हे पर्वतराज! मैं सभी प्राणियों में धर्मसम्मत काम हूँ। इस तरह अन्य जो भी सात्त्विक या राजस भाव हैं उन सबको मुझसे समझो ।। ९ ।।

तामसा मत्त उत्पन्ना मदधीनाश्च ते मयि।
नाहं तेषामधीनास्मि कदाचित्पर्वतर्षभ! ॥ १० ॥

हे पर्वतश्रेष्ठ! तामस भाव भी मुझ से ही उत्पन्न हुए हैं। वे मेरे अधीन रहकर मुझमें स्थित हैं, मैं उनके अधीन नहीं हूँ।। १० ।।

एवं सर्वगतं रूपमद्वैतं परमव्ययम्।
न जानन्ति महाराज मोहिता मम मायया ॥ ११ ॥

हे महाराज! सर्वव्यापी मेरे इस रूप को, जो कि अद्वैत है, अविनाशी है; साधारणजन, मेरी माया से सम्मुग्ध होने के कारण, समझ नहीं पाते ।। ११ ।।

ये भजन्ति च मां भक्त्या मायामेतां तरन्ति ते।
ममैश्वर्यं न जानन्ति ऋगाद्याः श्रुतयः परम् ॥ १२ ॥

जो पुरुष भक्तिपूर्वक मेरी आराधना करते हैं वे इस मेरी माया से मुक्त हो जाते हैं। ऋक् आदि चारों वेदों में भी मेरा वास्तविक माहात्म्य वर्णित नहीं हो पाया है।। १२ ।।

सृष्ट्यर्थमात्मनो रूपं मयैव स्वेच्छया पितः!
कृतं द्विधा नगश्रेष्ठ स्त्री पुमानिति भेदतः ॥ १३ ॥

'हे पिता! सृष्टि-रचना में सुविधा के लिये मैंने ही अपने रूप को स्वेच्छा से दो भागों में विभक्त कर दिया है। हे पर्वतश्रेष्ठ! वे दो भेद स्त्री और पुरुष– ये हैं।। १३ ।।

शिवः प्रधानः पुरुषः शक्तिश्च परमा शिवा ॥ १४ ॥
शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म योगिनस्तत्त्वदर्शिनः ।
वदन्ति मां महाराज तत्त्वमेवं परात्परम् ॥ १५ ॥

उनमें प्रधान पुरुष शिव है, तथा शक्ति (प्रकृति) परम शिवा भगवती हैं। इसीलिए तत्त्वद्रष्टा योगिजन ब्रह्मतत्त्व को शिवशक्तिस्वरूप बताते हैं।यह तत्त्व पर से भी अधिक पर है।। १४–१५।।

सृजामि ब्रह्मरूपेण जगदेतच्चराचरम् ।
संहरामि महारुद्ररूपेणान्ते निजेच्छया ॥ १६ ॥
दुर्वृत्तशमनार्थाय विष्णुः परमपूरुषः ।
भूत्वा जगदिदं कृत्स्नं पालयामि महामते!
अवतीर्य क्षितौ भूयो भूयो रामादिरूपतः ॥ १७ ॥
निहत्य दानवान् पृथ्वीं पालयामि पुनः पुनः ।
रूपं शक्त्यात्मकं तात प्रधानं यच्च मे स्मृतम् ।
यतस्तया विना पुंसः कार्यं नेहात्मना स्थितम् ॥ १८ ॥

मैं इसी ब्रह्मरूप से इस समस्त चराचर जगत् की सृष्टि करती हूँ, और अन्त में महादेव रूप से स्वेच्छा से इसका संहार करती हूँ। तथा दुष्टों से जगत् की रक्षा के लिये परम पुरुष विष्णु बनकर महामते! इस (समग्र जगत्) का पालन करती हूँ। इसी हेतु मुझे इस जगत् में समय समय पर राम आदि केरूप में अवतार लेना पड़ता है। इस तरह दानवों को बार–बार मारकर मैं इस पृथ्वी की रक्षा करती रहती हूँ। हे तात! प्रधान रूप 'शक्ति' ही है, जिसका कि लोग स्मरण करते हैं। क्योंकि उस शक्ति के विना पुरुष से कोई कार्य सिद्ध नहीं हो पाता।। १६–१८।।

रूपाण्येतानि राजेन्द्र तथा काल्यादिकानि च ।
स्थूलानि विद्धि सूक्ष्मं च पूर्वमुक्तं तवानघ! ॥ १९ ॥

परन्तु इन काली आदि को मेरा स्थूल रूप समझो; क्योंकि मैंने अपने सूक्ष्म रूप का वर्णन तो तुम को पहले कर ही दिया था।। १९ ।।

अनभिज्ञाय रूपं तु स्थूलं पर्वतपुङ्गव!
अगम्यं सूक्ष्मरूपं मे यद्दृष्ट्वा मोक्षभाग् भवेत्॥ २०॥
तस्मात् स्थूलं हि मे रूपं मुमुक्षुः पूर्वमाश्रयेत्॥ २१॥

हे पर्वतराज! विना स्थूल रूप को जाने वह मेरा सूक्ष्मरूप अगम्य है। परन्तु यदि कोई उसे जान ले तो उसे मोक्ष प्राप्त होना निश्चित है। अतः मुमुक्षु पहले मेरे स्थूल रूप की ही आराधना करें।। २०–२१।।

क्रियायोगेन तान्येव समभ्यर्च्य विधानतः।
शनैरालोचयेत्सूक्ष्मं रूपं मे परमव्ययम्''॥ २२॥

शास्त्रोक्त क्रियाविधियों द्वारा पहले उन स्थूल रूपों की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर, धीरे–धीरे साधना में आगे बढ़ता हुआ साधक मेरे उस परम अविनाशी सूक्ष्म रूप का ध्यान प्रारम्भ करे''।। २२।।

हिमलाय०—''**मातुर्बहुविधं रूपं स्थूलं तव महेश्वरि!।**
तेषु किंरूपमाश्रित्य सहसा मोक्षभाग्भवेत्॥ २३॥

हिमालय— ''हे माता! महेश्वरी! आप के तो बहुत से स्थूल रूप हैं उनमें किस रूप का ग्रहण कर साधक मोक्ष की ओर बढ़ता है?।। २३।।

तन्मे ब्रूहि महादेवि यदि ते मय्यनुग्रहः।
संसारान्मोचय त्वं मां दासोऽस्मि भक्तवत्सले!''॥ २४॥

हे महेश्वरि! यदि आप का मुझ पर अनुग्रह है तो मुझे उस स्थूल रूप के विषय में विस्तार से बताइये? हे भक्तवत्सले! मैं आपका दास हूँ'' मुझे संसार से मुक्त करो।। २४।।

श्रीपार्वती०— ''**मया व्याप्तमिदं विश्वं स्थूलरूपेण भूधर!**
तत्राराध्यतमा देवीमूर्तिः शीघ्रं विमुक्तिदा॥ २५॥

श्रीपार्वती— ''हे पर्वतराज! यह समग्र विश्व स्थूल रूप से मेरे द्वारा व्याप्त है। वहाँ सर्वश्रेष्ठ आराध्य देवी की मूर्ति है जो शीघ्र ही मुक्ति प्रदान करने वाली है।। २५।।

सापि नानाविधा तत्र महाविद्या महामते!
विमुक्तिदा महाराज! तासां नामानि मे शृणु॥ २६॥

हे महामते! वह महाविद्या अनेक प्रकार की है। हे महाराज! मैं उनके नाम बता रहा हूँ, सुनो।। २६।।

महाकाली तथा तारा षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी बगला छिन्ना महात्रिपुरसुन्दरी॥ २७॥
धूमावती च मातङ्गी नृणां मोक्षफलप्रदा।
आसु कुर्वन् परां भक्तिं मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम्॥ २८॥

१. महाकाली, २. तारा, ३. षोडशी, ४. भुवनेश्वरी, ५. भैरवी, ६. बगला, ७. छिन्नमस्ता, ८. महात्रिपुरसुन्दरी, ९. धूमावती एवं १० मातङ्गी। ये सभी देवियाँ मनुष्यों को मोक्ष तक पहुँचाने वाली हैं। इनकी भक्ति (आराधना) करता हुआ कोई भी साधक निश्चय ही शीघ्र मोक्ष प्राप्त कर सकता है।। २७–२८।।

आसामन्यतमां तात क्रियायोगेन चाश्रय।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यसि निश्चितम्॥ २९॥

हे तात! इनमें से किसी एक का भी विधिपूर्वक आश्रय ग्रहण कर, मेरे में अपने मन तथा बुद्धि को लगा दे तो वह निश्चित रूप से मुझे प्राप्त कर लेगा।। २९।।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
न लभन्ते महात्मानः कदाचिदपि भूधर॥ ३०॥

हे पर्वतराज! मुझे प्राप्त कर फिर वह सदाशय मनुष्य इस दुःख के हेतुभूत, विनाशी जन्म–मरणपरम्परा को किसी भी दशा में प्राप्त नहीं करेगा।। ३०।।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं मुक्तिदा राजन् भक्तियुक्तस्य योगिनः॥ ३१॥

ऐसा मनुष्य, जो अन्यत्र अपना चित्त न लगाकर जो सतत रूप से मेरा ध्यान करने में लगा रहता है, हे राजन्! मैं उस भक्तियुक्त पुरुष को अवश्य ही मुक्ति प्रदान करती हूँ।। ३१।।

यस्तु संस्मृत्य मामन्ते प्राणं त्यजति भक्तितः।
सोऽपि संसारदुःखौघैर्बाध्यते न कदाचन॥ ३२॥

जो अन्तिम (मृत्यु) समय में भक्तिपूर्वक मुझको स्मरण करता हुआ अपने प्राणों का त्याग करता है वह इस संसार के दुःखों की बाढ़ से कभी भी कष्ट नहीं पाता।। ३२।।

अनन्यचेतसो ये मां भजन्ते भक्तिसंयुताः।
तेषां मुक्तिप्रदा नित्यमहमस्मि महामते!॥ ३३॥

जो भक्तिपूर्वक, अन्य देवी–देवताओं में अपना मन न लगाकर मेरी ही आराधना करते हैं, हे महामते! मैं उन्हें सदा के लिये मुक्ति प्रदान कर देती हूँ।। ३३ ।।

शक्त्यात्मकं हि मे रूपमनायासेन मुक्तिदम्।
समाश्रय महाराज! ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥ ३४॥

मेरा यह शक्ति का रूप अनायास ही मुक्ति प्रदान करने वाला है। हे महाराज! आप उसी का आश्रय ग्रहण करें। इसी के सहारे से आपको मुक्ति प्राप्त होगी।। ३४ ।।

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव राजेन्द्र! यजन्ते नात्र संशयः॥ ३५॥

जो अन्य देवताओं की भक्तिपूर्वक उपासना करने वाले पुरुष हैं, हे राजेन्द्र! वे भी वस्तुतः मेरी ही उपासना करते हैं।। ३५ ।।

अहं सर्वमयी यस्मात् सर्वयज्ञफलप्रदा।
किन्तु तेष्वेव ये भक्तास्तेषां मुक्तिः सुदुर्लभा॥ ३६॥

क्योंकि मैं सर्वत्र व्यापक (सर्वमयी) हूँ। मैं सभी यज्ञों का फल प्रदान करती हूँ। किन्तु उनमें भी जो मेरे भक्त हैं, मैं उनको वह सुदुर्लभ मुक्ति भी प्रदान कर देती हूँ।। ३६ ।।

ततो मामेव शरणं देहबन्धविमुक्तये।
याहि संयतचेतास्त्वं मामेष्यसि न संशयः॥ ३७॥

अतः तूँ इस भवबन्धन से मुक्ति पाने के लिये मेरी शरण में आ जा, तो निश्चय ही तूँ मुझे प्राप्त कर लेगा।। ३७ ।।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
सर्वं मदर्पणं कृत्वा मोक्ष्यसे कर्मबन्धनात्॥ ३८॥

तूँ जो कुछ भी करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, या जो कुछ दान करता है, वह सब मुझे अर्पित कर इस कर्मबन्धन से छुटकारा पा सकता है।। ३८ ।।

ये मां भजन्ति सद्भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।
न च मेऽस्ति प्रियः कश्चिदप्रियोऽपि महामते!॥ ३९॥

हे महामते! जो लोग सच्ची भक्ति से मेरा भजन करते हैं, मैं उनमें हूँ, तथा वे मुझमें हैं। वस्तुतः न कोई मुझे प्रिय है, न कोई अप्रिय।। ३९ ।।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तो मुच्यते भवबन्धनात्॥ ४०॥

भले ही कोई कितना ही दुराचरण करने वाला हो, परन्तु यदि वह अनन्य श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक मेरी आराधना करता है, वह भी सभी पापों से छुटकारा पाकर भवबन्धन से मुक्ति पा जाता है।। ४०।।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शनैस्तरति सोऽपि च।
मयि भक्तिमतां मुक्तिः सुलभा पर्वताधिप!॥ ४१॥

वह शीघ्र ही धर्माचरण करने लगता है, और धीरे धीरे इस संसार सागर को पार कर जाता है। हे पर्वतराज! मुझमें भक्ति रखने वालों का इस संसार से मुक्त होना बहुत ही सरल है।। ४१।।

ततस्त्वं परया भक्त्या मां भजस्व महामते!
अहं त्वां जन्मजलधेस्तारयामि सुनिश्चितम्॥ ४२॥

अतः हे महामते! तुम पराभक्ति के माध्यम से मेरी आराधना करो। मैं तुम्हें इस भवसागर से निश्चित ही पार कर दूँगी।। ४२।।

मन्मना भव मद्याजी मां नमस्कुरु मत्परः।
मामेवैष्यसि संसारदुःखैर्नैव हि बाध्यसे''॥ ४३॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे मोक्षयोगोपदेशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

तूँ अपना चित्त मुझमें लगा, मेरी आराधना कर। मेरी शरण में आकर मेरे सामने नतमस्तक रह। तब तूँ मुझे प्राप्त कर सकेगा और तुझे इस संसार के दुःख कोई हानि न पहुँचा पायँगें।। ४३।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'मोक्षयोग-उपदेशवर्णन' नामक
अठारहवाँ अध्याय समाप्त॥

उन्नीसवाँ अध्याय

[पार्वतीगीता का माहात्म्य]

श्रीमहादेव०—''एवं श्रीपार्वतीवक्त्राद्योगसारं परं मुने!
निशम्य पर्वतश्रेष्ठो जीवन्मुक्तो बभूव ह॥ १॥

श्रीमहादेव जी बोले— इस तरह देवी पार्वती के श्रीमुख से उत्कृष्ट योगतत्त्व सुनकर वह पर्वतश्रेष्ठ हिमालय जीवन्मुक्त हो गया।। १।।

सापीयं शैलराजाय योगमुक्त्वा महेश्वरी।
मातृस्तन्यं पपौ बाला प्राकृतेव हि लीलया॥ २॥

वह महेश्वरी देवी भी नगाधिराज हिमालय को यह योगतत्त्व सुनाकर, साधारण शिशुओं की तरह लीला करती हुई माता का स्तन्यपान करने लगी।। २।।

गिरीन्द्रस्तु महाहर्षादकरोत् सुमहोत्सवम्।
यथा न दृष्टं केनापि श्रुतं वा केनचित्क्वचित्॥ ३॥

इसके बाद, उस पर्वतराज हिमालय ने उस अवसर पर ऐसे विशाल महोत्सव का आयोजन किया कि जो पहले न कभी देखा गया था, न सुना गया था।। ३।।

षष्ठेऽह्नि षष्ठीं सम्पूज्य सम्प्राप्ते दशमेऽहनि।
पार्वतीत्यकरोन्नाम सान्वयं पर्वताधिपः॥ ४॥

छठे दिन, षष्ठी का पूजन कर, दशवें दिन उस पर्वतराज ने अपनी उस कन्या का नाम 'पार्वती' रखा।। ४।।

एवं त्रिजगतां माता नित्या प्रकृतिरुत्तमा।
सम्भूय मेनकागर्भाद्धिमालयगृहे स्थिता॥ ५॥

इस तरह वह अविनाशी त्रिजगन्माता, परा प्रकृति, मेनका की कोंख से जन्म लेकर, हिमालय के घर में रहने लगी।। ५।।

हिमालयाय पार्वत्या कथितं योगमुत्तमम्।
यः पठेत्सुलभा मुक्तिस्तस्य नारद जायते॥ ६॥

हे नारद! उन पार्वती देवी ने हिमालय के प्रति जिस उत्तम योग का प्रवचन किया था, उसके नित्य पारायणकर्ता को अतीव सरलता से भवसागर से मुक्ति मिल जाती है।। ६।।

तुष्टा भवति शर्वाणी नित्यं मङ्गलदायिनी।
जायते च दृढा भक्तिः पार्वत्यां मुनिपुङ्गव॥ ७॥

हे मुनिपुङ्गव! इस पारायण से वह नित्या पार्वती देवी, सबको मङ्गल प्रदात्री, प्रसन्न होती हैं तथा उनमें साधक की दृढ़ भक्ति बन जाती है।। ७।।

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां भक्तिसंयुतः।
पठन् श्रीपार्वतीगीतां जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥ ८॥

जो साधक अष्टमी, चतुर्दशी एवं नवमी के दिन भक्तिपूर्वक इस पार्वतीगीता का पारायण (पाठ) करता है, वह पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है।। ८।।

शरत्काले महाष्टम्यां यः पठेत् समुपोषितः।
रात्रौ जागरितो भूत्वा तस्य पुण्यं ब्रवीमि किम्॥ ९॥

शरत्काल में अष्टमी के दिन जो साधक उपवासव्रत रखकर इसे पढता है, रात्रि में जागरण करते हुए इस भगवती की उपासना करता है, उसके पुण्य के माहात्म्य का क्या वर्णन किया जाय!।। ९।।

स सर्वदेवपूज्यश्च दुर्गाभक्तिपरायणः।
इन्द्रादयो लोकपालास्तदाज्ञावशवर्तिनः॥ १०॥

वह दुर्गाभक्त साधक सभी देवताओं की श्रद्धा का पात्र बन जाता है। यहाँ तक कि इन्द्र आदि लोकपाल भी उसकी आज्ञा के वश में हो जाते हैं।।१०।।

स्वयं दैवींकलामेति साक्षाद्देव्याः प्रसादतः।
नश्यन्ति तस्य पापानि ब्रह्महत्यादिकान्यपि॥ ११॥

और साधक भगवती की कृपा से स्वयं दैवीकला को प्राप्त कर लेता है। उसके प्रभाव से उसके ब्रह्महत्यादि महापातक भी (यदि उसने किये हों) विनष्ट हो जाते हैं।। ११।।

पुत्रं सर्वगुणोपेतं लभते चिरजीविनम्।
नश्यन्ति रिपवस्तस्य नित्यं प्राप्नोति मङ्गलम्॥ १२॥

वह, उसके प्रताप से, सर्वगुणसम्पन्न चिरायुष्क पुत्र प्राप्त करता है। उसके सभी शत्रु विनष्ट हो जाते हैं। वह सर्वत्र मङ्गल (शुभ) प्राप्त करता है।। १२।।

अमावास्यां तिथिं प्राप्य यः पठेद्भक्तिसंयुतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स दुर्गातुल्यतामियात्॥ १३॥

अमावस्या के दिन जो उपासक भक्तिपूर्वक इस पार्वतीगीता का पारायण करता है वह सभी पापों से छुटकारा पाकर भगवती के सदृश शक्तिसम्पन्न बन जाता है।। १३।।

निशीथे पठते यस्तु बिल्ववृक्षस्य सन्निधौ।
तस्य सम्वत्सराद्दुर्गा स्वयं प्रत्यक्षमेति वै॥ १४॥

और जो साधक बिल्व वृक्ष के नीचे बैठकर अर्धरात्रि के समय इस गीता का पाठ करता है, उसे यह जगन्माता पार्वती दुर्गा एक वर्ष की अवधि में अवश्य ही प्रत्यक्ष दर्शन देती हैं।। १४।।

किमत्र बहुनोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः।
अस्याः पाठसमं पुण्यं नास्त्येव पृथिवीतले॥ १५॥

हे नारद! इस विषय में अधिक क्या कहा जाय, आप सार (तत्त्व) रूप में इतना ही समझ लें कि इस मर्त्यलोक में इस भगवती गीता के पाठ के समान पुण्यफल अन्य किसी विधान से प्राप्त नहीं हो सकता।। १५।।

तपसां यज्ञदानादिकर्मणामिह विद्यते।
फलस्य संख्या नैतस्य विद्यते मुनिपुङ्गव॥ १६॥

हे मुनिपुङ्गव! तप तथा यज्ञ एवं दानादि के पुण्यों की सङ्ख्या तो बतायी जा सकती है, परन्तु भगवती द्वारा प्रोक्त इस पार्वतीगीता के पाठ से प्राप्त पुण्य की गणना नहीं की जा सकती।। १६।।

इत्युक्तं ते यथा जाता नित्यापि परमेश्वरी।
लीलया मेनकागर्भे भूयः किं श्रोतुमिच्छसि?"॥ १७॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे पार्वतीगीतामाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः॥ १९॥

इस प्रकार, हे नारद! वह परमेश्वरी भगवती हिमालय के घर में स्वकीय लीला हेतु जिस प्रकार मेनका की कोंख से अवतरित हुईं, वह सब मैंने तुमको सुना दिया। अब इस विषय में तुम्हारी अन्य क्या जिज्ञासा है—कहो?।। १७।।

श्रीमहाभागवतउपपुराण में
'पार्वतीगीतामाहात्म्य वर्णन' नामक
उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।।

बीसवाँ अध्याय

[हिमालय-नारद संवाद]

नारद०— "स्थिता हिमवतो गेहे लीलया परमेश्वरी।
कथमाप पतिं शम्भुं योगचिन्तापरायणम्?॥ १॥

नारद— "हे महेश्वर! नगाधिराज हिमालय के घर में रहकर स्वकीय अद्भुत लीलाएँ करती हुई उस परमेश्वरी भगवती ने योग–ध्यान में लगे हुए भगवान् शङ्कर को कैसे अपने पति के रूप में प्राप्त किया?।। १।।

कथं देवो मनश्चक्रे दारग्रहणकर्मणि।
त्यक्त्वा योगं महायोगी संसारविमुखः प्रभुम्?॥ २॥

फिर, उन महायोगी भगवान् शङ्कर ने भी, जो संसार से विमुख हो चुके थे, पुनः घर बसाने के लिये, योग-साधना छोड़कर पत्नी को ग्रहण करने का सङ्कल्प कैसे कर लिया?।। २।।

कथमर्धशरीरं साऽहरत् स्मररिपोः प्रभो।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महेश्वर!" ॥ ३॥

हे प्रभो! फिर उस भगवती ने उन कामारि भगवान् शङ्कर का आधा शरीर अपना कैसे बना लिया?—यह सब मुझे विस्तार से बताइये"।। ३।।

देवी की बाल लीला

श्रीमहादेव०—"ययेदं मोह्यते विश्वं परया मायया मुने!
को बोद्धुमपि शक्नोति तस्या मायां महामते!॥ ४॥

श्रीमहादेव जी— "हे महामुने! जिस परा महामाया के द्वारा यह समग्र विश्व मुग्ध किया हुआ है, उस महामाया के विषय में कौन सर्वतोभावेन जान सकता है?।। ४।।

या सर्वजगतां माया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
सातिबाल्यं समास्थाय स्थिता हिमवतो गृहे॥ ५॥

जो भगवती देवी समग्र जगत् को सम्मुग्ध करने वाली है, तथा सृष्टि स्थिति एवं प्रलय की विधायिका है वह देवी पर्वतराज हिमालय के घर में बाललीला कर रही थी।। ५।।

ततः सा ववृधे नित्यं वर्षासु स्वर्णदी यथा।
चारुतामपि सन्दधे यथा शरदि चन्द्रिका॥ ६॥

वहाँ वह उसी तरह बढ़ने लगी, जैसे वर्षा ऋतु में गङ्गा नदी बढ़ा करती हैं और उसका सौन्दर्य भी वैसे ही बढ़ने लगा जैसे शरद्ऋतु में चन्द्रमा की चाँदनी वृद्धि हुआ करती है।। ६।।

सखीभिः सहिता नित्यं चिक्रीड निजलीलया।
स्वगुणैः पितरौ नित्यं तर्पयामास पार्वती॥ ७॥

वह अपनी सहेलियों के साथ नित्य नयी बाल-लीलाएँ करती रहती थी। यों, अपने गुणों से वह पार्वती देवी अपने माता-पिता को सर्वथा सन्तुष्ट करती रही।। ७।।

गिरिराजस्तथा मेना दृष्ट्वा दृष्ट्वा च तन्मुखम्।
दृष्टिं व्यापारयामास नान्यत्र क्षणमण्वपि॥ ८॥

वह नगाधिराज हिमालय तथा उनकी पत्नी मेनका उस पार्वती का मनोहर मुख देख देखकर इतने मुग्ध रहते थे कि क्षणभर के लिये भी उनकी दृष्टि (पार्वती के मुख के अतिरिक्त) अन्यत्र कहीं जाती ही न थी।। ८।।

विद्यते मुनिशार्दूल नासाद्यं हि तपस्यतः।
तपसा यन्न चाप्नोति विद्यते नैव तत्फलम्॥ ९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तपस्वी के लिये कुछ भी प्राप्त कर लेना असम्भव नहीं है। ऐसा कोई फल नहीं है जो तपस्या से न प्राप्त किया जा सके।। ९।।

अपि ब्रह्मादिदेवानां यस्या दुर्लभमीक्षणम्।
तां कृत्वाङ्के दिवारात्रं हिमवान्मेनकापि च।
निरीक्षेते कौतुकेन पुत्रीभावेन तारिणीम्॥ १०॥

देखिये न! ब्रह्मा आदि देवताओं के लिये भी जिसका कुछ क्षण के लिये दर्शन दुर्लभ है। उसी महादेवी को (अपनी तपस्या के प्रताप से) ये हिमालय पर्वतराज तथा उनकी धर्मपत्नी मेनका दिनरात गोद में लिये-लिये घूम रहे हैं, तथा उस जगत्तारिणी को उत्सुकतापूर्वक पुत्रीभाव से निहारते रहते हैं।।१०।।

एवं भजन्ति ये भक्त्या तेषामिष्टवरप्रदा।
दुर्गमापि मुनिश्रेष्ठ! सुलभा जगदम्बिका॥ ११॥

एवं स्थिता भगवती गिरिराजगृहे स्वयम्।
मातुस्तृप्तिकरी नित्यं पितृप्रीणनतत्परा॥ १२॥

वस्तुतः भक्तिभाव से जो इस भगवती की आराधना करता है, उसे यह भगवती उसका मनोवाञ्छित फल देती ही है। हे देवर्षि नारद! इस तरह वह जगन्माता भगवती दूसरों के लिये दुर्बोध होती हुई अपने भक्तों के लिये सुलभ ही होती हैं। इस तरह वह भगवती स्वयं उस गिरिराज के घर में विराजमान रही। अपनी उपस्थिति से वह माता को तृप्ति तथा पिता को हर्ष प्रदान करती थी।। ११–१२।।

नारद–हिमालय संवाद

अथैकदा गिरीन्द्रस्तां कृत्वाङ्के परमेश्वरीम्।
तनयां च सुसङ्गम्य स्थितः परमकौतुकात्॥ १३॥

एक बार, गिरिराज, हिमालय उस परमेश्वरी रूप अपनी पुत्री पार्वती को अतीव उत्सुकता से गोद में लिये हुए थे।। १३।।

एतस्मिन्नेव काले तु नारदो मुनिपुङ्गवः।
नभसा च समायातो द्रष्टुं देवीं महेश्वरीम्॥ १४॥
स ददर्श तदा गौरीं गिरीन्द्रनिकटस्थिताम्।
शरन्निशि निशानाथज्योत्स्नामिव सुनिर्मलाम्॥ १५॥

इसी समय मुनिवर नारद उस महेश्वरी के दर्शन करने हेतु आकाश-मार्ग से आये और उन्होंने उस भगवती को पर्वतराज के पास बैठे हुए देखा। उस समय वे ऐसी शोभायमान हो रही थीं मानों शरदऋतु के चन्द्रमा की शुभ्र चान्दनी छिटक रही हो।। १४–१५।।

गिरीन्द्रस्त्वथ संवीक्ष्य मुनिं स्वगृहमागतम्।
सम्पूज्य प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रणनाम महामतिः॥ १६॥
उपविश्य मुनिः प्राह शैलराजं प्रहर्षयन्॥ १७॥

उधर महामति पर्वतराज ने मुनीन्द्र को अपने घर आया देख कर उनकी पूजा–अर्चना करने के बाद, उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तब महामुनि ने सुखपूर्वक बैठकर नगाधिराज से प्रसन्न होते हुए ये वचन कहे–।। १६–१७।।

नारद० ''गिरिराज मया पूर्वं यदुक्तं ज्ञातवानसि।
स्वयं प्रकृतिराद्येति तनया सम्भविष्यति॥ १८॥

नारद– "गिरिराज! मैंने तुमको पहले भी बताया था, जो तुम्हें स्मरण होगा कि यह भगवती तुम्हारी पुत्री के रूप में प्रादुर्भूत होगी।। १८।।

तेन ते तनया जाता स्वयं प्रकृतिरुत्तमा।
शम्भोर्भवित्री दयिता प्रेम्णा देहार्धहारिणी॥ १९॥

वही अब यह आद्या प्रकृति महेश्वरी देवी आप की कन्या के रूप में अवतरित हुई हैं। यह आगामी काल में भगवान् शङ्कर की पत्नी बनकर उनका अर्धदेह धारण करनेवाली बनेगी।। १९।।

स चाप्येनां विना जायां नान्यामुद्वाहयिष्यति।
अनयैव गिरिश्रेष्ठ! अर्धनारीश्वरो हरः॥ २०॥
भविष्यति महेशाय देयेयं तनया त्वया।
तस्यैव पूर्वपत्नीयं जाता दक्षगृहे तु या॥ २१॥

उधर वह भगवान् शङ्कर भी इनके अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे। वे तो, हे गिरिवर! इसी से विवाह करेंगे तथा वे इनसे विवाह कर अर्धनारीश्वर बन जायँगें। अतः हे पर्वतराज! आपको अपनी यह कन्या उन्हीं भगवान् शङ्कर को समर्पित करनी है। यह उनकी पूर्वपत्नी भी रही है; जो पहले दक्ष प्रजापति के घर सती के रूप में प्रकट हुई थी।। २०–२१।।

अनयोर्यादृशं प्रेम भविष्यति महामते!
कयोर्न तादृशं भूतं विद्यते वा भविष्यति॥ २२॥

हे महामते! इनका जैसा परस्पर अद्भुत प्रेम होगा वैसा किसी अन्य दम्पती में न था, न है, न होगा।। २२।।

अनया देवकर्माणि करिष्यति बहूनि च।
पुत्रोऽपि भविता चास्या महाबलपराक्रमः॥ २३॥

यह बहुत से देवकार्यों को सम्पन्न करेंगी। समय आने पर, इनको एक महान् बलशाली पुत्र भी होगा।। २३।।

येन तुल्यबलो योद्धा न भूतो न भविष्यति।
नान्यस्मैत्वमिमां दातुं मनः कर्तुमिहार्हसि"॥ २४॥

जिसके समान बलशाली योद्धा न हुआ है, न आगे होगा। अतः आप इनका किसी अन्य से विवाह करने का मन न बना लीजियेगा"।। २४।।

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा गिरिराज उवाच तम्॥ २५॥

नारद के ये वचन सुनकर नगाधिराज हिमालय ने उनसे कहा ।। २५ ।।

हिमालय० ''श्रूयते त्यक्तसङ्गः स महायोगी महेश्वरः।
तपश्चचारात्युग्रं च देवानामप्यगोचरः॥ २६॥

हिमालय— ''महामुने! वे भगवान् शङ्कर तो महायोगी हैं, संसार से विरक्त हो चुके हैं। उन्होंने ऐसा उग्र तप किया है जो देवता भी नहीं कर सकते ।। २६ ।।

केवलं परमं ब्रह्म सोऽन्तः पश्यति निश्चलः।
न बाह्यमीक्षते शुद्धब्रह्मण्यर्पितमानसः॥ २७॥

तस्यैवं निश्चलं चेतः कश्चालयितुमुत्सहेत्।
कथं वा तनयामेनां भार्यार्थे सङ्ग्रहीष्यति!''॥ २८॥

वे तो शुद्धचित्त होकर कैवल्यरूप परब्रह्म का साक्षात्कार कर चुके हैं। वे अपना चित्त शुद्ध ब्रह्म के ध्यान में लगाये हुए हैं और संसार के प्रति पूर्णतः निरासक्त हो चुके हैं। इनके इस एकाग्र मन को कोई विचलित नहीं कर सकता। तब वे मेरी इस पुत्री को कैसे अपनी पत्नी बनाना स्वीकार करेंगे?'' ।। २७–२८ ।।

भगवान् शङ्कर की समाधि के भङ्ग का उपाय

नारद०— ''तदर्थं नैव चिन्तां त्वं कुरु पर्वतपुङ्गव!।
भविष्यति च भङ्गो वै यथा तस्य निशामय॥ २९॥

तारकेणासुरेन्द्रेण जित्वा देवान् सबान्धवान्।
त्रैलोक्याधिपतेः राज्यं हृतं मदबलाश्रयात्॥ ३०॥

तथान्येषां सुराणां स आधिपत्यं बलाद्धरन्।
एक आस्ते त्रिलोकेशो ब्रह्मदत्तवरेण हि॥ ३१॥

नारद— ''हे पर्वतराज! आप इस विषय में चिन्ता न करें। उनकी ध्यानभावना जिस तरह भङ्ग हो पायगी, उसे भी सुन लो। असुरराज तारकासुर ने सपरिवार देवताओं को जीतकर अपने मद एवं बल के सहारे से अन्य देवताओं को भी अपने अधीन कर लिया और वह ब्रह्मा के दिये हुए वर के प्रभाव से अकेला ही इस सम्पूर्ण त्रिलोकी का स्वामी बन बैठा है।। २९–३१ ।।

ब्रह्मणा कल्पितो मृत्युस्तस्य नूनं दुरात्मनः।
शिवस्यौरसजातेन पुत्रेणामिततेजसा॥ ३२॥

तेन देवाः सुसंयत्ता इन्द्राद्या ब्रह्मशासनात्।
सर्वे च व्यापरिष्यन्ति महादेवविमोहने॥ ३३॥

फिर भी विधाता ने उस दुष्ट की मृत्यु की भी व्यवस्था तो कर ही दी है। शिव के अपरिमित तेजस्वी पुत्र के रूप में उत्पन्न देवता से उसकी मृत्यु होगी। अतः ब्रह्मा की आज्ञा से इसके लिये सभी इन्द्र आदि देवता भगवान् शङ्कर के विमोहन हेतु अपना अपना कार्य करेंगे।। ३२–३३।।

निमित्तमात्रमेतद्धि लौकिकं पर्वतर्षभ।
वस्तुतस्तु सुतैवैषा हरं सम्मोहयिष्यति॥ ३४॥

हे पर्वतर्षभ! यह बात भी लौकिक निमित्त मात्र होगी। वस्तुतः तो यह आपकी पुत्री ही भगवान् को सम्मुग्ध कर लेगी।। ३४।।

इयं जाता महामाया जगन्मोहनकारिणी।
विष्णुसम्मोहिनी लक्ष्मीः शिवसम्मोहिनी शिवा॥ ३५॥

सोऽपि नित्यं महाकालो निजान्तर्यामिनीमिमाम्।
महाकालीं महायोगी समाधिस्थो निरीक्षते।
तपश्चरति चैतस्या आत्मनिश्चलमानसः॥ ३६॥

आप के यहाँ उत्पन्न यह महामाया जगत् को मुग्ध करनेवाली है। यह बात लोक में प्रसिद्ध ही है कि विष्णु को लक्ष्मी सम्मुग्ध करती है और पार्वती शङ्कर को। वह महाकाल शङ्कर भी उनके हृदय में वास करने वाली इस भगवती महाकाली का समाधिस्थ रहते हुए, निरीक्षण करते रहते हैं और इसी के लिये वे एकाग्र चित्त से तपस्या करते हैं।। ३५–३६।।

एनां प्राप्य पुनः पत्नीं त्यक्तयोगो भविष्यति।
अचिरेणैव भावेन ध्यानयोगेन शङ्करः॥ ३७॥

इसे पत्नी रूप में प्राप्त कर भगवान् शङ्कर भी शीघ्र अपनी वर्तमान योग–समाधि का उसी समय त्याग कर देंगे।। ३७।।

ज्ञात्वैनां त्वद्गृहे जातां ब्रह्मरूपां सनातनीम्।
तव प्रस्थे तपस्तप्तुं समायास्यति निश्चितम्''॥ ३८॥

जब उन्हें ज्ञात होगा कि आप के घर में उस सनातन ब्रह्मरूप भगवती ने पुत्रीरूप में अवतार कर लिया है तो वे निश्चय ही आपके ही किसी कूट पर तपस्याहेतु शीघ्र पधारेंगे''।। ३८।।

श्रीमहादेव०— उक्त्वैवं गिरिराजाय स मुनिः प्रययौ द्रुतम्।
विहायसा स्वयं स्थानं मध्याह्नार्कसमप्रभम्॥ ३९॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे महादेवनारदसम्वादे विंशतितमोऽध्यायः॥ २०॥

श्री महादेव बोले— मध्याह्न के सूर्य के समान प्रभावाले वे मुनि पर्वतराज हिमालय को यों कहकर शीघ्र ही आकाशमार्ग से अपने आश्रम पर चले गये॥ ३९॥

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
हिमालयनारदसंवाद रूप
बीसवाँ अध्याय समाप्त॥

इक्कीसवाँ अध्याय

[शिवतपोवर्णन]

श्रीमहादेव०— गते तस्मिन्मुनिश्रेष्ठे गिरीन्द्रः सह मेनया।
पुनश्च निश्चितं मेने पार्वतीं भवगेहिनीम्॥ १॥

मुनिवर श्रीनारद के चले जाने के बाद, पर्वतराज हिमालय ने अपनी पत्नी के साथ निश्चित धारणा बना ली कि पार्वती शङ्कर की ही पत्नी बनेगी।। १।।

भगवान् शङ्कर का हिमालय पर आगमन

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुस्त्यक्त्वा पूर्वाश्रमं मुने!
हिमाद्रेः प्रययौ प्रस्थं तपस्तप्तुं सुदुश्चरम्॥ २॥

इसी समय, हे मुने! भगवान् शङ्कर ने भी अपना पूर्वाश्रम (कामरूप) त्याग कर हिमालय में कठोर तपस्या करने के लिये प्रस्थान किया।। २।।

यत्र गङ्गा निपतिता ब्रह्मलोकात्स्वयं पुरा।
तत्र विश्वेश्वरः पूर्णब्रह्मध्यानपरायणः।
संस्थितः परमो योगी ध्यानानन्दसमुत्सुकः॥ ३॥

जहाँ पहले कभी गङ्गा नदी ब्रह्मलोक से स्वयं अवतरित हुईं थी। वहाँ भगवान् शङ्कर पूर्ण ब्रह्म के चिन्तन में ध्यानमग्न होकर विराजमान हुए।। ३।।

एवं ध्यानपरे तस्मिन् हरे प्रमथपुङ्गवाः॥ ४॥
केचिद्ध्यानपरास्तत्र केचित्सेवापरायणाः।
अन्ये सहचरास्तस्य किञ्चिद्दूरे व्यवस्थिताः॥ ५॥

इस तरह उन भगवान् के समाधिनिष्ठ हो जाने पर, वे प्रमथ शिव के अनुचर भी कुछ योगसमाधि में लग गये। कुछ भगवान् शङ्कर की सेवा में रत हो गये। कुछ उनके साथी वहाँ से कुछ दूर जाकर बैठ गये।। ४–५।।

फलपुष्पाणि चिन्वन्तो गीतनृत्यपरायणाः।
क्रीडन्ते गैरिकैर्नित्यं विभज्य च समुत्सुकाः॥ ६॥

कुछ वन में पुष्प फल चुनने के कार्य में लग गये। कुछ नाचने–गाने में लग गये। कुछ वहीं पर गेरु से रेखा खींचकर खेलने लगे।। ६।।

गन्धर्वों द्वारा भगवान् के विषय में पर्वतराज को सूचना

दृष्ट्वा शिवं समायातं गन्धर्वाः किन्नरास्तथा।
एकदा कथयामासुर्गिरीन्द्राय महात्मने॥ ७॥

वहाँ रहने वाले गन्धर्व एवं किन्नर, भगवान् शङ्कर को वहाँ साधनारत देखकर, महात्मा पर्वतराज के पास जाकर बोले—॥ ७॥

"प्रभो गिरीन्द्र भगवांस्तव प्रस्थे महेश्वरः।
समायातस्तपस्तप्तुं समस्तैः प्रमथैः सह॥ ८॥

हे गिरिराज प्रभु! भगवान् शङ्कर समस्त प्रमथों के साथ आपके ही एक कूट पर उग्र तपश्चर्या हेतु आये हैं॥ ८॥

उषसि प्रस्थनगरमदूरे स स्वयं स्थितः।
महात्मा जटिलो योगी चन्द्रार्धाङ्कितमस्तकः॥ ९॥

वे महात्मा जटिल योगी, मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण करने वाले आज ही प्रातः आपके एक समीपस्थ शिखर पर आकर विराजमान हुए हैं॥ ९॥

प्रमथाश्चापि बहवो निकटे तस्य संस्थिताः।
ध्याननिष्ठास्तथा चान्ये शुश्रूषणपरायणाः॥ १०॥

उनके पास बहुत से उनके अनुचर भी साथ में ठहरे हुए हैं। उनमें भी कोई समाधिनिष्ठ है, कोई उनकी सेवा में तत्पर है॥ १०॥

अन्ये च कोटिशस्तस्य कियद्दूरे व्यवस्थिताः।
नृत्यन्ति चैव क्रीडन्ति गायन्ति च हसन्ति च॥ ११॥

और बहुत से उनसे कुछ दूर पर बैठे हैं, उनमें से कोई नाच रहा है, कोई खेल रहा है, कोई गा रहा है तो कोई हँस रहा है॥ ११॥

केचिद्दिगम्बरास्तेषां केचिद्व्याघ्राजिनाम्बराः।
विभूतिधवलाः सर्वे जटामुकुटमस्तकाः॥ १२॥

उनमें कोई दिगम्बर है तो कोई व्याघ्रचर्म को वस्त्र के स्थान पर धारण किये हुए है। कोई श्वेत भस्म रमाए हुए है तो कोई मस्तक पर जटाओं को मुकुट रूप में धारण किये हुए हैं॥ १२॥

ऐश्वर्यं भूतनाथस्य विचित्रं पर्वतर्षभ!
गत्वैकदा महाराज स्वयं पश्य यथेप्सितम्"॥ १३॥

हे पर्वतश्रेष्ठ! इस तरह उस भूतनाथ की यह विभूति (ऐश्वर्य) विचित्र (अनुपम) है। हे महाराज! आप भी एक बार वहाँ जाकर उनकी उस विभूति को देख आइये''।। १३।।

हिमालय का भगवान् शङ्कर के दर्शन हेतु गमन

इति श्रुत्वा वचस्तेषां हिमवान् पर्वताधिपः।
प्रययौ यत्र विश्वेशस्तपश्चरति दुश्चरम्॥ १४॥

उनका यह वचन सुनकर वह पर्वतराज हिमालय उस स्थान पर पहुँचे जहाँ भगवान् शङ्कर उग्र तपस्या में लीन थे।। १४।।

ततः स पूजयामास विश्वेशं भक्तिसंयुतः।
सोऽपि तस्यार्चनं शम्भुः प्रतिजग्राह सादरम्॥ १५॥

तब उस पर्वतराज ने उस विश्वनाथ की भक्तिपूर्वक पूजा–अर्चना की। उसकी उस पूजा को भगवान् ने सादर स्वीकार किया।। १५।।

ततः सम्पूजितो देवो गिरीन्द्रं प्राह हर्षयन्।
''महाराज तव प्रस्थे निर्जनेऽहं समागतः॥ १६॥
तपः कर्तुं महापुण्ये समस्तैः प्रमथैः सह।
त्वमत्र राज्ये पुण्यात्मन् गिरिराज तथा कुरु॥ १७॥
यथा मन्निकटे कोऽपि नैवायाति जनः कदा।
तपोहानिर्भवेत्सङ्गात्तेन सङ्गो भवेन्नहिं॥ १८॥

तब भगवान् शङ्कर उस पूजा से प्रसन्न होकर पर्वतराज से यों बोले– हे महाराज! आपके राज्य में इस निर्जन शिखर पर मैं तपस्या करने हेतु समस्त प्रमथों के साथ आया हूँ। अतः हे पुण्यात्मन् गिरिराज! अब आप इतनी व्यवस्था तो कर दीजिये कि कभी कोई आदमी मेरे पास न आने पावे; क्योंकि उनके आने से मेरी तपस्या में विघ्न पड़ेगा। अतः उनका आना यहाँ अनुचित है।। १६–१८।।

निर्जने क्रियते वासो योगिभिः किल भूधर!॥ १९॥
त्वमाश्रयो मुनीन्द्राणां यक्षाणां किन्नरस्य च।
देवानां राक्षसानां च द्विजातीनां च भूधर।
सर्वेषां व्यवहारान्वै ज्ञातवानसि धर्मवित्॥ २०॥

इसलिये हे पर्वतराज! योगिजन निर्जन प्रदेश में ही वास किया करते हैं। आप श्रेष्ठ मुनियों, यक्षों तथा किन्नरों के आश्रयस्थल हैं। इसी तरह आप

देवताओं, राक्षसों तथा ब्राह्मणों के व्यवहार को भी भलीभाँति जानते हैं; क्योंकि आप धर्मवित् हैं।। १९–२०।।

किं तुभ्यमधिकं वच्मि धर्मज्ञोऽसि महामते''।
इत्युक्तो गिरिराजं स तूष्णींभूय महेश्वरः॥ २१॥

हे महामति! आप तो स्वयं धार्मिकों के व्यवहार के ज्ञाता हैं, मैं आप से अधिक क्या कहूँ।'' हिमालय से यों कहकर भगवान् शङ्कर चुप हो गये।। २१।।

स्थितस्तं प्रणयेनाह गिरीन्द्रो विनयान्वितः।
''देवदेव जगन्नाथ मद्भाग्यात् समुपस्थितः॥ २२॥

तब वह पर्वतराज विनीत भाव से बैठकर उनसे प्रेमपूर्वक यों बोला— ''हे देवाधिदेव! हे जगदीश! आप मेरे सौभाग्य से यहाँ पधारे हैं।। २२।।

मम प्रस्थे तपः कर्तुं ब्रह्माद्यैरपि दुर्लभः।
तपस्तप्तुं निर्जनेऽस्मिन्यथेष्टं जगदीश्वरः॥ २३॥
न मयास्ति समः कश्चिदपि साक्षात् पुरन्दरः।
यथा त्वं मामनुप्राप्तः सगणः काममोहितः॥ २४॥

मेरे शिखर पर अनुकूलता से तपस्या करना, ब्रह्मा जैसे समर्थ देवता द्वारा भी कठिन है; क्योंकि यह अतीव निर्जन अतएव भयानक स्थान है। मेरे समान कोई नहीं है, यहाँ तक कि साक्षात् इन्द्र भी नहीं है। जैसे आप अपने अनुचरों के साथ यहाँ अपनी इच्छा लेकर पधारे हैं।। २३–२४।।

धन्योऽहं कृतकृत्यश्च न मत्तोऽस्तीह पुण्यवान्॥ २५॥

इसके लिये मैं धन्य हूँ, मैं कृतकृत्य हूँ, आज मुझसे बढ़कर इस लोक में कोई पुण्यवान् नहीं है।। २५।।

भगवन्मम प्रस्थेऽस्मिस्तपसे यदुपस्थितः।
नात्र यास्यति वै कश्चिज्जनस्त्वन्निकटे प्रभो॥ २६॥

हे भगवन्! यदि आप मेरे इस शिखर पर तपःसाधना हेतु पधारे हैं तो ठीक है। प्रभो! आप की तपस्या में विघ्न न पड़े अतः आपके पास कोई भी निरर्थक आदमी नहीं आ पायगा।। २६।।

तपस्व त्वं महादेव रहस्यत्र यथेप्सितम्''।
इत्येवमुक्त्वा गिरिराट् प्रययौ निजमालयम्॥ २७॥

आप निश्चिन्त होकर यहाँ एकान्त में तपःसाधना करें।'' यह कहकर वे पर्वतराज पुनः अपने आवास पर चले गये।। २७।।

आज्ञापयामास तदा सर्वाञ्जनपदान् गिरिः।
स्वकीयानपि चाहूय सन्नियम्य मुहुर्मुहुः॥ २८॥

वहाँ जाकर पर्वतराज ने यह आज्ञा प्रसारित की और अपने सभी अनुचरों को भी बुलाकर कठोर चेतावनी दी।। २८।।

''गङ्गावतरणप्रस्थं तत्र माहेश्वरं स्थलम्।
न ममाज्ञां विना केन गन्तव्यं महतापि च॥ २९॥

''मेरा यह गङ्गावतरण शिखर आज से भगवान् शङ्कर का आवास कहलायगा। मेरे आदेश के विना कोई विशिष्ट कार्य से भी वहाँ न जाने पावे।। २९।।

यदि मद्वाक्यमुल्लङ्घ्य कश्चिद् गच्छति तत्स्थलम्।
स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च भविष्यति न संशयः''॥ ३०॥

यदि मेरे आदेश का उल्लङ्घन कर कोई इस स्थान पर जायगा तो वह दण्डनीय होगा। उसका वध भी किया जा सकता है। इसमें कोई सन्देह न करें''।। ३०।।

इति तस्याज्ञया भीता देवगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचा राक्षसा वापि मानवाः पशवस्तथा॥ ३१॥
नो यान्ति हिमवत्प्रस्थं यत्रास्ते चन्द्रशेखरः।
निर्जने स महायोगी चचारोग्रं महत्तपः॥ ३२॥

पर्वतराज के इस आदेश से सभी देव, गन्धर्व एवं किन्नर, पिशाच, राक्षस तथा मनुष्य यहाँ तक कि पशु भी भयभीत होकर उस शिखर पर नहीं जाते थे, जहाँ चन्द्रशेखर भगवान् शङ्कर विराज रहे थे। उसी निर्जन स्थान में उस महान् योगी ने उग्र तपःसाधना प्रारम्भ की।। ३१–३२।।

पार्वत्यपि पितुर्गेहे वर्धमाना दिने दिने।
पाणिग्रहणयोग्याभूच्चार्वङ्गी रुचिरानना॥ ३३॥

उधर पार्वती भी पिता के घर में रहते हुए दिन प्रतिदिन बढ़ती गयीं। एक दिन वह विवाह के योग्य हो गयीं। उनके सभी अङ्ग कान्तिमय हो गये तथा मुखाकृति दर्शनीय हो गयी।। ३३।।

गिरीन्द्रो नारदोक्तं तद्वाक्यं सञ्चिन्त्य कुत्रचित्।
न चेष्टयति पार्वत्या विवाहार्थं महामतिः॥ ३४॥

इतना होने पर भी, महामति पर्वतराज हिमालय, नारद मुनि के वचनों का स्मरण करते हुए उस पार्वती के विवाह के विषय में किसी अन्य से कोई चर्चा नहीं करते थे।। ३४।।

पार्वती द्वारा एक पूर्व प्रसङ्ग का श्रावण

तथैकदा जगद्धात्री पार्वती स्वयमेव हि।
पितरौ प्राह "यास्यामि तपः कर्तुं शिवान्तिकम्॥ ३५॥

तब एक दिन वह जगत्पालिका पार्वती स्वयं ही अपने माता–पिता से यों बोली– "मैं तपःसाधना हेतु भगवान् शङ्कर के पास जाऊँगी।। ३५।।

यदा ब्रह्मा स्वतनयां सन्ध्यां कामविमोहितः।
सङ्कर्षितुं समुद्यातो गगनस्थो हरस्तदा॥ ३६॥

निनिन्द तं मुहुर्देवं ब्रह्माणं जगतः पतिम्।
तदा स लज्जयोपेतो विवर्णवदनो विधिः॥ ३७॥

एक समय ब्रह्मा अपनी पुत्री सन्ध्या के प्रति कामविमुग्ध होकर उससे बलात्कार करने चले तो आकाश में स्थित भगवान् शङ्कर ने उन जगत्पति ब्रह्मा को बहुत धिक्कारा। तब विधाता का, लज्जा के कारण, मुख काला पड़ गया।। ३६–३७।।

तपसाराधयामास मां जगन्मोहिनीं शिवाम्।
ततो मयि प्रसन्नायां स वव्रे वाञ्छितं वरम्॥ ३८॥

और उसने इसी लज्जा वेदना से त्रस्त होकर मुझ जगन्मोहिनी शिवा की आराधना की मेरे प्रसन्न होने पर उसको मैंने वाञ्छित वर दिया।। ३८।।

तत्रैवोवाच मां मातस्त्वं भूत्वा चारुरूपिणी।
मोहयस्व महादेवं संसारविमुखं प्रभुम्॥ ३९॥
त्वामृते तस्य नो काचिद् भविष्यति मनोरमा।
तस्मात्त्वं जन्म सम्प्राप्य भवस्य हरमोहिनी॥ ४०॥

वहाँ उसने मुझसे कहा– "हे माता! आप सुन्दरवदना होकर संसार में निरासक्त इन समर्थ महादेव को ऐसा मोहित करें कि आपके अतिरिक्त इन्हें कोई भी स्त्री प्रिय न लगे। अतः आप एक जन्म लेकर इन शङ्कर को मोह में डालने वाली बनें।। ३९–४०।।

कान्ताभिलाषमात्रं मे दृष्ट्वाऽनिन्दन्महेश्वरः।
तेन सम्प्राप्तलज्जोऽहं दुःखी त्वां समुपाश्रितः॥ ४१॥

क्योंकि इन महादेव ने मेरी स्त्री-प्राप्ति की इच्छा की निन्दा की थी, उससे मुझे बहुत लज्जा का अनुभव हुआ। उसी दुःख से दुःखी होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ।। ४१।।

अनुगृह्णीष्व तन्मे त्वं मोहयस्व महेश्वरम्।
यदा स वै त्यक्तसङ्गो हरः स्थास्यति निर्जने।
तदैव कामरूपेण मोहयिष्यसि तं शिवम्''॥ ४२॥

यदि आप मेरी सहायता करना चाहती हैं तो इस महेश्वर को अपने रूप से मोहित कीजिये। जब ये शङ्कर संसार को त्याग कर निर्जन स्थान में बैठे हों तभी अपने कामरूप से इन्हें मुग्ध कर लीजिये''।। ४२।।

इत्येवं भाषितं तेन याचितं परमेष्ठिना।
मयाप्यङ्गीकृतं पूर्वं तुष्टया तपसा विधेः॥ ४३॥

इस तरह उन ब्रह्मा ने मुझसे कहा, और याच्ञा की। विधाता द्वारा की गयी तपस्या से प्रसन्न होकर मैंने उनकी बात स्वीकार कर ली।। ४३।।

तेन दक्षगृहे जाता मोहयेऽहं सकृच्च तम्।
प्राकृतं पुरुषं यादृक् प्राकृता हि वराङ्गना॥ ४४॥

इसीलिये मैंने एक बार दक्ष प्रजापति के घर में जन्म लेकर उन भगवान् शङ्कर को मुग्ध किया था और हम दोनों साधारण स्त्री-पुरुष की तरह एक साथ रहे।। ४४।।

दक्षस्य सुकृते क्षीणे युवाभ्यां समुपासिता।
तद्गृहाद्युवयोर्गेहे जातास्मि हरमोहिनी॥ ४५॥
सोऽपि मामेव संलब्धुं तपश्चरति शङ्करः।
सतीविरहदुःखार्तः सुचिरं परमेश्वरः॥ ४६॥
तस्मै प्रतिश्रुतमतः पुनः प्राप्स्यामि तं पतिम्॥ ४७॥

दक्ष का पुण्य क्षीण होने पर आप दोनों (पर्वतराज एवं मेनका) ने मेरी उपासना की। अतः दक्षगृह से आकर आप लागों के घर में, भगवान् शङ्कर को मुग्ध करने का सङ्कल्प लेकर ही, जन्म लिया। उधर वे भगवान् शङ्कर भी मुझे ही प्राप्त करने के लिये यहाँ इतना उग्र तप कर रहे हैं। वे भगवान् शङ्कर बहुत समय से सतीविरहजन्य पीड़ा से दुःखी हैं। उनको मैंने वचन दे रखा है। अतः उन्हें मैं पति के रूप में पुनः प्राप्त करूँगी।। ४५–४७।।

तेनाहमनुयास्यामि यत्रास्ते चन्द्रशेखरः।
समस्तैः प्रमथैः सार्धं तपोनिष्ठः सुनिर्जने॥ ४८॥

मैं उनका वहाँ अनुसरण करूँगी जहाँ वे भगवान् चन्द्रशेखर अपने समस्त अनुचरों के साथ इस निर्जन स्थान में तपःसाधना में रत हैं।। ४८।।

तत्र स्थित्वा महादेवं मोहयिष्याम्यहं तथा।
यथा योगं परित्यज्य भार्यार्थे मां ग्रहीष्यति''॥ ४९ ॥

वहाँ रहकर मैं उन भगवान् शङ्कर को इस तरह सम्मोहित करूँगी कि जिससे वे योग समाधि छोड़कर अपनी भार्या के रूप में मुझे ग्रहण कर लें''।। ४९।।

इति तस्या वचः श्रुत्वा स्मृत्वा नारदभाषितम्।
गिरीन्द्रस्तनयां नेतुं प्रार्थितः शिवसन्निधिम्।
मनश्चक्रे मुनिश्रेष्ठ! सहसैव महामतिः॥ ५०॥
मेनाशु पार्वतीं कृत्वा स्वाङ्के साश्रुविलोचना।
रुरोद मुक्तकण्ठी सा सुतामाह मुनीश्वर॥ ५१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अपनी पुत्री के ये वचन सुनकर तथा नारद मुनि द्वारा कही गयी उस बात को स्मरण कर जिसमें उन्होंने पार्वती को शिव के पास पहुँचाने का निर्देश दिया था। पर्वतराज हिमालय ने पार्वती को शिव के पास जाने की अनुमति देने का मन बना लिया। परन्तु इसी समय मेनका ने आँखों में आँसू भरकर पार्वती को गोद में लेकर गला फाड़कर रोना प्रारम्भ किया और हे मुनीश्वर! वह अपनी पुत्री से यों बोली—।। ५०–५१।।

''हा मातः प्राणतुल्यासि कमनीयकलेवरा।
मां विहाय कथं तीव्रं काननं गन्तुमर्हसि?'॥ ५२॥

''हे पुत्रि! तूँ मुझे प्राणों के समान प्रिय है। तेरा शरीर कोमल है। मुझे छोड़कर तुम इस गहन वन में क्यों जा रही हो?'' तब उस पार्वती ने अपनी माता को बार–बार शान्त्वना देते हुए।। ५२।।

ततस्तां पार्वती प्राह सान्त्वयित्वा मुहुर्मुहुः।
विमृज्य नयने तस्याश्चारुहस्ताम्बुजेन वै॥ ५३॥

तथा अपने हाथों से उसकी आँखों के आँसू पोंछते हुए यह कहा— ''हे माता! आप तो बुद्धिमती हैं, फिर मेरे लिये क्यों चिन्ता कर रही हैं?।। ५३।।

पार्वती०— **''मातस्त्वं सुमतिर्मेऽर्थे नानुशोचितुमर्हसि।**
अशोच्याहं तव सुता ज्ञात्वा किमिति मुह्यसि॥ ५४॥
अहं प्रकृतिराद्यास्मि नित्यानन्दमयी स्वयम्।
न मेऽस्ति दुःखं कुत्रापि काननेऽपि गृहेऽपि वा॥ ५५॥

अहं श्मशानसंवासा महाकाली शवासना।
न मेऽस्ति निर्जने भीतिर्मातस्त्वं सुस्थिरा भव॥ ५६॥
विमोह्य तं महादेवं पुनरायामि निश्चितम्।
अहं प्राप्य पतिं शम्भुं यास्यामि शिवसन्निधिम्''॥ ५७॥

पार्वती— 'मैं तुम्हारी पुत्री हूँ'— इसलिये आप मेरे लिये कोई चिन्ता न करें; क्योंकि मैं साधारण स्त्री नहीं हूँ। मैं तो स्वयं आद्या प्रकृति देवी हूँ। मैं नित्यानन्दमयी हूँ। मुझे कोई दुःख नहीं सता सकता; फिर मैं भले ही घर में रहूँ या वन में। मैं तो श्मशान की रहने वाली हूँ। मैं महाकाली हूँ। शव ही मेरा आसन है। हे माता! मुझे एकाकी रहने में कोई भय नहीं है। आप निश्चिन्त रहिये। उन भगवान् शङ्कर को अपने में आसक्त कर मैं शीघ्र ही पुनः यहाँ लौट आऊँगी। मैं अपने पतिदेव भगवान् शङ्कर को पाकर उन्हीं के पास रहना चाहती हूँ''॥ ५४–५७॥

श्रुत्वैतद्वचनं मेना पार्वत्या भयदं महत्।
उमेति विस्मिता प्राह तेनोमाख्यां जगाम सा॥ ५८॥

उस (पार्वती) के भीषण भय प्रदान करने वाले ये वचन सुनकर भयभीत होकर मेनका देवी के मुख से 'उमा' (ओ माँ!) ऐसा शब्द निकल पड़ा, तभी वह पार्वती 'उमा' इस नाम से लोक में विख्यात हो गयी॥ ५८॥

ततः प्राह गिरिं मेना ''कन्या मे हरसन्निधिम्।
यदि यास्यति तर्हीमे सख्यौ यातां तया सह।
साहाय्यं कुरुतामस्याः फलपुष्पादिभिः सदा''॥ ५९॥

तब मेना ने पर्वतराज हिमालय से कहा—''यदि पार्वती जाने का ही आग्रह करती है तो इसके साथ इसकी दोनों सखियाँ भी रहेंगी, ताकि ये दोनों वहाँ फल–पुष्पादि लाने में इसकी सदा सहायता कर सकें''॥ ५९॥

श्रुत्वैतद्वचनं गिरीन्द्रदुहितुस्ताभ्यां समं तां सुताम्,।
आत्मीयां गिरिपुङ्गवः समनयच्छ्रीविश्वनाथान्तिकम्॥ ६०॥
सर्वे देवगणाः समीक्ष्य चरितं हर्षेण युक्तास्तदा,।
वृष्टिं पुष्पमयीं महेशविपिने चक्रुः समस्ता मुने!॥ ६१॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे शिवतपोवर्णनं
नामैकविंशतितमोऽध्यायः॥ २१॥

पर्वतराज हिमालय ने, अपनी पत्नी के ये वचन सुनकर, उन दोनों सखियों के साथ अपनी पुत्री पार्वती को भगवान् शङ्कर के पास पहुँचा दिया। यह घटना देखकर सभी देवता प्रमुदित हुए। हे मुने! उस समय उन सभी देवताओं ने भगवान् शङ्कर के तपःस्थल पर पुष्पवृष्टि की।। ६०–६१ ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण के
श्रीमहादेवनारदसंवाद में 'शिवतपोवर्णन' नामक
इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

बाईसवाँ अध्याय

[कामदाहवर्णन]

हिमालय द्वारा पार्वती को भगवान् शङ्कर के पास पहुँचाना

श्रीमहादेव०— ततो गिरीन्द्रः प्रोवाच महादेवं महामतिः।
प्रणिपत्याग्रतः स्थित्वा विनयेन महामुने!॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले— तब महामति पर्वतराज हिमालय भगवान् शङ्कर को प्रणाम कर, उनके सम्मुख बैठकर नम्रता के साथ यों बोले—॥ १ ॥

हिमालय०— ''भगवन्मम पुत्रीयं स्थित्वा त्वत्सन्निधौ शिव !
करिष्यति यथाभीष्टं शुश्रूषणपरायणा॥ २ ॥
सखीभ्यां सहिता नित्यं फलपुष्पजलादिभिः''॥ ३ ॥

हिमालय— ''हे भगवान् शङ्कर! यह मेरी पुत्री अपनी दोनों सखियों के साथ आपके पास रहकर आपकी इच्छानुकूल वन से फल-फूल जलादि लाकर आपकी सेवा करेगी''॥ २-३ ॥

श्रीमहादेव०— ततः शम्भुर्महायोगी तां ज्ञात्वा ज्ञानचक्षुषा।
भद्रमाह गिरिश्रेष्ठं प्रहृष्टात्मा महामतिः॥ ४ ॥

श्रीमहादेव— तब उन भगवान् शङ्कर ने अपने ज्ञानचक्षु से उस कन्या के विषय में जाना तो उस महामति ने पर्वतराज को शुभाशीर्वचन कहे॥ ४ ॥

ततो गिरीन्द्रः प्रययौ पुनः स्वस्थानमुत्तमम्।
संस्थाप्यैवं महायोगी महेशनिकटे मुने!॥ ५ ॥

हे मुने! यों वह पर्वतराज अपनी कन्या को महायोगी भगवान् शङ्कर के पास छोड़कर पुनः अपने आवास पर लौट आया॥ ५ ॥

इत्येवं प्रार्थिता देवी हरेण तपसा स्वयम्।
संस्थिता विपिने तत्र भक्तानुग्रहतत्परा॥ ६ ॥

इस प्रकार भगवान् शङ्कर की तपस्या द्वारा स्वयं प्रार्थित वह देवी भक्त के अनुग्रह में तत्पर रहती हुई उसी वन में ठहर गयी॥ ६ ॥

शिवस्तु स्वान्तरस्थां तां ध्यायमानः समुत्सुकः।
जग्राह सहसा नैव भार्यार्थेन महेश्वरीम्॥ ७ ॥

भगवान् शङ्कर उस देवी को हृदय से चाहते हुए उसके प्रति उत्कण्ठित थे, परन्तु उसको उन्होंने सहसा अपनी भार्या के रूप में नहीं स्वीकार किया।। ७।।

देवताओं द्वारा भगवान् के सम्मोहन का प्रयास

आत्मेच्छाभून्महादेव्या महादेवविमोहने।
अतो देवाश्च यच्चक्रुस्तच्छृणुष्व महामुने!॥ ८॥

हाँ, उस देवी की जब उस शङ्कर को मुग्ध करने की इच्छा हुई उस समय देवताओं ने जो कुछ किया, हे महामुने! उसे मैं तुम्हें विस्तार से बताता हूँ।। ८।।

तारकेणार्दिता देवाः प्रययुर्ब्रह्मसन्निधिम्।
प्रणिपत्याथ तं प्राहुर्ब्रह्माणं जगतः पतिम्॥ ९॥

तारकासुर द्वारा पीड़ित देवतागण ब्रह्मा जी के पास पहुँचे। वहाँ वे लोग उन जगत्पति ब्रह्मा जी को प्रणाम कर यों निवेदन करने लगे—।। ९।।

शृणु ब्रह्मन् त्रिलोकेश तारकोऽसुरपुङ्गवः।
निर्जित्यास्मान् रणे सर्वान् स्वयमिन्द्रो बभूव ह॥ १०॥

"हे लोकपति ब्रह्मन्! आप हमारा निवेदन सुनिये— यह तारकासुर हम सब लोगों को युद्ध में पराजित कर स्वयं इन्द्र बन बैठा है।। १०।।

त्वद्दत्तवरदर्पिष्ठः सर्वानेव दिवौकसः।
भ्रष्टराज्यान्भ्रष्टदारान् स चक्रे तारकोऽसुरः॥ ११॥

आप का वर पाकर वह इतना उन्मत्त हो गया है कि उसने सभी देवताओं को उनके राज्य तथा पारिवारिक जनों से पृथक् कर दिया।। ११।।

इन्द्रश्चन्द्रश्च वरुणो यमोऽग्निर्निर्ऋतिस्तथा।
वायुः कुबेर एतस्य सदाज्ञापरिपालकाः॥ १२॥

इन्द्र, चन्द्र, वरुण, यम, अग्नि तथा निर्ऋति, वायु, कुबेर— ये सब इसके आज्ञापालक हो गये।। १२।।

यत्र यत्र वयं यामस्तत्र तत्र महासुरः।
पातालमपि सङ्गम्य प्रजाः सम्बाधतेऽनिशम्॥ १३॥

हम लोग जहाँ भी जाते हैं वह असुर वहीं पहुँचकर, यहाँ तक कि पाताल तक, हम लोगों का पीछा करता हुआ हमको तथा हमारी प्रजा को पीड़ित करता रहता है।। १३।।

एवं तेन हृतं सर्वं त्रैलोक्यं बलशालिना।
उपायं नहि पश्यामस्त्वामृते त्रिजगत्पते!॥ १४॥

इस तरह उस बलशाली असुर ने हमसे सब कुछ छीन लिया। हे तीनों लोको के स्वामी जगत्पते! अब आप की शरण में आने के अतिरिक्त हमें इसके प्रतिरोध का अन्य कोई उपाय नहीं सूझ रहा है।। १४।।

वधो वा चिन्त्यतां तस्य स्थानं वा कल्प्यतां च नः।
विधीयतां विधेयं यत्त्वं कर्ता त्रिजगत्पते!"॥ १५॥

अतः हे जगत्पते! अब या तो आप इसके वध का ही कोई उपाय सोचिये या हमारे लिये ऐसा शरणस्थल बताइये, जहाँ रहकर हम उससे अपनी तथा स्वकीय प्रजा की रक्षा कर सकें"।। १५।।

ब्रह्मा०— **"ममैव वरदानेन वर्धितस्तारकासुरः।**
न तस्य मरणे चेष्टा युज्यते समरे मम॥ १६॥

ब्रह्मा— "देवगण! तुम लोगों का यह कथन सत्य है कि वह तारकासुर मेरे ही वरदान के कारण इतना दम्भ एवं दर्प प्रकट कर रहा है। अब मैं भी उससे युद्ध कर उसे मारने की चेष्टा नहीं कर पाऊँगा।। १६।।

प्रतीकारस्तु युष्माकं कर्तव्यः सर्वथा मया।
किन्तु सम्यङ्न शक्नोमि तपसा तोषितो यतः॥ १७॥

फिर भी तुम्हारी रक्षा के लिये उसका कुछ न कुछ प्रतीकार भी मुझे करना ही पड़ेगा। हाँ! मैं वर देकर बँध गया हूँ। मैं स्वयं अधिक कुछ कर नहीं सकता।। १७।।

उपदेशं ब्रवीम्येकं शृणुध्वं सुरसत्तमाः।
न हरिर्न हरो नाहं न यूयं तस्य घातकाः॥ १८॥

परन्तु, देवश्रेष्ठों! मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ, उसे तुमलोग सुनो। अब उसे न तो भगवान् विष्णु, न भगवान् शङ्कर, न मैं न आप लोगों में से कोई मार सकता है।। १८।।

ऋते महेशतनयं न हन्ता तस्य विद्यते।
ततो यथा महादेवः शीघ्रं दारपरिग्रहम्।
करोति सन्त्यजन्योगं चिन्तां तत्कुरुत द्रुतम्॥ १९॥
हिमालयगृहे जाता लीलया प्रकृतिः स्वयम्॥ २०॥

केवल भगवान् शङ्कर का पुत्र ही उसको मार सकता है। अतः आप

स तु विश्वेश्वरो योगी संसारविमुखः स्वयम्।
कस्तस्याग्रे वदेद्भार्यां गृहाण परमेश्वर॥ ३४॥

किन्तु वे विश्वाधिपति भगवान् शङ्कर स्वयं संसार से विरक्त होकर इस समय तपस्यारत हैं। अब उनके सम्मुख जाकर कौन कहे कि आप किसी को पत्नी के रूप में स्वीकार करें।। ३४।।

ब्रह्मणा कथितं यत्नं कर्तुं तस्य विमोहने।
तत्रोपायं न पश्यामि कस्तं सम्मोहयिष्यति"॥ ३५॥

ब्रह्माजी ने उनको सम्मोहित करने की बात अवश्य बतायी है। परन्तु उनके सम्मोहन का क्या उपाय है?– यह भी तो कोई बतावे"।। ३५।।

वृहस्पति०—**"उपायोऽस्ति महाराज! महादेवविमोहने।**
भविष्यत्यचिरेणैव ध्यानभङ्गो महेशितुः॥ ३६॥

वृहस्पति– "हे महाराज! उन भगवान् शङ्कर के विमोहन का भी उपाय है। उसे करने से शीघ्र ही उनका ध्यानभङ्ग हो सकता है।। ३६।।

या दक्षतनया देवी महेशगृहिणी स्वयम्।
सा जाता मेनकागर्भे हिमालयसुताधुना॥ ३७॥

दक्ष की पुत्री सती, जो पहले भगवान् शङ्कर की भार्या थी, अब हिमालय की पुत्री के रूप में मेनका के गर्भ से पैदा हुई है।। ३७।।

तामेव पत्नीं संलब्धुं विश्वेशस्तपसि स्थितः।
सन्ध्याय परमं रूपं तस्या एव महामते!॥ ३८॥

हे महामते! उसको पत्नी के रूप में पाने के लिये उसके रूप को ध्यान में रखकर शङ्कर तपस्यारत हैं।। ३८।।

अन्यथा देवदेवस्य सर्वथा विजितात्मनः।
किं कार्यं तपसोग्रेण योगिध्येयस्य विद्यते॥ ३९॥

अन्यथा वे तो देवाधिदेव हैं, सर्वथा आत्मनिग्रही हैं। उनको ऐसी उग्र तपस्या से कोई अन्य प्रयोजन क्या हो सकता है?।। ३९।।

सापि तुष्टा महेशस्य निकटं समुपागता।
स्थिता चाऽविरतं शम्भोरन्तिके भक्तवत्सला॥ ४०॥

वह देवी भी सन्तुष्ट होकर उनके पास पहुँच गयी हैं। वह भक्त-वत्सला देवी निरन्तर उन्हीं की सेवा में रह रही हैं।। ४०।।

कामादयो महेशस्य चिरं योगविचिन्तनात्।
विनष्टास्तेन शम्भुस्तां न गृह्णाति कदाचन॥ ४१॥

परन्तु उन भगवान् शङ्कर के, चिर काल तक समाधिरत रहने के कारण, सभी कामादि विकार नष्ट हो चुके हैं, अतः वे उस देवी को भार्या रूप से स्वीकार नहीं कर रहे हैं।। ४१।।

तस्मात्कुसुमधन्वानं सर्वलोकविमोहनम्।
समाहूय महेशस्य ध्यानभङ्गे नियोजय॥ ४२॥

अतः अब ऐसा कीजिये कि समग्र जगत् के मोहक, फूलों के धनुष वाले कामदेव को बुलाकर उन्हें भगवान् शङ्कर के ध्यानभङ्ग में लगाइये।। ४२।।

तस्येषुणा हि विद्धस्तु योगचिन्तापराङ्मुखः।
ग्रहीष्यति पुनः पत्नीं पार्वतीमचिरेण वै"॥ ४३॥

उसके बाण से विद्ध होकर वे भगवान् शीघ्र ही उस पार्वती देवी को भार्या के रूप में स्वीकार करने के लिये सन्नद्ध हो जायँगें"।। ४३।।

श्रीमहादेव०— इत्युक्तो गुरुणा तेन देवराजो महामतिः।
आहूय पुष्पधन्वानं वचनं चेदमब्रवीत्॥ ४४॥

श्रीमहादेव जी बोले— यों उस महामति देवराज को जब सुरगुरु ने समझाया तो देवराज ने पुष्पधन्वा कामदेव को बुलाकर यह आदेश दिया—।। ४४।।

इन्द्र०— "काम! त्वं देवगन्धर्वनरकिन्नररक्षसाम्।
तथान्येषां च जन्तूनां सदा प्रीतिविवर्धकः॥ ४५॥

इन्द्र— "हे कामदेव! आप देव, गन्धर्व, मानव, किन्नर, राक्षस तथा अन्य सभी प्राणियों के लिये प्रीतिवर्धक कार्य करने वाले हैं।। ४५।।

त्वमेकं मे महाकार्यं त्रैलोक्यप्रीतिवर्धनम्।
कृत्वा जगदिदं सर्वं परिरक्ष ममाज्ञया॥ ४६॥

अब आप एक ऐसा कार्य भी कीजिये जो सर्व जगत् की प्रीति का वर्धक हो सकता है। इसे पूर्ण कर समग्र जगत् की रक्षा कीजिये। यही मेरी आज्ञा है"।। ४६।।

कामदेव०—"त्वदाज्ञापालकाः सर्वे वयं देवगणाधिप!
किं कार्यं भवतो भीमं करिष्येऽपि सुदारुणम्॥ ४७॥

कामदेव— "हे देवगण के अधिपति! हम सब तो आप की आज्ञा के पालक हैं। आप का कितना भी कठोर या भयानक कार्य क्यों न हो, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।। ४७।।

यस्य वक्षसि ते वज्रं विष्णुचक्रं च शीर्यते।
तं भिन्दन्ति शराः पञ्च मम पुष्पमयाः क्षणात्॥ ४८॥

जहाँ आपका वज्र तथा भगवान् विष्णु का चक्र— कुण्ठित हो जाते हैं, वहाँ मेरे ये पुष्पबाण क्षणमात्र में उस कार्य को सिद्ध कर देते हैं ।। ४८ ।।

इमे च तादृशाः पञ्च बाणा मेऽव्यर्थसंज्ञकाः ।
तथा पुष्पमयं चापं ब्रह्माण्डक्षोभकारकम् ॥ ४९ ॥

ये मेरे पाँचों बाण ऐसे अमोघ हैं जो कभी व्यर्थ नहीं जाते। तथा मेरा यह फूलों से बना धनुष् तो ब्रह्माण्ड को भी क्षुब्ध करने की शक्ति रखता है ।। ४९ ।।

मन्त्री वसन्तः पवनो यन्ता मलयसम्भवः ।
मित्रं शशाङ्कः पत्नी मे रतिस्त्रैलोक्यमोहिनी ॥ ५० ॥

मेरा मन्त्री वसन्त है, मलय (चन्दन) से उत्पन्न वायु सेनापति है, चन्द्रमा मेरा मित्र है तथा मेरी पत्नी रति तो त्रैलोक्यमोहिनी है ही ।। ५० ।।

एतान्सहायान्सम्प्राप्य कस्य किं कर्तुमक्षमः!
अपि विश्वेश्वरं देवं योगचिन्तापरायणम् ॥ ५१ ॥
जितेन्द्रियं मोहयेयं क्षणार्धे यदि मन्यसे" ॥ ५२ ॥

इतने सहायकों की सहायता से मैं किसके लिये क्या नहीं कर सकता? भले ही फिर वे समाधिनिष्ठ भगवान् शङ्कर ही क्यों न हो! बड़े से बड़े जितेन्द्रिय पुरुषों को भी मैं आधे ही क्षण में मुग्ध कर सकता हूँ ।। ५१, ५२ ।।

इन्द्र०— "यदर्थं त्वं समानीतस्तत्त्वं हि स्वयमुक्तवान् ।
प्राज्ञेषु वचनापेक्षा प्रायशो नैव विद्यते ॥ ५३ ॥

इन्द्र— "जिस कार्यविशेष के लिये आप बुलाये गये हैं उसे आप स्वयं अपने ही मुख से कह रहे हैं। प्रायः बुद्धिमान् पुरुषों को मुख से कहकर कुछ नहीं बताना पड़ता ।। ५३ ।।

तारकः सकलान्देवान्बाधतेऽहर्निशं बलात् ।
ज्ञायते तत्त्वया चापि तत्किं ते प्रवदाम्यहम् ॥ ५४ ॥

यह तारकासुर सभी देवताओं को दिनरात हठपूर्वक त्रस्त करता रहता है। यह आप भी भलीभाँति जानते हैं, इस विषय में मैं अधिक क्या कहूँ! ।। ५४ ।।

ब्रह्मणा कल्पितो मृत्युस्तस्य नूनं महात्मनः ।
महेशतनयस्यैव हस्तान्नान्यस्य कस्यचित् ॥ ५५ ॥

उस दुष्टात्मा की मृत्यु विधाता ने भगवान् शङ्कर के पुत्र के ही हाथों लिखी हैं, अन्य किसी से नहीं ।। ५५ ।।

श्रूयते हिमवत्प्रस्थे तपश्चरति शङ्करः।
जितेन्द्रियो महायोगी संसारविमुखः सदा॥ ५६॥

सुनते हैं, हिमालय के किसी शिखर पर बैठकर भगवान् शङ्कर तपस्यारत हैं, जो कि संसार से अनासक्त हैं, जितेन्द्रिय हैं, महान् योगी हैं॥ ५६॥

आद्या सनातनी शक्तिः पूर्वं या दक्षकन्यका।
महेशवनिता सैव जाता हिमवतः सुता॥ ५७॥
सापि तस्यान्तिके तस्मिन्प्रस्थे तिष्ठति साम्प्रतम्।
आरूढयौवना देवी स्त्रीरत्नमतिसुन्दरी॥ ५८॥

पहले कभी दक्षकन्या के रूप में आद्या अविनाशिनी शक्ति भगवान् शङ्कर की भार्या बनी थी, वही अब पुनः हिमालय पुत्री के रूप में उसी शिखर पर आजकाल युवावस्था प्राप्त कर अति- सुन्दर श्रेष्ठ नारी बनी हुई उनके साथ रह रही हैं॥ ५७, ५८॥

तां नेहते महादेवो मनसापि कदाचन।
योगचिन्तापरं तत्त्वं मोहयाशु ममाज्ञया॥ ५९॥

भगवान् शङ्कर की उनमें कामिनी के रूप में कोई स्पृहा नहीं है। अतः योगनिष्ठा में रत उन भगवान् शङ्कर को, वहाँ जाकर मेरी आज्ञा से, सम्मुग्ध करो॥ ५९॥

यथा सत्यां सानुरागो रेमे स वृषभध्वजः।
तथा गिरिजया सार्धं रमेत योगमुत्सृजन्॥ ६०॥

तूँ ऐसा कुछ उपाय कर कि वे जैसे दक्षकन्या सती में पहले आसक्त थे उसी तरह आज भी, अपनी तपःसाधना त्याग कर हिमपुत्री पार्वती में आसक्त हो जायँ॥ ६०॥

तथा विधत्स्व लोकानां हिताय कुसुमायुध!
त्वत्प्रसादादिमे देवा भवन्तु विगतज्वराः॥ ६१॥
सुस्थानि सन्तु लोकानि स्थावराणि चराणि च''॥ ६२॥

हे पुष्पायुध! प्राणिहित में आप कुछ ऐसा करें कि आप की कृपा से यह समग्र चराचर जगत् स्वस्थ तथा प्रसन्न हो जाय''॥ ६१, ६२॥

श्रीमहादेव०— इत्याकर्ण्य वचः कामो देवराजस्य विस्मृतम्।
सस्मार ब्रह्मणा दत्तमपि शापं सुदारुणम्॥ ६३॥

श्रीमहादेव जी— कामदेव को देवराज, के ये वचन सुनकर इतने दिन से भूला हुआ, ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त शाप भी स्मरण हो आया।। ६३ ।।

''यदा शस्त्रपरीक्षार्थं सन्ध्यां प्रति विधावतः।
अताडयम् पुष्पबाणैस्तदा मामशपद्विधिः॥ ६४॥

जब मैंने शस्त्रपरीक्षा के समय सन्ध्या पुत्री की तरफ दौड़ते हुए विधाता को अपने पुष्पबाणों से बींध दिया था, तब विधाता ने उसको यह शाप दिया था।। ६४ ।।

'हरनेत्राग्निनिर्दग्धो भविष्यसि मनोभव!
क्षिप्त्वा तदङ्गे बाणाँस्तु देवकार्यानुरोधतः'॥ ६५॥

'हे कामदेव! देवकार्य की निष्पत्ति हेतु जब तूँ भगवान् शङ्कर के अङ्गों पर बाण चलायगा तो उनके क्रुद्ध नेत्रों से निःसृत अग्नि से तूँ जल जायगा'।। ६५ ।।

सोऽयं मे समयः प्राप्तः शापकालोऽनिवारितः।
दैवं न पुरुषः कोऽपि शक्तो लङ्घयितुं क्वचित्''॥ ६६॥

आज वह शाप पूर्ण होने का समय अनिवार्य रूप से आ गया। उसे अब कोई पुरुष या देवता रोक नहीं सकता।। ६६ ।।

इति स्मृत्वा विधेः शापं विषण्णोऽपि मनोभवः।
अङ्गीकारवशात् तत्र नान्यथा व्याहरन्मुने!॥ ६७॥

इस तरह विधाता द्वारा दिये गये उस शाप का स्मरण कर यद्यपि कामदेव दुःखी हुए, परन्तु क्योंकि बात स्वीकार की जा चुकी थी, अतः उसके विपरीत उसने न कुछ किया, न कहा।। ६७ ।।

उवाच देवराजाहम्—''करिष्ये यत्त्वयोदितम्।
मोहयिष्ये यतात्मानं शिवं परमयोगिनम्॥ ६८॥

फिर वह इन्द्र से बोले— ''हे देवराज! मैं वही करूँगा जो आपका आदेश है। मैं उस परमयोगी भगवान् शङ्कर को अवश्य सम्मुग्ध करूँगा।।६८।।

किन्तु क्रुद्धो महादेवो यदि मां नाशयेत्प्रभो!
तदा देवगणैः सार्धं मदर्थे संयतिष्यसि''॥ ६९॥

किन्तु हे प्रभो! उस कार्य से क्रुद्ध होकर वे भगवान् शङ्कर मुझे नष्ट करने का सोचें तो आप, देवगणों के साथ मिलकर, मुझको उनसे बचाने का प्रयत्न कीजियेगा''।। ६९ ।।

इन्द्रोऽपि तमुवाचाथ समाश्वास्य पुनः पुनः।
त्वदर्थेऽहं यतिष्यामि सर्वैः सुरगणैः सह"॥ ७०॥

यह सुनकर इन्द्र ने उसको इसकी बार बार स्वीकृति एवं सान्त्वना दी कि ऐसा यदि होगा तो मैं देवताओं के साथ मिलकर तुम्हें उनसे बचाने का प्रयास करूँगा।। ७०।।

ततः कामो ययौ शीघ्रं महेशस्य तपोवनम्।
सरतिर्मधुना सार्धं महेन्द्राज्ञाप्रमाणतः॥ ७१॥

तब वे कामदेव शीघ्र ही, देवराज की आज्ञा से, अपनी पत्नी रति एवं मित्र वसन्त के साथ भगवान् शङ्कर के तपोवन की तरफ चल पड़े।। ७१।।

तत्र आज्ञापयामास सर्वानेव दिवौकसः।
त्रिदशाधिपतिः—"यूयं गच्छताशु ममाज्ञया॥ ७२॥
कामोऽयं देवकार्यार्थं करिष्यति सुदारुणम्।
हरसम्मोहनं कार्यं मम वाक्यप्रचोदिताः॥ ७३॥
यूयं कुरुध्वं साहाय्यं यत्र यत्र व्रजेत्स्मरः।
अनुगम्य च तत्रैनं प्रबोधयत मां तदा"॥ ७४॥

उसी समय देवराज इन्द्र ने सभी देवताओं को आज्ञा दी– "आप लोग शीघ्र ही मेरी आज्ञा से वहाँ जायँ जहाँ देवताओं के परित्राण हेतु ये कामदेव जब भगवान् शङ्कर का सम्मोहन करे तब आप लोग इनकी सहायता करें। जहाँ जहाँ ये कामदेव जायँ वहाँ वहाँ आप लोग इसका अनुगमन करते हुए मुझे सूचित करें"।। ७२–७४।।

यदा तु पुष्पधन्वैनं महारुद्रं महौजसम्।
सम्मोहनेन बाणेन सम्मोहयितुमारभेत्॥ ७५॥

जब ये पुष्पधनुर्धारी कामदेव महान् ओजस्वी उन भयङ्कर रुद्र को अपने सम्मोहनवाणों से मुग्ध करने का प्रयत्न प्रारम्भ करें।। ७५।।

आगमिष्याम्यहं तत्र रक्षार्थं पुष्पधन्वनः"॥ ७६॥

तो मैं भी उसी समय इन पुष्पधनुर्धारी कामदेव की रक्षा हेतु वहाँ पहुँच जाऊँगा"।। ७६।।

इत्युक्ता देवराजेन त्रिदशाः सर्व एव ते।
अनुजग्मुः कामदेवरक्षार्थं सुसमाहिताः॥ ७७॥

हे महामुने! देवराज द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वे सभी देवगण कामदेव की रक्षा हेतु उसका अनुगमन करने को सन्नद्ध हुए।। ७७।।

कामदेव का भगवान् शङ्कर पर आक्रमण

कामः प्रविश्य सहसा महादेवाश्रमं मुने!
संस्थितो मधुना सार्धं कियत्कालं सह स्त्रिया॥ ७८॥
न ददर्श महेशस्य छिद्रं किमपि येन सः।
प्रविश्यति शरीरेऽस्य कामः सर्वविमोहकः॥ ७९॥

उधर कामदेव भी उक्त कार्यपूर्ति हेतु एकाएक भगवान् शङ्कर के आश्रम में प्रविष्ट हुए। उन्होंने कुछ समय, अपनी स्त्री रति तथा मित्र वसन्त के साथ प्रतीक्षा की। परन्तु उतने समय तक उसे भगवान् शङ्कर में ऐसी कोई दुर्बलता नहीं दिखायी दी कि जिसके सहारे उन पर आक्रमण किया जा सके या जिसके सहारे उनके शरीर में प्रविष्ट हुआ जा सके॥ ७८-७९॥

वसन्तागमनात्सर्वे किंशुकाः केसरादयः।
पुष्पिता बहवश्चान्ये तरवो मुनिसत्तम!॥ ८०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वसन्त के आगमन से भगवान् शङ्कर के आश्रम के आस-पास सभी वृक्ष, लता, झाड़ी एवं क्षुप (पौधे) सभी फूलों से लद गये॥ ८०॥

मल्लिका मालती जाती पुष्पिता मालती लता।
सरांसि च सपद्मानि बभूवुस्तत्समागमात्॥ ८१॥

मल्लिका (बेला) मालती (जूही) जाती (चमेली) आदि सभी लताएँ फूलों से खिल उठीं। तथा सरोवरों के सभी कमलवन पुष्पित हो उठे॥ ८१॥

गुञ्जायमानाः कामेन प्रमत्ता मधुरस्वनाः।
द्विरेफमालाः पुष्पेषु विहरन्त्यः परस्परम्॥ ८२॥

वे सभी पुष्पित स्थान काम से प्रमत्त भौरों द्वारा गुञ्जायमान हो उठे। भौरों के समूह पुष्पों पर भ्रमण करते हुए परस्पर मधुर स्वर में गुञ्जन करने लगे॥ ८२॥

ववौ वायुर्मलयजः शैत्यसौगन्ध्यमान्द्यवान्।
सुप्रभोऽभून्निशानाथो देहिनः स्युः समुत्सुकाः॥ ८३॥

उस समय मलयजन्य शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहने लगा। चन्द्रमा की कान्ति वृद्धिङ्गत हो गयी। सभी प्राणी समुत्कण्ठित हो गये॥ ८३॥

तपश्चरन्तः सिद्धाश्च कामेन परिमोहिताः।
शृङ्गारभावमापन्नाः किन्नराद्यास्तथाभवन्॥ ८४॥

वसन्त के प्रभाव से वहाँ तपस्या में रत सिद्धगण भी उस समय काममुग्ध हो गये। अन्य किन्नर आदि भी अपना अपना शृङ्गार करने लगे॥ ८४॥

ये चान्ये तद्वनस्थाश्च जन्तवो मुनिसत्तम!
ते सर्वे विकला आसन् कामेन परिमोहिताः ॥ ८५ ॥

हे मुनिवर! इनके अतिरिक्त उस वन में रहने वाले अन्य प्राणी भी काममुग्ध होकर विकल हो उठे।। ८५।।

सविकारा गणाश्चासन्महेशस्य महात्मनः।
नासीत्तथापि रुद्रस्य ध्यानभङ्गो मनागपि ॥ ८६ ॥

इतना ही नहीं, महात्मा भगवान् शङ्कर के अनुचरों (गणों) का भी चित्त उस वसन्त के प्रभाव से कामविकृत हो गया। परन्तु इतने पर भी भगवान् शङ्कर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उनका ध्यानभङ्ग रंचमात्र नहीं हुआ।। ८६।।

निश्चलं शङ्करं वीक्ष्य विषण्णश्चापमुद्वहन्।
अग्रेसरोऽभवत्कामस्तदा रत्या निवारितः ॥ ८७ ॥

भगवान् शङ्कर को इस अवस्था में भी निश्चल देखकर, कामदेव बहुत चिन्तित हुए। तब वे, अपनी पत्नी रति द्वारा निषेध करने पर भी, आगे बढ़े।। ८७।।

ज्वलत्कालाग्निसङ्काशं कोटिसूर्यसमप्रभम्।
योगचिन्तापरं देवं कः समासादितुं क्षमः ॥ ८८ ॥

यद्यपि वे जानते थे कि जलती हुई प्रलयाग्नि के समान तथा करोड़ों देदीप्यमान सूर्यों के तुल्य उन समाधिनिष्ठ भगवान् शङ्कर के समीप कौन पहुँच सकता है!"।। ८८।।

एवमिन्द्रवचः श्रुत्वा स्वयमङ्गीकृतं स्मरन्।
सम्मोहनं महेशस्य बाणं धनुषि सन्दधे ॥ ८९ ॥

यों, इन्द्र के प्रति स्वीकृतिदायक अपने वचनों का स्मरण करते हुए कामदेव ने श्रीशङ्कर पर सम्मोहन बाण का सन्धान किया।। ८९।।

तदैव वीक्ष्य तं रूद्रं पुनः पश्चाज्जगाम ह ॥ ९० ॥

परन्तु वह भगवान् शङ्कर को देखकर पुनः पीछे लौट आया।। ९०।।

एवं निरीक्ष्य तं कामं शिवमोहपराङ्मुखम्।
स्मित्वा महेशमोहार्थं समुत्तस्थौ महेश्वरी ॥ ९१ ॥

इस तरह कामदेव को भगवान् शङ्कर के सम्मोहन कृत्य से पीछे हटते देखकर, देवी महेश्वरी मुस्कराते हुए उन भगवान् शङ्कर को सम्मुग्ध करने हेतु उनके सम्मुख पहुँची।। ९१।।

महामाया ययेदं हि मोह्यते सकलं जगत्।
सा सखीभ्यां समुत्थाय सम्मुखे संस्थिता यदा ॥ ९२ ॥

महामाया, जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् सम्मुग्ध रहता है, अपनी दोनों सखियों के साथ जब भगवान् शङ्कर के सम्मुख पहुँची।। ९२।।

तदा ध्यानं परित्यज्य महादेवस्त्रिलोचनः।
उन्मील्य चारुनेत्राणि पार्वतीं स व्यलोकयत्॥ ९३॥

तब त्रिनेत्रधारी भगवान् शङ्कर ध्यानभावना का परित्याग कर अपने सुन्दर नेत्र खोलकर, पार्वती जी को देखने लगे।। ९३।।

निरीक्ष्य तन्मुखाम्भोजं सुचारुनयनोज्ज्वलम्।
निश्चलाक्षः स्थितः शम्भुः प्रहृष्टात्मा महामनाः॥ ९४॥

तब उन महात्मा प्रसन्नमन भगवान् शङ्कर की आखें, उन पार्वती के सुन्दर नेत्रों से सुशोभित मुखाकृति को देखकर खुली की खुली रह गयीं।। ९४।।

एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वैवं चन्द्रशेखरम्।
पुष्पधन्वा पुष्पबाणं समुद्यम्य हरं ययौ॥ ९५॥

इसी समय वे पुष्पधनुर्धारी कामदेव भी, भगवान् चन्द्रशेखर को इस स्थिति में देखकर, अपना धनुष् उठाकर उनके सम्मुख पहुँचे।। ९५।।

इन्द्रोऽपि समयं श्रुत्वा देववक्त्रात् समागतः।
समस्तैस्त्रिदशैः सार्धं गगने संस्थितो रथे॥ ९६॥

उसी समय, इन्द्र भी देवताओं द्वारा उनका वहाँ पहुँचना सुनकर सभी देवताओं के साथ रथ पर बैठकर आकाश में आ विराजे।।९६।।

प्रमथं प्राहिणोद् बाणं हर्षणं शङ्करोरसि।
ततः प्रहृष्टचेताः स पार्वतीं समलोकयत्॥ ९७॥

उसने सर्वप्रथम भगवान् शङ्कर की छाती में हर्षण नाम बाण मारा। तब उन्होंने प्रहृष्ट होकर पार्वतीजी को देखा।। ९७।।

एतस्मिन्नेव काले तु कामसाहाय्यकारणात्।
मनोज्ञः प्रववौ वायुः शृङ्गारः प्राविशद्धरम्॥ ९८॥

इसी समय, कामदेव के उस अद्भुत कार्य में सहायता देने हेतु, भगवान् शङ्कर के आसपास मनोहर वायु शीतल मन्द सुगन्ध रूप में बहना प्रारम्भ किया।। ९८।।

ततः पुनः समादाय पुष्पमालाविभूषणम्।
बाणं सम्मोहनं नाम पौष्पे धनुषि सन्दधे॥ ९९॥

फिर कामदेव ने भगवान् शङ्कर की तरफ पुष्पमाला से युक्त सम्मोहन नामक बाण अपने पुष्पों से बने धनुष् पर चढ़ाकर फैंका।। ९९।।

तदाभूद्दक्षिणे तस्य रतिः परमसुन्दरी।
वामे प्रीतिरभूत् पृष्ठे वसन्तः परमः सुखम्॥ १००॥

उसी समय (कामदेव की सेना ने भगवान् शङ्कर को चारों तरफ से घेर लिया) उन शङ्कर के दक्षिण की तरफ परमसुन्दरी रति (कामपत्नी) पहुँच गयी, बाँयी तरफ प्रीति तथा पीछे की तरफ परमसुखदायी वसन्त स्थित हो गया।। १००।।

कामस्तु प्राहिणोद् बाणं जगन्मोहनकारणम्।
महेशहृदये हृष्टः सर्वदेवस्य पश्यतः॥ १०१॥

तब कामदेव ने, सब देवताओं के देखते ही देखते, समग्र जगत् का मोहक बाण चलाया जो प्रमुदित शङ्कर के हृदय में प्रविष्ट हो गया।। १०१।।

मोहितस्तेन बाणेन जगन्मोहनकारिणा।
जितेन्द्रियोऽविकारः सन्नुत्सुकः सङ्गमेऽभवत्॥ १०२॥

उस जगन्मोहक बाण से विद्ध वे जितेन्द्रिय, निर्विकार भगवान् शङ्कर पार्वती के आलिङ्गन हेतु उद्यत हुए।। १०२।।

प्रशशंसुस्ततो देवाः कामदेवं मुहुर्मुहुः।
असाध्यं विद्यते नास्य कामस्यात्र जगत्रये॥ १०३।।

यह देखकर सभी देवताओं ने, कामदेव के इस अद्भुत कार्य की भूरि–भूरि प्रशंसा की कि ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे कामदेव पूर्ण न कर सकें।। १०३।।

कामदेव का दहन

ततः संस्मृत्य विश्वेशस्त्विन्द्रियाणां विनिग्रहम्।
विधाय चिन्तयामास विकारस्यास्य कारणम्॥ १०४॥

उधर भगवान् शङ्कर ने इस स्थिति में भी अपनी इन्द्रियों पर पुनः निग्रह कर अपने चित्त में आये इस विकार पर विचार किया।। १०४।।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समागत्य मनोभवम्।
पौष्पं बाणं धनुः शक्तिं प्राणमाकृष्य तत्क्षणात्।
समुत्सार्य वसन्तं च पुनः स्वस्थानमाययौ॥ १०५॥

इसी बीच पितामह ब्रह्मा वहाँ पहुँचकर, कामदेव, उनके पुष्पनिर्मित धनुष्, बाण तथा उनकी प्राणशक्ति– सबकुछ तत्काल खींच कर। साथ ही वसन्त को भी पीछे हटाकर पुनः वे अपने स्थान पर लौट आये।। १०५।।

हरः सञ्चिन्त्य मनसा कामो मामतिवर्तते।
प्रजज्वाल स च क्रोधात्कालानलनिभेक्षणः ॥ १०६ ॥
रुषा प्रज्वलितस्यास्य तृतीयनयनात्ततः।
निःससार महानग्निर्दिधक्षुर्जगतीमिव ॥ १०७ ॥
तमग्निं वीक्ष्य सम्भूतं भीताः सर्वे दिवौकसः।
उच्चैरूचुर्महादेवं कामरक्षणकारणात् ॥ १०८ ॥

उधर भगवान् शङ्कर ने समझ लिया कि मुझ पर यह आक्रमण कामदेव का ही है। तब, उन्होंने क्रोध से प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्ज्वलित तृतीय नेत्र खोला। क्रोध से प्रज्वलित इस तृतीय नेत्र से समस्त जगत् को भस्म करती हुई सी प्रबल अग्नि निकली। उस प्रज्वलित अग्नि को देखकर सभी देवता भयभीत हो गये और कामदेव की रक्षा हेतु भगवान् शङ्कर से ऊँचे स्वर में प्रार्थना करने लगे।। १०६–१०८।।

"प्रभो शिव जगन्नाथ रक्ष रक्ष मनोभवम्।
त्वया यथा नियुक्तोऽयं तथैवासौ समाचरत्।
प्रसीदास्मान्महादेव रक्षास्माकं हितैषिणम्" ॥ १०९ ॥

"हे प्रभो! हे शिव! हे जगन्नाथ! आप इस कामदेव की रक्षा करें। प्रभो! आपने इनको (देवता के रूप में) जैसा कार्यभार सौंपा था वैसा इन्होंने पूर्ण किया। हे महादेव! आप प्रसन्न होइये और हमारे इस हितैषी की रक्षा कीजिये"।। १०९ ।।

इत्येवं वदतां तेषां हरनेत्रोद्भवोऽनलः।
चकार भस्मसात्कामं सहसा मुनिसत्तम! ॥ ११० ॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे कामदाहवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ नारद! उन देवताओं द्वारा ऐसी प्रार्थना करते ही करते, उन भगवान् शङ्कर के तृतीय नेत्र से विकराल अग्नि प्रादुर्भूत हुई और उसने तत्काल ही उन कामदेव को भस्म कर दिया।। ११०।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'कामदाहवर्णन' नामक
बाईसवाँ अध्याय समाप्त॥

तेईसवाँ अध्याय

[कालीसहस्त्रनाम स्तोत्र]

श्रीमहादेव०—हरनेत्रसमुद्भूतः स वह्निर्न महेश्वरम्।
पुनर्गन्तुं शशाकाथ कदाचिदपि नारद!॥ १॥
बभूव वडवारूपस्तापयामास मेदिनीम्॥ २॥
ततो ब्रह्मा समागत्य वडवारूपिणं च तम्।
नीत्वा समुद्रं सम्प्रार्थ्य तत्तोये स्थापयन्मुने॥ ३॥

महादेव जी बोले— भगवान् शङ्कर के तृतीय नेत्र से समुद्भूत वह अग्नि पुनः कभी उनके पास नहीं पहुँच पायी। हे मुने! उसने बडवा का रूप धारण कर, पृथ्वी को जलाना प्रारम्भ कर दिया। प्रार्थना कर तब ब्रह्मा जी ने वहाँ से उस वड़वारूपधारी अग्नि को किसी तरह समुद्र तक पहुँचाकर उसके जल में स्थापित कर दिया।। १–३ ।।

ययुर्देवा निजं स्थानं कामशोकेन मोहिताः।
समाश्वास्य रतिं स्वामी पुनस्ते जीवितो भवेत्॥ ४॥

तब वह देवसमूह भी, कामदेव के शोक में दुःखी होता हुआ, कामदेव की पत्नी को— 'तुम्हारा पति शीघ्र ही पुनर्जीवित हो जायगा'— यों आश्वासन देता हुआ अपने अपने स्थान पर पुनः लौट गया।। ४ ।।

अथ प्राह महादेवं पार्वती रुचिरानना।
त्रिजगज्जननी स्मित्वा निर्जने तत्र कानने॥ ५॥

तब सुन्दर वदन वाली उन जगन्माता पार्वती जी ने उस निर्जन (एकान्त) वनप्रदेश में बैठकर मुस्कराते हुए भगवान् शङ्कर से यों कहा— ।। ५ ।।

श्रीदेवी०— "मामाद्यां प्रकृतिं देव लब्धुं पत्नीं महत्तपः।
चिरं करोषि तत्कस्मात्कामोऽयं नाशितस्त्वया॥ ६॥

श्रीदेवीं जी— "हे देव! आप तो मुझ आद्या प्रकृति देवी को अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त करने के लिये ही बहुत समय से यह उग्र तप कर रहे थे, फिर आपने इस कामदेव को क्यों नष्ट कर दिया?

कामे विनष्टे पत्न्याः किं विद्यते ते प्रयोजनम्!
योगिनामेष धर्मो वै यत्कामस्य विनाशनम्"॥ ७॥

काम के विनष्ट हो जाने पर, आप का पत्नी के साथ रहने पर भी क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? यह तो योगियों का कार्य होता है कि वे अपने हृदय में उद्भूत काम को विनष्ट करते रहें''।। ७।।

श्रीमहादेव०— इति श्रुत्वा वचस्तस्याः शङ्करश्चकितस्तदा।
सन्ध्यायन् ज्ञातवानाद्यां प्रकृतिं पर्वतात्मजाम्॥ ८॥

पार्वती के ये वचन सुनकर भगवान् शङ्कर आश्चर्यचकित हो गये। तब उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा तो उन्हें ज्ञात हुआ कि ये पार्वती ही आद्या प्रकृति भगवती हैं।। ८।।

ततो निमील्य नेत्राणि प्रहर्षपुलकान्वितः।
निरीक्ष्य पार्वतीं प्राह सर्वलोकैकसुन्दरीम्॥ ९॥

तब उन्होंने आँखें मूँद कर हर्ष से पुलकित होते हुए उन समग्र जगत् में एकमात्र सुन्दरी पार्वती जी को देखते हुए यों कहा—।। ९।।

''जाने त्वां प्रकृतिं पूर्णामाविर्भूतां स्वलीलया।
त्वामेव लब्धुं ध्यानस्थश्चिरं तिष्ठामि कानने॥ १०॥

''आप स्वेच्छया पूर्ण अंश में समुद्भूत प्रकृतिदेवी को मैं अब समझ पाया। आपकी ही प्राप्ति के लिये मैं इतने काल तक निर्जन काननों में रहकर उग्र तप करता रहा।। १०।।

अद्याहं कृतकृत्योऽस्मि यत्त्वां साक्षात्परात्पराम्।
पुरः पश्यामि चार्वङ्गीं सतीमिव मम प्रियाम्''॥ ११॥

आज मैं कृतकृत्य हूँ कि साक्षात् परा भगवती, मेरी प्रथम पत्नी सती की तरह सुन्दर शरीरवाली आपको मैं अपने सम्मुख देख रहा हूँ''।। ११।।

श्रीदेवी०— ''तव भावेन तुष्टाहं सम्भूय हिमवद्गृहे।
त्वामेव च पतिं लब्धुं समायाता तवान्तिकम्॥ १२॥

श्रीदेवी— ''हे देव! आप के प्रेमभाव से सन्तुष्ट होकर मैं अब हिमालय के घर में उत्पन्न होकर आपको ही पति रूप में प्राप्त करने की उत्कण्ठा से आपके सामने आयी हूँ।। १२।।

यो मां यादृशभावेन सम्प्रार्थयति भक्तितः।
तस्य तेनैव भावेन पूरयामि मनोरथान्॥ १३॥

जो जिस भक्तिभाव से मेरी प्रार्थना करता है मैं उसके सभी मनोरथ

उसी भाव से पूर्ण करती हूँ।। १३।।

अहं सैव सती शम्भो! दक्षस्य च महाध्वरे।
विहाय त्वां गता काली भीमा त्रैलोक्यमोहिनी"॥ १४॥

हे देव! मैं वही त्रैलोक्यमोहिनी भयानक कालीरूपिणी सती हूँ जो आपको छोड़कर दक्ष के महायज्ञ में चली गयी थी"।। १४।।

शिव०— "यदि मे प्राणतुल्यासि सती त्वं चारुलोचना।
तदा यथा महामेघप्रभा सा भीमरूपिणी॥ १५॥
बभूव दक्षयज्ञस्य विनाशाय दिगम्बरी।
काली तथा स्वरूपेण चात्मानं दर्शयस्व माम्"॥ १६॥

भगवान् शङ्कर— "यदि आप मेरी प्राणप्रिया, सुन्दर नेत्रों वाली वही सती देवी हैं तो आप उस दक्षयज्ञ के विनाश समय काले मेघ के समान।

भयङ्कर आकार वाली जिस दिगम्बर रूप में थीं, उसी रूप में अब मुझे पुनः दर्शन दीजिये"।। १५, १६।।

देवी का स्वरूप दर्शन

श्रीमहादेव०— इत्युक्ता सा हिमसुता शम्भुना मुनिसत्तम!
बभूव पूर्ववत्काली स्निग्धाञ्जनचयप्रभा॥ १७॥

श्रीमहादेव बोले— हे मुनिवर! भगवान् शङ्कर द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह हिमालयपुत्री पार्वती चिकने काले अञ्जन के समान वर्णवाली काली देवी के रूप में प्रकट हुई।। १७।।

दिगम्बरी क्षरद्रक्ता भीमायतविलोचना।
पीनोन्नतकुचद्वन्द्वचारुशोभितवक्षसा ॥ १८॥

वह निर्वस्त्र (नग्न) थी, उसके मुख से रक्त टपक रहा था। उसके अतिविशाल नेत्र देखने में भयानक लग रहे थे। उसकी छाती स्थूल एवं उन्नत स्तनों से सुन्दर लग रही थी।। १८।।

गलदापादसंलम्बिकेशपुञ्जभयानका।
ललज्जिह्वाज्वलद्दन्तनखैरुपशोभिता॥ १९॥

उसके सिर के बाल पैरों तक लटकते हुए उसकी आकृति को अधिक भयङ्करता प्रदान कर रहे थे। वह अपनी लपलपाती जिह्वा तथा तीक्ष्ण नखों एवं दाँतों से शोभित थी।। १९।।

उद्यच्छशाङ्कनिचयैर्मेघपङ्क्तिरिवाम्बरे ।

आजानुलम्बिमुण्डालिमालयातिविशालया॥ २०॥
राजमाना महामेघपङ्क्तिश्चञ्चलया यथा।
भुजैश्चतुर्भिर्भूयोच्चैः शोभमाना महाप्रभा॥ २१॥

उसके मस्तक पर अर्धचन्द्र ऐसे लग रहा था मानों स्वच्छ आकाश में मेघपंक्ति विराजमान हो। जानुपर्यन्त लटकती अति विशाल नरमुण्डों की श्वेतमाला से वे ऐसी लग रही थीं। मानो महामेघपंक्ति में बिजली चमक रही हो। उसकी महान् कान्ति से युक्त चार भुजाएँ थीं।। २०–२१।।

विचित्ररत्नविभ्राजन्मुकुटोज्ज्वलमस्तका ॥ २२॥
तां विलोक्य महोदवः प्राह गद्गदया गिरा।
रोमाञ्चिततनुर्भक्त्या प्रहृष्टात्मा महामुने॥ २३॥

उसके उज्ज्वल मस्तक पर चित्रविचित्र रत्नों से जटित सुन्दर मुकुट शोभित था। हे महामुने! उन्हें इस रूप में देखकर वे भगवान् शङ्कर रोमाञ्चित शरीर होकर गद्गद वाणी में भक्तिपूर्वक यों बोले।। २२–२३।।

शिव०— ''चिरं त्वद्विरहेनेदं निर्दग्धं हृदयं मम।
त्वमन्तर्यामिनी शक्तिर्हृदयस्था महेश्वरी॥ २४॥
आराध्य त्वत्पदाम्भोजं धृत्वा हृदयपङ्कजे।
त्वद्विच्छेदसमुत्तप्तं हृत्करोमि सुशीतलम्''॥ २५॥

भगवान शङ्कर– ''हे देवि! आप के वियोग में मेरा हृदय दग्ध होता रहा। आप महेश्वरी रूप में सबके हृदय में विराजमान शक्ति हैं। मैं आपके चरणकमलों की आराधना कर, उन्हें हृदय पर धारण करते हुए आपके वियोग में सन्तप्त चित्त को ठण्डा (शान्त) करता रहता हूँ''।। २४–२५।।

श्रीमहादेव०—इत्युक्त्वा स महादेवो योगं परममास्थितः।
शयितस्तत्पदाम्भोजं दधार हृदये तदा॥ २६॥
ध्यानानन्देन निष्पन्दशवरूपधरः स्थितः।
व्याघूर्णमाननेत्रस्तां ददर्श परमादरः॥ २७॥

श्रीमहादेव– यह कहकर वे भगवान् शङ्कर उस देवी के चरणकमलों को स्वहृदय पर परमयोग से स्थापित कर। वे उस के ध्यान के प्रवाह में निश्चल रूप से शव (मृत शरीर) की तरह स्थिर होकर उस देवी को खुली आँखों से सम्मान के साथ एक दृष्टि से निहारने लगे।। २६–२७।।

अंशतः पुरतः स्थित्वा पञ्चवक्त्रः कृताञ्जलिः।

सहस्रनामभिः कालीं तुष्टाव परमेश्वरीम्॥ २८॥

अंशतः उनके सामने बैठकर वे पाँच मुखों वाले भगवान् शङ्कर हाथ जोड़कर उन परमेश्वरी काली देवी को, उनके सहस्र नाम सुनाते हुए सन्तुष्ट करने लगे–॥ २८॥

शिवप्रोक्त देवी के सहस्त्रनाम (कालीसहस्त्रनाम)

शिव०— "अनाद्या परमा विद्या प्रधाना प्रकृतिः परा।
प्रधानपुरुषाराध्या प्रधानपुरुषेश्वरी॥ २९॥

भगवान् शङ्कर— आप *अनादि* हैं, *परमा* (उत्कृष्ट) *विद्या* हैं, *प्रधान प्रकृति* हैं, पर से *पर* हैं, *प्रधान पुरुष की आराध्या* हैं, आप उस प्रधान *पुरुष की स्वामिनी* भी हैं॥ २९॥

प्राणात्मिका प्राणशक्तिः सर्वप्राणहितैषिणी।
उमा चोत्तमकेशिन्युत्तमा चोन्मत्तभैरवी॥ ३०॥

आप *प्राणस्वरूपा* हैं, *प्राणशक्ति* हैं, सभी के *प्राणों का हित चाहने वाली* हैं, आप *उमा* हैं, *सुन्दर केशों वाली* हैं, *उत्कृष्ट* हैं, तथा *उन्मत्तभैरवी* हैं॥ ३०॥

उर्वशी चोन्नता चोग्रा महोग्रा चोन्नतस्तनी।
उग्रचण्डोग्रनयना महोग्रदैत्यनाशिनी॥ ३१॥

आप *उर्वशी, उन्नता, उग्रा, महोग्रा, उन्नतस्तनी, उग्रचण्डा, उग्रनयना,* तथा *महान् एवं उग्र दैत्यों का नाश करने वाली* हैं॥ ३१॥

उग्रप्रभावती चोग्रवेगा चोग्रमर्दिनी।
उग्रतारोग्रनयना चोर्ध्वस्थाननिवासिनी॥ ३२॥

आप *उग्र प्रभा एवं उग्र वेग वाली* हैं, तथा *उग्र पुरुषों का मर्दन (क्षय) करने वाली* हैं, आप की *तारा (आँखों की पुतली) उग्र* हैं, आपके *नेत्र उग्र* हैं, आप *उच्च स्थान पर रहने वाली* हैं॥ ३२॥

उन्मत्तनयनात्युग्रदन्तोत्तुङ्गस्थलालया।
उल्लासिन्युल्लासचित्ता चोत्फुल्लनयनोज्ज्वला॥ ३३॥

आप *उन्मत्त नेत्रों वाली* हैं, बहुत ही *भयानक (अत्युग्र) दाँतों वाली* हैं, और *उत्तुङ्ग (पर्वतों के ऊँचे शिखर) स्थल* आप का वास हैं। आप *उल्लासिनी (हर्ष प्रदान करने वाली)* सदा *उल्लसित चित्त वाली, प्रसन्न नेत्र वाली* तथा *कान्तिमयी* हैं॥ ३३॥

उत्फुल्लकमलारूढा कमला कामिनी कला।

काली करालवदना कामिनीमुखकामिनी॥ ३४॥

आप *विकसित कमलपुष्प पर विराजमान* रहती हैं, आपका नाम *कमला* है, आप *कामिनी* (रूपवती) *कला* हैं। आप काली हैं, *भयङ्कर आकृति वाली* हैं, तथा आप *स्त्री की मुखाकृति की इच्छुक* हैं।। ३४।।

कोमलाङ्गी कृशाङ्गी च कैटभासुरमर्दिनी।
कालिन्दी कमलस्था च कान्ता काननवासिनी॥ ३५॥

आप *कोमल अङ्गों वाली* भी हैं और *कृशाङ्गी* भी। आप *कैटभअसुर का मर्दन करने वाली* हैं, आप *कालिन्दी* (यमुना) रूप हैं, कमलपर *विराजमान* रहती हैं, आप *कान्ता* (कमनीय) हैं, आपको *वन में वास रुचिकर* है।। ३५।।

कुलीना निष्कला कृष्णा कालरात्रिस्वरूपिणी।
कुमारी कामरूपा च कामिनी कृष्णपिङ्गला॥ ३६॥

आप *कुलीन* (उच्चकुलोत्पन्न) हैं; *पूर्ण* हैं, *कृष्ण वर्ण वाली* हैं, *कालरात्रि* के समान रूप (आकृति) वाली हैं, आप *कुमारी* हैं, *यथेच्छ रूप धारण करने वाली* तथा *कामिनी* (प्रिय लगने वाली) हैं और *कृष्ण* एवं *पिङ्गलवर्ण* वाली हैं।। ३६।।

कपिला शान्तिदा शुद्धा शङ्करार्धशरीरिणी।
कौमारी कार्त्तिकी दुर्गा कौशिकी कुण्डलोज्ज्वला॥ ३७॥

आप *कपिल वर्ण वाली* है, *शान्तिप्रदा तथा शुद्ध* है। *भगवान् शङ्कर के शरीर का अर्ध भाग धारण किये* हुए हैं। तथा आप *कौमार्यव्रत धारण* किये हुए हैं, आप कार्तिकेय की माता हैं, *आप दुर्गा* है, आप *कौशिकी* हैं, आप *कनककुण्डल* से सम्पन्न (सौभाग्यसम्पन्न) हैं।। ३७।।

कुलेश्वरी कुलश्रेष्ठा कुन्तलोज्ज्वलमस्तका।
भवानी भाविनी वाणी शिवा च शिवमोहिनी॥ ३८॥

आप *कुलेश्वरी* भी कहलाती है, *कुलश्रेष्ठा* तथा *कुन्तलोज्ज्वलमस्तका* भी आपका ही नाम है। आप *भवानी* भी है, *भाविनी* भी। तथा *वाणी, शिवा* एवं *शिवमोहिनी* भी आप ही कहलाती हैं।। ३८।।

शिवप्रिया शिवाराध्या शिवप्राणैकवल्लभा।
शिवपत्नी शिवस्तुत्या शिवानन्दप्रदायिनी॥ ३९॥

शिवाराध्या, शिवप्रिया तथा *शिवप्राणैकवल्लभा* भी आपको ही कहते हैं। और आप ही *शिवपत्नी, शिवस्तुत्या* और *शिवानन्दप्रदायिनी* भी कहलाती

हैं ।।३९।।

नित्यानन्दमयी नित्या सच्चिदानन्दविग्रहा।
त्रैलोक्यजननी शम्भुहृदयस्था सनातनी॥ ४०॥

आप *नित्यानन्दमयी* भी हैं, *नित्या* भी हैं तथा *सच्चिदानन्दविग्रहा* भी। विद्वान् आप को ही *त्रैलोक्यजननी, शम्भुहृदयस्था* एवं *सनातनी* भी कहते हैं ।। ४०।।

सदया निर्दया माया शिवा त्रैलोक्यमोहिनी।
ब्रह्मादित्रिदशाराध्या सर्वाभीष्टप्रदायिनी॥ ४१॥

आप *सदया* हैं, *निर्दया* है., *माया, शिवा* तथा *त्रैलोक्यमोहिनी* भी हैं। आप *ब्रह्मादित्रिदशाराध्या* एवं *सर्वाभीष्टप्रदायिनी* हैं ।। ४१ ।।

ब्रह्माणी ब्रह्मगायत्री सावित्री ब्रह्मसंस्तुता।
ब्रह्मोपास्या ब्रह्मशक्तिर्ब्रह्मसृष्टिविधायिनी॥ ४२॥

आपको ही भक्तजन *ब्रह्माणी, ब्रह्मगायत्री* एवं *सावित्री* तथा *ब्रह्मसंस्तुता* कहते हैं। साथ ही *ब्रह्मोपास्या, ब्रह्मशक्ति* एवं *ब्रह्मसृष्टिविधायिनी* भी आपके ही नाम हैं।। ४२।।

कमण्डलुकरा सृष्टिकर्त्री ब्रह्मस्वरूपिणी।
चतुर्भुजात्मिका यज्ञसूत्ररूपा दृढव्रता॥ ४३॥

कमण्डलुकरा, सृष्टिकर्त्री एवं *ब्रह्मस्वरूपिणी* तथा *चतुर्भुजात्मिका यज्ञसूत्ररूपा* और *दृढ़व्रता* भी आपको ही कहते हैं।। *४३।।*

हंसारूढा चतुर्वक्त्रा चतुर्वेदाभिसंस्तुता।
वैष्णवी पालनकरी महालक्ष्मीर्हरिप्रिया॥ ४४॥

आप *हंसारूढा, चतुर्वक्त्रा* एवं *चतुर्वेदाभिसंस्तुता* भी कहलाती हैं। साथ ही *वैष्णवी, पालनकरी, महालक्ष्मी* एवं *हरिप्रिया* भी आपको ही कहते हैं।। ४४।।

शङ्खचक्रधरा विष्णुशक्तिर्विष्णुस्वरूपिणी।
विष्णुप्रिया विष्णुमाया विष्णुप्राणैकवल्लभा॥ ४५॥

आप *शङ्खचक्रधारिणी* हैं *विष्णुशक्ति* हैं, *विष्णुस्वरूपिणी* हैं। तथा *विष्णुप्रिया, विष्णुमाया* तथा *विष्णुप्राणैकवल्लभा* भी कहलाती हैं।। ४५।।

योगनिद्राक्षरा विष्णुमोहिनी विष्णुसंस्तुता।
विष्णुसम्मोहनकरी त्रैलोक्यपरिपालिनी॥ ४६॥

आप ही *योगनिद्रा अक्षरा, विष्णुमोहिनी* एवं *विष्णुसंस्तुता* कहलती है। साथ ही भक्तजन आप को *विष्णुसम्मोहनकरी* एवं *त्रैलोक्यपरिपालिनी* भी

कहते हैं।। ४६।।

शङ्खिनी चक्रिणी पद्मा पद्मिनी मुसलायुधा।
पद्मालया पद्महस्ता पद्ममालादिभूषिता॥ ४७॥

शङ्खिनी, चक्रिणी, पद्मा, पद्मिनी, मुसलायुधा, पद्मालया, पद्महस्ता एवं *पद्ममालादिभूषिता*— ये सब आपके ही नाम हैं।। ४७।।

गरुडस्था चारुरूपा सम्पद्रूपा सरस्वती।
विष्णुपार्श्वस्थिता विष्णुपरमाह्लाददायिनी॥ ४८॥

आप *गरुडस्था, चारुरूपा, सम्पद्रूपा* एवं *सरस्वती* भी कहलाती हैं और भक्तजन आप को ही *विष्णुपार्श्वस्थिता* तथा *विष्णुपरमाह्लाददायिनी* भी कहते हैं।। ४८।।

सम्पत्तिः सम्पदाधारा सर्वसम्पत्प्रदायिनी।
श्रीविद्या सुखदा सौख्यदायिनी दुःखनाशिनी॥ ४९॥

सम्पत्ति, सम्पदाधारा, सर्वसम्पत्प्रदायिनी एवं *श्रीविद्या, सुखदा, सौख्यदायिनी* एवं *दुःखनाशिनी*— ये सब शुभ नाम भी आप के ही हैं।। ४९।।

दुःखहन्त्री सुखकरी सुखासीना सुखप्रदा।
सुखप्रसन्नवदना नारायणमनोरमा॥ ५०॥

इसी तरह *दुःखहन्त्री, सुखकरी, सुखासीना, सुखप्रदा, सुखप्रसन्नवदना* एवं *नारायणमनोरमा*— इन नामों से भी भक्तों द्वारा आप को ही सम्बोधित किया जाता है।। ५०।।

नारायणी जगद्धात्री नारायणविमोहिनी।
नारायणशरीरस्था वनमालाविभूषिता॥ ५१॥

विद्वज्जन आपको ही *नारायणी, जगद्धात्री, जगन्मोहिनी* कहते हैं। साथ ही *नारायणशरीरस्था* एवं *वनमालाविभूषिता* भी आप ही हैं।। ५१।।

दैत्यघ्नी पीतवसना सर्वदैत्यप्रमर्दिनी।
वाराही नारसिंही च रामचन्द्रस्वरूपिणी॥ ५२॥

दैत्यघ्नी, पीतवसना एवं *सर्वदैत्यप्रमर्दिनी* भी आपके ही नाम हैं और *वाराही, नारसिंही* तथा *रामचन्द्रस्वरूपिणी* भी आपको ही कहते हैं।। ५२।।

रक्षोघ्नी काननावासा चाहल्याशापमोचिनी।
सेतुवन्धकरी सर्वरक्षःकुलविनाशिनी॥ ५३॥

आप *रक्षोघ्नी, काननावासा* एवं *अहल्याशापमोचनी* भी कहलाती हैं

और *सेतुबन्धकरी* एवं *सर्वरक्षःकुलविनाशिनी* भी आप ही हैं ।। ५३ ।।

सीता पतिव्रता साध्वी रामप्राणैकवल्लभा।
अशोककाननावासा लङ्केश्वरविनाशिनी ॥ ५४ ॥

सीता, पतिव्रता, साध्वी, रामप्राणैकवल्लभा, अशोककाननावासा एवं *लङ्केश्वरविनाशिनी* भी आपको ही कहते हैं ।। ५४ ।।

नीतिः सुनीतिः सुकृतिः कीर्तिर्मेधा वसुन्धरा।
दिव्यमाल्यधरा दिव्या दिव्यगन्धानुलेपना ॥ ५५ ॥

आप *नीति* भी कहलाती है *सुनीति* भी, *सुकृति, कीर्ति, मेधा* और *वसुन्धरा* भी। *दिव्यमाल्यधरा, दिव्या* एवं *दिव्यगन्धानुलेपना*—ये आपके ही नाम हैं ।। ५५ ।।

दिव्यवस्त्रपरीधाना दिव्यस्थाननिवासिनी।
माहेश्वरी प्रेतसंस्था प्रेतभूमिनिवासिनी ॥ ५६ ॥

दिव्यवस्त्रपरीधाना, दिव्यस्थाननिवासिनी भी आपको ही कहते हैं; साथ ही *माहेश्वरी, प्रेतसंस्था* एवं *प्रेतभूमि निवासिनी* भी आप ही हैं ।। ५६ ।।

निर्जनस्था श्मशानस्था भैरवी भीमलोचना।
सुघोरनयना घोरा घोररूपा घनप्रभा ॥ ५७ ॥

आप *निर्जनस्था* हैं, *श्मशानस्था* हैं, *भैरवी* भी हैं, *भीमलोचना* भी हैं। आपको ही *सुघोरनयना, घोरा, घोररूपा* एवं *घनप्रभा* कहते हैं ।। ५७ ।।

घनस्तनी वरा श्यामा प्रेतभूमिकृतालया।
खट्वाङ्गधारिणी द्वीपिचर्माम्बरसुशोभना ॥ ५८ ॥

घनस्तनी, वरा, श्यामा, प्रेतभूमिकृतालया भी आपको ही कहते हैं। साथ ही *खट्वाङ्गधारिणी* एवं *द्वीपिचर्माम्बरसुशोभना* नामों से भी आप सुशोभित होती हैं ।। ५८ ।।

महाकाली चण्डवक्त्रा चण्डमुण्डविनाशिनी।
उद्यानकाननावासा पुष्पोद्यानवनप्रिया ॥ ५९ ॥

आप *महाकाली, चण्डवक्त्रा, चण्ड-मुण्डविनाशिनी, उद्यान-काननावासा* एवं *पुष्पोद्यानवनप्रिया*— नामों से भी शास्त्र में सम्बोधित होती हैं ।। ५९ ।।

बलिप्रिया मांसभक्ष्या रुधिरासवभक्षिणी।
भीमरावा साट्टहासा रणनृत्यपरायणा ॥ ६० ॥

बलिप्रिया, मांसभक्ष्या, रुधिरासवभक्षिणी– ये भी आपके नाम हैं। *भीमरावा, साट्टहासा, रणनृत्यपरायणा*– इन नामों से भी आप का ही बोध होता है।। ६०।।

असुरासृक्प्रिया तुष्टा दैत्यदानवमर्दिनी।
दैत्यविद्राविणी दैत्यमथनी दैत्यसूदनी॥ ६१॥

आप *असुरासृक्प्रिया* भी हैं तो *तुष्टा* भी तथा *दैत्य–दानवनाशिनी* भी हैं। *दैत्याविद्राविणी* भी हैं तो *दैत्यमथनी* एवं *दैत्यसूदनी* भी।। ६१।।

दैत्यघ्नी दैत्यहन्त्री च महिषासुरमर्दिनी।
रक्तबीजनिहन्त्री च शुम्भासुरविनाशिनी॥ ६२॥

आपको ही *दैत्यघ्नी* एवं *दैत्यहन्त्री* भी कहते हैं। साथ ही *महिषासुरमर्दिनी* एवं *रक्तबीजनिहन्त्री* तथा *शुम्भासुरमर्दिनी* भी आप कहलाती हैं।। ६२।।

निशुम्भहन्त्री धूम्राक्षमर्दिनी दुर्गहारिणी।
दुर्गासुरनिहन्त्री च शिवदूती महाबला॥ ६३॥

आप *निशुम्भहन्त्री* हैं, *धूम्राक्षमर्दिनी* हैं, *दुर्गहारिणी* हैं, तथा *दुर्गासुरनिहन्त्री, शिवदूती* एवं महाबला भी आप ही कहलाती हैं।। ६३।।

महाबलवती चित्रवस्त्रा रक्ताम्बरामला।
विमला ललिता चारुहासा चारुत्रिलोचना॥ ६४॥

महाबलवती, चित्रवस्त्रा, रक्ताम्बरा, अमला, विमला, ललिता, चारुहासा एवं *चारुत्रिलोचना* भी आपके ही नाम हैं।। ६४।।

अजेया जयदा ज्येष्ठा जयशीला पराजिता।
विजया जाह्नवी दुष्टजृम्भिणी जयदायिनी॥ ६५॥

आप *अजेया, जयदा, ज्येष्ठा, जयशीला, अपराजिता* हैं। आप *विजया* हैं, *जाह्नवी* हैं, दुष्टजृम्भिणी भी हैं तथा *जयदायिनी* भी।।६५।।

जगद्रक्षाकरी सर्वजगच्चैतन्यकारिणी।
जया जयन्ती जननी जनभक्षणतत्परा॥ ६६॥

जगद्रक्षाकरी, सर्वजगच्चैतन्यकारिणी, जया, जयन्ती, जननी, एवं *जनभक्षणतत्परा*– ये सब नाम आपके ही हैं।। ६६।।

जलरूपा जलस्था च जप्यजापकवत्सला।
जाज्वल्यमाना यज्ञाशा जन्मनाशविवर्जिता॥ ६७॥

जलरूपा और *जलस्था* तथा *जप्यजापकवत्सला, जाज्वल्यमाना,*

यज्ञाशा एवं *जन्मनाशविवर्जिता*— ये सब आपके ही नाम हैं।। ६७।।

जरातीता जगन्माता जगद्रूपा जगन्मयी।
जङ्गमा ज्वालिनी जृम्भास्तम्भिनी दुष्टतापिनी॥ ६८॥

आप जरातीता, *जगन्माता, जगद्रूपा, जगन्मयी* हैं। *जङ्गमा, ज्वालिनी, जृम्भास्तभिनी* एवं *दुष्टतापिनी* भी आप ही हैं।। ६८।।

त्रिपुरघ्नी त्रिनयना महात्रिपुरतापिनी।
तृष्णाजातिः पिपासा च बुभुक्षा त्रिपुरप्रभा॥ ६९॥

त्रिपुरघ्नी, त्रिनयना, महात्रिपुरतापिनी, तृष्णा, जाति, पिपासा, बुभुक्षा एवं *त्रिपुरप्रभा*— ये सब भी आपके ही नाम हैं।। ६९।।

त्वरिता त्रिपुटा त्र्यक्षा तन्वी तापविवर्जिता।
त्रिलोकेशी तीव्रवेगा तीव्रा तीव्रबलालया॥ ७०॥

आपके ये नाम भी हैं— *त्वरिता, त्रिपुटा, त्र्यक्षा, तन्वी, तापविवर्जिता, त्रिलोकेशी, तीव्रवेगा, तीव्रा और तीव्रबलालया*।। ७०।।

निःशङ्का निर्मलाभा च निरातङ्काऽमलप्रभा।
विनीता विनयाभिज्ञा विशेषज्ञा विलक्षणा॥ ७१॥

निःशङ्का, निर्मलाभा, निरातङ्का, अमलप्रभा, विनीता, विनयाभिज्ञा, विशेषज्ञा एवं *विलक्षणा*— इन सब नामों से भी आपको ही सम्बोधित किया जाता है।। ७१।।

वरदा वल्लभा विद्युत्प्रभा विनयशालिनी।
बिम्बोष्ठी विधुवक्त्रा च विवस्त्रा विनयप्रभा॥ ७२॥

हे देवि! आप ही *वरदा* हैं, *वल्लभा* भी हैं, *विद्युत्प्रभा* तथा *विनयशालिनी* भी हैं। आप ही *बिम्बोष्ठी* एवं *विधुवक्त्रा* हैं, *विवस्त्रा* तथा *विनयप्रभा* भी आप ही हैं।। ७२।।

विश्वेशपत्नी विश्वात्मा विश्वरूपा बलोत्कटा।
विश्वेशी विश्ववनिता विश्वमाता विचक्षणा॥ ७३॥

आप *विश्वेशपत्नी* हैं, *विश्वात्मा* हैं, *विश्वरूपा, बलोत्कटा* हैं। आप *ही विश्वेशी* हैं, *विश्ववनिता* हैं, *विश्वमाता* और *विचक्षणा* भी हैं।। ७३।।

विदुषी विश्वविदिता विश्वमोहनकारिणी।
विश्वमूर्तिर्विश्वधरा विश्वेशपरिपालिनी॥ ७४॥

बुद्धिमान् पुरुष आप को ही *विदुषी, विश्वविदिता, विश्वमोहनकारिणी,*

विश्वमूर्ति, *विश्वधरा* एवं *विश्वेशपरिपालिनी* भी कहते हैं।। ७४।।

विश्वकर्त्री विश्वहर्त्री विश्वपालनतत्परा।
विश्वेशहृदयावासा विश्वेश्वरमनोरमा॥ ७५॥

आप *विश्वकर्त्री*, *विश्वहर्त्री* एवं, *विश्वपालनतत्परा* हैं। साथ ही आप *विश्वेशहृदयावासा* तथा *विश्वेश्वरमनोरमा* भी कहलाती हैं।। ७५।।

विश्वहा विश्वनिलया विश्वमाया विभूतिदा।
विश्वविश्वोपकारा च विश्वप्राणात्मिकापि च॥ ७६॥

आपको भक्तजन *विश्वहा*, *विश्वनिलया*, *विश्वमाया* तथा *विभूतिदा* भी कहते हैं। आप *विश्वविश्वोपकारा* भी हैं, और साथ ही *विश्वप्राणात्मिका* भी हैं।। ७६।।

विश्वप्रिया विश्वमयी विश्वदुष्टविनाशिनी।
दाक्षायणी दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी॥ ७७॥

आप *विश्वप्रिया* भी हैं और *विश्वमयी* भी, तथा *विश्वदुष्टविनाशिनी* भी हैं। आपको ही इस संसार में *दाक्षायणी*, *दक्षकन्या* तथा *दक्षयज्ञविनाशिनी* भी कहा जाता है।। ७७।।

विश्वम्भरी वसुमती वसुधा विश्वपावनी।
सर्वातिशायिनी सर्वदुःखदारिद्र्यहारिणी॥ ७८॥

आपको ही *विश्वम्भरी*, *वसुमती*, *वसुधा*, *विश्वपावनी*, *सर्वातिशायिनी* एवं *सर्वदुःखदारिद्र्यनाशिनी* कहा जाता है।। ७८।।

महाविभूतिरव्यक्ता शाश्वती सर्वसिद्धिदा।
अचिन्त्याऽचिन्त्यरूपा च केवला परमात्मिका॥ ७९॥

आप महाविभूति हैं, अव्यक्त हैं, शाश्वती हैं, सर्वसिद्धि दात्री हैं। आप ही अचिन्त्यरूपा, केवला और परमात्मिका हैं।। ७९।।

सर्वज्ञा सर्वविषया सवोपरिपरायणा।
सर्वस्यार्तिहरा सर्वमङ्गला मङ्गलप्रदा॥ ८०॥

आपको विवेकी पुरुष *सर्वज्ञा* भी कहते हैं तथा *सर्वविषया* एवं *सर्वोपरिपरायणा* भी। आप *सर्वस्यार्तिहरा*, *सर्वमङ्गला* तथा *मङ्गलप्रदा* भी कही जाती हैं।। ८०।।

मङ्गलार्हा महादेवी सर्वमङ्गलदायिका।
सर्वान्तरस्था सर्वार्थरूपिणी च निरञ्जना॥ ८१॥

आप *मङ्गलार्हा* हैं, महादेवी हैं, *सर्वमङ्गलदायिका* हैं। आप *सर्वान्तरस्था*,

सर्वार्थरूपिणी एवं *निरञ्जना* भी कहलाती हैं।। ८१।।

चिच्छक्तिश्चिन्मयी सर्वविद्या सर्वविधायिनी।
शान्तिः शान्तिकरी सौम्या सर्वसर्वप्रदायिनी॥ ८२॥

आपको लोग *चिच्छक्ति, चिन्मयी, सर्वविद्या* एवं *सर्वविधायिनी* भी कहते हैं। *शान्ति, शान्तिकरी, सौम्या* एवं सर्वसर्वप्रदायिनी भी आप ही हैं।।८२।।

शान्तिः क्षमा क्षेमकरी क्षेत्रज्ञा क्षेत्रवासिनी।
क्षणात्मिका क्षीणतनुः क्षीणाङ्गी क्षीणमध्यमा॥ ८३॥

आप *शान्ति* हैं, *क्षमा* हैं, *क्षेमकरी* हैं, *क्षेत्रज्ञा* एवं *क्षेत्रवासिनी* हैं। तथा *क्षणात्मिका, क्षीणतनु, क्षीणाङ्गी, क्षीणमध्यमा* आप के ही नाम हैं।। ८३।।

क्षिप्रगा क्षेमदा क्षिप्ता क्षणदा क्षणवासिनी।
वृत्तिर्निवृत्तिर्भूतानां प्रवृत्तिर्वृत्तलोचना॥ ८४॥

क्षिप्रगा, क्षेमदा, क्षिप्ता, क्षणदा एवं *क्षणवासिनी* नामों से आपको ही सम्बोधित किया जाता है। भूतों की *वृत्ति, निवृत्ति* एवं प्रवृत्ति तथा वृत्तलोचना– ये भी आप के ही नाम हैं।। ८४।।

व्योममूर्तिर्व्योमसंस्था व्योमालयकृताश्रया।
चन्द्रानना चन्द्रकान्तिश्चन्द्रार्धाङ्कितमस्तका॥ ८५॥

आपको *व्योममूर्ति, व्योमसंस्था, व्योमालयकृताश्रया, चन्द्रानना, चन्द्रकान्ति, चन्द्रार्धाङ्कितमस्तका*– इन नामों से व्यवहृत किया जाता है।।८५।।

चन्द्रप्रभा चन्द्रकला शरच्चन्द्रनिभानना।
चन्द्रात्मिका चन्द्रमुखी चन्द्रशेखरवल्लभा॥ ८६॥

चन्द्रप्रभा, चन्द्रकला, शरच्चन्द्रनिभानना, चन्द्रात्मिका, चन्द्रमुखी, चन्द्रशेखरवल्लभा– ये शब्द भी आपके ही नाम के विशेषण हैं।। ८६।।

चन्द्रशेखरवक्षःस्था चन्द्रलोकनिवासिनी।
चन्द्रशेखरशैलस्था चञ्चला चञ्चलेक्षणा॥ ८७॥

आप *चन्द्रशेखरवक्षःस्था* हैं, आप ही *चन्द्रलोकनिवासिनी* हैं, *चन्द्रशेखरशैलस्था, चञ्चला* एवं *चञ्चलेक्षणा* भी आप ही हैं।। ८७।।

छिन्नमस्ता छागमांसप्रिया छागबलिप्रिया।
ज्योत्स्ना ज्योतिर्मयी सर्वज्यायसी जीवनात्मिका॥ ८८॥

आप *छिन्नमस्ता* हैं, *छागमांसप्रिया* हैं, *छागबलिप्रिया* हैं। *ज्योत्स्ना ज्योतिर्मयी, सर्वज्यायसी, जीवनात्मिका*– ये सब नाम भी आपके ही हैं।। ८८।।

सर्वकार्यनियन्त्री च सर्वभूतहितैषिणी।

गुणातीता गुणमयी त्रिगुणा गुणशालिनी॥ ८९॥

आप *सर्वकार्यनियन्त्री* तथा *सर्वभूतहितैषिणी* हैं। *आप ही गुणातीता* हैं, *गुणमयी* हैं, *त्रिगुणा* हैं तथा *गुणशालिनी* भी हैं॥ ८९॥

गुणैकनिलया गौरी गुह्यगोपकुलोद्भवा।
गरीयसी गुरुरता गुह्यस्थाननिवासिनी॥ ९०॥

आप का नाम *गुणैकनिलया* भी है, *गौरी* भी है, आप *गुह्यगोपकुलोद्भव* हैं। साथ ही आप *गरीयसी, गुरुरता* एवं *गुह्यस्थाननिवासिनी* भी हैं॥ ९०॥

गुणज्ञा निर्गुणा सर्वगुणार्हा गुह्यकाम्बिका।
गलज्जटा गलत्केशा गलद्रुधिरचर्चिता॥ ९१॥

आप *गुणज्ञा* भी हैं, *निर्गुणा* भी हैं, *सर्वगुणार्हा* भी हैं और *गुह्यकाम्बिका* भी। *गलज्जटा, गलत्केशा, गलद्रुधिरचर्चिता*— ये नाम भी आप के ही हैं॥९१॥

गजेन्द्रगमना गन्त्री गीतनृत्यपरायणा।
गगनस्था गणाध्यक्षा गणेशजननी तथा॥ ९२॥

गजेन्द्रगमना, गन्त्री, गीतनृत्यपरायणा, गगनस्था, गणाध्यक्षा, तथा *गणेशजननी*— ये नाम भी आपके ही हैं॥ ९२॥

गानप्रिया गानरता गृहस्था गृहिणी परा।
गजसंस्था गजारूढा ग्रसन्ती गरुडासना॥ ९३॥

आप *गानप्रिया* हैं, *गानरता* हैं, *गृहस्था* हैं, और *परा गृहिणी* हैं। आप *गजसंस्था* भी हैं, *गजारूढा* भी, *ग्रसन्ती* तथा *गरुडासना* भी॥ ९३॥

योगस्था योगिनीगम्या योगचिन्तापरायणा।
योगिध्येया योगिवन्द्या योगलभ्या युगात्मिका॥ ९४॥

आप के भक्तजन आपको *योगस्था, योगिनीगम्या, योगचिन्तापरायणा, योगिध्येया, योगिवन्द्या, योगलभ्या* एवं *युगात्मिका*— इन नामों से भी स्मरण करते हैं॥ ९४॥

योगिज्ञेया योगयुक्ता महायोगेश्वरेश्वरी।
योगानुरक्ता युगदा युगान्तजलदप्रभा॥ ९५॥

योगिज्ञेया, योगमुक्ता, महायोगेश्वरेश्वरी, योगानुरक्ता, युगदा एवं *युगान्तजलदप्रभा*— ये सब नाम भी आपके ही हैं॥ ९५॥

युगानुकारिणी यज्ञरूपा सूर्यसमप्रभा।
युगान्तानिलवेगा च सर्वयज्ञफलप्रदा॥ ९६॥

आप ही *युगानुकारिणी* हैं, *यज्ञरूपा* हैं, *सूर्यसमप्रभा* (सूर्य के समान प्रभावाली) हैं। तथा आप *युगान्तानिलवेगा* हैं और *सर्वयज्ञफलप्रदा* भी आप ही हैं॥ ९६॥

संसारयोनिः संसारव्यापिनी सकलास्पदा।
संसारतरुनिःसेव्या संसारार्णवतारिणी॥ ९७॥

संसारयोनि, संसारव्यापिनी, सकलास्पदा, संसारतरुनिःसेव्या एवं *संसारार्णवतारिणी*– ये सब आपके ही नाम हैं॥ ९७॥

सर्वार्थसाधिका सर्वा संसारव्यापिनी तथा।
संसारबन्धकर्त्री च संसारपरिवर्जिता॥ ९८॥

और, ये नाम भी आपके ही हैं– *सर्वार्थसाधिका, सर्वा* तथा *संसार–व्यापिनी, संसारबन्धकर्त्री* एवं *संसारपरिवर्जिता*॥ ९८॥

दुर्निरीक्ष्या सुदुष्प्रापा भूतिर्भूतिमतीत्यपि।
अत्यन्तविभवारूपा महाविभवरूपिणी॥ ९९॥

आप *दुर्निरीक्ष्या* हैं, *सुदुष्प्रापा* हैं, *भूति* हैं तथा *भूतिमती* भी हैं। साथ ही *अत्यन्तविभवरूपा* तथा *महाविभवरूपिणी* भी हैं॥ ९९॥

शब्दब्रह्मस्वरूपा च शब्दयोनिः परात्परा।
भूतिदा भूतिमाता च भूतिस्तन्द्री विभूतिदा॥ १००॥

आप *शब्दब्रह्मस्वरूपा, शब्दयोनि* एवं *परात् परा* हैं। आप *भूतिदा* भी हैं, *भूतिमाता* भी। इसी तरह आप *भूति, तन्द्री* एवं *विभूतिदा* हैं॥ १००॥

भूतान्तरस्था कूटस्था भूतनाथप्रियाङ्गना।
भूतमाता भूतनाथा भूतालयनिवासिनी॥ १०१॥

आप को विद्वज्जन *भूतान्तरस्था, कूटस्था, भूतनाथप्रियाङ्गना, भूतमाता, भूतनाथा* एवं *भूतालयनिवासिनी* भी कहते हैं॥ १०१॥

भूतनृत्यप्रिया भूतसङ्गिनी भूतलाश्रया।
जन्ममृत्युजरातीता महापुरुषसङ्गता॥ १०२॥

आप *भूतनृत्यप्रिया* हैं, *भूतसङ्गिनी* हैं, *भूतलाश्रया* हैं। आप *जन्ममृत्युजरातीता* एवं *महापुरुषसङ्गता* हैं॥ १०२॥

भुजगा तामसी व्यक्ता तमोगुणवती तथा।
त्रितत्त्वा तत्त्वरूपा च तत्त्वज्ञा तत्त्वकप्रिया॥ १०३॥

आपके ये नाम भी हैं– *भुजगा, तामसी, व्यक्ता,* तथा *तमोगुणवती*

और *त्रितत्त्वा, तत्त्वरूपा, तत्त्वज्ञा* एवं *तत्त्वकप्रिया*।। १०४।।

त्र्यम्बका त्र्यम्बकरता शुक्ला त्र्यम्बकरूपिणी।
त्रिकालज्ञा जन्महीना रक्ताङ्गी ज्ञानरूपिणी॥ १०४॥

आपका आह्वान इन नामों से भी होता है— *त्र्यम्बका, त्र्यम्बकरता, शुक्ला, त्र्यम्बकरूपिणी, त्रिकालज्ञा, जन्महीना, रक्ताङ्गी* एवं *ज्ञानरूपिणी*।। १०४।।

अकार्या कार्यजननी ब्रह्माख्या ब्रह्मसंस्थिता।
वैराग्ययुक्ता विज्ञानगम्या धर्मस्वरूपिणी॥ १०५॥

आप *अकार्या* हैं, *कार्यजननी* हैं, ब्रह्माख्या हैं एवं *ब्रह्मसंस्थिता* भी हैं। तथा *वैराग्ययुक्ता, विज्ञानगम्या* एवं *धर्मस्वरूपिणी* भी आपकी ही संज्ञा हैं।।१०५।।

सर्वधर्मविधानज्ञा धर्मिष्ठा धर्मतत्परा।
धर्मिष्ठपालनकरी धर्मशास्त्रपरायणा॥ १०६॥

आप को *सर्वधर्मविधानज्ञा, धर्मिष्ठा, धर्मतत्परा, धार्मिष्ठपालनकरी,* एवं *धर्मशास्त्रपरायणा* भी कहते हैं।। १०६।।

धर्माधर्मविहीना च धर्मजन्यफलप्रदा।
धर्मिणी धर्मनिरता धर्मिणामिष्टदायिनी॥ १०७॥

आप *धर्माधर्मविहीन* हैं, *धर्मजन्यफलप्रद* हैं, *धर्मिणी* हैं, *धर्मनिरता* एवं *धर्मियों को इष्टदायिनी* है।। १०७।।

धन्या धीर्धारणा धीरा धन्वनी धनदायिनी।
धनुष्मती धरासंस्था धरणिस्थितिकारिणी॥ १०८॥

धन्या, धी, धारणा, धीरा, धन्वनी, धनदायिनी, धनुष्मती, धरासंस्था एवं *धरणिस्थितिकारिणी* ये आपके ही नाम हैं।। १०८।।

सर्वयोनिर्विश्वयोनिरपायोनिरयोनिजा ।
रुद्राणी रुद्रवनिता रुद्रैकादशरूपिणी॥ १०९॥

आप *सर्वयोनि, विश्वयोनि, अपायोनि* एवं *अयोनिजा* भी कहलाती हैं। *रुद्राणी, रुद्रवनिता, रुद्रैकादशरूपिणी*— ये भी आपके नाम हैं।। १०९।।

रुद्राक्षमालिनी रौद्री भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
ब्रह्मोपेन्द्रप्रवन्द्या च नित्यं मुदितमानसा॥ ११०॥

आप *रुद्राक्षमालिनी* हैं, *रौद्री* हैं, *भुक्तिमुक्तिफलप्रदा* हैं, *ब्रह्मोपेन्द्रप्रवन्द्या*

हैं एवं *नित्य मुदितमानसा* हैं।। ११०।।

इन्द्राणी वासवी चैन्द्री विचित्रैरावतस्थिता।
सहस्त्रनेत्रा दिव्याङ्गा दिव्यकेशविलासिनी॥ १११॥

आप ही *इन्द्राणी, वासवी* और *ऐन्द्री* तथा *विचित्रैरावतास्थिता, सहस्त्रनेत्रा, दिव्याङ्गा* एवं *दिव्यकेशविलासिनी* हैं।। १११।।

दिव्याङ्गना दिव्यनेत्रा दिव्यचन्दनचर्चिता।
दिव्यालङ्करणा दिव्यश्वेतचामरवीजिता॥ ११२॥

दिव्याङ्गना, दिव्यनेत्रा, दिव्यचन्दनचर्चिता, दिव्यालङ्करणा एवं *दिव्यश्वेतचामरवीजिता*— ये सब भी आपके ही नाम हैं।। ११२।।

दिव्यहारा दिव्यपदा दिव्यनूपुरशोभिता।
केयूरशोभिता हृष्टा हृष्टचित्तप्रहर्षिणी॥ ११३॥

दिव्यहारा, दिव्यपदा, दिव्यनूपुरशोभिता, केयूरशोभिता, हृष्टा, एवं *हृष्टचित्तप्रहर्षिणी*— ये सब आपकी ही संज्ञाएँ हैं।। ११३।।

सम्प्रहृष्टमना हर्षप्रसन्नवदना तथा।
देवेन्द्रवन्द्यपादाब्जा देवेन्द्रपरिपूजिता॥ ११४॥

आपको विवेकी पुरुष *सम्प्रहृष्टमना, हर्षप्रसन्नवदना,* तथा *देवेन्द्रवन्द्यपादाब्जा* एवं *देवेन्द्रपरिपूजिता* भी कहते हैं।। ११४।।

रजसा रक्तनयना रक्तपुष्पप्रिया सदा।
रक्ताङ्गी रक्तनेत्रा च रक्तोत्पलविलोचना॥ ११५॥

आप *रजसा रक्तनयना* हैं, *सदा रक्तपुष्पप्रिया* हैं। *रक्ताङ्गी* हैं, *रक्तनेत्रा* हैं, *रक्तोत्पलविलोचना* हैं।। ११५।।

रक्ताभा रक्तवस्त्रा च रक्तचन्दनचर्चिता।
रक्तेक्षणा रक्तभक्ष्या रक्तमत्तोरगाश्रया॥ ११६॥

रक्ताभा, रक्तवस्त्रा और *रक्तचन्दनचर्चिता* एवं *रक्तेक्षणा, रक्तभक्ष्या, रक्तमत्ता* तथा *उरगाश्रया* भी आपके ही नाम हैं।। ११६।।

रक्तदन्ता रक्तजिह्वा रक्तभक्षणतत्परा।
रक्तप्रिया रक्ततुष्टा रक्तपानसुतत्परा॥ ११७॥

आपको ही *रक्तदन्ता, रक्तजिह्वा, रक्तभक्षणतत्परा, रक्तप्रिया, रक्ततुष्टा,* एवं *रक्तपानसुतत्परा* भी कहते हैं।। ११७।।

बन्धूककुसुमाभा च रक्तगन्धानुलेपना।

स्फुरद्रक्ताञ्चिततनुः स्फुरत्सूर्यशतप्रभा ॥ ११८ ॥

आप *बन्धूककुसुमाभा* हैं, *रक्तमाल्यानुलेपना* हैं, *स्फुरद्रक्ताञ्चिततनु* हैं, और *स्फुरत्सूर्यप्रभा* भी आप ही हैं।। ११८।।

स्फुरन्नेत्रा पिङ्गजटा पिङ्गला पिङ्गलेक्षणा।
बगला पीतवस्त्रा च पीतपुष्पप्रिया सदा॥ ११९ ॥

स्फुरन्नेत्रा, पिङ्गजटा, पिङ्गला एवं *पिङ्गलेक्षणा* भी आप ही हैं। साथ ही आप *बगला, पीतवस्त्रा* और सदैव *पीतपुष्पप्रिया* भी हैं।। ११९।।

पीताम्बरा पिबद्रक्ता पीतपुष्पोपशोभिता।
शत्रुघ्नी शत्रुसम्मोहजननी शत्रुतापिनी॥ १२० ॥

पीताम्बरा, पिबद्रक्ता एवं *पीतपुष्पोपशोभिता* भी आप ही हैं। तथा *शत्रुघ्नी, शत्रुसम्मोहजननी* एवं *शत्रुतापिनी*— ये सब भी आपके ही नाम हैं।।१२०।।

शत्रुप्रमर्दिनी शत्रुवाक्यस्तम्भनकारिणी।
उच्चाटनकरी सर्वदुष्टोत्सारणकारिणी॥ १२१ ॥

अथ च विद्वज्जन, *शत्रुप्रमर्दिनी, शत्रुवाक्यस्तम्भनकारिणी, उच्चाटनकरी* एवं *सर्वदुष्टोत्सारणकारिणी*—इन नामों से भी आपको सम्बोधित करते हैं।।१२१।।

शत्रुविद्राविणी शत्रुसम्मोहनकरी तथा।
विपक्षमर्दनकरी शत्रुपक्षक्षयङ्करी॥ १२२ ॥

शत्रुविद्राविणी, शत्रुसम्मोहनकरी तथा *विपक्षमर्दनकरी* एवं *शत्रुपक्ष-क्षयङ्करी* भी आप के ही नाम हैं।। १२२।।

सर्वदुष्टघातिनी च सर्वदुष्टविनाशिनी।
द्विभुजा शूलहस्ता च त्रिशूलवरधारिणी॥ १२३ ॥

सर्वदुष्टघातिनी, सर्वदुष्टविनाशिनी, द्विभुजा, शूलहस्ता और *त्रिशूलवरधारिणी*— ये सब आपके ही प्रशंसात्मक नाम हैं।। १२३।।

दुष्टसन्तापजननी दुष्टक्षोभप्रवर्धिनी।
दुष्टानां क्षोभसम्बद्धा भक्तक्षोभनिवारिणी॥ १२४ ॥

दुष्टसन्तापजननी, दुष्टक्षोभप्रवर्धिनी, दुष्टक्षोभसम्बद्धा एवं *भक्तक्षोभ-निवारिणी*— ये भी आप के ही नाम हैं।। १२४।।

दुष्टसन्तापिनी दुष्टसन्तापपरिमर्दिनी।

सन्तापरहिता भक्तसन्तापपरिनाशिनी॥ १२५॥

ये भी आप की ही संज्ञाएँ हैं– *दुष्टसन्तापिनी, दुष्टसन्तापपरिमर्दिनी, सन्तापरहिता* एवं *भक्तसन्तापपरिनाशनी*।। १२५।।

अद्वैता द्वैतरहिता निष्कला ब्रह्मरूपिणी।
त्रिदशेशी त्रिलोकेशी सर्वेशी जगदीश्वरी॥ १२६॥

आप इन नामों से भी शास्त्र में आहूत होती हैं– *अद्वैता, द्वैतरहिता, निष्कला, ब्रह्मरूपिणी, त्रिदशेशी, त्रिलोकेशी, सर्वेशी* एवं *जगदीश्वरी*।। १२६।।

ब्रह्मेशसेवितपदा सर्ववन्द्यपदाम्बुजा।
अचिन्त्यरूपचरिता चाचिन्त्यबलविक्रमा॥ १२७॥

तथा *ब्रह्मेशसेवितपदा, सर्ववन्द्यपदाम्बुजा, अचिन्त्यरूपचरिता* और *अचिन्त्यबलविक्रमा*– इन नामों से भी आपका आह्वान होता है।। १२७।।

सर्वाचिन्त्यप्रभावा च स्वप्रभावप्रदर्शिनी।
अचिन्त्यमहिमाचिन्त्यरूपसौन्दर्यशालिनी॥ १२८॥

आप *अचिन्त्यप्रभावा* हैं, *स्वप्रभावप्रदर्शिनी* हैं, *अचिन्त्यमहिमा* भी हैं तथा *अचिन्त्यरूपसौन्दर्यशालिनी* भी हैं।। १२८।।

अचिन्त्यवेशशोभा च लोकाचिन्त्यगुणान्विता।
अचिन्त्यशक्तिर्दुश्चिन्त्यप्रभावाऽचिन्त्यरूपिणी ॥ १२९॥

आप *अचिन्त्यवेशशोभा* हैं, *लोकाचिन्त्यगुणान्विता* हैं, *अचिन्त्यशक्ति* हैं, *दुश्चिन्त्यप्रभावा* तथा *अचिन्त्यरूपिणी* हैं।। १२९।।

योगचिन्त्या महाचिन्तानाशिनी चेतनात्मिका।
दक्षजा गिरिजा विश्वजनयित्री जगत्प्रसूः॥ १३०॥

तथा *योगचिन्त्या, महाचिन्तानाशिनी, चेतनात्मिका, दक्षजा, गिरिजा विश्वजनयित्री* एवं *जगत्प्रसू*–इन नामों से भी आपकी महिमा का ही वर्णन होता है।। १३०।।

सन्नम्याप्रणता सर्वप्रणतार्तिहरा तथा।
प्रणतैश्वर्यदा सर्वप्रणताशुभनाशिनी॥ १३१॥

और *सन्नम्या, अप्रणता, सर्वप्रणतार्तिहरा, प्रणतैश्वर्यदा* एवं *सर्वप्रणता–शुभनाशिनी* भी आपके नाम हैं।। १३१।।

प्रणतापन्नाशकरी प्रणताशुभमोचनी।
सिद्धेश्वरी सिद्धसेव्या सिद्धचारणसेविता॥ १३२॥

प्रणतापन्नाशकरी, प्रणताशुभमोचनी, सिद्धेश्वरी, सिद्धिसेव्या, एवं

सिद्धचारणसेविता भी आपके ही नाम हैं।। १३२।।

सिद्धिप्रदा सिद्धिकरी सर्वसिद्धगणेश्वरी।
अष्टसिद्धिप्रदा सिद्धगणसेव्यपदाम्बुजा॥ १३३॥

आप *सिद्धिप्रदा* हैं, *सिद्धिकरी* हैं, *सर्वसिद्धगणेश्वरी* हैं *अष्टसिद्धिप्रदा* तथा *सिद्धगणसेव्यपदाम्बुजा* भी हैं।। १३३।।

कात्यायनी स्वधा स्वाहा वषड्वौषट्स्वरूपिणी।
पितृणां तृप्तिजननी काव्यरूपा सुरेश्वरी॥ १३४॥

आपको *कात्यायनी* भी कहते हैं, *स्वाहा, स्वधा, वषट् एवं बौषट् स्वरूपणी* भी आप ही हैं, आप *पितरों की तृप्तिजननी, काव्यरूपा* तथा *सुरेश्वरी* भी हैं।।१३४।।

हव्यभोक्त्री हव्यतुष्टा पितृरूपाऽसितप्रिया।
कृष्णपक्षप्रपूज्या च प्रेतपक्षसमर्पिता॥ १३५॥

आप *हव्यभोक्त्री* एवं *हव्यतुष्टा* हैं, आप *पितृरूपा* भी हैं और *असितप्रिया* भी। साथ ही *कृष्णपक्षप्रपूज्या* भी हैं और *प्रेतपक्षसमर्पिता* भी।। १३५।।

अष्टहस्ता दशभुजा चाष्टादशभुजान्विता।
चतुर्दशभुजाऽसङ्ख्यभुजवल्लीविराजिता ॥ १३६॥

आप *अष्टहस्ता* हैं, *दशभुजा* हैं, *अष्टादशभुजान्विता* भी हैं। आपको *चतुर्दशभुजान्विता* भी कहते हैं तथा आप *असङ्ख्यभुजवल्लीविराजिता* भी कहलाती हैं।। १३६।।

सिंहपृष्ठसमारूढा सहस्रभुजराजिता।
भुवनेशी चान्नपूर्णा महात्रिपुरसुन्दरी॥ १३७॥

आप *सिंहपृष्ठसमारूढा* भी हैं, और *सहस्रभुजराजिता* भी। आपको *भुवनेशी* और अन्नपूर्णा *तथा* महात्रिपुरसुन्दरी भी कहते हैं।। १३७।।

त्रिपुरा सुन्दरी सौम्यमुखी सुन्दरलोचना।
सुन्दरास्या शुभदंष्ट्रा सुभ्रूः पर्वतनन्दिनी॥ १३८॥

त्रिपुरा, सुन्दरी, सौम्यमुखी, सुन्दरलोचना, सुन्दरास्या, शुभदंष्ट्रा, सुभ्रू एवं *पर्वतनन्दिनी*—ये सब आपके ही नाम हैं।। १३८।।

नीलोत्पलदलश्यामा स्मेरोत्फुल्लमुखाम्बुजा।
सत्यसन्धा पद्मवक्त्रा भ्रुकुटीकुटिलानना॥ १३९॥

साथ ही इन नामों से भी आपका आह्वान किया जाता है— *नीलोत्पल–दलश्यामा, स्मेरोत्फुल्लमुखाम्बुजा, सत्यसन्धा, पद्मवक्त्रा,* एवं *भ्रुकुटी–*

कुटिलानना ।। १३९ ।।

विद्याधरी वरारोहा महासन्ध्यास्वरूपिणी।
अरुन्धती हिरण्याक्षी सुधूम्राक्षी शुभेक्षणा॥ १४०॥

हे देवि! आपके ये भी नाम हैं— *विद्याधरी, वरारोहा, महासन्ध्यास्वरूपिणी, अरुन्धती, हिरण्याक्षी, सुधूम्राक्षी* एवं *शुभेक्षणा*।। १४० ।।

श्रुतिः स्मृतिः कृतिर्योगमाया पुण्या पुरातनी।
वाग्देवता वेदविद्या ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी॥ १४१॥

श्रुति, स्मृति, कृति, योगमाया, पुण्या, पुरातनी, वाग्देवता, वेदविद्या, ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी— ये नाम भी आपके ही हैं।। १४१ ।।

वेदशक्तिर्वेदमाता वेदाद्या परमा गतिः।
आन्वीक्षिकी तर्कविद्या योगशास्त्रप्रकाशिनी॥ १४२॥

तथा आपके महिमागान में ये नाम भी सम्पृक्त हैं— *वेदशक्ति, वेदमाता, वेदाद्या, परमगति, आन्वीक्षिकी, तर्कविद्या, योगशास्त्रप्रकाशिनी*।। १४२ ।।

धूमावती वियन्मूर्तिर्विद्युन्मालाविलासिनी।
महाव्रता सदानन्दनन्दिनी नगनन्दिनी॥ १४३॥

धूमावती, वियन्मूर्ति, विद्युन्मालाविलासिनी, महाव्रता, सदानन्दनन्दिनी एवं *नगनन्दिनी*— ये सब नाम भी आपके ही बोधक हैं।। १४३ ।।

सुनन्दा यमुना चण्डी रुद्रचण्डी प्रभावती।
पारिजातवनावासा पारिजातवनप्रिया॥ १४४॥

आप *सुनन्दा* भी हैं, *यमुना* भी हैं, *चण्डी* भी हैं, *रुद्रचण्डी* और *प्रभावती* भी हैं। आपको ही *पारिजातवनावासा* एवं *पारिजात वनप्रिया* भी कहते हैं।। १४४ ।।

सुपुष्पगन्धसन्तुष्टा दिव्यपुष्पोपशोभिता।
पुष्पकाननसद्वासा पुष्पमालाविलासिनी॥ १४५॥

सुपुष्पगन्धसन्तुष्टा नाम भी आप का ही है तथा *दिव्यपुष्पोपशोभिता* भी। *पुष्पकाननसद्वासा* भी आपको ही कहते हैं तो *पुष्पमालाविलासिनी* भी आप ही कहलाती हैं।। १४५ ।।

पुष्पमाल्यधरा पुष्पगुच्छालङ्कृतदेहिका।
प्रतप्तकाञ्चनाभासा शुद्धकाञ्चनमण्डिता॥ १४६॥

पुष्पमाल्यधरा, पुष्पगुच्छालङ्कृतदेहिका, प्रतप्तकाञ्चनाभासा एवं *शुद्ध–*

काञ्चनमण्डिता– इन नामों से भी आपकी ही महिमा प्रकट होती है।। १४६ ।।

सुवर्णकुण्डलवती स्वर्णपुष्पप्रिया सदा।
नर्मदासिन्धुनिलया समुद्रतनया तथा॥ १४७॥

आप *सुवर्णकुण्डलवती* है, तथा *सदा स्वर्णपुष्पप्रिया* भी हैं। *नर्मदा–सिन्धुनिलया* एवं *समुद्रतनया* भी आपके ही नाम हैं।। १४७ ।।

षोडशी षोडशभुजा महाभुजगमण्डिता।
पातालवासिनी नागी नागेन्द्रकृतभूषणा॥ १४८॥

षोडशी, षोडशभुजा, महाभुजगमण्डिता, पातालवासिनी, नागी एवं *नागेन्द्रकृतभूषणा*– इन नामों से भी आप ही आहूत की जाती हैं।। १४८ ।।

नागिनी नागकन्या च नागमाता नगालया।
दुर्गापत्तारिणी दुर्गदुष्टग्रहनिवारिणी॥ १४९॥

और आप के ये नाम भी हैं– *नागिनी* और *नागकन्या, नागमाता, नगालया, दुर्गापत्तारिणी* एवं *दुर्गदुष्टग्रहनिवारिणी* ।। १४९ ।।

अभयापन्निहन्त्री च सर्वापत्परिनाशिनी।
ब्रह्मण्या श्रुतिशास्त्रज्ञा जगतां कारणात्मिका॥ १५०॥

अभयापन्निहन्त्री और *सर्वापत्परिनाशिनी, ब्रह्मण्या, श्रुतिशास्त्रज्ञा* तथा *जगत् की कारणात्मिका*–ये नाम भी आपके ही हैं।। १५० ।।

निष्कारणा जन्महीना मृत्युञ्जयमनोरमा।
मृत्युञ्जयहृदावासा मूलाधारनिवासिनी॥ १५१॥

तथा इन नामों का भी आप की तरफ सङ्केत हैं– *निष्कारणा, जन्महीना, मृत्युञ्जयमनोरमा, मृत्युञ्जयहृदावासा* एवं *मूलाधारनिवासिनी* ।। १५१ ।।

षट्चक्रसंस्था महती महोत्सवविलासिनी।
रोहिणी सुन्दरमुखी सर्वविद्याविशारदा॥ १५२॥

हे देवि! आप ही *षट्चक्रसंस्था* हैं, *महती* हैं, *महोत्सवविलासिनी* हैं। *रोहिणी, सुन्दरमुखी* एवं *सर्वविद्याविशारदा* भी आप ही हैं।। १५२ ।।

सदसद्वस्तुरूपा च निष्कामा कामपीडिता।
कामातुरा काममत्ता काममानससत्तनुः॥ १५३॥

सदसद्वस्तुरूपा भी आप ही हैं तथा *निष्कामा* एवं *कामपीडिता* भी आप को ही कहा जाता है। *काममत्ता, कामातुरा,* तथा *काममानससत्तनु* भी आप ही हैं।। १५३ ।।

कामरूपा च कालिन्दी कचालम्बितविग्रहा।

अतसीकुसुमाभासा सिंहपृष्ठनिषेदुषी॥ १५४॥

आप *कामरूपा* और *कालिन्दी* भी हैं तथा *कचालम्बितविग्रहा* भी। *अतसीकुसुमाभासा* भी आप ही हैं तो *सिंहपृष्ठनिषेदुषी* भी।। १५४।।

युवती यौवनोद्रिक्ता यौवनोद्रिक्तमानसा।
अदितिर्देवजननी त्रिदशार्तिविनाशिनी॥ १५५॥

आप *युवती* हैं, *यौवनोद्रिक्ता* हैं, *यौवनोद्रिक्तमानसा* हैं। आप *अदिति* हैं, *देवजननी* हैं एवं *त्रिदशार्त्तिविनाशिनी* भी हैं।। १५५।।

दक्षिणाऽपूर्ववसना पूर्वकालविवर्जिता।
अशोका शोकरहिता सर्वशोकनिवारिणी॥ १५६॥

आप *दक्षिणा* हैं, *अपूर्ववसना* हैं, तथा *पूर्वकालविवर्जिता* हैं। *अशोका, शोकरहिता, सर्वशोकनिवारिणी* भी आपको ही कहते हैं।। १५६।।

अशोककुसुमाभासा शोकदुःखक्षयङ्करी।
सर्वयोषित्स्वरूपा च सर्वप्राणिमनोरमा॥ १५७॥

अशोककुसुमाभासा, शोकदुःखक्षयङ्करी और *सर्वयोषित्स्वरूपा* तथा *सर्वप्राणिमनोरमा* भी आपको ही कहा जाता है।। १५७।।

महाश्चर्या मदाश्चर्या महामोहस्वरूपिणी।
महामोहकरी मोहकारिणी मोहदायिनी॥ १५८॥

आप ही *महाश्चर्या, मदाश्चर्या, महामोहस्वरूपिणी, महामोक्षकरी, मोहकारिणी* एवं *मोहदायिनी* कहलाती हैं।। १५८।।

अशोच्या पूर्णकामा च पूर्णापूर्णमनोरथा।
पूर्णाभिलषिता पूर्णनिशानाथसमानना॥ १५९॥

अशोच्या तथा *पूर्णकामा, पूर्णापूर्णमनोरथा, पूर्णाभिलषिता*, एवं *पूर्णनिशानाथसमानना* भी आप के ही नाम हैं।। १५९।।

द्वादशार्कस्वरूपा च सहस्रार्कसमप्रभा।
तेजस्विनी सिद्धमाता चन्द्रानयनरक्षणा॥ १६०॥

द्वादशार्कस्वरूपा भी आप ही हैं तो *सहस्रार्कसमप्रभा* भी। *तेजस्विनी, सिद्धमाता* एवं *चन्द्रानयनरक्षणा* भी आपको ही कहते हैं।। १६०।।

अपरापारमाहात्म्या नित्यविज्ञानशालिनी।
विवस्वती हव्यवाहा जातवेदःस्वरूपिणी॥ १६१॥

अपरापारमाहात्म्या, नित्यविज्ञानशालिनी, विवस्वती, हव्यवाहा तथा जातवेदःस्वरूपिणी भी आप ही हैं।। १६१।।

स्वैरिणी स्वेच्छविहरा निर्बीजा बीजरूपिणी।
अनन्तवर्णाऽनन्ताख्याऽनन्तसंस्था महोदरी॥ १६२॥

आपके ही ये नाम भी हैं— *स्वैरिणी, स्वेच्छविहरा, निर्बीजा बीजरूपिणी, अनन्तवर्णा, अनन्ता, अनन्तसंस्था* एवं महोदरी।। १६२।।

दुष्टभूतापहन्त्री च सद्वृत्तपरिपालिका।
कपालिनी पानमत्ता मत्तवारणगामिनी॥ १६३॥

तथा विद्वान् इन नामों से भी आपको ही आहूत करते हैं, जैसे— *दुष्टभूतापहन्त्री* और *सद्वृत्तपरिपालिका*, तथा *कपालिनी, पानमत्ता* एवं *मत्तवारणगामिनी*।। १६३।।

विन्ध्यस्था विन्ध्यनिलया विन्ध्यपर्वतवासिनी।
बन्धुप्रिया जगद्बन्धुः पवित्रा सपवित्रिणी॥ १६४॥

आप *विन्ध्यस्था* भी हैं, *विन्ध्यनिलया* भी और *विन्ध्यपर्वतवासिनी* भी। आपको ही *बन्धुप्रिया, जगद्बन्धु, पवित्रा* एवं *सपवित्रिणी* भी कहते हैं।।१६४।।

परामृताऽमृतकला चापमृत्युविनाशिनी।
महारजतसङ्काशा रजताद्रिनिवौसिनी॥ १६५॥

आपको *परामृता, अमृतकला, अपमृत्युविनाशिनी, महारजतसङ्काशा* तथा *रजताद्रिनिवासिनी* भी कहा जाता है।। १६५।।

काशीविलासिनी काशीक्षेत्ररक्षणतत्परा।
योनिरूपा योनिपीठस्थिता योनिस्वरूपिणी॥ १६६॥

आप *काशीविलासिनी* हैं तथा *काशीक्षेत्ररक्षणतत्परा* भी। आप *योनिरूपा, योनिपीठस्थिता* एवं *योनिस्वरूपिणी* भी कहलाती हैं।। १६६।।

कामालसितचार्वङ्गी कटाक्षक्षेपमोहिनी।
कटाक्षक्षेपनिरता कल्पवृक्षस्वरूपिणी॥ १६७॥

आप *कामालसितचार्वङ्गी* भी हैं और *कटाक्षक्षेपमोहिनी* भी। *कटाक्षक्षेपनिरता* तथा *कल्पवृक्षस्वरूपिणी* भी आप ही हैं।। १६७।।

पाशाङ्कुशधरा शक्तिर्धारिणी खेटकायुधा।
बाणायुधाऽमोघशस्त्रा दिव्यशस्त्रास्त्रवर्षिणी॥ १६८॥

आपके ये नाम भी प्रसिद्ध हैं— *पाशाङ्कुशधरा, शक्ति, धारिणी, खेटकायुधा, बाणायुधा, अमोघशस्त्रा* एवं *दिव्यशस्त्रास्त्रवर्षिणी*।। १६८।।

महास्त्रजालविक्षेपविपक्षक्षयकारिणी।
घण्टिनी पाशिनी पाशहस्ता पाशाङ्कुशायुधा॥ १६९॥

आप *महास्त्रजालविक्षेपा तथा विपक्षक्षयकारिणी* हैं। आप ही *घण्टिनी, पाशिनी, पाशहस्ता* एवं पाशाङ्कुशायुधा भी हैं।। १६९।।

चित्रसिंहासनगता महासिंहासनस्थिता।
मन्त्रात्मिका मन्त्रबीजा मन्त्राधिष्ठातृदेवता॥ १७०॥

आप *चित्रसिंहासनगता* भी कहलाती हैं और *महासिंहासनस्थिता* भी। आपका ही नाम *मन्त्रात्मिका, मन्त्रबीजा* एवं *मन्त्राधिष्ठातृदेवता* भी है।। १७०।।

सुरूपाऽनेकरूपा च विरूपा बहुरूपिणी।
विरूपाक्षप्रियतमा विरूपाक्षमनोरमा॥ १७१॥

आप *सुरूपा* हैं, अनेकरूपा *और विरूपा* हैं तथा *बहुरूपिणी* भी। आपको ही *विरूपाक्षप्रियतमा* एवं *विरूपाक्षमनोरमा* भी कहते हैं।। १७१।।

विरूपाक्षा कोटराक्षी कूटस्था कूटरूपिणी।
करालास्या विशालास्या धर्मशास्त्रार्थपारगा॥ १७२॥

आप *विरूपाक्षा* भी हैं और *कोटराक्षी* भी, तथा *कूटस्था एवं* कूटरूपिणी भी हैं। आपको ही *करालास्या, विशालास्या* तथा धर्मशास्त्रार्थपारगा *भी कहते* हैं।। १७२।।

अध्यात्मविद्या शास्त्रार्थकुशला शैलनन्दिनी।
नगाधिराजपुत्री च नगपुत्री नगोद्भवा॥ १७३॥

अध्यात्मविद्या, शास्त्रार्थकुशला, शैलनन्दिनी, नगाधिराजपुत्री, नगपुत्री एवं *नगोद्भवा*– ये सब भी आपके ही नाम हैं।। १७३।।

गिरीन्द्रबाला गिरिशप्राणतुल्या मनोरमा।
प्रसन्ना चारुवदना प्रसन्नास्या प्रसन्नदा॥ १७४॥

आप *गिरीन्द्रबाला* भी है, *गिरिशप्राणतुल्या* भी और *मनोरमा* भी। *आप ही* प्रसन्ना, चारुवदना, प्रसन्नास्या *एवं* प्रसन्नदा भी कहलाती हैं।। १७४।।

शिवप्राणा पतिप्राणा पतिसम्मोहकारिणी।
मृगाक्षी चञ्चलापाङ्गी सुदृष्टिर्हंसगामिनी॥ १७५॥

आप *शिवप्राणा* हैं, *पतिप्राणा* हैं, *पतिसम्मोहकारिणी* भी आप ही हैं। और *मृगाक्षी, चञ्चलापाङ्गी* एवं *सुदृष्टि हंसगामिनी* भी आप को ही कहते हैं।। १७५।।

नित्यं कुतूहलपरा नित्यानन्दाभिनन्दिता।
सत्यविज्ञानरूपा च तत्त्वज्ञानैककारिणी॥ १७६॥

आप *नित्यकुतूहलपरा* हैं, *नित्यानन्दाभिनन्दिता* हैं। और *सत्य-विज्ञानरूपा* एवं तत्त्वज्ञानैककारिणी भी आप ही हैं।। १७६।।

त्रैलोक्यसाक्षिणी लोकधर्माधर्मप्रदर्शिनी।
धर्माधर्मविधात्री च शम्भुप्राणात्मिका परा॥ १७७॥

आप *त्रैलोक्यसाक्षिणी* एवं *लोकधर्माधर्मप्रदर्शिनी* हैं। आप ही *धर्माधर्मविधात्री* और पराशम्भुप्राणात्मिका भी कहलाती हैं।। १७७।।

मेनकागर्भसम्भूता मैनाकभगिनी तथा।
श्रीकण्ठकण्ठहारा च श्रीकण्ठहृदयस्थिता॥ १७८॥

आप *मेनकागर्भसम्भूता* हैं तथा *मैनाकभगिनी* भी कहलाती हैं आप को ही *श्रीकण्ठकण्ठहारा* तथा *श्रीकण्ठहृदयस्थिता* कहा जाता है।। १७८।।

श्रीकण्ठकण्ठजप्या च नीलकण्ठमनोरमा।
कालकूटात्मिका कालकूटभक्षणकारिणी॥ १७९॥

आप महादेव जी कण्ठ से जप करने योग्य हैं, आप शङ्कर भगवान की प्रियतमा हैं। आप कालकूटस्वरूपा हैं तथा कालकूट (विष) का भक्षण करने वाली हैं।। १७९।।

महाकालप्रिया कालकलनैकविधायिनी।
अक्षोभ्यपत्नी संक्षोभनाशिनी ते नमो नमः"॥ १८०॥

हे देवि! आप ही *महाकालप्रिया* तथा *कालकलनैकविधायिनी* है। *अक्षोभ्यपत्नी* एवं *संक्षोभनाशिनी* भी आप ही है। आपको बार बार प्रणाम है।। १८०।।

श्रीकालीसहस्रनाम सम्पूर्ण॥

श्रीमहादेव०— **एवं नामसहस्रेण संस्तुता पर्वतात्मजा।**
वाक्यमेतन्महेशानमुवाच मुनिसत्तम!॥ १८१॥

श्रीमादेव जी— हे मुनिश्रेष्ठ! यों उस पार्वती ने, भगवान् शङ्कर द्वारा इन हजार नामों से संस्तुत होने के बाद, उनसे यह कहा—।। १८१।।

श्रीदेवी०— **"अहं त्वदर्थे शैलेन्द्रतनयात्वमुपागता।**
त्वं मे प्राणसमो भर्ता त्वदनन्याहमङ्गना॥ १८२॥

श्रीदेवी— हे शङ्कर! मैंने आपके लिये ही इन गिरिराज के यहाँ जन्म ग्रहण किया है। आप मेरे प्राणों के समान प्रिय भर्ता हैं। आप के अतिरिक्त मैं किसी अन्य की पत्नी नहीं बन सकती।। १८२।।

त्वं मदर्थे तपस्तीव्रं सुचिरं कृतवानसि।
अहं च तपसाराध्या त्वां लप्स्यामि पुनः पतिम्"॥ १८३॥

आपने भी मेरे लिये चिरकाल तक उग्र तप किया है। मैं भी उग्र तप से ही अपने अनुकूल बनायी जा सकती हैं। अत: मैं आपको पति के रूप में वरण करूँगी।। १८३।।

श्रीशिव०—"त्वमाराध्यतमा सर्वजननी प्रकृतिः परा।
तवाराध्यो जगत्यत्र विद्यते नैव कोऽपि हि॥ १८४॥

श्रीशंकर– हे देवि! आप परा प्रकृति के रूप में सबकी माता हैं, आपही सबके लिये पूज्य हैं। संसार में आप किसी की पूजा (आराधना) करें– यह सम्भव नहीं है।। १८४।।

अहं त्वया निजगुणैरनुग्राह्यो महेश्वरि।
प्रार्थनीयस्त्वयि शिवे एष एव वरो मम॥ १८५॥

यत्र यत्र तवेदं हि कालीरूपं मनोहरम्।
आविर्भवति तत्रैव शिवरूपस्य मे हृदि॥ १८६॥
संस्थातव्यं त्वया लोके ख्याता च शववाहना।
भविष्यसि महाकाली प्रसीद जगदम्बिके"॥ १८७॥

हे महेश्वरि! आप मुझे अपने सद्गुणों से अनुगृहीत करें। हे शिवे! मैं आपसे इतनी ही प्रार्थना करता हूँ। आपका मेरे प्रति यही वरदान होगा कि लोक में जहाँ आपका यह मनोहर काली रूप अवतरित हो वहीं शिवरूप मेरे हृदय में शववाहना देवी के रूप में आप महाकाली विराजमान रहें। हे जगदम्बिके! आप मुझ पर प्रसन्न हों"।। १८५–१८७।।

श्रीमहादेव०—इत्युक्त्वा शम्भुना काली कालमेघसमप्रभा।
तथेत्युक्त्वा समभवत् पुनर्गौरी यथा पुरा॥ १८८॥

भगवान् शङ्कर द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह प्रलयकालीन मेघ के समान कान्ति वाली भगवती काली उनसे 'तथाऽस्तु' यह कहकर पुनः पूर्ववत् अपने गौरी (पर्वतराजपुत्री) के रूप में आ गयी। जैसे कि वह पहले थी"।।१८८।।

कालीसहस्रनाम–पाठ का माहात्म्य

य इदं पठते देव्या नाम्नां भक्त्या सहस्रकम्।
स्तोत्रं श्रीशम्भुना प्रोक्तं स देव्याः समतामियात्॥ १८९॥

जो भगवान् शङ्कर द्वारा प्रोक्त भगवती देवी के सहस्रनामों का भक्तिपूर्वक पाठ करेगा, वह देवी की समता को प्राप्त कर लेगा।। १८९।।

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पैश्च धूपदीपैर्महेश्वरीम्।
यः पठेत्स्तोत्रमेतच्च लभेत् परमं पदम्॥ १९०॥

वह साधक उन भगवती महेश्वरी की गन्धद्रव्य, पुष्प, धूप, एवं दीप द्वारा पूजा कर इस स्तोत्र का पाठ करेगा वह अवश्य ही परम पद (मोक्ष) को प्राप्त करेगा।। १९०।।

अनन्यमनसा देवीं स्तोत्रेणानेन यो नरः।
संस्तौति प्रत्यहं तस्य सर्वसिद्धिः प्रजायते॥ १९१॥

जो साधक इस स्तोत्र के पाठ द्वारा प्रतिदिन भक्तिपूर्वक भगवती देवी का अनन्य भाव से स्तवन करता है, उसको सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।। १९१।।

राजानो वशगास्तस्य नश्यन्ति रिपवस्तथा।
सिंहव्याघ्रमुखाः सर्वे हिंसका दस्यवस्तथा॥ १९२॥
दूरादेव पलायन्ते तस्य दर्शनमात्रतः।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते मङ्गलं महत्॥ १९३॥
अन्ते दुर्गास्मृतिं लब्ध्वा स्वयं देवीकलामियात्॥ १९४॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे कालीसहस्रनामस्तोत्रं नाम
त्रयोविंशतितमोऽध्यायः॥ २३॥

इस स्तोत्रपाठ के प्रभाव से दुर्दान्त राजा भी उस साधक के वश में हो जाते हैं, उसके प्रबल शत्रु भी नष्ट हो जाते हैं। यहाँ तक कि डाकू–लुटेरे तथा सिंह, व्याघ्र आदि प्राणी भी उसको कुछ हानि नहीं पहुँचा सकते। उस साधक के उपर्युक्त सभी विरोधी, उसको देखते ही, दूर से ही भाग खड़े होते हैं। सभी प्राणी उसकी आज्ञा के पालक हो जाते हैं। उसको सर्वत्र शुभ ही शुभ (मङ्गल) दिखायी देता है और अन्त में वह साधक इस स्तोत्र–पाठ के प्रभाव से दुर्गा भगवती का स्मरण करता हुआ स्वयं देवी के अंश में मिल जाता है।। १९२–१९४।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
"कालीसहस्रनामस्तोत्र वर्णन" रूप
तेईसवाँ अध्याय समाप्त॥

चौबीसवाँ अध्याय

[पार्वती-विवाहोपक्रम]

श्रीमहादेव०— ततः शम्भुः समादाय कामदेवशरीरजम्।
भस्म सर्वेषु देहेषु भूतिलेपं विधाय च॥ १॥
पुनस्तपसि शैलेन्द्रशृङ्गे भूतगणैः सह।
पार्वत्यपि च शैलेन्द्रे तपसे समुपाविशन्॥ २॥

श्रीमहादेव जी बोले— तब भगवान् शङ्कर कामदेव के शरीर की भस्म का अपने शरीर के सभी अङ्गों में विभूति की तरह लेपन कर पुनः उसी पर्वत–शिखर पर अपने भूतगणों के साथ उग्र तपस्या में संलग्न हो गये। उधर पार्वती जी भी उसी पर्वत–शिखर पर तपस्या में लीन हो गयीं।। १–२।।

शम्भुः सन्ध्याय तां देवीं देवी तमपि शङ्करम्।
सन्ध्याय मनसा वर्षसहस्त्रत्रयमानयत्॥ ३॥

भगवान् शङ्कर ने पार्वती को ध्यान में रखकर तथा पार्वती ने भगवान् शङ्कर को ध्यान में रखकर निरन्तर तीन हजार वर्ष तक तपस्या में मन लगाया।। ३।।

ततः शम्भुः सुदुःखार्तः कामेन भस्मरूपिणा।
पार्वतीनिकटं गत्वा कृताञ्जलिरिदं वचः॥ ४॥

तब भगवान् शङ्कर भस्मरूपी कामदेव के कारण अतीव विह्वल होकर, पार्वती के पास जाकर हाथ जोड़कर यों बाले–।। ४।।

प्राब्रवीत्—"परमेशानि तपस्त्यज सुदुश्चरम्।
ध्यानेन परिजप्येन मौनेन महता त्वया॥ ५॥
क्रीतस्तवैव दासोऽहं मां सेवायै नियोजय।
त्वदङ्गमार्जने हारकेयूरपरिधापने॥ ६॥
त्वदङ्गपरिसंस्कारेऽलक्तकादिभिरादरात्।
नियुङ्क्ष्व पर्वतसुते प्रसन्ना यदि मे शिवे॥ ७॥

भगवान् शङ्कर— "हे देवि! अब यह कठोर तप छोड़ो! आपने अपने इस अपूर्व ध्यान, जप, मौनव्रत आदि से मुझको खरीद लिया है। आज से मैं

आपका क्रीतदास हूँ। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो आपकी जो मेरे योग्य सेवा हो, उसे मुझे बताइये! हे पार्वती! आपके इन अङ्गों को नहलाने धुलाने तथा हार–केयूर आदि द्वारा अलङ्कृत करने में तथा इस शरीर को अलक्तक आदि से रंगने में मुझे लगाइये।। ५–७।।

निर्दग्धोऽस्मि भृशं भस्मरूपिणा मदनेन च।
देहस्थेन महादेवि मामुद्धर मनोभवात्॥ ८॥

हे महादेवि! मैं इस भस्मरूप से देहस्थित कामदेव द्वारा अत्यधिक पीड़ित हूँ। मेरा इसके वेग से उद्धार कीजिये।। ८।।

त्वं सर्वदुर्गार्तिहरा दुर्गाऽभीष्टफलप्रदा।
त्वामाश्रयन्ति ये तेषां दुःखं सञ्जायते नहि॥ ९॥

आप तो सभी के कठोर से कठोर दुःखों का नाश करने वाली हैं, सभी को वाञ्छित फल देने वाली दुर्गा देवी हैं। आपका जो आश्रय ग्रहण करते हैं उन्हें कभी कोई दुःख नहीं होता।। ९।।

अहं त्वां सर्वथा भक्तिभावेन समुपाश्रितः।
मामुद्धर महादुर्गे कामसागरमध्यतः॥ १०॥

मैं सर्वथा भक्तिभाव से आप का आश्रय लिये हुए हूँ। हे दुर्गे! मुझे भी इस कामसागर से पार उतारिये।। १०।।

यथा त्वं संस्मृतिजुषां मोक्षदासि दयामयि!
तथा मां कृपया कामसागराच्च समुद्धर''॥ ११॥

हे दयामयि! जैसे आप अपना स्मरण करने वाले अन्य भक्तजनों को मुक्ति प्रदान करती हैं वैसे ही कृपया इस कामसागर से मेरा भी उद्धार कीजिये''।। ११।।

एवं सम्प्रार्थिता शम्भुं प्रोवाच हिमदेहजा।
सखीं सम्बोध्य लज्जाभिनतवक्त्रा स्मितानना॥ १२॥

भगवान् शङ्कर द्वारा ऐसा कहे जाने पर लज्जित होती हुई वह हिमालयपुत्री अपनी सखी की तरफ सङ्केत करती हुई तथा कुछ मुस्कराती हुई यों बोली–।। १२।।

''असम्प्रदत्ता पित्राहं कथमेनमुपागता।
भविष्यामि ततः पाणिं गृह्णातु विधिवद्धरः॥ १३॥

पार्वती– ''जब तक मेरे पिता मेरा हाथ उनके हाथ में न दें तब तक मैं इनके पास कैसे जा सकती हूँ? हाँ, यदि ऐसा हो जाय तो मैं इन्हें स्वीकार कर सकती हूँ। तब वे विधिवत् मेरे साथ विवाह करें।। १३।।

पितरं मे गिरिश्रेष्ठ केनचिन्मतिशालिना।
स्वाभिप्रायं ज्ञापयतु विवाहार्थं महेश्वरः''॥ १४॥

इस कार्य के लिये उचित यही होगा कि ये भगवान् शङ्कर अपना यह मनोभाव किसी बुद्धिमान् पुरुष द्वारा मेरे पिता के सम्मुख रखें''।। १४।।

इत्युक्तः सोऽपि भगवान् महादेवस्त्रिलोचनः।
तथ्यं मेने गिरिसुतावचनं कामुकोऽपि सन्॥ १५॥
ततः सा प्रययौ शीघ्रं सखीभिः परिवारिता।
पितुर्गेहं भगवती प्रफुल्लकमलानना॥ १६॥

इस प्रकार उन पार्वती देवी ने उस त्रिलोचन भगवान् शङ्कर को कहा तो गिरिजा के यह वचन सुनकर, कामुक होते हुए भी उन्होंने उन वचनों को उचित समझा। उधर प्रसन्नमुख पार्वती उन्हें यों कहलाती हुई अपनी सखियों के साथ पुनः अपने घर चली गयी।। १५–१६।।

पार्वतीमागतां श्रुत्वा गिरीन्द्रः सहसोत्थितः।
आगत्याङ्के समारोप्य पुरमध्यं समानयत्॥ १७॥

पार्वती को यों अचानक घर आयी सुनकर, गिरिराज वहाँ आकर पार्वती को गोद में लेकर अपने घर में ले गये।। १७।।

आगत्य मेनका पुत्रीमालिङ्ग्य निजपाणिना।
अश्रुपूर्णेक्षणा वक्त्रं चुचुम्ब परमादरात्॥ १८॥

उधर पुत्री को अपनी बाहों में भरकर आँखों में आँसू भरती हुई मेनका ने भी प्रसन्नता से उसके मुख का चुम्बन किया।। १८।।

उवाच ''मातस्त्वं पुत्री मम प्राणसमा ह्यसि।
त्वद्विच्छेदमृतामद्य मां कुरुष्व सुजीवितम्''॥ १९॥

और बोली– ''हे पुत्रि! तूँ मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है। तेरे विना तो मैं मरी हुई सी थी, आज तुमने आकर मुझमें पुनः प्राण डाल दिये''।।१९।।

मैनाकप्रमुखाः सर्वे पार्वत्या भ्रातरस्तथा।
बान्धवाश्च तथैवान्ये दृष्ट्वा हर्षं प्रपेदिरे॥ २०॥

पार्वती के मैनाक आदि भाई तथा उसके अन्य परिवार वाले भी, उसे आया देखकर, बहुत प्रसन्न हुए।। २०।।

तस्याः सखीभ्यां शैलेन्द्रश्रेष्ठायापि निवेदितम्।
यथा दृष्टं वने शम्भोः पार्वत्यामभिचेष्टितम्॥ २१॥

उस पार्वती की सखियों ने भी, गिरिराज द्वारा पूछे जाने पर, पार्वती के वन में रहने की सभी घटनाएँ विस्तारपूर्वक सुना दी।। २१।।

गिरीन्द्रस्तत्समाकर्ण्य हर्षेण महता युतः।
प्रतीक्ष्यमाणो वार्तां स गिरिशस्य तदा स्थितः।
विवाहेप्सुः सुतायास्तु पार्वत्या मुनिपुङ्गव॥ २२॥

पर्वतराज ने, वे सब बातें सुनकर, अत्यधिक हर्ष के साथ हे मुनिश्रेष्ठ! अपनी पुत्री पार्वती के विवाह की मन में इच्छा रखते हुए भगवान् शङ्कर के सन्देश की प्रतीक्षा करना आरम्भ किया।। २२।।

शम्भुश्च तत्र शैलाग्रे संस्थितः प्रमथैः सह।
उवास पर्वते पाणिग्रहणे कृतनिश्चयः॥ २३॥

भगवान् शङ्कर भी अपने गणों के साथ उस पर्वत पर बैठे रहे। वहाँ उन्होंने निश्चय किया कि पार्वती का पाणिग्रहण किया ही जायगा।। २३।।

ततः सस्मार गिरिशो मरीच्यादीन्महामुनीन्।
अभिप्रायं गिरीन्द्राय विज्ञापयितुमात्मनः॥ २४॥

तब भगवान् शङ्कर ने हिमालय के पास अपना अभिप्राय भेजने के लिये वहाँ मरीचि आदि महामुनियों का स्मरण किया।। २४।।

ततस्ते समुपायाता मरीच्याद्या महर्षयः।
तत्क्षणाच्छिवसान्निध्यं वातोद्धूतघना इव।
ते प्रणम्य महादेवं पप्रच्छुस्त्रिदशेश्वरम्॥ २५॥

तब वे मरीचि आदि महामुनि वहाँ भगवान् शङ्कर के पास वायु से उड़ते मेघों की तरह तत्क्षण आये। वहाँ उन्होंने भगवान् शङ्कर को प्रणाम कर उनसे अपने बुलाने कारण पूछा—।। २५।।

"किमर्थमस्मान्भगवन् स्मृतिवानसि तद्व"॥ २६॥

"भगवन्! आपने हमको किस प्रयोजन से स्मरण किया है?"।। २६।।

ततः प्राह महादेवो मरीच्यादीन्पृथक् पृथक्।
"सम्बोध्य कामनिर्दग्धहृदयो मुनिपुङ्गव"!॥ २७॥
हिताय सर्वजगतां तथा सन्तानवृद्धये।
दारग्रहे मतिर्मेऽद्य जायते मुनिसत्तमाः॥ २८॥
यावत्सती मां सन्त्यज्य गतासीन्निजमायया॥ २९॥

तब भगवान् ने उन ऋषियों को अपना अभिप्राय यों स्पष्ट किया— "हे मुनिश्रेष्ठो! मैं इस समय कामाग्नि से जला जा रहाहूँ। सब प्राणियों के हित के

लिये तथा सन्तान–वृद्धि के लिये किसी को अपनी पत्नी बनाने का मेरा मन कर रहा है। जब से वह सती देवी मुझे छोड़कर अपनी माया से, यहाँ से चली गयी।। २७–२९।।

तावत्तामेव हृदये सन्ध्याय तपसे स्थितः।
सा तेन तपसा तुष्टा स्वयं हिमगिरेः सुता।
भूत्वा मां पतिभावेन स्वीचकार निजेच्छया॥ ३०॥

किन्तु तस्याः पिता शैलराजेन्द्रो हिमवान् यदि।
आहूय मां ददात्येनां पाणिग्रहणकर्मणि॥ ३१॥

तदा सा मम पत्नी स्याच्चार्वङ्गी रुचिरानना॥ ३२॥

तभी से मैं उसी का ध्यान करता हुआ कठोर तपस्या में लगा हुआ हूँ। वह देवी मेरी तपस्या से सन्तुष्ट होकर हिमगिरि की पुत्री बनकर स्वेच्छा से मुझको पतिरूप में स्वीकार करने की बात कह चुकी हैं। किन्तु उसमें उनका यह भी कहना है जब उनके पिता (हिमालय) मुझे अपने घर बुलाकर उन (देवी) का हाथ मेरे हाथ में सौंप देंगे तभी वह मुझे पतिरूप में स्वीकार करेंगी।। ३२।।

भस्मीभूतेन कामेन दह्येऽहं दिनरात्रकम्।
न शान्तिमभिलप्स्यामि विना तां पर्वतात्मजाम्॥ ३३॥

इधर मैं उस भस्मीभूत कामदेव द्वारा दिनरात जलाया जा रहा हूँ। मुझे अब उन पार्वती देवी के विना कथमपि शान्ति नहीं मिल सकती।। ३३।।

यदि कृत्वा तु साहाय्यं तां मत्प्राणैकवल्लभाम्।
मह्यं दापयितुं शक्तास्तदाहं स्थातुमुत्सहे''॥ ३४॥

यदि इस कार्य में आप लोग मेरी कुछ सहायता करें और मुझे मेरी उस प्राणवल्लभा से संयुक्त करा दें तभी मुझे आगे जीवित रहने में उत्साह हो सकता है!'।। ३४।।

ऋषय०— ''यथाभिचेष्टितं देव! त्वमाज्ञापयसि प्रभो!
तथास्माभिश्चेष्टितव्यं किं नु कार्यमतः परम्॥ ३५॥

ऋषिगण— ''हे देव! जैसा प्रयास करने के लिये आप हमें आदेश दे रहे हैं, हम वैसा ही प्रयास करेंगे। अब हमें क्या करना है?— यह स्पष्ट बताइये।। ३५।।

आद्या हि परमा विद्या पूर्णा प्रकृतिरुत्तमा।
जाता हिमवतः पुत्री तवैव पूर्वगेहिनी॥ ३६॥

आद्या परमा विद्या पूर्ण एवं श्रेष्ठ प्रकृति देवी ही, जो कि पूर्व जन्म में सती नाम से आपकी पत्नी थी वही अब हिमालय की पुत्री के रूप में पुनः अवतरित हुई हैं।। ३६।।

अवश्यं हिमवाँस्तुभ्यं दास्यत्येवाचिरेण वै।
निमित्तमात्रमत्रैव भविष्यामो वयं शिव!"॥ ३७॥

पर्वतराज हिमालय उन्हें अवश्य आपको समर्पित कर देंगे– वह वैसे भी निश्चित ही है। हे शिव! हम तो इस कार्य में निमित्तमात्र हैं"।। ३७।।

श्रीमहादेव०— इत्युक्त्वा वचनं तं वै शम्भुं ते हि महर्षयः।
प्रययुर्गिरिराजस्य पुरं परमहर्षिताः।
विवाहार्थं महेशस्य संयोजयितुमम्बिकाम्॥ ३८॥

श्रीमहादेव— वे महर्षि भगवान् शङ्कर से ऐसा कहकर परम प्रसन्न होते हुए पार्वती के साथ विवाह का सन्देश लेकर गिरिराज हिमालय के घर पहुँचे।। ३८।।

तान्दृष्ट्वा समुपायातान् गिरीन्द्रोऽपि यथाविधि॥ ३९॥
पूजयित्वा यथान्यायमासनेषूपवेशयत्।
अथ प्रोचुर्गिरिश्रेष्ठमृषयस्ते हिमालयम्॥ ४०॥

गिरिराज ने भी उन महर्षियों को अपने घर आया हुआ देखकर प्रसन्नतापूर्वक यथाविधि पूजन कर विध्यनुसार उन सबको उच्च आसनों पर बैठाया। तब वे ऋषि पर्वतराज, हिमालय को यों बोले–।। ३९–४०।।

"शृणु राजँस्तव हितं यच्छिवेनाभिभाषितम्।
तस्यैव वनिता दक्षतनया सा सती पुरा॥ ४१॥
सैव ते तनया जाता पार्वती साम्प्रतं शिवा।
तां त्वं प्रयच्छ देवाय शिवाय परमात्मने॥ ४२॥

"हे राजन्! भगवान् शङ्कर ने जो कुछ कहा है तथा जो आपके भी हित में हैं, उसे सुनो! उनकी पत्नी, जो पहले कभी दक्षसुता नाम से प्रसिद्ध थी, वही शिवस्वरूपा देवी आज आपके घर में 'पार्वती' नाम से अवतरित हुई हैं। उन्हें आप उन परमात्मस्वरूप देवाधिदेव भगवान् शङ्कर को समर्पित कर दें।। ४१–४२।।

सम्प्राप्तदारः स सुखी त्वत्प्रसादाद्भविष्यति।''
प्रभावं देवदेवस्य सर्वं त्वं ज्ञातवानसि॥ ४३॥

वे उन्हें आपकी कृपा से पत्नी के रूप में प्राप्त कर, सुखी हो जायँगें। उन देवाधिदेव का प्रताप (सामर्थ्य) तो आप सर्वथा जानते ही हैं।। ४३।।

तस्मै देया निजसुता किं वा कार्यमतः परम्।
नारदः पुनराहेदं शैलराजं हिमालयम्॥ ४४॥

उन्हें आप अपनी कन्यादान में दे दीजिये! फिर आपका कोई कर्त्तव्य अवशिष्ट नहीं रह जायगा।'' इसी समय उन ऋषियों के साथ आये महर्षि नारद ने इन गिरिराज हिमालय से फिर कहा–।। ४४।।

स्मित्वा स्मित्वा महाबुद्धिर्भूतभव्यभविष्यवित्।
''महाराज! मया पूर्वमेतत्सर्वं निवेदितम्॥ ४५॥

वे महामति तथा भूत, भविष्य एवं वर्तमान के ज्ञाता नारद मुस्कुराकर गिरिराज से यों बोले– ''महाराज! मैं पहले भी आपको यह सब कुछ बता चुका हूँ।। ४५।।

अनादिपुरुषेशाय पूर्णाय परमात्मने।
तनयां परमामाद्यां देहि भाग्यस्य गौरवात्''॥ ४६॥

आप अपनी पुत्री उस अनादि पुरुषेश्वर एवं पूर्ण परमात्मस्वरूप (भगवान् शङ्कर) को सौंप दें; क्योंकि आपकी पुत्री भी आद्या भगवतीस्वरूपा हैं। यह आप का सौभाग्य है''।। ४६।।

ततः प्राह गिरीन्द्रस्तान् हर्षनिर्भरमानसः।
''कृतकृत्योऽस्मि पूतोऽस्मि युष्माकं हि समागमात्॥ ४७॥

तब यह सब सुनकर वे परमप्रहृष्ट गिरिराज हिमालय बोले– ''मैं आपके शुभागमन से कृतकृत्य हुआ, पवित्र हुआ।। ४७।।

यच्चन्द्रशेखरं सर्वे देवदेवं वदन्ति वै।
जगतां सृष्टिसंहारकरणे पालने क्षमः॥ ४८॥

फिर, इन चन्द्रशेखर भगवान् शङ्कर को सभी लोग 'देवाधिदेव' कहते हैं, वे जगत् के सृष्टि तथा संहार में पूर्ण समर्थ हैं, तथा उसके पालन में भी समर्थ हैं।। ४८।।

तस्मै देया सुतेत्यत्रानुपपत्तिश्च का मम।
तस्येच्छावशगोऽहं हि यत्तत्सर्वमिदं जगत्॥ ४९॥

उनको अपनी कन्या प्रदान करने में मुझे अनुपपत्ति (आनाकानी)

क्या हो सकती है! जैसे उनकी इच्छा के मैं वश में हूँ उसी तरह यह समग्र जगत् भी उनकी इच्छा के वश में है।। ४९।।

यदेच्छा समभूत्तस्य तदैवेच्छा ममाप्यभूत्।
गच्छध्वं शम्भुनिकटं कथयध्वं वचो मम॥ ५०॥

जब उनके मन में पार्वतीपरिणय की इच्छा हुई तभी मेरे मन में भी उन्हीं को कन्यादान करने का सङ्कल्प हुआ। अतः आप लोग भगवान् शङ्कर के पास जायँ और मेरा यह निश्चय बता दें।। ५०।।

शम्भुं निश्चित्य समयं मयि वार्तां ददातु सः।
दास्यामि तनयां तस्मै यथाशक्तिविभूषिताम्''॥ ५१॥

इति श्रीमहाभागवते उपपुराणे पार्वतीविवाहोपक्रमो नाम
चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥ २४॥

कि वे ज्यौतिषियों (भविष्यवक्ताओं) से इस कार्य का शुभ मुहूर्त निश्चित कर मुझे सन्देश भेजवा दें। मैं अपनी कन्या को यथाशक्ति विभूषित कर उन्हें समर्पित कर दूँगा''।। ५१।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
पार्वतीविवाहोपक्रमवर्णन नामक
चौबीसवाँ अध्याय समाप्त॥

पचीसवाँ अध्याय

[शिव-विवाह-वर्णन]

श्रीमहादेव०— निशम्य गिरिराजस्य वचनं ते महर्षयः।
पुनर्महेशसान्निध्यं प्रययुर्हृष्टचेतसः॥ १॥

श्रीमहादेव जी बोले— वे महर्षि गिरिराज के वचन सुनकर पुनः प्रसन्नमन से भगवान् शङ्कर के पास पहुँचे।। १।।

तान् समीक्ष्यागताञ्छम्भुर्महात्रस्त इवाब्रवीत्।
''किमाह भगवानद्रिर्युष्मान् वदत मा चिरम्॥ २॥

उन्हें आता हुआ देखकर भगवान् शङ्कर (प्राकृत जन की तरह) चिन्तित से हुए कि पर्वतराज ने न जाने स्वीकृति दी या नहीं! और तत्काल उन्होंने उनसे पूछा कि शीघ्र ही बताइये कि पर्वतराज ने क्या उत्तर दिया?।। २।।

स्वेच्छया स्वसुता मह्यं दातव्या किं न वेति च।
कथयित्वा मनः शान्तं सुस्थिरं कुरुत द्विजाः!''॥ ३॥

वे मुझे स्वेच्छा से कन्यादान करेंगे कि नहीं?— हे ब्रह्मर्षिगण! यह स्पष्टतः बताकर मेरा चित्त शान्त एवं स्थिर कीजिये।। ३।।

ऋषय०— ''दातव्या भक्तिभावेन गिरीन्द्रेण निजात्मजा।
मा चिन्तां कुरु देवेश साम्प्रतं सुस्थिरो भव॥ ४॥

ऋषि— हे देवेश! आप चिन्ता न करें, आप शान्त हों। गिरिराज भक्तिभाव से अपनी कन्या का दान आपको ही करेंगे।। ४।।

उक्तं तेन गिरीन्द्रेण समयं वीक्ष्य शोभनम्।
तस्मै देया यदा वार्ता तदोद्वाहो भविष्यति''॥ ५॥

उस पर्वतराज ने इतना ही विशेष कहा है— ''शुभ मुहूर्त दिखाकर मुझे सूचना दे दें, तभी विवाह की समग्र विधि पूर्ण कर दी जायगी''।। ५।।

श्रीमहादेवः०— अथ प्राह पुनः शम्भुस्तांस्ततो मुनिसत्तमान्।
''द्रुतं निरीक्ष्य समयं शोभनं दोषवर्जितम्।
गिरीन्द्राय द्रुतं ब्रूत सुव्रताय महात्मने''॥ ६॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य मरीच्याद्यास्तपोधनाः।
विवाहसमयं तस्य निश्चित्योचर्महेश्वतम्॥ ७॥

श्रीमहादेव जी बोले— तब भगवान् शङ्कर ने उन ऋषियों से कहा— "आप लोग इस कार्य के निर्दोष एवं शुभ मुहूर्त देखकर वह समय सदाशय सुव्रती गिरिराज को शीघ्र ही जाकर बता दें।" भगवान् शङ्कर का यह वचन सुनकर उन मरीचि आदि महर्षियों (तपस्वियों) ने उनका विवाह–समय निश्चित कर वे भगवान् शङ्कर से यों बोले—॥ ६–७॥

"वैशाखे मासि या शुक्लपञ्चमी सा गुरोर्दिने।
तस्यामुद्वाहकर्म त्वं कुरु सन्तानवृद्धये॥ ८॥
सर्वदोषविहीनं हि दिनमेतत्सुशोभनम्।
विज्ञापय गिरीन्द्राय महावर! महात्मने"॥ ९॥

अथ प्राह महादेवो यूयं यात नगाधिपम्।
कथयध्वं निजसुता तेन तस्मिंच्छुभेऽहनि॥ १०॥

दातव्या विधिवन्मह्यं तत्राहं च सुरोत्तमैः।
आगमिष्ये पुरं तस्य महोत्सवपुरःसरम्॥ ११॥

वैशाख मास के शुक्लपक्ष की पञ्चमी को गुरुवार के दिन आप पार्वती देवी के साथ विवाहविधि सम्पन्न करें तथा अपनी सन्ततिवृद्धि हेतु प्रयास करें। यह मुहूर्त निर्दोष एवं शुद्ध है। तब भगवान् शङ्कर ने उन ऋषियों से कहा— "आप लोग उन पर्वतराज के पास जायँ और उन श्रेष्ठ महात्मा पर्वतराज को इस मुहूर्त की सूचना दे दें। यह भी कहियेगा कि उस शुभ मुहूर्त के दिन आप मुझे विधिवत् कन्यादान कर दें। मैं भी उस दिन विशिष्ट देवगण के साथ विशेष गाजे–बाजे तथा सज–धज के साथ उनके द्वार पर पहुँचूँगा"॥ ८–११॥

तच्छ्रुत्वा वचनं शम्भोः पुनस्तेऽपि महर्षयः।
गत्वा हिमाद्रिं व्याजह्रुर्महेशेनाभिभाषितम्॥ १२॥
तच्छ्रुत्वा गिरिराजोऽपि भद्रमाह मुदान्वितः।
विससर्ज च सम्पूज्य महर्षींस्तान् यथाविधि॥ १३॥

वे ऋषिगण भगवान् शङ्कर का यह आदेश सुनकर तत्काल पर्वतराज हिमालय के पास पहुँचे। तथा उनसे भगवान् शङ्कर की कही हुई बातें बता दीं। उन्हें सुनकर पर्वतराज ने प्रसन्नचित्त होकर 'साधुवाद' कहा॥ १२–१३॥

तेऽपि भूयो ययुर्यत्र संस्थितश्चन्द्रशेखरः।
प्रोचुश्चापि महादेवं गिरिराजेन भाषितम्॥ १४॥

वे महर्षि भी पुनः भगवान् शङ्कर के पास आये तथा गिरिराज की कही हुई बात उनको बता दी।। १४।।

तानुवाच ततः शम्भु''यूयं तत्र शुभेऽहनि।
आगत्य वै मया सार्धं गमिष्यथ गिरेः पुरम्''॥ १५॥

भगवान् शङ्कर ने उन महर्षियों को उस शुभ दिन पर आने का आग्रह किया और कहा कि उस दिन वे उनके साथ हिमालय के घर, वर की ओर से, चलें।। १५।।

नारदं प्राह''तात त्वमव्याहतगतिः स्वयम्॥ १६॥
एकं कुरुष्व मत्कार्यं यत्ते वक्ष्यामि साम्प्रतम्।
ब्रह्मणे विष्णवे तद्वदिन्द्रादिभ्यः पृथक् पृथक्॥ १७॥
कथयस्व ममोद्वाहवार्तां हर्षविधायिनीम्।
विज्ञापयत मद्वाक्यं तेष्विदं मुनिपुङ्गव॥ १८॥
मदुद्वाहदिने सर्वैर्देवगन्धर्वकिन्नरैः।
युष्माभिः समुपागम्य कर्तव्यं शोभनं मम''॥ १९॥

साथ ही भगवान् शङ्कर ने महर्षि नारद से कहा– ''हे तात! आप अव्याहत (निर्विघ्न) गति वाले हैं, अतः आप मेरा एक कार्य सम्पन्न करें जो मैं आपको अभी बता रहा हूँ। आप ब्रह्मा, विष्णु एवं इन्द्रादिदेवों को पृथक् पृथक जाकर मेरे इस विवाह का हर्षद समाचार सुना दें। और हे मुनिश्रेष्ठ! उनसे मेरा यह निमन्त्रण भी सुना दें कि मेरे विवाह के दिन सभी गन्धर्व एवं किन्नरों के साथ आप लोगों को मेरे यहाँ आकर इस शुभ कार्य में सम्मिलित होना है''।। १६–१९।।

ततः स नारदोऽप्याह ''यथाज्ञापयसि प्रभो!
तथैव हि विधातव्यं मयाज्ञावशवर्तिना''॥ २०॥

नारद– ''हे प्रभो! मैं तो आपकी आज्ञा के अधीन हूँ। आप जो आदेश देंगे उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा''।। २०।।

मरीचि आदि महर्षियों का प्रस्थान

ततः प्रणम्य ते देवं मरीच्याद्या महर्षयः।
स्वस्थानं गन्तुमुद्युक्ताः प्रार्थयामासुरीश्वरम्॥ २१॥

फिर वे मरीचि आदि महर्षि भगवान् शङ्कर को प्रणाम कर, अपने अपने आश्रम को जाने के लिये सन्नद्ध होकर उनसे जाने की अनुमति माँगने लगें।। २१।।

"आज्ञां विधेहि गच्छामो निजस्थानं तु साम्प्रतम्।
त्वदुद्वाहदिने सर्व आयास्यामः सुरैः सह" ॥ २२ ॥

"हे देवाधिदेव! अब आज्ञा दीजिये! हम लोग अपने अपने आश्रम पर जाना चाहते हैं। आपके विवाह के दिन, देवताओं के साथ हमलोग भी अवश्य आ जायँगे" ॥ २२ ॥

ततः प्राह महादेवः साश्रुनेत्रो महामुनीन्।
पत्नीविरहदुःखार्तो भृशं कामप्रपीडितः ॥ २३ ॥

तब पत्नीविरह से अत्यन्त दुःखी कामपीड़ित भगवान् शङ्कर आँखों में आँसू भरकर उन महर्षियों से यों बोले— ॥ २३ ॥

यावद्धिमाद्रितनयां मम प्राणैकवल्लभाम्।
न पत्नीमभिलप्स्यामि तावत्कष्टेन जीवनम् ॥ २४ ॥

हे महर्षिगण! आप लोग यों समझिये कि जब तक मैं हिमालयपुत्री अपनी प्राणप्रिया पत्नी को नहीं पा लूँगा— तब तक मेरा जीवन कष्टमय ही रहेगा ॥ २४ ॥

धारयिष्ये भृशं कामनिर्दग्धोऽपि महर्षयः।
प्रतिज्ञाय ब्रवीम्येतद्युष्माकं सम्मुखे ध्रुवम् ॥ २५ ॥
यदा तां समवाप्स्यामि पार्वतीं प्राणवल्लभाम्।
तदा सर्वात्मना देवीं सेविष्ये तां निरन्तरम् ॥ २६ ॥

हे महर्षिजन! मैं आप लोगों के सम्मुख प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि जब मैं अपनी उस प्राणप्रिया पत्नी पार्वती को प्राप्त कर लूँगा, तदनन्तर मैं जीवनपर्यन्त उसकी सब तरह से सेवा करूँगा ॥ २५–२६ ॥

न विप्रियं करिष्यामि कदाचिदपि मोहितः।
यत्र यास्यति सा देवी गमिष्येऽहं च तत्र वै ॥ २७ ॥

मैं कभी भी, किसी प्रमादवश, उनके मन के प्रतिकूल कोई कार्य नहीं करूँगा। जहाँ जहाँ वह जायगी वहाँ मैं भी अवश्य जाऊँगा ॥ २७ ॥

न त्यक्ष्यामि कदाचित्तां क्षणार्धमपि सुव्रताम्।
यूयं च साम्प्रतं यात निजस्थानं तपोधनाः ॥ २८ ॥
तिष्ठाम्यहं काननेऽस्मिन्ध्यायंस्तां पर्वतात्मजाम्"।
इत्येवमुक्त्वा गिरिशो विससर्ज महामुनीन् ॥ २९ ॥

मैं उस पतिव्रता को क्षणभर के लिये भी एकाकी नहीं छोड़ूँगा। अब

आप लोग अपने अपने आश्रम पर जायँ। मैं तो इसी निर्जन वन में उस देवी के ध्यान में मग्न रहना चाहता हूँ।' यों कहकर भगवान् शङ्कर ने उन महामुनियों को विसर्जित किया।। २८–२९।।

नारद ब्रह्मलोक में

तेऽपि नत्वा ययुः सर्वे स्वस्वस्थानं महामते!
नारदस्तु ययौ तूर्णं ब्रह्मणो निकटं तदा॥ ३०॥

महामुने! वे मुनि भी भगवान् को प्रणाम कर अपने अपने आश्रम पर चले गये और नारद मुनि शीघ्र ही पितामह ब्रह्मा के निकट पहुँचे।। ३०।।

शिवस्योद्वाहवार्तां च तस्मै सर्वं न्यवेदयत्।
तथैव विष्णवे प्राह गत्वा वैकुण्ठमुत्तमम्॥ ३१॥

वहाँ पहुँचकर उन्होंने ब्रह्मा को भगवान् शङ्कर के विवाहप्रसङ्ग की सूचना दी। इसी प्रकार उन्होंने वैकुण्ठ पहुँचकर भगवान् विष्णु को भी यह शुभ सूचना दी।। ३१।।

श्रुत्वा तु हर्षसम्पूर्णौ बभूवतुरतीव तौ।
तावूचतुर्मुनिश्रेष्ठं "गमिष्यावो महेशितुः॥ ३२॥
विवाहदर्शनार्थाय परिवारगणैः सह।
त्वं तु स्वर्गपुरं गत्वा महेन्द्राय वद द्रुतम्॥ ३३॥

वे दोनों ही देवश्रेष्ठ, ब्रह्मा एवं विष्णु, यह शुभ समाचार सुनकर अतीव प्रमुदित हुए। उन दोनों ने महर्षि नारद को उत्तर दिया कि वे दोनों ही इस शुभ अवसर पर अपने परिवारजनों के साथ ही भगवान् शङ्कर के आवास पर उपस्थित रहेंगे। आप तत्काल इन्द्रपुरी में जाकर देवराज इन्द्र को भी यह शुभ सूचना दें। और हमारी तरफ से उनसे यह कहें— ।। ३२–३३।।

'स यातु त्रिदशैः सर्वैः सिद्धचारणकिन्नरैः।
महेशस्य विवाहेऽस्मिन् कर्तुं साहाय्यमुत्तमम्' "॥ ३४॥

'वे सभी देवताओं, सिद्धों, चारणों तथा किन्नरों को साथ ले कर उस महेश्वर के विवाहप्रसङ्ग में, उनकी सहायता हेतु अवश्य पहुँचे' "।। ३४।।

ततः स नारदो गत्वा महेन्द्राय न्यवेदयत्।
शिवस्योद्वाहसंवादं ताभ्यां यच्चाभिभाषितम्॥ ३५॥

तब महर्षि नारद ने जाकर देवराज को भी यह शुभ सूचना दी। साथ ही ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा कथित सन्देश भी सुना दिया।। ३५।।

तच्छ्रुत्वा सुरराजोऽपि हर्षनिर्भरमानसः।
मेने मृत्युं तारकस्य भविष्यति सुनिश्चितम्॥ ३६॥

यह सूचना और सन्देश सुनकर देवराज इन्द्र अतीव प्रमुदित हुए और उनको निश्चय हो गया कि अब तारकासुर का वध अवश्यम्भावी है।।३६।।

उद्योगं चाकरोद् गन्तुं विवाहे स महेशितुः।
नारदोऽपि ययौ स्वीयं स्थानमिन्द्रेण पूजितः॥ ३७॥

इति श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे शिववविवाहे
पञ्चविंशतितमोऽध्यायः॥ २५॥

अतः देवराज इन्द्र भगवान् शङ्कर के विवाह की व्यवस्था में उत्साहपूर्वक लग गये। और उधर नारद मुनि भी देवराज इन्द्र से सम्मानपूर्वक विदा (विसर्जन) माँगकर अपने स्थान पर लौट गये।। ३७।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'शिव-विवाहोपक्रम' वर्णन रूप
पचीसवाँ अध्याय समाप्त॥

छब्बीसवाँ अध्याय

[विवाहदर्शनहेतु देवतासमागम]

पर्वतराज के भवन का अलङ्करण

श्रीमहादेव०— अथाद्रिराजनगरे पार्वत्युद्वाहमङ्गलम्।
प्रावर्तत मुनिश्रेष्ठ जगतां हर्षवर्धनम्॥ १॥

श्रीमहादेव जी बोले— हे मुनिश्रेष्ठ! पर्वतराज हिमालय के घर पर तीनों लोकों के लिये हर्षजनक, पार्वतीजी के विवाह की तय्यारी आरम्भ हुई॥ १॥

भेरीमृदङ्गपणवतूर्यगोमुखनिःस्वनैः।
पूरितं सर्वतो भूमिनभोमध्यं महामते!॥ २॥

हे महामते! भेरी (नगाड़ा) मृदङ्ग (मुरज) पणव (ढोल) तूर्य (तुरही) गोमुख आदि विवाह के अवसर पर बजाये जाने वाले वाद्यों की ध्वनि से समग्र पृथ्वी तथा आकाश गूँज उठे॥ २॥

गन्धर्वाः शोभनं गानं चक्रुः परमहर्षिताः।
तथैवाप्सरसां नृत्यं प्रावर्तत मनोहरम्॥ ३॥

उस समय गन्धर्वों ने परम प्रसन्न हो मनोमोहक गायन प्रारम्भ किया। उसी तरह अप्सराओं ने भी नयनाह्लादक नृत्य आरम्भ किया॥ ३॥

आयाता देवकन्याश्च तथैव गिरिकन्यकाः।
पुरे नगाधिराजस्य पार्वत्युद्वाहमीक्षितुम्॥ ४॥

इस शुभ अवसर पर पर्वतराज के घर पर पार्वती जी का विवाह देखने हेतु देवकन्याएँ एवं गिरिकन्याएँ भी एकत्र हुईं॥ ४॥

ताः सर्वास्तोषितास्तेन नानालङ्करणादिभिः।
वस्त्रैश्च विविधैर्गौरीविवाहे मुनिपुङ्गव॥ ५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! पर्वतराज हिमालय ने, उस गौरीविवाह के अवसर पर, उन सब को नानावस्त्र एवं अलङ्कार देकर सन्तुष्ट किया॥ ५॥

एवमासीद् गिरिपुरे मङ्गलं सुमहोत्सवम्।
वायुर्ववौ पुण्यगन्धयुतस्तत्र शनैः शनैः॥ ६॥

उस समय पर्वतराज के घर सभी प्रसन्नताधायक घटनाएँ होने लगीं। वहाँ पवित्र गन्ध से युक्त वायु शनैः शनैः बहने लगी।। ६।।

प्रसन्नमानसाः सर्वे तत्रासन् प्राणिनस्तदा।
दिशः प्रसन्नाः सर्वाश्च सुस्थमासीत्तथा जगत्॥ ७॥

वहाँ उपस्थित सभी प्राणी प्रसन्नमुख दिखायी दे रहे थे। सभी दिशाएँ भी स्वच्छ थीं। यों सगग्र जगत् का वायुमण्डल आह्लादमय बन गया।। ७।।

इन्द्रादि देवों का भगवान् शङ्कर के पास आगमन

अथेन्द्रस्त्रिदशैः सर्वैस्तथा गन्धर्वकिन्नरैः।
गन्तुं महेशसान्निध्यं प्रस्थानमकरोत्तदा॥ ८॥

उसी समय देवराज इन्द्र ने सभी देवताओं, गन्धर्वों, किन्नरों के साथ भगवान् शङ्कर के घर की तरफ प्रस्थान किया।। ८।।

एतस्मिन्नन्तरे श्रीमान् नारदो मुनिसत्तमः।
रतिं प्राह महादेवपार्वत्युद्वाहमङ्गलम्॥ ९॥

इसी बीच, मुनिश्रेष्ठ नारद ने कामदेव की पत्नी रति को शङ्कर-पार्वतीविवाह की सूचना दी, और कहा-।। ९।।

''तत्र यान्ति सुराः सर्वे गन्धर्वैः किन्नरोरगैः।
त्वं याहि देवराजस्य सान्निध्यं मा चिरं कुरु॥ १०॥

''वहाँ सभी देवता गन्धर्वों, किन्नरों, नागों के साथ पहुँच रहे हैं। ऐसे अवसर पर आप देवराज के समीप पहुँच जायँ। इसमें विलम्ब न करें।। १०।।

विवाहहर्षयुक्तस्य महेशस्यान्तिके यदि।
त्वद्भर्तुर्जीवनार्थं ते कथयन्त्यमराः सति!॥ ११॥

तदावश्यं शिवः कामदेहं सम्प्रापयिष्यति''।
इत्युक्त्वा स मुनिः प्रायान्महेशस्यान्तिकं द्रुतम्॥ १२॥

हे पतिव्रते! इस वैवाहिक हर्ष के अवसर पर, यदि देवताजन भगवान् शङ्कर से कामदेव के पुनर्जीवन की प्रार्थना करेंगे तो मुझे विश्वास है कि भगवान् शङ्कर प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे पतिदेव को पुनः नवदेह प्रदान कर देंगे।'' ऐसा कहकर नारद तत्काल ही भगवान् शङ्कर के पास पहुँचे।। ११-१२।।

रतिश्चापि समुद्युक्ता समभूद्भर्तृजीवने।
आगतं नारदं वीक्ष्य महेशः प्राब्रवीद्वचः ॥ १३ ॥

उधर रति अपने पति के पुनर्जीवन की प्राप्ति के उपाय में लग गयी और इधर उस नारद मुनि को आया हुआ देख भगवान् शङ्कर ने यह कहा– ॥ १३ ॥

स्वागतं तात चेदानीं कर्तव्यं च विधीयताम्'' ॥ १४ ॥

''हे तात! तुम्हारा स्वागत है। अब यहाँ जो तुम्हारा कर्तव्य है, उसमें तत्पर हो जाओ।''

स आह ''त्रिदशाः सर्वे समायान्ति महेश्वर!।
सिद्धचारणगन्धर्वाः किन्नराश्च महर्षयः।
ततो रजन्यां वृत्तायां शुभे लग्ने सुरैः सह ॥ १५ ॥
गन्तव्यं गिरिराजस्य पुरं शम्भो त्वया प्रभो।
भविष्यति त्वदुद्वाहो महोत्सवपुरःसरम्'' ॥ १६ ॥

नारद बोले– ''हे भगवन्! इस समय सभी देवता यहाँ पहुँच रहे हैं। साथ ही बहुत से सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर एवं सभी महर्षि भी आ रहे हैं। अतः हे प्रभो! सन्ध्या होते ही शुभ लग्न में देवताओं के साथ आप को पर्वतराज हिमालय के घर पहुँचना है। वहाँ पूर्ण समारोह (सज–धज) के साथ आपका विवाह होगा'' ॥ १५–१६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे सर्वैर्देवगन्धर्वकिन्नरैः।
देवराजः समायातो महेशस्यान्तिकं तदा ॥ १७ ॥

इसी समय सभी देव गन्धर्व एवं किन्नरों के साथ देवराज इन्द्र भगवान् शङ्कर के पास आये ॥ १७ ॥

ते प्रणम्य महादेवं सर्वलोकस्य कारणम्।
ऊचुर्देवाः ''प्रभो किं त्वमाज्ञापयसि साम्प्रतम्'' ॥ १८ ॥

वे सभी देवता, प्राणियों के कारण भूतभावान शङ्कर को प्रणाम कर उनसे पूछने लगे– ''भगवन्! आपने हमलोगों को बुलाया था, अब हमारा क्या कर्तव्य है? कृपया उसे हमें बताइये'' ॥ १८ ॥

स आह ''मद्विवाहेऽस्मिन्यथायोग्यं विधीयताम्''।
ततः प्रावर्तयच्छम्भोर्विवाहे मङ्गलं महत्।
देवराजः प्रीतिमनाः शम्भोस्तत्र तपोवने ॥ १९ ॥

भगवान शङ्कर बोले— ''मेरे शुभ विवाह के अवसर पर जो कुछ भी करणीय हो उसे पूर्ण करें''। तब देवराज इन्द्र ने उन भगवान् शङ्कर के तपोवन में विवाह का वह मङ्गलमहोत्सव प्रारम्भ किया।। १९।।

भेर्यादिनिःस्वनैः सर्वा पूरिताश्च दिशो दश॥ २०॥

अभवन्मुनिशार्दूल! गन्धर्वा ललितं जगुः।
समभूत् पुष्पवृष्टिश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ २१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उसी समय नगाड़े आदि वाद्यों की माङ्गलिक ध्वनियों से दशों दिशाएँ गूँज उठीं। हे मुनिवर! उस समय गन्धर्वों ने अपने ललित स्वर में सुमधुर गान प्रारम्भ किया तथा आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी। साथ ही अप्सराएँ भी नाचने लगीं।। २०–२१।।

प्रफुल्लचारुपुष्पौघनतशाखाश्च शाखिनः।
समासन् देवदेवस्य कानने मुनिपुङ्गव!॥ २२॥

कोकिला रुचिरं शब्दं भ्रमराश्च सहस्रशः।
चक्रिरे कानने तस्मिन् वायुर्मलयजो ववौ॥ २३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस हिमालय पर्वत के वन में खड़े सभी वृक्ष एवं लताएँ तथा क्षुप—सभी सुन्दर खिले हुए फूलों से शोभायमान हो उठे। कोयल मधुर स्वर में कूकने लगीं। भ्रमर कर्णप्रिय ध्वनि में गुञ्जन करने लगे। साथ ही मलयजन्य वायु भी बहने लगी।। २२–२३।।

अथ तत्र समायातो ब्रह्मा लोकपितामहः।
सहैव मानसैः पुत्रैर्वशिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः॥ २४॥

एतदनन्तर, इस शुभ अवसर पर महर्षि वशिष्ठ आदि अपने मानसपुत्रों के साथ पितामह ब्रह्मा का भी वहाँ पदार्पण हुआ।। २४।।

तथा नारायणश्चापि समायातः शिवान्तिकम्।
सार्धं लक्ष्म्या सरस्वत्या द्रष्टुमुद्वाहमङ्गलम्॥ २५॥

और उसी समय भगवान् विष्णु भी सरस्वती और लक्ष्मी को साथ लिये हुए भगवान् शङ्कर के उस वैवाहिक मङ्गलोत्सव में सम्मिलित होने के लिये वहाँ उपस्थित हुए।। २५।।

इत्येवमागतांस्तांश्च दृष्ट्वा विश्वेश्वरस्तदा।
प्रहृष्टचेताः समभूत् सुप्रसन्नमुखाम्बुजः॥ २६॥

इति श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे देवतासमागमो
नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

तब वे देवाधिदेव भगवान् शङ्कर उस शुभ अवसर पर सभी को आया हुआ देखकर अतीव प्रसन्न हुए तथा उनका मुखकमल खिल उठा ।। २६ ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण के श्रीमहादेव-नारदसंवाद में
'देवतासमागमवर्णन' रूप
छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

[शिव का हिमालय के घर आगमन]

कामपत्नी रति का आगमन

श्रीमहोदव०— समायाता कामपत्नी रतिः सर्वाङ्गसुन्दरी।
पतिशोकसुदुःखार्ता कृशाङ्गी साश्रुलोचना॥ १॥
पुरन्दरमिदं प्राह सन्मुखे संस्थिता सती॥ २॥

श्रीमहादेव जी बोले— उसी अवसर पर कामदेव की पत्नी रति वहाँ आ पहुँची। यद्यपि वह सर्वाङ्गसुन्दरी थी, परन्तु अपने पति के वियोग के कारण इस समय अपने अङ्गों से दुर्बल लग रही थी और उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे और इन्द्र के सम्मुख खड़े होकर उस सती ने ये वचन कहे—॥ १–२॥

रतिः०— "पूर्वं तवाज्ञया भर्ता मम प्राणैकवल्लभः।
प्राक्षिप्य शम्भवे बाणं भस्मतां प्राप तत्क्षणात्॥ ३॥

रति— "हे देव! पहले कभी मेरे पति ने आप की आज्ञा से भगवान् शङ्कर पर बाण छोड़ा था। उसी अपराध में वे भगवान् शङ्कर द्वारा भस्म कर दिये गये॥ ३॥

तदा रुदन्तीं दुःखेन मामवोचद्भवानिदम्।
मा शोकं कुरु ते भर्ता पुनर्देहमवाप्स्यति॥ ४॥

उस समय, शोकाकुल मुझको आपने आश्वासन दिया था कि तुम शोक न करो, तुम्हारा पति पुनः शरीर धारण कर लेगा॥ ४॥

परिगृह्णाति दारांस्तु साम्प्रतं शङ्करोऽपि च।
तेन बाणेन मुग्धः सन् यूयं पूर्णमनोरथाः॥ ५॥
पतिर्मम गतस्तस्य न चेष्टयसि जीवने"॥ ६॥

अब तो भगवान् शङ्कर भी उसके बाण से इतने समय बाद मुग्ध होकर पुनः विवाह करने जा रहे हैं। आप लोगों का कार्य तो सिद्ध हो गया; परन्तु मेरे पति, आपका कार्य सिद्ध करने में विनष्ट हो गये, फिर भी आप उनके पुनर्जीवनहेतु कोई प्रयत्न नहीं कर रहे!"॥ ५–६॥

श्रीमहादेव०— एवमाभाष्य बहुधा रतिः पतिवियोगिनी।
रुरोद देवराजस्य पुरतो ब्रह्मणोऽपि च॥ ७॥

श्रीमहादेव जी बोले— "यों वह पतिवियोगिनी रति देवराज इन्द्र तथा ब्रह्मा जी के सम्मुख करुण क्रन्दन करने लगी।। ७।।

तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा देवराजस्तु शङ्करम्।
सम्प्रार्थ्योवाच वचनं विवाहोत्सुकमानसम्॥ ८॥

उसका यह करुण क्रन्दन सुनकर पितामह ब्रह्मा तथा देवराज इन्द्र ने विवाहोत्सुक भगवान् शङ्कर से निवेदन किया—।। ८।।

तावूचतुः "प्रभो देव प्रणतानां कृपाकर!
देवानामुपकाराय कार्यमेकं कुरुष्व वै॥ ९॥

वे दोनों बोले— "हे प्रभो! हे देव! हे विनीतजनों पर कृपालु! हम देवों के उपकार हेतु कृपया एक कार्य कर दें।। ९।।

यदाऽस्मद्वचनात् कामस्त्वयि बाणं विमोचयन्।
विनिर्ययौ तदोवाच देवानिन्द्रपुरोगमान्॥ १०॥
'यदि क्रुद्धो महादेवो मां नाशयति मत्कृते।
तदा भवद्भिस्त्रिदशा यतितव्यं यथोचितम्'॥ ११॥

पहले कभी, हमारे कहने से कामदेव ने आप पर अपना बाण छोड़ा था, तभी उसने हम लोगों को सावधान किया था कि यदि मेरे इस कार्य से वे मुझ पर क्रुद्ध हो गये तो मुझको नष्ट कर देंगे। तब आपलोगों को उनको शान्त करने का यथोचित उपाय करना पड़ेगा'।। १०–११।।

तैश्च प्रतिश्रुतं तस्मै एवमेवेति शङ्कर!
स तद्वत्क्रोधसम्भूतवह्निना ज्वलितस्तदा॥ १२॥
भस्मतां प्राप, तत्पत्नी रतिस्तस्मादुपागता।
शोकसन्तप्तहृदया याचते पतिमात्मनः॥ १३॥

हे भगवन् हमने उस कामदेव को ऐसा करने का वचन दिया था। परन्तु उस समय, उसी के कथनानुसार, वह आपकी क्रोधाग्नि से जलकर भस्म हो गया। उसी के वियोग में दुःखी उसकी यह पत्नी रति यहाँ आयी हुई है। यह शोकसन्तप्त हृदय से अपने पति की पुनः प्राप्ति की याच्ञा कर रही है।। १२–१३।।

यदि त्वं कृपया कामदेहं प्रापयसि प्रभो!
तदा देवाः सत्यवाक्या भवन्ति त्रिदशेश्वर!
रतिः प्राप्नोति भर्तारं जगन्मोहनकारणम्।"॥ १४॥

हे प्रभो! यदि आप कामदेव को उसका देह पुनः प्रदान कर दें तो हम

लोगों की सत्यवचनता प्रमाणित हो जायगी और यह रति भी जगन्मोहक अपने पति को पुनः प्राप्त कर लेगी!''।। १४।।

श्रीमहादेव०— इत्याकर्ण्य महादेवः प्रणतानां कृपाकरः।
कामस्य प्रापयामास पुनर्देहं महामुने!॥ १५॥
सम्प्राप्य देहं कामस्तं प्रणिपत्य महेश्वरम्॥ १६॥
सर्वान् देवाँश्चाभिवाद्य रत्याः पार्श्वं जगाम ह।
रतिः पतिं समासाद्य हर्षनिर्भरमानसा॥ १७॥
बभूव, मुनिशार्दूल! देवाश्च हर्षसंयुताः।
अथ प्रवृत्ता रजनी शशाङ्कश्च सुनिर्मलः॥ १८॥

श्रीमहादेव जी बोले— हे मुनिश्रेष्ठ! प्रणतों पर कृपा करने वाले भगवान् शङ्कर ने कामदेव को पुनः जीवित कर सशरीर बना दिया। कामदेव भी उन्हें तथा सभी देवताओं को प्रणाम कर अपनी पत्नी रति के पास चले गये। तब रति अपने पति को प्राप्त कर बहुत प्रमुदित हुई। हे मुनिवर! इस घटना से देवताओं को भी बहुत हर्ष हुआ। तब धीरे–धीरे रात्रि प्रारम्भ हुई। स्वच्छ चन्द्रमा आकाश में प्रकाशमान हुए।। १५–१८।।

प्रवृद्धतेजा विबभौ देवाश्चक्रुर्महोत्सवम्।
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा प्राह देवं सदाशिवम्।
विभूतिभूषणं पिङ्गजटामौलिं चतुर्भुजम्॥ १९॥

इसी समय, देवताओं ने विवाहमहोत्सव प्रारम्भ किया। इस अवस पर विभूतिभूषण, पिङ्गलजटायुक्त एवं चतुर्भुज सदाशिव भगवान् शङ्कर व पितामह ब्रह्मा यों बोले—।। १९।।

ब्रह्मोवाच०— ''शम्भो! तवेदं परमं रूपं देवादिदुर्लभम्॥ २०॥

ब्रह्मा— ''आप इस रूप में अतीव सुन्दर लग रहे हैं। आपका य उत्कृष्ट रूप देवताओं आदि के लिये भी दुर्लभ है।। २०।।

योगिनां मानसोत्साहजनकं प्रीतिवर्धनम्।
इदं संहृत्य रूपं वै धेहि सौम्यसमं प्रभो!॥ २१॥
यथातिहर्षमाप्नोति श्वशुरस्ते नगाधिपः।
विलोक्य मेनका चापि श्वश्रूस्त्वामतिसुन्दरम्॥ २२॥

यह रूप योगियों के मन को उत्साहवर्धक है, प्रीतिदायक है प्रभो! आप इस रूप को उपसंहृत कर सौम्यरूप धारण कर लें। जिस र

तथा सुन्दर रूप को देखकर आप के श्वसुर पर्वतराज तथा आपकी सास मेनका प्रसन्न हो जायँगीं।। २१–२२।।

सर्वाङ्गसुन्दरी गौरी तुभ्यं देया महाद्रिणा।
यथा तस्य भवेत्प्रीतिस्तथा कुरु महेश्वर!॥ २३॥

क्योंकि उस पर्वतराज द्वारा आपको अपनी सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या दी जानी है, अतः वे जिस तरह प्रसन्न हों— वही काम आप को करना चाहिये।। २३।।

यथा बिभेति काचिन्न वीक्ष्य त्वां भीमरूपिणम्।
तथा चारुतरं रूपं द्विभुजैकाननं शिवम्।
देव देव! विधेहि त्वं विवाहे स्मरसूदन!"॥ २४॥

अतः आप ऐसा रूप धारण करें जिसमें केवल दो भुजाएँ हों तथा एक मुख हो। जिस भयानक रुप को देखकर आपकी ससुराल वाले किसी प्रकार का भय न मानें। हे कामारि! आप विवाह में ऐसा ही सुन्दर रूप धारण करें।। २४।।

श्रीमहादेव०— **इत्युक्तो ब्रह्मणा शम्भुस्तत्क्षणान्मुनिपुङ्गव!।**
बभूव द्विभुजः सौम्यरूपश्चैकाननः क्षणात्॥ २५॥
जटा स्वर्णकिरीटत्वं प्राप त्वग्निः सुचित्रताम्।
भस्मासीच्चन्दनं गात्रे शेषः स्वर्णविभूषणम्॥ २६॥

श्री महादेव जी— ब्रह्मा जी द्वारा ऐसा समझाये जाने पर भगवान् शङ्कर ने उसी क्षण वह सौम्य रूप धारण कर लिया, जिसमें उनकी दो भुजाएँ थीं, एक मुख था। जटा के स्थान पर सुवर्णमय मुकुट आ गया तथा उनकी त्वचा का वर्ण भी सुन्दर हो गया। समग्र शरीर में लगी हुई भस्म चन्दन के रूप में, तथा शरीर में जहाँ तहाँ लिपटे सर्प स्वर्णाभूषण बन गये।। २५–२६।।

अथ तं त्रिदशेशानं सम्प्राप्यातिशुभे क्षणे।
वृषपृष्ठे समारोप्य देवगन्धर्वकिन्नराः॥ २७॥
गिरीन्द्रस्य पुरं गन्तुं मनश्चक्रुर्महामते!॥ २८॥

देवता लोग उन देवाधिदेव को इस सौम्य एवं सुन्दर रूप में देखकर शुभ मुहूर्त में उन्हें बैल पर चढ़ा कर, गन्धर्व एवं किन्नरों के साथ हिमालय के आवास की ओर ले जाने का मन बनाने लगे।। २७–२८।।

प्रयाणकाले त्रिदशेश्वरस्य
बभूव वृष्टिः कुसुमावलीनाम्।

स्वर्वासिनां दुन्दुभिनिःस्वनौधै-
र्दिगन्तमासीत्परिपूरितं मुने! ॥ २९ ॥

हे मुने! भगवान् शङ्कर द्वारा हिमालय के आवास की ओर प्रयाण करते समय पुष्पसमूह की वर्षा होने लगी। साथ ही देवताओं द्वारा बजाये गये नगाड़ों का ध्वनिसमूह भी सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त हो गया।। २९ ।।

वायुर्ववौ शैत्यसुगन्धयुक्तः
शनैः शनैर्वै चुकुशुः पतत्रिणः।
सुशोभितं ते प्रमथा अपि ध्वनिं
चक्रुः सुघोरं वदनेन हर्षिताः ॥ ३० ॥

वायु भी शीतल, मन्द एवं सुगन्धयुक्त चलने लगी। पक्षिगण मनोहर कलरव करने लगे। भगवान् शङ्कर के अनुचर (प्रमथ) भी अपने अपने मुख से भयङ्कर बं बं ध्वनि करने लगे।। ३०।।

एवं प्रवृत्ते वृषभध्वजस्तदा
सार्धं समस्तैस्त्रिदशैर्मुनीश्वरैः।
प्रायाद् गिरीन्द्रस्य पुरं महामते!
सकिन्नरश्चारुशशाङ्कशेखरः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभागवते उपपुराणे महादेवनारदसंवादे श्रीशिवस्य
हिमालयपुर आगमनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

हे महामते! ऐसा होने पर, अपने मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण किये हुए वे वृषभध्वज भगवान् शङ्कर, श्रेष्ठ देवताओं एवं मुनियों, किन्नरो सहित समारोह (गाजे, बाजे) के साथ पर्वतराज के आवास की तरफ चले।। ३१।।

श्री महाभागवत उपपुराण में
महादेव-नारदसंवाद के अन्तर्गत
'भगवान् का हिमालयपुरगमन' नामक
सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय
[पार्वती-विवाहमङ्गल]

श्रीमहादेवः०— अथाद्रिराजो ज्ञात्वा तु समायान्तं महेश्वरम्।
आगत्याभ्यर्च्य विधिवत्पुरमावेशयत्स्वयम्॥ १॥

श्रीमहादेव जी बोले— तब पर्वतराज हिमालय, भगवान् शङ्कर को आया हुआ देखकर, सामने आकर, उनकी पूजा–अर्चना करते हुए, उन्हें ससम्मान विधिपूर्वक अपने आवास में ले गये।। १।।

ब्रह्माणं च तथा विष्णुं तथेन्द्रादिसुरोत्तमान्।
पूजयित्वा यथान्यायं पुरमावेशयद् गिरिः॥ २॥

साथ ही, ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवों की पूजा–अर्चना कर, उन्हें भी अपने आवास में यथासम्मान बैठाया।। २।।

मरीच्यादीन्महर्षींश्च पूजयित्वा यथोचितम्।
स्वपुरं प्रापयामास गिरीन्द्रो हृष्टमानसः॥ ३॥

इसी तरह महर्षि मरीचि आदि का भी यथोचित् सम्मान कर प्रसन्नहृदय पर्वतराज ने उन्हें भी अपने आवास पर ससम्मान बैठाया।। ३।।

विलोक्य पार्वतीनाथं शान्तं सुरुचिराननम्।
द्विभुजं रत्नभूषाढ्यं दिव्यस्वर्णकिरीटिनम्॥ ४॥
शशाङ्काङ्कितमूर्धानं शतसूर्यसमप्रभम्।
मुमोद मेनका तद्वद्गिरीन्द्रोऽपि हिमालयः॥ ५॥

पर्वतराज ने पार्वतीनाथ शङ्कर का वह सौम्य रूप देखकर अतीव प्रसन्नता व्यक्त की, जिसमें रत्नों से अलङ्कृत दो भुजाएँ थीं, मस्तक पर दिव्य स्वर्णमय मुकुट था। शिर पर अर्धचन्द्र शोभायमान था, उनके शरीर से सैकड़ों सूर्यों के समान प्रभा निकल रही थी। यह अद्भुत रूप देखकर पर्वतराज हिमालय तथा उनकी पत्नी मेनका– दोनों ही अत्यधिक प्रमुदित हुए।। ४–५।।

तदान्ये ये समायाता देवगन्धर्वकिन्नराः।
ते वीक्ष्य पार्वतीनाथं चक्षुरन्यत्र नाक्षिपन्॥ ६॥

तथा वहाँ जो अन्य देवता, गन्धर्व, किन्नर आदि उस अवसर पर

आये थे, वे भी भगवान् का वह सौम्य रूप देखकर ऐसे प्रसन्न हुए कि उनकी आँखें उस शरीर से अन्यत्र जाती ही न थीं।। ६।।

ऊचुः परस्परं सर्वे यथा गौरी सुरूपिणी।
तथैव रूपसम्पन्नो महादेवो जगत्पतिः॥ ७॥

तथा वे सब परस्पर यही चर्चा करने लगे कि ये गौरी पार्वती जैसी सुन्दर सुरूप हैं, वैसे ही ये देवाधिदेव जगत्पति भगवान् शङ्कर भी सुन्दर रूपसम्पन्न हैं।। ७।।

अथाद्रिनाथः सम्प्राप्ते काले चातिसुलक्षणे।
पार्वतीं देवदेवाय समभ्यर्च्य ददौ स्वयम्॥ ८॥

तब पर्वतराज हिमालय ने, समय आने पर, शुभ मुहूर्त में, उन देवाधिदेव को अपनी कन्या पार्वती का स्वयं (अपने हाथों) दान किया।। ८।।

यथोक्तविधिना शम्भुस्तां जग्राह हिमात्मजाम्।
भार्यात्वेन प्रहृष्टात्मा सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्॥ ९॥

देवाधिदेव भगवान् शङ्कर ने प्रसन्नतापूर्वक शास्त्रलिखित विधि से हिमालयपुत्री पार्वती को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया, जो कि सृष्टि की स्थिति, पालन तथा संहार करने का भी सामर्थ्य रखती थी।। ९।।

तदा गिरीन्द्रनगरे महानासीन्महोत्सवः।
यथा न भूतः कुत्रापि भविता वा न कुत्रचित्॥ १०॥

उस समय हिमालय नगर में जैसा विशाल महोत्सव सम्पन्न हुआ वैसा न पहले कभी हुआ, न आगे कहीं कभी होगा।। १०।।

प्रहृष्टमानसाः सर्वे देवा आसन्महामते!
हरे गृहीतदारे तु देवाः पूर्णमनोरथाः॥ ११॥

महामते! वे सभी प्रसन्नहृदय देवता भगवान् शङ्कर द्वारा पार्वती को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण करने से अत्यधिक सन्तुष्ट हुए।। ११।।

प्रशशंसुर्मुहुः कामं महादेवविमोहनम्।
विलोक्य शङ्करं तत्र पार्वत्या सहितं सुराः॥ १२॥

साथ ही उन्होंने कामदेव द्वारा किये गये उस सम्मोहन की भी प्रशंसा की जिसके कारण भगवान् शङ्कर ने पार्वती को अपनी भार्या के रूप में स्वीकार किया।। १२।।

ऊचुः परस्परं सर्वे गन्धर्वाश्च महर्षयः।
अहो बहुतरं भाग्यं गिरिराजस्य धीमतः॥ १३॥

यतः स्वयं जगन्माता कन्यात्वं समुपागता।
या सूते सकलं विश्वं स्वेच्छया प्रकृतिः परा॥ १४॥

वे सभी बुद्धिमान् देवता, गन्धर्व तथा महर्षि पार्वतीसहित भगवान् शङ्कर को देखकर परस्पर चर्चा करने लगे कि यह इस पर्वतराज हिमालय का सौभाग्य है कि इनके घर में स्वयं जगन्माता कन्या के रूप में अवतरित हुई जो समस्त विश्व को परा प्रकृति के रूप से उत्पन्न करने का सामर्थ्य रखती है।। १३–१४।।

सा प्राप यद्गृहे जन्म कन्यारूपेण लीलया।
तत्फलं नाल्पतपस एतस्य गिरिभूपतेः॥ १५॥

ऐसी भगवती ने जिस पर्वतराज के घर में अपनी इच्छा से जन्म ग्रहण किया वह किसी अल्प तपस्या वाले गृहस्थ पुरुष के लिये सम्भव नहीं है।। १५।।

किं वाच्यमतुलं भाग्यं मेनायाः पूर्वसञ्चितम्।
एतस्यास्त्रिजगन्मातुरपि माताऽभवद्यतः॥ १६॥

मेनका के पूर्व सञ्चित भाग्य की हम क्या चर्चा करें कि जो तीनों लोकों की माता की भी माता बन गयी!।। १६।।

प्रभावं को महेशस्य लोके वक्तुं क्षमो भवेत्!
रूपं वा विभवं वापि वाचातीतं मनोतिगम्॥ १७॥

इसी तरह भगवान् शङ्कर के प्रभाव की भी कितनी महिमा गायी जाय कि जिनके रूप और वैभव (ऐश्वर्य) के विषय में न मन से सोचा जा सकता है, न वाणी से उनका वर्णन किया जा सकता है"।। १७।।

एवमन्यद् बहुविधं प्रोचुः सर्वे परस्परम्।
विलोक्य रूपसम्पन्नौ पार्वतीपरमेश्वरौ॥ १८॥

उन रूपसम्पन्न पार्वती एवं भगवान् शङ्कर को देखकर उनके विषय में वहाँ के लोग इसी तरह की अन्य बहुत सी बातें करते रहे।। १८।।

ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् भगवन्तं महेश्वरम्।
पार्वत्या सहितं प्राह शान्तं हर्षसमाकुलम्॥ १९॥

पितामह ब्रह्मा जी तथा भगवान् विष्णु ने, उस समय, पार्वती के साथ प्रसन्न मन से बैठे हुए भगवान् शङ्कर से यों कहा—।। १९।।

ब्रह्मविष्णू०—"प्रभो देव सतीयं सा पार्वती तव गेहिनी।
यस्या वियोगदुःखार्तस्तपस्तप्तुं भवान् पुरा।

सेयं भगवती देवी जगदाद्या सनातनी'' ॥ २० ॥

ब्रह्मा एवं विष्णु— '' हे प्रभो! हे देव! आज आपकी भार्या बनी पार्वती देवी, जिसके वियोग में आप इतने सुदीर्घ काल से दुःखी थे, जिसकी प्राप्ति के लिये आपने इतने समय तक उग्र तपस्या की थी, वही आद्या भगवती सनातनी प्रकृति परमेश्वरी सती हैं'' ।। २० ।।

***श्रीमहादेव*—ततो हिमालयः शम्भुं तुष्टाव भक्तिसंयुतः ॥ २१ ॥**

श्रीमहादेव— तब हिमालय ने भगवान् शङ्कर की भक्तिपूर्वक यों स्तुति की— ।। २१ ।।

***हिमालय०*—''देवदेव महादेव भक्तवत्सल शङ्कर!**
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥ २२ ॥

हिमालय— ''हे भक्तवत्सल! हे देवाधिदेव! भगवान् शङ्कर! आपको प्रणाम है, प्रणाम है, बार-बार प्रणाम है ।। २२ ।।

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।
पश्यामि यज्जगन्नाथं जगन्मात्रा समं दृशा'' ॥ २३ ॥

हे जगन्नाथ! आज मेरा जन्म सफल हो गया और आज मेरा लोक में जीना भी सफल हो गया कि आप को जगन्माता के साथ एकत्र बैठे देख रहा हूँ'' ।। २३ ।।

***श्रीमहादेव०*— एवं स्तुवन्तं सद्भक्त्या गिरिराजं महामुने!**
उवाच भगवाञ्छम्भुः प्रीणयन् वचनामृतैः ॥ २४ ॥

श्री महादेव बोले— हे महामुने! इस तरह स्तुति करते हुए उन पर्वतराज को भगवान् शङ्कर अपने स्नेहसिक्त स्वर में यों बोले— ।। २४ ।।

''गिरीन्द्र त्वं महाप्राज्ञ! मम मूर्त्त्यन्तरं स्वयम्।
भाग्यवानसि देवानां सम्मान्यश्च विशेषतः ॥ २५ ॥

''हे गिरीन्द्र! आप महाप्रज्ञासम्पन्न हैं, आप एक तरह से मेरे ही दूसरे रूप हैं। आप भाग्यवान् हैं, देवता भी आपका विशेष सम्मान करते हैं ।। २५ ।।

अद्यारभ्याध्वरे भागो मया ते परिकल्पितः।
न त्वां विना करिष्यन्ति मर्त्ये यज्ञं गिरीश्वर! ॥ २६ ॥

आज से सभी यज्ञों में आपका अपना भाग मैं निश्चित करता हूँ। हे गिरीश्वर! मर्त्यलोक में आज से कोई भी पुरुष आप का भाग दिये विना अपना यज्ञ सफल नहीं कर पायगा ।। २६ ।।

यथा हविर्भुजः सर्वे देवा यज्ञोत्सवे गिरे!
तथा त्वमपि यज्ञानां भोक्ता मर्त्ये भविष्यसि"॥ २७॥

हे पर्वतराज! जैसे किसी भी यज्ञ में अन्य देवता अपना अपना भाग पाते हैं वैसे ही आज से मर्त्यलोक में होने वाले यज्ञों में आप भी अपना भाग पाने के अधिकारी होंगे"॥ २७॥

हिमालय— "प्रभो त्वद्वरदानेन कृतार्थोऽस्मि जगद्गुरो!
अन्यदस्ति वरं शम्भो प्रार्थनीयं कृपानिधे!॥ २८॥

हिमालय— "प्रभो! हे जगद्गुरो! आप के इस वरदान से मैं कृतार्थ हुआ, परन्तु मेरी एक और हार्दिकी इच्छा है, उसे हे कृपानिधे! आप अवश्य पूर्ण करें॥ २८॥

अनया सह पार्वत्या रमस्वात्र महेश्वर!
पवित्रं कुरु मां देव शरणागतवत्सल!"॥ २९॥

वह इच्छा यह है कि हे महेश्वर! आप मेरी पुत्री के साथ यहीं (हिमालय पर्वत पर ही) अपना आवास बनावें। जिससे हे देव! मेरा यह स्थल पवित्र हो जाय॥ २९॥

श्रीशङ्कर— "करिष्ये त्वत्पुरस्याहमदूरे पर्वताधिप!
तवैव शिखरे देव्या पार्वत्या प्रीतमानसः॥ ३०॥
पश्यन्ति मां गिरे! लोका गिरिशं तेन हेतुना"॥ ३१॥

भगवान् शङ्कर— "हे पर्वतराज! मैं आप की बात कैसे टालूँ। ठीक है! मैं आप से कुछ ही दूर पर, अपनी पत्नी के साथ, अपना आवास, बनाऊँगा। इसी गिरि पर वास करने के कारण जनता मुझे 'गिरिश' भी कहेगी"॥ ३०–३१॥

श्रीमहादेव— इति तस्मै वरं दत्त्वा तस्मिन्नेव नगोत्तमे।
निर्माय नगरं रम्यं तत्रोवास सहोमया॥ ३२॥

श्रीमहादेव जी— भगवान् शङ्कर उस पर्वतराज को यों वर देकर उसी उत्तम पर्वत पर एक स्थान बनाकर भगवती उमा के साथ रहने लगे॥ ३२॥

ब्रह्माद्या देवताः सर्वाः स्वस्वस्थानं तदा ययुः॥ ३३॥

विवाहोत्सवसमाप्ति के बाद, सभी देवगण भी अपने अपने स्थान पर पुनः लौट गये॥ ३३॥

अध्यायमेनं पार्वत्या विवाहोत्सवमङ्गलम्।
यः शृणोति पठेद्वापि स देव्याः पदमाप्नुयात्।

न तस्य विद्यते भीतिः शत्रुतो राजतोऽपि वा॥ ३४॥
प्राप्नोति च मनोभीष्टं सकृदाकर्ण्य मानवः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो महादेव्याः प्रसादतः॥ ३५॥

इस पार्वतीविवाहमङ्गल अध्याय का जो श्रद्धालु भक्त पाठ करेगा या जो इसका श्रवण करेगा वह देवी के चरणों का आश्रय प्राप्त कर लेगा। तब उसे न शत्रुओं से भय रहेगा, न विरोधी राजाओं से। कोई भी श्रद्धालु पुरुष इसे एक बार ही सुनकर अपना मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर सकता है और भगवती की कृपा से वह सभी पापों से भी मुक्त हो जाता है।। ३४–३५।।

इत्युक्तं ते मुनिश्रेष्ठ यथा प्राप महेश्वरः।
भूयस्तां प्रकृतिं पूर्णां या सती दक्षकन्यका॥ ३६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यों मैंने तुमको वह सब घटनाक्रम विस्तार से सुना दिया कि किस तरह भगवान् शङ्कर ने उस पूर्णा प्रकृतिरूपा दक्षकन्या सती को (पार्वती के रूप में) पुनः प्राप्त किया था।। ३६।।

इदानीं शृणु पुत्रोऽभूद्यथा तारकसूदनः।
कार्तिकेयो महाबाहुर्देवानां परिरक्षकः॥ ३७॥

अब वह सब सुनो कि किस तरह तारकासुर के हन्ता, देवताओं के रक्षक, महाबाहु कार्तिकेय उन दोनों के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए।। ३७।।

न येन सदृशः कश्चिन्महाबलपराक्रमः।
धनुर्धरस्त्रिलोकेषु विद्यते भवितापि न॥ ३८॥

इति श्रीमहाभगवते उपपुराणे पार्वतीविवाहमङ्गलं
नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥ २८॥

जिस (कार्तिकेय) के समान कोई महाबलशाली या महापराक्रमशाली धनुर्धर योद्धा इन तीनों लोकों में न कोई हुआ है, न आगे भी कोई होगा।। ३८।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'पार्वतीविवाहमङ्गल' वर्णन रूप
अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त॥

उनतीसवाँ अध्याय

[शिवपार्वती विहार-वर्णन]

श्रीमहादेव०— अहर्निशमनुस्मृत्य पार्वतीलाभकारणम्।
तपःक्लेशं महादेवस्तस्यां प्रीतिकरोऽभवत्॥ १॥

श्रीमहादेव जी बोले— भगवान् शङ्कर उस पार्वती की प्राप्ति में हेतुभूत अपने उग्र तप:क्लेश को दिन–रात में जब भी स्मरण करते थे तो वह उनके लिये प्रसन्नतादायक ही होता था।। १।।

तद्वाक्यश्रवणे कर्णौ लोचनं रूपदर्शने।
तन्मनोरञ्जने चेतः सन्नियोज्य निरन्तरम्॥ २॥

वे उस पार्वती की बातें सुनने के लिये अपने कान उधर ही लगाये रखते थे। उनके अतिशय सुन्दर रूप को भी, उन्हीं में चित्त लगाये, देखते रहते थे। उन भगवती का जिन बातों से मनोरञ्जन हो सके विना पलक झुकायी आँखों से उसके लिये वे सावधान रहते थे।। २।।

प्रीतिं सजनयामास पार्वत्याः प्रीतिसंयुतः।
एकदा वन्यपुष्पाणि समानीय महेश्वरः॥ ३॥
निर्माय मालां रुचिरां कर्पूरागरुचर्चिताम्।
पार्वत्याः सम्प्रदायाङ्के प्रेम्णालिङ्ग्य स्मरातुरः।
रम्यं मनो दधे पुत्रमुत्पादयितुमादृतः॥ ४॥

इस तरह अपने कृत्यों से भगवान् शङ्कर ने भगवती में स्नेह रखते हुए उनका स्नेह प्राप्त करने के लिये पूर्ण प्रयास किया गया। एक बार उन्होंने वन के वृक्षों से पुष्प एकत्र कर उनसे एक सुन्दर माला बनाकर उसे कपूर, अगर जैसे गन्धद्रव्यों से सम्पृक्त कर उसे पार्वती को समर्पण करते हुए उनके देह का आलिङ्गन कर काममुग्ध होकर भगवान् शङ्कर ने उस पार्वती से एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न करने की मन में इच्छा की।। ३–४।।

नन्दिनं प्राह भगवान्न नममाज्ञां विनात्र वै।
समानीयो जनः कोऽपि देवो वा देववन्दितः॥ ५॥
तथा रक्ष पुरद्वारं समस्तैः प्रमथैर्वृतः''॥ ६॥

अतः उन्होंने नन्दी को आदेश दिया कि ''मेरी आज्ञा के विना कोई

भी आदमी, कोई भी देवता या देवताओं द्वारा समर्चित कोई भी व्यक्ति अन्दर न प्रविष्ट होने पावे। मेरे आवास की इस तरह रक्षा के प्रबन्ध में समस्त प्रमथों को नियुक्त कर किया जाय''।। ५–६।।

तच्छ्रुत्वा सोऽपि तच्चक्रे पुरद्वाराभिरक्षणम्।
सहितैः प्रमथैः सर्वं देवदेवस्य शासनात्॥ ७॥

भगवान् शङ्कर के आदेश से नन्दी ने अन्य प्रमथों के सहयोग से भगवान् के आवास का वैसा ही रक्षा प्रबन्ध कर दिया जैसा वे चाहते थे।। ७।।

ततो रहसि पार्वत्या दश वर्षाणि पञ्च च।
रेमे स भगवान् शम्भुः कामेन परिमोहितः॥ ८॥

तब एकान्त में पार्वती के साथ काममुग्ध होकर भगवान् शङ्कर ने ऐसा अभिरमण आरम्भ किया जो पन्द्रह वर्ष तक निरन्तर चला।। ८।।

दिवा वा रजनीं वापि न प्रजज्ञे तदा हरः।
प्रेमानन्दनिमग्नः सन् कामव्यापृतमानसः॥ ९॥

वे भगवान् कामव्यापृत चित्त होकर दिनरात इस कार्य में आनन्द मानते हुए रहे।। ९।।

एवं हि रममाणस्य महेशस्य कदाचन।
रेतः पपात नो वापि नो वा शान्तिर्बभूव ह॥ १०॥

परन्तु यों निरन्तर अभिरमण करते हुए भी भगवान् शङ्कर का वीर्यपात नहीं हो पाया, न उनके मन को शान्ति ही मिली।। १०।।

तस्य पादप्रहारेण वसुधा परिपीडिता।
सूर्यस्यान्तिकमभ्यागाद्गोरूपा मुनिपुङ्गव!॥ ११॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इससे खिन्न होकर उन्होंने पृथ्वी पर पाद (लात) प्रहार किया। इससे पृथ्वी तिलमिला उठी। वह गौ का रूप धारण कर सूर्य के पास पहुँची।। ११।।

तस्मै सा कथयामास रुदती साश्रुलोचना।
महेशपादसङ्घातजनितोत्पातमात्मनः ॥ १२॥

उसने रोते हुए अपनी व्यथा सूर्य को बतायी कि कैसे भगवान् शङ्कर के पादप्रहार से उसको इतनी पीड़ा हो रही है।। १२।।

''दिवाकर हिमप्रस्थे पार्वत्या भगवान् हरः।
रमते सुचिरं काममोहितात्मा जगत्प्रभुः॥ १३॥

वह बोली– ''हे दिवाकर! भगवान् शङ्कर हिमालय शिखर पर पार्वती जी के साथ बहुत समय से काममुग्ध होकर अभिरमण कर रहे हैं।। १३।।

शिवशक्त्योः स्वभारेण पीडिताहमहर्निशम्।
न स्थातुमभिशक्नोमि ममोपायं वद द्रुतम्॥ १४॥

मैं अब इस पार्वती एवं शङ्कर के भार से दबी जा रही हूँ। मैं एक स्थान पर स्थिर नहीं रह सकती। आप इसका कोई उपाय बताइये।। १४।।

स तु तां पार्वतीं प्राप्य कामविह्वलमानसः।
न रात्रिं प्रतिजानाति दिनं वापि जगत्पतिः॥ १५॥

जगत्पति भगवान् शङ्कर उन पार्वती को पाकर अब न दिन देखते हैं न रात। वे तो निरन्तर कामविह्वल रहते हैं।। १५।।

न क्षणं विरतिस्तस्य जायते वा महेशितुः।
रेतः पतति नो वापि न शान्तिरपि जायते''॥ १६॥

वे एक क्षण भी उस अभिरमण से विराम नहीं लेते। न उनका वीर्यपात होता है, न उनको शान्ति ही मिल पाती है।। १६।।

श्रीमहादेव०— एवं वचनमाकर्ण्य पृथिव्याः स दिवाकरः।
तया सार्धं ययौ यत्र देवा इन्द्रपुरोगमाः॥ १७॥

श्री महादेव जी— सूर्यदेव पृथ्वी के ये वचन सुनकर उसे लेकर वहाँ पहुँचे जहाँ इन्द्र आदि प्रमुख देवता थे।। १७।।

तानुवाच यथावृत्तं पृथिव्याः परिभाषितम्।
तच्छ्रुत्वा प्रययुः सर्वे ब्रह्मणो निकटं तदा।
त्रिदशा धरया सार्धं सहसैव महामुने!॥ १८॥

सूर्य ने उनको वह सब कुछ सुनाया जो उसने पृथ्वी से सुना था। उसे सुनकर, वे सभी देवता अचानक पृथ्वी के साथ पितामह ब्रह्मा के सम्मुख पहुँचे।। १८।।

ते प्राहुरथ तं देवा ब्रह्माणं जगतः पतिम्।
सम्मुखे पृथिवीं कृत्वा गोरूपां मुनिसत्तम!॥ १९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उन्होंने उन जगत्पति ब्रह्मा से गोरूपधारिणी पृथ्वी को आगे कर, यह कहना आरम्भ किया–।। १९।।

"शृणु ब्रह्मञ्जगद्धात्र्या पार्वत्या सहितो हरः ॥ २० ॥
रमते हिमवत्प्रस्थे दश वर्षाणि पञ्च च।
न तस्य रेतः पतति न वा शान्तिः प्रजायते ॥ २१ ॥

"हे ब्रह्मन्! भगवान् शङ्कर हिमालय शिखर पर, जगन्माता पार्वती जी के साथ पन्द्रह वर्ष से निरन्तर अभिरमण कर रहे हैं। इस बीच, न उनका वीर्य ही क्षरित हुआ और न उन्हें किसी प्रकार शान्ति ही मिली।। २०–२१।।

न धैर्यं वा समाधत्ते स कदाचिन्महेश्वरः।
नैवं श्रुतं न दृष्टं वा कदाचित् केनचित् क्वचित् ॥ २२ ॥

इस कारण, वे किसी भी तरह धैर्य धारण नहीं करते। ऐसी घटना तो हमने न कभी कहीं पहले देखी थी, न सुनी ही थी।। २२।।

शिवशक्त्यो रतेर्भारपीडितेयं वसुन्धरा।
रसातलं जिगमिषुरस्मदन्तिकमागता ॥ २३ ॥

इस तरह शङ्कर एवं पार्वती के अभिरमण से पीड़ित यह वसुन्धरा पाताल में धँसती हुई सी, सहायतार्थ मेरे पास आयी।। २३।।

तदत्र किं विधेयं तदुच्यतां त्रिजगत्पते!" ॥ २४ ॥

हे त्रिलोकी के स्वामी! अब हमें इस विषय में क्या करना चाहिये?— कृपया निर्देश दें"।। २४।।

इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः।
उवाच त्रिदशान्ब्रह्मा आश्वास्य च मुहुर्मुहुः ॥ २५ ॥

लोकपितामह ब्रह्मा उन देवताओं के ये वचन सुनकर उन्हें विविध प्रकार से आश्वस्त करते हुए अन्त में यह बोले—।। २५।।

"देवकार्यस्य सिद्ध्यर्थं रमते स महेश्वरः।
एतस्मात्क्षरिताद्रेतःसङ्घादुत्पत्स्यते तु यः ॥ २६ ॥
स हन्ता तारकस्यास्य भविष्यति न संशयः।
किन्तु शम्भोः सुतो देव्यां यदि सञ्जायते तदा।
स भविष्यति देवानामसुराणां च मर्दनः ॥ २७ ॥

"वे भगवान् शङ्कर तो आप लोगों की कार्यसिद्धि हेतु ही ऐसा प्रबल अभिरमण कर रहे हैं। इस कार्य से क्षरित वीर्यसमूह से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह निःसन्देह इस तारकासुर को मारने वाला होगा। परन्तु इतनी अधिक

वीर्यराशि से देवी के गर्भ से एक ही पुत्र होगा तो वह असुरों के साथ साथ देवताओं का भी नियन्त्रक बन बैठेगा।। २६–२७।।

पराक्रमं च तस्येमं जगन्नापि सहिष्यति।
तस्मादन्यत्र कुत्रापि शम्भोरेतेन रेतसा।
यथा भवेदेकसुतश्चेष्टयध्वं तथा सुराः॥ २८॥

उसके पराक्रम को यह सम्पूर्ण जगत् सहन नहीं कर पायगा। अतः कुछ ऐसा करो कि इस वीर्य के एक अंश से ही वह पुत्र उत्पन्न हो।। २८।।

अहं समागमिष्यामि यत्रास्तेऽसौ महेश्वरः॥ २९॥
रमते सह पार्वत्या कामविह्वलमानसः।
यूयं च तत्र सर्वेऽपि मया यास्यथ सत्वरम्॥ ३०॥
शम्भोः सङ्गनिवृत्त्यर्थं प्रार्थयन्तो महेश्वरीम्''॥ ३१॥

एतदर्थ, प्रयत्न करने हेतु, जहाँ भगवान् शङ्कर कामविह्वल होकर पार्वतीजी के साथ यह कार्य कर रहे हैं मैं वहाँ जाऊँगा, आप लोग भी वहाँ मेरे साथ रहियेगा। जिससे उन्हें ऐसा न करने हेतु समझाया जा सकें''।। २९–३१।।

इत्युक्त्वा त्रिदशान् ब्रह्मा सहसा तत्र नारद!
प्रययौ यत्र देवेशो रमते च सहोमया॥ ३२॥

हे नारद! वे पितामह ब्रह्मा, देवताओं को यह सब कह कर, वहाँ पहुँचे जहाँ भगवान् शङ्कर पार्वती जी के साथ अभिरमण कर रहे थे।। ३२।।

देवाः सर्वे तु तत्पश्चाद्ययुस्तत्र महामते!
ददृशुस्तौ च रमतः पार्वतीचन्द्रशेखरौ॥ ३३॥

हे महामते! सभी देवता भी उनके पीछे पीछे वहाँ पहुँच गये जहाँ भगवान् शङ्कर एवं पार्वती अभिरमण कर रहे थे।। ३३।।

तेष्वागतेष्वपि शिवः कामुको मुग्धमानसः।
न विश्रान्तिं रतौ चक्रे नापि लज्जान्वितोऽभवत्॥ ३४॥

उन देवताओं के सम्मुख आकर खड़े होने पर भी वे कामान्ध शङ्कर न तो उस अभिरमण कर्म से पृथक् ही हुए, न उन्हें कोई लज्जा ही आयी।। ३४।।

न वा सा पार्वती देवी लज्जां प्रत्युद्ययौ तथा।
न तत्याज महेशानं रममाणमहर्निशम्॥ ३५॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीशिवपार्वतीविहारवर्णनं नाम
एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इतना ही नहीं, पार्वती देवी भी इस कार्य से लज्जित नहीं हुई और न उन्होंने भी रात–दिन अभिरमण करते हुए भगवान् शङ्कर को ही छोड़ा।। ३५।।

श्री महाभागवत उपपुराण में
'श्री शिवपार्वतीविहार वर्णन' नामक
उनतीसवाँ अध्याय समाप्त॥

तीसवाँ अध्याय
[कार्त्तिकेयजन्मवर्णन]

पार्वती द्वारा अभिरमण से विरति

श्रीमहादेवः०— ततो देवाः परं प्राप्य विस्मयं प्रावदन्मुने!
स्तुवन्ति जगतां लज्जारूपिणीं जगदम्बिकाम्॥ १॥

श्रीमहादेव जी बोले— हे मुने! वे देवता भगवती के इस व्यवहार को देखकर पहले तो अत्याधिक आश्चर्यचकित हुए। बाद में जगत् की लज्जाभूत उस देवी की स्तुति करते हुए उनसे यों बोले—।। १।।

ब्रह्मादयः०— "त्वं माता जगतां पितापि च हरः सर्वे इमे बालका-
स्तस्मात्त्वच्छिशुभावतः सुरगणे नास्त्येव ते संभ्रमः।
मातस्त्वं शिवसुन्दरि! त्रिजगतां लज्जास्वरूपा यत-
स्तस्मात्त्वं जय देवि रक्ष धरणीं गौरि प्रसीदस्व नः॥ २॥

ब्रह्मा आदि देवता— "हे देवि! आप इस सम्पूर्ण जगत् की माता हैं, भगवान् शङ्कर उसके पिता हैं। देवगण तो आपके शिशुतुल्य हैं। अतः इनके यहाँ आ जाने से आप व्याकुलता (सम्भ्रम) न दिखावें। हे शिवसुन्दरि! आप क्योंकि जगन्माता हैं, आप लज्जास्वरूपा है, अतः आप की जय हो, आप इस पृथ्वी की रक्षा करें। हे गौरि! आप हम पर प्रसन्न हों।। २।।

त्वमात्मा त्वं ब्रह्म त्रिगुणरहितं विश्वजननि!
स्वयं भूत्वा योषित्पुरुषविषयाहो जगति च।
करोष्येवं क्रीडां स्वगुणवशतस्ते च जननीं,
वदन्ति त्वां लोकाः स्मरहरवरस्वामिरमणीम्॥ ३॥

हे देवि! आप ही आत्मा कहलाती है, आप ही ब्रह्मरूप हैं। हे विश्वजननि! आप त्रिगुणरहित हैं। आप स्वेच्छा से जगत्सृष्टिहेतु नारीरूप में पुरुष का साधन (उपकरण) बनती हैं। इस तरह आप अपने ही गुणों के वश में यह क्रीड़ा करती रहती हैं। अतएव लोग आप को अपनी माता एवं भगवान् शङ्कर की प्रियपत्नी कहते हैं।। ३।।

त्वं स्वेच्छावशतः कदा प्रतिभवस्यंशेन शम्भुः पुमान्,
स्त्रीरूपेण शिवे स्वयं विहरसि त्रैलोक्यसम्मोहिनि!

सैव त्वं निजलीलया प्रतिभवं कृष्णः कदाचित्पुमान्,
शम्भुं सम्परिकल्प्य चात्ममहिषीं राधां रमस्यम्बिके ॥ ४॥

हे त्रैलोक्यसम्मोहिनि! हे शिवे! आप स्वेच्छा के वश होकर कभी स्त्रीरूप से भगवान् शङ्कर को प्रतिभू (जामिन) बनाती हैं तो कभी भगवान् शङ्कर पुरुषवेश से आपके प्रतिभू बनते हैं। इस तरह आप दोनों लीला करते रहते हैं। नहीं कभी कृष्णवेश में भगवान् शङ्कर राधा के रूप में आपका प्रतिभू बनते हैं तो कभी राधा के रूप में आप कृष्ण की प्रतिभू बन कर उनके साथ रमण करती हैं।। ४।।

प्रसीद मातर्देवेशि जगद्रक्षणकारिणि!
विरम त्वमिदानीं तु धरणीरक्षणाय वै'' ॥ ५॥

हे माता! हे देवेशि! हे जगद्रक्षणकारिणि! आप प्रसन्न हों, आप इस पृथ्वी की रक्षा हेतु इस लोकोत्तर अभिरमण से अब विरत होइये!''।। ५।।

श्रीमहादेव०— **एवं स्तुता भगवती त्रिदशैः पर्वतात्मजा।**
उत्तस्थौ सम्परित्यज्य सङ्गं लज्जान्विता मुने ॥ ६॥

श्रीमहादेव जी बोले— हे मुने! यों देवताओं द्वारा की गयी स्तुति सुनकर वह भगवती पार्वती, लज्जा के कारण, भगवान् शङ्कर के साथ किये जाते हुए अभिरमण को छोड़कर उनसे पृथक् हो गयी।। ६।।

भैरव की उत्पत्ति

ततस्तस्याः स्ववीर्येण जात एकः परः पुमान्।
भैरवो भीमसेनश्च महाबलपराक्रमः ॥ ७॥

तब उनके अपने वीर्य (रज) से एक उत्कृष्ट पुरुष उत्पन्न हुआ। जो कि भैरव (भयङ्कर) एवं भीमसेन था; साथ ही महाबलशाली एवं पराक्रमी भी था।। ७।।

तं जातं पुरुषं प्राह देवी भगवती तदा।
''वसस्व मत्पुरद्वारि रक्ष द्वारं सदा सुत'' ॥ ८॥

उस उत्पन्न हुए पुत्र को, उसी समय, भगवती ने आज्ञा दी कि ''हे पुत्र! तुम मेरे आवास की रक्षा हेतु सदा मेरे द्वारपाल का कार्य करो''।। ८।।

इत्युक्त्वा त्रिजगन्माता लज्जयावनतानना।
मन्दिरं प्राविशद्रम्यं रत्नप्राकारतोरणम् ॥ ९॥

यह कहकर वह तीनों लोकों की मातृरूपा भगवती पार्वती लज्जा से

अपना मुख नीचा कर अपने रम्य आवास में जाकर छिप गयी, जिसके प्राकार एवं तोरण रत्नजटित थे।। ९।।

शम्भुश्चापि परित्यक्तुं स्वरेतो मुनिसत्तम।
मनश्चक्रे सुराणां वै हिताय जगतोऽस्य च॥ १०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उधर, भगवान् शङ्कर ने भी देवताओं तथा जगत् के हितार्थ अपने वीर्य का परित्याग करने की इच्छा की।। १०।।

तं रेतस्त्यक्तुकामं च ज्ञात्वा कमलसम्भवः।
उवाच वायुं देवानां कार्यसंसिद्धये ततः॥ ११॥

भगवान् शङ्कर की यह इच्छा देखकर कमलयोनि ब्रह्मा ने देवताओं की कार्यसिद्धि हेतु वायु को यह कहा—।। ११।।

वायु द्वारा शङ्कर के वीर्य का विकिरण

ब्रह्मोवाच०—"वायो! त्वयैकं कार्यं तु कर्तव्यं जगतां हितम्।
तारकस्य वधार्थाय शम्भोः पुत्राभिजन्मने॥ १२॥
यदा त्यक्ष्यति रेतश्च महेशः पृथिवीतले।
तदाब्जयोषितां योनिं प्रापयस्व च वेगतः"॥ १३॥

ब्रह्मा— "हे वायुदेव! आप को जगत् के हित में एक कार्य करना है। वह यह है कि तारकासुर–वध के लिये भगवान् शङ्कर एक पुत्र की उत्पत्ति हेतु जब अपने वीर्य का पृथ्वीतल पर परित्याग करना चाहें तो उसे आप शीघ्र से शीघ्र अब्जयोषितों (कृत्तिकाओं) की योनियों में पहुँचा दें"।। १२–१३।।

श्रीमहादेव०— इति तस्य वचः श्रुत्वा वायुर्वेगवतांवरः।
प्रववावतिवेगेन तुमुलं मुनिसत्तम!॥ १४॥

श्रीमहादेव जी— हे मुनिश्रेष्ठ! वेगवानों में श्रेष्ठ वायुदेव, पितामह ब्रह्मा के ये आदेश–वचन सुनकर, प्रबल वेग से बहने लगे।। १४।।

ततः शम्भुश्च तत्याज रेतो वह्नेः शिरस्यलम्।
रजताद्रिसमं वह्नेर्दुस्सहं तदभूत्तदा॥ १५॥

उसी समय भगवान् शङ्कर ने अपना वीर्य वह्नि के शिर पर त्याग दिया। परन्तु वह वीर्य भार में रजतपर्वत के समान था, अतः वह भार अग्नि के लिये दुःसह हो गया।। १५।।

ततः स परितत्याज सहसा शरकानने।
निवासे देवदेवस्य तेजोराशिं महौजसम्॥ १६॥

तब उस अग्नि ने उस (वीर्य) को भगवान् शङ्कर के आवास में स्थित शरकण्डे के झुरमुट में छोड़ दिया ।। १६ ।।

तस्यार्धं तु बलाद्वायुः संविभज्य पृथक् पृथक्।
कृत्तिकानां तु षण्णां वै योनिमध्ये न्यवेशयत् ॥ १७ ॥

वायु ने उसके आधे अंश को बलपूर्वक पृथक् पृथक् विभक्त कर छह कृत्तिकाओं की योनियों में डाल दिया ।। १७ ।।

योनिवक्त्रेण तत्तेजः प्रविष्टं मुनिसत्तम!
अवाप शोणितं तासां ततो जठरमागमत् ॥ १८ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वह तेज:सम्पन्न वीर्य उनके योनिमुख के माध्यम से उनके रक्त में मिलकर उनके पेट (गर्भ) में पहुँच गया ।। १८ ।।

वह्नौ यच्चापतद्रेतस्तच्च स्वर्णं बभूव ह।
यत्स्थितं तु शरारण्ये तच्चाद्यापि च दृश्यते ॥ १९ ॥

वह्नि पर जो अंश पड़ा था वह सुवर्ण बन गया, जो कि आज तक उस शर-वन में दिखायी देता है ।। १९ ।।

वायुनीतं तु तद्रेतोभागं तस्याभिधारणे।
कृत्तिकाद्या मुनिश्रेष्ठ! न समर्थास्तदाभवन् ॥ २० ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वायु द्वारा ले जाया गया वीर्यांश, जो कि कृत्तिकाओं की योनि में डाला गया था, वे भी उसे धारण करने में असमर्थ रहीं ।। २० ।।

तत्यजुश्च मुनिश्रेष्ठ! सर्वा एव महामते!
ततस्ताः सहितं कृत्वा तद्रेतः शोणितोक्षितम् ॥ २१ ॥
संस्थाप्य काष्ठकोशे तु चिक्षिपुर्भीममानसाः ।
गङ्गायां मुनिशार्दूल! तद्ददर्श प्रजापतिः ॥ २२ ॥

हे महामति, मुनिश्रेष्ठ! उन सभी ने अपने अपने अंश को बाहर निकाल दिया। और उस रक्तमिश्रित वीर्य को एकत्र कर भयङ्कर (दुष्ट) विचारवाली उन कृत्तिकाओं ने काठ की पेटी (मञ्जूषा) में बन्द कर गङ्गा में बहा दिया। हे मुनिश्रेष्ठ! वहाँ उस काष्ठकोश को बहते हुए पितामह ब्रह्मा ने देख लिया ।। २१-२२ ।।

ततस्तत्काष्ठकोशं च स गृहीत्वा पितामहः ।
स्वस्थानमगमद् भूयः प्रहृष्टात्मा प्रसन्नधीः ॥ २३ ॥

तब प्रसन्नमना ब्रह्मा ने उस काष्ठकोश को गङ्गा से निकाल कर उसे लेकर अपने आवास में पहुँचा दिया ।। २३ ।।

तत्काष्ठकोशमध्ये तु व्यजायत परः पुमान्।
द्वादशैर्बाहुभिर्युक्तो द्वादशाक्षः षडाननः॥ २४॥

स्वर्णगौरतनुः श्रीमान् प्रसन्नमुखपङ्कजः।
उद्यच्छशाङ्कतुल्याभो नीलोत्पलदलेक्षणः॥ २५॥

उन्होंने उस काष्ठ कोश में एक विशिष्ट पुरुष को उत्पन्न देखा, जिसके बारह भुजाएँ थीं, बारह आँखें थीं, और छह मुख थे। उसका वर्ण सोने के समान गौर एवं कान्तियुक्त था। उसका मुख खिले कमल के समान सुन्दर था। उसकी आभा उदीयमान चन्द्रमा के तुल्य थीं। और आँखें नीलकमल के सदृश थीं।। २५।।

एवं विज्ञाय तं जातं देव्याः पुत्रं महौजसम्।
मध्यतः काष्ठकोशस्य तत्कोशं स प्रजापतिः॥
प्रबिभेद मुनिश्रेष्ठ! ततस्तं ददृशे सुतम्॥ २६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्मा जी ने उस काष्ठकोश में उत्पन्न हुए महाबलशाली पुरुष को देवी का पुत्र समझते हुए उस काष्ठकोश को भेद डाला। उसमें उन्हें वह पुत्र दिखायी दिया।। २६।।

कार्त्तिकेय का जन्म

आश्विन्यां पौर्णमास्यां तु एवं शिवकुमारकः।
जातबान् ब्रह्मलोकेऽसौ तारकारिर्महाबलः॥ २७॥
तस्मिञ्जाते शिवसुते ब्रह्मा लोकपितामहः॥
सम्प्राप्य परमामोदं महोत्सवमकारयत्॥ २८॥

आश्विन की पौर्णमासी के दिन वह शिवकुमार ब्रह्मलोक में अवतरित हुआ। वह महाबलशाली तारकासुर का घातक था। उसके उत्पन्न होने पर लोकपितामह ब्रह्मा अतीव प्रसन्न हुए। तथा उन्होंने इसी प्रसङ्ग में एक विशाल उत्सव का आयोजन किया।। २७–२८।।

शिरसस्तारकाख्यस्य किरीटं कुण्डलोज्ज्वलम्।
पपात धरणीपृष्ठे चकम्पे च शरीरकम्॥ २९॥

सञ्जाते पार्वतीपुत्रे महाबलपराक्रमे।
दिशः सुनिर्मला आसन् देवाश्चोत्फुल्लमानसाः॥ ३०॥

उस महाबलशाली पार्वतीपुत्र के उत्पन्न होते ही तारकासुर के शिर के

सुवर्णमय मुकुट भूमि पर गिर पड़ा। और उसका शरीर काँप उठा। सभी दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं। देवताओं के हृदय हर्ष से विभोर हो गये॥ २९-३०॥

ज्ञात्वा तु पार्वतीपुत्रं सञ्जातं ब्रह्मणः पुरे।
नारायणः समागत्य ददृशे परमादरात्॥ ३१॥

आयातास्त्रिदिशाश्चान्ये महेन्द्रप्रमुखास्तदा।
महर्षयश्च सर्वेऽपि श्रुत्वा जातमुमासुतम्॥ ३२॥

यों ब्रह्मलोक में पार्वतीपुत्र की उत्पत्ति जानकर भगवान् विष्णु ने भी स्वयं आकर सम्मान के साथ उस पार्वतीपुत्र को देखा। इसी समय इन्द्र आदि देवता भी उस पार्वतीपुत्र के दर्शनार्थ वहाँ आये। सभी महर्षियों ने जब यह संवाद सुना तो वे भी शीघ्रता में वहाँ पहुँचे॥ ३१-३२॥

नामकरण

तथाकरोच्च नामानि ब्रह्मा सर्वसुरैः सह।
पार्वतीबालकस्यास्य प्रसन्नात्मा महामुने!॥ ३३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर सब देवताओं के साथ उस पार्वतीपुत्र के कुछ नाम भी रखे॥ ३३॥

ब्रह्मा०— **"कृत्तिकागर्भजातत्वात्कार्त्तिकेयेति चाख्यया।**
विख्यातस्त्रिषु लोकेषु भविष्यति शिवात्मजः॥ ३४॥

ब्रह्मा— कृत्तिका के गर्भ में उत्पन्न होने के कारण उसका एक नाम *कार्त्तिकेय* भी होगा। तथा यह पार्वतीपुत्र इसी नाम से तीनों लोकों में विख्यात होगा॥ ३४॥

तथा षाण्मातुरश्चास्य नाम लोके भविष्यति।
यतस्ताः कृत्तिकाद्याश्च संख्या परिकीर्तिताः॥ ३५॥

फिर इसका एक नाम *षाण्मातुर* भी लोक में प्रसिद्ध होगा; क्योंकि वे कृत्तिकाएँ, जिन के गर्भ में इसका पोषण हुआ, संख्या में छह थीं॥ ३५॥

ताभिश्च स्कन्दिताद्रेतःसङ्घाज्जातो ह्ययं यतः।
ततः स्कन्दोऽपि नाम्नाभिख्यातो लोके भविष्यति॥ ३६॥

उनके द्वारा बहाये गये रेतःसङ्घात से उत्पन्न होने के कारण इसका एक नाम *स्कन्द* भी लोक में प्रख्यात होगा॥ ३६॥

तारकस्य निहन्तायं समरे भविता यतः।
ततस्तारकवैरीति लोके नाम भविष्यति"॥ ३७॥

फिर यह युद्ध में तारकासुर का वधकर्ता भी होगा, अतः यह *तारकवैरी* भी कहलायेगा।। ३७।।

कार्तिकेय की उत्पत्ति को माता–पिता से छिपाया जाना

श्रीमहादेव—एवं नामानि कृत्वाऽसौ ब्रह्मा लोकपितामहः।
सर्वदेवगणैः सार्धं महोत्सवमथाकरोत्॥ ३८॥
ततः प्राहुः पद्मयोनिं स्वस्वकार्यप्रसिद्धये।
तारकेणार्दिताः सर्वे त्रिदशा मुनिसत्तम!॥ ३९॥

इस प्रकार लोक पितामह ब्रह्मा ने नामकरण कर सभी देवताओं के साथ महोत्सव का आयोजन किया। हे मुनिश्रेष्ठ! अपने अपने कार्य की सिद्धि के लिये तारकासुर द्वारा पीड़ित देवताओं ने कमलयोनि ब्रह्मा से निवेदन किया–।। ३९–३९।।

देवा०— "प्रभो त्रिजगतां नाथ! यावच्छङ्करनन्दनः।
संग्रामे तारकं दैत्यं न जघानैष हि स्वयम्।
तावत्परिचयं नास्य पितृभ्यां कारयिष्यसि॥ ४०॥
यदि स्नेहाद्भगवती भगवान् वा सदाशिवः।
न यच्छति रणे पुत्रं किं करिष्यामहे तदा॥ ४१॥

देवगण– "हे प्रभो! हे त्रिलोकीनाथ! जब तक यह शङ्करपुत्र युद्ध में स्वयं तारकासुर का वध न कर दे। तब तक इसका परिचय इसके माता–पिता को न कराया जाय; क्योंकि इसकी माता भगवती पार्वती या इसके पिता भगवान् शङ्कर ही स्नेहवश इसको रणभूमि में जाने की आज्ञा न दें तो हम क्या कर पायँगे!।। ४०–४१।।

तस्माच्छीघ्रं हते दैत्ये समरे तारकाह्वये।
तयोः पुत्रस्य जन्मास्य वक्तव्यं वै त्वया प्रभो"॥ ४२॥

अतः हे प्रभो! तारकासुर के वध के बाद ही उन दोनों को आपके द्वारा उनके इस पुत्र का परिचय (सूचना) दिया जाय।। ४२।।

श्रीमहादेव०— एवं देव्याः समुद्भूतः पुत्रो ज्येष्ठः षडाननः।
स्थितो ब्रह्मपुरे देवाः स्वस्थानं च समागमन्॥ ४३॥

श्रीमहादेव जी– यों देवी से समुद्भूत ज्येष्ठ पुत्र षडानन ब्रह्मलोक में रहकर ही शनैः शनैः बढ़ने लगा। और, वहाँ एकत्र हुए देवता भी अपने अपने स्थान को पुनः लौट गये।। ४३।।

इत्युक्तं मुनिशार्दूल कार्त्तिकेयो यथाभवत्।
देव्याः पुत्रो महाबाहुस्तारकासुरमर्दनः ॥ ४४॥

हे मुनिशार्दूल! इस तरह मैंने वह सब इतिहास आपको विस्तार से सुना दिया जिसमें तारकासुरहन्ता, देवीपुत्र, महाबाहु कार्त्तिकेय का जन्म हुआ था।। ४४।।

अध्यायपाठ का माहात्म्य

अध्यायमेतं गिरिजासुतस्य
जन्मप्रसङ्गं परिपाठयन्ति ये।
पठन्ति शृण्वन्ति च ये तु भक्त्या
तेषां न विद्येत भयं हि किल्विषात्॥ ४५॥

इस अध्याय पाठ के माध्यम से जो यह पार्वतीपुत्र कार्त्तिकेय का जन्मप्रसङ्ग भक्तिपूर्वक पढ़ते पढ़ाते हैं, सुनते हैं, उनको किसी भी पाप से कोई भय नहीं होता।। ४५।।

न विद्यते यस्य सुतः समाहितः
श्रुत्वा स एनं गिरिजासुतोद्भवम्।
उत्पादयेत् पुत्रमशेषसद्गुणं
गुणान्वितं तद्गिरिजासुतोपमम्॥ ४६॥

इति श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे कार्तिकेयजन्मवर्णनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३०॥

जिस गृहस्थ को पुत्र न होता हो वह इस पार्वतीपुत्र के जन्मप्रसङ्ग को सुनेगा तो उसके पुण्यप्रभाव से अशेषसद्गुणसम्पन्न पार्वतीपुत्र के समान ही अपने घर में भी पुत्र की उत्पत्ति देखेगा।। ४६।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में कार्त्तिकेयजन्मवर्णन नामक
तीसवाँ अध्याय समाप्त॥

इकतीसवाँ अध्याय

[कुमारागमनवर्णन]

नारद— कथय त्वं महादेव संग्रामे पार्वतीसुतः।
कथं सम्पातयामास तारकं देवकण्टकम्॥ १॥

नारद— हे महादेव! यह बताइये कि पार्वतीपुत्र ने देवताओं के लिये कण्टक (बाधा) स्वरूप उस तारकासुर का कैसे वध किया?।। १।।

कथं परिचयश्चाभूत् पितृभ्यां तस्य वा प्रभो!
सुतं प्राप्य च सा देवी किं चकार महेश्वरः?॥ २॥

फिर उसका अपने माता पिता से कैसे परिचय हुआ? पुत्र को पाकर महादेवी पार्वती की क्या मनोदशा हुई? और भगवान् शङ्कर ने क्या किया?।। २।।

श्रीमहादेव०— शृणु वत्स! प्रवक्ष्यामि संग्रामे तारकासुरम्।
यथा सम्पातयामास संग्रामे पार्वतीसुतः॥ ३॥
यथाभवत् परिचयः पितृभ्यामपि तस्य च।
तच्च वक्ष्यामि ते तत्त्वं शृणुष्वावहितो मम॥ ४॥

श्रीमहादेव— हे वत्स! सुनो! अब तुम्हें मैं वह सब सुनाऊँगा कि पार्वतीपुत्र ने तारकासुर को संग्राम में कैसे मारा? माता पिता से उसका परिचय कैसे हुआ? यह सब मैं तुम्हें विस्तार से बताऊँगा, तुम सावधान होकर सुनो!।। ३–४।।

एकदा त्रिदशाः सर्वे तारकेण समर्दिताः।
ब्रह्मणोऽन्तिकमागत्य प्रणम्योचुर्महामतिम्॥ ५॥

एक बार तारकासुर द्वारा पीड़ित बहुत से देवता महामति ब्रह्माजी के पास आकर उन्हें प्रणाम कर यों बोले—।। ५।।

देवा०— "प्रभो ब्रह्मन्! तारकस्तु यथास्मान् बाधते सदा।
तत्त्वं किं नाभिजानासि किं वा ब्रूमस्तवाग्रतः॥ ६॥

देवता— "हे प्रभो! हे ब्रह्मन्! यह तारकासुर अब हमें जिस तरह निरन्तर पीड़ित करने लगा है, उसे क्या आप नहीं जानते कि उसे बताने के लिये हम निरन्तर आप के पास आते रहें!।। ६।।

इदानीं तस्य नाशाय महादेवसुतं रणे।
प्रेषयाशु महादेवं कार्तिकेयं महाबलम्"॥ ७॥

अब आप उसे युद्ध में नष्ट करने के लिये शीघ्र ही शङ्करपुत्र महाबलशाली महान् देवता कार्त्तिकेय को भेजिये"।। ७।।

श्रीमहादेव:०— इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः।
कार्तिकेयं वचः प्राह सर्वदेवस्य पश्यतः॥ ८॥

महादेव जी— उनके ये वचन सुनकर पितामह ब्रह्मा सभी देवताओं के सम्मुख कार्तिकेय को यों बोले—।। ८।।

ब्रह्मा०— "तात त्वं सर्वलोकानां रक्षकोऽसि शिवात्मज!
इदानीं त्रिदशान् रक्ष हत्वा दैत्यं तु तारकम्॥ ९॥

ब्रह्मा— "हे तात! शिवपुत्र! तुम समस्त जगत् के रक्षक हो। अतः अब तारकासुर का वध कर इस जगत् की रक्षा करो।। ९।।

त्वां समाश्रित्य देवास्तु तारकासुरपीडिताः।
निस्तारं समुपायान्तु जहि तं देवकण्टकम्"॥ १०॥

तुम्हारे सहारे से ये तारकासुर द्वारा पीड़ित देवता उससे छुटकारा पा जायँगें। अतः तुम उस देवकण्टक को उखाड़ फेंको"।। १०।।

श्रीमहादेव०— ततस्तं वेधसं प्राह कार्त्तिकेयो महाबलः।
स्निग्धगम्भीरया वाचा देवानामग्रतः स्थितः॥ ११॥

श्रीमहादेव— तब उस महाबलशाली कार्त्तिकेय ने अपनी स्निग्ध एवं गम्भीर वाणी से उन पितामह ब्रह्मा को देवताओं के सामने ही यह कहा।। ११।।

कार्तिकेय— "पातयिष्यामि तं दुष्टं समरे भीमविक्रमम्।
तारकं दैत्यराजं तु, वाहनं परिकल्पय"॥ १२॥

कार्त्तिकेय— 'मैं युद्ध में भयङ्कर पराक्रम दिखाने वाले उस दुष्ट दैत्यराज तारक को अवश्य मार डालूँगा, आप केवल मेरे लिये एक वाहन (सवारी) की व्यवस्था कर दीजिये"।। १२।।

श्रीमहादेव०— इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा तस्मै शिवसुताय वै।
मयूरवाहनं प्रादाद्वायुवेगं महामुने!॥ १३॥

श्रीमहादेव— हे महामुने! (कार्त्तिकेय द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, भगवान् ब्रह्मा ने उन कार्त्तिकेय के लिये वायु के समान वेग वाले एक मयूर–वाहन की व्यवस्था की।। १३।।

तारकस्य वधार्थाय शक्तिं हेमपरिष्कृताम्।
कोटिसूर्यसमाभासां ददौ तस्मै महौजसे॥ १४॥

साथ ही उस तारकासुर के वधहेतु एक सुवर्णनिर्मित शक्ति भी उस महाबलशाली को प्रदान की, जिससे करोड़ों सूर्यों के समान चमक निकल रही थी।। १४।।

न तादृशी महाशक्तिर्विद्यते भुवनत्रये।
तेन शक्तिधरेत्याख्यामवाप्स्यति शिवात्मजः॥ १५॥

इस महाशक्ति जैसी तीनों लोकों में दूसरी शक्ति नहीं है। अतः यह पार्वतीपुत्र इसे साथ में रखकर 'शक्तिधर' भी कहलायगा।। १५।।

ततस्तु सर्वसेनानां रक्षणार्थं नियोज्य तम्।
समरे प्रेषयामास ब्रह्मा लोकपितामहः॥ १६॥

फिर उसको सभी सेनाओं के रक्षण में (सेनापति के रूप में) नियुक्त कर उन लोकपितामह ब्रह्मा ने युद्धभूमि में भेजा।। १६।।

सोऽपि तं प्रणिपत्यैव मयूरं प्रारुरोह च।
प्रगृह्य शक्तिं तां भीमां महाबलपराक्रमः॥ १७॥

वह (कार्तिकेय) भी उन्हें प्रणाम कर मयूर पर आरूढ़ हुआ एवं उस महाबलशाली ने हाथ में वह भयङ्कर शक्ति भी ले ली।। १७।।

ततस्तमग्रतः कृत्वा त्रिदशाः समुपागमन्।
युद्धार्थं दैत्यराजस्य तारकस्य पुरीं मुने!॥ १८॥

हे मुने! तब वे सभी देवता उस कार्त्तिकेय को आगे कर उस दैत्यराज से युद्ध हेतु तारकासुर की राजधानी में आये।। १८।।

तेषामापततां श्रुत्वा सुघोरं निःस्वनं ततः।
समसज्जत दैत्येन्द्रः समरायासुरैः सह॥ १९॥
अनन्तहयपादातैर्गजवाजिसहस्रकैः।
वृतः समरदुर्द्धर्षः समरार्थं व्यवस्थितः॥ २०॥

उनके आने का भयङ्कर कोलाहल सुनकर वह दैत्यराज भी उन देवताओं से युद्ध करने के लिये असुरों सहित सन्नद्ध हुआ अनन्त अश्वसेना, पदाति (पैदल) सेना, हजारों हाथियों तथा घोड़ों से घिरा हुआ वह दुर्जय तारकासुर युद्धभूमि में आया।। २०।।

आयान्तं वीक्ष्य सेनान्यं मयूरवरवाहनम्।
उद्यच्छक्तिकरं सर्वैस्त्रिदशैः परिवारितम्॥ २१॥
तारको रथमारुह्य शुद्धहेमपरिष्कृतम्।
सिंहवाहध्वजैश्चित्रैः पताकाभिरलंकृतम्॥ २२॥

प्रययौ नेमिशब्देन कम्पयन् धरणीतलम्।
स ददर्श निमित्तानि सुघोराणि महामते!॥ २३॥

वहाँ वह तारकासुर श्रेष्ठ मयूर पर विराजमान, ऊर्ध्वमुखशक्तिधारी, देवगण से परिवृत, सेनापति कार्त्तिकेय को आया हुआ देखकर सुवर्णनिर्मित, शुद्ध चित्र विचित्र पताकाओं से अलङ्कृत सिंहवाहन एवं ध्वजायुक्त रथ पर बैठकर नेमिकी ध्वनि से पृथ्वी को कँपाता हुआ तारकासुर समरभूमि में पहुँचा।। २१–२३।।

पेतुरुल्काश्च निर्भिद्य सूर्यं रथसमीपतः।
वाजिनां चक्षुषः पेतुरश्रुवारास्तथा मुने!॥ २४॥

हे मुने! उसने वहाँ जाते हुए भयानक अपशकुन देखे। उसके रथ के समीप सूर्य से टूट–टूटकर भयङ्कर रूप से जलती हुई उल्काएँ गिरने लगीं। और चलते हुए घोड़ों के नेत्रों से आँसू बहने लगे।। २४।।

अप्रसन्नहृदश्चासन् योद्धारः सर्व एव हि।
भयानकरवं कुर्वन् पतन्ति घोरपक्षिणः॥ २५॥

उसके सभी योद्धा हृदय से व्याकुल दिखायी देने लगे। उसके चारों तरफ पक्षी घोर क्रन्दन करते हुए गिरने लगे।। २५।।

एवंविधानि विविधानि भयानकानि
दृष्ट्वापि स त्रिदशतापददैत्यराजः।
आदाय चारुविपुलं धनुरुग्रमूर्त्तिः
सम्प्राय शङ्करसुतं युधि जेतुकामः॥ २६॥

ऐसे अनेक प्रकार के भयानक अपशकुन देखकर भी वह देवताओं के लिये दुःखद तथा भयानक आकृति वाला तारकासुर सुन्दर एवं विशाल धनुष् लेकर भगवान् शङ्कर के पुत्र कार्तिकेय के सम्मुख, उससे युद्ध में विजय प्राप्त करने हेतु पहुँचा।। २६।।

माता स्वयं भगवती गिरिराजकन्या,
या सर्वदैत्यवरनाशकरी रणेषु।
तातश्च तस्य गिरिशो जगदन्तकारी,
कस्तं विजेतुमिह शक्तियुतो मुने स्यात्॥ २७॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे तारकासुरसंग्रामे कुमारागमनवर्णनं
नामैकत्रिंशत्तमोध्यायः॥ ३१॥

हे मुने! परन्तु वह मूर्ख इस सत्य को नहीं समझ पाया कि जिसकी माता पर्वतराजपुत्री हों, जिसने स्वयं अनेक युद्धों में अच्छे अच्छे दैत्यों को परास्त किया हो; या जिसके पिता गिरीश भगवान् शङ्कर हों, जिन्होंने कितनी ही बार समस्त जगत् का संहार किया हो, ऐसे विशिष्ट वीर पुरुष को जीतने की सामर्थ्य किस में है!।। २७।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में तारकासुरसंग्राम प्रसङ्ग में
'कुमार का संग्रामभूमिगमनवर्णन' नामक
इकतीसवाँ अध्याय समाप्त॥

बत्तीसवाँ अध्याय

[कार्त्तिकेय-तारकासुरसंग्रामवर्णन]

श्रीमहादेव०— ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीपणवनिःस्वनैः।
उभयोः सेनयोश्चापि सिंहनादैः समन्ततः॥ १॥
नेमिघोषेण घोरेण पूर्णमासीन्नभोऽन्तरम्।
चकम्पे वसुधा चापि ततो युद्धमवर्तत॥ २॥

श्रीमहादेव जी बोले— तब वह संग्रामभूमि चारों तरफ से, दोनों सेनाओं द्वारा बजाये गये तुरही (रणसिंघा), नगाड़ा तथा ढोल के भयङ्कर शब्दों से तथा रथों के पहियों के चलने की भयङ्कर ध्वनियों से वहाँ का आकाश भर गया। जब युद्ध प्रारम्भ हुआ तो समस्त पृथ्वी भी काँप उठी।। १—२ ।।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सह सर्वैर्महर्षिभिः।
अपूर्वं रथमारुह्य गगने समुपागमत्॥ ३॥
द्रष्टुं घोरतरं युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
देवानां दानवानां च विनिघ्नन्नितरेतरम्॥ ४॥

इसी समय लोकपितामह ब्रह्माजी भी सभी महर्षियों के साथ अपूर्व रथ में बैठकर उस रोमाञ्चक और भयानक युद्ध को देखने के लिये जिसमें कि देवासुर परस्पर एक दूसरे को मारते हुए संलग्न थे, वहाँ आकाश में आकर विराजमान हुए।। ३—४ ।।

इन्द्रस्तु वज्रं निःक्षिप्य शतशोऽथ सहस्रशः।
जघानं समरे दैत्यान् महाबलपराक्रमान्॥ ५॥

वहाँ उस युद्ध में देवराज इन्द्र ने वज्र फेंक फेंककर हजारों महाबलशाली एवं पराक्रमी दैत्यों को मार कर गिरा दिया।। ५ ।।

तथैव वरुणः क्रुद्धः पाशेनासुरपुङ्गवान्।
बध्वा प्रहृत्य चास्त्रेण प्रापयद्यमसादनम्॥ ६॥

उधर वरुण देवता ने भी अपने पाश के द्वारा अच्छे अच्छे बलिष्ठ दैत्यों को बांधकर फिर उन्हें अस्त्र—शस्त्रों से मारकर यमराज के घर पहुँचा दिया।। ६ ।।

अन्येऽपि त्रिदशाः सर्वे क्षिप्त्वा बाणाननेकशः।
समरे पातयामासुर्दनुजेन्द्रस्य सैनिकान्॥ ७॥

इसी तरह, अन्य देवताओं ने भी अनेक प्रकार से वाणवृष्टि कर उस दैत्यराज के असुरों को समरभूमि में मार गिराया।। ७।।

कार्तिकेयस्तु समरे युध्वा तेन दुरात्मना।
जघानान्यान् महादैत्यान् महाबलपराक्रमान्॥ ८॥

उधर स्वयं सेनापति कार्त्तिकेय ने उस दुष्ट से युद्ध करते हुए, अनेक महाबलशाली एवं पराक्रमी दैत्यों को मार डाला।। ८।।

एवं शस्त्रास्त्रपातैस्तु देवानां दानवास्तथा।
त्यक्तप्राणाः समभवंस्तारकस्य समीपतः॥ ९॥

यों देवताओं द्वारा छोड़े गये शस्त्रास्त्रों से तारकासुर के समीपवर्ती दानव अधिक मात्रा में मारे गये।। ९।।

तेषां रथाश्वनागैश्च प्रभग्नैश्च वसुन्धरा।
अगम्या समभूत्तत्र निहतैरसुरैरपि॥ १०॥

उसकी सेना के टूटे हुए रथों तथा मरे हुए घोड़ों और हाथियों से, मरे हुए असुरों के शरीरों से व्याप्त भूमि पर लोगों का चलना कठिन हो गया।। १०।।

हतानां दैत्यसङ्घानां शोणितैर्मुनिसत्तम!
प्रावर्तत नदी घोरा सेनयोरन्तरे ततः॥ ११॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मरे हुए दैत्यों के रक्त से, दोनों सेनाओं के बीच में, भयङ्कर नदी बह चली।। ११।।

एवं विनष्टे सैन्ये तु तारको दैत्यपुङ्गवः।
अकरोत्तुमुलं युद्धं सेनान्या सह नारद॥ १२॥

हे नारद! अपनी सेना को इस प्रकार विनष्ट होता देखकर, वह तारकासुर सेनापति कार्त्तिकेय के साथ विशेष भयङ्कर युद्ध करने लगा।। १२।।

शस्त्राणि तेन क्षिप्तानि शतशोऽथ सहस्त्रशः।
चिच्छेद समरे गौरीतनयः प्रहसन्निव॥ १३॥

उसने उस समय, उस युद्ध में जितने भी अस्त्र शस्त्र चलाये कार्त्तिकेय ने उन सबको हँसते-हँसते काट डाला।। १३।।

तथा सोऽपि महास्त्राणि सेनान्या प्रहितानि च।
बभञ्ज तारकः संख्ये शतशोऽथ सहस्त्रशः॥ १४॥

उधर युद्ध में कार्त्तिकेय द्वारा उसकी तरफ छोड़े गये हजारों अस्त्र-शस्त्रों को तारकासुर ने भी तोड़ फोड़ डाला।। १४।।

एवं तयोः प्रहरतोः शरव्रातैः परस्परम्।
दृष्ट्वा युद्धं परं प्रापुर्विस्मयं देवकिन्नराः॥ १५॥

इस प्रकार उन दोनों वीरों द्वारा परस्पर घात-प्रतिघात करते हुए जो युद्ध हो रहा था, उसे वहाँ आकाश में उपस्थित देवता एवं किन्नर आश्चर्य से देख रहे थे।। १५।।

ततः क्रुद्धो रणे दैत्यः स्वर्णपुङ्खशरान् बहून्।
यमदण्डोपमान्घोरान्सेनान्ये प्राहिणोद्रुषा॥ १६॥

तब समरभूमि में क्रुद्ध हुआ वह दैत्य स्वर्णपुङ्ख लगे बाणों को, जो कि यमदण्ड के समान भयानक थे, सेनापति कार्त्तिकेय पर छोड़ने लगा।। १६।।

सेनानीः प्राक्षिपद् बाणमर्धचन्द्रं सुदारुणम्।
तं प्रत्यच्छेदयत्सोऽपि निमेषार्धेन नारद!॥ १७॥

हे नारद! तब सेनानी कार्त्तिकेय ने तारकासुर पर अर्धचन्द्र बाण चलाया, उसको तारकासुर ने भी पलक झपकते ही क्षण में ही काट दिया।। १७।

ततस्तमाशुगैर्घोरैः सेनानीर्दैत्यपुङ्गवम्।
पुनर्विव्याध संक्रुद्धो दशभिर्नतपर्वभिः॥ १८॥

फिर उस कार्त्तिकेय ने क्रुद्ध होकर असुरराज को दश तीव्रगामी घोर नुकीले बाणों से बींध डाला।। १८।।

स दैत्यराजस्तैर्बाणैः पीडितो मुनिसत्तम!
मूर्च्छितः पतितस्तस्मिन् रथोपस्थ उपाविशत्॥ १९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वह दैत्यराज उन दश बाणों की पीड़ा से पीड़ित होकर मूर्च्छित होते हुए रथ के पास ही बैठ गया।। १९।।

ततः समुत्थितो भूयः सिंहवन्निनदन्मुहुः।
अमर्षवशमापन्नः शूलं जग्राह दानवः॥ २०॥

फिर, कुछ क्षण बाद, उठकर बार-बार सिंहनाद करते हुए, दानव ने क्रोध में आकर एक भयङ्कर शूल उठाया।। २०।।

तमुद्यतमहाशूलं दृष्ट्वा सोऽपि षडाननः।
चिक्षेप निजशूलं तु महौजसमरिन्दमः॥ २१॥

शत्रुघाती षडानन कार्त्तिकेय ने उस दानव को शूल उठाते देखकर अपना शूल चलाया।। २१।।

तेन शूलेन दैत्यस्य तच्छूलं करसंस्थितम्।
तत्क्षणाद् भस्मसान्नीतं तदद्भुतमिवाभवत्॥ २२॥

और उस शूल से उस दैत्य के हाथ का शूल उसी समय नष्ट कर डाला कि देखने वालों को यह कृत्य आश्चर्यजनक लगा।। २२।।

ततः क्रुद्धो रणे दैत्यः सृक्किणीः परिसंलिहन्।
सेनान्यं प्रति चिक्षेप गदां शक्त्यायसीं मुने॥ २३॥

हे मुने! तब वह दैत्यराज क्रोध में अपने ओष्ठों के कोर चाटता हुआ सेनापति पर लोहे की बनी एक गदा फैंकने को सन्नद्ध हुआ।। २३।।

सेनानीस्तां गदां भीमां गदया सहसैव हि।
पातयामास तद्धस्ताद्भङ्क्त्वा पाणौ व्यताडयत्॥ २४॥

परन्तु सेनापति कार्त्तिकेय ने उस भयानक गदा को भी अपनी गदा से उसके हाथ में ही तोड़कर उसके हाथ पर प्रहार किया।। २४।।

ततश्चान्यामपि गदां प्रगृह्य दनुजाधिपः।
अभ्यपद्यत सेनान्यं सिंहनादं नदन्मुहुः॥ २५॥

तब उस असुरराज ने एक अन्य गदा से, बार–बार सिंहनाद करते हुए प्रहार किया।। २५।।

तमापतन्तं संवीक्ष्य गदापाणिं महासुरम्।
सेनानीस्ताडयामास क्षुरप्रेण भुजद्वये॥ २६॥

उस गदा को अपनी तरफ आते देखकर सेनापति कार्त्तिकेय ने उस महादैत्य की भुजाओं पर क्षुरप्र (खुरपे की तरह अग्रभाग में विस्तृत) बाण से प्रहार किया।। २६।।

तेनास्त्रेण प्रविद्धस्तु समरे दैत्यपुङ्गवः।
ननाद सुमहानादं युगान्ते जलदो यथा॥ २७॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे कार्त्तिकेयतारकासुरसंग्रामवर्णनं नाम
द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३२॥

युद्ध में उस विशेष बाण से विंधकर उस दैत्यराज ने ऐसा भयङ्कर सिंहनाद किया मानों प्रलयकाल के मेघों की गर्जना हो रही हो।। २७।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
कार्त्तिकेय–तारकासुर संग्रामवर्णन नाम
बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।।

तैतीसवाँ अध्याय

[तारकासुर-वधवर्णन]

श्रीमहादेव०— अथ तं दैत्यराजं तु नदन्तं घोरनिःस्वनैः।
अताडयच्छरैर्घोरैर्यमदण्डोपमै रणे॥ १॥

श्रीमहादेव जी बोले— तब सेनापति कार्त्तिकेय ने युद्ध में भयङ्कर सिंहनाद करते हुए उस दैत्यराज को यमदण्ड के समान भयङ्कर बाणों से बींध डाला॥ १॥

ततः शक्तिं समादाय रत्नदण्डां सुदारुणाम्।
सेनान्यं प्रति चिक्षेप तारकः क्रोधमूर्च्छितः॥ २॥

तब उस दैत्यराज ने क्रुद्ध होकर एक ऐसी शक्ति उठायी, जिसका दण्ड रत्ननिर्मित था और देखने में भयप्रद थी। उसे उसने कार्त्तिकेय को लक्ष्य करके फैंका॥ २॥

तामापतन्तीं संवीक्ष्य शक्तिं देवसुदुःसहाम्।
त्रिदशाः समकम्पन्त भयेन परिमोहिताः॥ ३॥

वह शक्ति ऐसी थी जिसका प्रहार अच्छे अच्छे बलवान् देवता भी कठिनाई से सहन कर पाते थे, उसे आते देखकर सभी देवता भयाक्रान्त होकर काँप उठे॥ ३॥

ब्रह्मा स्वस्त्ययनं चक्रे सह दिव्यैर्महर्षिभिः।
सेनानीः प्रहसंस्तां तु शक्तिं श्रीपार्वतीसुतः॥
स्वशक्त्या भस्मसाच्चक्रे सर्वलोकस्य पश्यतः॥ ४॥

ब्रह्मा भी, उन दिव्य महर्षियों के साथ मिलकर स्वस्तिवाचन करने लगे। परन्तु पार्वतीपुत्र सेनापति कार्त्तिकेय ने सबके देखते देखते उस शक्ति को अपनी शक्ति से हँसते–हँसते भस्म कर डाला॥ ४॥

ततो देवाः सुसंहृष्टाः पुष्पवृष्टिमवाकिरन्।
कार्त्तिकेयोपरि, ब्रह्मा प्रशशंस च तं मुहुः॥ ५॥

विस्मयं सिद्धगन्धर्वा जग्मुर्दृष्ट्वा पराक्रमम्।
महादेवसुतस्यामुं कार्त्तिकेयस्य नारद॥ ६॥

तब देवता अत्यन्त प्रहृष्ट हुए और कार्त्तिकेय पर पुष्पवृष्टि करने लगे। हे नारद! ब्रह्माजी ने उनके इस कार्य की प्रशंसा की और सिद्ध तथा गन्धर्व भी उस शङ्करपुत्र कार्त्तिकेय का वह अनुपम पराक्रम देखकर आश्चर्यचकित हो गये।। ५–६।।

ततः क्रुद्धः स दैत्येन्द्रो धनुरादाय सत्वरम्॥ ७॥
निःक्षिप्य शरजालानि स्कन्दं समरदुर्जयम्।
छादयामास समरे मयूरं च व्यताडयत्॥ ८॥

तब उस क्रुद्ध दैत्यराज ने शीघ्र ही धनुष उठाकर युद्ध में कठिनाई से जीते जाने वाले स्कन्द पर बाणसमूह बरसाकर युद्ध में ढँक दिया। और उनके मयूरवाहन को भी बाणों से पीड़ित कर दिया।। ७–८।।

ततः स शरजालानि छित्त्वा शिवसुतोऽपि च।
विबभौ मुनिशार्दूल कोटिसूर्यसमप्रभः॥ ९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तब पार्वतीपुत्र ने उसके बाणसमूह को काटकर ऐसी शोभा प्राप्त की मानों करोड़ों सूर्य प्रकाशित हो रहे हों।। ९।।

एतस्मिन्नेव काले तु वृत्रहापि महासुरान्।
भित्त्वान्यान् पार्वतीपुत्रनिकटं समुपागमत्॥ १०॥

इसी समय वृत्रासुरवधकर्ता देवराज इन्द्र, अन्य महासुरों को एक तरफ कर, पार्वतीपुत्र कार्त्तिकेय के समीप पहुँच गये।। १०।।

चित्रे मरकताद्रीशसदृशे शिखिनि स्थितः।
पार्वतीतनयः संख्ये वृत्रहापि गजोपरि॥ ११॥

उस समय कार्त्तिकेय चित्रविचित्र मरकतगिरितुल्य मयूर पर विराजमान थे तो देवराज इन्द्र ऐरावत हाथी पर।। ११।।

ऐरावताख्ये विबभावतीव मुनिसत्तम।
तौ युद्धसंस्थितौ दृष्ट्वा तारको भीमविक्रमः॥ १२॥
शरवर्षैः कुमारेन्द्रौ ताडयामास नारद।
तस्य तांस्तु शरव्राताञ्छित्त्वा तस्मिन्महाहवे॥ १३॥
चक्राते सिंहनादांश्च कुमारेन्द्रौ महाबलौ।
शस्त्रैश्च विविधैर्घोरैस्ताडयामासतुस्तदा॥ १४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वे दोनों ही इस स्थिति में नयनाभिराम लग रहे थे। उन्हें युद्ध में खड़ा देखकर भयङ्कर बलशाली तारक ने कुमार कार्त्तिकेय तथा इन्द्र पर घनघोर बाणवर्षा से प्रहार किया। उस युद्ध में उसके उस

शर–समूह को छिन्न भिन्न कर वे दोनों महाबलशाली कुमार तथा इन्द्र सिंहनाद करते हुए प्रत्याक्रमण में उस दैत्यराज पर विविध अस्त्र–शस्त्र छोड़ने लगे।। १२–१४।।

इन्द्रस्तं प्रतिचिक्षेप वज्रं वेगेन नारद!
तदाभूच्छतधा तस्य वक्षः प्राप्य क्षणार्धतः॥ १५॥

हे नारद! इन्द्र ने वेगपूर्वक वज्र से प्रहार किया। उस प्रहार से आधे ही क्षण में उस दैत्यराज का वक्षःस्थल क्षत–विक्षत हो गया।। १५।।

ततः खड्गं समुद्यम्य क्रोधसंरक्तलोचनः।
कुमारं परिसन्त्यज्य देवराजमधावत॥ १६॥

तब वह क्रुद्ध दैत्यराज तलवार लेकर, क्रोध से लालनेत्र कर, कार्त्तिकेय का पीछा न कर, देवराज इन्द्र की तरफ दौड़ा।। १६।।

ततः क्रुद्धस्तु भगवान् पार्वतीतनयः क्षणात्।
चालयन् वाहनं तस्य सखड्गं करमच्छिनत्॥ १७॥

उसी समय क्रुद्ध पार्वतीपुत्र कार्त्तिकेय ने क्षणभर में अपने वाहन को उस दैत्यराज के पास ले जाकर तलवार वाला हाथ काट डाला।। १७।।

ततः सव्येतरे पाणौ क्रोधेन दितिजाधिपः।
आदाय परिघं घोरं सेनान्यं प्रत्यधावत॥ १८॥

तब वह राक्षसराज वामहस्त से क्रोधपूर्वक भयानक परिघ (एक प्रकार का दण्ड) उठाकर सेनानी की तरफ दौड़ा।। १८।।

ततः शक्तिं समादाय ब्रह्मदत्तां सुदारुणाम्।
आयान्तं दैत्यराजं तु ताडयामास संयुगे॥ १९॥

तब उस युद्ध में कार्त्तिकेय ने ब्रह्मा की दी हुई भयङ्कर शक्ति, अपनी तरफ आते हुए, दैत्यराज पर छोड़ी।। १९।।

तया विद्धः स दैत्येन्द्रो नीलाचलसमो बली।
पपात धरणीपृष्ठे धरणीमनुनादयन्॥ २०॥

उससे घायल होकर वह बलवान् तथा नीलाचल के समान श्यामवर्ण दैत्य पृथ्वी को कम्पित करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा।। २०।।

हते तस्मिन् महादैत्ये देवगन्धर्वकिन्नराः।
प्रहर्षं परमं प्रापुर्दिशश्चासन् सुनिर्मलाः॥ २१॥

हे मुनि! उस महान् दैत्य का वध हो जाने पर, सभी देव, गन्धर्व तथा किन्नर अत्यधिक हर्ष को प्राप्त हुए। दिशाएँ भी स्वच्छ हो गयीं।। २१।।

सुप्रभोऽभूद्दिनेशश्च सुस्थिरं जगदप्यभूत् ॥ २२ ॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे तारकासुरवधो नाम
त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

सूर्यदेव भी शुभ कान्ति वाले हो गये। (संक्षेप में) समस्त जगत् सुखानुभूति करता हुआ सुस्थिर हो गया।। २२।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
तारकासुरवधनामक
तैतीसवाँ अध्याय समाप्त॥

चौतीसवाँ अध्याय

[कार्त्तिकेय का कैलासपुर-गमन]

ब्रह्मा का भगवान् शङ्कर के पास कार्त्तिकेय को ले जाना

श्रीमहादेव०— ततः प्रहृष्टास्त्रिदशाः प्रसाद्य गिरिजासुतम्।
गन्धपुष्पार्घ्यधूपैश्च नानास्तुतिभिरादरात्॥ १॥

श्रीदेव— तब, प्रसन्नचित्त देवसमूह ने पार्वतीपुत्र को गन्ध, पुष्प, अर्घ्य तथा धूप आदि से तथा अनेकविध स्तुतियों से प्रसन्न किया।। १।।

ब्रह्मा विमानमारुह्य हंसवाहं प्रजेश्वरः।
ययौ कुमारमादाय कार्त्तिकेयं षडाननम्॥
महेशसन्निधिं नीत्वा बभाषे मुनिसत्तम!॥ २॥

हे मुनिश्रेष्ठ! फिर प्रजापति ब्रह्मा हंसवाहन विमान पर चढ़कर, कुमार, षडानन कार्त्तिकेय को ले भगवान् शङ्कर के पास, जाकर यों बोले।। २।।

ब्रह्मा०— "वत्स! ते जननीयं हि जगद्वन्द्या सुरेश्वरी।
पिता तेऽयं महादेवो जगद्वन्द्यः शुभप्रदः॥ ३॥
एतयोस्तनयस्त्वं तु पितरौ ते नमस्कुरु॥ ४॥
स्थित्वात्र सकलं विश्वं पालयस्व महामते!"॥ ५॥

ब्रह्मा— "हे वत्स! यह सुरेश्वरी जगन्माता भगवती पार्वती तुम्हारी माता हैं, तथा जगत्पूज्य, सभी के कल्याणदाता शिव तुम्हारे पिता हैं। इन दोनों के तुम पुत्र हो, ये दोनों तुम्हारे माता-पिता हैं। इन्हें तुम प्रणाम करो। हे महामति इन्हीं के पास रहकर अब जगत् का संरक्षण करो"।। ३-५।।

भगवान् शङ्कर द्वारा महोत्सव का आयोजन

श्रीमहादेव०— इति ब्रह्ममुखाच्छ्रुत्वा पार्वतीपरमेश्वरौ।
विभाव्य चेतसा पुत्रं जज्ञाते मुनिसत्तम॥ ६॥

श्रीमहादेव जी बोले— हे मुनिश्रेष्ठ! तब वे दोनों शङ्कर-पार्वती ब्रह्माजी के मुख से इस प्रकार सुनकर उस कार्त्तिकेय को अपने मन से अपना पुत्र मान बैठे।। ६।।

ततो नमन्तं पुत्रं तु पार्वती प्रीतिसंयुता।
कृत्वाङ्के परमानन्दयुता देवी बभूव ह॥ ७॥

तब उन्हें प्रणाम करते हुए अपने पुत्र को देखकर भगवती पार्वती बहुत ही हर्षविभोर हो गयीं उन्होंने ने परम आह्लादपूर्वक उसे अपनी गोद में ले लिया।। ७।।

महेशोऽपि सुतं प्राप्य हर्षनिर्भरमानसः।
प्रकरोत् सुमहोत्साहं सर्वानाहूय दैवतान्॥ ८॥

उधर भगवान् शङ्कर भी अपने पुत्र को पाकर बहुत ही हर्षित हुए। इसी हर्षदायक शुभ अवसर पर उन्होंने एक महोत्सव का आयोजन किया। और उसमें सभी देवताओं को बुलाया।। ८।।

तत्रागतस्तु भगवान् विष्णुर्नारायणोऽव्ययः।
ददर्श कार्त्तिकेयं तु दिव्याङ्गं चारुविग्रहम्॥ ९॥

वहाँ आये अविनाशी नारायणरूप भगवान् विष्णु ने जब उस दिव्य अङ्गों से विभूषित सुन्दर शरीर वाले पार्वतीपुत्र कार्त्तिकेय को देखा।। ९।।

भगवान् विष्णु की पार्वतीपुत्र बनने की इच्छा

देव्या वीक्षितसर्वाङ्गं परमस्नेहभावतः।
"देव्या अङ्कं समारुह्य मोदते बहुभाग्यतः॥ १०॥

उन्होंने भगवती पार्वती के सभी अङ्गों को स्नेहभाव से देखा, साथ ही कार्त्तिकेय को उनकी गोद में बैठकर सुख मानते हुए देखकर यह भी सोचा कि "देवी की गोद में बैठना बहुत सौभाग्य से ही मिलता है।। १०।।

तथाहमपि चैतस्याः पुत्रतां प्राप्य वै ध्रुवम्।
अङ्कमारुह्य प्राश्नामि स्तन्यं परमभावतः"॥ ११॥

क्या मैं भी कभी इनका पुत्र बनकर कार्त्तिकेय की तरह ही इनकी गोद में बैठकर इनके स्तन्य का पान इसी वत्सभाव से कर पाऊँगा!"।। ११।।

एवं विचिन्त्य भगवान् विष्णुः परमपूरुषः।
आध्यायन् चेतसा देवीं प्रणिपत्य ययौ यदा॥ १२॥

ऐसा विचारते हुए परम पुरुष भगवान् विष्णु, मन से उस देवी के मातृभाव का चिन्तन करते हुए, उन्हें प्रणाम कर, वहाँ से प्रत्यावर्तन का मन बनाने लगे।। १२।।

तदा तस्याभिलाषं तु विज्ञाय परमेश्वरी।
तस्मै ददौ वरं विष्णो मत्पुत्रस्त्वं भविष्यसि॥ १३॥

तभी भगवती पार्वती ने, भगवान् विष्णु के मन के चिन्तन पर ध्यान

देते हुए, उन्हें वर दिया कि "हे विष्णु आप को भी कभी मेरे यहाँ पुत्रभाव प्राप्त होगा"।। १३।।

ततोऽन्येऽपि ययुः सर्वे स्वं स्वं स्थानं सुरोत्तमाः।
प्रणिपत्य महादेवीं देवदेवं च नारद!॥ १४॥

हे नारद! इसके बाद अन्य विशिष्ट देवता भी, भगवती पार्वती तथा भगवान् शङ्कर को प्रणाम कर अपने अपने आवास पर लौट गये।। १४।।

इत्युक्तं कार्त्तिकेयोऽसौ तारकं देवकण्टकम्।
गदया पातयामास समरे भीमविक्रमम्॥ १५॥
यथा परिचयश्चाभूत्पितृभ्यां सह तस्य च॥ १६॥

तो अब तक मैंने तुमको इतिहास का वह अंश सुनाया जिसमें कार्त्तिकेय ने देवताओं के लिये बाधा बने महाबली तारकासुर का वध किया, तथा उस कार्त्तिकेय का अपने माता–पिता से जिस तरह परिचय हुआ था।। १५–१६।।

गणेश का इतिहास

इदानीं शृणु विष्णुः स यथा जातो गणेश्वरः।
भवानीतनयो देवः पूज्यः करिवराननः॥ १७॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे कार्त्तिकेयकैलासगमनं नाम
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

अब तुम वह सब सुनो जिसमें भगवान् विष्णु गणेश के रूप में शङ्कर–पार्वती के पुत्र बने, कैसे उन्हें हाथी का मस्तक लगा!।। १७।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
कार्त्तिकेय का कैलासगमन-वर्णनात्मक
चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त।।

पैंतीसवाँ अध्याय

[गणपतिजन्म-कथावर्णन]

शङ्कर–पार्वती का वनविहार

श्रीमहादेव०— **अथैकदा विहारार्थं भवान्या सहितो भवः।**
जगाम धरणीपृष्ठं पुत्रं संस्थाप्य मन्दिरे॥ १॥

श्री महादेव जी बोले— एक समय अपने पुत्र को अपने आवास में रखकर, भगवान् शङ्कर पार्वती देवी के साथ पृथ्वी के किसी एकान्त स्थल पर गये।। १।।

ततः प्राप्य परं रम्यं काननं धरणीतले।
निर्माय नगरीं रम्यां तत्रोवास सहोमया॥ २॥

उस भूमिस्थल पर उन्होंने एक मनोरम वनप्रदेश देखा। वहाँ वे अपना आवास बनाकर पार्वती देवी के साथ रहने लगे।। २।।

तत्रैकदा महादेवो देवीं संस्थाप्य मन्दिरे।
आहर्तुं वन्यपुष्पाणि प्रययौ प्रमथैः सह॥ ३॥

वहाँ एक बार, भगवान् शङ्कर पार्वती देवी को आवास में ही छोड़कर,कुछ प्रमथों के साथ वन में पुष्प तोड़ने के लिये गये।। ३।।

ततः प्राप्य च पुष्पाणि सुबहूनि महेश्वरः।
चक्रे कालविलम्बं तु कानने बहुरम्यके॥ ४॥

वहाँ भगवान् ने बहुत से पुष्प एकत्रकर, उस रमणीय वन प्रदेश की छटा देखनें में कुछ समय बिताया।। ४।।

एतस्मिन्नन्तरे गौरी गात्रं लिप्त्वा हरिद्रया।
स्नानप्रयाण उद्युक्ता बभूव मुनिपुङ्गव!॥ ५॥

हे मुनिश्रेष्ठ इसी बीच, भगवती पार्वती ने अपने शरीर पर हरिद्रा का लेपन कर स्नान करने की इच्छा की।। ५।।

तदा हि साभिरक्षार्थं मन्दिरस्य महेश्वरी।
चिन्तयामास विश्वेषामपि रक्षणकारिणी॥ ६॥

उस समय उस जगद्रक्षिका ने अपने उस आवास की रक्षाहेतु विचार किया।। ६।।

तत्र विष्णोश्च संस्मृत्य प्रार्थितं निजगात्रतः।
हरिद्रालेपमानीय पुत्रमेकं ससर्ज च॥ ७॥

उन्हें भगवान् विष्णु द्वारा उनका पुत्र बनने की इच्छा स्मरण हो आयी। अतः उन्होंने अपने शरीर से हरिद्रा का लेप उतारकर उसकी एक पुत्राकृति बनायी।। ७।।

लम्बोदरं महाबाहुं चारुवक्त्रं मनोहरम्।
त्रिनेत्रं रक्तवर्णं च मध्याह्नार्कसमप्रभम्॥ ८॥

उस पुत्र की आकृति में उसका लम्बा पेट था, लम्बी भुजाएँ थीं। सुन्दर मुख था, तीन मनोहर नेत्र थे, लालवर्ण था और मध्याह्न के सूर्य के तुल्य उसकी प्रभा थी।। ८।।

नारायणं च तं देवं पुत्रं सर्वगणेश्वरम्।
ततस्तस्मै भगवती स्तन्यं दत्वा शुचिस्मिता॥ ९॥
उवाच वचनं— "पुत्र! रक्षस्वैनां पुरीं मम।
त्वं यावदागमिष्यामि स्नात्वा भूयः पुरीमिमाम्"॥ १०॥

उसने भगवान् विष्णु को उस आकृति में गणेश्वर का नया रूप देकर अपना पुत्र माना और मुस्कराते हुए उसे स्तन्यपान कराया। तथा उसको आदेश दिया कि "पुत्र! अब से तुम मेरी इस पुरी के रक्षक रहोगे जब तक कि मैं स्नान करके पुनः न लौट आऊँ"।। ९–१०।।

इत्युक्त्वा तं सुतं देवी स्नातुमभ्याययौ द्रुतम्।
स्थितस्तु बालकस्तत्र पुरद्वारं प्रपालयन्॥ ११॥

अपने उस पुत्र को यह कहकर वह पार्वती देवी शीघ्र ही (सखियों के साथ) स्नानहेतु चली गयीं। उधर वह बालक उस आवास की द्वाररक्षा में तत्पर हो गया।। ११।।

एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि देवदेवो वनान्तरात्।
आयातस्तत्पुरद्वारं तं च बालो ददर्श ह॥ १२॥

इसी बीच, भगवान् शङ्कर वन से अपने आवास पर पुनः लौट आये तथा वहाँ द्वार पर एक बालक को खड़े देखा।। १२।।

ततस्तं वारयामास देवदेवमुमासुतः।
पुरःप्रवेशकाले तु शूलमुद्यम्य वेगतः॥ १३॥

तब उस पार्वतीपुत्र ने देवाधिदेव भगवान् शङ्कर को आवास में जाने

से रोका। भगवान् द्वारा आग्रह करने पर वह बालक उन पर शूल तान कर खड़ा हो गया।। १३।।

तं दृष्ट्वा शूलिनं शूलपाणिर्नेत्रैरपश्यत।
चिक्षेप सहसा शूलमविजानन्नुमासुतम्॥ १४॥

उस बालक को शूल ताने हुए देखकर, भगवान् शूलपाणि शङ्कर ने भी क्रुद्ध नेत्रों से देखते हुए उसको पार्वतीपुत्र न जानते हुए उस पर अपना शूल फैंका।। १४।।

सुघोरं तं महाशूलं निक्षिप्तं शूलपाणिना।
सहसा भस्मसाच्चक्रे शिरस्तस्य सुतस्य वै॥ १५॥

शूलपाणि शङ्कर द्वारा फैंके गये उस भयङ्कर तीक्ष्ण शूल ने अचानक उस बालक का शिर भस्मसात् कर दिया।। १५।।

विशीर्षः पार्वतीसूनुर्न च प्राणान्मुमोच ह।
न वा शूलं महेशस्य तत्प्राणान् जगृहे तदा॥ १६॥

वह पार्वतीपुत्र शिरोविहीन होकर भी प्राणरहित नहीं हुआ। न भगवान् शङ्कर का शूल ही उसके प्राणों को हर पाया।। १६।।

एतस्मिन्नेव काले तु स्नात्वा सर्वसखीवृता।
आयाता गिरिराजस्य सुतापि त्रिदशेश्वरी॥ १७॥

इसी समय वह जगदीश्वरी पार्वती देवी अपनी सखियों के साथ स्नान करके वापस लौट आयी।। १७।।

सा दृष्ट्वा च सुतं द्वारि विशीर्षं पतितं भुवि।
पप्रच्छ देवदेवेशं सन्त्रस्ता मुनिसत्तम॥ १८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उसने जब वहाँ द्वार पर अपने पुत्र को शिरोविहीन पृथ्वी पर गिरा देखा तो उसने भयभीत होकर देवाधिदेव से पूछा।। १८।।

देवी०— **''किमेतत्त्रिदशश्रेष्ठ! बालकस्य तु मे शिरः।**
केन भस्मीकृतं ब्रूहि पुरद्वारस्थितस्य वै''॥ १९॥

देवी— हे देवाधिदेव! यह क्या हुआ? द्वाररक्षक मेरे इस पुत्र का शिर किसने भस्म कर दिया?।। १९।।

शिव०— **''नाहं जाने तव सुतमेनं पर्वतनन्दिनि!**
वर्त्मावरोधकं ज्ञात्वा भस्म्यकार्षं शिरोऽस्य वै''॥ २०॥

भगवान् शङ्कर— हे पार्वति! मैं नहीं जानता था कि यह तुम्हारा पुत्र

है? मुझे यह इस आवास में प्रविष्ट नहीं होने दे रहा था। अतः मैंने ही क्रुद्ध होकर इसको शिरोविहीन कर दिया''।। २०।।

श्रीमहादेव०— ततः प्राह महादेवं पार्वती क्रोधसंयुता।
''शिरो मे देहि पुत्रस्य मा चिरं कुरु तत्र वै''॥ २१॥

श्रीमहादेव जी बोले— तब भगवती पार्वती ने क्रुद्ध होकर भगवान् शङ्कर से कहा— ''आप मेरे पुत्र का शिर लगाइये। उसमें कुछ भी विलम्ब मैं सहन नहीं कर सकती!''।। २१।।

तच्छ्रुत्वा भगवांस्तत्र सहसा प्रययौ मुने!
शिरोऽन्वेष्टुं महादेवो दातुं पुत्रस्य चात्मनः॥ २२॥

हे मुने! पार्वतीजी के ये वचन सुनकर भगवान् शङ्कर अपने पुत्र को नया शिर देने के लिये तत्काल उसे खोजने के लिये निकले।। २२।।

ततोऽरण्ये समालोक्य गजराजं महाबलम्।
उदक्शिरसमेकत्र शयानं स महेश्वरः॥ २३॥

वन में जाते हुए महाबली भगवान् शङ्कर ने एक स्थान पर जल में शिर ऊपर निकाले किसी हाथी को सोते हुए देखा।। २३।।

तच्छिरश्छेदने पापरहितत्वात्तदच्छिनत्।
तत्र तच्छिर आनीय पुत्राय प्रददौ हरः॥ २४॥

'हाथी का शिर काटने से पाप का भागी नहीं होना पड़ता'— यह जानकर उन्होंने उसका शिर काट लिया। और उसे लाकर अपने पुत्र के शरीर पर लगा दिया।। २४।।

''गजाननो भवत्वेष देवीपुत्रो गणाधिपः''।
देवदेवोऽपि तं ज्ञात्वा जातं नारायणं मुने॥ २५॥

और कहा— ''यह देवीपुत्र आज से गजानन कहलायेगा तथा यह देवताओं में गणाधिप रहेगा।'' हे मुने! तब तक भगवान् शङ्कर भी यह जान गये थे कि हमारा यह पुत्र नारायण (विष्णु) का अवतार है।। २५।।

स्नेहं प्रकटयामास क्रोडे कृत्वा गजाननम्।
तदेवं तमुवाचेदं पुत्रं नारायणं हरः॥ २६॥
प्रीणयन् प्रियवाक्येन सापराध इव प्रभुः॥ २७॥

तब भगवान् शङ्कर ने अपने पुत्र उस गजानन को गोद में लेकर स्नेह प्रकट किया। तथा अपने को अपराधी मानते हुए नारायण के अवतार अपने उस पुत्र से स्नेह भरे वचनों से यह कहा— ।। २६–२७।।

श्रीशिव०— ''अज्ञात्वा ते शिरश्छिन्नं शूलेनानेन यन्मया।
तेनाहं सापराधोऽस्मि सत्यं सत्यं जनार्दन!॥ २८॥

भगवान् शङ्कर— ''हे जनार्दन! (नारायण!) मैंने अपने शूल से, अनजाने में, आपका शिर काट दिया, इसके लिये मैं स्वयं को आपका अपराधी मानता हूँ।। २८।।

द्वापरस्य तु शेषे त्वं वसुदेवगृहे यदा।
सम्भविष्यसि देवक्यां मूर्त्यन्तरमुपास्थितः॥ २९॥

(परन्तु) द्वापर युग के अन्त में, जब आप वसुदेव के घर में देवकी के गर्भ में दूसरे आकार में अवतार लेंगे।। २९।।

तदा त्वया समं तात! पुरे शोणितसंज्ञके।
संग्रामः सुमहानेव भविष्यति सुनिश्चितम्॥ ३०॥

हे तात! उस समय शोणितपुर में आपका मेरे साथ भयङ्कर युद्ध होगा— यह निश्चित है।। ३०।।

तत्राहं सर्वलोकस्य पश्यतस्तद्रणाजिरे।
सशूलस्तम्भितोऽवश्यं भविष्यामि त्वयैव हि''॥ ३१॥

उस समय, उस युद्ध में मैं तुम्हारे द्वारा, सभी लोगों के देखते देखते शूल सहित स्तब्ध कर दिया जाऊँगा (—यह इस अपराध का प्रतिशोध होगा''।) ।। ३१।।

श्रीमहादेव०— ततः स देवः पार्वत्या संस्थितस्तत्र कानने।
विहृत्य कतिचिन्मासान् भूयस्तत्पुरमभ्यगात्॥ ३२॥

श्रीमहादेव जी बोले— तब वे भगवान् शङ्कर पार्वती देवी के साथ कुछ समय तक उस वन में रहकर विहार करते हुए कुछ मास पश्चात् पुनः उसी स्थान पर आ गये।। ३२।।

यत्रासौ संस्थितौ ज्येष्ठः पुत्रस्तारकसूदनः।
तत्र ताभ्यां कुमाराभ्यां नित्यं संप्रीतमानसः॥ ३३॥

जहाँ उनका ज्येष्ठ पुत्र तारकसूदन षडानन वास करता था। वहाँ अपने उन दोनों पुत्रों के साथ स्नेहपूर्वक रहते हुए।। ३३।।

उवास देवदेवेन सार्धं ब्रह्ममयी शिवा।
गत्वा कदाचित्कैलासं कदा वाराणसीं पुरीम्॥ ३४॥

भगवान् शङ्कर के साथ कुछ दिन ब्रह्म स्वरूपा पार्वती ने कैलासपर्वत पर रहीं। वहाँ से वे वाराणसी पुरी निवास किया।। ३४।।

अन्यत्र कुत्रचिद्वापि संविहृत्य यथेप्सितम्।
भूयस्तस्मिन् समागत्य वासं चक्रे यथेप्सितम्॥ ३५॥

या फिर अन्यत्र कहीं जाना था तो वहाँ की भी यात्रा विहार कर पुनः इस स्थान पर आकर यथेच्छ रूप से रहने लगीं।। ३५।।

सार्धं श्रीदेवदेवेन सुताभ्यां प्रमथैरपि।
ततस्तस्माच्च कैलासे वासं चक्रे तु सर्वदा॥ ३६॥
प्रीत्या परमया युक्ता क्वचित्तस्मिन्नगोत्तमे॥ ३७॥

उन भगवान् शङ्कर ने यों अपने दोनों पुत्रों तथा अनुचरों के साथ तब वहाँ से स्नेहपूर्वक रहने के लिये श्रेष्ठ कैलास पर्वत को ही अपना स्थायी आवास बनाया।। ३६–३७।।

इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टं मुनिसत्तम।
प्रकृतिः पूर्वभावेन यथोद्वाहादिमङ्गलम्॥ ३८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जो कुछ भी आपने भगवती प्रकृति के विषय में उनके विवाहादि के सम्बन्ध में पूछा था, वह सब मैंने आपको विस्तारपूर्वक बता दिया।। ३८।।

देवीचरितपारायण का माहात्म्य

य इदं प्रपठेद्भक्त्या देव्याश्चरितमुत्तमम्।
तस्य प्रसन्ना शर्वाणी ब्रह्माद्यैरपि दुर्लभा॥ ३९॥

जो इस उत्तम देवी चरित्र का भक्तिपूर्वक पारायण करता है, उस पर वह भगवती, जो कि ब्रह्मा आदि के द्वारा भी दुर्लभ है, अतीव प्रसन्न हो जाती हैं।। ३९।।

कुरुते च मनोऽभीष्टं परिपूर्णं न संशयः।
नश्यन्ति रिपवस्तस्य अपि सङ्ख्ये सुदुर्जयाः॥ ४०॥

उसका वह सभी कुछ मनोवाञ्छित पूर्ण करती हैं— इसमें कोई सन्देह नहीं। युद्ध में उसके असङ्ख्य शत्रु भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं।। ४०।।

देवी की वार्षिकी पूजा

अकाले वार्षिकीं पूजां यां चकार रघूद्वहः।
रावणस्य वधार्थाय भक्त्या परमया युतः॥ ४१॥

भगवान् रामचन्द्र ने रावणवध हेतु परम भक्तिपूर्वक देवी की असमय में जो वार्षिकी पूजा की थी।। ४१।।

तत्र कृष्णनवम्यां तु समारभ्य दिने दिने।
यावन्महानवम्येतत्पठँस्तावद्दिने दिने॥ ४२॥

वहाँ कृष्णपक्ष की नवमी से इस चरित का पारायण प्रारम्भ कर महानवमी तक प्रतिदिन पाठ करे।। ४२।।

असाध्यं साधयेच्चैव नरो देव्याः प्रसादतः।
यथैव निहतः शत्रुः संग्रामे देवदुर्जयः॥ ४३॥
श्रीरामेण महाबाहू रावणो राक्षसेश्वरः।
तथैव पातयेच्छत्रून् सत्यं सत्यं न संशयः॥ ४४॥

इस पाठ के फलस्वरूप देवी की कृपा से साधक के असाध्य कर्म की भी पूर्ति हो जाती है। उसके देवताओं से भी कठिनाई से जीतने योग्य शत्रु भी संग्राम में परास्त हो जाते हैं। जैसे राम के द्वारा महाबाहु राक्षसेश्वर रावण पराजित हो गया था। यह मैं तुम्हें पूर्णतः सत्य बता रहा हूँ। इसमें कोई सन्देह न करें।। ४३–४४।।

अश्वमेधफलं प्राप्य मोदते च चिरं दिवि।
शृणुयाद्य इदं भक्त्या देवीमाहात्म्यमुत्तमम्॥ ४५॥

वह साधक इस देवीचरित के भक्तिपूर्वक श्रवण से अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त करता है तथा चिरकाल तक स्वर्ग में सुखोपभोग करता है।। ४५।।

तस्य पुण्ययशोवृद्धिर्जायते मुनिसत्तम!
न च व्याघ्रादयः सर्वे हिंसका अपि जन्तवः॥ ४६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस साधक के पुण्य एवं यश की वृद्धि होती है। व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु भी उसका कोई अहित नहीं कर पाते।। ४६।।

तं पश्यन्ति भयाच्चापि पलायन्ते सुदूरतः।
पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तः सुखं भुक्त्वा चिरं भुवि॥ ४७॥

वे सब उससे भय मानते हुए दूर ही नहीं रहते, अपितु वहाँ से भाग भी जाते हैं। वह इस भूलोक में पुत्र–पौत्रादि के साथ सुख भोगता है।। ४७।।

अन्ते देव्याः पदं प्राप्य रमते मुनिसत्तम!
बहुना किमिहोक्तेन सत्यं सत्यं मुनीश्वर॥ ४८॥

तथा हे मुनिश्रेष्ठ! वह मरणोत्तर देवी के चरणों में आश्रय प्राप्त कर लेता है। हे मुनीश्वर! हम इस विषय में अधिक क्या कहें। यह सत्य से भी सत्य है।। ४८।।

श्रृण्वतां पठतामेतत्प्रसन्ना स्यान्महेश्वरी।
तस्यां तु सुप्रसन्नायां यत्फलं जायते मुने॥ ४९॥
तद्वक्तुं न समर्थोऽस्मि कल्पकोटिशतैरपि।
न प्रकाश्यमिदं वत्स तत्त्वं देव्यास्तु यन्महत्॥ ५०॥

इस देवीचरित का श्रवण एवं पठन करने वाले साधक पर वह देवी भगवती अत्यधिक प्रसन्न हो जाती है। हे मुने! उनके प्रसन्न होने पर जो फल मिलता है उसका वर्णन सैकड़ों करोड़ कल्पों तक नहीं किया जा सकता। परन्तु हे वत्स! इस महान् देवीतत्त्व को सभी जनों से पूर्णतः गुप्त ही रखना चाहिये।। ४९–५०।।

यस्मै कस्मै न दातव्यं दातव्यं भक्तिशालिने।
त्वं देव्याः परमो भक्तः शुद्धज्ञानी दृढव्रतः॥ ५१॥

चाहे जिसको इसे नहीं सुनाना चाहिये। केवल देवी के प्रति भक्ति रखने वाले को यह सुनाना चाहिये। आप तो देवी के उत्कृष्ट भक्त हैं। शुद्ध ज्ञानी हैं तथा व्रतादि के पालन में भी दृढ़ हैं।। ५१।।

इत्यस्मात् कथितं तुभ्यं न प्रकाश्यं त्वया पुनः।
न तुभ्यं विद्यते किञ्चिदप्रकाश्यं कदाचन॥ ५२॥
किमिच्छस्यपरं श्रोतुं वद तच्च वदामि तत्॥ ५३॥

इसलिए आप को यह सब विस्तार से बता दिया है। आप इसे किसी अन्य को न बतावें। तुम्हारे लिये तो कोई कभी गोपनीय बात नहीं है। अब तुम मुझसे और क्या सुनना चाहते हो? उसे भी मैं तुम्हें बता दूँगा।। ५२–५३।।

व्यास०— इत्येवं त्रिदशेश्वरस्य वचनं
श्रुत्वा मुनीन्द्रस्ततो
नत्वा तं त्रिदशेन्द्रवन्दितपदं
पञ्चाननं भक्तितः।
भूयोऽपि त्रिदशोत्तमासुचरितं
संश्रोतुकामस्तदा
पप्रच्छेदमपूर्वमुत्तममति
र्देव्या महत्पूजनम्॥ ५४॥

भगवान् व्यास— इस प्रकार महादेवजी के ये वचन सुनकर मुनिवर नारद उन देवपूजित पञ्चमुख महादेवजी से भक्तिपूर्वक आगे भी भगवती का

शोभन चरित्र सुनने की इच्छा से उस महामति ने देवी के उस अपूर्व महापूजन के विषय में जानने की इच्छा प्रकट की।। ५४।।

नारद का देवी की महापूजा के विषय में प्रश्न

यत्कृत्वा रघुनन्दनः समवधीद्
रक्षोऽधिपं रावणं,
देवानां च गणार्दकं सहसुतं
सामात्यवर्गं रणे।
यत्कृत्वा भुवि मानवाः सुरपुरे
देवा महेन्द्रादयो,
ब्रह्माद्यास्त्रिदशाश्च तद्धि परमं
प्रापुर्मनोवाञ्छितम् ॥ ५५ ॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे गणपतिजन्मकथावर्णनं नाम
पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

जिस महापूजन को पूर्ण कर, भगवान् रामचन्द्र ने देवताओं के शत्रु राक्षसराज रावण को उसके पुत्रों तथा मन्त्रियों सहित युद्ध में मार गिराया था, तथा जिस पूजन– क्रिया के परिणामस्वरूप भूलोक के साधारण प्राणी भी स्वर्ग में जाकर इन्द्रादि देवताओं के रूप में अनन्त सुख का उपभोग करते हैं। अथवा जिस पूजन के द्वारा ब्रह्मा आदि देवों ने भी अपना मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लिया है, कृपया मुझे उसकी विधि विस्तार से बताने का कष्ट करें।। ५५।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
गणपतिजन्म-कथावर्णनात्मक
पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥

छत्तीसवाँ अध्याय

[वार्षिकी शारदीय महापूजा]

नारद०— ''शारदीया महापूजा या देव्याः प्रीतिदायिका।
वार्षिकीति त्वया प्रोक्ता यां चकार रघूत्तमः॥ १॥
रावणस्य वधार्थाय भक्त्या परमया युतः।
तां ब्रूहि मे महादेव विस्तरेण जगत्प्रभो॥ २॥

नारद— "हे महादेव! वह जो शारदीया वार्षिकी देवीपूजा है, जो कि भगवती को अत्यधिक प्रिय बतायी गयी है; जिसे कि भगवान् रामचन्द्र ने रावण के वधहेतु उत्कृष्ट भक्ति से युक्त होकर सम्पन्न किया था, उसे हे जगत्प्रभो! मुझे विस्तार से कहिये।। १–२।।

यथा स भगवान् विष्णुः सम्भूय मनुजाकृतिः।
पूजयामास विश्वेशीमकालेऽपि महामते॥ ३॥

हे महामते! जैसा कि भगवान् विष्णु ने मनुष्यावतार (रामअवतार) लेकर, उस विश्वेश्वरी देवी का अकाल में भी पूजन किया था।। ३।।

त्वत्तः कश्चिन्न विद्येत वक्ता लोकत्रये प्रभो!
पवित्रं कुरु मां देव दासं ते शरणागतम्''॥ ४॥

हे प्रभो! उसके विषय में बताने वाला तीनों लोकों में आप से बढ़कर कोई नहीं है, अतः उसे बता कर हे देव! मुझ शरणागत दास को पवित्र कीजिये।। ४।।

श्रीमहादेव—देवीं त्रैलोक्यजननीं सम्प्रार्थ्यं दशकन्धरः।
तस्याः प्रसादात् त्रैलोक्यविजयी समभूत्पुरा॥ ५॥

श्रीमहादेव— प्राचीन काल में कभी, दशग्रीव रावण जगन्माता भगवती देवी की बहुत समय तक पूजा अर्चना कर उसकी कृपा से जगद्विजयी बन बैठा था।। ५।।

तस्य भावेन सन्तुष्टा शर्वाणी भक्तवत्सला।
उवास नगरे तस्य रावणस्य महात्मनः॥ ६॥

उसके भक्तिभाव से सन्तुष्ट होकर भक्तों पर पुत्रवत् स्नेह रखने वाली भगवती देवी उस महात्मा रावण के नगर में रही थीं।। ६।।

संस्थिता तपसः पुण्यं न यावत् क्षीणतामगात्।
नित्यं विजयदा भूत्वा सहिता योगिनीगणैः॥ ७॥

और वह वहाँ तब तक रही, जब तक उस रावण का पुण्य क्षीण नहीं हो गया। उसने अपने योगिनीसमूह के साथ वहाँ रहकर उस रावण को तब तक नित्य विजय दिलायी।। ७।।

क्षीणे तु तपसः पुण्ये जगत्पीडनकारणात्।
त्यक्त्वा तस्य पुरीं देवी चण्डिका चण्डविक्रमा॥ ८॥

परन्तु समय आने पर उसके द्वारा जगत् के प्राणियों को अत्यधिक पीड़ा देने के कारण जब उसका पुण्य क्षीण हो गया, वह भयङ्कर पराक्रमशालिनी चण्डिका देवी उस रावण की नगरी को छोड़कर चली गयी।। ८।।

पूजिता रामचन्द्रेण तं जघान सबान्धवम्।
कैलासमगमद्देवी परिवारगणान्विता॥ ९॥

फिर रामचन्द्र द्वारा पूजा प्राप्त कर बन्धु–बान्धव सहित उस रावण का संहार कर वह देवी अपने परिवार (योगिनीगण) के साथ पुनः अपने वासस्थान कैलास में लौट आयीं।। ९।।

रावण के कुकृत्य

स रावणः पुरा दर्पाद्विजित्येन्द्रादिदेवताः।
विष्णुं च जगतां नाथं त्रिलोकं बाधते स वै॥ १०॥

पहले वह रावण इन्द्रादि देवताओं को जीतकर जगत् के स्वामी विष्णु को भी (अपने कृत्यों से) व्याकुल करने लगा।। १०।।

न हविर्बुभुजुर्देवास्तद्भयान्मुनिपुङ्गव!
न यज्ञं मुनयश्चक्रुर्न तपो देवपूजनम्॥ ११॥
भयाद्राक्षसराजस्य रावणस्य दुरात्मनः॥ १२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस दुरात्मा राक्षस राज रावण के भय से देवगण यज्ञ में अपना हविर्भाग छोड़ बैठे। ऋषि–मुनियों ने भी यज्ञ करना छोड़ दिया। न वे तप कर पाते थे, न देव पूजन।। ११–१२।।

भयादिन्द्रः प्रतिदिनं गृहीत्वोपायनानि च।
तत्कृतानुग्रहापेक्षी संस्थितः सम्मुखं मुने!॥ १३॥

हे मुने! इतना ही नहीं, व्यवहार के विपरीत इन्द्र उससे भयभीत होकर उसके लिये उसकी मनचाही भेंट लाते थे। और उसकी प्रसन्नताप्राप्ति के लिये दिनरात उसका मुख देखते रहते थे।। १३।।

तथान्ये ये च दिक्पालाश्चन्द्रसूर्यादयः सुराः।
ते सर्वे तेन दुष्टेन कृताश्चाज्ञानुसारिणः॥ १४॥

तथा अन्य दिक्पालों एवं चन्द्र-सूर्य आदि देवों को उस दुष्ट राक्षस ने अपने आज्ञाकारी तथा वशवर्ती बना लिया था।। १४।।

ततस्तेनार्दिता देवाः पृथिव्या सहिता मुने!
ब्रह्मणोऽन्तिकमासाद्य प्रोचुः प्राञ्जलयः सुराः॥ १५॥

हे मुने! तब पृथ्वी सहित सभी देवता उस दुष्ट से इस तरह पीड़ित होकर ब्रह्माजी के पास जाकर उनके सम्मुख हाथ जोड़कर, यों बोले-।। १५।।

"प्रभो विधे जगन्नाथ पौलस्त्यतनयो महान्।
रावणो बलदर्पाच्च त्रिलोकीं बाधते स्वयम्॥ १६॥

हे प्रभो! हे जगत् के स्वामिन्! ब्रह्मदेव! यह पौलस्त्य का बड़ा पुत्र रावण अपने बल एवं दर्प से समस्त त्रिलोकी को पीड़ित कर रहा है।। १६।।

तस्य भारासहा पृथ्वी तवान्तिकमुपागता।
वधोपायं चिन्तयस्व तस्य देव दुरात्मनः"॥ १७॥

उस दुष्ट के द्वारा दी गयी पीड़ा के भार को न सह सकने के कारण यह पृथ्वी अब आपकी सेवा में आयी है। हे देव! उस दुरात्मा के वध का कोई उपाय सोचिये"।। १७।।

इत्युक्तस्त्रिदशैर्ब्रह्मा समाश्वास्य वसुन्धराम्।
वैकुण्ठं समुपागम्य वैकुण्ठेशमुवाच ह॥ १८॥

देवताओं द्वारा यों कहे जाने के बाद, ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को आश्वासन देते हुए वैकुण्ठपुरी जाकर वे (ब्रह्मा जी) भगवान् विष्णु जी से यों बोले-।। १८।।

"प्रभो त्रिजगतां नाथ विश्वपालनतत्पर!
लङ्कायामतिदुर्धर्षो जायते दशकन्धरः॥ १९॥

"हे प्रभो! हे त्रिलोकीनाथ! हे विश्वपालनतत्पर! आजकल लङ्कापुरी में यह दशग्रीव रावण अतिदुर्धर्ष (असह्य) रूप में पैदा हो गया है।। १९।।

तं हन्तुं मानुषं देहं समाश्रय जगत्पते!॥ २०॥

हे जगत्पते! उसके वध हेतु आप मनुष्य रूप में मर्त्यलोक में अवतार ग्रहण करें।। २०।।

अथ त्वं मानुषो भूत्वा रावणं देवकण्टकम्।
सपुत्रबान्धवं दुष्टं जहि त्वं विश्वपालक!"॥ २१॥

हे विश्वपालक! आप मनुष्य रूप धारण कर, देवताओं के कण्टकस्वरूप बन्धु–बान्धव सहित इस दुष्ट रावण का वध कीजिये''।। २१।।

इत्युक्तो ब्रह्मणा विष्णुस्तमुवाच महामतिम्।
आश्वास्य त्रिदशान् सर्वान् रावणेन समर्दितान्॥ २२॥

ब्रह्मा के द्वारा भगवान् विष्णु को यों कहे जाने पर विष्णु ने रावण द्वारा सताये गये देवताओं को आश्वस्त करते हुए उन महामति ब्रह्मा जी से यों कहा–।। २२।।

श्रीभगवान्०— **''आश्रित्य मानुषं देहं भूत्वा दाशरथिः स्वयम्।**
पातयिष्यामि तं दुष्टं सपुत्रगणबान्धवम्॥ २३॥

विष्णु— हे ब्रह्मन्! मैं मनुष्य देह धारण कर राजा दशरथ का पुत्र बनकर उस दुष्ट राक्षसराज का उसके बन्धु–बान्धवों सहित वध कर डालूँगा।। २३।।

किन्तु देवाः सहायार्थमृक्षवानररूपिणः।
भवन्तु पृथिवीपृष्ठे भूभारहरणाय तु॥ २४॥

किन्तु पृथ्वी के भारहरण–रूप इस सत्कार्य में वहाँ सहयोग हेतु देवगण भी वहाँ रींछ और वानर के रूप में पहुँचें।। २४।।

अन्यद्वक्ष्यामि ते ब्रह्मन् यदेकमतिदुष्करम्।
तत्रोपायं चिन्तयस्व वधार्थं दुष्टचेतसः॥ २५॥

हे ब्रह्मन्! मैं आपसे एक अन्य अति कठिन बात भी निवेदन करना चाहता हूँ जो कि उस दुष्ट राक्षस के वध हेतु उपाय विचारिये।। २५।।

पूज्यते त्रिजगन्माता देवी कात्यायनी परा।
सद्भक्त्या तेन दुष्टेन रावणेन दुरात्मना॥ २६॥

उस दुष्ट दुरात्मा रावण के द्वारा परा जगन्माता कात्यायनी देवी का नित्य पूजन किया जाता है।। २६।।

सापि कात्यायनी तुष्टा नित्यं तस्य जयप्रदा।
लङ्कायां कुरुते वासं सहिता योगिनीगणैः॥ २७॥

उसकी इस भक्ति के प्रभाव से वह सन्तुष्ट हुई भगवती कात्यायनी उसको नित्य जय प्रदान करती रहती है। और वह अपने योगिनीगण के साथ उस लङ्कापुरी में साक्षात् स्वयं वास करती है।। २७।।

सा सन्त्यजति चेल्लङ्कां सुप्रसन्ना भवेन्मयि।
तदा शक्नोमि तं हन्तुं न चेन्नैवास्म्यहं क्षमः॥ २८॥

मेरे द्वारा उस रावण का वध तभी सम्भव है जब वह देवी मेरे द्वारा की गयी स्तुति–पूजा से प्रसन्न होकर लङ्का का परित्याग कर दे। अन्यथा मुझसे भी यह कार्य असम्भव ही लगता है।। २८।।

तदत्र यद्विधेयं तत्कुरुष्व कमलासन!
न विनानुग्रहं तस्याः शत्रुं जेतुं क्षमो भवेत्॥ २९॥

अतः हे कमलासन! इसका जो भी उपाय हो, उसे सोचिये। तदनुसार कीजिये। सचाई यही है कि उस देवी के अनुग्रह विना इस शत्रु पर विजय प्राप्त नहीं हो सकती।। २९।।

अप्यल्पवीर्यं सुमहान् महाबलपराक्रमः।
सानुकूला जगन्माता यावत्कात्यायनी विधे!॥ ३०॥

भले ही वह व्यक्ति अल्प बल वाला है; परन्तु जब तक हे विधे! यह जगन्माता कात्यायनी देवी उसके अनुकूल है, तब तक उसे महान् बलशाली तथा महापराक्रमशील ही समझना चाहिये।। ३०।।

तावज्जगदिदं सर्वं नाशयेद्यदि रावणः।
तथापि तस्य किं कर्तुं क्षमोऽहं विश्वपालकः''॥ ३१॥

तब तक यदि वह रावण समस्त जगत् को भी नष्ट कर दे तो मेरे जैसा विश्वपालक भी उसकी कोई हानि नहीं कर सकता''।। ३१।।

ब्रह्मा०— **''सत्यमेव जगन्नाथ दुर्गाभक्तिपरायणः।**
नावसीदति दुष्टोऽपि कदाचिदपि भूतले॥ ३२॥

ब्रह्मा— ''हे जगन्नाथ! आप उचित ही कह रहे हैं। दुर्गा देवी की भक्ति करने वाला यदि दुष्ट है तो भी भूमण्डल में कोई उसकी किसी प्रकार की हानि नहीं कर सकता।। ३२।।

तथाप्युपायो भगवन् विद्यते तस्य नाशने।
तस्या एव जगत् सर्वं चराचरमिदं प्रभो॥ ३३॥

इतने पर भी, भगवन्! उसके नाश का कुछ न कुछ उपाय तो होगा ही। हे प्रभो! यह समग्र जगत् उस देवी के अधीन है।। ३३।।

तयैव सृष्टं काले तु तयैव परिपाल्यते।
नाकाले जायते तस्या विनाशेच्छा जगत्पते!॥ ३४॥

जगत्पते! समय पर वही देवी इस समस्त जगत् की सृष्टि करती है, वही इसका पालन करती है, और समय आये विना इसका वह भी नाश नहीं कर पाती।। ३४।।

त्वमहं वा महेशानः सृष्टिस्थितिलयेषु च।
निमित्तमात्रं सैवैका कारणं तेषु वस्तुतः॥ ३५॥

इन उपरिलिखित क्रियाओं की वह देवी ही मूल कारण है। हम तीनों– मैं, तुम और भगवान् शिव तो निमित्तमात्र ही हैं॥ ३५॥

तस्या मूर्त्यन्तराः सर्वे वयं देवा जगत्पते!
अस्मान् विद्विषतो रक्षां शाश्वतीं न करोति सा"॥ ३६॥

परन्तु हे जगत्पते! एक बात यह भी है कि हम सब देवता भी तो उसी देवी की प्रतिमूर्ति हैं। तब यह कैसे हो सकता है कि हमारा विरोध करने वाले की रक्षा वे बहुत समय तक निरन्तर करती रहें"॥ ३६॥

श्रीभगवान्०— "गच्छामि च त्वया सार्धं कैलासशिखरं विधे।
प्रार्थयिष्यामि विश्वेशीं वधार्थं दुष्टचेतसः॥ ३७॥
पौलस्त्यतनयस्यास्य रावणस्य दुरात्मनः"॥ ३८॥

विष्णु– हे विधाता! मैं आपके साथ कैलास शिखर पर चलूँगा। वहाँ मैं उन जगन्माता से इस पौलस्त्यपुत्र दुष्ट चित्त राक्ष्वण के वध हेतु निवेदन करूँगा"॥ ३७–३८॥

श्रीमहादेव०— ततस्तौ जग्मतुः शीघ्रं कैलासं मुनिसत्तम!
यत्रास्ते सा जगद्धात्री शङ्करेण महात्मना॥ ३९॥

श्रीमहादेव– हे मुनिश्रेष्ठ! तब वे दोनों– ब्रह्मा एवं विष्णु, शीघ्र ही कैलास शिखर पर पहुँचे। जहाँ कि वह भगवती देवी भगवान् शङ्कर के साथ विराजमान थीं॥ ३९॥

तौ दृष्ट्वा तु समायातौ ब्रह्मविष्णू महेश्वरः।
अभ्यर्च्यागमने हेतुं पप्रच्छ मुनिसत्तम!॥ ४०॥

हेमुनिवर! भगवान् शङ्कर ने उन ब्रह्मा एवं विष्णु को आया हुआ देखकर उनकी पूजा एवं सम्मान कर उनसे इस समय यहाँ आगमन का कारण पूछा॥ ४०॥

ततस्तावूचतुः शीघ्रं वृत्तान्तं सकलं विभुम्।
चेष्टितं राक्षसेन्द्रस्य चात्मनश्चाभिचेष्टितम्॥ ४१॥

तब उन दोनों ने उनको शीघ्र ही वहाँ अपने आने का कारण बताया। और राक्षसेन्द्र रावण के कृत्य तथा अपनी ओर से किया जाने वाला प्रतीकारचिन्तन भी बताया॥ ४१॥

ततस्ते सहिता देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
उपतस्थुर्महादेवीं पार्वतीं मुनिसत्तम!॥ ४२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तब वे ब्रह्मा, विष्णु एवं महादेव अन्य सब देवताओं के साथ भगवती देवी पार्वती के पास पहुँचे।। ४२।।

दृष्ट्वा तां परमेशानीं सुप्रसन्नमुखाम्बुजाम्।
प्रणेमुस्त्रिदशश्रेष्ठा दण्डवत्पतिता भुवि॥ ४३॥

वहाँ पहुँचकर वे सभी प्रसन्नवदना, परमेश्वरी भगवती के दर्शन कर उन्हें, पृथ्वी पर दण्डवत् लेटकर, प्रणाम करने लगे।। ४३।।

प्रणतान् वीक्ष्य सा देवी ब्रह्मादीन् कृपया क्षणात्।
भूत्वा परा महादेवी रत्नसिंहासनस्थिता॥ ४४॥

उस देवी ने जब उन ब्रह्मा आदि देवताओं को अपने सम्मुख प्रणत (नम्र) देखा तो वह क्षणभर में कृपापूर्वक रत्नसिंहासन पर विराजमान परा प्रकृति महादेवी के रूप में प्रकट हुई।। ४४।।

देवी का रूप

अष्टादशभुजा चारुहारशोभिकुचस्थला।
प्रसन्नवदना चारुचन्द्रार्धकृतशेखरा॥
सुचारुदशना स्मेररुचिरास्या त्रिलोचना॥ ४५॥

उस समय उनकी अठारह भुजाएँ थीं, उनके कुचस्थल सुन्दर सुवर्णहार से शोभित थे। उनकी मुखाकृति प्रसन्नतामयी, तथा उनकी जटा पर मोहक अर्धचन्द्र विराजमान थे। उनकी दन्तपंक्ति भी दर्शनीय थी, उनके मुख पर मधुर मुस्कान दिखायी दे रही थी, उनके तीन नेत्र थे।। ४५।।

भूमेरुत्थाय भगवान् विष्णुस्तां जगदम्बिकाम्॥ ४६॥
प्राञ्जलिः प्राह सद्भक्त्या रोमाञ्चितकलेवरः॥ ४७॥

उस समय उन प्रणत देवताओं में से भगवान् विष्णु भूमि से उठकर सुदृढ़ भक्ति के कारण जिनका समस्त शरीर रोमाञ्चित हो उठा था, जगन्माता भगवती पार्वती से हाथ जोड़कर बोले—।। ४६–४७।।

देवी से विष्णु का निवेदन

श्रीभगवान्०— "मातः पौलस्त्यतनयो रावणो राक्षसाधिपः।
त्वदनुग्रहदर्पेण बाधते सकलं जगत्॥ ४८॥

भगवान् विष्णु— "हे माता! यह पौलस्त्यपुत्र राक्षसराज रावण, आपके अनुग्रह के बल पर, समस्त जगत् को पीड़ित कर रहा है।। ४८।।

तेन देवाः सगन्धर्वा ब्रह्माणं शरणं गताः।
ब्रह्मापि मां वधार्थाय तस्य देवि दुरात्मनः॥ ४९॥
अवोचन्मानुषं देहं पृथिव्यां धारय प्रभो।
मया प्रतिश्रुतं चैव तथैव जगदीश्वरि॥ ५०॥

इस कारण, सभी देवता, गन्धर्वों के साथ, ब्रह्माजी की शरण में पहुँचे। हे देवि! तब ब्रह्माजी ने मुझको, उस दुष्ट राक्षसराज को मारने हेतु, प्रोत्साहित किया। उन्होंने मुझसे कहा– 'हे प्रभो' आप पृथ्वी पर मनुष्यदेह धारण कीजिए इस पृथ्वी की रक्षा में तत्पर होइये।' हे जगदीश्वरि! मैंने उनकी बात 'तथास्तु' कहकर स्वीकार कर ली।। ४९–५०।।

भूत्वा दाशरथिर्भूमौ हनिष्ये तं दुरासदम्।
किन्तु त्वं सेवितानेन प्रत्यहं सुमहात्मना॥ ५१॥

कि मैं राजा दशरथ का पुत्र होकर उस राक्षसराज का वध करूँगा। परन्तु वह राक्षसराज शुद्धचित्त से आप की प्रतिदिन सेवा करता है।। ५१।।

आराधितश्च भगवान् परमात्मा महेश्वरः।
त्वं चापि परमप्रीत्या तस्य रक्षणकारणात्॥ ५२॥
करोषि वसतिं तस्य पुरे त्रिदशवन्दिते।
समरे तु निहन्ता वा कथं त्रिदशकण्टकम्॥ ५३॥

भगवान् शङ्कर की भी उसने परम प्रीतिपूर्वक आराधना की है। और आप भी परम स्नेह से उसकी रक्षा हेतु हे देववन्दिते! आप उसके नगर में ही अपना वास बनाये हुए हैं। तब हम उस देवकण्टक को युद्ध में कैसे पराजित कर सकते हैं?।। ५२–५३।।

यस्य संरक्षणकारी त्वं तथासौ महेश्वरः।
विशेषतस्त्वमेवासि स्वयं लङ्केश्वरी शिवे॥ ५४॥

जिसके संरक्षण में आप तथा आपके पति भगवान् शङ्कर लगे हुए हों। विशेषतः, हे शिवे! आप तो आजकल लङ्केश्वरी कहलाती हैं।। ५४।।

अतस्त्वं रक्षणार्थाय जगतोऽस्य जगन्मयि।
यथा विधेयं तद्ब्रूहि नमस्ते जगदम्बिके''॥ ५५॥

अतः हे जगन्मयि! इस जगत् की रक्षा हेतु जो कुछ भी हमारा कर्तव्य हो उसे आप हमें स्पष्ट बतावें। हे जगन्माता! आप को प्रणाम है''।। ५५।।

श्रीदेवी ०—''पूजिता रावणेनाहं सुचिरं मधुसूदन!

सत्यं वसामि लङ्कायां तस्य रक्षणकारणात् ॥ ५६ ॥

देवी— हे मधुसूदन! रावण ने चिरकाल तक मेरी पूजा-अर्चना की है इसीलिये सचमुच मैं उसकी रक्षा के लिये लङ्का में वास कर रही हूँ।। ५६ ।।

यथा मामर्चयेद्भक्त्या रावणः स महाबलः ।
महेशमपि सद्भक्त्या तथा प्राप्य च सम्पदः ॥ ५७ ॥

जैसे उस महाबलशाली रावण ने मेरी तथा भगवान् शङ्कर की भक्तिपूर्वक पूजा की है, उसके फलस्वरूप उसको संसार की समस्त सम्पत्ति उपभोग के लिये उपलब्ध है।। ५७ ।।

नचावशिष्टं विद्येत तस्य प्राप्यं सुदुर्लभम् ।
मनोरथश्च सम्पूर्णः सम्पूर्णतपसः फलम् ॥ ५८ ॥

आत्मनः स विनाशाय साम्प्रतं बलदर्पितः ।
बाधते सकलं विश्वं चराचरमिदं बलात् ॥ ५९ ॥

संसार में अब ऐसा कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा जो उसे न मिला हो। उसके समस्त मनोरथ सफल हो चुके हैं। तथा उसकी पूर्ण तपस्या का फल भी समाप्त हो चुका है। अब वह अपने विनाश के लिये स्वकीय बल के दर्प में उन्मत्त होकर समस्त चराचर जगत् को हठपूर्वक त्रस्त कर रहा है।। ५८,५९ ।।

अहं हि निधने तस्य साम्प्रतं चिन्तये स्वयम् ।
निमित्तं यदि चाप्नोमि तदाहमपि पातये ॥ ६० ॥

मैं स्वयं उसके नाश के विषय में चिन्तन कर रही हूँ। यदि कोई उपाय दिखायी दे तो मैं भी उसे अपने ध्यान से उतार फैकूँ ।। ६० ।।

तं दुष्टं किन्तु नो साक्षात्स्वयं वा हन्तुमुत्सहे ।
भद्रं तु ब्रह्मणा प्रोक्तं याहि मानुषतां स्वयम् ॥ ६१ ॥

परन्तु उस दुष्ट को मैं स्वयं, साक्षात् सम्मुख आकर, मारने में उत्साहित नहीं हूँ। ब्रह्मा जी ने उचित ही कहा है कि आप मनुष्यदेह धारण कर।। ६१ ।।

यतस्व तद्वधे चापि साहाय्यं ते करिष्यति ।
त्वयि मानुषतां जाते कमलापि मदंशजा ॥ ६२ ॥

आप उसके वध का प्रयत्न करें। आपके मनुष्य देह धारण करने पर मेरे अंश से समुद्भूत कमला (आपकी पत्नी) भी आप का सहयोग करेंगी।। ६२ ।।

मानुषं देहमाश्रित्य सम्भविष्यति भूतले।
तां दृष्ट्वा चातिलोभेन हरिष्यति सुदुर्मतिः॥ ६३॥

वह भी मनुष्यदेह धारण कर मर्त्यलोक में अवतरित होंगी। उन्हें देखकर वह दुर्बुद्धि लोभवश उनका अपहरण कर लेगा।। ६३।।

वीरः सुरतमोहेन मम मूर्त्यन्तरं बलात्।
तस्यां लङ्कां प्रविष्टायां शिवस्यानुमतेर्ध्रुवम्॥ ६४॥
त्यक्ष्यामि लङ्कानगरीं विनाशाय दुरात्मनः॥ ६५॥

वह वीर, काम के मोह में फँसकर, मेरे ही एक दूसरे अंश लक्ष्मी (कमला=सीता) को अपमानित करेगा। उस (लक्ष्मी) के लङ्का में प्रविष्ट होने पर, मैं भगवान् शङ्कर की अनुमति से निश्चय ही लङ्का नगरी को, उस दुष्ट के विनाश के लिये, त्याग दूँगी।। ६४–६५।।

मम मूर्त्यन्तरं लक्ष्मीमवमंस्यति तां यदा।
तदैव मम कोपेन स नाशं समवाप्स्यति॥ ६६॥

जब उस अभिमानी राक्षस द्वारा मेरी दूसरी मूर्त्ति (आकार) लक्ष्मी (सीता) की अवमानना होगी तब वह अवश्य ही मेरे क्रोध के कारण विनाश को प्राप्त करेगा।। ६६।।

त्यक्तायां तु मया तस्यां लङ्कायां मधुसूदन!
वधार्थं तस्य दुष्टस्य रावणस्य दुरात्मनः॥ ६७॥
त्वयि मानुषतां याते सूर्यवंशे रघोः कुले।
ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठस्त्वां मन्त्रं प्रग्राहयिष्यति॥ ६८॥

हे मधुसूदन! मेरे द्वारा लङ्का छोड़ दिये जाने तथा, उस दुष्ट दुरात्मा रावण के वध हेतु आप के द्वारा सूर्यकुल में मानवदेह प्राप्त कर लेने पर, ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ मुनि आपको एक मन्त्र प्रदान करेंगे।। ६७–६८।।

तन्मन्त्रं समरे तात! स्मरिष्यसि सुगोपितम्।
रक्षार्थमात्मनश्चापि रावणस्य वधाय च॥ ६९॥

हे तात! आप उस मन्त्र को गुप्त रखते हुए आत्मरक्षा तथा रावण के वध हेतु स्मरण रखेंगे।। ६९।।

न तदा तेन निःक्षिप्ता अपि बाणाः सुदारुणाः।
त्वां भेत्स्यन्ति रणे घोरे कदाचिन्मधुसूदन॥ ७०॥

हे मधुसूदन, तब उसके कारण, भयङ्कर युद्ध में रावण द्वारा आप पर फैंके गये भयङ्कर बाण भी कोई प्रभाव नहीं डाल सकेंगे।। ७०।।

तस्मिन् बाणप्रहरणे स्मर्तव्याहं महामते!
संहारकारिणी नित्यं ततस्ते विजयो भवेत्॥ ७१॥

हे महामते! रावण द्वारा बाण-प्रहार करते समय आप मुझे स्मरण करते रहियेगा; क्योंकि मैं संहारकारिणी हूँ। इससे आपको निरन्तर विजय प्राप्त होती रहेगी।। ७१।।

मत्प्रसादात् सुदुर्लङ्घ्यं समुद्रमपि हेलया।
उत्तीर्य वानरैः सार्धं लङ्कामेष्यसि निश्चितम्॥ ७२॥

मेरी कृपा के प्रभाव से अपना साथ देने वाले वानरों सहित कठिनाई से लाँघे जाने योग्य समुद्र को भी सरलता से पार कर निश्चित रूप से आप लङ्का जायँगें।। ७२।।

ब्रह्योपदेशतस्तात! शरत्काले विधानतः।
समुद्रतीरे कृत्वा तु मृण्मयीं प्रतिमां शुभाम्॥ ७३॥
मां प्रपूज्य विधानेन वेदोक्तेन जनार्दन।
पातयिष्यसि दुर्धर्षं रथाद्धेमपरिष्कृतात्॥ ७४॥

हे तात! ब्रह्मा के उपदेश से गृहीत, विशेषतः, शरत्काल में विधिपूर्वक समुद्र तट पर मेरी मृत्तिकामयी सुन्दर आकृति बनाकर हे जनार्दन! वेद वर्णित विधिपूर्वक मेरी पूजा करने से आप उस दुर्जय राक्षस को उसके सुवर्णमय रथ से गिरा पायँगे।। ७३-७४।।

तं हत्वा समरे वीरं सपुत्रगणबान्धवम्।
लङ्काजयीति सुख्यातिं मत्प्रसादादवाप्स्यसि॥ ७५॥

उस वीर को युद्ध में उसके पुत्रसमूह, बन्धु एवं बान्धवसहित मारकर 'लङ्काजयी' नाम से आप मेरी कृपा से लोक में ख्याति प्राप्त करेंगे।। ७५।।

तस्मान्मानुषतां याहि द्रुतं त्वं मधुसूदन।
वधाय राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य दुरात्मनः"॥ ७६॥

अतः आप शीघ्र ही उस दुष्ट राक्षसराज रावण के वधहेतु मनुष्यदेह में अवतरित हों।। ७६।।

श्रीभगवान्०— "त्वयि तस्य दृढा भक्तिस्त्वां च स्मरति भक्तितः।
कथं त्यक्ष्यसि तं लङ्कामातस्त्वं करुणामयि॥ ७७॥

विष्णु— "हे लङ्का की माता! आप में उसकी दृढ़भक्ति है, आपको वह निरन्तर भक्तिपूर्वक स्मरण करता रहता है, हे करुणामयि! तब आप उसे इतनी सरलता से कैसे छोड़ पायँगी?।। ७७।।

सङ्कटेऽपि स दुर्धर्षस्त्वां स्मरिष्यति भक्तितः।
तत्कथं तं हनिष्यामि तन्मे वद सुरेश्वरि!॥ ७८॥

वह सङ्कट पड़ने पर तो आपको और अधिक स्मरण करेगा, तो मैं उसका वध कैसे कर पाऊँगा? हे सुरेश्वरि! कृपया इस बात को स्पष्ट कीजिये।। ७८।।

ये त्वां स्मरन्ति ताञ्शंभुस्तथाहं शमनोऽपि च।
सायुधाश्चानुसङ्गम्य संरक्षामो महाभये॥ ७९॥

जो भक्त आपका स्मरण करते हैं, उनको महान् भय उपस्थित होने पर मैं, भगवान् शङ्कर तथा यम– तीनों ही शस्त्रों द्वारा उसकी रक्षा करते हैं।। ७९।।

तत्कथं संस्मरन्तं त्वां समरे रावणं शिवे!
स्वरक्ष्यं संहनिष्यामि त्वद्भक्तं परमेश्वरि''॥ ८०॥

तो हे शिवे! युद्ध में स्थित रहकर आपका स्मरण करते हुए तुम्हारे उस भक्त का मैं संरक्षण करूँ, कि वध करूँ?– हे परमेश्वरि! उस समय मेरे सामने यही धर्मसङ्कट होगा''।। ८०।।

श्रीपार्वती०— **''सत्यमेव महाबाहो समरे मां स्मरिष्यति।**
तथापि स यथा मृत्युं समवाप्स्यति तच्छृणु॥ ८१॥

पार्वती– हे महाबाहो! आप सत्य ही कह रहे हैं। वह युद्ध के समय मुझे अवश्य स्मरण करेगा। फिर भी उसके वध का एक उपाय है, उसे आप सुनो।। ८१।।

ममैवैतज्जगत् सर्वं जगद्रूपाहमेव हि।
एतस्य पीडनेनैव जायते मम पीडनम्॥ ८२॥

यह समस्त जगत् मेरा ही रूप है, मैं भी जगद्रूप हूँ। इस को कष्ट देने से मुझे ही कष्ट दिया जाता है।। ८२।।

एतत्प्रपीडयन् भक्त्या यो मां स्मरति सङ्कटे।
नैहिकं हि फलं तस्य किन्तु पारत्रिकं भवेत्॥ ८३॥

इसे कष्ट देता हुआ यदि युद्ध में भक्तिपूर्वक भी मेरा स्मरण करता है तो उस स्मरण का फल इस लोक में प्राप्त होने वाला नहीं है, भले ही परलोक में मिलता रहे।। ८३।।

अविद्विषन् जगत्सर्वं यो मां स्मरति भावतः।
तस्याहं रक्षणकरी परत्रेह च सर्वदा॥ ८४॥

हाँ, जो जगत् के साथ द्वेष न करता हुआ मुझे भक्तिपूर्वक स्मरण करता है उसकी मैं इस लोक तथा परलोक—दोनों ही जगह रक्षा करती हूँ।। ८४।।

यूयं च तस्य रक्षायै यतिष्यथ महामते!
स तु यन्मां महाभीमः संस्मरिष्यति सङ्कटे॥ ८५॥

हे महामते! आप लोग भी उस महाबलशाली की रक्षा के लिये प्रयास करते हैं जो सङ्कट के समय मेरा स्मरण करता है।। ८५।।

तस्मै तद्विफलं विद्धि यन्मोक्षं समवाप्स्यति।
इह भुक्त्वा परं भोगं यथाभिलषितं चिरम्॥ ८६॥
परत्र मोक्षं परमं समेष्यति सुदुर्लभम्।
किमितो देहिनामस्ति फलं वा मुधुसदन!॥ ८७॥

उसके लिये वह अकेला मोक्ष प्राप्त करना भी उतना सुखद नहीं होगा। अपितु वह पहले इस लोक में चिरकाल तक अपरिमित सुख भोगेगा, बाद में वह उस सुदुर्लभ मोक्ष को भी प्राप्त करेगा। हे मधुसूदन! इससे बढ़कर प्राणियों के लिये और क्या सुखद फल हो सकता है!।। ८६–८७।।

मयि लङ्कापुरे तस्य स्थितायां न दुरासदः।
समेष्यति रणे मृत्युं तेन त्यक्ष्यामि तां पुरीम्॥ ८८॥
रक्षिष्यामि न वै युद्धे जगत्पीडनकारणात्।
तस्मान्मानुषतां याहि महेशं प्रणिपत्य च"॥ ८९॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीभगवतीनारायणसंवादवर्णनं नाम
षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३६॥

सबसे पहली बात तो यह है कि मेरे लङ्कापुरी में रहते, वह दुष्ट मारा नहीं जायगा, अतः मैं सर्वप्रथम उसकी लङ्कापुरी का ही त्याग करूँगी। क्योंकि वह अब समस्त जगत् को अपने कार्यों से पीड़ा पहुँचा रहा है, अतः अब मेरे द्वारा युद्ध में उसकी रक्षा करते रहना सम्भव नहीं है। अतः आप भगवान् शङ्कर को प्रणाम कर शीघ्र ही मनुष्यदेह धारण करें"।। ८८–८९।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
देवी-विष्णुसंवादवर्णनात्मक
छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥

सैंतीसवाँ अध्याय

[रामावतारचरित्र वर्णन]

श्रीमहादेव०— इति देव्या वचः श्रुत्वा भगवान् मधुसूदनः।
प्रणिपत्य मुहुर्भक्त्या हर्षोत्फुल्लविलोचनः॥ १॥
महेशं वचनं प्राह सार्धं कमलयोनिना॥ २॥

श्रीमहादेव जी— देवी के ये वचन सुनकर भगवान् विष्णु उन्हें भक्तिपूर्वक पुनः प्रणाम कर प्रसन्नता के कारण विकसित नेत्रों से ब्रह्मा के साथ भगवान् शङ्कर से यों कहने लगे—।। १–२ ।।

श्रीभगवान्०— "देवदेव जगन्नाथ! देवी भगवती स्वयम्।
यथा प्राह समक्षं ते तत्सर्वं श्रुतवानसि॥ ३॥

विष्णु— हे देवाधिदेव! हे जगत्पते! स्वयं देवी भगवती ने आपके समक्ष जो कुछ कहा है उसे आपने भी सुन ही लिया।। ३ ।।

इदानीं यत्त्वया कार्यं साहाय्यं मम शङ्कर!
तद् ब्रूहि त्वं महेशान! वधार्थं तस्य दुर्मतेः"॥ ४॥

हे शङ्कर! अब आप को उस दुष्ट के वध–प्रसङ्ग में जो मेरी सहायता करनी है– आप भी उसे मुझे बता दें।। ४ ।।

शिव०— "अहं वानररूपेण सम्भूय पवनात्मजः।
साहाय्यं ते करिष्यामि यथोचितमरिन्दम॥ ५॥

शङ्कर— हे शत्रुनाशक! मैं उस समय पवनपुत्र वानररूप में वहाँ अवतरित होकर आपकी यथायोग्य सहायता करूँगा।। ५ ।।

उल्लङ्घ्य सागरं घोरं समन्विष्य च तेऽङ्गनाम्।
प्रीतिं ते जनयिष्यामि सर्वदा मधुसूदन!॥ ६॥

हे मधुसूदन! (उस समय) मैं भयानक समुद्र को लाँघ कर आपकी धर्मपत्नी को खोजकर सदैव आपका प्रीतिवर्धन करूँगा।। ६ ।।

अन्यच्चापि महत्कर्म करिष्यामि सुदारुणम्।
त्रैलोक्यदुष्करं विष्णो! तव प्रीतिविवर्धनम्॥ ७॥

हे विष्णो! इसके अतिरिक्त आपके जो अन्य दुष्कर कार्य होंगे, उन्हें भी पूर्ण कर आपके हृदय का हर्षवर्धन ही करूँगा।। ७ ।।

मयि लङ्काप्रविष्टे तु सूक्ष्मवानररूपिणी।
लङ्केश्वरी स्वयं लङ्कां परित्यक्ष्यति निश्चितम्॥ ८॥

तब मेरे द्वारा लघु वानर के रूप में लङ्का में प्रविष्ट होने पर लङ्केश्वरी देवी स्वयं ही लङ्का का परित्याग कर देगी– यह सुनिश्चित है।। ८।।

इति ते यन्मया कार्यं साहाय्यं तत्प्रतिश्रुतम्।
ब्रह्मणे भवतः प्रीत्यै किं करिष्यति याच तत्''॥ ९॥

इस तरह मैं अपनी तरफ से आपके तथा ब्रह्माजी की प्रीति के वर्धन हेतु वहाँ जो आप की सहायता करूँगा, वह मैंने आपको बता दी। इसके अतिरिक्त आप जो कुछ चाहते हों, उसे आप बतावें।। ९।।

श्रीमहादेव०— **इत्युक्तः शम्भुना विष्णुः स्मृत्वा कमलसम्भवम्।**
अवैक्षत महाबाहुर्हर्षनिर्भरमानसः॥ १०॥

श्रीमहादेवी– भगवान् शङ्कर द्वारा विष्णु के प्रति ऐसा कहे जाने पर उन्होंने कमलयोनि ब्रह्मा को स्मरण किया। और मन से हर्षविभोर होते हुए उन महाबाहु ने ब्रह्मा जी की तरफ देखा।। १०।।

ततो ब्रह्मापि विज्ञाय विष्णोरीप्सितमेव हि।
प्रहस्य वचनं प्राह नारायणमनामयम्॥ ११॥

तब ब्रह्माजी ने उनके मन की इच्छा जानकर हँसते हुए, भगवान् विष्णु को ये सुखप्रद वचन कहे।। ११।।

ब्रह्मा०— **''अहं तव सहायार्थमृक्षयोनौ निजांशतः।**
सम्भूतोऽस्मि पुरा देव! महाबलपराक्रमः॥ १२॥
दास्यामि मन्त्रणां तुभ्यं शुभां तव हिते रतः॥ १३॥

ब्रह्मा– ''हे देव! उस समय मैं आपकी सहायता के लिये ऋक्षयोनि में अपने अंश से पहले ही जन्म लेकर एक महाबलशाली रीछ के रूप में वहाँ उपस्थित रहूँगा तथा आपको आपके हित की विविध मन्त्रणाएँ देता रहूँगा।। १२–१३।।

धर्मः स्वयं तु सञ्जातो लङ्कायां हि विभीषणः।
भ्राता राक्षसराजस्य रावणस्य दुरात्मनः॥ १४॥

ये धर्मराज जो पहले ही रावण के भाई राक्षसराज विभीषण के रूप में लङ्का में अवतरित हो चुके हैं।। १४।।

सोऽपि तं सम्परित्यज्य त्वत्सहायो भविष्यति।
गच्छ मानुषतां देव! रक्ष विश्वं चराचरम्''॥ १५॥

वह भी यथासमय उस रावण का परित्याग कर आप की सहायता हेतु आपके साथ आ जायगा। अतः आप शीघ्र ही मानवदेह धारण कर इस चराचर जगत् के त्राण में लग जाइये''।। १५।।

श्रीराम आदि चारों भाइयों का जन्म

श्रीमहादेव०— एवं स भगवान्विष्णुः सम्प्रार्थ्य परमेश्वरीम्।
पृथिव्यां जन्म सम्प्राप्तो राज्ञो गेहे महात्मनः॥ १६॥

श्रीमहादेव— इस तरह उन भगवान् विष्णु ने भगवती परमेश्वरी की आराधना कर यथासमय सदाशय राजा के गृह में जाकर भूतल पर मानवदेह धारण किया।। १६।।

स्वयं दशरथस्यैकश्चतुर्धा मुनिसत्तम!
रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतश्च महाबलः।
शत्रुघ्नो रूपसौन्दर्यशालिनस्ते महाबलाः॥ १७॥
श्रीरामभरतौ तत्र श्यामौ दूर्वादलप्रभौ।
लसत्कनकगौराङ्गौ द्वौ तदन्यौ महामते!॥ १८॥

हे महामुनि सत्तम! वे राजा दशरथ के घर में स्वयं ही अपने एक अंश के चार विभाग कर, महाबलशाली राम, लक्ष्मण तथा भरत एवं शत्रुघ्न के रूप में अवतरित हुए। उनमें ये चारों ही भाई रूप एवं सौन्दर्य से युक्त थे। परन्तु राम और भरत श्याम वर्ण के ऐसे थे जैसे दूर्वादल हो। हे महामते! अवशिष्ट दोनों भाई— लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न के सभी अङ्ग सुवर्ण के समान कान्ति (गौर वर्ण) वाले थे।। १७–१८।।

रामस्यानुगतो नित्यं लक्ष्मणो लक्षणान्वितः।
भरतस्य तु शत्रुघ्नो बाल्यावधि महामुने!॥ १९॥

इनमें शुभलक्षणयुक्त लक्ष्मण निरन्तर (जीवनपर्यन्त) राम के अनुगामी रहे तथा शत्रुघ्न बचपन से ही भरत के अनुगामी रहे।। १९।।

सीता आदि का जन्म

लक्ष्मीश्चापि समुद्भूय क्षितौ परमसुन्दरी।
स्थित्वा जनकराजस्य गेहे कन्यास्वरूपिणी॥ २०॥
तथा ब्रह्मा निजांशेन बभूव पृथिवीतले।
ऋक्षयोनौ महाबुद्धिर्जाम्बवानिति विश्रुतः॥ २१॥

हे महामुने! उधर परमसुन्दरी भगवती लक्ष्मी ने भी पृथ्वी पर अवतार

लिया। वे राजा जनक के घर में कन्या रूप में अवतरित हुई। ब्रह्माजी भी इस पृथ्वीतल पर अपने अंश से अवतरित हुए। वे ऋक्षयोनि में उत्पन्न महाबुद्धिमान् 'जाम्बवान्' नाम से भूमण्डल पर प्रख्यात हुए।। २०–२१।।

महेशश्च तथांशेन भूत्वा पवननन्दनः।
हनुमानिति विख्यातो महाबलपराक्रमः॥ २२॥
किष्किन्धायां स्थितो वीरो मन्त्री वानरभूपतेः॥ २३॥

उसी प्रकार भगवान् शङ्कर भी अपने अंश से ही पवनपुत्र बनकर महाबलशाली तथा पराक्रमी 'हनुमान्' नाम से विख्यात हुए। ये किष्किन्धा में रहने वाले वानरराज के मन्त्री के रूप में कार्यरत रहे।। २२– २३।।

तथैवान्ये च त्रिदशा ऋक्षवानररूपतः।
संस्थिताः कानने विष्णुं प्रतीक्षन्तो महामते!॥ २४॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीरामावतारचरित्रवर्णनं नाम
सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३७॥

हे महामते! इसी तरह अन्य छोटे–बड़े देवता भी रींछ एवं वानर के रूप में अवतरित होकर वनों में रहते हुए, भगवान् विष्णु के मानवदेह में अवतरित होने की प्रतीक्षा करने लगे।। २४।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
श्रीरामावतारचरित्रवर्णन के रूप में
सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।।

अड़तीसवाँ अध्याय

[जानकीहरण-वर्णन]

रामादि चारों भाइयों की दीक्षा

श्रीमहादेव०— अथ तं रामचन्द्रं च भरतं लक्ष्मणं तथा।
शत्रुघ्नं च महाबाहुं वसिष्ठो मुनिसत्तमः॥ १॥

सर्वान् वै दीक्षयामास देव्या मन्त्रेण नारद!
बभूवुस्तेऽपि चत्वारः सर्वशास्त्रार्थपारगाः॥ २॥

श्रीमहादेवजी बोले— तब मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ने उन महाबाहु राम, भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न सभी को देवी के मन्त्र से दीक्षा दी। हे नारद! वे चारों ही भाई, यथासमय, सर्वशास्त्रपारङ्गत हो गये।। १–२।।

विश्वामित्र के यज्ञ का संरक्षण

अथैकदा समागत्य विश्वामित्रो महामुनिः।
मखसंरक्षणार्थाय श्रीरामं सहलक्ष्मणम्।
आनयत् स तपोरण्ये सम्प्रार्थ्य पितरं तयोः॥ ३॥

एक बार, महामुनि विश्वामित्र (दशरथ के घर) आकर श्रीराम एवं लक्ष्मण को तपोवन में (किये जा रहे) यज्ञ के संरक्षण हेतु उनके पिता दशरथ से माँग कर ले गये।। ३।।

तत्र गत्वा महाबाहुस्ताडकां घोरराक्षसीम्।
निहत्य च मुनेस्तुष्टादस्त्राणि समवाप ह॥ ४॥

ततो गत्वा महारण्ये मखविघ्नकरं मुने।
सुबाहुमदहत्क्षिप्त्वा बाणमेकं महाबलः॥ ५॥

वहाँ जाकर महाबाहु राम ने भयङ्कर राक्षसी ताड़का को मारकर, (उस कर्म से) सन्तुष्ट हुए मुनि से यज्ञ की रक्षा हेतु दिव्य अस्त्र प्राप्त किये। तब, महामुने! उन्होंने महान् अरण्य में जाकर, यज्ञविघ्नकारी।। ४–५।।

अपरेणैकबाणेन मारीचं युद्धदुर्मदम्।
सागरे प्राक्षिपद्रामः स्वबाहुबलदर्पितः॥ ६॥

ततस्तेन मुनीन्द्रेण सार्धं स रघुनन्दनः।
मिथिलां प्रययौ क्षिप्रं विमोच्य ब्रह्मणः सुताम्॥ ७॥

महाबलशाली सुबाहु को एक अग्निबाण फेंककर जला डाला। दूसरे बाण से, युद्ध में दुर्जय मारीच नामक राक्षस को। दूर संमुद्र तट पर फेंक दिया। यों राम को अपने बाहुबल पर विश्वास हो गया। तब उन रघुनन्दन ने ऋषिराज विश्वामित्र के साथ मिथिलानगरी की तरफ प्रस्थान किया। मार्ग में, ब्रह्मा की पुत्री (अहल्या) का उद्धार किया।। ६–७।।

श्रीरामविवाह

ततो जनकराजस्य पुरीं गत्वा महाबलः।
बभञ्ज धनुरत्युग्रं महेशस्य महामुने!॥ ८॥
ततः स राजा सन्तुष्टो वृद्धं दशरथं नृपम्।
सपुत्रं पुरमानीय महोत्सवपुरःसरम्॥ ९॥
तत्सुतेभ्यश्चतुर्भ्यश्च चतस्त्रः कन्यका ददौ॥ १०॥

एतदनन्तर उन महाबलशाली रामचन्द्र ने राजा जनक की नगरी में पहुँचकर शिव के प्राचीन (प्रसिद्ध) धनुष् को तोड़ दिया। उनके इस कार्य से राजा जनक अतीव सन्तुष्ट हुए। और अयोध्या के वृद्ध राजा दशरथ को उनके पुत्रों सहित अपने नगर में बुलाया तथा महोत्सव के साथ उनके चारों पुत्रों को अपनी चारों कन्याएँ प्रदान कर दीं।। ८–१०।।

रामाय प्रददौ सीतां लक्ष्मणायोर्मिलां ददौ।
भरताय सुतां प्रादान्माण्डवीं मुनिपुङ्गव!॥ ११॥
शत्रुघ्नाय ददौ कन्यां श्रुतकीर्तिं शुभाननाम्।
तासां सीता तु सम्प्राप्ता यज्ञभूमिविशोधने॥ १२॥
ऊर्मिलौरससम्भूता द्वे परे भ्रातृकन्यके॥ १३॥

हे मुनिपुङ्गव! उनमें राम को सीता, तथा लक्ष्मण को ऊर्मिला नामक कन्या प्रदान की। इसी तरह भरत को माण्डवी तथा शत्रुघ्न को सुन्दरमुखी श्रुतकीर्ति नामक कन्या प्रदान की। उनमें राजा जनक को सीता यज्ञभूमिविशोधन कर्म के समय प्राप्त हुई थीं। ऊर्मिला उसकी अपनी पुत्री थी। तथा अवशिष्ट दोनों (माण्डवी एवं श्रुतकीर्त्ति) उसके भाइयों की पुत्रियाँ थीं।। ११–१३।।

अथातः परिसङ्गृह्य चत्वारो भ्रातरश्च ते।
पित्रा सह ययुः शीघ्रं पुरं प्रति महामते!॥ १४॥

हे महामते! इस तरह वे चारों भाई अपनी अपनी पत्नियाँ प्राप्त कर, पिता के साथ शीघ्र ही पुनः अपने नगर (अयोध्या) में पहुँच गये।। १४।।

परशुराम का दर्प–विखण्डन

पथि तत्र समायातो भार्गवो बलदर्पितः।
तस्य सञ्चूर्णयामास महादर्पं महाबलः॥ १५॥

मार्ग में उन लोगों को अपने बल का अभिमानी भृगुकुलोत्पन्न (परशुराम) ब्राह्मण मिला। महाबलशाली राम ने उसके बल का अभिमान खण्डित किया।। १५।।

राम के यौवराज्य का निश्चय

ततः पुरं समागत्य रामराज्याभिषेचने।
उद्योगमकरोद्राजा सहामात्यैर्महामते!॥ १६॥

हे महामते! तब राजा दशरथ ने अपने नगर में आकर मन्त्रियों से मन्त्रणा कर, राम को राज्याभिषेक करने का मन बनाया।। १६।।

अत्राभवन्मुनिश्रेष्ठ त्रिदशा विघ्नकारिणः।
ययाचे केकयी तं वै राज्यं पुत्रस्य कारणात्॥ १७॥

रामस्य वनवासं च चतुर्दशसमा इति।
सत्यसन्धो दशरथस्तस्यै तं च वरं ददौ॥ १८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! परन्तु राजा के इस कार्य में देवताओं ने विघ्न डाल दिया। तब (देवताओं के सङ्केत पर राजा की रानी) कैकेयी ने अपने पुत्र (भरत) के लिये राज्य माँग लिया तथा साथ ही राम के लिये चौदह वर्ष का वनवास भी माँगा। सत्यवाक् राजा दशरथ ने उसको वे दोनों ही वर दे दिये।। १७–१८।।

राम का वनगमन

तेन राज्यं परित्यज्य सीतया लक्ष्मणेन च।
प्रतस्थे दण्डकारण्यं रामः सत्यपराक्रमः॥ १९॥

तब सत्यसन्ध श्रीरामचन्द्र, राज्य का परित्याग कर, सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य की ओर प्रस्थान करने का निश्चय कर बैठे।। १९।।

प्रणम्य पितरौ भक्त्या वसिष्ठं च गुरुं मुने!
सन्ध्याय चेतसा देवीं प्रणिपत्य पुनः पुनः॥ २०॥

रावणस्य वधार्थाय यात्रां चक्रे रघूद्वहः।
दशम्यां शुक्लपक्षस्य इषस्य मुनिसत्तम!॥ २१॥

हे मुने! उन्होंने वन जाते समय माता पिता तथा गुरु वसिष्ठ को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। तथा मन ही मन देवी भगवती का ध्यान कर उन्हें भी बार बार प्रणाम किया और यों रावण के वध हेतु रघुनन्दन राम ने जब वन की तरफ यात्रा प्रारम्भ की तो हे मुनिवर! उस दिन आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि थी।। २०–२१।।

राजा पुत्रवियोगार्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह।
सुमन्त्रेणान्वितो रामो रथमारुह्य नारद!॥ २२॥
सानुजः सीतया सार्धं स्वपुरान्निर्जगाम सः।
पौराश्च शोकदुःखार्ता अनुजग्मुस्तमेव हि॥ २३॥

राजा ने पुत्र के वियोगजन्य दुःख में करुण क्रन्दन किया। हे नारद! उधर राम सुमन्त्र के साथ रथ पर चढ़कर सीता एवं लक्ष्मण को साथ लेकर अयोध्या नगरी से निकले। उस समय वहाँ के नागरिकों ने भी दुःखी होकर श्रीराम का अनुगमन किया।। २२–२३।।

ताँस्त्यक्त्वा तु समागत्य शृङ्गवेरपुरं ततः।
सुमन्त्रं सरथं रामो विससर्ज महामतिः॥ २४॥

राम ने सभी नागरिकों को छोड़ दिया तथा शृङ्गवेर पहुँचकर रथसहित सुमन्त्र को अयोध्यापुरी लौटा दिया।। २४।।

तत्र कृत्वा जटा रामो लक्ष्मणेन समन्वितः।
सीतया नावमारुह्य गङ्गामुत्तीर्य नारद!।
भरद्वाजाश्रमं प्रायाच्चित्रकूटं ततो ययौ॥ २५॥

वहाँ श्रीराम अपने केशों को जटा के रूप में बाँधकर, सीता एवं लक्ष्मण के साथ नाव पर चढ़कर गङ्गा नदी पार कर भरद्वाज ऋषि के आश्रम पर उसके पश्चात् चित्रकूट में पहुँचे।। २५।।

राजा दशरथ की मृत्यु

राजा दशरथः श्रुत्वा सुमन्त्रस्य मुखान्मुने!।
वनप्रवेशं रामस्य दुःखात् प्राणान्मुमोच ह॥ २६॥

हे मुने! उधर राजा दशरथ ने सुमन्त्र के मुख से श्रीराम का वन प्रवेश सुनकर अत्यधिक कष्ट के साथ अपने प्राण त्याग दिये।। २६।।

भरत का राम के पास गमन

भरतस्तु समागत्य मातुलस्य गृहात्ततः।
कृत्वौर्ध्वदैहिकं राज्ञो मातरं भर्त्सयन् मुहुः॥ २७॥
सामात्यः सानुजः प्रायाद् रामचन्द्रस्य सन्निधिम्॥ २८॥

तब भरत ने अपने मामा के घर से आकर राजा के मरणानन्तर के कर्म कर तथा बार बार माता की भर्त्सना करके अपने मन्त्रियों तथा भाई के साथ रामचन्द्र को वन से लौटा लाने के लिये उनके पास जाने का निश्चय किया।। २७–२८।।

स तन्निवर्तने यत्नमकरोद् भरतस्तदा।
तदनादृत्य रामोऽगाद्देवकार्यस्य सिद्धये॥ २९॥

वहाँ पहुँचकर उन्होंने श्रीरामचन्द्र से अयोध्या लौटने हेतु बहुत अनुनय-विनय किया, परन्तु श्रीराम ने उनकी बात स्वीकार नहीं की और देवताओं की कार्यसिद्धि हेतु आगे बढ़ गये।। २९।।

सुघोरं दण्डकारण्यं सान्त्वयन् भरतं मुहुः।
ततस्तदाज्ञया सोऽपि भरतो विनिवर्तितः॥ ३०॥

उन्होंने दण्डकारण्य जाने के पूर्व भरत को विविध प्रकार से सान्त्वना दी। तब भरत रामचन्द्र की आज्ञा से पुनः अयोध्या लौट आये।। ३०।।

सानुजः संस्थितो नन्दिग्रामे परिजनैर्वृतः।
भूमिशायी जटाधारी राजभोगविवर्जितः॥ ३१॥

परन्तु भरत भाई सहित अयोध्या न जाकर नन्दिग्राम में ही परिजनों सहित ठहर गये। वहाँ से वे भूमिपर सोते रहे, अपनी जटाएँ बढ़ा लीं। तथा सभी प्रकार के राजोचित ऐश्वर्योपभोग से दूर रहने लगे।। ३१।।

चिन्तयन् चेतसा रामं चतुर्दशसमा मुने!
प्रतीक्ष्य रामचन्द्रस्य राज्ये प्रत्यागमं पुनः॥ ३२॥

वहाँ वे चित्त में राम का चिन्तन करते हुए चौदह वर्ष पूर्ण होने के बाद उनके आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।। ३२।।

रामस्तु दण्डकारण्ये विराधं घोररूपिणम्।
हत्वा राक्षसनाशाय कियत्कालमुवास ह॥ ३३॥
निर्माय पर्णशालां तु पञ्चवट्यां महामते॥ ३४॥

उधर श्रीरामचन्द्र विकराल रूपधारी विराध राक्षस को मारकर

तथा आगे भी अन्य राक्षसों के वध हेतु कुछ समय के लिये दण्डकारण्य में ही ठहर गये। तथा हे महामते! उसी दण्डकारण्य के एक प्रदेश पञ्चवटी में पर्णकुटी बनाकर उसमें रहने लगे।। ३३–३४।।

शूर्पणखा को विरूप करना

तत्र शूर्पणखानाम्नी राक्षसी कामरूपिणी।
समेत्य राघवं कर्तुं पतिमैच्छत् स्मरातुरा॥ ३५॥

वहाँ काममुग्धा शूर्पणखा नामक यथेच्छरूपधारिणी राक्षसी राम के निकट आकर उनको अपना पति बनाना चाहने लगी।। ३५।।

तां ज्ञात्वा राक्षसीं दुष्टां लक्ष्मणो भ्रातृशासनात्।
चिच्छेद कर्णौ नासां च खड्गेन मुनिपुङ्गव!॥ ३६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! लक्ष्मण ने उसको दुष्ट राक्षसी जानकर, भाई की आज्ञा से तलवार द्वारा उसके नाक एवं कान काट दिये।। ३६।।

ततः सा रुदती गत्वा भ्रातरौ खरदूषणौ।
उवाच वचनं क्रुद्धा राक्षसी भीमरूपिणी॥ ३७॥

तब वह रोती हुई अपने भाई खर–दूषण के पास पहुँची। वहाँ उस भीमरूपधारिणी राक्षसी ने क्रुद्ध होते हुए ये वचन कहे–।। ३७।।

शूर्पणखा०— **''अयोध्याधिपतिः श्रीमान् रामो भ्रात्रा सह स्वयम्।**
आगतो दण्डकारण्ये श्यामो दूर्वादलप्रभः॥ ३८॥

शूर्पणखा– ''अयोध्या के राजा श्रीमान् रामचन्द्र अपने भाई के साथ स्वयं यहाँ दण्डकारण्य में आये हुए हैं। जिनके शरीर का वर्ण दूर्वादल के समान श्याम है।। ३८।।

तस्याङ्गनापि तेनैव सार्धं तत्र समागता।
सा यथा रूपसौन्दर्यशालिनी न तथा क्वचित्॥ ३९॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले कैश्चिद् दृष्टं न च श्रुतम्।
त्वदर्थं तामानयन्त्या भ्राता तस्यानुजो मम॥ ४०॥
चिच्छेद कर्णौ नासां च तेन याता त्वदन्तिकम्॥ ४१॥

उसकी पत्नी भी उसी के साथ यहाँ आयी हुई है। वह जैसी रूपवती एवं सौन्दर्यशालिनी है वैसी और कोई नारी इस भूतल पर नहीं है। स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल– तीनों ही लोकों में उसके समान रूपवती नारी न किसी ने देखी है, न सुनी है। मैं तुम्हारे लिये उसको लाने का उपाय कर रही थी कि

उस राजा के भाई ने मेरे नाक तथा कान काट डाले। यही बताने के लिये मैं तुम्हारे पास आयी हूँ''।। ३९-४१।।

श्रीमहादेव०— इति तस्या वचः श्रुत्वा राक्षसौ खरदूषणौ।
राक्षसानां परिवृतौ चतुर्दशसहस्रकैः॥ ४२॥
जग्मतुः कानने तत्र यत्रास्ते रघुनन्दनः।
स जघान शरव्रातै रामचन्द्रः समागतान्॥ ४३॥

श्रीमहादेव जी बोले– यों उसकी कहीं बातें सुनकर वे दोनों खर-दूषण राक्षस चौदह हजार राक्षसों से घिरे हुए उस वन में वहाँ पहुँचे, जहाँ श्रीरामचन्द्र विराजमान थे। वहाँ आने पर श्रीरामचन्द्र ने उन सभी राक्षसों को अपने बाणों की वर्षा से नष्ट कर डाला।। ४२-४३।।

रावण द्वारा सीताहरण

ततः शूर्पणखा गत्वा लङ्कायां शोकविह्वला।
वृत्तान्तं कथयामास रावणाय महामते!॥ ४४॥

तब हे महामते! शोक से रोती विलखती उस शूर्पणखा ने लङ्का जाकर रावण से यह सब वृत्तान्त कह सुनाया।। ४४।।

स तस्या वचनं श्रुत्वा सीताया रूपमुत्तमम्।
गुण्ठितः कालपाशेन तां हर्तुं मतिमादधे॥ ४५॥

उस (रावण) ने, उसकी बातें सुनकर, विशेषतः सीता के उत्तम रूप की बात सुनकर, उस सीता को बलात् अपहृत करने का निश्चय किया; क्योंकि उस (रावण) की मृत्यु समीप आ गयी थी।। ४५।।

ततः सहायं कृत्वा तु मारीचं ताडकासुतम्।
तां हर्तुकामः प्रययौ काननं तं स रावणः॥ ४६॥

तब उसने ताड़कापुत्र मारीच को अपना सहायक बनाकर सीता के हरण के निमित्त दण्डकारण्य की तरफ प्रस्थान किया।। ४६।।

मारीचस्तु विनिश्चित्य श्रीरामान्मृत्युमात्मनः।
मायास्वर्णमृगो भूत्वाऽनयद्रामं सुदूरतः॥ ४७॥

मारीच ने श्रीरामचन्द्र के हाथों से अपनी मृत्यु निश्चित समझ कर, मायामय (कपटपूर्ण) स्वर्ण मृग बनकर, अपना पीछा कराते हुए राम को पर्णकुटी से बहुत दूर पहुँचा दिया।। ४७।।

रामस्तं प्राहिणोद् बाणं तेन विद्धः स राक्षसः।
पपात धरणीपृष्ठे लक्ष्मणेति वदन्मुने!॥ ४८॥

राम ने उस पर बाण छोड़ा। उससे बिंधकर वह मारीच राक्षस पृथ्वी पर गिर पड़ा। और हे मुने! उसने गिरते–गिरते भी, रामचन्द्र के स्वर का अनुकरण करते हुए अपने मुँह से 'हे लक्ष्मण'— यह शब्द निकाला।। ४८।।

तन्मत्वा रामचन्द्रस्य भाषितं जनकात्मजा।
सद्यः प्रस्थापयामास रामं प्रति च लक्ष्मणम्॥ ४९॥

सीताजी ने उसे सुनकर रामचन्द्र जी की ध्वनि मानते हुए लक्ष्मण को तत्काल ही राम की ओर भेजा।। ४९।।

एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि समागत्य दशाननः।
जहार जानकीं लक्ष्मीदेव्या मूर्त्यन्तरं बलात्॥ ५०॥

इसी बीच, वह दशमुख रावण जानकी जी को, जो कि लक्ष्मीजी का ही दूसरा रूप थीं, बलात् उठा ले गया।। ५०।।

तदैव भस्मसात् कर्तुं समर्थापि सुरेश्वरी।
नाकरोत् प्रार्थिता यस्माद्देवीरूपेण सा सदा॥ ५१॥

यद्यपि वह सुरेश्वरी देवी भगवती उसे तभी, भस्म करने में समर्थ थीं; परन्तु उसने वैसा नहीं किया; क्योंकि वह सदा उसके द्वारा देवी रूप से प्रार्थित होती थीं।।५१।।

जटायुवध

रक्षसा नीयमानां तां जटायुः पक्षिपुङ्गवः।
त्रातुकामोऽकरोद्युद्धं रावणेन दुरात्मना॥ ५२॥

सीताजी को राक्षसराज रावण द्वारा इस तरह बलपूर्वक ले जाते हुए देखकर, उसे बचाने की इच्छा से जटायुनामक पक्षिश्रेष्ठ (गृधराज) ने दुष्ट रावण से युद्ध किया।। ५२।।

स तस्य पक्षौ छित्त्वा तां बलाद्राक्षसपुङ्गवः।
गृहीत्वा प्रययौ लङ्कां रात्रौ देवर्षिसत्तम॥ ५३॥
अशोककानने रम्ये स्थापयामास तां सतीम्।
न धर्षितुमभूच्छक्तो ज्वलदग्निसमप्रभाम्॥ ५४॥

हे देवर्षि! वह राक्षसराज उस जटायु के पङ्ख काटकर सीताजी को बलपूर्वक आगे ले उड़ा। और रात्रि में लङ्का पहुँचकर उस पतिव्रता (सती)

को सुन्दर अशोकवाटिका में ले जाकर रखा। परन्तु उसके साथ वह कोई बलात्कार करने का साहस न कर सका; क्योंकि वह जलती हुई अग्नि के समान जलाने की शक्ति रखती थी।। ५३–५४।।

एवं भगवती देवी भवकाले शुभप्रदा।
स्वयं लङ्केश्वरी देवी ह्यन्तर्धातुं मनो दधे॥ ५५॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीजानकीहरणं नामाष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३८॥

यों उस भगवती लङ्केश्वरी देवी ने, जो कि भव (शुभ) काल में शुभदायिनी होती हैं, उस लङ्का से अन्तर्धान होने (दूर चले जाने) का मन बना लिया।। ५५।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
श्रीजानकीहरणनामक
अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त॥

उनतालीसवाँ अध्याय

[रावणमन्त्रणावर्णन]

महादेव०— रामस्तु हत्वा मारीचं लक्ष्मणेन समन्वितः।
आगत्य पर्णशालायां नापश्यत्तत्र जानकीम्॥ १॥
बभ्राम कानने तत्र रुदन् सीतामनुस्मरन्।
तत्र दृष्ट्वा पतङ्गेशं जटायुं छिन्नपक्षतिम्॥ २॥

श्रीमहादेव— मारीच का वधकर, लक्ष्मण के साथ जब श्रीरामचन्द्र ने पर्णशाला में आकर श्रीजानकीजी को, न देखा तो वन में जहाँ तहाँ रुदन करते करते, सीता का स्मरण करते हुए घूमने लगे। घूमते हुए उन्होंने कटे पङ्खवाले जटायु को देखकर।। १–२।।

सीतापहारिणं मत्वा हन्तुकामोऽन्तिकं ययौ।
ततस्तमपि विज्ञाय सखायं पितुरात्मनः॥ ३॥
न प्राहिणोच्छरं तत्र रामः सत्यपराक्रमः।
ततः स उक्त्वा रामाय रावणेन हृतां प्रियाम्॥ ४॥

उसे सीता का अपहरणकर्ता समझकर, उसे मारने की इच्छा से उसके पास गये; परन्तु उसको अपने पिता का मित्र जानकर वे सत्यपराक्रम श्रीरामचन्द्र उस पर शस्त्र चलाने का साहस न कर सके। तब उस (जटायु) ने रामचन्द्र जी को सीता के विषय में बताया कि उसका अपहरण रावण ने किया है।। ३– ४।।

परित्यज्य दिवं प्रायात् प्राणान् रामस्य पश्यतः।
ततस्तमपि दग्ध्वा च कानने तत्र राघवः॥ ५॥

यह बताकर उसने राम के देखते देखते प्राण त्याग दिये। तब रामचन्द्र ने उसके देह का भी वन में ही अग्निदाह किया।। ५।।

हत्वा कबन्धं प्रययावृष्यमूकं महामते!
यत्र बालिभयादास्ते सुग्रीवः सूर्यनन्दनः॥ ६॥
हनुमत्प्रमुखैर्वीरैश्चतुर्भिर्मन्त्रिसत्तमैः।
तत्र सख्यं स कृत्वा तु सुग्रीवेण महात्मना॥ ७॥
निहत्य समरे वीरं बालिनं भीमविक्रमम्।
राज्याभिषेचनं चक्रे सुग्रीवस्य महामते॥ ८॥

हे महामते! आगे चलकर कबन्ध नामक राक्षस का वधकर वे ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे, जहाँ बालि के भय से सूर्यपुत्र सुग्रीव वानराधिपति हनुमान् आदि चार वीर मन्त्रियों के साथ रहते थे। वहाँ उस महाशय सुग्रीव से मैत्रीभाव बनाकर तथा युद्ध में वीर तथा भयङ्कर पराक्रमी बालि का वधकर, हे महामते! रामचन्द्रजी ने सुग्रीव का राज्याभिषेक किया।। ६–८।।

ततो व्यतीत्य वर्षां स स्थित्वा माल्यवति प्रभुः।
आनाय्य वानरं सैन्यं विपुलं मुनिसत्तम॥ ९॥
सीतान्वेषणकार्यार्थं दूतान् प्रास्थापयद् भुवि।
चतुर्दिक्षु ययुस्तेऽपि सीतान्वेषणतत्पराः॥ १०॥

हे मुनिवर! तब उसने वर्षा ऋतु बीतने के बाद माल्यवान् पर्वत पहुँचकर अपनी वानरसेना को एकत्र कर उसे पृथ्वी पर सीता की खोज में लगाया। तथा इसी कार्य के लिये चारों दिशाओं में वे सीता की खोज में गये।।१०।।

तत्र याता दिशं यामीं हनूमदङ्गदादयः।
जाम्बवत्प्रमुखाश्चापि महाबलपराक्रमाः॥ ११॥

तब विशेषतः हनुमान्, अङ्गद एवं जाम्बवान् आदि महाबलशाली वीर दक्षिण दिशा में गये।। ११।।

ते सम्पातिमुखाच्छ्रुत्वा सविशेषं महामते!
समुद्रलङ्घनायाशु मन्त्रयामासुरेव हि॥ १२॥

हे महामते! वे सम्पाति के मुख से सीताजी के विषय में कुछ विशेष जानकर समुद्र लाँघने की योजना बनाने लगे।। १२।।

अथर्क्षाधिपतेर्वाक्याद्धनुमान् भीमविक्रमः।
उल्लङ्घ्य सागरं घोरं शतयोजनविस्मृतम्॥ १३॥
सायं प्रविश्य लङ्कायां रात्रौ च व्यचरत्पुरीम्।
अन्वेषयञ्जनकजां सप्तरात्राणि मारुतिः॥ १४॥

तब ऋक्षराज वीर जाम्बवान् के परामर्श से भीमविक्रम हनुमान् ने उस सौ योजन लम्बे सागर को लांघकर सायङ्काल बीतने पर रात्रि के समय लङ्का में प्रविष्ट होकर सीताजी की खोज में पूरी नगरी में परिभ्रमण किया। वे ऐसा सात दिन तक निरन्तर करते रहे।। १३–१४।।

अशोकवनिकामध्ये तां ददर्श शुभाननाम्।
ततश्चिकीर्षुरत्यन्तं दुष्करं कर्म मारुतिः॥ १५॥

तब उन्होंने अशोकवाटिका में पहुँचकर उन सुमुखी सीताजी के दर्शन किये। तब हनुमान् ने अत्यधिक दुष्कर कार्य करने का मन में सङ्कल्प किया।। १५।।

लङ्का में देवी–मन्दिर

सस्मार पूर्ववृत्तान्तं देव्या युद्धं कृतं पुरा।
तत आरुह्य वृक्षाग्रं देव्या मन्दिरमद्भुतम्॥ १६॥
दिदृक्षुर्दिक्षु सर्वत्र स दृष्टिं प्राहिणोत्तदा।
तथापश्यत्स ऐशान्यां मन्दिरं सुमनोहरम्॥ १७॥

उन्हें वह पूर्व वृत्तान्त भी स्मरण हो आया जिसमें देवी के साथ युद्ध की बात थी। तब उसने एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर देवी का अद्भुत वासस्थान (मन्दिर) देखने की इच्छा से उसने सब तरफ दृष्टि फैलायी। तब उन्होंने वहाँ ईशानकोण में एक सुन्दर भवन देखा।। १६–१७।।

मणिमाणिक्यरचितं शुद्धहेमपरिष्कृतम्।
सिंहध्वजं च तस्याग्रे दृष्ट्वा पवननन्दनः॥ १८॥
चकार निश्चयं देव्या मन्दिरं चैतदेव हि।
ततस्तन्मन्दिरद्वारं गत्वाऽपश्यत् सुरेश्वरीम्॥ १९॥

जिसमें मणि एवं माणिक्य (रत्न) जड़े हुए थे। शुद्ध सुवर्ण से वह निर्मित था। उस पर सिंह की ध्वजा फहरा रही थी। हनुमान् जी ने ऐसा देखकर मन में निश्चय कर लिया कि यही देवी का मन्दिर है। तब वे उस मन्दिर के द्वार पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने सुरेश्वरी भगवती देवी के दर्शन किये।। १८–१९।।

नृत्यन्तीं प्रहसन्तीं च सहितां योगिनीगणैः।
तां प्रणम्य महादेवीं प्रावृत्य पवनात्मजः॥ २०॥
उवाच त्रिजगद्वन्द्यां भक्त्या परमया युतः॥ २१॥

वे वहाँ योगिनीसमूह के साथ कभी नाचती थीं, कभी हँसती थीं। हनुमान् जी उस देवी को प्रणाम कर, परिक्रमा कर, उस जगत्पूज्या से परमभक्तिपूर्वक यों निवेदन करने लगे—।। २०–२१।।

हनुमान्०— **''देवि प्रसीद विश्वेशि! रामस्यानुचरोऽस्म्यहम्।**
अन्वेष्टुं जानकीं लक्ष्मीं लङ्कायां समुपागतः॥ २२॥

हनुमान्— ''हे विश्वेश्वरि! हे देवि! मुझ पर प्रसन्न होइये! मैं राम का अनुचर हूँ। मैं सीतारूप लक्ष्मी जी की खोज में यहाँ लङ्का में आया हूँ।। २२।।

त्वयैव प्रेरितो विष्णुर्मनुजत्वमुपागमत्।
वधार्थं राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य दुरात्मनः॥ २३॥

आपकी ही प्रेरणा से, दुष्ट राक्षसराज रावण के वध हेतु भगवान् विष्णु ने मनुष्यदेह धारण की है।। २३।।

शिवोऽहमपि सम्भूय वानरोऽत्र समागतः।
कर्तुं रामस्य साहाय्यं तवाज्ञावशतः शिवे॥ २४॥

हे शिवे! मैं शिव भी आपकी ही आज्ञा के कारण राम के सहायतार्थ वानर रूप में यहाँ उपस्थित हूँ।। २४।।

त्वयैवैतत् पुरा प्रोक्तं लङ्कायामागते त्वयि।
सन्त्यज्य नगरीमेनां प्रस्थास्ये स्वनिवेशनम्॥ २५॥

आपने ही मुझसे यह भी कहा था कि तुम्हारे लङ्का में आने पर मैं इस पुरी का वास त्यागकर अपने आवास पर चली जाऊँगी।। २५।।

तस्मात्त्यज पुरीमेनां रावणं सुदुरासदम्।
पातयस्व महादेवि रक्ष विश्वं चराचरम्''॥ २६॥

अतः अब आप इस लङ्कापुरी को छोड़ दीजिये तथा इस पापी रावण का पतन होने दीजिये। इस तरह हे महादेवि! आप इस चराचर जगत् को इससे रक्षा कीजिये''।। २६।।

श्रीदेवी०— ''सीतावमाननेनापि रुष्टाहं वानरर्षभ!
लङ्कात्यागमतिं पूर्वमकार्षं पुरुषर्षभ॥ २७॥

श्रीदेवी— ''हे वानरश्रेष्ठ! सीता के अपमान के कारण भी मैं रावण से रुष्ट हूँ। हे पुरुषश्रेष्ठ! इसके पहले ही मैंने लङ्का छोड़ने का मन बना लिया था।। २७।।

त्वद्वाक्यापेक्षयाद्यापि स्थिताहं रावणालये।
त्यजाम्येतां पुरीं लङ्कां त्वयोक्तां कपिपुङ्गव!''॥ २८॥

मैं अभी तक इस रावण की पुरी में इतने के लिये ही ठहरी हुई थी कि तुम आकर मुझसे लङ्का-त्याग की बात कहो। आज तुमने कह दिया। हे कपिवर! अब मैं इसी समय इस लङ्कापुरी का त्याग कर रही हूँ''।। २८।।

श्रीमहादेव०— इत्युक्त्वा सा महादेवी लङ्कां त्यक्त्वा महेश्वरी।
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ सहसा तस्य पश्यतः॥ २९॥

श्रीमहादेव जी बोले— ऐसा कहकर वह महेश्वरी सुरेश्वरी लङ्का छोड़कर, हनुमान् जी के देखते ही देखते अन्तर्धान हो गयी।। २९ ।।

ततो बभञ्ज गहनं राक्षसेन्द्रेण पालितम्।
अशोकवृक्षसङ्घातं मारुतिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ३० ॥

तब क्रुद्ध हनुमान् ने राक्षसराज द्वारा रक्षित धनी अशोक-वाटिका को नष्ट भ्रष्ट कर डाला।। ३० ।।

तच्छ्रुत्वा रावणः क्रोधाद्राक्षसान् सुबहूंस्तदा।
अक्षाह्वं तनयं चापि प्रेषयामास नारद ॥ ३१ ॥

हे नारद! यह वाटिका नाश सुनकर रावण ने बहुत से राक्षसों को बुलाकर अक्ष नामक अपने पुत्र के साथ भेजा।। ३१ ।।

तं जघान महाबाहुर्हनुमान् सुमहाबलः।
वृक्षैराताड्य समरे स्वयमुत्पाटितैर्बलात् ॥ ३२ ॥

परन्तु महाबलशाली हनुमान् ने उसको तत्काल मार गिराया। उसको मारने में उन्होंने उन्हीं वृक्षों का प्रयोग किया जो वहाँ से उसने उखाड़े थे।। ३२ ।।

लङ्कादहन

ततो विरूपं तं कर्तुं रावणो राक्षसाधिपः।
लाङ्गूलं वाससा बद्ध्वा दत्त्वा वह्निं स दीपयत् ॥ ३३ ॥

तब उस दुष्ट राक्षसराज रावण ने उसका रूप विकृत करने के लिये उसकी पूँछ पर कपड़े लिपटवाकर उसमें अग्नि लगा दी।। ३३ ।।

ततः स मारुतिर्वीरो वह्निना तेन नारद!
लङ्कां दग्ध्वा समुल्लङ्घ्य पुनस्तं सरितां पतिम् ॥ ३४ ॥
सम्प्राप्य तीरं यत्रैव सन्ति तेऽप्यङ्गदादयः।
ततश्च समुपागम्य जाम्बवत्प्रमुखैर्वृतः ॥
भुक्त्वा मधुवनं राज्ञो ययौ रामस्य सन्निधिम् ॥ ३५ ॥

हे नारद! तब वह वीर वायुनन्दन वीर उसी अग्नि से समस्त लङ्का को जलाकर, पुनः समुद्र लाँघकर इस किनारे पर आ गये। जहाँ अङ्गदवीर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। फिर जाम्बवान् आदि प्रमुख वीरों से घिरे हुए वे हनुमान् मधुवन में कुछ खा-पीकर राजाराम की सेवा में पहुँचे।। ३४-३५ ।।

तं दृष्ट्वा रामचन्द्रस्तु दूरतो मुनिसत्तम!।
पप्रच्छ जानकीं चाथ हनुमांस्तुष्टमानसः॥ ३६॥

ततः सर्वं यथावृत्तं राघवाय न्यवेदयत्॥ ३७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! रामचन्द्र जी ने उन्हें दूर से ही देखकर उनसे जानकी के विषय में पूछा। हनुमान् ने श्रीराम से जैसे जो कुछ हुआ था उसे, ज्यों का त्यों सुना दिया।। ३६–३७।।

ततः स राघवश्चापि समस्तैर्वानरैर्वृतः।
दशम्यां शुक्लपक्षस्य श्रावणे मासि निर्ययौ॥ ३८॥

वधार्थं राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य महामते!
स्थितः परिवृतः सर्वैः ससैन्यैर्वानरर्षभैः॥ ३९॥

हे महामति! तब वे श्रीरामचन्द्र सभी वानर सेना को साथ लेकर श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को लङ्का पर आक्रमण कर राक्षसराज के वध हेतु प्रस्थान कर गये। हे महामति! यों वे श्रीरामचन्द्र सेना सहित सभी प्रमुख वानरों के साथ समुद्र तट तक आ पहुँचे।। ३८–३९।।

बिभीषण का लङ्का–त्याग

एतस्मिन्नेव काले तु रावणो राक्षसाधिपः।
आहूय मन्त्रिणः सर्वान्मन्त्राय समुपाविशत्॥ ४०॥

इसी समय राक्षसराज रावण ने भी अपने सभी मन्त्रियों को बुलाकर उनसे इस घटना के विषय में परामर्श किया।। ४०।।

तत्रोवाच महाबुद्धिः सर्वमन्त्रविदां वरः।
बिभीषणो दशास्यं तु वारयन् सर्वतो रणे।
सीतां त्यक्तुं मुहुः प्राह राघवस्य पराक्रमम्॥ ४१॥

तब महाबुद्धिमान् तथा सभी मन्त्रणाओं के विशेषज्ञ बिभीषण ने युद्ध करने से सभी, युक्तियों द्वारा रोका और हे मुने! उन्होंने रामचन्द्र के अतिशय पराक्रम का वर्णन करते हुए, सीता जी को पुनः श्रीराम को सौंप देने का सत्परामर्श दिया।। ४१।।

तच्छ्रुत्वा रावणः क्रुद्धस्तं पदाऽताडयन्मुने॥ ४२॥

यह सुनकर क्रुद्ध रावण ने उन पर पदाघात (लात मारना) किया।। ४२।।

ततः क्रुद्धः स्वयं धर्मस्वरूपोऽयं बिभीषणः ।
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः प्रायाद्रामचन्द्रस्य सन्निधिम् ॥ ४३ ॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे रावणमन्त्रणावर्णनं
नामैकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस बात से क्रुद्ध होकर धर्म के अवतार बिभीषण अपने चार मन्त्रियों के साथ लङ्का का परित्याग कर श्रीरामचन्द्र की शरण में चले गये ।। ४३ ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'रावणमन्त्रणावर्णन' नामक
उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

चालीसवाँ अध्याय

[रावणयुद्धभङ्गवर्णन]

श्रीमहादेव०— बिभीषणमशेषेण ज्ञात्वा तु शरणार्थिनम्।
सख्यं कृत्वा महाबाहुर्लङ्काराज्येऽभ्यषेचयत्॥ १॥

श्रीमहोदव— श्रीरामचन्द्र ने बिभीषण के विषय में पूर्णतः जानकर उन्हें वस्तुतः शरणागत समझते हुए उसके साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया तथा उसको लङ्काराज्य पर अभिषिक्त किया।। १।।

समुद्र पर सेतुस्थापन

ततस्तितीर्षुर्जलधिं रामस्तं वानराधिपम्।
सुग्रीवं वचनं प्राह जिज्ञासुर्बलविक्रमम्॥ २॥

तब श्रीरामचन्द्र ने समुद्र पार करने की इच्छा और वानरराज सुग्रीव का बल–विक्रम जानने के लिये उनसे अपना अभिप्राय कहा।। २।।

स आह भगवंस्त्वं तु मा चिन्तां कर्तुमर्हसि।
समुद्रं शोषयिष्यामि सेतुं चोत्पाट्य भूधरान्।
रचयिष्ये महासिन्धौ तेन पारं गमिष्यसि॥ ३॥

सुग्रीव बोले— ''भगवन्! आप चिन्ता न करें। मैं पर्वत डाल डालकर समुद्र को सुखा दूँगा और उस महासागर पर पुल बना दूँगा। उससे आपकी सेना समुद्रपार चली जायगी''।। ३।।

तच्छ्रुत्वा सम्प्रहृष्टात्मा रामः सत्यपराक्रमः।
चक्रे जलनिधिं घोरं स्वयंस्वीकृतबन्धनम्॥ ४॥

यह सुनकर प्रसन्न होते हुए सत्य पराक्रम श्रीरामचन्द्र ने समुद्र के द्वारा स्वयं बन्धन स्वीकार कराया।। ४।।

ततः सुग्रीववचनादुत्पाट्योत्पाट्य भूधरान्।
रचयामास जलधौ सेतुं मयसुतो नलः॥ ५॥
आरभ्य पौर्णमास्यां तु श्रावणयां मुनिसत्तम!॥ ६॥

उस भयङ्कर समुद्र पर, सुग्रीव के कथनानुसार, श्रावण की पूर्णिमा से प्रारम्भ कर पर्वतों की बड़ी बड़ी शिलाएँ डालकर मय के पुत्र नल ने पुल बनाया।। ५–६।।

यामद्वयेन वै सेतुं सागरे वानरर्षभः।
बबन्ध मुनिशार्दूल सर्वलोकसुदुष्करम्॥ ७॥

हे मुनिवर! उस वानरश्रेष्ठ ने दो प्रहर के अल्प समय में ही समुद्र पर इतना वृहदाकार पुल बना दिया जिसे साधारण लोगों द्वारा बनाया जाना बहुत कठिन था।। ७।।

रावण को सेतुबन्धन से व्याकुलता

ततस्तु रावणः श्रुत्वा सेतुबन्धं महाम्बुधौ।
भयं मोहं च सम्प्राप्य चकम्पे स मुहुर्मुहुः॥ ८॥

तब रावण ने महासमुद्र पर सेतुबन्ध का समाचार सुनकर अपने हृदय में अत्यधिक भय तथा व्याकुलता प्रकट की। इस कारण उसके शरीर में बार बार कम्पन होने लगा।। ८।।

ततः परिवृतो रामो वानरैश्च महाबलैः।
कोटिलक्षैर्महाबाहुर्लक्ष्मणेन समन्वितः॥ ९॥

त्रयोदश्यां तु कृष्णायां लङ्कां प्राप महामते!
वेष्टिता वानरैर्लङ्का समन्ताद् भीमविक्रमैः॥ १०॥

जले स्थले च प्राकारे वृक्षेषु गृहमध्यतः।
चत्वरेषु गोपुरेषु वनेषूपवनेषु च।
नासीद्वानरशून्यं तु स्थलं किञ्चिन्महामते!॥ ११॥

हे महामते! तब लक्ष्मण सहित महाबाहु श्रीराम लाखों–करोड़ों वानरों से घिरे हुए (आश्विनमास के) कृष्णपक्ष की त्रयोदशी के दिन लङ्का पहुँचे। तथा उन महावीर वानरों ने लङ्का को चारों तरफ से घेर लिया। उस समय लङ्का के जल पर, स्थल पर, किले पर, वृक्षों पर, घरों के बीच में, चबूतरों पर, गोपुरों (नगर के बड़े फाटकों) पर, वनों में, उद्यानों में ऐसा कोई स्थान नहीं बचा था जहाँ वानर न पहुँचे हों।। ११।।

देवी–पूजन

ततो युयुत्सुर्भगवान् चिन्तयामास चेतसा।
पूजार्थं भगवत्यास्तु लङ्काविजयहेतवे॥ १२॥

तब युद्ध प्रारम्भ करने की इच्छा से भगवान् रामचन्द्र ने विचार किया था। सर्वप्रथम लङ्का पर विजय प्राप्त करने के प्रयोजन से भगवती देवी की पूजा का विचार किया।। १२।।

अकालेऽहं महादेवीं पूजयामि सुरेश्वरीम्।
निद्रिता त्रिजगन्माता साम्प्रतं दक्षिणायने॥ १३॥

मैं भगवती सुरेश्वरी की अकाल (अनियत काल की) पूजा करूँगा। जगन्माता इस समय दक्षिणायन के कारण निद्रावस्था में हैं।। १३।।

एवं विचिन्त्य भगवान् रामो नारायणोऽव्ययः।
चकार बुद्धिं तां यष्टुं पितृरूपां सनातनीम्॥ १४॥
सैव देवी महामाया पक्षेऽस्मिन् पितृरूपिणी॥ १५॥

ऐसा सोचकर भगवान् राम ने जो कि अविनाशी विष्णु के देह–धारी थे। उस पितृरूपा सनातनी देवी की यज्ञ–पूजा करने के लिये अपना मन (मति) बनाया; क्योंकि वही देवी महामाया इस पक्ष में पितृरूपिणी हैं।। १४–१५।।

प्रवृत्तोऽपरपक्षश्च प्रतिपत्तिथिरप्यतः।
अद्यारभ्य महादेवीं पितृरूपां जयप्रदाम्॥ १६॥
पार्वणेनैव विधिना यावद्दर्शदिने दिने।
सम्पूज्य समरे योत्स्ये शत्रूणां निधनाय वै॥ १७॥

साथ ही दूसरा पक्ष भी लग जायगा, जिसकी प्रतिपत् तिथि होगी। अतः आज से ही प्रारम्भ कर, पितृरूपा, जयप्रदा भगवती का प्रतिदिन जब तक कि यह दर्श (अमावस्या) तिथि न आ जाय, पार्वण विधि से पूजा–अर्चना कर शत्रुओं के नाशहेतु युद्ध प्रारम्भ करूँगा''।। १६–१७।।

एवं निश्चित्य मनसा लङ्कायां प्राह सादरः।
''करिष्ये पार्वणश्राद्धमपराह्णेऽद्य भक्तितः।
ततस्तु प्रतियोत्स्यामि समरे राक्षसाधिपम्''॥ १८॥
तच्छ्रुत्वा सर्व एवाहुर्वानरा रघुवंशजम्॥ १९॥

मन में ऐसा निश्चय कर, उन्होंने ससम्मान कहा– ''आज से मैं दोपहर बाद भक्तिपूर्वक लङ्का में पार्वणश्राद्ध प्रारम्भ करूँगा। उसके बाद ही राक्षसराज से युद्ध प्रारम्भ करूँगा''। भगवान् के ये वचन सुनकर सभी बानरों ने उन रघुकुलोत्पन्न राम से यह निवेदन किया–।। १८–१९।।

''भक्त्या पूजय सद्भावैः पितृन् विधिविदां वर।
जयार्थं समरे देव विधानज्ञस्त्वमेव हि॥ २०॥

"हे शास्त्रविधि को जाननेवालों में श्रेष्ठ! आप सद्भावपूर्वक तथा भक्ति के साथ युद्ध में विजय प्राप्ति हेतु पितरों की पूजा प्रारम्भ करें; क्योंकि सभी विधियों के आप ही ज्ञाता हैं"।। २०।।

ततः प्रवृत्ते काले तु रामः सत्यपराक्रमः।
चकार पार्वणश्राद्धं देवीं सम्भाव्य चेतसा॥ २१॥

तब शुभ मुहूर्त आने पर, उन सत्य पराक्रम श्रीरामचन्द्र ने भगवती देवी को मन में रखकर पार्वणश्राद्ध प्रारम्भ किया।। २१।।

तस्मिन्नेव दिने युद्धमारब्धं राक्षसैः सह।
पश्चिमां दिशमाक्रम्य तमसाप्ते दिवाकरे॥ २२॥

उसी दिन भगवान् रामचन्द्र का राक्षसों के साथ पश्चिम दिशा की तरफ से युद्ध प्रारम्भ हुआ, जबकि सूर्य अन्धकारावृत हो गये थे।। २२।।

उद्योगो रामचन्द्रस्य रावणस्य च संयुगे।
यादृशोऽभूत्तथा कश्चिन्न दृष्टो न श्रुतोऽपि वा॥ २३॥

वह राम–रावण का युद्ध भयङ्करता में ऐसा था जो पहले न किसी ने देखा था, न (आगे ही कभी किसी को देखने की आशा) सुना ही था।। २३।।

रावणः प्रेषयामास चतुरङ्गबलान्वितम्।
अकम्पनं महावीरमक्षौहिण्या तु सेनया॥ २४॥

रावण ने उस युद्ध में चारों बलों (रथ, हाथी, घोड़े तथा पैदल सेना) से युक्त एक अक्षौहिणी सेना के साथ महावीर अकम्पन को भेजा।। २४।।

प्रथमेऽहनि युद्धार्थं तं तस्मिन् दिवसे मुने!
मारुतिः समरे क्रुद्धः प्राहिणोद्यमसादनम्॥ २५॥

हे मुने! उस पहले दिन के युद्ध में वायुपुत्र हनुमान् ने क्रुद्ध होकर, युद्ध में आये हुए सेना और उस (अकम्पन) को मार मार कर मृत्यु के द्वार तक पहुँचा दिया।। २५।।

एवं भक्त्या राघवस्तु श्राद्धं कृत्वा दिने दिने।
प्रीणयन् परमेशानीं पातयामास राक्षसान्॥ २६॥

इस तरह श्रीरामचन्द्र ने प्रतिदिन भक्तिपूर्वक श्राद्ध करते हुए महेश्वरी भगवती को प्रसन्न कर राक्षसों को मार डाला।। २६।।

निहतेऽकम्पनाख्ये तु धूम्राक्षः सेनया वृतः।
दशाननाज्ञयाऽऽगत्य प्राकरोद्युद्धमुल्बणम्॥ २७॥

उस युद्ध में अकम्पन नामक राक्षस के मारे जाने पर, रावण ने प्रबल सेना के साथ, धूम्राक्ष को भेजा। उसने दशग्रीव के आदेश से वहाँ आकर भयङ्कर युद्ध किया।। २७।।

तं जघान रणे वीरं द्वितीयेऽहनि राघवः।
तथान्येषु सुघोरेषु निहतेषु महाहवे॥ २८॥
मातुलो राक्षसेन्द्रस्य प्रहस्तो युद्धमाययौ।
रात्रौ समभवद् युद्धं तेन सार्धं दुरासदम्॥ २९॥

दूसरे दिन श्रीरामचन्द्र ने उस वीर को भी युद्धभूमि में मार गिराया। साथ ही वहाँ उस महायुद्ध में कुछ अन्य भयङ्कर राक्षसवीरों के मारे जाने पर रावण का मामा प्रहस्त राक्षस समरभूमि में आया। उस दुष्ट के साथ भी रात्रि में भयङ्कर युद्ध हुआ।। २८-२९।।

सुरासुरनराणां च दैत्यानां भयदायकम्।
तस्य नादेन घोरेण कम्पितास्त्रिदशेश्वराः॥ ३०॥
युद्धसंदर्शनं त्यक्त्वा दिगन्तं समुपागमन्।
एवं तमपि दुर्धर्षं तस्मिन् रात्रौ महाबलम्।
समरे पातयामास शेषयामे महामतिः॥ ३१॥

वह युद्ध ऐसा था, जिसे देखकर देवता, दैत्य और मनुष्य—सभी के भय से हृदय काँप उठे। उस भयानक आवाज से बड़े-बड़े देवता भी घबरा गये और उस युद्ध को देखना छोड़कर दूर दिशाओं में भाग गये। इस प्रकार से उस रात्री के अन्तिम प्रहर में बुद्धिमान् (श्रीराम) ने उस महाबली दुर्धर्ष (प्रहस्त) को युद्ध में मार गिराया।। ३०-३१।।

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रोऽपि रुरोद बहुदुःखितः॥ ३२॥

इस समाचार को सुनकर राक्षसराज ने भी दुःखी होते हुए अत्यधिक रुदन किया।। ३२।।

तं सान्त्वयन्ययौ युद्धे मेघनादः प्रतापवान्।
अतर्कितः समागत्य रात्रौ गगनमास्थितः॥ ३३॥
घोरेण नागपाशेन स बबन्ध रघूत्तमौ।
समस्तैर्वानरैः सार्धं भल्लूकैश्च महामते!
मोहयन्मायया वीरो राक्षसेन्द्रसमो बली॥ ३४॥

हे महामते! तब उसको सान्त्वना देते हुए प्रतापी मेघनाद समरभूमि में अचानक ही रात्रि में आकर आकाश में स्थित हो गया तथा उसने भयङ्कर

नागपाश के सहारे, उन दोनों रघुवंशियों— राम एवं लक्ष्मण को सभी वानर एवं भालुओं के साथ बाँध लिया और उन सब वानरों को राक्षसराज के ही समान उस वीर ने माया से सम्मुग्ध कर दिया।। ३३–३४।।

बिभीषणः समागत्य ततस्तु रघुनन्दनम्।
बोधयामास रात्रौ स तस्मिन्नेव क्षणे पुनः॥ ३५॥

उसके बाद बिभीषण ने रात्रि में उसी क्षण आकर श्रीरामचन्द्र को पुनः प्रबोधित किया।। ३५।।

ततः प्रबुद्धो भगवान्प्रीतः परमभक्तितः।
सस्मार देवीं शर्वाणीं महाभयविनाशिनीम्॥ ३६॥

तब उस सम्मोहन से मुक्ति पाकर उसी रात्रि में श्रीरामचन्द्र ने परमभक्ति के साथ महान् भयों का भी निवारण करने वाली देवी महेश्वरी का स्मरण किया।। ३६।।

तत आगत्य गरुडो मोचयामास बन्धनात्।
भक्षन् पाशं महाघोरं राघवौ सह सैनिकैः॥ ३७॥

इसी समय गरुड़ ने आकर उनको नागपाश से मुक्त किया। गरुड़ ने उन साँपों को खाकर वानरों सहित लक्ष्मण एवं श्रीराम को बन्धनमुक्त किया।। ३७।।

ततः प्रभाते तच्छ्रुत्वा रावणः स्वयमागतः।
अकरोत्तुमुलं युद्धं सर्वलोकभयावहम्॥ ३८॥

उन्हें बन्धनमुक्त हुआ जानकर प्रातः काल रावण स्वयं युद्धभूमि में आया। तथा उसने सभी प्राणियों के लिये भी भयप्रद युद्ध प्रारम्भ किया।। ३८।।

रावणं समरे वीक्ष्य कालान्तकयमोपमम्।
समकम्पन्त सर्वे तु वानरा भयमोहिताः॥ ३९॥

युद्धभूमि में उपस्थित प्रलयकालिक यम के तुल्य रावण को देखकर सभी वानर भय से थर थर काँपने लगे।। ३९।।

अभवत् सुमहद्युद्धं रामेण च महात्मना।
तस्मिन्निपातिता वीरा दशकोटिसहस्रशः॥ ४०॥

अन्त में उदाराशय श्रीराम के साथ राक्षसराज रावण का ऐसा

प्रबल युद्ध हुआ कि उसके फलस्वरूप हजारों वीर मृत्यु के ग्रास बन गये।। ४०।।

अथ तं समरे क्रुद्धो रामो राजीवलोचनः।
निक्षिप्य शरजालानि छादयामास वै मुने!॥ ४१॥

हे मुने! तब कमलनयन श्रीरामचन्द्र ने क्रुद्ध होकर ऐसी बाणवृष्टि की कि रावण सब तरफ से आवृत हो गया।। ४१।।

आनीय गिरिशृङ्गाणि कोटयो वानरा अपि।
चिक्षिपुः समरे तस्य रथोपरि दुरात्मनः॥ ४२॥

उधर वानरों ने भी, उस युद्ध में, पर्वतों की विशाल शिलाएँ लाकर उस दुष्ट रावण के रथ पर फैंकी।। ४२।।

वृक्षैः शालप्रियालाद्यैस्तथान्यैर्वनजैरपि।
ताडितः समरे वीरो महापर्वतसन्निभः॥ ४३॥

साथ ही उन्होंने उस पर्वताकार राक्षसराज पर शाल–प्रियाल आदि वृक्षों से भी प्रहार किया।। ४३।।

हनूमदङ्गदाद्यैश्च महाबलवलीमुखैः।
प्रक्षिप्तैः पर्वतैश्चापि शतशोऽथ सहस्रशः॥ ४४॥
बभूव रावणो युद्धे विरथो मुनिपुङ्गव!॥ ४५॥

हे महामुने! अन्त में, वह रावण हनुमान् अङ्गद आदि वीरों द्वारा फैंके गये विशाल पर्वतखण्डों के प्रहार से रथविहीन हो गया।। ४४–४५।।

प्रहसन्तौ रणे वीरौ चन्द्रसूर्यसमप्रभौ।
भ्रातरौ राघवौ सङ्ख्ये महाबलपराक्रमौ॥ ४६॥
धनुरुद्यम्य वेगेन यमदण्डोपमैः शरैः।
छादयामासतुर्वीरौ रावणं युद्धदुर्मदम्॥ ४७॥

यों उस युद्धभूमि में चन्द्रमा तथा सूर्य के समान प्रभा वाले वे दोनों रघुवंशी महाबलशाली वीर (राम एवं लक्ष्मण) भ्राता और पराक्रम हँसते हुए युद्ध में दुर्जय उस रावण को धनुष् उठाकर वेग से, यमदण्ड के समान बाणों से, उन दोनों वीरों ने ढँक दिया।। ४७–४८।।

कपीनां किलकिलाशब्दैर्धनुषां च विनिःस्वनैः।
रक्षसां घोरशब्दैश्च रथनेमिस्वनैरपि॥ ४८॥
गजानां बृंहितैस्तद्वद्वाजिनामपि ह्रेषितैः।
अकालप्रलयं सर्वे मेनिरे प्राणिनो मुने!॥ ४९॥

हे मुने! उस समय, उस युद्धभूमि में हो रही वानरों की किलकिलाहट से, धनुष् की टङ्कारों की ध्वनि से, राक्षसों के भयङ्कर निनाद से, हाथियों की चिङ्घाड़ से, घोड़ों की हिनहिनाहट से, जगत् के प्राणियों को ऐसा अनुभव होने लगा मानो असमय में ही प्रलयकाल उपस्थित हो गया हो।। ४८–४९।।

आच्छादितश्च समभूत् समरे राक्षसाधिपः।
प्रक्षिप्तैर्बाणसङ्घैश्च पर्वतैश्च महत्तरैः॥ ५०॥

यों, वह राक्षसराज रावण, उस युद्धभूमि में दोनों वीरों द्वारा फैंके गये बाणों से तथा वानरों द्वारा फैंके गये विशाल पर्वतखण्डों से आच्छादित हो गया।। ५०।।

ततः सन्त्यज्य समरं रावणो भयविह्वलः।
प्रविवेश स्व पुरीं रम्यां संग्रामे क्षतविक्षतः॥ ५१॥

इति श्रीमहाभागवते उपपुराणे रावणयुद्धभङ्गवर्णनं नाम
चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४०॥

अन्त में, संग्राम में क्षत विक्षत होकर, भयभीत होता हुआ वह रावण उस दिन उस युद्धभूमि से पलायन कर पुनः अपनी रमणीय नगरी में प्रवेश कर गया।। ५१।।

श्रीमहाभगवत उपपुराण में
रावणयुद्धभङ्गवर्णन नामक
चालीसवाँ अध्याय समाप्त॥

इकतालीसवाँ अध्याय

[ब्रह्मा एवं रामचन्द्र की मन्त्रणा]

श्रीमहादेव०— एवं पराजिता सङ्ख्ये रावणो राक्षसाधिपः।
बोधयामास युद्धार्थं कुम्भकर्णं महाबलम्॥ १॥

श्रीमहादेव जी बोले— यों, युद्ध में स्वयं पराजित होकर उस राक्षसराज रावण ने महाबलशाली कुम्भकर्ण (अपने भाई) को युद्ध के लिये जगाया।। १।।

कोटीनां पञ्चभिर्लक्षै राक्षसैः परिवारितः।
स कुम्भकर्णः समरे समसज्जत दुर्जयः॥ २॥

युद्ध में किसी के लिये भी दुर्जय उस कुम्भकर्ण ने एक करोड़ पाँच लाख राक्षसों के साथ युद्धभूमि में जाने की तय्यारी की।। २।।

एतस्मिन्नन्तरे देवा भीताः सर्वे महामते!
मन्त्रणार्थं महाबुद्धिः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः॥ ३॥
ब्रह्माणमागतं वीक्ष्य सहितं सर्वदैवतैः।
सम्पूज्य वचनं प्राह भगवान् पुरुषोऽव्ययः॥ ४॥

हे महामते! यह देखकर सभी देवता भयभीत हो गये। तब सर्वलोकेश्वर, सर्वसमर्थ, अव्यय, भगवान् श्रीराम ने मन्त्रणाहेतु सभी देवताओं के साथ पितामह ब्रह्मा को आया हुआ देखकर, उनकी यथाविधि पूजा-अर्चना कर उनसे यह कहा—।। ३-४।।

श्रीराम— "कथं जयेऽहं संग्रामे राक्षसान् युद्धदुर्मदान्।
रावणप्रमुखान् वीरान् महाबलपराक्रमान्॥ ५॥

श्रीराम— "मैं इन वीर, महाबलशाली, पराक्रमी, युद्धदुर्मद रावण आदि प्रमुख राक्षसों को युद्धभूमि में कैसे जीत पाऊँगा?।। ५।।

तन्मे वद सुरश्रेष्ठ भयं मे जायते महत्।
रावणस्य यथा सङ्ख्ये तं बाहुबलविक्रमम्॥ ६॥

यह मुझे बताइये! मुझे बहुत भय लग रहा है; क्योंकि रावण युद्ध में अपना कितना बाहुविक्रम दिखाता है— यह मुझे बहुधा अनुभव हो चुका है।। ६।।

अनुभूतोऽस्मि बहुधा जगत्प्लवनकारणम्।
तथा कस्यापि नो मन्ये विद्यते भुवनत्रये॥ ७॥

इससे प्राणियों जगत् की बहुत हानि हो सकती है। और फिर तीनों लोकों में ऐसा बल विक्रम किसी अन्य के पास नहीं है।। ७।।

साम्प्रतं श्रूयते तस्य भ्राता राक्षसपुङ्गवः।
समायास्यति संग्रामे महाबलपराक्रमः॥ ८॥

अब तो सुना है, उसका भाई भी, जो कि राक्षसों में श्रेष्ठ, महाबलशाली है एवं पराक्रमी भी है; स्वयं युद्ध करने आ रहा है।। ८।।

कोटीनां पञ्चभिर्लक्षै राक्षसैः परिवारितः।
स योत्स्यति मया सार्धं भ्रातुः साहाय्यकारणात्॥ ९॥

उसके साथ एक करोड़ पाँच लाख सैनिक होंगे। वह अपने भाई की सहायता में मुझसे युद्ध करेगा।। ९।।

बिभीषणमुखाच्छ्रुत्वा तस्यापि च पराक्रमम्।
भीतोऽस्मि साम्प्रतं ब्रूहि यथैतान् समरे जये''॥ १०॥

मैंने विभीषण के मुख से सुना है। साथ ही, उसने मुझको उसके पराक्रम के विषय में भी बताया है। इसी कारण, मैं चिन्तित हूँ। बताइये इनसे युद्ध में कैसे विजय प्राप्त करूँ!''।। १०।।

श्रीमहादेव— इत्युक्तो रामचन्द्रेण ब्रह्मा लोकपितामहः।
उवाच सान्त्वयन् रामं सर्वलोकस्य पश्यतः॥ ११॥

श्रीमहादेव— श्रीराम द्वारा यह कहे जाने पर, वे लोकपितामह ब्रह्मा, सब लोगों के सामने, भगवान् राम को सान्त्वना देते हुए बोले—।। ११।।

ब्रह्मा०— ''सर्वं जानासि राजेन्द्र! तथापि कमलापते!
यत्पृच्छसि जगन्नाथ! जयार्थं समरे शृणु॥ १२॥

ब्रह्मा— ''हे राजेन्द्र! आप सब कुछ जानते हैं। तो भी हे कमलापते! हे जगन्नाथ! आप समर में विजयप्राप्ति हेतु जो कुछ पूछ रहे हैं, उसके विषय में उपाय सुनिये।। १२।।

त्रैलोक्यजननी देवी ब्रह्मरूपा सनातनी।
कात्यायनी तवोपास्या महाभयनिवारिणी॥ १३॥

यह जगन्माता ब्रह्मरूपा, अविनाशी कात्यायनी देवी ही, जो कि तुम्हारी आराध्या हैं, यही बड़े से बड़े भय का निवारण करने वाली हैं।। १३।।

जयदा सर्वलोकानां या स्वयं चापराजिता।
तां प्रार्थय महाबाहो दुर्गां सङ्कटतारिणीम्॥ १४॥

वही सब लोकों पर जय प्रदान करने वाली हैं। वह स्वयं सदा अपराजित रहती हैं। हे महाबाहो! आप उन दुर्गा भगवती की उपासना कीजिये जो सभी सङ्कटों से पार लगाने वाली हैं।। १४।।

विना प्रसन्नतां तस्याः समरे शत्रुसूदन!
न विजेतुं समर्थोऽसि रावणादीन् महाबलान्॥ १५॥

हे शत्रुसूदन! उसके प्रसाद के विना, युद्ध में इन रावण आदि बलिष्ठ राक्षसों पर विजय प्राप्त होना कठिन है।। १५।।

यन्नाम संस्मरन् शम्भुः पिबन् हालाहलं परम्।
विजित्य मृत्युं लोकेऽस्मिन्नाम्ना मृत्युञ्जयोऽभवत्॥ १६॥

जिनके पवित्र नाम का स्मरण कर भगवान् शङ्कर भयङ्कर हालाहल विष पीकर भी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर 'मृत्युञ्जय' कहलाये।। १६।।

तां प्रसाद्य रघुश्रेष्ठ जय लङ्कां महामते!
दुष्टप्रणाशिनी देवसभापि च जयप्रदा॥ १७॥

हे महामते! रघुकुलश्रेष्ठ! उनकी प्रसन्नता प्राप्त करके ही लङ्का पर विजय प्राप्त करो। इधर यह दुष्टों का नाश करने वाली देवसभा भी आपको जय प्रदान करने वाली है।। १७।।

स्मर्तव्या पूजितव्या च साम्प्रतं सा त्वया ध्रुवम्।
सङ्ग्रामे जयलाभाय जगतो रक्षणाय च॥ १८॥

इस समय आपको, संग्राम में विजय प्राप्ति तथा जगद्रक्षा हेतु उसी देवी की पूजा तथा स्मरण करना चाहिये।। १८।।

चण्डिकायां परा भक्तिर्विद्यते रावणस्य हि।
कस्तं विजेतुं शक्तोऽत्र देव्या दृष्टिं विना प्रभो!॥ १९॥

क्योंकि रावण की चण्डिका देवी के प्रति उत्कृष्ट भक्ति है। हे प्रभो! देवी की कृपा प्राप्त किये विना उस रावण को कौन जीत सकता है?।। १९।।

उक्तं चापि तयैवैतत्पुरा तुभ्यं महात्मने।
समक्षं देवदेवस्य मम चापि महामते!॥ २०॥

हे महामते! उस देवी ने आपको पहले भी यह बात स्वयं बतायी थी, उस समय मैं तथा भगवान् शङ्कर भी वहाँ उपस्थित थे।। २०।।

अपि जानासि तत्सर्वं स्वयं त्वं मधुसूदन!
तथापि तव वक्ष्यामि यत्पृष्टो जयकारणम्''॥ २१ ॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे ब्रह्मरामचन्द्रयोर्मन्त्रणावर्णनं
नामैकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

अतः हे मधुसूदन! यद्यपि वह सब आप भी स्वयं जानते हैं, परन्तु जब आप विजय का उपाय पूछ ही रहे हैं तो मैं भी आपको स्मरण करा दूँ''।। २१।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'ब्रह्मा एवं रामचन्द्र की मन्त्रणा' नामक
इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥

बयालीसवाँ अध्याय

[श्रीराम एवं ब्रह्मा की मन्त्रणा]

श्रीमहादेव०— **ततः स भगवान् ब्रह्मा श्रीरामाय महात्मने।**
संक्षेपात् पूर्ववृत्तान्तं कथितुं सम्प्रचक्रमे॥ १॥

श्रीमहादेव जी बोले— तब उन भगवान् ब्रह्मा ने महान् आत्मा श्रीराम को संक्षेप से पूर्ववृत्तान्त कहना आरम्भ किया।। १।।

ब्रह्मा०— **"भगवन् तस्य दुष्टस्य वधार्थं प्रार्थिता यदा।**
मया त्वं भगवन् विष्णो! नृषु जन्मपरिग्रहे॥ २॥
तदा त्वमस्य रक्षायै देवीं ज्ञात्वा व्यवस्थिताम्।
तस्याः सम्प्रार्थनार्थाय कैलासमगमः स्वयम्॥ ३॥

ब्रह्मा— हे भगवन्! इस दुष्ट के नाश के लिये जब मैंने आपसे प्रार्थना की थी तब हे भगवन् विष्णो! आपने मनुष्यदेह में अवतरित होना स्वीकार किया था। उस समय आप, इस दुष्ट के देवी द्वारा रक्षित होने के कारण उसकी प्रार्थना करने हेतु आप स्वयं कैलास गये थे।। २-३।।

अहं तथा महेशश्च सहितौ चागतौ ततः।
एतस्यैव वधार्थाय त्वदनुग्रहहेतवे॥ ४॥

उस समय, मैं तथा भगवान् शङ्कर भी आपके साथ इसी प्रयोजन से कि इस दुष्ट का वध हो तथा जगत् की रक्षा हो— इसमें वे आपका सहयोग करें, गये थे।। ४।।

ततस्त्वया महादेवी प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः।
उक्तमेतद्वचो देवि प्रसन्ना भव मे शिवे!॥ ५॥

तब आपने उस देवी को बार बार प्रणाम कर, यही कहा था— 'हे देवि! आप मुझ पर प्रसन्न हों'।। ५।।

रावणस्य वधार्थाय मानुषत्वं व्रजाम्यहम्।
प्रार्थितस्त्रिदशैः सर्वैर्ब्रह्मणा च विशेषतः॥ ६॥

हे देवि! मैं रावण के वध के लिये मनुष्य देह धारण करने जा रहा हूँ; क्योंकि सभी देवताओं तथा विशेषतः ब्रह्मा ने मुझसे यह याच्ञा की है।। ६।।

त्वं तस्य वरदा नित्यं भक्तिस्तस्य दृढा त्वयि।
तत्कथं पातयिष्यामि समरे तं महाबलम्?"॥ ७॥

परन्तु आपने उसको वर दे रखा है। उसकी आप में दृढ़ भक्ति है। तब मैं उस महाबलशाली को युद्ध में कैसे पराजित कर पाऊँगा?।। ७।।

इति वाक्यं तथान्यच्च त्वयोक्तं विस्तरं तदा।
तच्छ्रुत्वा सा यथा प्राह तच्च राम निबोध मे॥ ८॥

ऐसी ही कुछ और बातें आपने उस समय उनसे कही थी। उन्हें सुनकर उन्होंने आप से जो कुछ कहा था, हे राम! उसे भी आप सुन लें।। ८।।

श्रीदेवी०— "त्वयाहं स्मरणीया तु सङ्ग्रामे सर्वदा तदा।
यदा योत्स्यसि लङ्केशं त्वं मायामनुजाकृतिः॥ ९॥

श्रीदेवी— 'हे विष्णो! जब आप मनुष्य देह धारण कर इस लङ्काधिपति रावण से युद्ध करने जायँ, उस समय आप समरभूमि में मेरा निरन्तर स्मरण करें।। ९।।

ततस्त्वां नैव भेत्स्यन्ति बाणा अपि सुदारुणाः।
न भीतिर्भविता वापि दृष्ट्वा तेषां पराक्रमम्॥ १०॥

तब उसके द्वारा छोड़े गये भयङ्कर बाण भी आपको कोई हानि नहीं पहुँचा पायँगे। या उसका अपरिमित बल देखकर भी आपको कोई भय नहीं होगा।। १०।।

कृत्वा च विधिवत्पूजामकाले मम तत्र वै।
विजेष्यसि रणे वीर रावणं मत्प्रसादतः॥ ११॥

हे वीर! उस समय मेरी अकालपूजा विधिवत् करें, उसके प्रभाव से मेरी कृपा प्राप्त कर उस दुष्ट रावण को जीत सकेंगे।। ११।।

ब्रह्मा०— "तस्माद्राम महाबाहो जेतुकामस्तु रावणम्।
स्मरन् युध्यस्व संग्रामे देवीं तां जयदायिनीम्॥ १२॥

ब्रह्मा— 'अतः हे राम! हे महाबाहो! रावण को जीतने की इच्छा हो तो युद्ध में उस जयप्रदा देवी का निरन्तर स्मरण करते हुए ही युद्ध कीजिये।। १२।।

गुरुस्ते मम पुत्रस्तु वसिष्ठो मुनिसत्तमः।
यं मन्त्रं दत्तवांस्तस्यास्तं संस्मृत्य महारणे॥ १३॥

कृत्वा युद्धं राक्षसेन्द्रं सबन्धुं जहि राघव!
पूजायै च महादेव्या यतस्व रघुनन्दन॥ १४॥

तथा आप के गुरु रूप में सत्परामर्श देने वाले मेरे पुत्र मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ने आपको जो मन्त्र प्रदान किया था, उसे भी समरभूमि में स्मरण रखते हुए हे राघव! युद्ध कर उस राक्षसराज रावण को समरभूमि में बन्धु-बान्धव सहित मार गिराइये। तथा हे रघुनन्दन! उस महादेवी के पूजन करने का यत्न कीजिये।। १३-१४।।

तस्या विना प्रसादेन न जेष्यसि कथञ्चन।
प्रवृत्ते शुक्लपक्षे तु रावणस्तां सुरेश्वरीम्॥ १५॥

पूजयेद्यदि नो मृत्युस्तदा तस्य भविष्यति।
तस्मादस्मिन्नकालेऽपि तस्यास्तु परिपूजने॥ १६॥
यतस्वैषां राक्षसानां नाशनाय रघूद्वह!"॥ १७॥

उसका प्रसाद प्राप्त किये विना आप कथमपि युद्ध में विजय प्राप्त नहीं कर सकते। शुक्ल पक्ष आने पर वह रावण उन सुरेश्वरी का पूजन कर लेगा तो उसका वध करना किसी के लिये भी असम्भव हो जायगा। अतः आप को इस अकाल में भी उन राक्षसों के नाश हेतु हे रघुकुलभूषण! उन देवी के पूजन हेतु प्रयास करना चाहिये"।। १५-१७।।

श्रीमहादेव०—इति तस्य वचः श्रुत्वा श्रीरामः प्रत्युवाच तम्।
विजानन्नपि तत्सर्वं लोकानामुपकारकम्॥ १८॥

श्रीमहादेवी जी बोले— यों, ब्रह्माजी के वचन सुनकर, उसे जानते हुए भी लोकहित में श्रीराम ने उनको यह प्रत्युत्तर दिया।। १८।।

श्रीराम०— "सत्यं जयप्रदा देवी सैव साक्षात् परात्परा।
स्मर्तव्या पूजितव्या च सङ्ग्रामे जयमिच्छता॥ १९॥

श्रीराम— "आप उचित ही कह रहे हैं। वह भगवती देवी वस्तुतः विजयदात्री हैं; क्योंकि वह साक्षात् परादेवी है। संग्राम में विजयेच्छु को उसकी पूजा तथा स्मरण करना ही चाहिये।। १९।।

किन्तु नायं स कालो हि यत्र देवार्चनाविधिः।
निद्रिता च महादेवी सम्प्राप्तं त्रिदशेश्वरी॥ २०॥

किन्तु अब इस समय उस पूजा-विधि का शास्त्रप्रतिपादित समय नहीं है; क्योंकि इस समय वह त्रिदशेश्वरी महादेवी निद्रामग्न है।। २०।।

विशेषतः कृष्णपक्षो नायं शुक्लः पितामह!
कथमत्र महादेवीमप्रबुद्धां प्रपूजये॥ २१॥

हे पितामह! अब तो यह कृष्णपक्ष है, शुक्लपक्ष तो है नहीं। फिर कैसे मैं उन निद्राभिभूत देवी की पूजा-अर्चना कर पाऊँगा''।। २१।।

ब्रह्मा०— **''अहं तां बोधयिष्यामि युद्धे तव जयाय वै।**
वधाय राक्षसेन्द्रस्यामङ्गलस्य दुरात्मनः॥ २२॥

ब्रह्मा जी— हे राघव! युद्ध में आपको विजय दिलाने के लिये तथा उस दुष्टात्मा अमङ्गलभूत, राक्षसेन्द्र के नाश हेतु मैं उसे जगा दूँगा।। २२।।

अकालेऽपि महादेवीं पूजयिष्यसि राघव।
विजेष्यसि रणे शत्रुन् मा चिन्तां कर्तुमर्हसि''॥ २३॥

जिससे कि आप असमय में भगवती की पूजा कर सकेंगे, तथा समरभूमि में शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकेंगे''।। २३।।

श्रीरामः०— **''भद्रं ब्रह्मन्! वसिष्ठस्ते तनयो मे गुरुः स्वयम्।**
पिता तस्य भवानेव जगतां च पितामहः॥ २४॥

श्रीराम— ''अच्छा, ब्रह्मदेव! आप के साक्षात् पुत्र महर्षि वसिष्ठ ही तो मेरे गुरु हैं। आप ही उनके पिता हैं तथा समस्त जगत् के तो आप पितामह ही हैं।। २४।।

अतस्त्वं मे गुरुर्देव पूजयिष्यामि चण्डिकाम्।
अहं तु समराशक्तो न स्वयं जेतुमुत्सहे॥ २५॥

अतः हे देव! आप भी इस तरह से मेरे गुरु ही हुए। आपके ही आश्रय से मैं चण्डिका देवी का पूजन कर लूँगा; क्योंकि अब मैं केवल अपने बल के आश्रय से इस युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो सकता न मुझमें उक्त समर में विजय हेतु कोई उत्साह ही है।। २५।।

किन्तु देव्याः प्रसादेन रावणं जेतुमुत्सहे।
सोऽपि चेत् पूजयेदेवं शुक्लपक्षे सुरेश्वरीम्॥ २६॥
ददाति यदि तस्मै वा सुप्रसन्ना वरं स्वयम्।
तत्कथं पातयिष्यामि संग्रामे भीमविक्रमम्''॥ २७॥

किन्तु देवी की कृपा से मैं रावण को जीतने में समर्थ हूँ; क्योंकि यदि उसने भी शुक्लपक्ष आते ही देवी की पूजा आरम्भ कर दी और देवी ने प्रसन्न होकर उसे वर दे दिया तो मैं उस भयङ्कर बलशाली को कैसे जीत पाऊँगा''?।। २६-२७।।

ब्रह्मा०— "तयोक्तं पूर्वमेवैतदवश्यं तव हस्ततः।
भविष्यति रणे मृत्युस्तस्य तत्र न संशयः॥ २८॥

ब्रह्मा— उस देवी ने तो पहले ही कह रखा है कि उस राक्षस की मृत्यु तुम्हारे हाथ से ही होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं॥ २८॥

त्वया सम्पूजिता देवी यदि भूयोऽपि तद्वरम्।
ददाति समरे राम ततस्ते विजयो ध्रुवम्॥ २९॥

अब तुम्हारे द्वारा उनकी पुनः पूजा करने के बाद वे फिर तुम्हें वर दे देती हैं तो हे राम! युद्ध में अवश्य ही आपकी विजय होगी॥ २९॥

स पापात्मा यदा सीतां साक्षाल्लक्ष्मीं पतिव्रताम्।
रिरंसुरानयामास तस्या मूर्त्यन्तरं बलात्॥ ३०॥
तदा सैव विनाशाय तस्य दुष्टविचेतसः।
रुष्टा विपत्स्वरूपेण प्रविवेश पुरीं स्वयम्॥ ३१॥

वह पापी राक्षस जब सीतारूपिणी पतिव्रता लक्ष्मी देवी को, जो भगवती की ही दूसरी मूर्ति (आकार) हैं, रमण करने की इच्छा से बलपूर्वक ले आया था। उसी समय उस देवी ने ही उस दुष्टचित्त से अप्रसन्न होकर एक विपत्ति के रूप में इस नगरी में प्रवेश किया था॥ ३०-३१॥

यत्र धर्ममतिः शान्तिस्तत्र श्रीः कान्तिरेव च।
अधर्मो यत्र सा तत्र विपद्रूपा स्वयं शिवा॥ ३२॥

जहाँ धर्मबुद्धि होती है वहीं शान्ति, श्री, कान्ति आदि गुण रहते हैं। तथा जहाँ अधर्मबुद्धि होती है वहाँ वह देवी स्वयं विपद् (सङ्कट) रूप बन जाती है॥ ३२॥

अहंकृतिवशाद्यो हि कुरुते धर्महेलनम्।
दर्पोपशमनी तस्य सैव देवी महामते॥ ३३॥

अहङ्कार के वश में होकर जो धर्म की अवहेलना करता है, हे महामते! ऐसे अभिमानी का दर्प चूर्ण करनेवाली वही भगवती होती है॥ ३३॥

एक ऐतिहासिक कथानक

अत्रैतच्छ्रणु वक्ष्यामि सेतिहासं रघूद्वह।
यथा सम्भाषितं देव्या स्वयमेव ममाग्रतः॥ ३४॥

हे रघुन्दन! यहाँ एक *इतिहासवार्ता* मुझसे सुनो, जो कि भगवती ने मुझको स्वयं सुनाया था॥ ३४॥

यथा महेश्वरो देवः पञ्चवक्त्रो महामतिः।
तथाहमपि पञ्चास्यः पूर्वमासं रघूत्तम!॥ ३५॥

हे रघुवंशियों में श्रेष्ठ! जैसे महामति भगवान् शङ्कर पाँच मुख वाले हैं वैसे ही कभी मैं भी पाँच मुखवाला ही था।। ३५।।

तत्रैकदा त्वहंकारवशाच्छम्भुमहं पुरा।
अवोचमपि संक्रोधसम्भूतं रघुनन्दन॥ ३६॥

हे रघुनन्दन! उसी समय कभी मैंने अहङ्कारवश भगवान् शङ्कर को क्रोधमय वचन बोल दिये थे।। ३६।।

तच्छ्रुत्वा स महादेवः पञ्चमं मे शिरस्ततः।
प्रचिच्छेद महाक्रोधात्तत्क्षणादेव पश्यतः॥ ३७॥

उससे अप्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर ने उसी समय मेरा पाँचवाँ शिर सबके देखते देखते काट डाला।। ३७।।

ततोऽहं चतुरास्यः सन्नेकदा तां सुरोत्तमाम्।
प्रणन्तुं तां पुरं पूर्वमगमं सह विष्णुना॥ ३८॥

तब मैं चतुर्मुख बनकर एक बार भगवती देवी को प्रणाम करने हेतु उनके आवास पर भगवान् विष्णु के साथ गया।। ३८।।

महारुद्रस्तु तत्रैव प्रणन्तुं तां महामते!
महादुर्गां समायातस्तस्मिन्नेव क्षणे प्रभुः॥ ३९॥

हे महामते! उसी समय उन्हें प्रणाम करने हेतु वहाँ महारुद्र भगवान् शङ्कर भी आये हुए थे।। ३९।।

एवं तत्र त्वहं ब्रह्मा महाविष्णुर्महेश्वरः।
समवेतास्त्रयो राम महादुर्गासमीपतः॥ ४०॥

इस तरह उन महादुर्गा के सन्मुख हम तीनों ही—मैं, भगवान् विष्णु एवं भगवान् शङ्कर एकत्र हो गये।। ४०।।

एतस्मिन्नेव कालेऽहं तां प्रणम्य महामते!
अवोचं त्रिदशेशानीं तस्य शम्भोः समीपतः॥ ४१॥

हे महामते! इसी समय मैं उन भगवती को प्रणाम कर उन शङ्कर के सम्मुख ही आदरणीया भगवती से यों निवेदन करने लगा।।४१।।

'त्वदनुग्रहदर्पेण मातः शम्भुरयं मम।
चिच्छेद पञ्चमं वक्त्रं निगृह्णन् सुरसंसदि॥ ४२॥

'हे माता, आप के अनुग्रह के अभिमानवश इन शङ्कर ने भरी हुई देवसभा में मेरा (पाँचवाँ) शिर काट डाला।। ४२।।

मया किमपराद्धं वा कथं वा मच्छिरः शिवः।
प्रचिच्छेद जगन्मातस्त्रिदशेश्वरवन्दिते'॥ ४३॥

हे भगवति! हे देवताओं द्वारा पूजित! मेरा क्या अपराध था? मेरा शिर इन्होंने क्यों काटा?'।। ४३।।

इति मे वचनं श्रुत्वा ततः सा जगदम्बिका।
मामाह वचनं चेदं सुचारुमुखपङ्कजा॥ ४४॥

मेरा वचन सुनकर, उन चारुवदना जगन्माता ने मुझसे यह कहा—।। ४४।।

श्रीदेवी०— **'वत्स जानीहि कर्माणि शुभसंसूचकानि च।**
तथैवाशुभभोगानां सूचकानि च तानि वै॥ ४५॥

श्रीदेवी— 'हे पुत्र! शुभसूचक तथा अशुभसूचक कर्मों को भलीभाँति जान लो।। ४५।।

शुभानामशुभानां हि कर्मणां पद्मसम्भव!
फलप्रदाहमेवैका स्वतन्त्रास्मि न चापरः॥ ४६॥

हे पद्मयोनि! उन शुभ अशुभ कर्मों की फलदात्री मैं अकेली हूँ; परन्तु मैं भी स्वतन्त्र नहीं हूँ। न कोई दूसरा ही स्वतन्त्र है।। ४६।।

यो यथा कुरुते कर्म शुभं वाप्यशुभं तथा।
तथा फलं भवेत्तस्य नान्यथा तु कदाचन॥ ४७॥

यहाँ वास्तविकता यह है कि जो जैसा शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसको उसका वैसा ही फल भी भोगना पड़ता है अन्यथा नहीं होता।। ४७।।

न तत्र विद्यते कश्चिदप्रियो वा प्रियोऽथ वा।
अवश्यं स्वकृतं कर्म भुङ्क्ते तत्र न संशयः॥ ४८॥

मेरा उस समय न कोई प्रिय है, न कोई अप्रिय। प्रत्येक प्राणी स्वकृत कर्म का फलभोग अवश्य करता है। इसमें कोई संशय नहीं है।। ४८।।

रन्तुं सन्ध्यां स्वतनयां दृष्ट्वा कामेन मोहितः।
अकरोद्यदभिप्रायं तस्मात् तत्फलमाप्तवान्॥ ४९॥

आप काममुग्ध होकर अपनी पुत्री सन्ध्या की तरफ दौड़े थे। आपने जिस अभिप्राय से वह कर्म किया था वैसा ही उसका फल आपको भोगना पड़ा।। ४९।।

शम्भोः क्रोधस्तथान्यच्च निमित्तं केवलं विधे!
वस्तुतः कर्मणस्तस्य फलमेतत्सुनिश्चितम् ॥ ५० ॥

हे विधे! यह शम्भु का क्रोध या ऐसा ही कोई अन्य कार्य, निमित्तमात्र बनता है। वस्तुतः यह तो उस कर्म का ही फल है— यह बात सुनिश्चित रूप से जान लो ।। ५० ।।

यस्तु स्वतनयां दृष्ट्वा क्रियते कामचिन्तनम्।
शिरश्छिन्नं भवेत्तस्य मदिच्छावशतो विधे! ॥ ५१ ॥

हे विधे! जो काममुग्ध होकर अपनी कन्या के प्रति कामचेष्टा करता है, उसी का फल उसे उसके शिरश्छेदन के रूप में मेरी इच्छानुसार मिलता है ।। ५१ ।।

तस्मात्तु ते मयैवैतच्छिरश्छिन्नं महामते!
अधिष्ठात्र्या त्रिशूलं को दोषस्तत्र शिवस्य तु ॥ ५२ ॥

हे महामते! अतः मैंने ही तुम्हारा यह शिर कटवाया था। शिव के त्रिशूल का इसमें क्या दोष है? ।। ५२ ।।

ध्रुवमेतद्विजानीहि धर्माधर्मविरोधिनाम्।
अहमेव नियन्त्री च नान्योऽस्तीह जगत्त्रये ॥ ५३ ॥

यह आप अच्छी तरह समझ लें कि धर्मविरोधी एवं अधर्मविरोधियों को मैं ही नियन्त्रित करती हूँ। इन तीनों लोकों में इस कार्य का कर्ता अन्य कोई नहीं है ।। ५३ ।।

ब्रह्मंस्ते पञ्चमं वक्त्रं कल्पितो हव्यवाहनः।
तस्मिन् हुते सुराः सर्वे तृप्तिमायान्ति शाश्वतीम्' ॥ ५४ ॥

और अब तो हे ब्रह्मदेव! आपका पञ्चम शिर हव्यवाहन (अग्नि) के रूप में निश्चित कर दिया गया है। इसमें हवन करने पर सभी देवताओं को स्थायी तृप्ति मिलती है'' ।। ५४ ।।

ब्रह्मा०— ''ततस्तु त्रिजगद्धात्रीं त्रय एवं सुरोत्तमाः।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तुष्टवुर्भक्तिसंयुताः ॥ ५५ ॥

ब्रह्मा—''इस कथानक के सुनने के बाद हम तीनों ही देवता जगत्परिपालिका भगवती को भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणामकर यों स्तुति करने लगे— ।। ५५ ।।

ब्रह्मविष्णुशिवा ऊचुः—

''उत्पन्नाः पुरुषास्त्रयस्तव सुता ब्रह्मेशनारायणाः,
जानीमो महिमानमेव नहि ते प्राचीनमत्यद्भुतम्।

भूयोऽप्येतदचिन्त्यरूपमहिमैश्वर्यादिभिः प्रोज्झिताः,
स्तोष्यामः कथमेव देवि जगतां धात्रि प्रसीदेश्वरि॥ ५६॥

ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर– "हे देवि! मैं विष्णु तथा शङ्कर ये तीनों ही आपके पुत्र रूप में उत्पन्न हुए हैं। हमलोग भी आपकी अतिविस्मयकारक पुरातन महिमा को नहीं जानते। फिर भी आप के इस अचिन्त्य रूप की महिमा से वियुक्त हम लोग किस तरह आपकी स्तुति कर सकते हैं। अतः आप प्रसन्न होइये।। ५६।।

शिव०— सन्धर्तुं शिरसा सुरेशि पदयो रेणूनहं भक्तितो,
गङ्गायां न्यपतन् कियन्त इति ते सालोक्यसम्पादिनीम्।
यस्यास्ते पदपद्मरेणुमहिमाप्येतादृशस्तां कथं
स्तोष्ये त्वां स्वगुणैः प्रपाहि जगतां धात्रि प्रसीदाम्बिके॥ ५७॥

भगवान् शङ्कर– "हे सुरेश्वरि! आपके चरणों की धूलि को शिर पर धारण करने के लिये मैंने गङ्गा में डुबकी लगायी कि वे कितनी हैं, परन्तु मैं उन्हें गिन नहीं पाया। जब आप की चरणधूलि की यह महिमा है तो आप सालोक्यमुक्तिदायिनी भगवती की स्तुति कैसे कर पायँगे! अतः हे जगद्रक्षिके! आप हम पर प्रसन्न हों।। ५७।।

देवि त्वत्पदपङ्कजं हृदि हृतं तेनैव दत्तेन वै,
जित्वा मृत्युमशेषलोकभयदं तत्कालकूटं बलात्।
पीतं यन्नवनीतवत्स हि गले चाद्यापि संराजते,
दीप्ताजम्बुनिभं सुरेशि जगतां धात्रि प्रसीदाम्बिके"॥ ५८॥

हे देवि! मैंने आपके चरणकमलों को हृदय पर धारण कर रखा है, उसी की कृपा के बल पर मृत्यु को जीत कर, समस्त लोकों को भय प्रदान करने वाले हालाहल (कालकूट) विष को मैंने घी की तरह पी डाला। हे सुरेश्वरि! वह विष आज भी मेरे गले में शोभित हो रहा है मानों चमकता जामुन का (नीला) फल हो। अतः हे माता! आप मुझ पर प्रसन्न हों।। ५८।।

विष्णु०— "यत्राब्धौ भुजगेश्वरस्य शिरसि शश्वच्छयिष्येऽम्बिके!
लक्ष्मीवाण्यनुमोदितस्तनघटस्यन्दैकबिन्दूद्भवः।
सोऽप्यन्तर्न विदंस्तवापि सुतरां त्वां वा शिवे यत्नतः,
स्तोष्येऽहं स्वगुणेन पाहि जगतां धात्रि प्रसीदाम्बिके॥ ५९॥

विष्णु– "हे अम्बिके! मैं जिस समुद्र में शेषनाग के फणों पर निरन्तर शयन करता हूँ। तथा जो आपके स्तनघट से निकले एक बूंद

क्षीर से उद्भूत हुआ है यह लक्ष्मी और सरस्वती द्वारा अनुमोदित भी है। हे शिवे! वह मैं अनेक प्रकार के प्रयत्न के बावजूद विना आपकी कृपा के पारङ्गत नहीं हो सकता। अतः हे जगत्धात्री! हे शिवे! आप अपने सद्गुणों के कारण हमलागों की रक्षा करें, तथा हे माता! हम पर प्रसन्न हों। मैं आपकी स्तुति करूँगा।। ५९।।

त्वं सूक्ष्मा प्रकृतिः परात्परतरा विश्वैकहेतुः शिवे!
त्वां जानन्ति परेण कोऽपि जगतां सृष्ट्यादिशक्त्या अपि।
त्वं माता जगतां त्रयो ह्यपि सुताः कारुण्यदृष्ट्या कृपाम्,
अस्मांस्तु प्रविधाय पाहि जगतां धात्रि प्रसीदाम्बिके"॥ ६०॥

हे शिवे! आप सूक्ष्मा एवं परा प्रकृति हैं। आप विश्व की सृष्टि में एकमात्र कारण हैं। आप को कोई ही, आप की जगत् की सृष्टि आदि करने की शक्ति को देखकर भी, अन्तिम रूप से पहचान सकता है। आप तीनों लोकों की माता हैं, हम तीनों आप के पुत्र हैं। अतः आप हम पर करुणा कटाक्षों से कृपा करें और हमारी रक्षा करें। आप हम पर प्रसन्न हो"।। ६०।।

ब्रह्मा०—**"स्तोत्रं ते न च वेद्मि नापि च परं रूपं न शीलं गुणान्,**
सम्यग्यच्च कियच्छ्रुतीरितमहं जाने तथान्येऽपि वा।
तद् वक्त्रैरपि कोटिभिर्बहुयुगं वक्तुं न शक्तः शिवे!
पाहि त्वं निजसद्गुणेन जगतां धात्रि प्रसीदाम्बिके!"॥ ६१॥

ब्रह्मा— "भगवति! न तो मैं आप की स्तुति करना ही जानता हूँ, न आपके पर रूप के विषय में कुछ अधिक जानता हूँ। न आप के आचार तथा गुणों के विषय में ही जानता हूँ। न श्रुतियों में जो आप की स्तुति की गयी है उसे ही मैं ठीक तरह से जानता हूँ। हे शिवे! दूसरा कोई बुद्धिमान् भी करोड़ों मुखों से हजार युगपर्यन्त भी आपकी स्तुति करना चाहे तो वह उसे पूर्ण नहीं कर सकता। अतः हे देवि! आप तो अपने सद्गुणों के प्रभाव से हमलोगों की रक्षा करें। हे माता! आप हम पर प्रसन्न हों"।। ६१।।

ब्रह्मा०— **"इत्यादिस्तुतिवाक्यैस्तां स्तुत्वा नत्वा च भक्तितः।**
प्रययुस्ते निजं स्थानं ब्रह्माद्या रघुनन्दन॥ ६२॥

ब्रह्मा— "हे रघुनन्दन! उपर्युक्त स्तुतिवचनों से वे ब्रह्मा आदि तीनों देवता भगवती का स्तवन कर, अन्त में उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम कर अपने अपने स्थान पर चले गये।। ६२।।

तयैतदुक्तं राजेन्द्र स्वयमेव ममाग्रतः।
अयं चापि सुदुष्टात्मा नैनं सा परिरक्षति॥ ६३॥

हे राजेन्द्र! ये समग्र बातें उन भगवती ने मेरे सामने ही आप से कहीं थीं। यह राक्षस भी अब दुष्ट आचरण वाला हो गया है, अतः अब वे भगवती भी इसकी रक्षा नहीं करेंगीं।। ६३।।

सीता मन्दोदरीगर्भे सम्भूता चारुरूपिणी।
क्षेत्रजा तनयाप्यस्य रावणस्य रघूत्तम!॥ ६४॥
तां लोभादपहृत्यैव रिरंसुः काममोहितः।
यदा लङ्कां समायातस्तदा लङ्का गताभवत्॥ ६५॥

सुवदना भगवती सीता कभी मन्दोदरी के गर्भ से भी उत्पन्न हुई थीं। अतः हे राघव! यह उस रावण की क्षेत्रजा पुत्री ही हुई। उसको यह राक्षस काममुग्ध होकर रमण करने की इच्छा से अपहृत कर, जब लाया तभी यह लङ्का एक तरह से विनष्ट हो चुकी थी।। ६४-६५।।

जयदा धर्मनिष्ठानां पापिनां नाशकारिणी।
एकैव सा श्रेष्ठतमा भवानी भुवनेश्वरी॥ ६६॥

यह भवानी देवी धर्मपूर्वक आचरण करने वालों को जय प्रदान करती है, पापियों का नाश करने वाली है। यह भुवनेश्वरी ही लोक में एकमात्र परमश्रेष्ठ है।। ६६।।

तामभ्यर्चयतां नित्यं सत्यं सत्यं रघूत्तम!
न विद्यते क्वचिद्धानिः स्वर्गे मर्त्ये रसातले॥ ६७॥

हे रघूत्तम! यही परमसत्य है कि उस देवी की नित्य पूजा-अर्चना करनेवालों की स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल किसी भी लोक में कैसी भी हानि नहीं हो पाती।। ६७।।

तस्मात्त्यक्त्वा भयं राम विविधैरुपचारकैः।
शत्रूणां निधनाकाङ्क्षी समरे शत्रुसूदन॥ ६८॥
अकालेऽपि महादेवीं परिपूज्य विधानतः।
विजेष्यसि रणे शत्रून्मा चिन्तां कर्तुमर्हसि॥ ६९॥

अतः हे युद्ध में शत्रुघातिन् राम! सभी तरह से भय त्यागकर अनेक साधनों से, शत्रुओं के वध की इच्छा रखने वाले तथा अकाल में भी विधिपूर्वक भगवती की पूजा करके आप शत्रुओं पर विजय प्राप्त करेंगे। इस विषय में आप कुछ भी चिन्ता न करें।। ६८-६९।।

धर्मो विजयदस्तत्र देवी यत्र प्रपूजिता।
अधर्मो यत्र तत्रैषा विपद्रूपा रघूत्तम!॥ ७०॥

जहाँ देवी की नित्य पूजा होती है, वहाँ धर्म विजय प्रदान करता है। और हे रघूत्तम! जहाँ अधर्म बढ़ता है वहाँ यह भगवती विपत्ति रूप में प्रकट होती है।। ७०।।

त्वं शुद्धप्रकृतिः सर्वजगतां हितकारकः।
न्यायवर्त्मप्रवृत्तश्च ततस्ते विजयो ध्रुवम्॥ ७१॥

आप साधुस्वभाव हैं, समस्त जगत् का हित करने के लिये कटिबद्ध हैं। न्यायपथ का अनुसरण कर रहे हैं। अतः आपकी विजय निश्चित है।। ७१।।

येन यच्च कृतं कर्म शुभं तस्य च यत्फलम्।
तद्भुक्तं नावशिष्टं तत्किञ्चित्तस्य तु वर्तते॥ ७२॥

उस (रावण) ने जो शुभ कर्म किया है, उसका जो फल है, उसने सब भोग लिया है, जो कुछ अवशिष्ट है उसे भी वह भोग लेगा।। ७२।।

इदानीं कृतदुष्कर्मफलं तु समुपस्थितम्।
तवैव बाणजालेन निहतः सम्पतिष्यति॥ ७३॥

अब तो उस का किया हुआ दुष्कर्म और उसका कुफल ही उपस्थित है, उसके प्रभाव से तुम्हारे बाणसमूह से भूमि पर गिरकर वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होगा।। ७३।।

तस्माद्राम स्थिरो भूत्वा देवीं सम्पूज्य भक्तितः।
घातयिष्यसि लङ्केशं मा चिन्तां कर्तुमर्हसि"॥ ७४॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे रामब्रह्मणोर्मन्त्रणावर्णनं
नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४२॥

अतः हे राम! स्थिरचित्त होकर, भक्तिपूर्वक भगवती की आराधना कर आप इस लङ्काधिपति का वध करने में अवश्य सफल होंगे। अतः इस विषय में कोई चिन्ता न करें"।। ७४।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
राम एवं ब्रह्मा की मन्त्रणा का वर्णन नामक
बयालीसवाँ अध्याय समाप्त॥

तेतालीसवाँ अध्याय

[दुर्गालोक का वर्णन]

श्रीमहादेव०— इत्याकर्ण्य रघुश्रेष्ठो ब्रह्मवक्त्रान्महामुने!
पुनस्तं परिपप्रच्छ प्रसन्नात्मा प्रसन्नधीः ॥ १ ॥

श्रीमहादेव जी— हे महामुने! श्रीरामचन्द्र ने, ब्रह्मा जी के श्रीमुख से निकले ये वचन सुनकर, प्रसन्न होकर प्रसन्नबुद्धि से उनसे पुनः यह प्रश्न किया ।। १ ।।

श्रीराम०— "ब्रह्मन् विजयदा देवी सैव सत्यं महामते!
पूजयिष्यामि तां भक्त्या जयकामो महारणे ॥ २ ॥

श्रीराम— हे ब्रह्मन्! हे महामते! यह बात सत्य है कि वह देवी ही विजयदायिनी हैं। मैं इस महायुद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये उन्हीं की पूजा करूँगा ।। २ ।।

इदानीं तु हि सा देवी जयदुर्गा महेश्वरी।
कुत्रास्ति कीदृशं रम्यं रूपं तस्या वद प्रभो!" ॥ ३ ॥

हे प्रभो! मुझे अब आप यह बताइये कि वह विजय प्रदान करनेवाली देवी इस समय कहाँ विराजमान हैं? और उनका सुन्दर मनोमोहक रूप कैसा है? ।। ३ ।।

ब्रह्मा०— "शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि स्वयं जानासि यद्यपि।
तथापि पावनं पुण्यं श्रोतृणां भाषतां यतः ॥ ४ ॥

ब्रह्मा— हे राजन्! यद्यपि आप स्वयं भी जानते हैं; फिर भी आपने पूछा है तो मैं भी आपको बताऊँगा; क्योंकि यह सब कुछ पूछने और सुनने वाले— दोनों के लिये ही पुण्यप्रद है ।। ४ ।।

सर्वगा सर्वसंस्था च विश्वेषां पीठवासिनी।
ब्रह्माण्डमध्यसंस्था च तद्बहिर्वासिनी तथा ॥ ५ ॥

हे राजन्! उस भगवती की सर्वत्र गति है, वह सर्वत्र रहती है, समस्त पीठों में वास करती है। वह ब्रह्माण्ड में भी रहती है और उससे बाहर भी ।। ५ ।।

स्वर्गे मर्त्ये हिमाद्रौ च कैलासे शिवसन्निधौ।
या मूर्त्तिर्भगवत्यास्तु सैव पौराणिकी मता ॥ ६ ॥

भगवती की मूर्त्ति— स्वर्ग में, मर्त्यलोक में, हिमालय पर, कैलास पर्वत पर, तथा भगवान् शङ्कर के पास जो उन भगवती की मूर्ति है वही '**पौराणिकी**' मानी जाती है।। ६।।

ब्रह्माण्डबाह्यसंस्था च या मूर्तिस्तान्त्रिकी परा।
सुगोप्या सा महादुर्गा नित्यानन्दमयी तथा॥ ७॥

ब्रह्माण्ड के बाहर जो उन भगवती की मूर्ति है वह '**तान्त्रिकी मूर्ति**' कहलाती है। वह महादुर्गा अत्यन्त गोपनीय तथा नित्य आनन्दप्रदा है।। ७।।

तस्याः स्थानं तु यादृक् च केन वक्तुं प्रशस्यते।
किञ्चिद्वक्ष्यामि तद्राम शृणुष्वावहितो मम॥ ८॥

उनके स्थान का जैसा का तैसा वर्णन करना तो किसी भी पुरुष के लिये सम्भव नहीं है, तो भी हे राम! मैं यथामति उसका वर्णन करता हूँ, आप सावधानतया सुनें।। ८।।

पातालभूतलस्वर्गब्रह्मलोकाश्च राघव!
ब्रह्माण्डान्तःस्थिताः सर्वे क्रमादूर्ध्वं सुदूरतः॥ ९॥

हे राघव! पाताल, भूलोक, स्वर्गलोक तथा ब्रह्मलोक ये सभी लोक ब्रह्माण्ड के अन्तःस्थित ही कहलाते हैं। और ये क्रमशः एक दूसरे के ऊपर तथा बहुत दूरी पर स्थित हैं।। ९।।

शिवलोक–वर्णन

ब्रह्माण्डबाह्याद्रुचिराद् ब्रह्मलोकात् समुत्थितः।
लक्षयोजनमात्रं तु शिवलोको निरामयः॥ १०॥

शिवलोक— ब्रह्माण्ड से बाह्य, सुन्दर ब्रह्मलोक से ऊपर की तरफ स्थित निरामय शिवलोक एक लाख योजन दूर है।। १०।।

यत्र प्रमोदते नित्यं प्रमथैः प्रमथेश्वरः।
आद्योऽनिर्वचनीयोऽसौ नित्योत्सवसुसंवृतः॥ ११॥

जहाँ भूतभावन भगवान् शङ्कर नित्य अपने अनुचरों के साथ सुखपूर्वक विराजमान रहते हैं। वे इस जगत् के आदि हैं, अवर्णनीय हैं तथा निरन्तर नित्य नये उत्सवों मे व्यापृत रहते हैं।। ११।।

शिवभक्ताश्च ये लोकास्ते तं प्राप्य मनोहरम्।
मोदन्ते देवदेवस्य प्रसादात् करुणानिधेः॥ १२॥

जो शिवभक्त प्राणी हैं, वे उस मनोहर लोक को प्राप्त कर उन देवाधिदेव की कृपा से वहाँ सुखपूर्वक वास करते हैं।। १२।।

विष्णुलोक–वर्णन

लक्षयोजनमात्रं तु तदूर्ध्वं विष्णुलोककः।
सार्धं कमलया शङ्खचक्रपद्मगदाधरः॥ १३॥

विष्णुलोक– उस (शिवलोक) से ऊपर विष्णुलोक है। वह भी एक लाख योजन तक विस्तृत है। जहाँ शङ्ख–चक्र–गदा–पद्मधारी भगवान् विष्णु कमला के साथ सुखपूर्वक निवास करते हैं।। १३।।

सोऽप्यनिर्वचनीयो वै लोकः श्रीकमलापतेः।
शुद्धज्योतिर्मयो नानारत्नजालविचित्रितः॥ १४॥

भगवान् विष्णु का वह लोक भी अनिर्वचनीय है, शुद्ध ज्योतिर्मय है, नानाविध रत्नजालों से चित्रित है।। १४।।

विष्णुभक्तिरता ये च देवगन्धर्वकिन्नरैः।
सालोक्यं समनुप्राप्तास्ते तु विष्णुप्रभावतः॥ १५॥
मोदन्ते नगरे तत्र नित्यं मुदितमानसाः।
द्वारसंरक्षको यत्र गरुडः पतगाधिपः॥ १६॥

विष्णुभक्ति में लगे जो प्राणी, देव–गन्धर्व–किन्नरों के साथ सालोक्यमुक्ति को प्राप्त हुए हैं; वे भी भगवान् विष्णु के प्रभाव से उस नगर में निरन्तर प्रमुदित चित्त से वहाँ निवास करते हैं, जहाँ कि द्वारपाल के रूप में पक्षिराज गरुड़ विराजमान हैं।। १५–१६।।

गौरीलोक–वर्णन

शम्भुलोकस्य वामे तु गौरीलोको मनोरमः।
विचित्रमणिमाणिक्यसमूहैरतिशोभितः॥ १७॥

गौरीलोक– उपर्युक्त शिवलोक के वामभाग में मनोहर गौरीलोक स्थित है, जो कि चित्र विचित्र मणि–माणिक्यादि रत्नराशियों से शोभासम्पन्न है।। १७।।

तत्र या वैदिकी मूर्तिर्देव्या दशभुजापरा।
अतसीकुसुमाभासा सिंहपृष्ठनिषेदुषी॥ १८॥

वहाँ जो देवी दुर्गा की दशभुजावाली 'वैदिकी' मूर्ति विराजमान है, वह अलसी के पुष्प की तरह आभा वाली तथा सिंहपृष्ठवाहिनी है।। १८।।

समास्ते मन्दिरे रम्ये षोडशद्वारशोभिते।
विचित्ररत्नवत्स्तम्भे पताकाभिरलंकृते॥ १९॥

वह सोलह द्वारों से शोभित, विचित्र रत्नजटित स्तम्भों से युक्त तथा विविध पताकाओं से अलङ्कृत मनोरम मन्दिर में स्थित है।। १९।।

स्तुवद्भिः सर्वदा देवमुनीन्द्रैरतिशोभिते।
अनन्तचेटिकावृन्दैर्भैरवैश्चैव रक्षिते॥ २०॥

वहाँ सर्वदा देवता एवं मुनिजन उन भगवती की स्तुति करते रहते हैं। वह स्थान अनन्त दासियों (चेटिकाओं) के समूह से घिरे हुए भैरवों से रक्षित है।। २०।।

ब्रह्माण्डवासिभिः सर्वैर्ब्रह्माद्यैर्जगदम्बिका।
पूज्यते समुपागत्य शम्भुना विष्णुना तथा॥ २१॥

वहाँ वह जगन्माता, ब्रह्माण्डवासी ब्रह्मा आदि सभी देवताओं से पूजा प्राप्त करती हैं। तथा समय समय पर भगवान् शङ्कर तथा विष्णु भी वहाँ आकर उनकी पूजा करते हैं।। २१।।

गोलोक–वर्णन

सर्वैर्वैकुण्ठलोकैश्च शुद्धज्योतिर्मयप्रभे।
गोलोके राधया यत्र कृष्णो विहरते प्रभुः॥ २२॥

गोलोक– सभी वैकुण्ठ लोकों से विशिष्ट शोभायुक्त एवं शुद्ध ज्योतिर्मय आभा वाला गोलोक है, जहाँ भगवान् कृष्ण राधा के साथ विहार करते हैं।। २२।।

विचित्ररत्नसन्नद्धपुरे कल्पद्रुमावृते।
ब्रह्मर्षिवेदध्वनिभिः परितः प्रतिनादिते॥ २३॥

गोलोक में विचित्र रत्नमय पुर (आवास) हैं, वह कल्पवृक्षों से आवृत है, ब्रह्मर्षियों से निरन्तर की गयी वेद–ध्वनियों से वह गूँजता रहता है।। २३।।

रत्नस्तम्भसमुद्दीप्ते मन्दिरे भगवान् स्वयम्।
स्वेच्छायां रमते देव्या राधया द्विभुजो हरिः॥ २४॥

ऐसे ही रत्नस्तम्भों पर खड़े एक विशिष्ट भवन में दो भुजाओं वाले भगवान् कृष्ण स्वेच्छा से राधा के साथ विहार करते हुए वास करते हैं।। २४।।

देवीलोक–वर्णन

तत ऊर्ध्वं रघुश्रेष्ठ पञ्चाशत्कोटियोजनम्।
स्थानमस्ति महादेव्या यत्र देवी सुगोपिता॥ २५॥

देवीलोक— हे रघुश्रेष्ठ! उस (गोलोक) से भी पचास करोड़ योजन ऊपर महादेवी का लोक (स्थान) हैं जहाँ देवी सुरक्षित विधि से वास करती हैं।। २५।।

यत्कलाकोटिकोट्यंशा राधा कृष्णस्य गेहिनी।
स्वयं विहरते ब्रह्मविष्णुरुद्रादिदुर्लभा॥ २६॥

जिसकी एक कला (अंश) के करोड़वें भाग की भी वह *कृष्ण की राधा समानता नहीं कर पाती*। उस देवी का दर्शन ब्रह्मा, विष्णु एवं शङ्कर को भी दुर्लभ है। ऐसी वह देवी उस लोक में वास करती हैं।। २६।।

देवीमहिमा

वेदागमस्मृतिषु यत्परिपूर्णमेकं
वेदान्तकादिविविधेषु च दर्शनेषु।
ब्रह्मेति निश्चितमनेकविधप्रमाणैः
साक्षात्तु तद्भगवती खलु सैव नित्या॥ २७॥

वेदों, आगमों एवं स्मृतियों द्वारा जो तत्त्व परिपूर्णरूप से प्रतिपादित है, तथा वेदान्त आदि जो विविध दर्शनों में जिसको 'परब्रह्म' रूप में अनेक प्रमाणों से निश्चित किया गया है वह परमतत्त्व यही साक्षात् भगवती है और वह नित्य है।। २७।।

नित्यातिसौख्यविरहाखिलनित्यदेहा
विश्वाश्रया रघुपते परमापि सैव।
तस्याः पदाम्बुजनखद्युतिमेव सर्वे
नानाकठोरतपसा परिलोकयन्ति॥ २८॥

हे रघुपते! वह देवी नित्य हैं—सभी देहों में निर्लेप भाव से विराजमान तथा विश्व की आश्रयस्थली है। सभी ध्यानी उस देवी के चरणनख की एक झलक भी कठोर तप के बाद ही देख पाते हैं।। २८।।

ध्यायन्ति चानिशमहोऽखिलयोगवन्द्या
तद् ब्रह्म चाकृतिविहीनमपि ब्रुवन्ति।
तस्या निजांशजनितस्य महेश्वरस्य
विष्णुश्च यत्परिहितं श्रुतिभिश्च तत्त्वम्॥ २९॥

एक तरफ तो योगिजन सभी योग–साधनों से वन्दनीय उस देवी का ध्यान करते हैं, दूसरी तरफ वे ही उस ब्रह्म को निराकार कहते हैं। उसके

स्वकीय अंश से जनित महादेव की, वे ही परमहेतु हैं तथा भगवान् विष्णु ने भी श्रुतियों द्वारा गीत गाते हुए उसी तत्त्व को धारण कर रखा है।। २९।।

तत्स्वांशजत्वविषया खलु तद्विराजन्।
पारं परं रघुपते न पुनस्तु साक्षात्॥ ३०॥

हे रघ्रवते! वे सभी उसके अंश से उत्पन्न हुए माने जा सकते हैं, परन्तु वह परमतत्त्व है, जो वस्तुतः पृथक् है।। ३०।।

यथाब्धिसङ्गता गङ्गा भिद्यते न समुद्रतः।
तथा ब्रह्मांशजातास्ते भिद्यन्ते ब्रह्मणोऽपि न॥ ३१॥

हाँ, यह कहा जा सकता है कि जैसे समुद्र में मिली गङ्गा समुद्र से पृथक् नहीं है, उसी तरह ब्रह्म के अंश से समुद्भूत वे देवता भी उससे पृथक् नहीं हैं।। ३१।।

सैव सञ्जायते विश्वं सैव सम्पालयत्यपि।
सैव संहरते प्रान्ते नान्यत्तत्र तु कारणम्॥ ३२॥

वस्तुतः वह देवी ही विश्व को उत्पन्न करती हैं, उसका पालन करती हैं, अन्त में वही उसका संहार करती हैं– इसमें कोई अन्य हेतु नहीं है।। ३२।।

यथा कृत्रिमहस्त्यादिः परिस्पन्दादिहेतुना।
प्राधान्यात्कुहकस्यैव तथा तस्याश्च हेतुना॥ ३३॥

जैसे काष्ठनिर्मित हस्ती आदि में स्पन्दन आदि क्रियाएँ जादूगर के मायाजाल से होती रहती हैं, उसी तरह उस देवी की हेतुता समझनी चाहिये।। ३३।।

ये तु तामतिदुर्गम्यां सर्वेषां मूलकारणम्।
न जानन्ति महामोहत् तत्तत्तद्ब्रह्मादिदैवतम्॥ ३४॥
सृष्ट्यादिहेतुं जानन्ति प्राधान्याद्रघुनन्दन!
यथा घटस्य हेतुं तं कुलालमपहाय वै॥ ३५॥

हे रघुनन्दन! जो अज्ञानी जन उस महादेवी को सर्वजगत् का मूल कारण नहीं मानते तथा महा मोहवश ब्रह्मा आदि देवताओं को उस सृष्टि का कारण मानते हैं तो प्राधान्य के कारण उन को वैसा भ्रम होता रहता है। जैसे घट की रचना में कुम्भकार को छोड़कर अन्य कोई हेतु नहीं है।। ३४–३५।।

प्राधान्यात्कल्प्यते दोषाद्घटादिषु विमूढधीः।
तथैवान्यत्र सृष्ट्यादिहेतुतायाश्च कल्पना॥ ३६॥

जैसे कोई मूढ़ पुरुष घटादि में कुम्भकारादि के अतिरिक्त प्राधान्य के कारण किसी अन्य को रचयिता मानता है, उसी तरह कुछ अविवेकी सृष्ट्यादि की रचना में देवी के अतिरिक्त किसी अन्य देवता में रचयिता की कल्पना करते हैं।। ३६ ।।

प्राधान्येन रघुश्रेष्ठ मुग्धानामिह मायया।
जगदाधारभूता या सर्वरक्षणकारिणी॥ ३७॥

हे रघुश्रेष्ठ! उनकी यह कल्पना प्राधान्य के कारण ही है। वस्तुतः इस जगत् की आधारभूत तो वह जगद्रक्षणकरणी भगवती ही है।। ३७ ।।

परमा मोक्षदा सैव मोहबन्धप्रवर्तिनी।
सैव सिन्धौ निमग्नस्य विष्णोः संरक्षणाय वै॥ ३८॥

वे ही परम मोक्षदा हैं, वे ही मोहबन्ध की प्रवर्त्तिका हैं। वे ही समुद्र में डूबते हुए भगवान् विष्णु की रक्षिका हैं।। ३८ ।।

वटपत्रमयी भूत्वा तं दधार महाम्भसि।
सैव चैतन्यरूपा च तया च रहितं जगत्॥ ३९॥
विभाति शववत् सर्वं तद्युक्तं च रघूद्वह।
चैतन्यं समवाप्नोति स्वयन्त्रं यन्त्रिणा यथा॥ ४०॥

वट के पत्र के रूप से उन्होंने ही समुद्र में डूबते हुए भगवान् विष्णु की रक्षा की थी। वही चैतन्यमयी है। उससे रहित यह समस्त जगत् शव (मुर्दा) के समान लगता है, तथा हे रघुनन्दन! उन देवी से सम्पृक्त होकर चैतन्य प्राप्त करता है। जैसे कोई यन्त्र का स्वामी उस यन्त्र को चला रहा हो।। ३९–४० ।।

सैव कृतेच्छया नित्यं लीलया परमं शिवम्।
स्वमूर्त्त्यन्तरमेवैका स्वस्मिन् विहरते सदा॥ ४१॥

वही अपनी इच्छा से अपनी ही एक दूसरी मूर्ति के रूप में भगवान् शिव का निर्माण कर उसमें नित्य निरन्तर विहार करती हैं।। ४१ ।।

सैव दुर्गतिमापन्नान्निस्तारयति दुर्गतान्।
तस्मात् सा प्रोच्यते लोके दुर्गा दुर्गतिनाशिनी॥ ४२॥

वही दुःखसागर में डुबकी लगाते दुःखी प्राणियों का दुर्गति से उद्धार करती है। अतएव वह भगवती दुर्गा देवी लोक में 'दुर्गतिनाशिनी' नाम से प्रसिद्ध हैं।। ४२ ।।

मन्दभाग्योऽपि संस्मृत्य तस्या नामवराक्षरम्।
सौभाग्यं समवाप्नोति तस्मात् सा परमेश्वरी॥ ४३॥

अधिक से अधिक मन्दभाग्य वाला पुरुष भी उनके नामस्मरण मात्र से सौभाग्य सम्पन्न हो जाता है, इसीलिये इन्हें 'परमेश्वरी' कहा जाता है।। ४३।।

मन्दभाग्यपरित्राणी प्रोच्यते वेदवादिभिः।
सैव देवी परा विद्या लोकानां रघुनन्दन॥ ४४॥

इसीलिये वेदको मानने वाले इन्हें 'मन्दभाग्यों से परित्राण–कारिणी' बताते हैं। और हे रघुनन्दन! वह देवी इस लोक में परा विद्या हैं।। ४४।।

चतुर्वर्गप्रदा सर्वविपक्षक्षयकारिणी।
शृणु सङ्कीर्तये वत्स स्थानं तस्यास्तु यादृशम्॥ ४५॥

वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष– इस चतुर्वर्ग की प्रदात्री हैं। सभी शत्रुओं का नाश करनेवाली हैं। अतः हे वत्स! मैं उनके नाम–संकीर्तन हेतु उनका पवित्र स्थान आप से यथातथा रूप से वर्णन करता हूँ।। ४५।।

रत्नद्वीप–वर्णन

रत्नद्वीपं महाबाहो सुधासागरवेष्टितम्।
कल्पद्रुमसमाकीर्णललितं चारुहाटकैः॥ ४६॥

रत्नद्वीप– हे महाबाहो! सुधासमुद्र से घिरा हुआ सुन्दर सुवर्ण से मण्डित कल्पवृक्षों से समाकीर्ण (व्याप्त) एक 'रत्नद्वीप' है।। ४६।।

वसन्तः सर्वदा तत्र नानर्तुर्वर्तते सदा।
नदी त्रिपथगा तत्र सुखाम्बुरूपधारिणी॥ ४७॥

वहाँ वसन्त ऋतु ऋतुक्रम के विना ही, बारहों मास विद्यमान रहता है। गङ्गा नदी किनारों तक मधुर जल से भरी रहती है।।४७।।

नानामणिनिभास्तत्र पक्षिणश्चारुनिःस्वनाः।
देवांशा असुरास्ते तु पुण्यात्मानो महामते॥ ४८॥
गायन्ति सर्वदा देवीगुणभेदाभिभाषितम्।
कालोचितेन रागेण मधुरध्वनिभिर्मुदा॥ ४९॥

विविध मणियों के समान चित्र विचित्र पक्षिगण मधुर–ध्वनि में निनाद करते रहते हैं तथा हे महामते! वहाँ के निवासी पुण्यात्मा असुर भी प्रसन्नतापूर्वक उस देवी का समयानुसार गुणगान मधुर ध्वनि में करते रहते हैं।। ४८–४९।।

सुगन्धः सर्वदा वाति वायुर्दक्षिणसम्भवः।
मन्दं मन्दं रघुश्रेष्ठ परमाह्लाददायकः॥५०॥

हे रघुनन्दन! वहाँ परम आह्लाददायी दक्षिण का पवन मन्द–मन्द एवं सुगन्धित रूप से सदा बहता रहता है।। ५०।।

भवानीलोकसंस्थानमेतत्पुण्यानुसारिणः ।
सालोक्यं समनुप्राप्ताः सन्ति ते तत्र देहिनः॥५१॥

यह हुआ उस देवी लोक का रेखाचित्र! उस देवीलोकवासी प्राणी अपने पुण्य कर्मानुसार सालोक्यमुक्ति प्राप्त कर वहाँ पहुँचते हैं।। ५१।।

नित्यानन्दमयास्ते तु नित्यविज्ञानशालिनः।
तेषां देवीसमा नार्यः पुमांसो भैरवोपमाः॥५२॥

वे नित्य आनन्द तथा नित्य विज्ञान में मग्न रहते हैं। उन लोकों की अन्य नारियाँ भी देवी के तुल्य ही होती हैं तथा पुरुष भैरव के समान होते हैं।। ५२।।

सर्वेषां मन्दिरं चारुरत्नहेमपष्कृितम्।
सुरम्यरत्नजालैस्तु रचितैस्तोरणैरलम्॥५३॥

इन सभी के आवास (भवन) सुन्दर सुवर्ण और रत्न से निर्मित होते हैं। उन भवनों के तोरण (बहिर्द्वार) रम्य रत्नों से जटित होते हैं।। ५३।।

यैर्गीतनृत्यवाद्यैश्च तोषिता जगदम्बिका।
ते तत्स्थानमनुप्राप्य नित्यं मुदितमानसाः॥५४॥
गायन्ति चैव नृत्यन्ति वादयन्ति समुत्सुकाः।
एवमानन्दसन्दोहमयं तद्रघुनन्दन!॥५५॥

जिन भक्तों ने उस जगन्माता को अपने नृत्यगीत एवं वाद्यों से प्रसन्न कर लिया है, वे उस पुण्य के प्रभाव से उसके लोक में पहुँचकर नित्य सुखपूर्वक वहाँ पहुँचने के हर्ष में वहाँ भी उत्सुकतापूर्वक, भक्तिपूर्वक नाचते गाते तथा वाद्य ध्वनि करते रहते हैं।। ५४–५५।।

भगवन् भगवत्यास्तु वाचातीतं रघूद्वह!
तत्र देव्या पुरं चित्रं रत्नप्राकारतोरणम्॥५६॥

हे रघुनन्दन! उस भगवती देवी का वह लोक वाणी से अवर्णनीय, चित्र विचित्र रत्नजटित प्राकार एवं तोरणों से युक्त है।। ५६।।

दीप्तं हि चन्द्रकान्त्यादिमणिभिः कौस्तुभैरलम्।
चतुर्दिक्षु चतुर्द्वारं भैरवैरुपलक्षितम्॥५७॥

वहाँ स्थान स्थान पर चमकती चन्द्रकान्त एवं कौस्तुभ मणियाँ जड़ी हुई हैं। वहाँ चारों दिशाओं में चार द्वार हैं जहाँ चार भैरव निरन्तर पहरा देते रहते हैं।। ५७।।

रत्नदण्डधरैः शूलधारिभिर्भीमलोचनैः।
भैरव्यः शतशस्तत्र द्वाररक्षणतत्पराः॥ ५८॥

वे भैरव रत्नजटित दण्ड, भयङ्कर त्रिशूल हाथ में लिये रहते हैं, उनके नेत्र भयानक होते हैं। इसी तरह सैकड़ों भैरवियाँ भी उस लोक की रक्षा में निरन्तर तत्पर रहती हैं।। ५८।।

कुर्वन्त्यो गल्लवाद्यानि धावन्त्यो दण्डपाणयः।
दोधूयमाना विविधाः पताकास्तत्र राघव॥ ५९॥

हे राघव! वे (भैरवियाँ) अपने मुखों से विविध ध्वनियाँ (किलकारियाँ) निकालती रहती हैं। हाथों में दण्ड लिये इधर-उधर दौड़ती रहती हैं। उस लोक में भवनों पर, विविध प्रकार की पताकाएँ फहराती रहती हैं।। ५९।।

ध्वजाश्चापि मनोज्ञाश्च विराजन्ते सुनिर्मलाः।
तन्मध्ये सन्ति चित्राणि चत्वराणि बहूनि च॥ ६०॥

इसी प्रकार, सुन्दर स्वच्छ ध्वजाएँ भी उन भवनों पर शोभित होती हैं। उन भवनों के आगे मनोहर चित्र विचित्र चबूतरे बने होते हैं।। ६०।।

प्रासादैर्वेष्टितान्येव तत्रापि द्वारपालकाः।
मध्ये त्वन्तःपुरं देव्यास्तत्र द्वारी गणाधिपः॥ ६१॥
षडाननश्च देव्यास्तौ पुत्रौ रघुकुलोद्भव।
इच्छन्तौ दर्शनं देव्यास्तत्र ध्यानपरायणौ॥ ६२॥

उस लोक में ऊँचे ऊँचे महलों से घिरा हुआ तथा द्वारपालों से सुरक्षा प्राप्त बीच में देवी का एक मन्दिर हैं जिस के प्रधान प्रहरी देवीपुत्र गणेश जी कार्त्तिकेय के साथ विराजमान रहते हैं। साथ ही हे रघुनन्दन! वे दोनों ही देवी के दर्शन की लालसा से निरन्तर ध्यानमग्न रहते हैं।। ६१-६२।।

देवी के ऐश्वर्य

ब्रह्माण्डकोटिकोटिस्था ब्रह्माणः कोटिकोटयः।
कोटयो हलहस्ताश्च कोटयो हरयः शिवाः॥ ६३॥
सन्ति राम महाबाहो! किमन्यच्च ब्रवीमि ते।
तस्मिन्नन्तःपुरे रम्ये विचित्रमणिमण्डपे॥ ६४॥

ज्वलद्रत्नमये स्तम्भे तोरणे मौक्तिकोज्ज्वले।
रत्नप्रदीपावलिभिः प्रसन्नेऽपि दिगन्तरे॥ ६५॥

उस लोक में, अन्य ब्रह्माण्डों के वासी करोड़ों ब्रह्मा वास करते हैं तथा साथ ही हलधारी करोड़ों विष्णु तथा शङ्कर भी वहाँ वर्तमान हैं। हे राम! मैं आपके उस द्वीप की विशेषताएँ कहाँ तक वर्णन करूँ! उस विचित्र मणिमण्डप युक्त रमणीय अन्तःपुर में कान्तिमय रत्नों से जटित स्तम्भ हैं, जिसके बहिर्द्वारों पर मोतियों की मालाएँ शोभित हैं, उसके चारों तरफ के स्थान रत्नदीपों की प्रभाओं से आलोकित हैं।। ६३–६५।।

रत्नसिंहासने रम्ये विद्युत्पुञ्जसमप्रभे।
तप्तकाञ्चनसङ्काशे भ्राजत्सूर्यसमप्रभे॥ ६६॥

भास्वच्छरन्निशानाथकोटिकान्तिशुभानना।
समास्ते त्रिजगन्माता महादुर्गा रघूद्वह!॥ ६७॥

उसके बीच में बिजली के समान चमकदार, एक रत्नसिंहासन है जो तपे हुए सुवर्ण के समान लगता है, जिसकी आभा सूर्य के समान है। हे रघुनन्दन! उस पर करोड़ों शरद्ऋतु के चन्द्रों के समान कान्ति से सम्पन्न मुख वाली तीनों लोकों की माता वे दुर्गा देवी विराजमान हैं।। ६६–६७।।

भास्वत्स्वर्णसुसन्नद्धस्यमन्तकसहस्रकैः ।
अनल्पकौस्तुभैश्चापि राजमाना किरीटिनी॥ ६८॥

उसके उज्जवल सुवर्णमय मुकुट में हजारें स्यमन्तक मणियाँ तथा बहुत सी कौस्तुभ मणियाँ जड़ी हुई हैं।। ६८।।

महामाणिक्यहारौघरुचिशोभितवक्षसी।
सुचारुदशनस्मेररुचिरा श्यामलोचना॥ ६९॥

उनके वक्षःस्थल पर महामाणिक्ययुक्त कितने ही हार शोभायमान हैं। वे जब मुस्कराती हैं तो उनकी रुचिर दन्तपंक्ति देखने वाले को अतीव सुन्दर लगती हैं। उनके नेत्र काले हैं।। ६९।।

कर्णालङ्करणैश्चित्रैर्नासिकाभरणैस्तथा ।
शशाङ्ककलयातीव राजमानमुखाम्बुजा॥ ७०॥

उन्होंने अपने कानों तथा नासिका में अच्छे अच्छे मनोरम आभूषण धारण कर रखे हैं। उनका मुखकमल चन्द्रमा की कान्ति की समानता कर रहा है।। ७०।।

शुद्धरत्नमयैर्नानाभूषणैरभिशोभिता ।
चतुर्भिर्बाहुभिर्युक्ता महासिंहोपरि स्थिता ॥ ७१ ॥

वे शुद्ध रत्नों से युक्त विविध आभूषणों के धारण करने से नयनाभिराम रूप की स्वामिनी हैं। उनके चार भुजाएँ हैं तथा वे विशालकाय सिंह पर विराजमान हैं।। ७१।।

रक्तवस्त्रपरीधाना क्वणत्काञ्चीसुमध्यमा।
ब्रह्मेशविष्णुसम्बन्धसुचारुपदपङ्कजा ॥ ७२ ॥

उनका परिधान (पहनावा) रक्तवस्त्रों का है। उन्होंने अपने कटिप्रदेश में घुँघरुओं वाली काञ्ची (करधनी) धारण कर रखी है। उनके चरणकमलों में ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर अवनत हैं।। ७२।।

पुरस्तात् स्तुतिवाक्यैस्तु महाब्रह्मा महेश्वरः।
महाविष्णुश्च संस्तौति प्राञ्जलिस्तां महामते ॥ ७३ ॥

हे महामते! महाब्रह्मा महाविष्णु तथा शङ्कर उनके सम्मुख विनयपूर्वक खड़े होकर उनका स्तुतिगान करते रहते हैं।। ७३।।

चामरेणाभिशुक्लेन जया च विजया सदा।
संवीजयन्त्यौ तिष्ठन्त्यौ तत्पार्श्वे सव्यदक्षतः ॥ ७४ ॥

जया एवं विजया नाम की दो सखियाँ उनके दक्षिण एवं वाम भाग में खड़ी होकर उन पर श्वेत चँवर डुलाती रहती हैं।। ७४।।

चित्रव्यजनहस्ता च लक्ष्मीर्दक्षिणमास्थिता।
कुङ्कुमारुगणगन्धादिसौगन्ध्यं प्रतियच्छति ॥ ७५ ॥

तथा लक्ष्मी देवी उनके दक्षिण पार्श्व में खड़ी होकर उनको पङ्खा झलती रहती हैं। साथ ही, आवश्यकता पड़ने पर, वे उन्हें कुङ्कुम एवं अन्य गन्धद्रव्य समर्पित करती रहती हैं।। ७५।।

वीणया तु स्वयं वाणी संस्थिता वामपार्श्वतः।
सङ्गायति गुणं देव्या वेदागमसुसम्मतम् ॥ ७६ ॥

इसी तरह उनके वामपार्श्व में बैठकर वाणी (सरस्वती) देवी अपनी मनोहर वीणा पर भगवती की वेद तथा आगम सम्मत स्तुतियाँ गाती रहती हैं।। ७६।।

शुद्धरत्नमये पात्रे सुधामादाय राघव!
अथ वाणीप्रभृतयो यच्छन्ति प्रियकाम्यया ॥ ७७ ॥

हे राघव! वाणी आदि वे देवियाँ शुद्ध रत्न निर्मित पात्र में, समय

समय पर उनका स्नेह पाने के लिये सुधा भर कर उन्हें प्रदान करती रहती हैं।। ७७।।

नारदाद्यैर्मुनिगणैरर्चितं वेदगोपितम्।
गीयते पुरतो देव्या भक्त्या गद्गदया गिरा॥ ७८॥

इसी तरह नारद आदि मुनिगण भी उनका वेद प्रतिपादित गुणगान, अपनी भक्तिपूर्ण गद्गद वाणी में करते रहते हैं।। ७८।।

योगिन्याद्यास्तु संगृह्य महामाणिक्यनिर्मितम्।
सताम्बूलं तदाधारं ददुर्देव्यै प्रयत्नतः॥ ७९॥

उधर योगिनियाँ उन्हें महामाणिक्य निर्मितपात्र में रखकर ससम्मान ताम्बूल प्रदान करती रहती हैं।। ७९।।

भैरवप्रमुखा देवा रत्नदण्डासिपाणयः।
सन्त्यनेकविधास्तत्र द्वारिणः कतिकोटयः॥ ८०॥

करोड़ों देवता, जिनमें भैरव मुख्य हैं, रत्नदण्ड एवं खड्ग हाथों में लेकर उनके चारों तरफ द्वाररक्षक के रूप में नियुक्त हैं।। ८०।।

एवं तदतुलं देव्या ऐश्वर्यं रघुनन्दन।
किमहं ते प्रवक्ष्यामि चतुर्भिर्वदनैः प्रभो॥ ८१॥

हे रघुनन्दन! उन देवी का ऐश्वर्य इतना अनुपम है कि मैं केवल अपने चार मुखों से उसका कहाँ तक वर्णन करूँ!।। ८१।।

अलं वर्षसहस्राणां कोटिभिस्त्र्यम्बकः प्रभुः।
श्रुतयश्च प्रयच्छन्ति तस्या वाक्यमया गुणाः॥ ८२॥

हजारें वर्ष हो गये, भगवान् शङ्कर भी उनका पूर्ण गुणगान नहीं कर पाये हैं। चारों वेद भी अभी तक उनका गुणगान कर ही रहे हैं।। ८२।।

सावित्री चैव गायत्री प्रत्यक्षं चांशसम्भवाः।
इन्द्रादयो लोकपाला नानाब्रह्माण्डवासिनः॥ ८३॥
इच्छन्तो दर्शनं देव्याः पुरबाह्यसमागताः।
भक्त्यार्चनरता ये तु ते त्वरान्वितदर्शनाः॥ ८४॥

प्रत्यक्षतः उनके अंश से सम्भूत, सावित्री एवं गायत्री और नाना ब्रह्माण्डवासी इन्द्रादि लोकपाल भी उन देवी के दर्शनों की कामना से उनके मन्दिर के बाहर पहुँचकर उनके शीघ्र दर्शन की प्रतीक्षा करते हुए उनके गुणगान में ही अपना समय बिताते हैं।। ८३-८४।।

अन्योन्यदुर्गमं राम दर्शनं तत्र पुण्यदम्।
नाधिपत्यविचारोऽस्ति न वा वर्णविवेचनम्॥ ८५॥

हे राम! उनका यह पुण्यप्रद दर्शन एक दूसरे के लिये दुर्गम है। उनके दर्शन में न किसी का ऐश्वर्यसम्पन्न होना साधक हो सकता है, न किसी का नीच वर्ण में उत्पन्न होना बाधक।। ८५।।

तस्यां यस्य मतिः पुण्या तस्यैव सुलभा तु सा।
इत्युक्ता सा रघुश्रेष्ठ मूर्तिस्तस्याः सुतान्त्रिकी॥ ८६॥

इस दर्शन में वही प्रथम विजयी होते हैं, जो उस भगवती के प्रति श्रद्धा–भक्तिमय अत्यधिक शुद्ध विचार बनाये रखते हैं। इस तरह हे रघुश्रेष्ठ! मैंने उस भगवती की तान्त्रिक मूर्ति का भी सुविशद वर्णन कर दिया।। ८६।।

पौराणिक मूर्ति की पूजा

उक्तं च नगरं रम्यं यथा पृष्टस्त्वया प्रभो!॥ ८७॥

हे प्रभो! साथ ही मैंने उनके नगर का भी रमणीय वर्णन कर दिया जो कि आपने पूछा था।। ८७।।

पौराणिकी तु या मूर्तिर्देवी दशभुजापरा।
तां च मूर्तिं विनिर्माय मृण्मयीं सिंहवाहिनीम्।
पूजयिष्यामि संग्रामे जयलाभाय ते ध्रुवम्॥ ८८॥

अब मैं उस देवी की जो दशभुजावाली पौराणिकी मूर्ति है, उनकी सिंहवाहिनी, मिट्टी की मूर्ति बनाकर पूजा करूँगा, जिससे कि आपकी युद्ध में निश्चित विजय हो।। ८८।।

बोधयिष्यामि चैतस्यां नवम्यां परिपूज्य च।
बिल्ववृक्षे महादेवीं महाभयनिवारिणीम्॥ ८९॥

मैं उन महाभयनिवारिणी महादेवी को इसी आगामी नवमी तिथि के दिन, बिल्ववृक्ष के नीचे पूजाकर, उद्बुद्ध करूँगा।। ८९।।

अत्र त्वया वृतो राम! भगवत्यास्तु पूजने।
अद्यारभ्य नवम्यां तु कृष्णायामार्द्रयोगतः॥ ९०॥
प्रबोध्य प्रत्यहं यावद्राक्षसेन्द्र हनिष्यसि।
तावत्प्रपूजयिष्यामि युद्धे ते जयकाम्यया॥ ९१॥

हे राम! उस भगवती के इस पूजन में तुम्हारे द्वारा वरण किया गया मैं, आज कृष्ण पक्ष की नवमी तथा आर्द्रा नक्षत्र के योग में प्रतिदिन उस भगवती का उद्बोधन करूँगा, जब तक कि आप उस राक्षसराज का

वध न कर दें। तथा आप की विजयकामना के लिये उस देवी का पूजन करता रहूँगा।। ९०–९१।।

ईप्स्व राम शुचिर्भूत्वा स्तुत्वा देवीं समाहितः।
युध्यस्व राक्षसैः सार्धं जयं प्राप्स्यसि राघव॥ ९२॥

हे राम! आप उत्साहसम्पन्न होइये! शुद्ध होकर, समाहित मन से देवी की स्तुति कर राक्षसों के युद्ध हेतु सन्नद्ध हो जाइये। हे राघव! आपको निश्चित विजय प्राप्त होगी''।। ९२।।

श्रीमहादेव०— एवमुक्तः स भगवान् देव्याः सम्बोधनाय वै।
समुद्रस्योत्तरे तीरे बिल्ववृक्षस्य सन्निधिम्।
प्रययौ त्रिदशैः सार्धं सर्वलोकपितामहः॥ ९३॥

महादेव जी बोले— इस तरह कहकर वे लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा प्रमुख देवताओं के साथ देवी के उद्बोधन की योजना से समुद्र के उत्तर किनारे पर एक बिल्ववृक्ष के नीचे पहुँचे।। ९३।।

रामस्तु प्राञ्जलिर्भूत्वा चोत्तराभिमुखस्ततः।
तुष्टाव जयलाभाय संग्रामे जयदायिनीम्॥ ९४॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे दुर्गालोकवर्णनं नाम
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

तब वहाँ रामचन्द्र भी हाथ जोड़कर उत्तराभिमुख होकर संग्राम में विजयप्राप्तिहेतु भगवती जयप्रदा दुर्गा की स्तुति करने लगे।। ९४।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
श्री दुर्गालोकवर्णननामक
तेतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥

चौवालीसवाँ अध्याय

[श्रीराम-कुम्भकर्णयुद्धवर्णन]

श्रीरामचन्द्रकृत भगवती–स्तुति

श्रीराम०— **"नमस्ते त्रिजगद्वन्द्ये, संग्रामे जयदायिनि!**
प्रसीद, विजयं देहि कात्यायनि, नमोऽस्तु ते॥ १॥

"हे त्रिजगत् की पूजनीय! आपको प्रणाम है। हे युद्ध में विजयदात्रि! आप मुझपर प्रसन्न हों, हे कात्यायनि! आप मुझे युद्ध में विजय प्रदान करें। आपको बार बार प्रणाम है॥ १॥

सर्वशक्तिमये दुष्टरिपुनिग्रहकारिणि!
दुष्टजृम्भिणि संग्रामे जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ २॥

आप सर्वशक्तिसम्पन्न है। दुष्ट शत्रुओं का दमन करनेवाली हैं। आप दुष्टों को प्रणत करने वाली हैं। हे देवि! आप मुझे संग्राम में विजय प्रदान करें। आपको बार बार प्रणाम है॥ २॥

त्वमेका परमा शक्तिः सर्वभूतेष्ववस्थिता।
दुष्टं संहर संग्रामे जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ३॥

आप ही उत्कृष्टतया शक्ति हैं, जो कि सभी प्राणियों में व्याप्त हैं। हे देवि! आप इस दुष्ट का संग्राम में संहार करें। आप मुझे विजय दें। आप को प्रणाम है॥ ३॥

रणप्रिये रक्तभक्षे मांसभक्षणकारिणि!
प्रपन्नार्तिहरे युद्धे जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ४॥

हे रणप्रिये! हे रक्तभक्षे! हे मांसभक्षण करने वाली! हे शरणागत की रक्षिके! मुझे युद्ध में विजय प्रदान करें। आपको प्रणाम है॥ ४॥

खट्वाङ्गासिकरे मुण्डमालाद्योतितविग्रहे!
ये त्वां स्मरन्ति दुर्गेषु तेषां दुःखहरा भव॥ ५॥

हे खट्वाङ्ग एवं खड्गको धारण करने वाली! मुण्डमालाओं से शोभित शरीर वाली! आप को जो सङ्कट में स्मरण करते हैं, उनके सङ्कट को आप दूर कर देनी वाली होवें॥ ५॥

त्वत्पादपङ्कजाद्दैन्यं नमस्ते शरणप्रिये!
विनाशय रणे शत्रून् जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ६॥

आप के चरणकमलों में दीनता दिखाना ही अच्छा लगता है। हे शरणप्रिये! आपको प्रणाम है। कृपया संग्राम में मेरे शत्रुओं का विनाश करें। मुझे विजय प्रदान करें। आपको मेरा प्रणाम स्वीकार हो।। ६।।

अचिन्त्यविक्रमेऽचिन्त्यरूपसौन्दर्यशालिनि !
अचिन्त्यचरितेऽचिन्त्ये जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ७॥

हे अचिन्त्यबलशालिनि! हे अचिन्त्य रूप सौन्दर्य वाली! हे अचिन्त्य चरित्रवाली! हे अचिन्त्ये! आप मुझे शत्रुओं पर विजय प्रदान करें। आपको मेरा प्रणाम स्वीकार हो।। ७।।

ये त्वां स्मरन्ति दुर्गेषु देवीं दुर्गविनाशिनीम्।
नावसीदन्ति दुर्गेषु जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ८॥

जो आप कठिनाइयों को विनष्ट करनेवाली भगवती दुर्गा का सङ्कट में स्मरण करते हैं, वे कभी सङ्कट में नहीं पड़ते। आप मुझे....।। ८।।

महिषासृक्प्रिये संख्ये महिषासुरमर्दिनि!
शरण्ये गिरिकन्ये मे जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ९॥

हे महिषासुररक्तप्रिये! युद्ध में महिषासुर को मारने वाली! शरणदायिनि! हे पार्वति! आप मुझे विजय प्रदान करें।.......।। ९।।

प्रसन्नवदने चण्डि चण्डासुरविमर्दिनि!
संग्रामे विजयं देहि शत्रूञ्जहि नमोऽस्तु ते॥ १०॥

हे प्रसन्नमुखवाली! देवि, चण्डि! हे चण्डासुरवधकारिणि! संग्राम में मुझे विजय प्रदान करें, मेरे शत्रुओं का नाश करें।....।। १०।।

रक्ताक्षि रक्तदशने रक्तचर्चितगात्रके।
रक्तबीजनिहन्त्रि त्वं जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ११॥

हे रक्तनेत्रों वाली! रक्त दाँतों वाली! रक्तलिप्त शरीरवाली! रक्तबीज को नष्ट करने वाली! आप मुझे.....।। ११।।

निशुम्भशुम्भसंहन्त्रि विश्वकर्त्रि सुरेश्वरि!
जहि शत्रून् रणे नित्यं जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ १२॥

हे निशुम्भ एवं शुम्भ नामक राक्षसों को मारने वाली! हे विश्वसृष्टिकर्त्रि! हे सुरेश्वरि! युद्ध में मेरे शत्रुओं का नाशकर मुझे.....।। १२।।

भवान्येतज्जगत्सर्वं त्वं पालयसि सर्वदा।
रक्ष विश्वमिदं मातर्हत्वैतान् दुष्टराक्षसान्॥ १३॥

हे भवानि! आप ही इस जगत् का निरन्तर पालन करती हैं। अतः हे माता! आप उन दुष्ट राक्षसों का वधकर इस जगत् की रक्षा करें ॥ १३ ॥

त्वं हि सर्वगता शक्तिर्दुष्टमर्दनकारिणि!
प्रसीद जगतां मातर्जयं देहि नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥

आप सर्वव्यापक शक्ति हैं, आप दुष्टों का दमन करने वाली हैं। हे जगन्माता! आप प्रसन्न होइये आप मुझे..... ॥ १४ ॥

दुर्वृत्तवृन्ददमनि सद्वृत्तपरिपालिनि!
निपातय रणे शत्रूञ्जयं देहि नमोस्तु ते ॥ १५ ॥

आप दुष्टसमूह का नाश करने वाली हैं तथा सज्जनों का पालन करने वाली हैं। मेरे शत्रुओं को युद्धभूमि में पराजित कर गिरा दें। आप मुझे...... ॥ १५ ॥

कात्यायनि जगन्मातः प्रपन्नार्तिहरे शिवे!
संग्रामे विजयं देहि भयेभ्यः पाहि सर्वदा'' ॥ १६ ॥

हे कात्यायनि! हे जगन्माता! हे विपद्ग्रस्तों के सङ्कट को दूर करने वाली! भगवति शिवे! आप मुझे संग्राम में विजय दिलावें। भय से मेरी सर्वदा रक्षा करें'' ॥ १६ ॥

श्रीमहादेव०— एवं संस्तुवतस्तस्य श्रीरामस्य महात्मनः।
बभूवाकाशतो वाक्यं सहसा मुनिसत्तम ॥ १७ ॥

श्रीमहादेव— हे मुनिवर! महात्मा श्रीरामचन्द्र द्वारा भगवती की यों स्तुति करते ही करते, सहसा यह आकाशवाणी हुई ॥ १७ ॥

मा भैस्त्वं रघुशार्दूल महाबलपराक्रमान्।
विजेष्यस्यचिरेणैव लङ्कां हत्वा निशाचरान् ॥ १८ ॥

आकाशवाणी— ''हे रघुवर! आप भय न मानें। इन महाबलशाली राक्षसों को भी नष्ट कर, आप शीघ्र ही युद्ध में लङ्का पर विजयी होंगे ॥ १८ ॥

अहं सम्पूजिता बिल्वे, ब्रह्मणा लोकर्तृणा।
दास्यामि त्वां मनोऽभीष्टं वरं शत्रुनिबर्हण'' ॥ १९ ॥

हे शत्रुनाशक! मैं इस जगत् के रचयिता ब्रह्मा द्वारा बिल्ववृक्ष के नीचे सविधि पूजा प्राप्त कर तुम्हें तुम्हारा मनोवाञ्छित वर प्रदान करूँगी'' ॥ १९ ॥

इति श्रुत्वा रघुश्रेष्ठो वाक्यमाकाशसम्भवम्।
असंशयं मुनिश्रेष्ठ! मेने विजयमात्मनः ॥ २० ॥

हे मुनिवर! तब, उन रघुवर ने उपर्युक्त आकाशवाणी सुनकर, अपनी विजय को सुनिश्चित मान लिया।। २०।।

कुम्भकर्ण का युद्धभूमि में आगमन

एवं चिन्तयतः काले समरे भीमविक्रमः।
आयातः कुम्भकर्णो वै राक्षसैः परिवेष्टितः ॥ २१ ॥

उन रघुनन्दन के यों विचार करते समय ही वह कुम्भकर्ण राक्षस हजारों राक्षसों के साथ युद्धभूमि में आ पहुँचा।। २१।।

तस्य नादेन घोरेण सशैलवनकाननम्।
चकम्पे धरणिः, क्षुब्धो बभूव सरितां पतिः ॥ २२ ॥

वहाँ आते ही उसके द्वारा किये गये भयङ्कर सिंहनाद से वहाँ के समस्त पर्वत तथा वन एवं समुद्रसहित पृथ्वी आदि सभी कुछ क्षुब्ध (विचलित) हो उठे।। २२।।

रथाश्वकुञ्जराणां च सुघोरैरपि बृंहितैः।
चकम्पे वसुधा वीरबलात्कारेण वायुना॥ २३ ॥

उस समय उसके साथ आये रथ, हाथी एवं घोड़ों के चलने से हो रहे भयङ्कर निनाद से तथा वीरों के चलने से उठी वेगसम्पन्न वायु से पृथ्वी काँप उठी।। २३।।

चुक्षुभुर्वानराः सर्वे भीता दिक्षु विदिक्षु च।
दृष्ट्वा तमतिदुर्धर्षमुद्यतास्त्रं महाबलम्॥ २४॥

उस अस्त्र उठाये महाबलशाली राक्षस को देखकर जहाँ तहाँ स्थित सभी बानर भी क्षुब्ध हो गये।। २४।।

श्रीराम एवं कुम्भकर्ण का युद्ध

अथ रामस्तमायान्तं समालोक्य भयप्रदम्।
देवीं प्रणम्य कोदण्डं वामेनादाय पाणिना॥ २५॥

तब श्रीराम ने उस भयङ्कर राक्षस को अपनी तरफ आते हुए देखकर, भगवती को प्रणाम कर बाएँ हाथ में अपना धनुष् उठाया।। २५।।

सोऽपि पादावघातेन करघातेन वानरान्।
विमर्द्य भक्षयँश्चान्यानाससाद रघूत्तमम्॥ २६॥

उधर उस दुष्ट राक्षस ने भी लातों (पादावघात) तथा घूँसों (करावघात) से वानरों पर आक्रमण करते हुए उनमें से कुछ को खा डाला, और वह वेग से भगवान् श्रीराम के पास पहुँचा।। २६।।

स सम्प्रेक्ष्य रघुश्रेष्ठं श्यामं दूर्वादलप्रभम्।
उद्यतास्त्रं महाबाहुं रक्षसामन्तकारिणम्॥ २७॥
सानुजं समरेऽक्षोभं नीलोत्पलदलेक्षणम्।
ननाद बलवान् घोरो युगान्तजलदो यथा॥ २८॥

उसने शस्त्र उठाये, दूर्वादल के समान श्यामवर्ण, महाबाहु, राक्षसों के शत्रु, युद्ध में पीछे न हटने वाले, नीलकमल के समान नेत्रों वाले, रघुकुलश्रेष्ठ भगवान् राम को उनके भाई लक्ष्मण के साथ क्रुद्ध दृष्टि से देखा। फिर उसने प्रलयकालीन मेघ के समान गर्जना की।। २७–२८।।

राघवोऽपि महानादं ब्रह्माण्डक्षोभकारकम्।
चक्रे मुदा मुनिश्रेष्ठ! ततो युद्धमवर्तत॥ २९॥

इसे सुनकर भगवान् राम ने भी प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्माण्ड को क्षुब्ध करने वाला भयङ्कर सिंहनाद किया। फिर उन दोनों में युद्ध प्रारम्भ हो गया।। २९।।

ब्रह्मास्त्रजालैः संक्षिप्तैः परस्परजिगीषया।
तयोरासीन्महायुद्धं सुरासुरदुरासदम्॥ ३०॥
सैन्यैश्च राक्षसश्रेष्ठैर्वानराणां महात्मनाम्।
आसीत् सुतुमुलं युद्धं संग्रामे जयमिच्छताम्॥ ३१॥

देवों और दानवों द्वारा भी कठिनता से लड़े जाने योग्य उस महायुद्ध में, उन दोनों ही वीरों ने एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से, भयङ्कर ब्रह्मास्त्रों का प्रयोग किया और उधर दोनों वानरों तथा राक्षसों की सेनाओं ने भी परस्पर विजय की इच्छा से भीषण युद्ध प्रारम्भ किया।। ३०–३१।।

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीरामकुम्भकर्णयोर्युद्धवर्णनं
नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
श्रीराम एवं कुम्भकर्ण के युद्ध-वर्णन नामक
चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त॥

पैतालीसवाँ अध्याय

[देवीस्तुतिवर्णन]

श्रीमहादेव०— ब्रह्मापि बिल्ववृक्षे तां देवीं सम्पूज्य भक्तितः।
बोधयामास रामस्य जयार्थं जगदम्बिका॥ १॥

श्रीमहादेव— पितामह ब्रह्मा ने भी बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर श्रीराम की विजयहेतु भक्तिपूर्वक पूजाकर जगदम्बिका भगवती का उद्बोधन किया।। १।।

स्तोत्रेण देवीसूक्तेन प्रणिपत्य पुनः पुनः।
वेदोक्तेन सुरश्रेष्ठोऽकालेऽपि च सुरेश्वरीम्॥ २॥

इसमें उन सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा ने भगवती को बार बार प्रणाम कर, वेदोक्त देवीसूक्त से अकाल में भी उनका उद्बोधन किया।। २।।

ब्रह्मोवाच— ॐ नमो विमलवदनायै भूर्भुवःस्वःपरमकमलायै,
केवलपरमानन्दसन्दोहरूपपायै लोकत्रय-
तिमिरापहारकपरमज्योतीरूपायै,
असदभिलाषयुक्तसन्दूषितदोषापसारण-
परमामृतरूपायै, मूर्तिमत्कोटिचन्द्रवदनायै,
दुर्गादेव्यै सर्ववेदोद्भवनारायण्यै जनशरीरे,
परमात्मरूपायै, प्रसीद ते नमो नमः॥ ३॥

ब्रह्मा— शुद्ध आकारवाली, भूः भुवः स्वः स्वरूप आद्या कमला को, सुख–दुःखरहित परमानन्द राशियुक्त, त्रिलोकी में व्याप्त अन्धकार का नाश करनेवाली, परमज्योति के समान, मानव की कुप्रवृत्तियों तथा दुष्ट दोषों को दूर करने में अमृत के समान, साक्षात् करोड़ों चन्द्रमाओं के समान मुखाकृतिवाली, सभी वेदों से उद्भूत नारायणी रूप, सभी प्राणियों के शरीर वाली, दुर्गादेवी को प्रणाम है। आप परमात्मा रूपी देवी को प्रणाम है। आप मुझ पर प्रसन्न हों। आप को बार बार प्रणाम है।। ३।।

ॐकरालरूपे प्रणवस्वाहास्वरूपे ह्रींस्वरूपिणि।
अम्बिके भगवत्यम्ब त्रिगुणप्रसूते नमो नमः॥ ४॥

हे भयङ्कर आकार वाली, हे प्रणव (ॐ) तथा स्वाहा स्वरूप, हे ह्री

स्वरूप, अम्बिके! भगवति! हे त्रिगुणोद्भूत! मातः आपको बार बार प्रणाम है।। ४।।

सिद्धिकरे स्फ्रें स्फ्रौं स्वाहारूपिणि स्वधारूपे!
विमलमुखे चन्द्रमुखे कोलाहलमुखे शर्वे प्रसीद॥ ५॥

हे सिद्धिदायिके! आप स्फ्रें स्फ्रों स्वाहा स्वरूपिणी हैं, स्वधा रूपवाली हैं, हे सुमुखि! हे चन्द्रमुखि! हे कोलाहल करनेवाली! हे महादेवि! आप मुझ पर प्रसन्न हों।। ५।।

जगन्मोदकरीं मृदुदृशीं क्रीडास्थाने स्वागतां,
भुवनेशीं शत्रुस्त्वं मित्ररूपा च दुर्गा।
दुर्गस्य त्वं योगिनामन्तरेऽपि एकाऽनेका,
सूक्ष्मरूपाविकारा ब्रह्माण्डानां कोटिकोटिप्रसूतम्॥ ६॥

आप जगत् को प्रसन्नता देती हैं, आप कोमलदृष्टि हैं, आप लीला हेतु सरलता से पहुँच जाती हैं, आप जगत् की स्वामिनी है, अतः आपको प्रणाम है। आप दुष्टों की शत्रु हैं, सज्जनों की मित्र हैं, आप दुर्गम के लिये दुर्गारूपिणी हैं। आप योगियों के हृदय में एक तथा अनेक रूपों में विराजमान रहती हैं। आप सूक्ष्मरूपा हैं, निर्विकार हैं, सकल ब्रह्माण्डों के करोड़ों जन्मों की आद्य कारण हैं।। ६।।

एकोऽहं विष्णुः कः परो वा शिवाख्यो देवाश्चान्ये स्तोतुमीशा भवामः
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं च वौषट्।
त्वं चोङ्कारस्त्वं च लज्जादिबीजं त्वं च स्त्री त्वं च
पुमान् सर्वरूपा त्वां नमामि बोधये नः प्रसीद॥ ७॥

मैं अकेला ब्रह्मा, विष्णु या कोई अन्य शिव या इतर देवता—इनमें से कोई भी आप की यथातथ्य स्तुति करने में समर्थ नहीं है। आप स्वाहा हैं, आप ही स्वधा हैं, आप ही वौषट् हैं, आप ही ॐकार (ह्रींकार) हैं। आप ही लज्जादिबीज हैं, आप ही स्त्री हैं, आप ही पुरुष हैं, आप सर्वरूप हैं; अतः मैं आपको जगाने हेतु प्रणाम करता हूँ। आप हम पर प्रसन्न हों।। ७।।

त्वं वै देवर्षिर्देवता कालरूपा
त्वं वै मासस्त्वमृतुश्चायने द्वे।
कव्यं भुङ्क्ष्व त्वं यथा स्वधा तद्वत्।
स्वाहा हव्यभोक्त्री स्वयं देवि॥ ८॥

आप ही देवर्षि हैं, आप ही देवता हैं, आप ही कालरूप हैं, आप मास

भी हैं, ऋतु भी हैं, आप ही दक्षिणायन—उत्तरायण—ये दो अयन हैं। आप कव्य (पितरों का भोज्य) उसी तरह खाइये, स्वधा जैसे खाती हैं। देवि! आप ही स्वयं हव्यभोक्त्री स्वाहा भी हैं।। ८।।

त्वं वै देवाः शुक्लपक्षे प्रपूज्यास्त्वं पित्राद्याः कृष्णपक्षे प्रपूज्याः।
त्वं वै सत्यं निष्कलं च स्वरूपं त्वां वै नत्वा बोधयामि प्रसीद॥ ९॥

आप देवतारूप हैं, जिनकी शुक्लपक्ष में पूजा होती है। आप ही पितृरूप हैं, जिनकी कृष्णपक्ष में पूजा होती हैं; आप सत्यस्वरूपा हैं; आप कलारहित हैं; आप आत्मस्वरूप हैं। आपको प्रणाम कर उद्बुद्ध करना चाहता हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न हों।। ९।।

चन्द्रार्काग्निविलोचने नीचं नीचमुच्चं नत्वा याति मुक्तिं त्वत्पादध्यानयोगात्।
त्वत्पादाब्जं चार्चयित्वा तु मुक्तिं को वा न प्राप्नोत्युत्तमां देवि सूक्ष्माम्॥ १०॥

चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि आप के तीनों नेत्र के समान हैं। आप के चरणों के ध्यान के बल पर छोटा साधक छोटे साधनों का सहारा लेकर नमस्कार द्वारा तथा उच्चस्तर का योगी उच्च साधनों का सहारा लेकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है। हे देवि! आप के उत्तम चरणकमलों की अर्चना कर कौन मुक्ति नहीं प्राप्त कर लेता!।। १०।।

स्थूलमुच्चं नीचं नीचमुच्चं कर्तुं समर्था त्वं तु काले,
शक्तिरूपा भवानि त्वां नत्वाहं बोधये नः प्रसीद।। ११॥

हे देवि! आप समय समय पर सूक्ष्म को स्थूल, उच्च को नीच तथा नीचे को उच्च करने में समर्थ हैं। हे भवानि! आप शक्तिरूप में प्रकट होती रहती हैं। अतः मैं आपको प्रणाम कर प्रबुद्ध कर रहा हूँ। आप हम पर प्रसन्न होइये।। ११।।

त्वं वै शक्ती राघवे रावणे च रुद्रादौ वापीहास्ति वा त्वम्।
सा त्वं शुद्धं वामकेन प्रवर्ध त्वां नत्वाहं बोधये नः प्रसीद॥ १२॥

इन राम और रावण में शक्तिरूप आप ही हैं, शङ्कर आदि में या जहाँ कहीं भी सर्वत्र आप शक्तिरूप में विद्यमान हैं, आप शुद्ध ब्रह्मरूप हैं। मैं आप को प्रणाम करता हूँ। मैं आपको प्रबुद्ध करना चाहता हूँ। आप हम पर प्रसन्न हों''।। १२।।

ॐतत् सत् ब्रह्मणे नमः— ॥ १३॥

'ॐ तत् सत्' रूप ब्रह्म को प्रणाम है।। १३।।

श्रीमहादेव०— अनेन वेदसूक्तेन स्तोत्रेण मुनिसत्तम।
संस्तुता ब्रह्मणा देवी प्रबोधं प्राप चण्डिका॥ १४॥

श्रीमहादेव— हे मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्माजी द्वारा इस वेदसूक्त स्तोत्र के द्वारा देवी की भलीभाँति स्तुति की गयी। इससे वह चण्डिका देवी प्रबुद्ध हुई।। १४।।

प्रबुद्धायां च देव्यां स ब्रह्मा लोकपितामहः।
प्राञ्जलिर्दैवतैः सार्धं प्रार्थयामास वाञ्छितम्॥ १५॥

देवी के प्रबुद्ध होने पर वे लोकपितामह ब्रह्मा हाथ जोड़ते हुए देवी-मन्त्रों के साथ अपना मनोवाञ्छित माँगने लगे।। १५।।

ब्रह्मोवाच— **''देवि त्वं बोधिताऽस्माभिरकालेऽपि सुरोत्तमे।**
हिताय सर्वभूतानां राक्षसानां वधाय च॥ १६॥

ब्रह्मा— ''हे सुरेश्वरि! देवि! हमने असमय में ही आप को जगा लिया। वह इसलिये कि इस समय जगत् का त्राण करना तथा कुछ राक्षसों का वध करना आवश्यक था।। १६।।

जयाय रामचन्द्रस्य संग्रामेऽतिसुदारुणे।
यावद्दशाननो युद्धे सपुत्रगणबान्धवः॥ १७॥
पतिष्यति जगच्छत्रुस्तावत्त्वां जगदम्बिकाम्।
पूजयामो महादेवि राघवस्य जयार्थिनः॥ १८॥

इस भयङ्कर युद्ध में श्री रामचन्द्र की विजय के लिये, जब तक कि परिवारसहित यह राक्षसराज रावण इस युद्ध में न मारा जाय तब तक, आप महादेवी जगदम्बिका की हम लोग पूजा करते रहेंगे। हमारी इच्छा है कि श्रीरामचन्द्र इस युद्ध में अवश्य विजय प्राप्त करें।। १७-१८।।

त्वं प्रसन्ना यदि शिवे तदा पूजां प्रगृह्य च।
निपातय महाशत्रुकुलं देवि दिने दिने''॥ १९॥

हे देवि! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो हमारी पूजा ग्रहण कर हमारे इस महान् शत्रुकुल को प्रतिदिन युद्ध में पराजित करती रहिये''।। १९।।

श्रीदेवी०— **''पतिष्यत्यद्य संग्रामे कुम्भकर्णो महाबलः।**
सहितः सैनिकैर्भीमैर्महाबलपराक्रमः॥ २०॥

श्रीदेवी— ''आज युद्ध में यह महाबलशाली कुम्भकर्ण अपने भयङ्कर सैनिकों सहित मारा जायगा।। २०।।

एवमेनां समारभ्य नवमीमासितां शुभाम्।
यावच्छुक्ला तु नवमी तावदेव दिने दिने॥
पतिष्यन्ति न सन्देहो राक्षसा रणमूर्धनि॥ २१॥

इस तरह, इस कृष्णपक्ष की शुभ नवमी से प्रारम्भकर, जब तक शुक्ल पक्ष की नवमी न आ जाय, तब तक प्रतिदिन इस युद्ध में राक्षस मरकर गिरते रहेंगे इसमें सन्देह नहीं है।। २१।।

अमावस्यानिशायां तु मेघनादे हते सति।
रावणोऽपि च सन्तप्तहृदयो राममेष्यति॥ २२॥
अमर्षवशमापन्नो युद्धार्थं समराजिरे॥
देवान्तकप्रभृतिभिर्महाबलपराक्रमैः ॥ २३॥

तथा अमावस्या की रात्रि में मेघनाद के मारे जाने पर रावण भी दुःखी होकर राम के सम्मुख क्रोधित हो देवान्तकादि महाबलशाली राक्षसों सहित युद्ध करने आ पहुँचेगा।। २२–२३।।

ततस्तेषु हतेष्वेवं वीरेषु रणमूर्धनि।
देवान्तकादिषु यथा क्रोधसंरक्तलोचनः।
स योत्स्यति महावीरो रावणो लोककण्टकः॥ २४॥
तयोस्तु दारुणं युद्धं रामरावणयोस्तदा।
भविष्यति यथा कैश्चिन्न दृष्टं न श्रुतं क्वचित्॥ २५॥

तब देवान्तक (मेनाद) आदि उन वीरों के युद्ध में मारे जाने पर वह लोक के लिये कण्टक (बाधा) स्वरूप महावीर रावण क्रोध से लाल नेत्र कर युद्ध करने आयगा।। २४–२५।।

तत्रापि शुक्लसप्तम्यामारभ्य नवमीदिनम्।
यावद्धोरतरं युद्धं भविष्यति तयोर्महत्॥ २६॥

तब उन दोनों– राम और रावण का ऐसा घोर एवं भयङ्कर युद्ध होगा कि वैसा युद्ध न कभी किसी ने देखा न कहीं सुना होगा।। २६।।

तस्यामारभ्य सप्तम्यां नवमीं यावदेव हि।
मृण्मय्यां प्रतिमायां तु पूज्याहं विधिवत्पुरा॥ २७॥

उसमें भी, शुक्ल पक्ष की सप्तमी से प्रारम्भ होकर नवमी तक उन दोनों में पहले से भी अधिक भयङ्कर युद्ध होगा।। २७।।

भवद्भिः समरे रामचन्द्रस्य जयकाङ्क्षिभिः।
अनर्घैरुपचारैस्तु यथार्हैर्बलिभिस्तथा॥
स्तोत्रैर्वेदपुराणोक्तैः स्तोतव्या भक्तिभावतः॥ २८॥

युद्ध में श्रीराम की विजय चाहने निष्पाप आप (देवगणों) द्वारा यथोचित

बलि आदि उपचारों तथा वेद पुराणों के स्तोत्रों द्वारा भक्ति भाव से मेरी पूजा एवं स्तुति की जानी चाहिये।। २८।।

सप्तम्यां पत्रिकायां तु वेशनं मूलयोगतः।
कर्तव्यं विधिवद्देवास्ततो रामपुरःसरम्॥ २९॥

हे देवगण! मूलनक्षत्र के योग से सप्तमीतिथि मिलने पर राम को आगेकर विधिवत् पत्रिकावेशन तथा अष्टमी को सुन्दर प्रतिमा में मेरा पूजन करना चाहिये।। २९।।

अष्टम्यां पूजिताहं तु प्रतिमायां सुशोभने।
अष्टमीनवमीसन्धौ वत्स्यामि शिरसो रणे।
रावणस्य सुदुष्टस्य भूयो भूयो दुरात्मनः॥ ३०॥
ततः सन्धौ क्षणेऽहं तु पूजितव्या विधानतः।
विपुलैरुपचारैस्तु मांसशोणितकर्दमैः॥ ३१॥

अष्टमी के दिन मेरी सुन्दर प्रतिमा की पूजा करने पर अष्टमी–नवमी के शुभ सन्धियोग पर मैं युद्ध में बार बार उस दुष्ट राक्षस के शिर पर घूमती रहूँगी। उन तिथियों की उस पवित्र सन्धि पर, मेरी मांस एवं रक्त के विविध उपचारों द्वारा विशेष विधिपूर्वक पूजा होनी चाहिये।। ३०–३१।।

ततः शत्रुं बलिं दद्यात्कृत्वा पिष्टमयं मम।
नवम्यां पूजिताहं तु बलिभिर्विविधैरपि॥ ३२॥

तब विविध बलियों से नवमी के दिन मेरी पूजा होने पर अन्न के चूर्ण से शत्रु की प्रतिमा बनाकर मेरे सामने उसकी बलि देना।। ३२।।

अपराह्णे रणे वीरं पातयिष्यामि रावणम्।
दशम्यां मां प्रपूज्याथ प्रातरेव सुरोत्तमाः॥ ३३॥

मैं उसी दिन दोपहर के बाद उस वीर रावण का वध कर युद्ध भूमि में गिरा दूँगी। दशमी के दिन देवता जन प्रातःकाल ही मेरी विधिवत् पूजा करें।। ३३।।

मूर्तिर्विसर्जनीया तु स्रोतःसु सुमहोत्सवैः॥ ३४॥
एवं पञ्चदशाहेषु कृत्वा च सुमहोत्सवम्।
निवृत्तिं प्राप्स्यथ सुरा हते तस्मिन्दुरात्मनि॥ ३५॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे ब्रह्मणा देवीस्तुतिवर्णनं नाम
पञ्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

और फिर मेरी उस पार्थिव (मिट्टी की) मूर्ति को विधिवत् उत्सवपूर्वक वृहत् आयोजन के साथ, किसी नदी या स्रोत में बहा दें। इस तरह हे देवताओ! पन्द्रह दिन तक महोत्सव कर आप लोग उस दुरात्मा के मर जाने पर उससे मुक्ति (छुटकारा) पा जाओगे''।। ३४–३५।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
ब्रह्मा द्वारा देवी-स्तुतिवर्णन नामक
पैतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥

छयालीसवाँ अध्याय

[शारदीय पूजा-विधान]

अकालपूजामहोत्सवविधि

श्रीदेवी०— "एवं महोत्सवो देव्या अकालेऽस्मिन् समागते।
त्रैलोक्यवासिभिः कार्यो मत्तृप्त्यै प्रतिवत्सरम्॥ १॥

श्रीदेवी— "इस प्रकार अकाल उपस्थित होने पर, त्रैलोक्यवासी देवीभक्तों को मेरी प्रसन्नता–प्राप्तिहेतु प्रतिवर्ष देवी का महोत्सव इस प्रकार करना चाहिये–।। १।।

नवम्यामार्द्रायुक्तायां बिल्वे मां परिपूज्य च।
सम्बोध्य भक्तितः शुक्लं नवमीं यावदेव हि॥ २॥
प्रत्यहं पूजयिष्यन्ति ये तु लोकत्रये सुराः।
तेषां प्रसन्ना नित्यं तु पूरियिष्ये मनोरथान्॥ ३॥

हे देवगण! त्रिलोकी में आर्द्रानक्षत्रयुक्त नवमी के दिन, विल्ववृक्ष के नीचे बैठकर मेरी पूजा करते हुए मुझे भक्तिपूर्वक जगाकर, जब तक नवमी तिथि रहे, जो भक्त प्रतिदिन मेरी पूजा करेंगे, उनसे मैं नित्य प्रसन्न होती हुई उन भक्तों के सभी मनोरथ पूर्ण करूँगी।। २–३।।

न शत्रुः प्रभवेत्तस्य न वा बन्धुवियोजनम्।
न दुःखं न च दारिद्र्यं मत्प्रसादाद्भविष्यति॥ ४॥

उस भक्त का न कोई शत्रु उस पर प्रभावी होगा, न उसका अपने किसी बन्धु–बान्धव से वियोग होगा। मेरी कृपा से, न उसके घर में कोई सङ्कट आयगा, न किसी प्रकार की दरिद्रता ही आयगी।। ४।।

ऐहिकं यन्नोऽभीष्टं यच्च पारत्रिकं तथा।
सम्पदं लभते सर्वां मत्प्रसादात्सुरोत्तमाः॥ ५॥

हे सुरोत्तम! उस भक्त के मन में जो भी ऐहलौकिक या पारलौकिक सम्पत्ति की इच्छा है, उसे वह सब मेरी कृपा से अवश्य प्राप्त होगी।। ५।।

पुत्रायुर्धनधान्यादिवृद्धिस्तेषां दिने दिने।
भविष्यत्यचला लक्ष्मीर्मां भक्त्या यजतामपि॥ ६॥

उन की प्रतिदिन लौकिक सुखों जैसे– पुत्र, आयु, धन धान्य आदि में वृद्धि ही होगी। भक्त के घर में लक्ष्मी का अचल वास होने लगेगा।। ६।।

न व्याधयो भविष्यन्ति न च तान् ग्रहपीडकाः।
पीडयन्ति न तेषां तु चापमृत्युर्भविष्यति॥ ७॥

न उस घर में कोई रोग होगा, न वहाँ कोई ग्रह या भूत–प्रेत की ही कोई बाधा आयगी। न किसी प्रकार की अकाल मृत्यु आदि की पीड़ा उन्हें कष्ट देगी।। ७।।

न भीती राजतो वापि दस्युतो वा भविष्यति।
सिंहव्याघ्रादिजन्तुभ्यो न वा भीतिर्भविष्यति॥ ८॥

न उन्हें राजाओं से कोई भय होगा, न चोर–डाकुओं से। सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं से भी उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा।। ८।।

यास्यन्ति वशतां भूपो ह्रासयिष्यन्ति शत्रवः।
विजयश्च रणे नित्यं भविष्यति न संशयः॥ ९॥

राजा उसके अधीन हो जायँगे, उसके शत्रु नष्ट हो जायँगे। किसी से युद्ध उपस्थित होने पर, उसमें उनकी निश्चित विजय होगी।। ९।।

न तेषां दुष्कृतं किञ्चित्संस्थास्यति सुरोत्तमाः।
नापदश्च तथा तेषां प्रभवन्ति कदाचन॥ १०॥

हे देवताओ! यह पूजाविधान करने पर, न उन भक्तों का कोई पाप रह जायगा, न किसी प्रकार की विपत्ति का ही उन पर प्रभाव रह जायगा।। १०।।

सम्प्राप्नोति नरः सौख्यं मत्प्रसादान्मदर्चकः।
अन्ते प्राप्स्यति मल्लोकं सत्यं सत्यं न संशयः॥ ११॥

मेरी पूजा करने वाला मेरा भक्त इस लोक में मेरी कृपा से सर्वविध ऐश्वर्य का उपभोग करेगा, तथा परलोक जाने का समय आने पर वह सीधा मेरे ही लोक में पहुँचेगा– यह सत्य है। इसमें कोई संशय नहीं है।। ११।।

अश्वमेधादियज्ञानां कोटीनामपि यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वार्चां वार्षिकीमिमाम्॥ १२॥

करोड़ों अश्वमेधों का जो पुण्य फल होता है, वह फल मेरी इस वार्षिकी पूजाविधि से ही प्राप्त किया जा सकता है।। १२।।

मोहाद्वा द्वेषतो वापि यो मामस्मिन् महोत्सवे।
न पूजयति मूढात्मा स भवेद्योगिनीपशुः॥ १३॥

इस महोत्सव का अवसर आने पर, जो मूर्ख पुरुष मोह या द्वेषवश

मेरी पूजा नहीं करता, उसे इस प्रमाद के कारण, 'योगिनी–पशु' बनना पड़ता है।। १३।।

पूजयिष्यन्ति ये मर्त्ये स्वर्गे वापि रसातले।
तेषां परं हि तुष्टाहं वाञ्छितानि दिने दिने॥ १४॥

हे देवताओ! इसके विपरीत, जो भक्त स्वर्ग, मृत्युलोक या पाताललोक, कहीं भी रहते हुए मेरी पूजा करेंगे, उनसे मैं सन्तुष्ट होती हुई प्रतिदिन उनकी सभी मनोवाञ्छित कामनाएँ पूर्ण करूँगी।। १४।।

संविधास्यामि सर्वाणि सत्यमेव सुरोत्तमाः।
सात्त्विकं भावमाश्रित्य येऽर्चयिष्यन्ति मां जनाः॥ १५॥

सात्त्विकी पूजा— हे देवताओं! जो भक्तजन सात्त्विक भाव से मेरी पूजा करेंगे मैं उनके सभी कार्य सम्पन्न कर देती हूँ— यह बात सत्य ही है।। १५।।

न तैर्बलिः प्रदातव्यो न देयं सामिषान्नकम्।
कर्तव्या मे महापूजा मम प्रीतिमभीप्सुभिः॥ १६॥

न उनको मेरे लिये कोई बलि देनी है, न मांसयुक्त अन्न भेंट चढ़ाना है। बस, मेरा प्रसाद चाहने वाले को तो केवल मेरी यह महापूजा ही करनी है।। १६।।

निरामिषैस्तु नैवेद्यैः स्तोत्रैर्वेदाङ्गसम्भवैः।
विपुलैर्जपयज्ञैश्च विप्राणां भोजनैस्तथा॥ १७॥

निरामिष साधनों से, वेदोक्त स्तोत्रों से, विविध जपयज्ञों (नामसङ्कीर्तनों) से, ब्राह्मणों को भोजनदान से यह पूजा विहित है।। १७।।

सुसमाहितचितैस्तु हिंसादिपरिवर्जितैः।
राजसं भावमापन्नैर्मम सम्प्राप्तये तु वै॥ १८॥
कर्तव्येयं महापूजा नानाबलिभिरादरात्।
छागमेषादिमहिषैः सामिषान्नैस्तथैव च॥ १९॥
स्तोत्रैस्तु जपयज्ञार्थैर्विप्राणामपि भोजनैः।
दुष्टशत्रुविनाशादिधनधान्यादिवर्धनम् ॥ २०॥

राजसी पूजा— तथा हिंसा आदि कुकृत्यों का त्याग कर राजस भावयुक्त समाहित चित्त से मेरी प्राप्ति हेतु वह नाना प्रकार की बलि प्रदान करते हुए आदरपूर्वक यह महापूजा सम्पन्न करे। छाग (बकरा) महिष एव मेष (भेड़) आदि के मांस से सम्पृक्त अन्नों से तथा जपयज्ञ के लिये विविध स्तोत्रों

से, साथ ही ब्राह्मणों को भोजन दान द्वारा तृप्त कर पूजा करे तो उसके घर में दुष्ट शत्रुओं का विनाश एवं धन-धान्य की समृद्धि ही होगी।। १८-२०।।

संग्रामे विजयं पुत्रदाराद्यैहिकमुत्तमम्।
परत्र च परं सौख्यं संप्राप्य च परं पदम्॥ २१॥

युद्ध में उसकी सदा विजय ही होगी। इस लोक के पुत्रदारादि रूप उत्तम सुख प्राप्त होंगे। परलोक में मोक्षरूप परम सुख प्राप्त होगा।। २१।।

तामसी पूजा का निषेध

तामसी तु ममार्चा या नैतयोस्तुल्यता तु सा।
अतः सा तु न कर्तव्या शान्तैश्च ज्ञानशालिभिः॥ २२॥

मेरी तामसी पूजा भी होती है; परन्तु यह उपर्युक्त दोनों पूजाओं की समानता नहीं कर पाती। अतः शान्त एवं ज्ञानी जनों को यह (तामसी पूजा) नहीं करनी चाहिये।। २२।।

यजध्वं रामचन्द्रस्य संग्रामे जयहेतवे।
रिपोर्निधनमिच्छन्तो महिषैश्छागमेषकैः॥ २३॥
पूजयध्वं प्रतिदिनं शुक्ला सा नवमी सुराः।
महानवम्यां छागादिबलिभिर्विपुलैरहम्॥ २४॥
युष्माभिः पूजितव्या वै शत्रुविध्वंसकारिणी।
ततस्तुष्टा महावीरं रावणं लोकण्टकम्॥
अजेयं शत्रुभिः संख्ये पातयिष्यामि निश्चितम्॥ २५॥

हे ब्रह्मन्! आप लोग शत्रु के नाश की इच्छा रखते हुए श्रीराम को युद्ध में विजय दिलाने के लिये बकरे, भैंसे और भेड़ों के मांस आदि साधनों से (बारह मासों की) प्रत्येक शुक्ला नवमी के दिन मेरी पूजा करनी चाहिये। तथा (आश्विन शुक्ल की) महानवमी के अवसर पर तो छागमांस आदि की विविध बलियों से मेरी पूजा करनी ही चाहिये। उससे सन्तुष्ट हुई मैं आपके शत्रुओं की पूर्णतः विध्वंसकारिणी बन जाती हूँ। उसी से सन्तुष्ट हुई मैं लोकों के बाधाभूत राक्षसराज रावण का भी, जो कि अन्य शत्रुओं द्वारा अजेय है, वध कर पाऊँगी यह निश्चित है।। २३-२५।।

नवम्यां बलिदानेन प्रीतिर्मे महती भवेत्॥ २६॥

मैं नवमी के दिन बलि प्राप्त कर अत्यधिक सन्तुष्ट होती हूँ।। २६।।

अतो देयो बलिस्तत्र मम प्रीतिमभीप्सुभिः।
भक्त्या वाप्यथ वाऽभक्त्या जानता वाप्यजानता॥ २७॥

अतः, मेरी प्रीति चाहनेवालों को उस दिन, भक्ति या उपेक्षा पूर्वक या ज्ञान या अज्ञानपूर्वक ही सही, मुझको बलि अवश्य भेंट करनी चाहिये।। २७।।

कर्तव्या वार्षिकी पूजाऽवश्यं लोकत्रये मम।
बलिश्चापि प्रदातव्यः प्रत्यहं सुरसत्तमाः॥ २८॥

हे देवताओ! तीनों ही लोकों में मेरी वार्षिकी पूजा अवश्य की जानी चाहिये और प्रतिदिन बलि भी अवश्य दी जानी चाहिये।। २८।।

असमर्थैरपि सदा नवम्यां देय एव हि।
यथाष्टम्यां बलिर्देवा महायज्ञफलप्रदः॥ २९॥

जो प्रतिदिन मेरी पूजा करने में असमर्थ है उसे भी मेरी पूजा नवमी के दिन तो अवश्य करनी ही चाहिये। हे देवताओ! अष्टमी के दिन दी गयी बलि भी महायज्ञ का फल प्रदान करती है।। २९।।

महाष्टम्यां मम प्रीत्यै उपवासः सुरोत्तमाः।
कर्तव्यः पुत्रकामैस्तु लोकैस्त्रैलोक्यवासिभिः॥ ३०॥

हे देवश्रेष्ठो! मेरा स्नेह पाने के लिये, साधक को महाष्टमी के दिन उपवास करना चाहिये। त्रैलोक्यवासी उन लोगों को भी, जो पुत्रप्राप्ति की इच्छा रखते हैं, वे मेरे उद्देश्य से उपवास व्रत धारण करें।। ३०।।

अवश्यं भविता पुत्रस्तेषां सर्वगुणान्वितः।
पुत्रवद्भिर्न कर्तव्य उपवासस्तु तद्दिने॥ ३१॥

ऐसा करने से उनको सर्वगुणसम्पन्न पुत्र की प्राप्ति अवश्य होगी। हाँ, पुत्रवान् पुरुषों को उस दिन यह व्रत नहीं रखना चाहिये।।३१।।

अष्टम्यामुपवासात्तु नवम्यां बलिदानतः।
फलं महत्तरं ज्ञेयमश्वमेधादियागतः॥ ३२॥

अष्टमी के दिन उपवासव्रत रखते हुए नवमी के दिन बलि देने से अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक फल होता है— यह ध्यान रखना चाहिये।। ३२।।

श्रीमहादेव०— **एवं निशम्य वचनं जगदम्बिकायाः**
ब्रह्मादयः सुरगणा जगदीश्वरीं ताम्।
शत्रोर्जयाय बलिभिर्विविधैर्विधानाद्
भक्त्यार्चयन्ननुदिनं नवमीदिनान्तम्॥ ३३॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे शारदीयपूजाविधानकथनं नाम
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

श्रीमहादेव– वे ब्रह्मा आदि देवता भगवती जगदम्बिका के ये वचन सुनकर, शत्रु पर विजयप्राप्ति हेतु, उन भगवती को विविध बलियाँ प्रदान करते हुए, उनकी भक्तिपूर्वक नवमी तिथि तक प्रतिदिन पूजा करने लगे ।। ३३ ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
शारदीय पूजा-विधानवर्णनात्मक
छयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

सैंतालीसवाँ अध्याय

[रावणवधवर्णन]

श्रीमहादेव०— इन्द्राद्यास्त्रिदशाः स्वर्गे मर्त्ये च परमेश्वरः।
पूजयित्वा महादेवीं सर्वलोकमहेश्वरीम्॥ १॥

श्रीमहादेव— इस प्रकार स्वर्ग में इन्द्र आदि देवताओं ने, तथा मर्त्यलोक में लोकपितामह ब्रह्मा ने उन सर्वलोकमहेश्वरी महादेवी का पूजन किया।। १।।

संग्रामे पातयामास विशिखै रावणानुजम्।
हताश्च वानरैर्घोरा राक्षसा लक्षकोटयः॥ २॥

यों, इसके प्रभाव से, उस युद्ध में श्रीराम ने रावण के भाई को तथा वानरों ने लाखों करोड़ों राक्षसों को मार गिराया।। २।।

राक्षसैश्च हताः सङ्ख्ये वानरा बहुकोटयः।
प्रावर्तयन्नदीं घोरां शोणितौघतरङ्गिणीम्।
मुण्डमाला च विपुला बभासे तत्र नारद!॥ ३॥

प्रतिशोधस्वरूप, राक्षसों ने भी, उस युद्ध में, करोड़ों वानरों को मार दिया। इस तरह इन मृत राक्षसों तथा वानरों के शरीरों से निःसृत रक्त से वहाँ भयङ्कर नदी बह चली। हे नारद! वहाँ स्थान स्थान पर अत्यधिक मुण्डमालाएँ दिखायी देने लगीं।। ३।।

मेघनाद का युद्धभूमि में आगमन

श्रुत्वा तु रावणो युद्धे निहतं भ्रातरं बहु।
रुरोद शोकसन्तप्तहृदयोऽथ मुमोह च॥ ४॥

ततोऽतिकायो बलवाँस्तमाश्वास्य महारणे।
चकार यात्रां कृष्णायां दशम्यां भीमविक्रमः॥ ५॥

उधर युद्ध में हुई भाई (कुम्भकर्ण) की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण ने बहुत विलाप किया। उसने शोकसन्तप्त हृदय से बहुत रुदन किया, अन्त में वह उस दुःख के कारण मूर्च्छित हो गया। तब भयंकर पराक्रमी एवं महाबलशाली अतिकाय ने उस (रावण) को आश्वस्त कर युद्धभूमि की तरफ प्रस्थान किया। उस दिन आश्विन कृष्णा दशमी तिथि थी।। ४–५।।

रामस्तु समरे हत्वा कुम्भकर्णं महाबलम्।
प्रययौ भगवान् ब्रह्मा देवीं यत्रार्चयन्मुने!॥ ६॥
प्रणम्य च महात्मानं ब्रह्मणं जगतः पतिम्।
कथयामास संग्रामे निहतं रावणानुजम्॥ ७॥

हे मुने! जब भयङ्कर पराक्रमी राम ने महाबलशाली कुम्भकर्ण को युद्धभूमि में मार गिराया, भगवान् राम वहाँ पहुँचे जहाँ ब्रह्माजी देवी का पूजन कर रहे थे। वहाँ उस जगत्पति ब्रह्माजी को प्रणाम कर उन्हें संग्राम में, रावण के छोटे भाई कुम्भकर्ण का युद्ध में मारे जाने का समाचार सुनाया।। ६–७।।

ब्रह्मापि कथयामास देव्या यत्कथितं पुरा।
पूजाविधानं शत्रूणां निधनं च दिनेदिने॥ ८॥

ब्रह्माजी ने भी उनको देवी द्वारा पूर्व कथित पूजा–विधान का वचन स्मरण कराया कि यदि मेरी पूजा विधिपूर्वक होती रहेगी तो तुम्हारे शत्रुओं का प्रतिदिन नाश हाता रहेगा।। ८।।

तच्छ्रुत्वा वानरैर्नानाविधिं पूजोपहारकम्।
आनाय्य भगवान् रामो दशम्यां प्रातरेव हि।
पूजां प्रवर्तयन् भक्त्या बलिभिर्विपुलैरपि॥ ९॥
प्रणिपत्य महादेवीं पुनर्युद्धाय निर्ययौ॥ १०॥

यह सुनकर भगवान् राम ने वानरों से नाना प्रकार की पूजा–सामग्री इधर उधर से मँगवा कर दशमी तिथि के प्रातःकाल ही विविध बलियाँ देते हुए देवी पूजा प्रारम्भ की और अन्त में, देवी को प्रणाम कर वे युद्ध के लिये चल पड़े।। ९–१०।।

अतिकायस्तु दुर्धर्षः कम्पयन् धरणीतलम्॥ ११॥
चालयन् सकलां पृथ्वीं रथनेमिस्वनेन च।
समायातोऽपि विपुलैः सैनिकैः परिवारितः॥ १२॥

उधर वह शत्रुओं द्वारा अजेय वृहत्काय भी पृथ्वी को कँपाता हुआ तथा रथ चालन की ध्वनि से पृथ्वी को प्रतिध्वनित करता हुआ बहुत से सैनिकों से घिरा हुआ वहाँ (युद्धभूमि में) आ पहुँचा।। ११–१२।।

तस्मिन् समागते घोरं राक्षसानां दुरात्मनाम्।
प्रावर्तत महायुद्धं वानरैर्भयदायकम्॥ १३॥

उसके आने पर, दुष्ट राक्षसों का वानरों के साथ भयङ्कर युद्ध होने लगा।। १३।।

गदाभिः परिघैर्वृक्षैः पाषाणैर्वानरर्षभाः।
राक्षसान् पातयामासुः शतशोऽथ सहस्रशः॥ १४॥

उस समय उन श्रेष्ठ वानरों ने गदाओं, परिघों (डण्डों), वृक्षों एवं शिलाओं से उन राक्षसों में से सहस्रों को मार गिराया॥ १४॥

शस्त्रास्त्रैर्विविधैस्तद्वद्वानरानपि राक्षसाः।
संग्रामे पातयामासुर्महाबलपराक्रमाः॥ १५॥

उसी तरह नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों से उन बलवान् राक्षसों ने भी वानरों को उस युद्ध में मारना प्रारम्भ किया॥ १५॥

ततो धनुः समादाय भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
पातयामासतुः सङ्ख्ये राक्षसान् भीमविक्रमान्॥ १६॥

तब वे दोनों भाई— श्रीराम एवं लक्ष्मण भी अपना अपना धनुष् उठाकर, समरभूमि में पहुँचकर भयङ्कर बलशाली राक्षसों को मारने लगे॥ १६॥

स चापि राक्षसश्रेष्ठो निनदन् समराजिरे।
वानरान् पातयामास शतशोऽथ सहस्रशः॥ १७॥

उधर वह राक्षसश्रेष्ठ मेघनाद भी युद्धभूमि में गर्जना करते हुए सैकड़ों हजारों वानरों को गिराने लगा॥ १७॥

ततः समभवद्युद्धमतुलं लोमहर्षणम्।
रामलक्ष्मणयोस्तेन राक्षसेन दुरात्मना॥ १८॥

तब श्रीराम एवं लक्ष्मण का उस दुष्ट राक्षस से घनघोर लोमहर्षक युद्ध आरम्भ हुआ॥ १८॥

प्रहस्तप्रमुखाश्चान्ये ये च वीरा महाबलाः।
तैः सार्धं वानरेन्द्रेण युद्धं चासीत् सुदारुणम्॥ १९॥

उस राक्षस के पक्ष में जो अन्य प्रहस्त आदि महाबलशाली वीर थे, वे भी वानरेन्द्र (सुग्रीव) के साथ भयंकर युद्ध में प्रवृत्त हुए॥ १९॥

यथा प्रवृत्तिं तेषां तु युद्धं घोरतरं महत्।
दिवारात्रं मुनिश्रेष्ठ पश्यतां भयदायकम्॥ २०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उनके द्वारा किया जा रहा वह युद्ध, जो कि दिनरात लड़ा जा रहा था, देखने वालों के लिये और भी अधिक भीषण भयोत्पादक था॥ २०॥

यथा नालोकितं कैश्चिद्देवैर्वा यक्षकिन्नरैः।
कदाचिदन्तरिक्षे च कदाचिद्धरणीतले॥ २१॥

ऐसा भीषण युद्ध किन्हीं भी देवताओं या यक्षों तथा किन्नरों ने पहले कभी नहीं देखा था। वह युद्ध कभी आकाश में होता तो कभी पृथ्वी पर लड़ा जाता था।। २१।।

महास्त्रशस्त्रविक्षेपैर्गदासिपरिघोत्तमैः।
त्रिशूलैः पट्टिशैर्वापि बभूव तुमुलं महत्॥ २२॥

वह युद्ध भयङ्कर अस्त्र शस्त्रों से; जैसे गदा, तलवार, लौह दण्ड, त्रिशूल, पट्टिश (एक प्राचीन शस्त्र=पटा) आदि से लड़ा जा रहा था, अतः उसमें और भी अधिक भयङ्करता आ गयी थी।। २२।।

दिनेऽपि समभूद्रात्रिर्निशीथेऽप्यभवद्दिनम्।
अनभ्रेऽप्यभवद् वृष्टिर्वायुश्च तुमुलो ववौ॥ २३॥

उन अस्त्र-शस्त्रों के प्रभाव से उस युद्धभूमि में कभी दिन में रात्रि (अन्धकार) हो जाती तो कभी रात्रि में दिन (प्रकाश) प्रतीत होने लगता था। कभी मेघों के विना ही वृष्टि होने लगती थी या कभी भयङ्कर चक्रवात चलने लगता था।। २३।।

वज्रावपातः शतशो बभूव समराङ्गणे।
एवं समभवद्युद्धं दिनत्रयमनुत्तमम्॥ २४॥

उस युद्धभूमि में सैकड़ों बार वज्रपात भी हुआ। इस प्रकार तीन दिन तक भयङ्कर एवं अद्वितीय युद्ध निरन्तर चलता रहा।। २४।।

ततो रात्रौ त्रयोदश्यां चतुर्थेऽहनि लक्ष्मणः।
जघान तं महावीरमतिकायं महेषुभिः॥ २५॥

तब उस युद्ध के चौथे दिन, त्रयोदशी रात्रि के समय वीर लक्ष्मण ने उस विपुलकाय राक्षस को तीक्ष्ण बाणों से मार डाला।। २५।।

अन्ये च राक्षसश्रेष्ठा राघवेण महात्मना।
निहताः समरे केचिद्वानरैरपि चापरे॥ २६॥

दूसरे कुछ विशिष्ट राक्षसों को महात्मा श्रीराम ने उस युद्ध में मार डाला। कुछ को बानरों ने मार दिया।। २६।।

हनुमदङ्गदाद्यैश्च निहता बहवो रणे।
दुद्रुवुश्च भयात् केचिद्रामो हृष्टमना बभौ॥ २७॥

उस युद्धभूमि में बहुत से राक्षसों को हनुमान् तथा अङ्गद आदि वीर वानरों ने भी मारा। तब बाकी बचे राक्षस उस युद्धभूमि से पलायन कर गये। यह देखकर भगवान् राम बहुत प्रसन्न हुए।। २७।।

वानराः स्युर्महाहर्षाश्चक्रुर्जयजयध्वनिम्।
बभूव नभसः पुष्पवृष्टिश्च महती ततः॥ २८॥

भगवान् को प्रसन्न देखकर वहाँ उपस्थित वानर भी हर्षपूर्वक भगवान् की जयजयकार करने लगे। साथ ही आकाशस्थित देवताओं ने भी महती पुष्पवृष्टि की।। २८।।

रामोऽपि भ्रातरं दोर्भ्यामालिङ्ग्य परमादृतः।
मूर्ध्न्यवघ्राय हृष्टात्मा ब्रह्मणोऽन्तिकमन्वगात्॥ २९॥

श्रीराम ने भी अपने भाई लक्ष्मण का, बाहों में भरकर परम आदरपूर्वक आलिङ्गन किया। वे उसका शिर सूँघकर प्रसन्न होते हुए ब्रह्मा जी के पास पहुँचे।। २९।।

प्रातः सम्पूजयामास देवीं बिल्वे सुरेश्वरीम्।
ततः प्रणम्य भूयोऽगाद्युद्धाय रणमूर्धनि॥ ३०॥

वहाँ उन्होंने विल्ववृक्ष के नीचे बैठकर प्रातःकाल ही भगवती देवी का पूजन किया तथा पुनः युद्धभूमि में लौटकर युद्धक्षेत्र के अग्रभाग में पहुँच गये।। ३०।।

रावणोऽथ समाकर्ण्य निहतं तं महाबलम्।
रक्षायै विनियोज्यैव पुरस्य तनयं मुने॥ ३१॥
मेघनादं महावीरं स्वयं युद्धाय निर्ययौ।
तदाऽऽसीन्सुमहद्युद्धं भयदं ह्यतुलं मुने॥ ३२॥

हे मुने! उधर रावण भी अपने महान् बली भाई कुम्भकर्ण का वध सुनकर, अपने पुत्र महावीर मेघनाद को ही लङ्कापुरी की सुरक्षा में नियुक्त कर, स्वयं युद्ध के लिये निकल पड़ा। हे मुने! उसके युद्धभूमि में आने पर, वहाँ पुनः भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ।। ३१–३२।।

रक्षसा वानराणां च यमराष्ट्रविवर्धनम्।
रामेण लक्ष्मणेनापि युद्धं तस्याभवन्महत्॥ ३३॥

वह वानरों और राक्षसों का युद्ध केवल यमपुरी (मृत्यु) के वासियों की ही सङ्ख्या बढ़ाने वाला था। उसका राम और लक्ष्मण के साथ भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ।। ३३।।

तत्र वीक्ष्य समीपे तु विभीषणममर्षतः॥ ३४॥
मयदत्तां महाशक्तिं जग्राह स निशाचरः।
जाज्वल्यमानां तां शक्तिं विभीषणवधोद्यताम्॥ ३५॥

उस रावण ने (श्रीराम के) पास ही खड़े विभीषण को देखकर क्रोधपूर्वक, मय राक्षस द्वारा प्रदत्त एक प्रज्वलित महाशक्ति को उठाया, जो कि मानो विभीषण के वध के लिये ही निर्मित हुई थी।। ३४–३५।।

लक्ष्मणस्त्रातुकामस्तं सम्मुखे तस्य संस्थितः।
सा शक्तिस्तेन निःक्षिप्ता प्रबिभेद रसातलम्॥ ३६॥

इसी समय लक्ष्मण, विभीषण की रक्षा के लिये, उस शक्ति के सम्मुख आ गये। उस राक्षस द्वारा फैंकी गयी वह शक्ति लक्ष्मण पर प्रहार करती हुई पाताल में चली गयी।। ३६।।

लक्ष्मणो मूर्च्छितश्चापि पपात धरणीतले।
तं समादातुकामः स लक्ष्मणं राक्षसेश्वरः॥ ३७॥

उधर लक्ष्मण उस शक्ति के प्रहार से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उन लक्ष्मण को इस दशा में वहाँ से उठाकर ले जाने के लिये रावण उनकी तरफ बढ़ा।। ३७।।

पस्पर्श बाहुभिः क्षिप्रं क्रुद्धस्तं पवनात्मजः।
मुष्टिना ताडयामास सुदृढं विपुलोरसि॥ ३८॥

ज्यों ही रावण ने लक्ष्मण के शरीर का अपने हाथों से स्पर्श किया, यह देखकर पवनपुत्र हनुमान् ने क्रुद्ध होकर उस रावण की छाती में बलपूर्वक मुष्टिका का प्रहार किया।। ३८।।

स तेन ताडितो वीरः पपात रुधिरं वमन्।
मूर्च्छितो घूर्णनयनो निश्चेताः स्वरथोपरि॥ ३९॥

वह वीर रावण उस मुष्टिका प्रहार को सहन नहीं कर सका और मुँह से रक्त फैंकता मूर्च्छित होता हुआ अचेतन होकर अपने रथ पर जा गिरा।। ३९।।

ततः संज्ञामनुप्राप्य धनुरुद्यम्य वेगतः।
मारुतिं हन्तुकामोऽसावभ्यधावत रावणः॥ ४०॥

फिर कुछ समय बाद चेतना (होश) आने पर, वह रावण धनुष् उठाकर तेजी से हनुमान् को मारने के लिये दौड़ा।। ४०।।

ततः सम्वीक्ष्य दुर्धर्षं मारुतेरन्तकोपमम्।
श्रीरामो धनुरुद्यम्य रावणं चेदमब्रवीत्॥ ४१॥

तब हनुमान् की तरफ मृत्यु की तरह दौड़ते हुए उस दुर्धर्ष रावण को श्रीराम ने, अपना धनुष् सन्नद्ध करते हुए यह कहा—॥ ४१॥

"अद्य राक्षसराज त्वां निशितैः सायकोत्तमैः।
पातयिष्यामि दुष्टात्मन् यदि नोत्सृजसे रणम्"॥ ४२॥

"अरे राक्षसराज! अब यदि तूँ युद्ध छोड़कर भाग न गया तो आज मैं अपने तीखे बाणों के प्रहार से तुझे नष्ट ही कर डालूँगा"॥ ४२॥

इत्युक्त्वा स महाबाहुर्बाणं धनुषि सन्दधे।
ततो भयाद्रणं त्यक्त्वा रावणः पुरमाययौ॥ ४३॥

यों कहकर भगवान् राम ने रावण को मारने के लिये ज्यों ही धनुष् पर बाण चढ़ाया तो वह रावण भय के मारे, युद्धभूमि छोड़कर लङ्कापुरी में जाकर छिप गया॥ ४३॥

मेघनादवध

तमाश्वास्य रणे प्रायादिन्द्रजिद्भीमविक्रमः।
तेनाभवन्महद्युद्धं लक्ष्मणस्य महात्मनः॥ ४४॥

तब भयङ्कर विक्रमी इन्द्रजित् (मेघनाद) उस (अपने पिता) को आश्वासन देकर, युद्धक्षेत्र में पहुँचा। वहाँ उसका महात्मा लक्ष्मण के साथ भीषण युद्ध हुआ॥ ४४॥

सुघोरं भयदं सर्वलोकसम्मोहकारकम्।
ततो रात्रावमोघास्त्रैर्लक्ष्मणस्तं दुरासदम्॥ ४५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वह युद्ध पूर्वापेक्षया भी भयङ्कर था, जिसे देखने वाले सभी प्राणी किङ्कर्तव्यविमूढ़ हो गये थे। फिर रात्रि में उस दुष्ट राक्षस को लक्ष्मण अमोघ (सफल) अस्त्रों से प्रताड़ित करने लगे॥ ४५॥

पातयामास संग्रामे त्वमायां मुनिपुङ्गव!
ततो विलप्य बहुधा देवान्तकमुखैर्वृतः॥ ४६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! लक्ष्मण ने उस राक्षस को अमावस्या के दिन समरभूमि में गिरा दिया। उसकी मृत्यु सुनकर राक्षसराज रावण उसके लिये बहुत देर तक विलाप करता रहा॥ ४६॥

रावण का युद्धभूमि में प्रस्थान

स्वयं पुनः समायातः संग्रामे राक्षसेश्वरः।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य यावच्च नवमीतिथिम्॥ ४७॥
बभूव तुमुलं युद्धं रामरावणयोर्महत्।
अतुल्यं वचनातीतं सर्वलोकभयङ्करम्॥ ४८॥

फिर वह राक्षसराज स्वयं युद्धभूमि में देवान्तकादि से घिरा हुआ आया और प्रतिपत् तिथि से नवमी तिथि तक उन श्रीराम एवं रावण– दोनों में अनुदानीय और अवर्णनीय घनघोर युद्ध होता रहा, जिसे देखकर सभी प्राणी भयभीत हो गये।। ४७–४८।।

तत्र षष्ठीतिथिर्यावत्तावत्सैन्यं दिने दिने।
विनष्टं राक्षसेन्द्रस्य विपुलं संख्ययोज्झितम्॥ ४९॥

उस युद्ध में षष्ठी तिथि तक प्रतिदिन उस राक्षसराज के असङ्ख्य सैनिक मारे जाते रहे।। ४९।।

तस्यां षष्ठ्यां विनिर्माय मृण्मयीं प्रतिमां शुभाम्।
सायं कृत्वाधिवासं तु ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ५०॥
पत्रीं प्रवेष्टा सप्तम्यां देवीं तां समपूजयत्।
पत्रीप्रवेशमात्रेण सर्वसंहारकारिणी॥ ५१॥

उस षष्ठी के दिन लोकपितामह ब्रह्मा ने सायंकाल देवी की मृत्तिकामयी सुन्दर प्रतिमा बनाकर उसमें आवाहन आदि कर सप्तमी के दिन से पत्री (अँखुआ) बनाकर उनका पूजन प्रारम्भ किया। उस अँखुवे में प्रवेश करते ही वह देवी सर्वसंहारकारिणी बन गयी।। ५०–५१।।

रावणस्य वधार्थाय श्रीरामधनुराविशत्।
महाष्टम्यां ततो देवीं प्रातरेव जगत्पिता।
भक्त्या सम्पूजयामास विपुलैरुपहारकैः॥ ५२॥

तथा रावण के वध हेतु श्रीराम के धनुष् में आविष्ट हो गयी। तब महाष्टमी के दिन लोकपितामह ब्रह्मा ने प्रातःकाल ही बहुत सी उपहारसामग्री भेंट चढ़ाकर उस देवी की पूजा की।। ५२।।

ततः प्रसन्ना तस्मिन् स दिनसन्धौ महेश्वरी।
प्रविष्टा रामचन्द्रेषुं रावणस्य शिरांसि च॥ ५३॥
प्रचिच्छेद मुनिश्रेष्ठ! शतधा स रणाजिरे॥ ५४॥

तब वह महेश्वरी देवी दिन की सन्धि (सन्ध्या) में रामचन्द्र के धनुष्

में तथा रावण के दशों शिरों में प्रविष्ट हुई और हे मुनिश्रेष्ठ! देवी ने उन शिरों को युद्धभूमि में शतधा विभक्त कर दिया।। ५३–५४।।

सोऽपि भीतो भगवतीं सस्मार दशकन्धरः।
यदा तत्याज वाणान् स राघवो निधनेच्छया॥ ५५॥

इसे वह दशग्रीव रावण भी भयत्रस्त होकर देवी का स्मरण करने लगा। जब राघव राम ने उस रावण को मारने की इच्छा से बाण छोड़े।। ५५।।

तस्माद् भूयो बभूवुश्च देहमात्राच्छिरांसि च।
न जहौ समरे प्राणान् छेदितोऽपि महेषुभिः॥ ५६॥
चकार तुमुलं युद्धं पूर्वाह्णे नवमीदिने।
अतीव भयदं सर्वदेवानां दिवि पश्यताम्॥ ५७॥

परन्तु उसके वे शिर उन बाणों से कटकर भी पुनः पुनः उसके शरीर (धड़) पर जा टिकते थे। युद्ध में महान् बाणों से काटे जाने पर उसने प्राण नहीं छोड़ा और इस तरह उन दोनों का वह घोर युद्ध नवमी तिथि के प्रातःकाल तक चलता रहा। आकाश से देखने वाले देवताओं को भी वह युद्ध भयभीत कर रहा था।। ५६–५७।।

महानवम्यां तस्यां तु ब्रह्मा लोकपितामहः।
देवीं सम्पूजयामास नानाबलिभिरादरात्।
सुरम्यैर्धूपदीपाद्यैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥ ५८॥

महानवमी के दिन लोकपितामह ब्रह्मा ने भगवती को आदर के साथ नानाविध बलि चढ़ाकर देवी की पूजा विविध धूप दीप तथा नैवेद्य से प्रारम्भ की।। ५८।।

ततो देवी भगवती या विद्या मुक्तिदा स्वयम्॥ ५९॥

तब वह देवी जो कि साक्षात् विद्यास्वरूपिणी तथा मुक्तिप्रदात्री थी।। ५९।।

सैवाविद्यास्वरूपेण रावणं समुपागमत्।
ततो न देवीं सस्मार न वा भक्तिश्च तत्र वै॥ ६०॥

वही रावण के पास अविद्या के रूप में पहुँची। जिसके प्रभाव से वह माया मोहित हो देवी को स्मरण करना भी भूल गया, उनके प्रति भक्ति तथा आदर प्रकट करना तो उसके लिये बहुत दूर की बात हो गयी।। ६०।।

तस्यासीन्मुनिशार्दूल मोहितस्य च मायया।
अमर्षवशमापन्नो युयुधे राघवेण व।
ब्रह्मास्त्रजालसङ्घैः स दर्शयन् शक्तिमात्मनः ॥ ६१ ॥

फिर वह अमर्ष (असहिष्णुता, क्रोध एवं क्षोभ) के अधीन होकर राघव राम से युद्ध करने लगा। अनेकविध ब्रह्मास्त्रों के प्रयोग से वह अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने लगा।। ६१ ।।

रावण–वध

तथैव राघवश्चापि ब्रह्मास्त्रनिवहैर्मुने।
ताडयामास दुर्धर्षं रक्षसामधिपं रणे॥ ६२ ॥
एवं प्रहरतोः क्रोधात् परस्परजयैषिणोः।
व्यतीतमभवन्मध्यन्दिनं श्रीरामरक्षसोः ॥ ६३ ॥
ततोऽपराह्णे रामस्तु सन्ध्याय परमेश्वरीम्।
प्रणम्य प्रार्थयामास वधार्थं तस्य रक्षसः ॥ ६४ ॥

हे मुने! तब भगवान् राम ने भी उसके उन अस्त्रों का उत्तर वैसे ही अस्त्रों से दिया और रणभूमि में उस दुर्धर्ष राक्षसराज को व्यथित कर दिया। इस तरह एक दूसरे को जीतने की इच्छा से वे दोनों (राम और रावण) उस दिन दोपहर तक युद्ध करते रहे। तब अपराह्ण में भगवान् राम ने भगवती परमेश्वरी का ध्यान कर उन्हें प्रणाम कर उस राक्षस के वध हेतु उनसे प्रार्थना की।। ६२–६४ ।।

ब्रह्मापि प्रणिपत्यैनां देवीं भक्त्या पुनः पुनः।
प्रार्थयामास नाशाय रावणस्य दुरात्मनः ॥ ६५ ॥
ततो देवी स्वयं प्रादादमोघं शस्त्रमुत्तमम्।
वधार्थं राक्षसेन्द्रस्य ज्वलत्कालाग्नितेजसम् ॥ ६६ ॥

उधर ब्रह्मा जी ने भी देवी को पुनः पुनः भक्तिपूर्वक प्रार्थना कर उस राक्षसराज रावण के वध हेतु प्रार्थना की। तब देवी ने कृपाकर स्वयं एक अमोघ अस्त्र प्रदान किया। उससे रावण का वध होना निश्चित था। उस अस्त्र में प्रज्वलित कालाग्नि के समान चमक थी।। ६५–६६ ।।

ब्रह्मा तदस्त्रमानीय प्रीत्या परमया युतः।
श्रीरामाय ददौ शीघ्रं रावणस्य विघातिने ॥ ६७ ॥
सर्वशक्तिमयं चारुवेगं कालान्तकोपमम्।
ज्वलन्तं तेजसा वीक्ष्य मुमुदे रघुनन्दनः ॥ ६८ ॥

ब्रह्मा जी ने वह अस्त्र परम प्रीतिपूर्वक ग्रहण कर रावण के हन्ता श्रीरामचन्द्र को शीघ्र ही प्रदान कर दिया। उस सर्वशक्तिमान् प्रबल वेग वाले मृत्युतुल्य अस्त्र को देखकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए।। ६७–६८।।

ततः संस्मृत्य तां देवीं तदस्त्रं राघवो मुने।
सन्धायाकर्णकोदण्डं तूर्णं चिक्षेप तं प्रति॥ ६९॥
ततस्तदस्त्रं निर्भिद्य हृदयं दुष्टचेतसः।
प्राणान् जग्राह वेगेन विवेश च धरातलम्॥ ७०॥

हे मुने! तब श्रीरामचन्द्र ने भगवती का स्मरण कर उस अस्त्र को धनुष् पर चढ़ाकर कान तक उसकी प्रत्यञ्चा खींचकर, रावण को मारा। तब वह अस्त्र (वाण) उस दुष्ट राक्षस के हृदयस्थल को चीरता हुआ। उसके प्राणों को शीघ्रता से हरता हुआ पृथ्वी में प्रविष्ट हो गया।। ६९–७०।।

ततः पपात संग्रामे रथाद्धेमपरिष्कृतात्।
पश्यतां सर्वदेवानां रावणो देवकण्टकः॥ ७१॥
चालयन्वसुधां सर्वां क्षोभयन् सरितां पतिम्।
त्रासयन् सर्वभूतानि राक्षसांश्च विषादयन्॥ ७२॥

तब वह सुवर्णमय रथ से नीचे युद्धभूमि में गिर पड़ा। यों वह देवत्रासक रावण सभी देवताओं के देखते ही देखते, सम्पूर्ण पृथ्वी को कम्पाता हुआ, समुद्र को क्षुब्ध करता हुआ। सब प्राणियों को दुःखी करता हुआ, राक्षसों को विषण्ण करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ।। ७१–७२।।

वानरा हर्षसम्पन्नाश्चक्रुर्जयजयध्वनिम्।
त्रैलोक्यवासिनश्चान्ये हते तस्मिन् दुरात्मनि॥ ७३॥
बभूव पुष्पवृष्टिश्च रामोपरि सुगन्धिदा॥ ७४॥

इससे वानरों ने भगवान् राम की जय जयकार करना प्रारम्भ किया। तथा उस दुरात्मा के मरने पर, जगत् के सब प्राणी भी भगवान् की जयजयकार करने लगे और भगवान् राम पर सुगन्धिमय पुष्पवृष्टि होने लगी।। ७३–७४।।

रामाज्ञया तु देवेन्द्रो ववर्षाप्यमृतं यदा।
तदा सञ्जीविता भूयो वानरा ये हता रणे॥ ७५॥

श्रीराम की आज्ञा से उसी समय देवराज इन्द्र ने अमृतवर्षा की, जिसके प्रभाव से जो वानर रणभूमि में मरे पड़े थे वे सब पुनः जीवित हो गये।। ७५।।

बिभीषणस्तु बहुधा भ्रातृशोकेन दुःखितः।
रुरोद सान्त्वयामास तं रामो भगवान् स्वयम्॥ ७६॥

परन्तु विभीषण अपने भाई की मृत्यु से दुःखी होकर बहुत प्रकार से शोक करने लगा। तब स्वयं भगवान् राम ने उसको अनेक प्रकार से सान्त्वना दी।। ७६।।

रावणस्य च संस्कारं कृतवान् स बिभीषणः।
ततः सीतां समानीय लक्ष्मणेन समन्वितः॥ ७७॥
श्रीरामो हर्षमापन्नो वानरैश्च समन्वितः।
प्रायात् सम्पूजिता यत्र ब्रह्मणा जगदीश्वरी॥ ७८॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीरामरावणयोः संग्रामे रावणवधो
नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

तब विभीषण ने उस रावण के और्ध्वदैहिक संस्कार किये। फिर (अशोकवाटिका से) सीता को बुलाकर लक्ष्मणसहित परम प्रसन्न श्रीरामचन्द्र वानरों को साथ लेकर वहाँ पहुँचे जहाँ पितामह ब्रह्मा भगवती की पूजा कर रहे थे।। ७७–७८।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
रामरावणयुद्ध में रावणवधवर्णन नामक
सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

[शारदीय पूजानुष्ठान तथा रामायणवर्णन]

महोत्सव का विधिपूर्वक विसर्जन

श्रीमहादेव०— श्रीरामस्तु ततो देवीं भक्त्या परमया युतः।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तुष्टाव प्रीतमानसः॥ १॥

श्रीमहादेव— तब प्रसन्नमन एवं परमभक्ति से युक्त श्रीराम ने भगवती परमेश्वरी को दण्ड की तरह भूमि पर गिरकर प्रणाम करते हुए उनकी स्तुति की।। १।।

अन्ये च त्रिदशश्रेष्ठास्तत्रागत्य महामुने।
तुष्टुवुश्च महादेवीं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्॥ २॥

हे महामुने! इसी तरह अन्य प्रमुख देवों ने भी वहाँ आकर सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयकर्त्री उन भगवती देवी की स्तुति की।। २।।

तैः संस्तुता महादेवी पूजिता भक्तिभावतः।
विपुलैर्बलिभिः प्रीता बभूव जगदम्बिका॥ ३॥

उनके द्वारा संस्तुत एवं उत्कृष्ट भक्तिभाव से पूजित वह भगवती उनसे विविध बलि–उपहार पाकर अत्यधिक प्रसन्न हुई।।३।।

प्रहर्षश्च महानासीन्मुने! त्रैलोक्यवासिनाम्।
तत्र देव्या महोत्साहे स्वर्गे मर्त्ये रसातले॥ ४॥
ननृतुर्वानराः सर्वे जगुर्गीतं मनोहरम्।
श्रीरामौ मुमुदे देव्याः प्रसादात् पूर्णमानसः॥ ५॥

हे मुने! देवी का यह सब महोत्सव देखकर स्वर्ग मर्त्य एवं पाताल— इन तीनों लोकों के वासियों को भी अत्यधिक हर्ष हुआ। देवी की परम प्रसन्नता प्राप्त कर श्रीराम एवं लक्ष्मण हृदय से सन्तुष्ट हुए, वानर भी हर्ष से नाचने–कूदने एवं सङ्गीतमय किलकारी मारने लगे।। ४–५।।

एवं महामहोत्साहे गते तु नवमीतिथौ।
श्रीरामस्य तथान्येषां देवानामपि नारद!॥ ६॥

हे नारद! उस नवमी तिथि के दिन देवी के उस महामहोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर श्रीराम तथा अन्य देवताओं का मन प्रसन्न हो गया।। ६।।

दशम्यां पूजयित्वा तु प्रातरेव पितामहः।
व्यसृजज्जलधौ मूर्तिं ततः स्वगृहमाययौ॥ ७॥

फिर दशमीतिथि के दिन पितामह ब्रह्मा ने उस भगवती की मूर्ति का विधिवत् पूजन कर उस का समुद्र में ससम्मान विसर्जन कर, अपने लोक को प्रस्थान किया।। ७।।

लङ्केश्वरं ततश्चक्रे रामचन्द्रो विभीषणम्।
ततः श्रीमान् रघुश्रेष्ठः सीतया लक्ष्मणेन च॥ ८॥
पुष्पकं रथमारुह्य वानरेश्वरसंयुतः।
सहितो वानरैः सर्वै राक्षसेशसमन्वितः॥ ९॥
वेष्टितैस्त्रिदशैश्चापि भल्लूकैः कोटिकोटिशः।
पुरःप्रवेशने यात्रां चक्रे नत्वा महेश्वरीम्॥ १०॥

तब श्रीरामचन्द्र ने विभीषण को लङ्काधिपति पद पर अभिषिक्त किया। उसके बाद वे रघुवर सीता और लक्ष्मण तथा वानरराज सुग्रीव सहित सभी वानर एवं लङ्केश्वर विभीषण सहित पुष्पक रथ पर आरूढ़ होकर, करोड़ों देवताओं और भालुओं के साथ भगवती को प्रणाम कर पुन: अपनी अयोध्यापुरी में प्रवेश हेतु प्रस्थान किया।। ८–१०।।

इत्येवं मुनिशार्दूल भगवान् पुरुषोऽव्ययः।
स्वयमाराधयामास शरत्काले विधानतः॥ ११॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस तरह स्वयं उन अविनाशी पुरुष भगवान् श्रीराम ने भी शरत्काल में विधिपूर्वक भगवती देवी की अर्चना की थी।। ११।।

अन्येषां का कथा वत्स! देवानां यक्षरक्षसाम्।
नराणां सिद्धगन्धर्वपन्नगानां महामते!॥ १२॥

महामते! फिर अन्य देवताओं यक्षों, राक्षसों, मानवों, सिद्धों, गन्धर्वों एवं नागों की बात ही क्या कही जाय!।। १२।।

नास्ति देव्या समो लोके समाराध्यतमो मुने!
यस्तां मोहान्न सेवेत स पापात्मा न संशयः॥ १३॥

हे महामुने! इस लोक में देवी से बढ़कर कोई अन्य देवता नहीं है, जिसकी एकान्ततः आराधना की जाय। जो प्रमादवश उसकी आराधना नहीं करता वह पापी ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं।। १३।।

न तस्य विद्यते स्थानं कुत्रापि मुनिसत्तम!
यस्तत्सपर्यालोपं वै करोति च स पापकृत्॥ १४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसे पापी का कहीं कोई स्थान (शरणस्थल) नहीं है। जो उसकी पूजा का लोप करता है, वह निश्चित ही पापी है।। १४।।

तस्माच्छाक्तोऽथ वा शैवः सौरो वा वैष्णवोऽथ वा।
अवश्यं पूजयेद्देवीं शारदीये महोत्सवे॥ १५॥

अतः, फिर भले ही वह शाक्त हो या शैव; सूर्योपासक हो या विष्णूपासक, इन सभी को शारदीय महोत्सव के अवसर पर भगवती की पूजा अवश्य करनी चाहिये।। १५।।

बलिभिर्मत्स्यमांसाद्यैश्छागकासरमेषकैः।
प्रीतये जगदीश्वर्यास्तथान्यैरुपचारकैः॥ १६॥

भगवती का मत्स्यमांस या बकरे, भैंसे और भेड़ के मांस से बने बलि–उपहार भेंट करने चाहिये, जिससे हमें उनकी प्रीति उपलब्ध हो सके। साथ ही अन्य उपचारों से भी पूजा करनी चाहिये।। १६।।

वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं कर्तव्यं सर्वथादृतैः।
अवश्यं यजनं देव्याः शारदीये महोत्सवे॥ १७॥

भक्त को इसमें किसी भी प्रकार से वित्त की कमी नहीं दिखानी चाहिये। अपितु इसमें उदारतापूर्वक धन खर्च करना चाहिये। और शारदीय महोत्सव के अवसर पर भगवती का पूजन अर्चन अवश्य करना चाहिये।। १७।।

गृह्णाति चण्डिका यस्माद् दुष्टान् वै पशुरूपकान्।
तस्मात्पशुबलिर्देयो देवीभक्तिपरायणैः॥ १८॥
अन्यैरपि महायज्ञे देव्याः प्रीतिमभीप्सुभिः।
देव्यर्चनरता ये च प्रतिसंवत्सरं मुने!॥ १९॥

क्योंकि चण्डिका देवी दुष्टों को पशुरूप से ग्रहण करती हैं, अतः देवीभक्तिपरायणों को देवी के लिये पशुबलि अवश्य उपहृत करनी चाहिये। हे मुने! देवी की प्रीति चाहने वाले अन्य लोगों को भी महायज्ञ में जो प्रतिवर्ष देवी की पूजा करते हैं उन्हें भी देवी के लिये पशु–बलि देनी ही चाहिये।। १८–१९।।

तदाज्ञावशगाः सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः।
किमन्यद् बहुनोक्तेन सत्यमेव महामुने॥ २०॥

हे महामुने! उन देवी की प्रशंसा में अधिक क्या कहा जाय! इन्द्र आदि प्रधान देवता भी उस देवी की आज्ञा के वश में रहते हैं— यह सत्य ही है। फिर किसी अन्य की तो बात ही क्या की जाय!।। २०।।

नास्ति लोकत्रये पुण्यं देव्या अर्चनसम्भवात्।
य इदं शृणुयाद् भक्त्या रामायणमनुत्तमम्॥ २१॥

देवी की पूजा को छोड़कर अन्य कोई सर्वोत्तम पुण्यकर्म नहीं है। जो इस देवीपूजानिमित्त राम के अयन (गमन) को भक्तिपूर्वक सुनता है वह भी सर्वोत्तम पुण्य है।। २१।।

देव्या विस्तृतमाहात्म्यं महापातकनाशनम्।
स देव्याः पदवीं याति ब्रह्मादीनां सुदुर्लभाम्॥ २२॥

महापातकों की नाशक देवी की विस्तारपूर्वक महिमा का श्रवण महापातक नाशक है। जो इसे सुनता है वह (भक्त) ब्रह्मा आदि देवताओं को भी कठिनता से मिलने वाले देवी के लोक में पहुँच जाता है।। २२।।

इत्युक्तं ते मुनिश्रेष्ठ! यथा स भगवान् हरिः।
सम्भूय मानुषं देहं समाश्रित्य धरातले॥ २३॥
शत्रोर्निधनमन्विच्छन्नकालेऽपि विधानतः।
देवीं सम्पूजयामास भूयः किं श्रोतुमिच्छसि॥ २४॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे देव्याः शारदीयपूजानुष्ठाने श्रीमद्रामायणवर्णनं
नाम अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

इस तरह से, हे मुनिश्रेष्ठ! जिस प्रकार भगवान् विष्णु पृथ्वी पर मानवशरीर में अवतरित हुए थे तथा शत्रु (रावण) का नाश चाहने की इच्छा से उन्होंने विधिपूर्वक जगन्माता देवी की अकालपूजा के रूप में अर्चना की थी– यह सब मैंने आपको सुना दिया। अब आप मुझसे इस विषय में अन्य कुछ क्या सुनना चाहते हैं?।। २४।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
शारदीय अनुष्ठान में रामायणवर्णननाम
अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त॥

उनचासवाँ अध्याय

[ब्रह्मा एवं भगवती का संवाद]

श्रीनारद०— "वदन्त्यनेकतत्त्वज्ञाः काली विद्या परात्परा।
या सैव कृष्णरूपेण क्षितौ स्वयमवातरत्॥ १॥

श्रीनारद— अनेक विद्वान् ऐसा कहते हैं कि ये परात्परा विद्या भगवती काली ही हैं जो कृष्ण रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुई थीं।। १।।

वसुदेवगृहे देव्यां देवक्यां निजलीलया।
कंसादिदुष्टभूभारनिवृत्त्यै जगदीश्वरी॥ २॥

अभवच्छ्रोतुमिच्छामि कस्माद्देवी महेश्वरी।
पुंरूपेणावतीर्णाभूत्क्षितौ तन्मे वद प्रभो"॥ ३॥

वसुदेव के घर में देवी देवकी के गर्भ में स्वकीय लीला से कंस आदि दुष्टों से हो रहे पृथ्वी के भार को दूर करने के लिये जगदीश्वरी स्वयं पधारीं। इसमें मेरी यही जिज्ञासा है कि उस परमभगवती महादेवी को ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गयी थी कि उन्हें इस भूमण्डल पर पुरुषरूप में अवतीर्ण होना पड़ा! हे प्रभो! आप कृपया मेरी इस जिज्ञासा को शान्त कीजिये।। २–३।।

श्रीमहादेव०— "शृणु गुह्यतमं वत्स सत्यं ते कथयामि तत्।
अवतीर्णाभवत्पृथ्व्यां देवक्यां वसुदेवतः॥ ४॥

शम्भोरिच्छानुसारेण मायापुरुषरूपधृक्।
दुष्टभूभारसंहृत्यै द्वापरान्ते महीतले"॥ ५॥

श्रीमहादेव जी— हे वत्स! अब तुम उस गोपनीय विषय को सुनो! मैं तुम्हें सत्य रूप में वह सब कुछ बताऊँगा कि कैसे वह देवी वसुदेव के घर में देवकी के गर्भ से भगवान् शङ्कर की इच्छा से मायापुरुषरूपधारी इस भूमण्डल से कंस आदि दुष्टों के भार को कम करने के लिये द्वापर युग के अन्त में इस पृथ्वी पर आयीं?।। ४–५।।

श्रीनारद०— "यथेच्छा समभूच्छम्भोर्यथा चावातरत्क्षितौ।
काली श्रीकृष्णरूपेण वसुदेवगृहे स्वयम्॥ ६॥

श्री नारद– कैसे भगवान् शङ्कर की इच्छा हुई कि भगवती काली देवी इस क्षितिज तल पर कृष्णरूप में वसुदेव के घर में देवकी के गर्भ से अवतरित हुईं। इस बात को आप मुझे विस्तार से समझाइये?।। ६।।

देवक्यां परमेशान! तदेतद्विस्तरेण मे।
त्वं मे शंस जगन्नाथ! सर्वज्ञोऽसि दयापरः॥ ७॥

हे परमेश्वर! उन्हें देवकी के गर्भ में क्यों आना पड़ा? यह बात भी मुझे स्पष्टतः बताइये; क्योंकि आप सर्वज्ञ भी हैं और दयालु भी!।। ७।।

श्रीमहादेव०– **वत्स! वक्ष्याम्यशेषेण तवाहं मुनिसत्तम!**
यथेच्छाभून्महेशस्य यथा जाता च सा क्षितौ॥ ८॥
काली श्रीकृष्णरूपेण द्वापरान्ते महीतले।
शृणु सावहितो भूत्वा भक्तिमानसि नारद!॥ ९॥

श्रीमहादेव– हे मुनिश्रेष्ठ! मैं तुम्हें वह सब विस्तार से बताऊँगा कि कैसे भगवान् शङ्कर की इच्छा से वह महेश्वरी देवी काली द्वापर युग के अन्त में भूमण्डल श्रीकृष्ण के रूप में पर अवतरित हुईं! हे नारद! तुम देवी के भक्त हो, अतः सावधानी से सुनो।। ८–९।।

एकदा मन्दिरे रम्ये कैलासे च सुनिर्जने।
पार्वत्या विहरञ्छम्भुः स्थितः परमकौतुकी॥ १०॥

एक बार, कैलास पर्वत के एक सुरम्य परन्तु निर्जन (एकान्त) स्थान में परम आश्चर्यमय कृत्य करनेवाले भगवान् शङ्कर भगवती पार्वती के साथ विराजमान थे।। १०।।

तत्र शम्भुर्निरीक्ष्यैव पार्वत्या रूपमुत्तमम्।
चेतसा चिन्तयामास नारीजन्मातिशोभनम्॥ ११॥

वहाँ बैठे हुए भगवान् शङ्कर ने श्रीपार्वती जी का अत्यद्भुत रूप देखकर मन में विचार किया कि नारी रूप में जन्म लेना अतीव सुन्दर होता है।। ११।।

ततः प्राह महादेवो देवीं सर्वाङ्गसुन्दरीम्।
प्रीणयन् प्रियवाक्येन विमृजन् पाणिना मुखम्॥ १२॥

तब भगवान् शङ्कर ने उन सर्वाङ्गसुन्दरी पार्वती देवी को प्रिय वचनों से प्रसन्न करते हुए, उनके सुन्दर मुख पर हाथ फेरते हुए कहा– ।। १२।।

श्रीशिव०– **''कृपया परमेशानि! सर्व एव मनोरथाः।**
परिपूर्णीकृताः किञ्चिदवशिष्टं न विद्यते॥ १३॥

श्रीमहादेव— हे परमेश्वरि! आपने मेरे सभी मनोरथ पूर्ण कर दिये हैं। अब कुछ अवशिष्ट नहीं है।। १३।।

अन्यत्किमपि शर्वाणि विद्यते वाञ्छितं मम।
तत्सम्पूर्णं कुरु शिवे! यदि ते मय्यनुग्रहः"॥ १४॥

हे शर्वाणि! शिवे! हाँ! मेरे मन की एक बात अवशिष्ट है, यदि आप का मुझ पर अनुग्रह हो तो उसे भी पूर्ण कर दें!'।। १४।।

श्रीदेवी०— **"किमन्यद्विद्यते शम्भो! वाञ्छितं तद्वद प्रभो।**
करिष्ये तच्च सम्पूर्णं भवतः प्रियकाम्यया"॥ १५॥

देवी— "हे प्रभो! हे भगवन् शङ्कर! आपके मन में जो इच्छा है उसे भी बता दें। आप की प्रिय कामनापूर्तिहेतु मैं उसे भी पूर्ण करूँगी"।। १५।।

श्रीशिव०— **"यदि मे त्वं प्रसन्नासि तदा पुंस्त्वमवाप्नुहि।**
कुत्रचित्पृथिवीपृष्ठे यास्येऽहं स्त्रीस्वरूपताम्॥ १६॥

भगवान् शङ्कर— "यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो आप कुछ समय के लिये पुरुष रूप धारण कर लें। उतने समय तक मैं भी मर्त्यलोक में कहीं स्त्री का स्वरूप धारण करूँगा।। १६।।

यथाहं ते प्रियो भर्ता त्वं वै प्राणसमाङ्गना।
एतदेव मनोऽभीष्टं विद्यते प्रार्थ्यमुत्तमम्।
कुरुष्व परिपूर्णं मे भक्ताभीष्टफलप्रदे"॥ १७॥

यदि मैं आप का प्रिय पति हूँ और आप मेरी प्रिय पत्नी हैं तो मैं आपसे यही प्रार्थना कर रहा हूँ। हे भक्तों को अभीष्ट फल देने वाली! आप मेरी मनःकामना पूर्ण करें"।। १७।।

श्रीदेवी०— **"भविष्येऽहं त्वत्प्रियार्थं निश्चितं धरणीतले।**
पुंरूपेण महादेव! वसुदेवगृहे प्रभो॥ १८॥
कृष्णोऽहं मत्प्रियार्थं स्त्री भव त्वं हि त्रिलोचन!"॥ १९॥

देवी— हे महादेव! हे त्रिलोचन! आपकी इस मनःकामना की पूर्ति हेतु मैं निश्चित ही भूमण्डल पर जाकर, हे प्रभो! वसुदेव के घर में जाकर मैं कृष्णरूप में अवतरित होऊँगी और आप मेरी प्रिय कामनापूर्ति हेतु स्त्रीरूप में अवतरित होइये।। १८–१९।।

शिव०— **"पुंरूपेण जगद्धात्रि प्राप्तायां कृष्णतां त्वयि।**
वृषभानोः सुता राधास्वरूपाहं स्वयं शिवे॥ २०॥

भगवान् शङ्कर– हे जगद्धात्रि! आपके द्वारा पुरुषरूप में कृष्णावतार लेने पर, मैं वृषभानु की सुता बनकर राधा के रूप में हे शिवे स्वयं।। २०।।

तव प्राणसमा भूत्वा विहरिष्ये त्वया सह।
मूर्तयोऽष्टौ तथा मर्त्ये भविष्यन्त्युत योषितः।
रुक्मिणीसत्यभामाद्या महिष्यश्चारुलोचनाः"॥ २१॥

तुम्हारी प्राणप्रिया बनकर, तुम्हारे साथ लीला करूँगी। उस समय मेरी मर्त्त्यलोक में स्त्रियों की अन्य आठ मूर्तियाँ भी होंगी। उनमें रुक्मिणी, सत्यभामा आदि सुन्दर नेत्रों वाली रानियाँ होंगी।। २१।।

श्रीदेवी०— **"तव मूर्तिभिरेताभिर्विहरिष्ये यथोचितम्।**
यथा नापि कृतं कैश्चिन्न श्रुतं वापि कुत्रचित्॥ २२॥

अपूर्वं तदुपाख्यानं लोकानां पापनाशनम्।
भविष्यति महादेव! महापुण्यकरं तथा॥ २३॥

देवी– "मैं तुम्हारी उन मूर्तियों के साथ में यथोचित विहार करूँगी। जैसा लोगों ने न कभी पहले सुना, न कहीं कभी किसी ने वैसा कार्य किया, ऐसी अभूतपूर्व चर्चाएँ सुनना लोगों के पापों के नाश का कारण बनेंगी। हेशङ्कर! ऐसा यह श्रवण महान् पुण्यप्रद होगा।।। २२–२३।।

विजया च जया चैव प्रियसख्यौ मम प्रभो!।
श्रीदामवसुदामाख्यौ पुरुषौ सम्भविष्यतः॥ २४॥

उसी समय हे प्रभो! विजया एवं जया नामकी मेरी दोनों प्रिय सखियाँ जो श्रीदामा एवं सुदामा नामक दो पुरुष रूप होंगी।। २४।।

विष्णुना समयः पूर्वमासीन्मम महेश्वर!।
स मेऽग्रजः प्रियो भ्राता भविष्यति हलायुधः॥ २५॥
मम प्रीतिकरो नित्यं रामाख्यः सुमहाबलः॥ २६॥

हे महेश्वर! भगवान् विष्णु को भी मैंने कभी यह वचन दिया था। उस समय वे (विष्णु) मेरे ज्येष्ठ भ्राता हलायुध रूप में अवतरित होंगे। जो उस समय नित्य मेरा प्रिय एवं हित करने वाले महाबलशाली राम के रूप में प्रसिद्ध होंगे।। २५–२६।।

देवकार्यं करिष्यामि सम्भविष्यामि च क्षितौ।
संस्थाप्य महतीं कीतिं पुनरेष्यामि भूतलात्"॥ २७॥

मैं भूमण्डल पर अवतरित होकर देवताओं के कार्य सिद्ध करूँगीं। इस तरह इन कार्यों के द्वारा भूमण्डल पर अपना महान् यश फैलाकर मर्त्यलोक से यहाँ लौट आऊँगी''।। २७।।

श्रीमहादेव०— एवं प्रतिश्रुतं देव्या शम्भवे प्रेमभावतः।
तस्माद् बभूव सा कृष्णः श्यामो नवघनद्युतिः ॥ २८ ॥

श्रीमहादेव— इस तरह देवी ने भगवान् शङ्कर के सामने प्रेमभाव से प्रतिज्ञा की तथा वे मर्त्यलोक में नये मेघ के समान श्यामवर्ण वाले कृष्ण के रूप में अवतरित हुईं।। २८।।

एतदेव मुनिश्रेष्ठ कारणं मूलमीरितम्।
कृष्णावतारे शर्वाण्या अन्यच्चापि निशामय॥ २९ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मर्त्यलोक में भगवती द्वारा कृष्णावतार ग्रहण करने का यही मूल कारण था। हाँ, एक कारण और भी था उसे भी सुन लो।। २९।।

निहताः समरे दैत्याः पूर्वं देव्या च विष्णुना।
द्वापरान्ते महीपाला बभूवुर्मुनिसत्तम!॥ ३० ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! पहले किसी समय, देवी तथा भगवान् विष्णु के द्वारा मारे गये दैत्यों ने द्वापर युग के अन्त में राजाओं के रूप में मर्त्यलोक में पुनः जन्म ग्रहण किया।। ३०।।

कंसस्तत्रातिदुधर्षस्तथा दुर्योधनादयः।
अनेकदेशसम्भूतास्तथान्ये क्षत्रियर्षभाः ॥ ३१ ॥

जिनमें कंस सबसे अधिक दुर्जय था। साथ ही अन्य दुर्योधन आदि क्षत्रियश्रेष्ठ भी अनेक देशों में उत्पन्न हुए।। ३१।।

तेषां भारासहा पृथ्वी गोरूपा ब्रह्मणोऽन्तिकम्।
प्रययौ त्रिदशैः सर्वैः समन्तात् परिवारिता॥ ३२ ॥

उस समय उनका भार सहन करने में असमर्थ होकर, गौ का रूप धारण कर अपनी पीड़ा सुनाने के लिये, देवताओं से घिरी हुई यह पृथ्वी ब्रह्माजी के पास पहुँची।। ३२।।

तां दृष्ट्वा धरणीं ब्रह्मा गोरूपामतिदुःखिताम्।
उवाच ''मातः! कस्मात्त्वं मदन्तिकमुपागता ?''॥ ३३ ॥

गौ रूप में उस पृथ्वी को अतिदुःखितावस्था में देखकर ब्रह्मा जी ने

उससे पूछा– "हे माता! आप इस समय मेरे पास किस कारण से आयी हैं?"।। ३३ ।।

धरणी०— "निहताः समरे ये ये पूर्वं दानवपुङ्गवाः।
त एव साम्प्रतं ब्रह्मन् राजानो दुष्टचेतसः॥ ३४॥

पृथ्वी– जो दानव पहले कभी युद्ध में मारे गये थे, हे ब्रह्मन्! वे ही दुष्ट आज पुनः मर्त्यलोक में आकर राजा बन बैठे हैं।। ३४ ।।

तान् वोढुमसमर्थाहं तवान्तिकमुपागता।
उपायः कल्प्यतां तेषां निधने कमलासन!"॥ ३५॥

उनका भार सहन करने में असमर्थ हो गयी हूँ। इसीलिये अपनी वेदना सुनाने हेतु आपके सामने आयी हूँ। हे कमलासन! उन दुष्टों की मृत्यु का कोई उपाय आप सोचें"।। ३५ ।।

श्रीमहादेव०— इत्याकर्ण्य वचो ब्रह्मा धरण्या मुनिपुङ्गव!
आश्वास्य तां स्वयं प्रागात्कैलासं त्रिदशैर्वृतः॥ ३६॥

श्रीमहादेव– हे मुनिपुङ्गव! ब्रह्मा जी ने पृथ्वी के ये पीड़ा भरे वचन सुनकर, उसको यथोचित आश्वासन देकर, वे स्वयं कुछ देवताओं के साथ कैलास पर्वत की तरफ चल दिये।। ३६ ।।

तत्र वीक्ष्य जगद्धात्रीं प्रणिपत्य पुनः पुनः।
कृताञ्जलिपुटो ब्रह्मा वचनं चेदमब्रवीत्॥ ३७॥

वहाँ जगन्माता देवी के दर्शन कर उन्हें बार-बार प्रणाम कर, हाथ जोड़कर ब्रह्मा जी ने यों निवेदन किया–।। ३७ ।।

ब्रह्मा०— "मातस्त्वया हता ये ये दैत्यदानवराक्षसाः।
विष्णुनापि च ते सर्वे साम्प्रतं क्षत्रियर्षभाः॥ ३८॥
तैर्व्याप्ता सकला पृथ्वी राजभिर्दुष्टचेष्टितैः।
न तान् विसहते पृथ्वी मृत्युस्तेषां विचिन्त्यताम्॥ ३९॥

ब्रह्मा– हे माता! आपने या भगवान् विष्णु ने पहले कभी जिन दैत्य, दानव एवं राक्षसों का वध किया था, वे सब क्षत्रिय बनकर समग्र पृथ्वी पर फैलकर वहाँ दुष्ट राजाओं के रूप में पापमय कृत्य कर रहे हैं। उनका भार यह पृथ्वी सहन नहीं कर पा रही है, अतः उनकी मृत्यु का कोई उपाय सोचिये।। ३८–३९ ।।

त्वं मातर्विग्रहं कृत्वा छलेन धरणीभुजः।
निपातय च तेषां तु मृत्युरूपा त्वमम्बिके!"॥ ४०॥

हे माता! आप मानव शरीरधारण कर उन राजाओं का छलपूर्वक वध कर डालिये। हे अम्बिके! आप ही उनके लिये मृत्युरूप हैं।। ४०।।

श्रीदेवी०— "नाहं योत्स्यामि संग्रामे स्त्रीरूपा क्षत्रियर्षभैः।
यतस्ते स्त्रीस्वरूपेण मां भक्त्या समुपाश्रिताः॥ ४१॥

देवी— मैं स्त्री रूप में उन वीर क्षत्रियों के साथ कैसे युद्ध क पाऊँगी; क्योंकि उन सभी ने अपने पूर्वजन्मों में स्त्रीरूपधारिणी मुझक अपनी भक्ति से प्रसन्न किया है।। ४१।।

किन्तु मे भद्रकाली या मूर्त्तिर्नवघनद्युतिः।
वसुदेवगृहे ब्रह्मन्! पुंरूपेण भविष्यति॥ ४२॥

किन्तु मेरा भद्रकाली का आकार, जो कि नये मेघ के सम श्यामवर्ण वाला है, हे ब्रह्मन्! वे वसुदेव के घर में पुरुषरूप में अवत होगा।। ४२।।

देवक्यां द्विभुजः सौम्यो वनमालाविराजितः।
श्रीवत्सलाञ्छनधरः सुचारुमुखपङ्कजः॥ ४३॥
आत्मसङ्गोपनार्थाय विष्णुलक्षणलक्षितः।
सर्वाङ्गसुन्दरः श्यामः शङ्खचक्रविराजितः॥ ४४॥
भविष्यति महामायो दुष्टक्षत्रियमर्दनः।
पातयिष्यति कंसादीन् विविधान् क्षत्रियर्षभान्॥ ४५॥

वहाँ वह देवकी के गर्भ से, दो भुजाओं वाला, सौम्यरूप, वनम से शोभित, श्रीवत्स का चिह्न धारण किये हुए, सुन्दर मुख कमलवा जनता से अपने वास्तविक रूप को गुप्त रखने हेतु भगवान् विष्णु के चिह्नों युक्त, सभी अङ्गों से सुन्दर, श्यामवर्ण, हाथों में शङ्ख एवं चक्र धारण किये ह अवतार ग्रहण करेगा। वह महान् मायावी होंगी उन दुष्ट कंस आदि क्षत्रि को मारने में समर्थ होगा।। ४३—४५।।

विष्णुश्चापि निजांशेन पाण्डवो भीमविक्रमः।
अर्जुनेति समाख्यातो भविष्यति महाबलः॥ ४६॥
तस्य भ्राता स्वयं धर्मो ज्येष्ठो नाम्ना युधिष्ठिरः।
उत्पन्नश्चापरस्तद्वद्भीमसेनो महाबलः॥ ४७॥
पवनोऽपि निजांशेन महाबलपराक्रमः।
उत्पत्स्यतस्तथा माद्रिपुत्रौ भीमपराक्रमौ॥ ४८॥

अश्विनौ सहजौ वीरौ भ्रातरावतिदुर्जयौ।
ते धर्मनिरताः सर्वे पाण्डवाः सत्यविक्रमाः ॥ ४९ ॥

उधर विष्णु भगवान् भी अपने अंश से भयङ्कर बलशाली अत्यधिक पराक्रमी मध्यम पाण्डव 'अर्जुन' नाम से अवतरित होंगे। स्वयं धर्मराज उन्हीं (अर्जुन) के ज्येष्ठ भ्राता 'युधिष्ठिर' रूप में अवतरित होंगे। उसी तरह महाबली वायुपुत्र उनके दूसरे भाई बलिष्ठ वीर 'भीमसेन' नाम से अवतरित होंगे। तथा सहज वीर अतिदुर्जय दोनों भाई अश्विनीकुमार माद्रिपुत्र नकुल एवं सहदेव नाम से प्रख्यात होंगे। यों ये सभी पाण्डव सत्य–पराक्रम तथा धर्म में निरत होंगे।। ४६–४९ ।।

मदंशसम्भवां कृष्णामवमंस्यति दुर्मतिः।
दुर्योधनाह्वयः क्रूरः सर्वेषां कण्टकोपमः ॥ ५० ॥

उस समय मेरे अंश से उत्पन्न कृष्णा (द्रौपदी) को वह दुर्बुद्धि दुर्योधन, जो कि सभी के लिये बाधारूप होगा, अपमानित करेगा।। ५० ।।

अन्यच्चापि स पापात्मा पाण्डवानां महात्मनाम्।
संक्लेशजनकं कर्म करिष्यति दुरासदः।
अज्ञातवनवासादि दुःखदं सर्वदेहिनाम् ॥ ५१ ॥

इसी तरह वह दुष्ट पापी दुर्योधन उन धर्मात्मा पाण्डवों के प्रति अनेक दुःखदायी कर्म करेगा। जैसे अज्ञात वनवास आदि; जो कि किसी भी प्राणी को कष्टदायक हो सकते हैं।। ५१ ।।

ततोऽहं पाण्डुपुत्राणां कृत्वा साहाय्यमुत्तमम्।
उद्योगं प्रबलं कृत्वा भविष्ये समरोत्सुकः ॥ ५२ ॥

स चापि दुर्मतिः कर्णशकुन्योर्मतमास्थितः।
करिष्यति समुद्योगं युद्धे दुर्योधनः स्वयम् ॥ ५३ ॥

तब मैं उन पाण्डवों की उत्तम सहायता हेतु प्रबल प्रयत्न करूँगी। बाद में वह कुबुद्धि दुर्योधन, कर्ण एवं शकुनि के परामर्श से युद्ध करने के लिये सन्नद्ध होगा। स्वयं दुर्योधन उस युद्ध में अन्य राजाओं को सम्मिलित करने के लिये प्रबल प्रयास करेगा।। ५२–५३ ।।

तत्र सर्वे महीपाला नानादेशनिवासिनः।
समायास्यन्ति साहाय्यं कर्तुं भरतसिंहयोः ॥ ५४ ॥

वितत्य महतीं मायां तत्राहं रणमूर्धनि।
पातयिष्यामि तान् वीरान् परस्परजिघांसतः ॥ ५५ ॥

इसके फलस्वरूप नाना देश निवासी अनेक भरतवंशी राजा उनकी सहायता में एकत्र होंगे। वहाँ मैं अपनी विस्तृत माया फैलाकर उस युद्ध के अग्रभाग में उपस्थित होकर एक दूसरे के वध की इच्छा रखने वाले उन राजाओं का वध कर डालूँगी।। ५४–५५।।

मयैव मोहिताः सर्वे राजानो दुष्टचेतसः।
पातयिष्यन्ति संग्रामे शस्त्रघातैः परस्परम् ॥ ५६ ॥

यद्यपि वे सभी दुष्ट राजा पहले से ही मेरी माया से मुग्ध हुए रहेंगे। वे उस युद्ध में परस्पर एक दूसरेको मार गिरायेंगे।। ५६।।

शून्या राजर्षिभिः पृथ्वी बालवृद्धावशेषिता।
भविष्यति कुरुक्षेत्रे युद्धे जाते सुदारुणे ॥ ५७ ॥
स्थास्यन्ति भ्रातरः पञ्च पाण्डवा धर्मतत्पराः।
पुण्यात्मानो महाभागा मयि भक्तिपरायणाः ॥ ५८ ॥

इस तरह उस समय यह पृथ्वी श्रेष्ठ राजाओं से भी शून्य हो जायगी। केवल इस पर बालक एवं वृद्धजन ही रहने के लिये जीवित बचेंगे। कुरुक्षेत्र में इस भयङ्कर युद्ध के समाप्त होने पर, केवल धर्मनिष्ठ पाँच पाण्डव बचेंगे, क्योंकि वे पुण्यात्मा होने के कारण महाभाग्यशाली होंगे, मेरे प्रति भक्तियुक्त होंगे।। ५७–५८।।

एवमेवंविधे दुष्टान् राजन्यान् दुष्टचेतसः।
प्रायशो नाशयिष्यामि कुरुपाण्डुसमागमे ॥ ५९ ॥
अन्यांस्तत्र विशिष्टांश्च क्षत्रियान् भीमविक्रमान्।
पातयिष्यामि संग्रामे छलेन कमलासन! ॥ ६० ॥
तत्र स्थित्वा परां कीर्तिं स्थाप्याहं महीतले ॥ ६१ ॥

इस तरह ऐसे प्रायः उन सभी दुष्टप्रकृति राजाओं का उस कुरुपाण्डतयुद्ध में प्रायः वध कर दूँगी। हे कमलासन! उनमें से अन्य विशिष्ट बली राजाओं का मैं छलपूर्वक नाश कर दूँगी। इस तरह वहाँ रहकर मैं अपनी अत्यधिक कीर्त्ति फैला दूँगी।। ५९–६१।।

उत्पाद्य सन्ततीश्चापि विनिपात्य छलेन च।
निर्भारां वसुधां कृत्वा पुनरेष्यामि चात्र तु ॥ ६२ ॥

इस प्रकार छलपूर्वक सन्ततियों का उत्पाद एवं विनाश करके पृथ्वी का भार हटाकर पुनः अपने इस लोक में आ जाऊँगी।। ६२।।

एवं लोकहितार्थाय करिष्यामि जगत्पते!
त्वं च गत्वा जगन्नाथं प्रार्थयस्व सुरोत्तमम्॥ ६३॥

हे जगत्पते! यों मैं लोकहित का सम्पादन कर दूँगी। आप यहाँ से देवाधिपति भगवान् जगन्नाथ (विष्णु) के पास जावें, और उनसे प्रार्थना करें।। ६३।।

स यथा मानुषं देहमाश्रित्य धरणीतले।
अवतीर्णो भवेच्छीघ्रं पाण्डुपत्न्यां महाबलः॥ ६४॥
तथा विधेहि यत्नेन मा चिरं कमलासन!
त्वरितं गच्छ वैकुण्ठे वार्तां कथय तं विधे"॥ ६५॥

कि वे महाबलशाली भी भूमण्डल पर मानवदेह में अवतीर्ण होने के लिये पाण्डुपत्नी के गर्भ में पहुँचें। हे कमलासन! आप ऐसा ही यत्न करें। इसमें विलम्ब न करों। हे विधे! आप शीघ्र ही वैकुण्ठ लोक जाँय। और भगवान् विष्णु को मेरा सन्देश दें"।। ६४–६५।।

श्रीमहादेव०— **इत्येवं स तया प्रोक्तो ब्रह्मा लोकपितामहः।**
प्रणिपत्य महादेवीं वैकुण्ठं प्रययौ त्वरन्॥ ६६॥

श्रीमहादेव— इस तरह पितामह ब्रह्मा भगवती द्वारा यह कहे जाने पर महादेवी को प्रणाम कर शीघ्र ही बैकुण्ठ के लिये चल पड़े।। ६६।।

तत्र सम्प्रार्थयामास विष्णुं कमलसम्भवः।
पृथिव्यां जन्मने पाण्डोः पत्न्यां मानुषरूपतः॥ ६७॥

वहाँ उन ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु से पृथ्वी पर मानवरूप में जन्म लेने के लिये पाण्डुपत्नी कुन्ती के गर्भ में जाने के लिये निवेदन किया।। ६७।।

तच्छ्रुत्वा भगवान् प्राह "देहं मानुषमाश्रितः।
सम्भविष्यामि भूपृष्ठे कुन्त्यां देवात् पुरन्दरात्"॥ ६८॥

यह सुनकर भगवान् विष्णु बोले— "मैं मनुष्य देह धारण हेतु पृथ्वी पर जाकर, देवराज इन्द्र द्वारा कुन्ती के गर्भ में प्रतिष्ठित होऊँगा"।। ६८।।

तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहृष्टात्मा निजालयम्।
प्रययौ मुनिशार्दूल! प्रणिपत्य जगत्पतिम्॥ ६९॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे ब्रह्मभगवत्योः
कथोपकथनं नाम एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह सुनकर भगवान् ब्रह्मा प्रसन्नमन से जगत्पति भगवान् विष्णु को प्रणाम कर अपने लोक में पुनः लौट आये ।। ६९ ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
ब्रह्मा एवं भगवती के संवादात्मक
उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥

पचासवाँ अध्याय

[श्रीकृष्णप्रादुर्भाववर्णन]

श्रीमहादेव०— विधिना प्रार्थिता देवी वसुदेवसुतः स्वयम्।
निजांशेनाभवत् कृष्णो देवानां कार्यसिद्धये॥ १॥

श्रीमहादेव— देवताओं की कार्यसिद्धि हेतु, ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थित वह देवी अपने अंश से स्वयं वसुदेवपुत्र के रूप में कृष्ण बनकर इस भूमण्डल पर अवतरित हुईं ।। १ ।।

विष्णुश्चापि द्विधा भूत्वा जन्म लेभे महीतले।
वसुदेवगृहे रामो महाबलपराक्रमः॥ २॥

तथापरः पाण्डुसुतो धन्विश्रेष्ठो धनञ्जयः।
इदानीं जन्मविस्तारं शृणु तेषां महामते!॥ ३॥

उधर भगवान् विष्णु भी अपने अंश को द्विधा विभक्त कर, इस भूमण्डल पर अवतरित हुए। उनमें एक अंश से वसुदेव के घर में महाबलशाली राम बने तथा दूरे रूप में पाण्डुपुत्र एवं धनुर्धारियों में श्रेष्ठ 'धनञय' (अर्जुन) बने। अब हे महामते! इन सबके जन्म के विषय में विस्तार से सुनो ।। २–३ ।।

राम एवं कृष्ण की उत्पत्ति

तत्रादौ शृणु ते वक्ष्ये जन्म श्रीरामकृष्णयोः॥ ४॥

अदितिर्देवमाता च कश्यपोऽथ प्रजापतिः।
देवीं सम्प्रार्थयामास सद्भक्त्या सुचिरं पुरा॥ ५॥

निराहारो जले स्थित्वा शीते ग्रीष्मेग्निमध्यतः।
दिव्यौ वर्षसहस्रौ द्वौ तेपाते भक्तिसंयुतौ॥ ६॥

पहले मैं तुम्हें राम एवं कृष्ण के जन्म के विषय में बताता हूँ, उसे सुनो। प्रजापति कश्यप तथा देवमाता अदिति ने पहले कभी भक्तिपूर्वक भगवती को प्रसन्न करने के लिये बहुत काल तक तपस्या की। इस तपस्याकाल में वे दोनों निराहार रहकर शीतऋतु के समय जल में तथा ग्रीष्मऋतु में पाँच अग्नियों के बीच में खड़े रहते थे। इस तरह उन्होंने निरन्तर दो हजार दिव्य वर्ष तक भक्तिपूर्वक तपस्या करते हुए देवी की आराधना की ।। ४–६ ।।

तयोः प्रसन्ना समभूत्प्रत्यक्षा जगदीश्वरी।
उवाच "युवयोः किं वा वाञ्छितं वृणुतं च तत्"॥ ७॥

इस आराधना से प्रसन्न होकर देवी ने उन दोनों को प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उन दोनों से बोली– "कहो! तुम दोनों क्या चाहते हो? जो तुम दोनों को मन में हो, माँग लो"।। ७।।

ततस्तावूचतुर्देवीं प्रणिपत्य पुनः पुनः।
"मातस्त्वमावयोर्गेहे जन्म प्राप्नुहि लीलया।
यथा दक्षगृहे जन्माभवत्तव पुरोत्तमे॥ ८॥

तब वे दोनों बार बार प्रणाम करते हुए देवी से यों निवेदन करने लगे– "हे माता! आष हमारे घर में जन्म लेकर बाललीला करें जैसा कि आपने पहले दक्ष के उत्तम घर में उत्पन्न होकर की थी।। ८।।

प्रसूत्यामावयोर्गेहे जन्म द्वापरशेषतः।
कुत्रचित्पृथिवीपृष्ठे तथा ते सम्भवस्तु ते"॥ ९॥

द्वापर युग के अन्त में, भूमण्डल के किसी भी भाग में रहते हुए हम दोनों के घर में आप का जन्म हो"।। ९।।

श्रीदेवी०— "शम्भोरीप्सितसिद्ध्यर्थं स्त्रीरूपस्य निजेच्छया।
पुंरूपः सम्भविष्यामि नवीनजलदद्युतिः॥ १०॥

देवी– भगवान् शङ्कर का मनोवाञ्छित पूर्ण करने के लिये अपनी इच्छा से मैं अपना यह स्त्रीरूप त्यागकर पुरुषरूप में उत्पन्न होऊँगी। उस समय मेरा वर्ण नवीन मेघ के समान (श्याम) होगा।। १०।।

तदेयं मुण्डमालाऽपि वनमाला भविष्यति।
सौम्यरूपं वपुर्घोरं द्विनेत्रं द्विभुजान्वितम्॥ ११॥

पीताम्बरधरं वंशीकरं गोपीमनोहरम्।
भविष्यति सुसम्पन्नं विष्णुलक्षणलक्षितम्"॥ १२॥

तब मेरी यह मुण्डमाला भी वनमाला के रूप में बदल जायगी मेरा यह भयानक रूप सौम्य भाव धारण कर लेगा। उस समय मेरे दो ही नेत्र तथा दो ही भुजाएँ होंगीं। शरीर पर पीले वस्त्र होंगें। हाथ में वंशी होगी। रूप ऐसा होगा जो गोपियों के मन को हर ले। शरीर अङ्ग प्रत्यङ्ग से सम्पन्न होगा और उस पर वे सभी चिह्न होंगे जो भगवान् विष्णु के शरीर पर हैं"।। ११–१२।।

श्रीमहादेव०— इत्युक्त्वा सा महादेवी तयोरन्तर्हिताभवत्।
तौ जग्मतुर्निजस्थानं प्रहृष्टौ मुनिसत्तम॥ १३॥

श्रीमहादेव जी— हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर भगवती महादेवी उन दोनों के बीच से अन्तर्हित हो गयीं। वे दोनों भी प्रसन्न मन से अपने स्थान पर चले गये॥ १३॥

स कश्यपो यदुकुले जन्म प्राप्य प्रजापतिः।
वसुदेवेति विख्यातः समभूद् धरणीतले॥ १४॥

वे प्रजापति कश्यप भूमण्डल पर आकर यदुकुल में जन्म लेकर वसुदेव नाम से विख्यात हुए॥ १४॥

अदितिश्च द्विधा जाता देवकी रोहिणी तथा।
भगिनी दुष्टचेष्टस्य राज्ञः कंसस्य नारद!॥ १५॥

हे नारद! उधर उसकी पत्नी अदिति अपने दो अंशों में अवतीर्ण हुईं— एक देवकी तथा दूसरी रोहिणी नाम से। हे नारद! उनमें से एक दुष्ट राजा कंस की बहन थी॥ १५॥

तां तथा रोहिणीं चापि वसुदेवो विधानतः।
उपयेमे मुनिश्रेष्ठ! शरच्चन्द्रनिभाननाम्॥ १६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस शरच्चन्द्र के समान मुखवाली देवकी तथा रोहिणी से वसुदेव ने शास्त्रीय विधानपूर्वक विवाह किया॥ १६॥

तत्रोद्वाहे तु देवक्या राज्ञा कंसो महासुरः।
अतीव मङ्गलं चक्रे भगिनीस्नेहहेतुना॥ १७॥

महान् राक्षस राजा कंस ने, बहन से स्नेहातिरेक के कारण, देवकी के विवाह में अधिक मङ्गलोत्सव मनाया॥ १७॥

ततः प्रयाणसमये देवकीवसुदेवयोः।
आरुह्य रथमभ्यायात्ताभ्यां कंसोऽतिदुष्टधीः॥ १८॥
एतस्मिन् समये वाणी नभसः समभून्मुने!
अशरीरसमुत्पन्ना सहसा देवभाषिता॥ १९॥
एतस्या अष्टमो गर्भो सम्भविष्यति यः पुमान्।
स हन्ता भविता राजंस्तव नूनं महीपते''॥ २०॥

जब वसुदेव एवं देवकी विवाह के बाद अपने घर जाने लगे तो अत्यन्त दुष्ट बुद्धि वाला कंस रथ पर बैठकर उन्हें घर छोड़ने चला।

हे मुने! इसी समय देवता की तरफ से आकशवाणी हुई—"हे राजन् इससे जो आठवाँ पुरुष गर्भ होगा वह हे महीपते! आपको मारने वाला होगा" ।। १८–२० ।।

तच्छ्रुत्वा सहसा सोऽपि खड्गमुद्यम्य वेगतः ।
देवकीं छेत्तुकामस्तां प्राभ्यधावत दुर्मतिः ॥ २१ ॥

यह सुनकर वह दुर्बुद्धि राजा कंस शीघ्र ही देवकी की हत्या करने के लिये तलवार लेकर वेग से उसकी तरफ दौड़ा ।। २१ ।।

ततस्तं प्रणिपत्यासौ वसुदेवो महामतिः ।
दास्यामि सन्ततीः सर्वा एतस्या गर्भसम्भवाः ।
तुभ्यं यथेष्टकरणे स्वीकृत्यैवं न्यवेदयत् ॥ २२ ॥

तब बुद्धिमान् वसुदेव ने उस दुर्मति को प्रणाम कर वचन दिया—"इस देवकी की जितनी भी सन्ततियाँ होंगी उन्हें मैं आपको सौंपता रहूँगा। आप उस सन्तति के प्रति यथेच्छ व्यवहार करने में स्वतन्त्र हैं ।। २२ ।।

ततः सोऽपि नियोज्यैवं रक्षकान्मुनिसत्तम! ।
निवृत्तः समभूत्तस्या निधनादतिदुर्मतिः ॥ २३ ॥

" हे मुनिश्रेष्ठ! तब उस कंस ने उन पर कुछ रक्षक नियुक्त कर दिये तथा वह दुर्बुद्धि देवकी की हत्या करने से पीछे हट गया ।। २३ ।।

रक्षकानाह दुष्टात्मा—"यदास्यास्तनयो भवेत् ।
तदान्तिकं ममाभ्येत्य कथयध्वं हि रक्षकाः ॥ २४ ॥
सञ्जाते त्वष्टमे गर्भे कथयिष्यथ मां ध्रुवम् ।
तदैनां घातयिष्यामि सगर्भां भगिनीं मम" ॥ २५ ॥

उसने रक्षकों को आदेश दिया कि जब भी इस को पुत्र पैदा हो तो मेरे पास आकर मुझे बताना। आठवें गर्भ की स्थिति मुझे अवश्य सूचित करना, तब मैं गर्भसहित अपनी इस बहन का वध कर दूँगा।" ।। २४–२५ ।।

इत्याज्ञाप्य स दुष्टात्मा देवक्याः परिरक्षकान् ।
मन्त्रिभिः सहितो राजा निर्विण्णो गृहमाविशत् ॥ २६ ॥

यों रक्षकों को आज्ञा देकर वह दुष्टात्मा राजा दुःखी एवं चिन्तित होकर मन्त्रियों सहित पुनः घर लौट आया ।। २६ ।।

ततस्तस्याज्ञया तस्या गर्भे जाते तु रक्षकाः ।
राजानं कथयामासुस्तस्या जातान्सुतानपि ॥ २७ ॥

श्रुत्वा श्रुत्वा स पापात्मा जातमात्रान्प्रगृह्य च।
जघान सम्प्रताड्यैव शिलायां मुनिसत्तम!॥ २८॥

हे मुनिवर! तब उसकी आज्ञा से वे रक्षक गर्भ ठहरने पर राजा के पास सूचना देने गये। साथ ही पुत्र पैदा होने की भी सूचना दी। यों सूचना पाकर वह दुष्टात्मा ज्यों ज्यों पुत्र पैदा होते गये उन्हें पकड़ कर शिला पर पटकर मार डालता था।। २७–२८।।

एवं निहत्य देवक्याः षड् वै गर्भसमुद्भवान्।
सम्भाव्यमाने गर्भे तु सप्तमे सोऽतिमूढधीः॥ २९॥
अतिसावहितांश्चक्रे देवकीपरिरक्षकान्॥ ३०॥

इस तरह उसने देवकी के छह पुत्रों का वध कर सातवें गर्भ के ठहरने की सम्भावना पर उस मूर्ख ने देवकी के रक्षकों को विशेष सावधान कर दिया।। २९–३०।।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा कैलासं समुपागमत्।
समस्तैस्त्रिदशैः सार्धं मन्त्रणार्थं जगत्पतिः॥ ३१॥

इसी बीच जगत्पति पितामह ब्रह्मा समस्त देवताओं के साथ कैलास पर्वत पर मन्त्रणाहेतु पहुँचे।। ३१।।

स प्रणम्य महादेवीं देवं चापि सदाशिवम्।
देव्यग्रे प्राञ्जलिर्भूत्वा वचनं चेदमब्रवीत्॥ ३२॥

वहाँ उन्होंने भगवती महादेवी तथा भगवान् शङ्कर को प्रणाम कर देवी के सम्मुख हाथ जोड़कर यों निवेदन किया—।। ३२।।

ब्रह्माः०— **"मातस्त्वयोक्तं देवक्यां जन्म प्राप्य महीतले।**
पुंरूपं पृथिवीभारं शमयिष्यामि निश्चितम्॥ ३३॥

ब्रह्मा— " हे माता! आपने हमलोगों को आश्वासन दिया था कि आप भूतल पर देवकी के गर्भ में पुरुष रूप में जन्म लेकर इस पृथ्वी का भार निश्चित रूप से हल्का करेंगीं।। ३३।।

तस्यास्तु सन्ततीः सर्वा जातमात्राः शिलोपरि।
प्रहृत्य नाशयत्येव राजा कंसोऽतिदुष्टधीः॥ ३४॥

परन्तु आज भी वह दुर्मति कंस देवकी के गर्भ से उत्पन्न सन्ततियों को पैदा होते ही शिलाओं पर पटक कर मार दे रहा है।। ३४।।

पूर्वं विवाहे देवक्याः कंसाय समभूद्वचः।
आकाशोद्भवमत्युच्चैर्भयदं तस्य दुर्मतेः॥ ३५॥

विवाह के अवसर पर कंस के सम्मुख जो आकाशवाणी हुई थी, वह उस दुर्बुद्धि के लिये भयदायक हो गयी।। ३५।।

'देवक्या अष्टमो गर्भो सम्भविष्यति यः पुमान्।
स ते विनाशकारीति निश्चितं विद्धि दुर्मते'!॥ ३६॥

(वह आकाशवाणी यह थी—) 'हे दुर्बुद्धे! देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला आठवाँ पुरुष तेरे नाश का कारण बनेगा। यह निश्चित जान लो'।। ३६।।

तच्छ्रुत्वा स तदैवातिदुष्टस्तां देवकीं शिवे!
सञ्छत्तुमुद्यमं चक्रे वसुदेवस्तु तं तदा॥ ३७॥
आश्रुत्य वारयामास जातापत्यसमर्पणम्।
ततः स निश्चयं चक्रे गर्भे जातेऽष्टमे ध्रुवम्।
देवकीं घातयिष्यामीत्येवं कंसोऽतिमूढधीः॥ ३८॥

हे शिवे! यह आकाशवाणी सुनकर वह दुष्ट कंस देवकी के वध हेतु सन्नद्ध हुआ; तब वसुदेव ने उससे यह प्रतिज्ञा कर उसको उस नीच कर्म से रोक दिया कि ज्यों ही इसको कोई सन्तति होगी वह उसे उसको सौंप देगा। तब कंस ने निश्चय किया कि आठवाँ गर्भ स्थित होने पर देवकी को निश्चय ही मार दूँगा।। ३७–३८।।

तेन सञ्जातमात्रांस्तु देवकीगर्भसम्भवान्।
षट् सुतान् सञ्जघानोग्रप्रतापोऽपि सुदुर्जयः॥ ३९॥
इदानीं सप्तमे गर्भे यदि नाप्नोषि जन्म वै।
तत्कथं भावि ते जन्म देवक्यां परमेश्वरि?॥ ४०॥
कथं वा पृथिवाभारं नाशयिष्यसि मां वद?"॥ ४१॥

इस तरह उस मूढबुद्धि कंस ने उत्पन्न होते ही देवकी की छह सन्ततियों को मार डाला। वह इतने उग्र प्रताप वाला है कि उसका विरोध करने की किसी में सामर्थ्य नहीं है। अब सातवें गर्भ के अवसर पर भी यदि आप सन्नद्ध न हुई, तो हे परमेश्वरि! आठवें गर्भ सहित जब वह देवकी को ही मार डालेगा, तब आपका जन्म कैसे होगा, और आप इस पृथ्वी का भार कैसे कम करेंगीं?— यह बताइये।। ३९–४१।।

श्रीदेवी०— **"न दैवं वचनं ब्रह्मन्! विफलं सम्भविष्यति।**
अवश्यं भावि वै जन्म तस्या गर्भेऽष्टमे मम॥ ४२॥

देवी– "हे ब्रह्मन्! दैव का कहा वचन मिथ्या नहीं होगा। उसके आठवें गर्भ से मेरा जन्म अवश्य होगा।। ४२।।

उपायं ते प्रवक्ष्यामि तथा त्वमपि चेष्टय।
मा चिरं कुरु गच्छाशु वैकुण्ठं कमलासन!॥ ४३॥

हाँ, एक उपाय मैं आपको बता रही हूँ, उसके लिए आप भी प्रयास कीजिये। इसमें आप विलम्ब न करें। हे कमलासन! आप शीघ्र ही वैकुण्ठ जावें।। ४३।।

अंशेन विष्णुर्भूपृष्ठे सम्भविष्यति निश्चितम्।
वसुदेवगृहे रामो भ्राता ज्येष्ठतमो मम।
इत्येवं समयश्चासीत् पूर्वमेतेन विष्णुना॥ ४४॥
तस्मात् कथय तं शीघ्रं स यातु धरणीतले।
अंशेन देवकीगर्भे वसुदेवाज्जगत्पतिः॥ ४५॥
अहं च वसुधापृष्ठे द्विधा भूत्वा निजांशतः।
प्रयामि रोहिणीगर्भं यशोदागर्भमप्युत॥ ४६॥

'वे विष्णु अपने एक अंश से भूतल पर जन्म लेंगे'– यह निश्चित हुआ था। वे वसुदेव के घर में राम के रूप में मेरे ज्येष्ठ भ्राता बनेंगे।' इन विष्णु के साथ यह बात निश्चित हुई थी। अतः उनको स्मरण दिलाइये कि वे शीघ्र ही भूतल पर जाकर राम के रूप में अवतरित हों। वसुदेव के घर में अपने एक अंश से वे जगत्पति विष्णु देवकी के गर्भ में पहुँचेंगें और मैं उसी समय अपने दो अंशों से भूतल पर अवतरित होऊँगी। मैं रोहिणी के गर्भ में भी पहुँचूँगी और देवकी के गर्भ में भी।। ४४–४६।।

सम्प्राप्ते पञ्चमे मासि रोहिणीगर्भमध्यतः।
यास्यामि देवकीगर्भं विष्णुस्तद्गर्भतोऽपि च॥ ४७॥
समायास्यति रोहिण्या गर्भं कमलसम्भव!॥ ४८॥

पाँचवाँ मास लगने पर मैं रोहिणी के गर्भ से देवकी के गर्भ में चली जाऊँगी। इसी तरह हे कमलयोनि! भगवान् विष्णु भी देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में चले आयँगें।। ४७–४८।।

तदेवाष्टमगर्भे मे जन्म सम्पत्स्यतेऽपि च॥ ४९॥

वही जन्म मेरा आठवें गर्भ में जन्म कहलायगा।। ४९।।

न ज्ञास्यति स दुर्बुद्धिर्गर्भं चापि तमष्टमम्॥ ५०॥

वह दुर्बुद्धि इस आठवें गर्भ की सङ्ख्या को भी न जान पायगा।। ५०।।

एवं सम्प्राप्य देवक्यां जन्म श्रीकृष्णरूपधृक्।
काले सम्पातयिष्यामि तं दुष्टं सह सैनिकैः॥ ५१॥

यों मैं देवकी के गर्भ से जन्म प्राप्त कर श्रीकृष्ण के रूप में (पुरुषाकृति बन जाऊँगी तथा) समय आने पर उस दुष्ट को, उसके सैनिकों सहित, मार गिराऊँगी॥ ५१॥

यावच्च पुण्यकर्मास्य क्षीणतां न च यास्यति।
तावद्यथाविधेयं तु तथा मे त्वं निशामय॥ ५२॥

जब तक इसके पुण्यकर्म अवशिष्ट हैं इसका नाश नहीं होगा। अतः इस अवसर पर जो आपका कर्तव्य है उसे मैं आपको बताती हूँ, उसे आप सुनें॥ ५२॥

जातायामपि देवक्यां यशोदायां तदैकदा।
पुंरूपिण्यां तथा योषिद्रूपायां च स्वलीलया॥ ५३॥
देवकीगर्भसम्भूतां वसुदेवश्च तत्क्षणात्।
संस्थाप्य गोकुले क्रोडे यशोदायाः प्रजावत्याः॥ ५४॥
तद्गर्भसम्भवां योषिद्रूपां मामेव बालिकाम्।
आनीय वसुदेवेन वाच्यं तस्मै दुरात्मने।
'सम्भूता मम कन्येति रक्षैनां पृथिवीपते!'॥ ५५॥

अपनी लीला से देवकी तथा प्रजावती यशोदा के गर्भ में एक साथ पुरुष रूप तथा स्त्रीरूप में मेरे आने पर वसुदेव को देवकी के गर्भ से उत्पन्न सन्तति (कृष्ण) को तत्काल गोकुल जाकर यशोदा प्रजावती की गोद में रखकर तथा यशोदा के गर्भ से उत्पन्न कन्या (स्त्री रूप में उत्पन्न मुझ ही) को लाकर उस दुरात्मा को यह कहेंगे कि 'हे पृथ्वीपते! मुझे यह कन्या उत्पन्न हुई है, इसकी तो आप रक्षा करें'॥ ५३–५५॥

ततः स निधने यत्नं करिष्यति यदाऽसुरः॥ ५६॥
तदैव सहसा स्वर्गं मूर्तिर्मे प्रतियास्यति।
उक्त्वा निधनकर्तारं पश्यतस्तस्य दुर्मतेः॥ ५७॥

वह असुर जब इस कन्या के वध का यत्न करेगा तभी मेरा वह आकार (मूर्ति) उस दुर्मति को उसके नाशक का परिचय देकर उसके देखते देखते स्वर्ग में पुनः लौट आयगा॥ ५६–५७॥

ततः सम्पातयिष्यामि समुपागत्य गोकुलात्।
प्रारब्धकर्मणि क्षीणे तं दुष्टं कमलासन!"॥ ५८॥

हे कमलासन! फिर उस दुष्ट राक्षस के पुण्य क्षीण होने पर गोकुल से आकर मैं उस राक्षस का वध करूँगी"।। ५८।।

देव्यैवमुक्तो भगवान्ब्रह्मा वैकुण्ठमन्वगात्।
न्यवेदयच्च तत्सर्वं देव्या सम्भाषितं च यत्॥ ५९॥

श्रीमहादेव– देवी द्वारा, ऐसा आदेश दिये जाने के बाद भगवान् ब्रह्मा तत्काल वैकुण्ठ लोक में पहुँचे और उन्होंने भगवान् विष्णु से वह सब कह सुनाया जो उनको, उनसे कहने के लिये, देवी ने निर्देश दिया था।। ५९।।

विष्णुश्चाथ तदाकर्ण्य निजांशेन महामते!
प्रयायौ देवकीगर्भं रोहिण्यां जन्मलब्धये॥ ६०॥

हे महामते! भगवान् विष्णु ने वह सब सुनकर अपने अंश से, देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में जन्म लेने के लिये चले गये।। ६०।।

भगवत्यपि रोहिण्यां यशोदायामुपागमत्।
द्विधा भूत्वा जगद्धात्री भूभारस्य निवृत्तये॥ ६१॥

उधर जगद्धात्री भगवती भी रोहिणी और यशोदा के गर्भ में आ गयीं। यों भगवती भूभार की निवृत्तिहेतु दो भाग में अवतरित हुईं।। ६१।।

पञ्चमे मासि रोहिण्या गर्भतः सा समाविशत्।
जन्मने देवकीगर्भं रोहिण्यां विष्णुरन्वगात्॥ ६२॥

वह पाँचवें मास में, रोहिणी के गर्भ से जन्महेतु यशोदा के गर्भ में आ गयीं। उधर विष्णु भी पृथ्वी पर अवतार हेतु रोहिणी के गर्भ में देवकी के गर्भ से आ गये।। ६२।।

तदैव वसुदेवोऽपि भयात् कंसस्य दुर्मतेः।
रोहिणीं स्थापयामास गोकुले नन्दवेश्मनि॥ ६३॥

उस समय दुर्मति कंस के भय से वसुदेव ने रोहिणी को गोकुल में नन्द के घर रख रखा था।। ६३।।

तत्र सञ्जातवान् रामो दिव्यलक्षणलक्षितः।
सर्वाङ्गसुन्दरो गौरो रोहिण्यास्तनयो मुने!॥ ६४॥

हे मुने! उस गोकुल में रोहिणी का पुत्र 'राम' नाम से उत्पन्न हुआ, जो दैवी चिह्नों से युक्त, सर्वाङ्गसुन्दर तथा गौर वर्ण था।। ६४।।

ततः समभवद्देवी देवक्याः परमः पुमान्।
अष्टम्यामर्धरात्रे तु रोहिण्यामसिते वृषे॥ ६५॥

फिर देवकी के गर्भ से देवी परम (उत्कृष्ट) पुरुष के रूप में भाद्रपदमास की कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि की अर्धरात्रि के समय, जबकि वृषराशि पर रोहिणी नक्षत्र था अवतरित हुईं।। ६५।।

गर्जत्सु मेघवृन्देषु परितस्तमसावृते।
निद्रितेष्वपि सर्वेषु रक्षकेष्वितरेषु च॥ ६६॥

उस समय मेघगर्जना हो रही थी, सब तरफ अन्धकार छाया हुआ था, रक्षकसमूह तथा अन्य गाढ़ निद्राभिभूत थे।। ६६।।

नवीनजलदश्यामो वनमालाविराजितः।
श्रीवत्सलाञ्छनधरो नयनद्वितयोज्ज्वलः॥ ६७॥
द्विभुजो दिव्यसर्वाङ्गो दीप्यमानः स्वतेजसा।
तं दृष्ट्वा बालकं जातं देवकी रुदती भृशम्॥ ६८॥

उसी समय नवीन मेघ के तुल्य श्यामवर्ण, वनमाला से शोभित, श्रीवत्स का चिह्न धारण किये हुए, उज्ज्वल नेत्रों तथा, दो भुजाओं वाले, दैवी अङ्गों से युक्त, स्वकीय कान्ति से दीप्यमान वे श्रीकृष्ण प्रकट हुए। ऐसे उत्पन्न बालक को देखकर देवकी रोने लगी।। ६७–६८।।

साक्षाद् ब्रह्ममयं पूर्णं ज्ञात्वेदं वाक्यमब्रवीत्।
"कस्त्वं जातोऽसि मे गर्भे दुर्भगायाः सुलोचन!॥ ६९॥

वह उसे साक्षात् पूर्ण ब्रह्ममय शरीर जानकर, यह वचन बोली– "हे सुलोचन! आप कौन हैं? मुझ अभागिन की कोंख से क्यों पैदा हुए हो?।। ६९।।

जानासि किं न राजानं भ्रातरं मम वैरिणम्।
कंसं निधनकर्तारं सुतानां जातमात्रतः॥ ७०॥

क्या तुम मेरे वैरी भाई राजा को नहीं जानते? उसका नाम कंस है। वह मेरे पुत्रों को पैदा होते ही मार देता है।। ७०।।

अद्यैव स समाकर्ण्य त्वां जातं मम बालकम्।
निहनिष्यति दुष्टात्मा कृत्वा मां शोकविह्वलाम्"॥ ७१॥

आज ही वह जब सुनेगा कि तुम मेरे यहाँ पुत्ररूप में उत्पन्न हुए हो तो वह मुझको रोती–कलपती छोड़कर, तुम्हें मार डालेगा"।। ७१।।

श्रीमहादेव०— **इत्याकर्ण्य वचस्तस्या जननयाः स तु बालकः।**
उवाच तां सुदुःखार्तां प्रीणयन् वचनामृतैः॥ ७२॥

श्रीमहादेव– अपनी दुःखी माता के ये वचन सुनकर वह बालक अपने मधुर वचनों से उसे सन्तुष्ट करता हुआ यों बोला–।। ७२।।

बालक०— "मातस्त्वं कुरु मा भीतिर्न मे हन्तात्र विद्यते।
लोकत्रयेऽसुरो वापि देवो वा मानुषोऽपि वा॥ ७३॥

बालक— "माताजी! आप भय न मानिये! मेरा वध करने वाला इस संसार में कोई नहीं है। इन तीनों लोकों में न कोई देवता है, न असुर, न मनुष्य।। ७३।।

अहमाद्या परा विद्या जगत्संहारकारिणी।
देवकार्यस्य सिद्ध्यर्थं त्वतो जातास्मि साम्प्रतम्॥ ७४॥
शम्भोरनुज्ञया मायापुरुषाकृतिरुत्तमा।
युवयोस्तपसा तुष्टा जन्मान्तरकृतेन वै"॥ ७५॥

"मैं आद्या परा विद्या हूँ, जगत् का संहार करने वाली हूँ, देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये भगवान् शङ्कर की आज्ञा से, आप दोनों के जन्मान्तरकृत तप से सन्तुष्ट होकर उत्तम मायापुरुष के रूप में मैं अब आप के गर्भ से पैदा हुई हूँ"।। ७४–७५।।

देवकी०— "वत्स ते वचनं श्रुत्वा विस्मिताहं सुलोचन!
सन्दर्शयस्व रूपं ते देव्यात्मकनुत्तमम्"॥ ७६॥

देवकी— हे सुलोचन पुत्र! मैं आपकी बातें सुनकर आश्चर्यान्वित हूँ। आप अपना देवी वाला श्रेष्ठ रूप मुझे दिखाइये"।। ७६।।

श्रीमहादेव०— देवक्यैवं निगदितः कृष्णः कमललोचनः।
सहसा समभूत्कृष्णा भीमास्या शववाहना॥ ७७॥

श्रीमहादेव जी— देवकी द्वारा ऐसा कहे जाने पर वे कमललोचन श्रीकृष्ण तत्काल कृष्णा (काली) के रूप में आ गये और उनका मुख विकराल था। वे एक शव पर स्थित दिखायी देने लगीं।। ७७।।

चतुर्भुजा त्रिनयना जिह्वाललनभीषणा।
गलदायतकेशौघाच्छन्नपृष्ठा किरीटिनी॥ ७८॥

उनके चार भुजाएँ, तीन नेत्र थे, जिह्वा अन्दर बाहर भयङ्कर रूप से लपलपा रही थीं। लम्बी केशराशि से उनकी पीठ ढकी हुई थी। वह मुकुट धारण किये हुए थीं।। ७८।।

तदाभवन्मुने सापि वनमाला मनोरमा।
मुण्डालिरचिता माला लम्बमानातिशोभना॥ ७९॥

हे मुने! उस समय उनकी पहनी हुई, वनमाला भी लम्बी तथा सुन्दर मुण्डमाला के रूप में परिवर्तित हो गयीं।। ७९।।

तथा दृष्ट्वा तु तं बालं कालीरूपं भयानकम्।
देवकी चाह्वयत्तत्र वसुदेवं त्वरान्विता॥ ८०॥

उस बालक को ऐसे भयानक काली रूप में देखकर देवकी ने तत्काल वहाँ, वसुदेव को भी बुला लिया।। ८०।।

स आगत्य निरीक्ष्यैवं श्रुत्वा जातं च बालकम्।
विस्मयं परमं प्राप्य वचनं चेदमब्रवीत्॥ ८१॥

वे भी वहाँ आकर उत्पन्न बालक के विषय में देख–सुन कर अत्यन्त आश्चर्यान्वित होकर यों बोले–।। ८१।।

वसुदेव०— "बहुजन्मशतानेकतपसा मम भाग्यतः।
जातासि यदि मद्गेहे मायाबालकरूपधृक्॥ ८२॥

वसुदेव— "हे देवि! मेरे अनेक जन्मों में किये गये सैकड़ों दुष्कर तपःकर्मों के प्रभाव से, मेरे सौभाग्य के कारण, आप मेरे घर में यह मायामय बालरूप धारण कर पधारी हैं।। ८२।।

यथानुग्रहतो यत्तदेतत् परमदुर्लभम्।
प्रदर्श्य कालिकारूपं मज्जन्म सफलं कृतम्॥ ८३॥

आपने जैसा अनुग्रह कर, यह परमदुर्लभ कालिकारूप दिखाकर मेरा जन्म सफल कर दिया।। ८३।।

तथान्यदपि ते चारु रूपं दशभुजान्वितम्।
उद्यत्कोटिशशाङ्काभं सौम्यं मे प्रतिदर्शय॥ ८४॥

उसी तरह दशभुजा वाला अपना करोड़ों चन्द्रमा के समान आभा वाला सुन्दर सौम्य रूप भी आप मुझे दिखाने का कष्ट करें"।। ८४।।

श्रीमहादेव— इति तस्य वचः श्रुत्वा तद्रूपं परिहृत्य च।
बभूव सहसा देवी सौम्या दशभुजा ततः॥ ८५॥

श्रीमहादेव— देवी ने वसुदेव का ऐसा वचन सुनकर, अपने उस रूप का उपसंहरण कर वह दशभुजा के रूप में प्रकट हुईं।। ८५।।

तथा विलोक्य रूपं स विस्मयं परमं गतः।
प्राञ्जलिः परया भक्त्या तुष्टावानकदुन्दुभिः॥ ८६॥

वैसा रूप देखकर आनकदुन्दुभि (वसुदेव) ने आश्चर्यान्वित होकर, हाथ जोड़ते हुए परम भक्तिपूर्वक उनसे यों निवेदन किया–।। ८६।।

वसुदेव०— त्वं माता जगतामनादिपरमा विद्यातिसूक्ष्मात्मिका,
त्वं तावज्जनकोऽप्यनादिपुरुषः पूर्णः स्वयं चिन्मयः।
त्वं विश्वासि तथैव विश्ववनिता विश्वाश्रया विश्वगा,
त्वतोऽन्यन्नहि किञ्चित्तदस्ति भुवने विश्वेशि तुभ्यं नमः॥ ८७॥

वसुदेव— "हे माता! आप इन तीनों लोकों की परम अनादि, एवं अतिसूक्ष्म विद्यारूपी देवी हैं। तथा पिता महादेव भी अनादि एवं पूर्ण पुरुष तथा चिन्मय हैं। आप विश्वरूपा हैं, विश्वपत्नी हैं, विश्व का आश्रयस्थल हैं, विश्वमय हैं। हे विश्वेशि! आपके अतिरिक्त इस संसार में अन्य कुछ सारभूत तत्त्व है ही नहीं; आपको नमस्कार है।। ८७।।

त्वं सृष्टौ चतुरानना स्थितिविधौ विष्णुः परात्मा प्रभुः,
संहृत्यामतिभीमरूपचरितो रुद्रः पिनाकास्त्रधृक्।
तेषां सृष्टिविनाशपालनविधौ त्वं कालिकैका परा
नित्या ब्रह्ममयी प्रसीद परमे कृष्णे जगद्वन्दिते॥ ८८॥

आप सृष्टि–रचना के समय ब्रह्मा बन जाती हैं, परात्मा एवं प्रभु विष्णु रूप से इसका पालन करती हैं, संहार के समय रूप एवं कार्य में अतिभयङ्कर पिनाकधनुर्धारी शङ्कर बन जाती हैं। उन देवताओं के रूप में इस सृष्टि की रचना, पालन एवं संहार में आप कालिका ही एकमात्र हेतु हैं। हे कृष्णे! हे जगत्पूजिते! आप नित्या, ब्रह्ममयी परा एवं परमाद्वय हैं। आप मुझ पर प्रसन्न होइये।। ८८।।

त्वं सूक्ष्मा प्रकृतिर्निराकृतिसुताख्याता जगद्व्यापिनी
स्त्रीपुंक्लीबविभेदतस्त्वयि पुनः स्त्रीत्वाद्यभावः सदा।
तत्त्वं ते न विदन्ति केचन जगत्यत्राम्बिके तत्कथं
शक्तः स्तोतुमहं भवामि परमं ब्रह्मा स्वयं मूढधीः॥ ८९॥

हे देवि! आप सूक्ष्मा प्रकृति हैं, निराकार हैं, जगद्व्यापिनी हैं, यद्यपि आप स्त्री–पुरुष–नपुंसक भेद से जगत् में दिखायी देती हैं, पर वस्तुतः आप में इन स्त्रीत्व आदि विकारों का अभाव है। आपका वास्तविक तत्त्व तो वे (ज्ञानिजन) भी नहीं जानते। पितामह ब्रह्मा भी आप के गुणगान में अल्पमति हैं तो मैं आपके गुणगान में कैसे समर्थ हो सकता हूँ! क्योंकि मैं तो मन्दमति हूँ।। ८९।।

नमोऽस्तु विश्वमोहिन्यै गौर्यै त्रिदशवन्दिते।
नमस्ते कृष्णारूपिण्यै मायापुरुषरूपिणि॥ ९०॥

हे विश्वमोहिनि! हे गौरि! हे त्रिजगद्वन्दिते! हेकृष्णरूपिणि! हे मायापुरुष-रूपधारिणि! आप को प्रणाम है।। ९०।।

श्रीमहादेव०— एवं संस्तुवतस्तस्य देवी दशभुजा क्षणात्।
प्रत्यक्षं समभूद् बालः कृष्णः कमललोचनः॥ ९१॥

श्रीमहादेव— वसुदेव द्वारा यों स्तुति किये जाने के बाद, वह देवी दशभुजा रूप से क्षणभर में ही बालरूप कमलनेत्र कृष्णरूप में परिवर्तित हो गयीं।। ९१।।

तं वीक्ष्य बालकं कृष्णं वनमालाविराजितम्।
वसुदेवः पुनः प्राह प्राञ्जलिर्मुनिसत्तम!॥ ९२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस वनमालाधारी बालक कृष्ण को देखकर, वसुदेव हाथ जोड़ते हुए पुनः बोले—।। ९२।।

वसुदेव०— "वत्स! मत्तनयान् सर्वाञ्जातमात्रान्महाबलः।
कंसो निहन्ति दुर्द्धर्षः शिलाया मस्तके क्षिपन्॥ ९३॥

वसुदेव— हे पुत्र! यह महाबलशाली, दुर्जय कंस मेरे सभी पुत्रों को उत्पन्न होते ही शिला पर पटक कर मार डालता है।। ९३।।

तदिदानीं न यावत्तु तस्यानुचररक्षकाः।
चेतयन्ति विधेयं ते यत्कर्तव्यं मयाधुना॥ ९४॥

अतः अब, जब तक उसके अनुचरों और मेरे रक्षकों को तुम्हारा यहाँ अवतार लेना न ज्ञात हो, इस विषय में मेरा क्या कर्तव्य है?— मुझे बतावें।। ९४।।

तत्सर्वं त्वं च मां देव तावद्ब्रूहि जगत्पते!
भूभारहरणार्थाय प्रादुर्भूतोऽसि वै यतः"॥ ९५॥

हे देव! हे जगत्पते! मेरा यह कर्तव्य मुझे शीघ्र बतावें; क्योंकि आपने पृथ्वी के भार हरण हेतु यहाँ अवतार लिया है।। ९५।।

श्रीमहादेव०— इति तस्य वचः श्रुत्वा कृष्णा कृष्णास्वरूपिणी।
यशोदानन्दयोः पूर्वं तपः स्मृत्वेदमब्रवीत्॥ ९६॥

श्रीमहादेव— कृष्णरूपधारिणी कृष्णादेवी ने, उनके वचन सुनकर तथा यशोदा एवं नन्द द्वारा कृत पूर्व जन्म के तप का स्मरण कर, यह कहा—।। ९६।।

श्रीकृष्ण०— "शृणु तात! प्रवक्ष्यामि यत्कर्तव्यं त्वयाऽधुना।
भयादतिसुदुष्टस्य मातुलस्य महामते!॥ ९७॥

श्रीकृष्ण— तात! आपको अब मैं वह उपाय बता रहा हूँ जो आपको अभी करना है। जिससे दुष्ट मामा की तरफ से होने वाला भय निवृत्त हो सके।। ९७।।

अद्यैव हि व्यतीतायामष्टम्यां गोकुले मम।
मूर्तिरिकाऽपरा जाता यशोदागर्भगेहतः॥ ९८॥

अतः हे महामते! आज ही, अष्टमी के बीत जाने पर, मेरा ही एक आकार (कन्या) गोकुल में भी यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुआ है।। ९८।।

न तां मन्मायया मुग्धा यशोदा निद्रयान्विता।
जानाति चारुसर्वाङ्गी गौरीं कमललोचनाम्॥ ९९॥

मेरी माया से मोहित हो, सोयी हुई यशोदा उस (कन्या) के विषय में कुछ नहीं जानती। वह कन्या सभी अङ्ग–प्रत्यङ्गों से सुन्दर, गौरी तथा कमल के समान नेत्रों वाली है।। ९९।।

त्वं तु मां तत्र संस्थाप्य तामानीय त्वराऽन्वितः।
प्रवादं कुरु मे जाता कन्यैकेति वराङ्गना॥ १००॥

आप ऐसा करिये– मुझे उन यशोदा की गोद में लिटाकर, उस कन्या को शीघ्र यहाँ लाकर यह प्रचार कर दें कि मुझे एक सुन्दर कन्या हुई है।। १००।।

तस्यास्तु निधनार्थाय सम्प्रहर्तुं शिलोपरि।
यदोर्ध्वं नेष्यति क्रोधात्स दुष्टो मम मातुलः॥ १०१॥

तब वह मेरा दुष्ट मामा जब उसकी हत्या के लिये क्रोध से उसे ऊपर उठाकर शिला पर पटकेगा।। १०१।।

तदा यास्यति सा स्वर्गं देवकार्यस्य सिद्धये।
उक्त्वा निधनकर्तारं पश्यतस्तस्य मां पितः॥ १०२॥

हे पिता! तब वह, देवताओं की कार्यसिद्धि हेतु, हत्या करने वाले के देखते ही देखते स्वर्गलोक चली जायगी।। १०२।।

अहं तु गोकुले स्थित्वा कियत्कालं ततस्त्विह।
समागत्यं दुरात्मानं निहनिष्यामि मातुलम्"॥ १०३॥

उधर, मैं कुछ समय गोकुल में रहकर पुनः यथासमय यहाँ आकर अपने दुष्ट मामा का वध करूँगा"।। १०३।।

श्रीमहादेव०— इत्याकर्ण्य वचस्तस्य बालकस्य महामुने!
वसुदेवस्तमादाय गोकुलं प्रति निर्ययौ॥ १०४॥

हे महामुने! उस बालक की बातों को सुनकर वसुदेव उसे लेकर गोकुल की ओर निकल पड़े।। १०४।।

तदा प्रबोधं नो कश्चिदवाप मुनिसत्तम!
मोहितो वासुदेवस्य माययाऽतिदुरत्ययया॥ १०५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय वासुदेव की अत्यन्त दुष्कर माया से मुग्ध होकर सभी सोये पड़े थे, कोई जगा हुआ नहीं था।। १०५।।

वसुदेवस्तु निर्गत्य स्वपुराददतिदुःखितः।
रुरोद पुत्रमुद्वीक्ष्य दीप्यमानं स्वतेजसा॥ १०६॥

उधर, वसुदेव, अति दुःखी मन से, अपने पुर से निकलकर स्वकीय प्रभा से देदीप्यमान पुत्र को देखकर रोने लगे और बोले—।। १०६।।

"हा वत्स! मद्गृहे कस्मादाविर्भूतोऽसि पापिनः।
कथं त्वां गोकुले रक्षन्न यास्येऽहं गृहं पुनः"॥ १०७॥

"पुत्र! तुम मुझ अकिञ्चन के घर क्यों पैदा हुए? न जाने, मैं तुम्हें गोकुल में रखकर पुनः अपने घर लौट सकूँगा, या नहीं?"।। १०७।।

इत्येवं बहुधाऽऽभाष्य सिञ्चन्नेत्रजलेन तम्।
उत्तीर्य यमुनां कृष्णप्रसादात् शिवया सह॥ १०८॥

प्रविश्य नन्दगोपस्य भवनं चाप्यतर्कितः।
यशोदां ददृशे तत्र प्रसूतवरकन्यकाम्॥ १०९॥

अप्रबुद्धामजानन्तीं पुत्रीं स्वोदरसम्भवाम्।
सखीभिः सहितां चापि निद्रिताभिरितस्ततः॥ ११०॥

इस तरह विविध रूप से विलाप कर उस पर आँसू टपकाते हुए, श्रीकृष्ण की कृपा से कृष्णरूपा शिव के साथ यमुना नदी को पार कर, विना कुछ कहे सुने, नन्द गोप के घर में प्रविष्ट होकर, वहाँ तत्काल उत्पन्न हुई कन्या के साथ सोयी हुई यशोदा को देखा। उसे देखते ही वे समझ गये कि

वह सोयी हुई है तथा उसे यह भी ज्ञात नहीं कि उसे पुत्री हुई है। उसकी सखियाँ भी इधर उधर सोयी पड़ी थीं ।। १०८–११० ।।

ततः संस्थाप्य तत्रैव कृष्णमानकदुन्दुभिः ।
प्रगृह्य तनयां तां च तूर्णं गेहाद्विनिर्ययौ ॥ १११ ॥

तब वसुदेव ने कृष्ण को यशोदा के पास लिटाकर तथा उसकी कन्या को अपनी गोद में लेकर, वे शीघ्र ही उस घर से निकल पड़े ।। १११ ।।

देवी तु वसुदेवस्य क्रोडेऽतिविबभौ मुने!
भुजैर्दशभिरुद्दीप्ता तेजोभिश्च मनोरमैः ॥ ११२ ॥

हे मुने! उस समय वह देवी (कन्या) वसुदेव की गोद में बहुत ही सुन्दर लग रही थी। उसे दश भुजाएँ थीं और उसकी कान्ति दर्शनीय थीं ।। ११२ ।।

तां वीक्ष्य सर्वलोकैकजननीं ब्रह्मरूपिणीम् ।
आनन्दपरिपूर्णात्मा वसुदेवः पुरं ययौ ॥ ११३ ॥
प्रविश्य भवनं देवीं देवक्यै च समार्पयत् ।
उवाच जाता कन्येति रक्षकेभ्यो महामतिः ॥ ११४ ॥

उस ब्रह्मरूपिणी जगन्माता को देख देख कर अतीव मुदित होते हुए वसुदेव अपने घर लौट आये और घर में आकर उस देवी कन्या को देवकी के हाथों में सौंप दिया। तथा उस बुद्धिमान् ने रक्षकों को तत्काल ही बता दिया कि उसके घर में कन्या उत्पन्न हुई है ।। ११३–११४ ।।

तेऽपि प्राहुर्द्रुतं तस्मै कंसायातिदुरात्मने ।
देवक्या अष्टमे गर्भे जातैका कन्यका विभो! ॥ ११५ ॥

रक्षकों ने भी शीघ्रता से जाकर उस दुरात्मा कंस को यह समाचार सुना दिया कि हे विभो! देवकी के आठवें गर्भ से एक कन्या उत्पन्न हुई है ।। ११५ ।।

स पापात्मापि तच्छ्रुत्वा तानुवाच महामुने ।
समानयत तां क्षिप्रं निहनिष्येऽविचारतः ॥ ११६ ॥

हे महामुने! वह पापात्मा, इसे सुनते ही, उनसे बोला कि उस कन्या को तत्काल यहाँ लाओ, मैं उसे विना कोई विचार किये मार डालूँगा ।। ११६ ।।

तच्छ्रुत्वा तां समानीय ददुस्तस्मै दुरात्मने ।
तां चातिसुदृढां दृष्ट्वा पाषाणैरिव निर्मिताम् ॥ ११७ ॥

यह सुनकर उन रक्षकों ने उस कन्या को लाकर दुष्ट कंस को सौंप दिया। हाथों में लेते ही कंस को ऐसा अनुभव हुआ कि मानो यह कन्या अतिकठोर पत्थरों से बनी हुई है।। ११७।।

देवीं भगवतीं बालां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्।
स पापात्मा तु तां नैव ज्ञातवान् परमेश्वरीम्॥ ११८॥

वह पापी उसे सृष्टिस्थितिकारिणी जगन्माता परमेश्वरी नहीं समझ पाया।। ११८।।

जगृहे निधनार्थं च सव्येन दृढमुष्टिना।
तत्रापि सुदृढां भूत्वा शिलाभिरिव निर्मिताम्॥ ११९॥

उसे दुष्ट कंस ने अपने हाथ से पकड़कर उसकी हत्या के लिये उस पर दाहिने हाथ की मुट्ठी से प्रहार किया। तब उसे ऐसे लगा कि वह किसी पत्थर से बनी हुई है।। ११९।।

ऊर्ध्वं चिक्षेप पाषाणोपरि तां पातनेच्छया।
ततो भगवती देवी गगनेऽतीव तेजसा।
ज्वलन्ती सिंहपृष्ठस्था तमूचे पापचेतसम्॥ १२०॥

तब उसने उसको मारने की इच्छा से पत्थर पर पटकने के लिये ऊपर फैंका। परन्तु भगवती देवी बीच में ही बहुत वेग से आकाश में चली गयीं। वहाँ सिंह की पीठ पर आरूढ़ होकर प्रकाशित होती हुई उस पापी से यों बोली—।। १२०।।

श्रीदेवी०— "दुरात्मंस्तव नाशाय देवक्यां वसुदेवतः॥ १२१॥
अहमेव समुद्भूय मायया पुरुषाकृतिः।
तिष्ठामि गोकुले नन्दगोपगेहे निजांशतः"॥ १२२॥

देवी— "दुष्टराज! तेरे नाशहेतु मैं वसुदेव से देवकी के गर्भ से अपने अंश में उत्पन्न होकर, माया से पुरुषाकार बनकर, गोकुल में नन्दगोप के घर में आ चुकी हूँ"।। १२१–१२२।।

श्रीमहादेव—इत्युक्त्वा सा भगवती पश्यतस्तस्य दुर्मतेः।
स्वर्गं जगाम सिंहस्था देवकार्यस्य सिद्धये॥ १२३॥

इति श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीकृष्णप्रादुर्भावोपाख्याने
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

श्रीमहादेव जी!— यों कहकर वह भगवती देवी, उस दुर्मति के देखते ही देखते, सिंह पर आरूढ़ होकर अन्य देवकार्यों की सिद्धि के लिये स्वर्गलोक़ में चली गयीं ।। १२३ ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
श्रीकृष्णप्रादुर्भाव-वर्णनात्मक
पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥

इक्यावनवाँ अध्याय
[पूतना एवं तृणावर्त का वध]

पूतना–वध

श्रीमहादेव०— **नन्दः प्रभाते विज्ञाय चक्रे पुत्रोद्भवोत्सवम्।**
विप्रेभ्यो गोसहस्राणि प्रददौ मुनिसत्तम॥ १॥

श्रीमहादेव— हे मुनिश्रेष्ठ नन्दगोप ने जब प्रातःकाल सुना कि उसके घर में पुत्र उत्पन्न हुआ है तो उसने पुत्रोत्पत्तिजन्य मङ्गलोत्सव मनाया। इसमें उसने हजारों ब्राह्मणों को गोदान किया।। १।।

तथा वासांसि दिव्यानि धनानि सुबहूनि च।
दत्त्वा राज्ञे करं दातुं मथुरायां द्रुतं ययौ॥ २॥

इसी तरह, दिव्य वस्त्र एवं प्रभूत धन देकर राजा को कर देने के लिये वह शीघ्र ही मथुरा की तरफ चला।। २।।

एतस्मिन्नन्तरे कंसो मन्त्रयित्वा च मन्त्रिभिः।
पूतनां प्रेषयामास गोकुले बालघातिनीम्॥ ३॥

इसी बीच कंस ने मन्त्रियों से मन्त्रणा कर पूतना राक्षसी को गोकुल में, नवजात बालकों का वध करने के लिये भेजा।। ३।।

सा तु तस्याज्ञया चारुरूपं संबिभ्रती मुने!
गोकुले समुपागत्य नन्दवेश्म समाविशत्॥ ४॥

हे मुने! वह राक्षसी, कंस की आज्ञा से, सुन्दर रूप धारण कर गोकुल ग्राम आकर, नन्द के भवन में प्रविष्ट हुई।। ४।।

आयान्तीं तां समालोक्य सर्वा एव व्रजाङ्गनाः।
जगुः केयं समायाता चारुरूपा वराङ्गना?॥ ५॥

उसे आती हुई देखकर भवनास्थित महिलाओं को उत्सुकता हुई कि यह सुन्दर रूपवती स्त्री कौन आ रही है?।। ५।।

शची किं देवराजस्य पत्नी किं वा स्वयं रतिः?
कामपत्नी समायाता द्रष्टुं नन्दस्य बालकम्?॥ ६॥

क्या देवराज इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी हैं? या कामदेव की पत्नी रति ही स्वयं नन्दजी के बालक को देखने चली आयी हैं?।। ६।।

कृष्णस्तु तामभिज्ञाय राक्षसीं कामरूपिणीम्।
निमील्य लोचने स्थित्वा पर्यङ्के तां ददर्श ह॥ ७॥

उधर, कृष्ण ने तो उसे पलंग पर, आँखें मूँद कर लेटे ही लेटे देखा तथा यह जान लिया कि यह यथेच्छ वेश धारण करनेवाली कोई राक्षसी है।। ७।।

सा वीक्ष्य बालकं तं तु पर्यङ्कस्थमिवानलम्।
यशोदामाह सौम्येन वचसा क्रूरराक्षसी॥ ८॥

उस क्रूर राक्षसी ने पलङ्ग पर लेटे अग्नि के तुल्य देदीप्यमान बालक को देखकर यशोदा को मधुर वचनों से यों कहा—।। ८।।

पूतना०— "यशोदे सखि! ते भाग्यं मन्ये जन्मशतार्जितम्।
यतस्तवायं तनयो जातः सर्वाङ्गसुन्दरः॥ ९॥

पूतना— "सखि यशोदे! मुझे लगता है, तुम्हारा सैकड़ों जन्मों का अर्जित पुण्य था कि तुम्हें ऐसा सर्वाङ्गसुन्दर पुत्र मिला।। ९।।

अद्यैनं वीक्ष्य ते पुत्रं श्यामं सर्वाङ्गसुन्दरम्।
हर्षं प्राप्तास्मि बालस्ते चिरं जीवतु सुन्दरः॥ १०॥

आज तेरे इस श्यामवर्ण, सर्वाङ्गसुन्दर पुत्र को देखकर मुझे बहुत हर्ष हो रहा है! तुम्हारा यह बालक चिरकाल तक जीवित रहे"।। १०।।

श्रीमहादेव०— इत्येवं स्नेहसम्बन्धि वाक्यमुक्त्वा तु राक्षसी।
मदङ्के बालकं देहीत्येवमूचे च तां पुनः॥ ११॥

श्रीमहादेव जी— यों स्नेहसिक्त वचनों से यशोदा को प्रभावित कर उस राक्षसी ने उनसे फिर कहा— 'यशोदे! कुछ क्षण के लिये उस बालक को मेरी गोद में भी दे दें"।। ११।।

ततो यशोदा तच्छ्रुत्वा तदङ्के प्रददौ सुतम्।
सापि तस्य मुखे प्रादात् स्तनं विषमयं ततः॥ १२॥

यह सुनकर यशोदा ने बालक को उस राक्षसी की गोद में दे दिया तथा उस राक्षसी ने अपना विषलिप्त स्तन उस बालक के मुख में दे दिया।। १२।।

कृष्णस्तु तामभिज्ञाय पूतनां क्रूरराक्षसीम्।
स्तनमात्रस्य चौष्ठेन पपौ प्राणैः समं पयः॥ १३॥

बालक कृष्ण ने उस क्रूर राक्षसी को 'पूतना' के रूप में पहचानकर,

उसके स्तनों पर ओष्ठमात्र लगाकर उसके स्तनों से दूध के साथ साथ उसके प्राण भी पी डाले।। १३।।

ततः सन्त्यज्य तद्रूपं सौम्यं सा भीमरूपिणी।
वदन्ती मुञ्च मुञ्चेति प्राणांस्तत्याज राक्षसी॥ १४॥

तब उस भीमाकृति राक्षसी ने वह सौम्य रूप छोड़कर 'मुझे छोड़, छोड़' यों चिल्लाते हुए अन्त में अपने प्राण छोड़ दिये।। १४।।

ततः पपात भूपृष्ठे वसुधामनुपीड्य सा।
आच्छाद्य गोकुलं भीमा विकटास्या महाद्रिवत्॥ १५॥

फिर वह पृथ्वी को पीड़ित करती हुई वहीं गिर पड़ी और उसने अपना आकार इतना लम्बा–चौड़ा बना लिया कि उसके शरीर से गोकुल ग्राम की समस्त भूमि आच्छादित हो गयी। उस का मुख बड़े पर्वत की तरह बहुत विस्तार में फैल कर भयंकर हो गया।। १५।।

तस्या वक्षसि कृष्णस्तु सहसा कालिका परा।
कृत्वा विरेजे भीमास्या मुण्डमालाविराजिता॥ १६॥

उस की छाती पर बैठे कृष्ण भी अचानक अपना वास्तविक रूप धारण कर परा काली के उस रूप में आ गये जिनका भयानक वदन था, मुण्डमाला धारण किये हुई थीं।। १६।।

क्षणार्धेन वपुस्तस्या राक्षस्याः कालिका स्वयम्।
मुक्त्वा भूयः समभवद् बालः श्यामतनुः परः॥ १७॥

परन्तु क्षण भर बाद ही, वह उस राक्षसी के शरीर को छोड़कर अपने पूर्व बाल कृष्ण रूप में आ गयी।। १७।।

दृष्ट्वा तु विस्मयं जग्मुः सर्वे ते व्रजवासिनः।
मेनिरे च शिशुं कृष्णं शक्तिमाद्यां परात्पराम्॥ १८॥

उन्हें इस रूप में देखकर सभी व्रजवासी आश्चर्यचकित हो उठे। और उनको विश्वास हो गया कि ये बालकृष्ण नहीं, अपितु आद्या पराशक्ति हैं।। १८।।

यशोदा च समालिङ्ग्य स्वाङ्के चोत्थाय बालकम्।
स्तनं ददौ मुखाम्भोजे सम्मार्ज्यौषधवारिणा॥ १९॥

फिर यशोदा ने उस का आलिङ्गन कर तथा उसे अपनी गोद में बैठाकर, औषधमिश्रित जल से उनका मुख धोकर उन्हें स्तन्यपान कराया।। १९।।

एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि नन्दगोपः समागतः।
दत्त्वा राजकरं तस्मै राज्ञे कंसाय पापिने॥ २०॥

इसी बीच में नन्दगोप भी पापी राजा कंस का राजकर जमा कराकर पुनः अपने घर लौट आये।। २०।।

स श्रुत्वा चेष्टितं तस्य बालकस्य महामुने।
देवीं सम्पूजयामास नानाबलिभिरादरात्॥ २१॥

हे महामुने! बालक द्वारा की गयी उस घटना को लोगों से सुनकर उन्होंने नाना बलि–उपहार पूर्वक उस देवी की सादर पूजा–अर्चना की।। २१।।

तृणावर्त–वध

अथ कंसः समाकर्ण्य पूतनानिधनं तथा।
कृष्णस्य चेष्टितं चापि तं मेने मृत्युमात्मनः॥ २२॥

जब राजा कंस ने पूतनावध तथा कृष्ण की चेष्टाओं का समाचार सुना तो उसने अपनी मृत्यु को समीप आयी समझ लिया।। २२।।

ततः प्रस्थापयामास तृणावर्तं महासुरम्।
अपद्रुत्य समानेतुं कृष्णं गोकुलसंस्थितम्॥ २३॥

तब उसने तृणावर्त नामक महान् असुर को भेजा कि वह गोकुल से कृष्ण को उठा लावे।। २३।।

स आगतस्तृणावर्तो वीक्ष्य तं निर्जनस्थितम्।
आश्लिष्य बाहुदण्डेन नीत्वा गगनमास्थितः॥ २४॥

तृणावर्त वहाँ आकर उस बालक को एकाकी देखकर उसे बाहों में पकड़कर आकाश में ले उड़ा।। २४।।

कृष्णः स्मित्वा तु तस्याङ्के स्थित्वाऽभूद् ब्रह्मरूपिणी।
काली व्याघ्राजिनधरा महाजलदनिःस्वना॥ २५॥

कृष्ण ने मुस्कुरा कर उसकी गोद में बैठकर ब्रह्मस्वरूपिणी काली भगवती का रूप धारण कर लिया। वे काली देवी सिंह चर्म धारण की हुई थीं। उसका निनाद ऐसा था मानों भयङ्कर मेघ गर्ज रहा हो।। २५।।

तस्यास्तु तेन नादेन मोहितः स महासुरः।
पपात चालयन् पृथ्वीं सशैलवनकाननाम्॥ २६॥

उसके उस निनाद से वह असुर मोहित (मूर्च्छित) हो गया और

पुनः भूमि पर गिर पड़ा। उस समय वन-पर्वतों सहित समस्त पृथ्वी काँप उठी।। २६।।

ततस्तस्य शिरः काली खड्गेनाहत्य वै पुनः।
सम्भूय बालकस्तस्य स्थितो वक्षसि नारद!॥ २७॥

हे नारद! तब काली ने उसका शिर तलवार से काटकर पुनः बालक का रूप धारण कर वह उसकी छाती पर चढ़ बैठी।। २७।।

यशोदा तु समागत्य दृष्ट्वा तं दानवं हतम्।
महाद्रिसदृशं छिन्नशीर्षं शोणितसम्प्लुतम्॥ २८॥

कुछ देर बाद, यशोदा ने वहाँ आकर देखा तो वह राक्षस मरा पड़ा था, जो कि भीमपर्वताकार था, उसका मस्तक कटा पड़ा था, उसके शरीर से रक्त बह रहा था।। २८।।

विस्मयं परमं प्राप्य पुत्रं तमनुसन्दधे।
तत्र वीक्ष्य तृणावर्तं वक्षस्थं श्यामसुन्दरम्॥ २९॥
हसन्तं सुप्रसन्नास्यं विस्मयं परमं गता।
वदन्ती वत्स वत्सेति सहसा स्वाङ्कमानयत्॥ ३०॥

उसने आश्चर्य करते हुए पुत्र को खोजा, तो देखा कि वह श्यामसुन्दर हंसते हुए प्रसन्नवदन होकर तृणावर्त राक्षस की छाती पर चढ़े बैठे थे। यह देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। तथा स्नेह से 'वत्स, वत्स!' कहती हुई वह उसे गोद में लेकर बैठ गयी।। २९-३०।।

नन्दश्चापि समागत्य दृष्ट्वा तं घोररूपिणम्।
पतितं विगतप्राणं शोणितौघपरिप्लुतम्॥ ३१॥

नन्द ने भी वहाँ आकर जब उस भयानक आकृतिवाले भूमि पर मृत पड़े रक्त से लथ-पथ राक्षस को देखा।। ३१।।

श्रीकृष्णेन हतं मत्वा मुमुदे मुनिसत्तम!
एवं भगवती देवी मायापुरुषरूपिणी॥ ३२॥

हे मुनिसत्तम! तब उसने अनुमान बल से जान लिया कि यह सब श्रीकृष्ण का ही कार्य है और बहुत प्रसन्न हुए।। ३२।।

तपसः फलदानाय यशोदानन्दगोपयोः।
शैशवं भावमाश्रित्य संस्थिता गोकुले स्वयम्॥ ३३॥

यों वह मायापुरुषरूपिणी भगवती देवी उन यशोदा एवं नन्दगोप को

उन के तप का फल देने के लिये बालरूप धारण कर गोकुल में विराजमान रही।। ३३।।

राधाचरित

शम्भुस्तु जन्म सम्प्राप्य वृषभानुगृहे ततः।
स्त्रीरूपं लीलयाऽऽस्थाय राधेत्याख्यामुपागमत्॥ ३४॥

उधर भगवान् शङ्कर भी वृषभानु के घर में स्त्रीरूप से जन्म लेकर लीला करते हुए 'राधा' नाम से प्रसिद्ध हुए।। ३४।।

तां राधामुपसंयेमे कोऽपि गोपो महामुने!
क्लीबत्वं सहसा प्राप शम्भोरिच्छानुसारतः॥ ३५॥

हे महामुने! किसी गोप ने उस राधा से सम्भोग करना चाहा तो वह गोप शम्भु की इच्छा से नपुंसक हो गया।। ३५।।

सा राधाऽनुदिनं गत्वा कृष्णं कमललोचनम्।
प्रेम्णा स्वाङ्के समारोप्य ददृशे परमादरात्॥ ३६॥

वह राधा प्रतिदिन कमलनेत्र कृष्ण के पास जाकर परम आदरपूर्वक उसे गोद में बैठाकर प्रेम से उसे देखा करती थी।। ३६।।

कंसस्तु निहतं श्रुत्वा तृणावर्तं महासुरम्।
नन्दनन्दनमाहर्तुं व्यचिन्तयदहर्निशम्॥ ३७॥

हे मुने! उधर कंस ने जब सुना कि तृणावर्त राक्षस भी मारा गया तो वह उस नन्दपुत्र के अपहरण हेतु निरन्तर चिन्तन करने लगा।। ३७।।

कृष्ण के अन्य साथी

रोहिणीतनयो रामः कृष्णेनामिततेजसा।
चिक्रीडे परमानन्दपूर्णात्माऽहर्निशं मुने!॥ ३८॥

हे मुने! रोहिणी के पुत्र राम भी अपरिमित तेजस्वी कृष्ण के साथ परम आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करते रहे।। ३८।।

तथैव क्रीडितस्तेन श्रीदामवसुदामकौ।
कुमारौ रूपसम्पन्नौ सुचारुमुखपङ्कजौ॥ ३९॥

उसी तरह श्रीदाम एवं वसुदाम नामक कुमार भी, जो कि रूपवान् एवं सुन्दर मुख वाले थे, श्रीकृष्ण के साथ खेलते रहते थे।। ३९।।

तेषां भावेन सम्प्रीतमनाः कृष्णस्तु गोकुले।
उवास राधया सार्धं रन्तुकामो महामते!॥ ४०॥

इति श्रीमहाभागवते उपपुराणे पूतनावधानन्तरं तृणावर्तवधोपाख्याने
एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

हे महामते! इस तरह गोकुल में वह श्रीकृष्ण अपने साथियों के हाव–भाव से प्रसन्न होता हुआ राधा के साथ लीला करने की इच्छा से रहने लगा ।। ४० ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
पूतना-तृणावर्तवधोपाख्यानात्मक
इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥

बावनवाँ अध्याय

[दक्ष-प्रसूतिरूप नन्द-यशोदावर्णन]

नारद०— "सम्भूता देवकीगर्भे देवी बालकरूपिणी।
उवास गोकुले कस्मान्नन्दगोपगृहे स्वयम्॥ १॥

नारद— "देवकी के गर्भ से उत्पन्न उस बालरूपिणी भगवती देवी ने स्वयं गोकुल में आकर नन्दगोप के घर में इतने समय तक क्यों वास किया?॥ १॥

पुरासीदेष नन्दः को यशोदा का तदङ्गना?
किं चकार तपः पूर्वं येन प्राप महेश्वरीम्?
कालीं वालीकभावेन श्यामसुन्दररूपिणीम्॥ २॥

पहले जन्म ये नन्द कौन थे? यशोदा कौन थी? उसकी पत्नी कैसे बनीं? उसने ऐसा कौन सा कठोर तप किया था कि जिसके प्रभाव से वह इस भगवती महेश्वरी काली को मायापुरुषं कृष्ण के रूप मे प्राप्त कर सकी?॥ २॥

कस्माद्वापि निजांशेन यशोदागर्भसम्भवा॥ ३॥
देवी भगवती दुर्गा जातमात्रा समभ्यगात्।
ददृशे नैव तां माता ज्ञातवान्न पितापि च॥ ४॥

और वह काली अपने एक अंश से यशोदा के गर्भ से क्यों उत्पन्न हुई?। फिर वह देवी भगवती उत्पन्न होते ही ऐसे क्यों चली गयी कि न उसको उसकी माता ही देख पायी और न उसके पिता ही देख पाये?॥ ३–४॥

यथोत्पन्ना यथा जाता किंहेतुकमिदं प्रभो?"
एतन्मे पार्वतीनाथ समाचक्ष्व जगत्पते!॥ ५॥

हे प्रभो! जैसे यह उत्पन्न हुई? जैसे यहाँ से चली गयी?"— इन सबमें क्या कारण थे? हे पार्वतीनाथ! हे जगत्पते! यह सब मुझे विस्तार से बताइये॥ ५॥

श्रीमहादेव०— वत्स वक्ष्यामि ते सर्वं यत्पृच्छसि महामते।
शृणुष्ववहितो भूत्वा यथावन्मुनिपुङ्गव!॥ ६॥

श्रीमहादेव जी— हे महामति मुनिश्रेष्ठ! जो तुम पूछ रहे हो, वह सब मैं तुम्हें यथावत् बताऊँगा। उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो।। ६।।

यशोदा–कथा

दक्षः प्रजापतिः पूर्वं सतीविरहदुःखितः।
चेतसा चिन्तयामास ज्ञात्वा तां प्रकृतीं पराम्॥ ७॥

पहले कभी दक्ष प्रजापति ने सती के विरह से दुःखी होकर उस परा प्रकृति की वास्तविकता जानकर, मन से विचार किया।। ७।।

"सम्प्राप्य तपसोग्रेण कन्यामाद्यां परात्पराम्।
तयास्मि वञ्चितो मोहादज्ञात्वा शिवनिन्दनात्॥ ८॥

मैंने बहुत उग्र तप करके परात्परा भगवती को एक कन्या के रूप में प्राप्त किया था उसे भी अपने प्रमादवश विना जाने शिवनिन्दा करते हुए ख बैठा।। ८।।

अहं तथा यतिष्यामि भूयोऽपि तप आचरन्।
यथा मत्तः समुत्पत्तिं भूयः सा समुपैति वै"॥ ९॥

मैं पुनः तपस्या करके ऐसा प्रयास करूँगा कि वह फिर से मेरे घ में उत्पन्न होकर मेरी कन्या बने।। ९।।

इति कृत्वा मतिं दक्षो हिमाद्रेः प्रस्थमुत्तमम्।
गत्वा वर्षशतं दिव्यं समाराधयदम्बिकाम्॥ १०॥

प्रसूतिरपि तत्पत्नी तद्भक्त्या परमेश्वरीम्।
तथैव प्रार्थयामास सुचिरं मुनिसत्तम!॥ ११॥

यह निश्चयकर, हिमालय के किसी शिखर पर जाकर दक्ष ने ए सौ दिव्य (देवताओं के) वर्ष तक अम्बिका की आराधना की। हे मुनिश्रे उधर उसकी पत्नी प्रसूति ने भी भक्तिपूर्वक उस परमेश्वरी भगवती की ब समय तक उसी प्रकार प्रार्थना की।। १०–११।।

तयोः प्रसन्ना समभूत् प्रत्यक्षं परमेश्वरी।
अवोचदिति यत्प्रार्थ्यं युवयोर्वृणुतं च तत्॥ १२॥
ततः प्रजापतिः प्राह मातस्त्वं कृपया पुनः।
मत्तो जन्माप्नुहि शिवे प्रार्थ्यमेतन्महेश्वरि!॥ १३॥
प्रसूतिः प्राह मातस्त्वामपत्यस्नेहतः शिवे।
पालयामीति मेऽभीक्ष्णं प्रार्थनीयं तवाग्रतः॥ १४॥

उन देवी भगवती ने, दोनों पर प्रसन्न होकर, उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिये और कहा– "आपलागों की जो भी इच्छा हो उसे कहिये, मैं उसको पूर्ण करूँगी।" तब प्रजापति ने कहा– "हे माता! आप पुनः कृपा करके मेरे घर में जन्म लीजिये। हे महादेवि! मेरी इतनी ही प्रार्थना है। प्रसूति (दक्षपत्नी) ने कहा– "हे महादेवि! मैं आपका पुत्रस्नेह से पालन करूँ– यही मेरी आप से प्रार्थना है।। १२–१४।।

देवी०— "प्रजापते! भविष्यामि द्वापरान्ते धरातलें।
त्वत्तो जन्म समासाद्य तनया ते न संशयः॥ १५॥
न स्थास्यामि गृहे किन्तु तव कन्यास्वरूपिणी।
स्मृत्वा तच्चरितं पूर्वं शिवनिन्दाकरं परम्।
द्रुतं स्वर्गपुरं यास्ये देवकार्यच्छलेन वै॥ १६॥
अजानतो जन्मवृत्तं मम तातस्य ते गृहात्।
मातः प्रसूतिस्त्वं चेदं मत्तः प्रार्थयसीति यत्।
सम्पत्स्यते तदा नूनं तत्सत्यं नात्र संशयः॥ १७॥

देवी– "प्रजापते! मैं द्वापर के अन्त में भूतल पर आकर आप के घर जन्म लूँगी। इसमें सन्देह न कीजिये। परन्तु जन्म लेकर तुम्हारे घर ठहरूँगी नहीं, परन्तु तुम्हारी कन्या बनूँगी। अथ च, शिवनिन्दा वाला तुम्हारा पूर्वचरित स्मरण कर, देवकार्य के व्याज से शीघ्र पुनः स्वर्गलोक को लौट जाऊँगी। आपके गर्भ से जन्म होना मेरे पिता जान भी नहीं पायँगें परन्तु हे माता प्रसूति! आप जो मुझसे 'अपत्यस्नेह से पालन' वाली वर माँग रही हैं वह मनोरथ तुम्हारा पूर्ण होगा– इसमें सन्देह नहीं है।। १५–१७।।

अदित्यै कश्यपायापि मया दत्तो वरः स्वयम्।
द्वापरान्ते भविष्यामि तयोर्गेहे सुतस्त्वहम्॥ १८॥
तदा तव गृहेऽहं तु दिनानि कतिचिद् ध्रुवम्।
वसिष्ये फलदानाय तपसस्तस्य लीलया"॥ १९॥

क्योंकि मैंने अदिति एवं कश्यप को भी वर दिया था कि द्वापर के अन्त में मैं तुम्हारे घर में पुत्र रूप से पैदा होऊँगी। उस समय तुम्हारे घर में आकर कुछ दिन वास करूँगी। इससे तुम्हारे द्वारा की गयी इस तपस्या का फल तुम्हें मिल जायगा।। १८–१९।

श्रीमहादेव—इत्युक्त्वा सा भगवती सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ सहसा पश्यतोस्तयोः॥ २०॥

स दक्ष एव नन्दस्तु यशोदापि तदङ्गना॥ २१॥

महादेव– हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर वह सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयकारिणी भगवती, उन दोनों के देखते ही देखते वहीं अन्तर्हित हो गयी। वही दक्ष आज नन्द के रूप में अवतरित हुआ है और उसकी पत्नी यशोदा के रूप में।। २०–२१।।

कारणादपि चैतस्माद् यशोदागर्भसम्भवा।
देवी भगवती स्वर्गे जातमात्रा समभ्यगात्॥ २२॥
देवकीगर्भजातापि श्यामसुन्दररूपिणी।
उवास गोकुले रम्ये कियत्कालं महामुने॥ २३॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे दक्षप्रसूतिनन्दयशोदाजन्मवर्णने
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥

हे महामुने! इस कारण से भी, यशोदा के गर्भ से उत्पन्न देवी भगवती, जन्म लेते ही, स्वर्गलोक में चली गयी। यों, हे महामुनि! और देवकी के गर्भ से उत्पन्न देवी का अंश श्यामसुन्दर कृष्ण के रूप में रमणीय गोकुल में कुछ काल तक लीला करता रहा।। २२–२३।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
दक्ष एवं प्रसूति का नन्द-यशोदा रूप में वर्णन वाला
बावनवाँ अध्याय समाप्त॥

तिरपनवाँ अध्याय

[रासक्रीड़ा-वर्णन]

श्रीनारद०—''संक्षेपेण समाशंस पार्वतीप्राणवल्लभ!
देव्याः श्रीकृष्णरूपायाश्चरितं मे महेश्वर॥ १॥

नारद का प्रश्न— हे पार्वतीपति महेश्वर! कृपया आप मुझे श्रीकृष्णरूप देवी का समस्त चरित संक्षेप से सुनाइये।। १।।

यथा विहरणं चक्रे गोकुले सह राधया।
निपातयच्चापि तथा भूभारान्सुबहून् रणे॥ २॥

गोकुल में रहकर उन्होंने राधा के साथ जैसी क्रीडाएँ की। तथा बहुत से दुष्टों को रण में मारकर जैसे पृथ्वी का भार कम किया।। २।।

अन्यत्रापि कुरुक्षेत्रे साक्षाद्वापि कुलेन वा।
यथैवासीत्क्षितौ सर्वैर्ऋषिभिर्यदुवंशजाः।
आरुरोह पुनः स्वर्गं यथातदभिशंसनः॥ ३॥

अन्यत्र भी, जैसे कुरुक्षेत्र में उन्होंने जो किया। व्यक्तित: या कुल में रहकर उन्होंने जो विशेष कार्य किया। सभी ऋषियों की यदुवंशियों के साथ जो विशेष घटना हुई थी। और अन्त में वे भगवती जैसे अपने लोक को पुन: लौटी उसे बताइये?।। ३।।

श्रीमहादेव०— विहरन् गोकुले कृष्णः समस्तैर्गोपबालकैः॥ ४॥
बाल्ये वयसि हत्वा तान् धेनुकादीन्महासुरान्।
कालीयदमनं कृत्वा प्रभावमनुदर्शयन्॥ ५॥
रेमे वृन्दावने रम्ये राधया मुनिसत्तम!
अन्यैश्च गोपिकावृन्दैर्भैरवांशसमुद्भवैः॥ ६॥

श्रीमहादेव जी का उत्तर— उन श्रीकृष्ण ने गोपबालकों कें साथ गोकुल में विहार करते हुए। बाल्यावस्था में धेनुकासुर आदि बलवान् असुरों को मारकर, कालीय नाग का दमन कर, लोक में अपना प्रभाव (प्रताप) प्रदर्शित करते हुए। हे मुनिश्रेष्ठ! रमणीय वृन्दावन में राधा के साथ क्रीड़ाएँ कीं। भैरव के अंश से समुद्भूत अन्य गोपबालिकाएँ इस क्रीड़ा में भाग लेती रहीं, जिससे उस क्रीड़ा का लावंण्य बढ़ जाता था।। ४–६।।

रास–क्रीड़ा

लावण्यं वर्धयन् रेमे कृष्णः काल्यात्मकः पुमान्।
गोरक्षणकुलाद्गत्वा दिवा वृन्दावने शुभे॥ ७॥
वेणुनिःस्वनसंवादैः सर्वाश्चानीय गोपिकाः।
प्रधानमहिषीं कृत्वा राधां रेमे स्वलीलया॥ ८॥

वे भगवती काली पुरुष रूप में कृष्ण बनकर, प्रातःकाल ही गोरक्षणकुलों से सुन्दर वृन्दावन में जाकर वंशी की मधुर ध्वनि से गोपियों को एक स्थान पर एकत्र कर, उनमें राधा को प्रधान बनाकर क्रीड़ा करती रहीं।। ७–८।।

विविधैर्वन्यपुष्पैश्च मालां निर्माय गोपिकाः।
कृष्णाङ्गे सम्प्रदायातिहृष्टा कृष्णं व्यलोकयन्॥ ९॥

वहाँ गोपियाँ विविध वनपुष्पों से मालाएँ बनाकर कृष्ण के शरीर में पहनाकर प्रसन्न होती हुई कृष्ण को देखती रहती थी।।९।।

कृष्णोऽपि रुचिरां मालां दत्त्वा ताभ्यः स्मिताननः।
व्यलोकयन् मुखाम्भोजं सुप्रसन्नं निरन्तरम्॥ १०॥

कृष्ण भी उन्हें सुन्दर मालाएँ पहना कर मुस्कराते हुए उनका मुख कमल निरन्तर देखते रहते थे।। १०।।

कदाचिदुपविष्टस्तु दिव्यसिंहासनोपरि।
वामाङ्गे समुपाधाय राधां परमसुन्दरीम्॥ ११॥
विमृज्य शशिकोट्याभं वाससा तन्मुखाम्बुजम्।
प्रेम्णा चुचुम्ब श्यामस्तां कामव्याकुलमानसः॥ १२॥

कभी दिव्यसिंहासन पर बैठकर और अपने वाम पार्श्व में परम सुन्दरी राधा को बैठाकर करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्ति के समान उनके मुख को मृदुवस्त्र से पोंछते हुए वह कृष्ण काममुग्ध होकर उसका चुम्बन लेते थे।। ११–१२।।

कदाचिद्यमुनातीरे कदाचिज्जलमध्यतः।
सहितो गोपिकावृन्दैश्चिक्रीडे यदुनन्दनः॥ १३॥

वे यदुनन्दन कृष्ण कभी यमुना के तट पर, कभी यमुना के जल में उन गोपियों के साथ क्रीड़ा करते थे।। १३।।

रात्रौ संहृत्य चेतांसि गोपीनां वेणुनिःस्वनैः।
आनीय कानने तत्र रेमे कृष्णः सकौतुकम्॥ १४॥

कभी वे निःशब्द रात्रि में वंशी की मधुर ध्वनि से उन गोपियों का मन अपनी तरफ आकृष्ट करते हुए उन्हें रम्य कानन में बुलाकर कौतुकमयी क्रीड़ा करते रहे।। १४।।

कदाचिद्राधिका शम्भुश्चारुपञ्चमुखाम्बुजः।
कृष्णो भूत्वा स्वयं गौरीं चक्रे विहरणं मुने॥ १५॥

हे मुने! कभी राधा, जो कि शङ्कर का अवतार थी, अपने पाँच मुखकमलों से कृष्ण बनी गौरी से क्रीड़ा करती थीं।। १५।।

एवं संरममाणस्तु राधया गोकुले स्वयम्।
कृष्ण आनन्दपूर्णात्मा समावात्सीन्महामुने॥ १६॥

इस तरह स्वयं कृष्ण राधा के साथ क्रीड़ा करते हुए प्रसन्न मन से गोकुल में समय व्यतीत करते रहे।। १६।।

महाविहार

एकदा सम्प्रवृत्ते तु शरत्काले महानिशि।
विहरन्तुं मनः कृत्वा वृन्दावनमुपागमत्॥ १७॥

एक बार शरदऋतु के प्रारम्भ होने पर, महानिशा के दिन क्रीड़ा करने की इच्छा से वे वृन्दावन पहुँचे।। १७।।

पुष्पितं मल्लिकाकुन्दजातीचम्पकरङ्गनैः।
ललितं मन्दमन्दायमानैर्मधुरवायुभिः॥ १८॥

उस समय वह वृन्दावन मल्लिका, कुन्द, जाती, चम्पक एवं रङ्गन पुष्पों से सुपुष्पित था; मन्द मन्द चलती वायु के झोकों से अच्छा लग रहा था।। १८।।

मधुपैर्मधुमतैश्च गुञ्जितैर्मधुरस्वनैः।
कूजितं कोकिलैः क्रौञ्चैः कामविह्वलमानसैः॥ १९॥

वह पुष्पराग के पान में मत्त भौरों की मधुर ध्वनि से गूँज रहा था, कोयल कामविह्वल कोयल और क्रौञ्च पक्षियों की मीठी बोली से कूजित था।।१९।।

सरांसि चातिरम्याणि कानने तत्र नारद!
सुपुष्पितानि कह्लारकुमुदैः पङ्कजैरपि॥ २०॥

हे नारद! उस समय वहाँ के सुन्दर सरोवर सुगन्धित कल्हार, कुमुद एवं श्वेत कमल के फूलों से शोभित थे।। २०।।

अथोदयमनुप्राप्य शशाङ्कोऽतिसुनिर्मलः ।
हर्षयन्नपि विश्वानि द्रावयन् कामिनीमनः ॥ २१ ॥

इसी समय, अतीव निर्मल चन्द्रमा समस्त विश्व को हर्ष प्रदान कर रहा था तथा कामिनी जनों के मन को द्रवित कर रहा था।।२१।।

एवं वनं प्रियं वीक्ष्य शशाङ्कं चातिनिर्मलम्।
प्रहृष्टात्मा स्वयं कृष्णो वेणुमावादयन्मुने॥ २२ ॥

हे मुने! ऐसे प्रिय वन तथा अतिनिर्मल चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न मन से आह्लादित श्रीकृष्ण ने वंशी बजाना प्रारम्भ किया।।२२।।

तच्छ्रुत्वा समुपायाताः सर्वा गोपवराङ्गनाः ।
सन्त्यज्य गृहकर्माणि कृष्णाकर्षितमानसाः ॥ २३ ॥

उसी वंशीध्वनि को सुनकर सभी सुन्दर गोपाङ्गनाएँ अपने अपने घर का आवश्यक कार्य भी छोड़कर, कृष्ण के प्रति चित्त आकृष्ट होने के कारण, वहाँ आकर एकत्र हो गयीं।। २३ ।।

राधा जगाम चार्वङ्गी तासामग्रे व्यवस्थिता।
साक्षाच्छम्भुः पुमान्पूर्णो राधास्त्रीरूपमाश्रितः ॥ २४ ॥

उनमें सुन्दर अङ्गों वाली राधा सबसे आगे थी। यह राधा और कोई नहीं पूर्ण पुरुष साक्षात् शङ्कर ही वहाँ राधा के स्त्री रूप में थे।। २४।।

ताः सर्वा आगता वीक्ष्य कृष्णः कमललोचनः ।
महाविहार उद्योगं चक्रे स मुनिसत्तम! ॥ २५ ॥

हे मुनिवर! उन सब गोपियों को आया देखकर कमलनयन कृष्ण ने महाविहार (महाक्रीड़ा) करने का निश्चय किया।। २५।।

आकृष्य बाहुभिः सर्वा गोपीः कृष्णः पृथक् पृथक्।
रेमे रतिपतिं जित्वा नानाकौतुकमङ्गलैः ॥ २६ ॥

उस समय कृष्ण सभी गोपियों को पृथक् पृथक् खींच कर, कामदेव को भी परास्त सा करते हुए, उनके साथ क्रीड़ा करने लगे।। २६।।

महारासक्रीड़ा

अथाष्टधाऽभवत् कृष्णो नवीनजलदप्रभः ।
स्मितास्यः परमानन्दः पूर्णात्मा कामविह्वलः ॥ २७ ॥

उस समय नवीन मेघ के समान श्याम श्रीकृष्ण अपने आठ रूपों में एक साथ प्रकट हुए। तब वे सभी रूप मुस्करा रहे थे, आनन्द से परिपूर्ण कामविह्वल थे।। २७।।

तद्वीक्ष्य रेजे राधापि भूत्वाष्टौ मूर्तयः क्षणात्।
सहसेन्दुप्रभास्मेररुचिराः कामविह्वलाः ॥ २८ ॥

यह देखकर राधा भी तत्काल अपने आठ रूपों में प्रकट हुई। उस के सभी रूप मुस्कराते चाँद की तरह वदन वाले तथा कामोद्दीपक थे।। २८।।

ताभिर्मूर्त्तिभिरष्टाभिर्विहर्तुं हि महामुने!
अष्टमूर्तिः प्रसन्नात्मा कृष्णः सोऽन्तर्दधे क्षणात् ॥ २९ ॥

हे महामुने! उस सभी मूर्त्तियों (रूपों) से पृथक् पृथक् क्रीड़ा करने हेतु वे अष्टमूर्त्ति कृष्ण प्रसन्न होते हुए तत्क्षण अन्तर्हित हो गये।। २९।।

गतोऽन्तरिक्षे चक्रे स रासक्रीडां महामुने!
अन्याः शूलेन सन्त्यज्य सर्वगोपवराङ्गनाः ॥ ३० ॥

और हे महामुने! वे कृष्ण रासक्रीड़ा हेतु अन्तरिक्ष में चले गये। अन्य सभी गोपिकाओं को वहीं कष्ट में छोड़ दिया।। ३०।।

बाहुभ्यां बाहुमाकृष्य राधायाः कमलेक्षणः।
वक्त्रेण घट्टयन्वक्त्रं मर्दयँश्च स्तनौ करैः ॥ ३१ ॥

वहाँ उस कमलनयन कृष्ण ने राधा की बाहुओं को अपनी बाहुओं में खींचकर अपने मुख से उसके मुख का तथा अपने हाथों से उसके स्तनों का मर्दन करने लगे।। ३१।।

क्वचिद्वस्त्रं तथाहृत्य प्रहसन् कौतुकान्वितः।
रेमे चिरं परानन्दः पूर्णात्मा निजलीलया ॥ ३२ ॥

कहीं उसका वस्त्र खींच कर वह कौतुकी कृष्ण हँसने लगते। यों वे आनन्दस्वरूप कृष्ण चिरकाल तक उनसे क्रीड़ा में मग्न रहे।।३२।।

तत्रासीत् पुष्पवृष्टिश्च महती मुनिसत्तम!
भेरीमृदङ्गतूर्यादिनिःस्वनैस्तुमुलैः सह ॥ ३३ ॥

हे मुनिसत्तम! तब वहाँ पुष्पवृष्टि होने लगी। तथा साथ ही तुमुल ध्वनि से भेरी, मृदङ्ग तथा तूर्य बजने लगे।। ३३।।

तथा विहरमाणौ तु राधाकृष्णौ नभोऽन्तरे।
नालोक्य रुरुदुस्त्वन्या गोपिका रम्यकानने ॥ ३४ ॥

राधा एवं कृष्णा को जब अन्तरिक्ष में क्रीड़ा करते हुए बहुत विलम्ब हो गया तो नीचे पृथ्वी पर छूटी हुई गोपकन्याएँ उस रमणीय वन में रुदन करने लगीं।। ३४।।

तासां विलापमाकर्ण्य पुनः कृष्णस्तु राधया।
प्रत्यक्षं समभूत्तत्र कानने मुनिपुङ्गव!॥ ३५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उनका विलाप सुनकर कृष्ण राधा के साथ तत्काल ही भूमि पर उस रम्य वन में उतर आये।। ३५।।

मनोभिलषितं तासां कृष्णः कर्तुमनेकधा।
सम्भूय निजमाहात्म्याद्रेमे तस्मिन् महावने॥ ३६॥

फिर कृष्ण ने उन गोपिकाओं का मनोऽभिलाष पूर्ण करने के लिये उनके साथ, अपने विशिष्ट प्रभाव से, पृथक् पृथक् क्रीड़ा की।। ३६।।

दृष्ट्वा तु देवगन्धर्वाः कृष्णक्रीडां महामुने!
सम्प्रापुः परमामोदं चक्रुः पुष्पातिवर्षणम्॥ ३७॥

वहाँ उपस्थित देवता एवं गन्धर्वों ने वह रास–क्रीड़ा देखकर प्रसन्न होते हुए उन पर पुष्पवृष्टि की।। ३७।।

एवं बहुदिनं रात्रौ गोपीभिः सह कानने।
चकार रासक्रीडां वै पूर्णामारभ्य कार्त्तिकीम्॥ ३८॥

इस तरह श्रीकृष्ण ने उस वृन्दावन में गोपियों के साथ कार्तिकी पूर्णिमा से आरम्भ कर बहुत दिन रात्रि में गोपिकाओं के साथ रासक्रीड़ा की।। ३८।।

अन्या अपि महाक्रीडाश्चकार परमेश्वरि!
वस्त्रापहरणाद्यास्तु योषिद्रूपेण शम्भुना॥ ३९॥

उन परमेश्वरी ने अन्य वस्त्रापहरणादि क्रीडाएँ भी उस स्त्री–रूप शम्भु से कीं।। ३९।।

नन्दाद्या गोपवृन्दास्तु ज्ञात्वा ब्रह्मविचेष्टितैः।
स्नेहेन पालयामासुः कृष्णं देव्यात्मकं मुने॥ ४०॥

हे मुने! नन्द आदि वृद्ध गोप जन कृष्ण की इन लीलाओं को ब्रह्मचेष्टित मानकर देवीरूप कृष्ण का विशेष स्नेह से पालन करते रहे।। ४०।।

राधापि परिसंत्यज्य लज्जा तेन निरन्तरम्।
लावण्यं वर्धयन्तीव रेमे कृष्णेन नारद॥ ४१॥

हे नारद! राधा भी लज्जा त्याग कर निरन्तर अपना सौन्दर्य बढ़ाती हुई कृष्ण के साथ क्रीड़ाएँ करती रही।। ४१।।

वृषभासुर का वध

अथ कंसेरितो दैत्यो वृषभाख्यो महाबलः।
एकदा गोकुलं प्रायाद्रामकृष्णौ विहंसितुम्॥ ४२॥

इसी समय दुष्ट कंस द्वारा प्रेरित वृषभ नामक महाबलशाली दैत्य एक बार, राम एवं कृष्ण के वध की इच्छा से गोकुल की तरफ चला।। ४२।।

तमायान्तं दृशा वीक्ष्य रजताद्रिसमं मुने!
दुद्रुवुः परितः सर्वे पशवो गोकुले स्थिताः॥ ४३॥

हे मुने! रजतपर्वत तुल्य उसे आते देखकर, गोकुल में रहने वाले सभी पशु, इधर उधर भागने लगे।। ४३।।

दुद्रुवुश्चापरे लोकाः सिंहं दृष्ट्वा गजा इव।
दिशश्च विदिशश्चैव भयात्तस्य दुरात्मनः॥ ४४॥

जैसे सिंह को देखकर हाथी भाग जाते हैं उसी तरह दूसरे प्राणी भी जिधर स्थान मिला उधर ही उस दुष्ट के भय से भागने लगे।। ४४।।

एवं निरीक्ष्य सन्धावमाना गोकुलवासिनः।
कृष्णस्तमाससादाथ वृषभाख्यं महासुरम्॥ ४५॥

तब भय से इधर-उधर दौड़ते हुए गोकुलवासियों को देखकर कृष्ण उस वृषभासुर के सम्मुख पहुँचे।। ४५।।

स चापि वृषभो वीक्ष्य कृष्णं सम्मुखमागतम्।
खुरैः प्रचालयन्पृथ्वीं ननर्द मुनिसत्तम!॥ ४६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तब वह वृषभासुर कृष्ण को अपने सम्मुख आया हुआ देखकर अपने खुरों से पृथ्वी से खोदता हुआ, भयङ्कर नाद करने लगा।। ४६।।

अथ कृष्णस्तमाकृष्य शृङ्गयोर्धरणीतले।
प्रक्षिप्य पातयामास पृथ्व्यां प्राणानमोचयत्॥ ४७॥

तब कृष्ण ने उसको सींगों से पकड़कर खींचते हुए, पृथ्वी पर पटक कर उसके प्राणों को हर लिया।। ४७।।

ततो गोपाः परं प्राप्य विस्मयं हृष्टमानसाः।
अपूजयंस्ते कृष्णं तं नानास्तुतिभिरादरात्॥ ४८॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे राधया सह रासक्रीडावर्णने
वृषभासुरवधो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

इस तरह उस वृषभासुर को मरा हुआ जानकर गोपगण परम आश्चर्य के साथ प्रसन्न होते हुए कृष्ण की अनेक तरह से आदरपूर्वक स्तुति करने लगे।। ४८।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
रासक्रीडा एवं वृषभासुरवध नामक
तिरपनवाँ अध्याय पूर्ण॥

चौवनवाँ अध्याय

[वसुदेव-देवकी को दर्शनप्राप्ति]

नारद द्वारा कंस को वास्तविकता बताना

श्रीमहादेव०— अथैकदा मुनिः प्रायान्नारदो मथुरापुरम्।
नभसा वादयन् वीणां गायन् हरिकथामृतम्॥ १॥

श्रीमहादेव— एक बार नारद मुनि आकाश मार्ग से वीणा पर हरिका गुणगान करते हुए मथुरा नगरी आये।। १।।

स प्राह कंसराजं निर्जने मुनिसत्तम।
वेदयन् सकलं वृत्तं सुगुप्तं दुष्टचेतसे॥ २॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उन्होंने एकान्त में बैठे दुष्ट कंसराज को गोपनीय समस्त वृत्तान्त बताते हुए कहा—।। २।।

नारदः०— "शृणु गुह्यतमं राजन् वक्ष्ये तव हितं वचः।
योऽसौ नन्दसुतः कृष्णो गोकुलेऽस्ति महाबलः॥ ३॥
नवीननीरदश्यामो वनमालाविराजितः।
स एव देवकीगर्भे सम्भूतश्चाष्टमे ध्रुवम्॥ ४॥

नारद— "हे राजन्! मैं तुम्हें तुम्हारे हित की कुछ गुप्त बातें बता रहा हूँ, उन्हें तुम ध्यान से सुनो। यह गोकुलवासी नन्द का पुत्र महाबलशाली कृष्ण जो कि नये मेघ के समान श्यामवर्ण वाला है, वनमाला धारण किये रहता है, वही देवकी के गर्भ में निश्चित ही आठवें पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ था।। ३–४।।

रोहिणीगर्भसम्भूतो रामो भीमपराक्रमः।
तौ न्यस्तौ वसुदेवेन विवृद्धौ नन्दवेश्मनि॥ ५।।

उसे और रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न भयङ्कर पराक्रमी राम को वसुदेव ने अपने मित्र नन्द गोप के घर ले जाकर छिपा दिया था, वही नन्द इन दोनों का आज पालन–पोषण कर रहा है।। ५।।

ताभ्यां ते निहताः शूरास्तृणावर्तादयो बलात्।
कन्या या गगनं प्रायात्सा तु नन्दतनूद्भवा।
आनीता वसुदेवेन त्वां प्रतारयितुं ध्रुवम्"॥ ६॥

उन्होंने उन तृणावर्त आदि वीरों को मारा है, जिनको तुमने गोकुल में भेजा था। और जिस कन्या को तुमने मारकर आकाश में फेंक दिया था वह नन्द गोप के घर पैदा हुई थी। उसको वसुदेव तुम्हें धोखा देने के लिये यहाँ ले आये थे।। ६।।

श्रीमहादेव०— तेनैवमुक्तो दुर्धर्षः क्रोधात् खड्गमुपाददे।
सञ्छेत्तुकामो देवक्या सहितं वृष्णिनन्दनम्॥ ७॥
ततस्तं वारयामास स एव मुनिसत्तमः।
उक्त्वा बहुविधं तस्मै राज्ञे कंसाय कोपिने॥ ८॥
ततः स्वाश्रममभ्यागात्स मुनिर्देवदर्शनः॥ ९॥

श्रीमहादेव— हे मुनिश्रेष्ठ! यह सुनकर क्रोध से उन्मत्त होकर उस दुष्ट कंस ने, देवकीसहित वसुदेव के वध हेतु, तलवार उठायी परन्तु मुनिश्रेष्ठ नारद ने उस क्रोधी कंस को रोक दिया। और उसे अन्य अनेक प्रकार की नीतियुक्त बातें समझाकर वे पुनः देवदर्शन हेतु अपने आश्रम में पहुँच गये।। ७–९।।

कंसः प्रस्थापयामासाक्रूरं निश्चित्य मन्त्रिभिः।
अक्रूरमाह–"गत्वा त्वं गोकुले नन्दवेश्मनि॥ १०॥
वसुदेवसुतौ रामकृष्णौ तत्र स्थितौ छलात्।
समानय पुरीमेनां मथुरां मम शासनात्॥ ११॥

तब कंस ने मन्त्रियों से मन्त्रणा कर अक्रूर को यह कहकर गोकुल भेजा कि "तुम मेरी आज्ञा से गोकुल में नन्द के घर जाकर वहाँ से राम और कृष्ण को छलपूर्वक (किसी न किसी बहाने से) यहाँ मथुरापुरी में ले आओ वह मेरा आदेश है।। १०–११।।

तत्र मुष्टिकचाणूरप्रमुखैर्मल्लयोद्धृभिः।
मल्लयुद्धेन तौ वीरौ पातयिष्ये महाबलौ"॥ १२॥

मथुरा में लाकर मुष्टिक एवं चाणूर आदि प्रमुख मल्लों से उन दोनों वीर एवं महाबलशालियों का मल्लयुद्ध कराया जायगा। इस मल्लयुद्ध में मेरे वीर उन दोनों को मार डालेंगे"।। १२।।

रामकृष्ण का मथुरापुरी में आगमन

इत्याज्ञप्तो मुने! तेन कंसेनातिदुरात्मना।
अक्रूरो रथमारुह्य शीघ्रं गोकुलमाययौ॥ १३॥

हे मुने! इस तरह उस अतिदुष्ट कंस से आज्ञा पाकर अक्रूर रथ पर बैठकर शीघ्र ही गोकुल की तरफ चल पड़े।। १३।।

ततो नन्दाश्रमं गत्वा रथात् क्षितिमुपेत्य च।
प्रविश्य ददृशे वीरौ वासुदेवौ सुदुर्जयौ॥ १४॥

तब उन अक्रूर ने नन्द के घर जाकर रथ से पृथ्वी पर उतरकर घर में प्रविष्ट होकर उन दोनों अजेय वीर वसुदेवपुत्रों को देखा।। १४।।

अक्रूरस्तौ प्रणम्याथ दण्डवत्पतितो भुवि।
उवाचागमने हेतुं यत्कंसेनाभिभाषितम्॥ १५॥

अक्रूर ने पृथ्वी पर गिरकर उन दोनों को दण्डवत् प्रणाम किया और उनको कंस द्वारा आदिष्ट अपने आगमन का कारण बताया।। १५।।

अक्रूर०— **"प्रेषितः कंसराजेन दुष्टेनाहं समागतः।**
युवां मधुपुरीं नेतुं रामकृष्णौ महाबलौ॥ १६॥

अक्रूर— "दुष्ट राजा कंस द्वारा प्रेषित मैं आप दोनों महाबलशाली रामकृष्ण को मथुरा नगरी ले जाने के लिये आया हूँ।। १६।।

स तु सम्मन्त्रयामास मन्त्रिभिर्दुष्टचेष्टिभिः।
युवां मल्लेन युद्धेन मल्लैः सम्पातयिष्यति॥ १७॥

वहाँ उसने अपने मन्त्रियों से परामर्श किया है कि आप दोनों का, मथुरापुरी के विशिष्ट मल्लों से युद्ध कराकर, आप दोनों का उन मल्लों से ही वध करवा दिया जाय।। १७।।

अहं तु प्रतिजानामि श्रुत्वा योगिमुखाम्बुजात्।
न युवां प्राकृतौ नूनं मनुजौ भीमविक्रमौ॥ १८॥
कंसादिदुष्टभूभारनिवृत्त्यै निजलीलया।
जातौ मायामयौ पृथ्व्यां पुंप्रकृत्यात्मकौ परौ॥ १९॥

परन्तु मुझे योगी (नारद?) के मुख कमल से सुनकर ज्ञात हो गया है कि आप दोनों साधारणजन नहीं हैं, अपि तु भयङ्कर विक्रमशाली पुरुष हैं। कंस आदि दुष्टों से पृथ्वी का भार कम करने के लिये आप दोनों आद्या प्रकृति होते हुए भी स्वेच्छा से इस भूमण्डल पर मायापुरुष के रूप में अवतरित हुए हैं।। १८-१९।।

नन्दस्य च यशोदायास्तत्र भाग्यातिरेकतः।
संस्थितौ छलमाश्रित्य भयं कंसाद् दुरात्मनः॥ २०॥

इन नन्द और यशोदा का सौभाग्य है कि दुष्ट कंस के भय से आप दोनों इनके घर में छिपे हुए हैं।। २०।।

तदेतयोः समभवज्जन्मान्तरकृतस्य च।
सम्पूर्णं फलमेवेह तपसः पूर्वमुत्तमम्॥ २१॥

वह इन दोनों के पूर्वजन्म कृत तप का यह सुफल ही मिल रहा है कि आप दोनों इनके घर में बाललीला कर रहे हैं।। २१।।

इदानीं समुपागत्य मथुरां यदुशासनात्।
कंसादिदुष्टभूभारान् यापयैतान् महाबलान्"॥ २२॥

अब आप दोनों मथुरा में पधार कर वहाँ यादवों का शासन पुनः स्थापित कर इन कंस आदि दुष्टों का वध कर पृथ्वी का भार हल्का कीजिये"।। २२।।

श्रीमहादेव—**इत्याकर्ण्य वचस्तस्य रामकृष्णौ महाबलौ।**
गन्तुमिच्छू मधुपुरीं सर्वान् गोपान् समूचतुः॥ २३॥

श्रीमहादेव जी— अक्रूर सारथि के ये वचन सुनकर वे दोनों महाबलशाली राम एवं कृष्ण मथुरापुरी जाने का मन बनाकर वहाँ उपस्थित सभी गोपों से बोले—।। २३।।

"यूयं विविधगव्यानि मधुराणि महामते!
दातुं राज्ञे श्वः प्रभाते गृहीत्वा सम्प्रयास्यथ।
आवां तत्र गमिष्यावौ द्रष्टुं क्षितिपतिं ध्रुवम्"॥ २४॥

"बुद्धिमानो! आप लोग गौ के दूध से बने विविध मधुर उपहार लेकर राजा को भेंट करने के लिये कल प्रातः मथुरापुरी पहुँचे। हम दोनों भी उस राजा से मिलने के लिये मथुरा नगरी पहुँच रहे हैं"।। २४।।

तयोरिति वचः श्रुत्वा गोपाश्चकितमानसाः।
तथा चक्रुर्मुनिश्रेष्ठ सर्व एव महामते!॥ २५॥

उन दोनों के ये वचन सुनकर वे गोप बालक अत्यधिक आश्चर्यान्वित हुए। परन्तु हे मुनिश्रेष्ठ! उन्होंने वह सब किया जो उनको राम एवं कृष्ण ने कहा था।। २५।।

ततः प्रभाते आरुह्य रथं तं चित्रमुत्तमम्।
अक्रूरेण सहोद्योगं चक्रतुर्मथुरागमे॥ २६॥
ततस्तु रुरुदुः सर्वाः कृष्णं वीक्ष्य व्रजाङ्गनाः॥ २७॥

तब वे राम और कृष्ण उस उत्तम चित्र विचित्र रथ पर आरूढ़ होकर अक्रूर के साथ शीघ्र ही मथुरा पुरी पहुँचने का प्रयास करने लगे। तब कृष्णा को जाते देखकर, सभी व्रजाङ्गनाएँ रोने लगीं।। २६–२७।।

ताः समाश्वास्य तूर्णं स चालयन् रथमभ्यगात्।
अनुजग्मुर्मुनिश्रेष्ठ नन्दाद्या गोपवृन्दकाः॥ २८॥

उन सबको पूर्णतः आश्वस्त करते हुए वे दोनों रथ से मथुरापुरी की तरफ प्रस्थान करने लगे। हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय नन्द आदि गोपप्रमुख भी उनके पीछे–पीछे चले।। २८।।

प्रगृह्य दधिदुग्धादिगव्यानि यदुनन्दनौ।
अक्रूरस्तु समादाय रामकृष्णौ महाबलौ॥ २९॥

वे दोनों महाबलशाली यदुनन्दन राम–कृष्ण दधि एवं दुग्ध आदि उपहार साथ लेकर अक्रूर के लाये हुए रथ में बैठाकर, नन्द आदि गोपप्रमुखों के साथ मथुरापुरी पहुँचे।। २९।।

कुवलय हाथी का वध

जगाम मधुपुर्यां वै नन्दगोपमुखैर्वृतः।
आयातौ रामकृष्णौ स श्रुत्वा कंसोऽतिमूढधीः॥ ३०॥
हस्तिनं स्थापयामास द्वारि भीमपराक्रमम्।
रामकृष्णवधार्थाय दुष्टं कुवलयं मुने!॥ ३१॥

उधर उस मूढमति कंस ने मथुरापुरी में उन दोनों वीरों का आगमन सुनकर नगर के मुख्य द्वार पर उन दोनों राम कृष्ण के वध हेतु एक महा–बलशाली अतएव मदोन्मत्त कुवलय नामक दुष्ट हाथी को खड़ा करवा दिया।। ३०–३१।।

तं करे समुपादाय कृष्णः सम्पात्य भूतले।
द्विधा चक्रे शिरस्तस्य करघातेन लीलया॥ ३२॥

उसे देखकर कृष्ण ने उसको सरलतापूर्वक हाथ से उठाकर भूमि पर पटक कर मुष्टिकाप्रहार से खेल खेल में उसका शिर फोड़ डाला।। ३२।।

ततः पुरं विविशतू रामकृष्णौ महाबलौ।
अक्रूरसहितौ वीरौ नन्दन्तौ सिंहवन्मुहुः॥ ३३॥

फिर, वे दोनों वीर राम एवं कृष्ण, प्रसन्न मन से अक्रूर के साथ सिंह की तरह निर्भयतापूर्वक मथुरापुरी में प्रविष्ट हुए।। ३३।।

अनुजग्मुर्भयत्रस्ता नन्दाद्या व्रजवासिनः।
उपायनानि गव्यानि गृहीत्वा मुनिसत्तम!॥ ३४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! नन्द आदि व्रजवासी गोप भी अपने अपने उपहारों के

साथ उनके पीछे-पीछे भयत्रस्त के समान चलने लगे।। ३४।।

ते तु गत्वा द्रुतं यत्र कंस आस्ते नराधिपः।
उपायनानि प्रददुस्तस्मै नत्वा दुरात्मने॥ ३५॥

वे शीघ्र ही वहाँ पहुँचे जहाँ वह दुष्ट राजा कंस बैठा था। वहाँ वे उसे प्रणाम कर शीघ्रता में भेंट चढ़ाने लगे।। ३५।।

मुष्टिकचाणूरवध

मल्लक्षेत्रे स्थितौ रामकृष्णौ भीमपराक्रमौ।
मल्लाः सम्बोधयामासुर्मुष्टिकाद्या महाबलाः॥ ३६॥

उधर मल्लक्षेत्र (अखाड़े) में विराजमान भयङ्कर पराक्रमी राम एवं कृष्ण को वहाँ पहले से बैठे मुष्टिक आदि महाबली मल्ल प्रतिद्वन्द्विताहेतु ललकारने लगे।। ३६।।

तत्र सम्पातयामास मुष्टिघातेन मुष्टिकम्।
रोहिणीतनयो रामो महाबलपराक्रमः॥ ३७॥

तब क्रुद्ध होकर बलशाली राम ने अपने एक ही मुष्टिप्रहार से मुष्टिक मल्ल को मार गिराया।। ३७।।

कृष्णोऽप्यपातयद्वीरं चाणूरं पृथिवीतले।
उत्क्षिप्य गगने भूयो निपात्य मुनिसत्तम॥ ३८॥
अन्यांश्च शतशो मल्लान् रामकृष्णौ क्षणार्धतः।
पातयामासतुः संख्ये दर्शयन्तौ पराक्रमम्॥ ३९॥

हे मुनिवर! साथ ही, कृष्ण ने भी वीर चाणूर को आकाश में उछाल कर भूमि पर गिराते हुए मार डाला। ऐसे अन्य सैकड़ों वीरों को भी क्षण भर में ही उन दोनों रामकृष्ण ने मल्ल युद्ध में अपना पराक्रम दिखाते हुए मार मारकर भूमि पर गिरा दिया।। ३८-३९।।

कंसवध

ततः श्रुत्वा निपतितान् मल्लान् भीमपराक्रमान्।
आरुरोह मल्लयुद्धं मञ्चं कंसो दिदृक्षया॥ ४०॥

तब अपने इतने भयङ्कर पराक्रमी मल्लों को मरा हुआ जानकर. कंस स्वयं महायुद्ध देखने के लिये मल्ल क्षेत्र में मञ्च पर आया।। ४०।।

ततस्तु वीक्ष्य दुष्टात्मा रामकृष्णौ महाबलौ।
दूतानाह भयत्रस्त "एतौ दूरय दूरय॥ ४१॥

उस दुष्टात्मा ने उन महाबलिष्ठ दोनों भाइयों— राम कृष्ण को देखकर उनसे भयत्रस्त होकर अपने रक्षकों को आज्ञा दी "इनको तत्काल मल्लक्षेत्र से बाहर निकाल दो।। ४१।।

व्रजस्थान् दण्डयिष्यामि गोपान् सर्वान् दुरात्मनः।
नन्दं तु घातयिष्यामि सभार्यं दुष्टचेतसम्"॥ ४२॥

फिर मैं उन दुष्ट व्रजवासी गोपों को उचित दण्ड दूँगा। तथा पत्नीसहित दुष्ट नन्द का तो वध ही कर दूँगा"।। ४२।।

इत्येवं भाषमाणं तं वीक्ष्य कृष्णः क्षणार्धतः।
दधार निजमूर्तिं तां ब्रह्माण्डक्षोभकारिणीम्॥ ४३॥

यों वह कंस कह ही रहा था कि श्रीकृष्ण ने तत्काल अपना ब्रह्माण्ड-क्षोभकारी मूल रूप धारण किया।। ४३।।

ततः सा कालिका देवी वामेनाकृष्य पाणिना।
केशैर्धृत्वा दुरात्मानं खड्गेन शिर आच्छिनत्॥ ४४॥

तब उन भगवती काली ने वाँयें हाथ से उस दुष्ट के केश पकड़कर दाहिने हाथ में पकड़ी हुई तलवार से उसका शिर काट डाला।। ४४।।

सा तु छित्त्वैव तद्द्रष्टुं भूयः सम्भूय पूर्ववत्।
ननर्त धरणीपृष्ठे रामेण मुनिसत्तम॥ ४५॥

हे मुनिसत्तम! उस दुष्ट का शिर काटते ही देवी पुनः अपने पूर्व (कृष्ण) रूप में आकर राम के साथ नाचने लगी।। ४५।।

नन्दाद्या गोपवृद्धाश्च हर्षनिर्भरमानसाः।
ननृतुर्वेणुवीणादीन् वादयन्तो रणाङ्गणे॥ ४६॥

नन्द आदि गोपवृद्ध भी उसी मल्लक्षेत्र में हर्ष से प्रफुल्लचित्त होते हुए वंशी एवं वीणा आदि वाद्यध्वनियों के साथ नाचने लगे।। ४६।।

बभूव पुष्पवृष्टिश्च नभसो देवनिर्मिता।
दिशः समभवन् सर्वा निर्मला विगतस्वनाः॥ ४७॥

आकाश से देवताओं द्वारा पुष्पवृष्टि की जाने लगी। तथा सभी दिशाएँ भी निर्मल एवं निःशब्द हो गयीं।। ४७।।

वसुदेव-देवकी की कारागार से मुक्ति

देवकीवसुदेवौ तु सम्बद्धौ निगडे स्थितौ।

गत्वा प्रणम्य कृष्णोऽसौ मोचयामास बन्धनात् ॥ ४८ ॥

कृष्ण के माता–पिता वसुदेव एवं देवकी उस समय तक कारागार में बद्ध थे। अतः ये कृष्ण तत्काल वहाँ पहुँचे और उन्हें प्रणाम कर बन्धनमुक्त किया।। ४८।।

तौ दृष्ट्वा समुपायान्तौ पुत्रौ चारुमुखाम्बुजौ।
हर्षाश्रुपूर्णनेत्रान्तौ निन्यतुश्चाङ्कमात्मनः ॥ ४९ ॥

माता–पिताओं ने सुन्दर मुख वाले पुत्रों को आया देखकर हर्षपूर्ण आँसू भरे नेत्रों से देखकर उन्हें अपनी छाती से लगा लिया।। ४९।।

राजा उग्रसेन का राज्याभिषेक

रुरुदुस्तन्महिष्यस्तु भर्तृशोकेन मोहिताः।
करेणाताड्य वक्षांसि शिरांसि च महामुने! ॥ ५० ॥

हे महामुने! कंस के मरने पर उसके शोक में उसकी रानियाँ शिर एवं छाती पीटती हुई रोने कलपने लगीं।। ५०।।

ताः सर्वास्तु समाश्वास्य कृष्णः कमललोचनः।
उग्रसेनं महाराजं तस्मिन्राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ५१ ॥

उनको सान्त्वना देते हुए कमलनेत्र श्रीकृष्ण ने महाराज उग्रसेन को उस राज्य पर अभिषिक्त किया।। ५१।।

अथ नन्दं परिष्वज्य वसुदेवः समब्रवीत्।
प्रीणयन्प्रियवाक्येन वाष्पाकुलितलोचनम् ॥ ५२ ॥

फिर आँखों में आँसू भरे हुए नन्द गोप का आलिङ्गन करते हुए वसुदेव ने मधुर वचनों से उनको यह कहा।। ५२।।

वसुदेव०— "सखे! तवालये त्वेतौ पुत्रौ मे संस्थितौ चिरम्।
पितेव त्वं च धर्मज्ञ कृतवान् परिपालनम् ॥ ५३ ॥

वसुदेव— "मित्र! मेरे ये दोनों पुत्र तुम्हारे घर में बहुत समय तक रहे। हे धर्मज्ञ! तुमने इतने समय तक इनका स्वपुत्रवत् पालन किया है।। ५३।।

यशोदाऽपि भवत्पत्नी मत्पुत्रौ सुतवत्सदा।
पालयामास धर्मज्ञा तद्युवां सुतयोर्मम ॥ ५४॥
पितरौ मम बन्धुश्च भवानपि यदापरः।
इमाविदानीं संस्थाप्य मद्वेश्मनि कुमारकौ ॥ ५५ ॥

व्रजं व्रज व्रजपते! सहितो व्रजवासिभिः।
नात्र त्वया शोचनीयं ममैव प्रियकारणात्।
वक्तव्यं च यशोदायै ममेदं वचनं सखे!"॥ ५६॥

आपकी धर्मज्ञा पत्नी यशोदा ने भी अपने पुत्रों की तरह ही इनका पालन किया है। हे दयालो! अतः आप दोनों भी इनके माता-पिता हैं और मेरे भाई हैं। अतः आप इन दोनों कुमारों को अब मेरे ही घर छोड़कर हे व्रजपते! व्रजवासियों के साथ अपने व्रज में लौट जायँ। इससे मेरा प्रिय होने जा रहा है, अतः आप इस विषय में कोई अन्य विचार न करें। हे सखे! मेरे इन प्रियवचनों से यशोदा को भी समझा देना"।। ५४-५६।।

श्रीमहादेव०— **इत्युक्तो वसुदेवेन नन्दः साश्रुविलोचनः।**
निःश्वसन्ददृशे रामकृष्णौ निश्चलितेक्षणः॥ ५७॥

ततश्चाश्रुपरीताक्षौ रामकृष्णौ महामते!।
नन्दं समूचतुर्वाक्यं वाष्पगद्गदया गिरा॥ ५८॥

श्रीमहोदव जी— आँखों में आँसू भरे नन्द व्रजपति को वसुदेव ने यों समझाया। यह सुनकर नन्द, लम्बी श्वास लेते हुए अपनी स्थिर आँखों से (एकटक) उन राम और कृष्ण को देखने लगे। हे महामते! तब वे दोनों, राम और कृष्ण भी, आँखों में आँसू भरकर नन्द जी को गद्‌गद वाणी में यों कहने लगे-।। ५७-५८।।

तत्र सन्तोष्य पितरौ बहूनन्यांश्च दुःखितान्।
त्वामप्यभ्येत्य पितरं द्रक्ष्यावो मातरं तथा॥ ५९॥

इति ताभ्यां निगदितं श्रुत्वा नन्दोऽतिदुःखितः।
रुदन् स्वपुरमभ्यायात् सहितो व्रजवासिभिः॥ ६०॥

तस्मिन् समागते सर्वा रुरुदुर्गोपयोषितः।
अदृष्ट्वा रामकृष्णौ तौ सुचारुमुखपङ्कजौ॥ ६१॥

"आप व्रज में पुनः लौटकर हमारे न आने से सभी दुःखी जनों को सान्त्वना दीजियेगा। हे पिता! हम फिर कभी (समय मिलने पर) आप माता-पिताओं के भी दर्शन करने आयँगें।" इस तरह उनके द्वारा कहे हुए वचनों को नन्द ने अतिदुःखित मन से सुना और रोते हुए व्रजवासियों के साथ वे व्रज में लौट गये। उनके अकेले व्रज में पहुँचने पर गोपाङ्गनाएँ उन सुन्दर मुख वाले राम और कृष्ण को न देखकर रोने लगीं।। ५९-६१।।

गोपियों को समझाने के लिये कृष्ण द्वारा उद्धव का प्रेषण

तासां शोकापनोदाय कृष्णस्तु मुनिसत्तम!।
गोकुलं प्रेषयामासोद्धवं भक्तिपरायणम्॥ ६२॥
स गत्वा सान्त्वयामास समस्तान्व्रजवासिनः।
कृष्णशोकसुदुःखार्तानुक्त्वा कृष्णाभिभाषितम्॥ ६३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! दुःखित मन वाली उन व्रजाङ्गनाओं की सान्त्वना देने के लिये कृष्ण ने भक्तिपरायण उद्धव को गोकुल में भेजा। उसने वहाँ जाकर कृष्ण के शोक से दुःखी समस्त व्रजवासियों को सान्त्वना दी तथा उनको कृष्ण का कहा हुआ सन्देश सुनाया।। ६२–६३।।

रामकृष्ण के यज्ञोपवीतादि संस्कार

ततस्तयोः समकरोद्विधिना द्विजसंस्कृतिम्।
वसुदेवः समानीय गर्गाचार्यं महामुनिम्॥ ६४॥
स एव सर्वशास्त्राणि धनुर्वेदादिकानि च॥ ६५॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे वसुदेवदेवकीदर्शनप्राप्तिर्नाम
चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

फिर वसुदेव ने (शास्त्रोक्त) विधि से अपने पुत्रों के द्विजसंस्कार (=यज्ञोपवीत आदि ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्यों से संस्कार) महामुनि गर्गाचार्य को बुलाकर पूर्ण किये। उन गर्गाचार्य ने उनको सर्वशास्त्रों एवं धनुर्वेद आदि की शिक्षा दी।। ६४–६५।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
वसुदेवदेवकीदर्शन नामक
चौवनवाँ अध्याय सम्पन्न॥

पचपनवाँ अध्याय

[पाण्डवों का द्यूत में पराजय]

श्रीमहादेव०— एवं भगवती देवी श्यामसुन्दररूपिणी।
छलेन विनिपात्यैतान् भूभारान् दुष्टचेतसः ॥ १ ॥
तथान्येषां च दुष्टानां प्रतीक्षन् वधकारणम्।
रम्ये मधुपुरेऽवात्सीद्रामेण मुनिसत्तम ॥ २ ॥

श्रीमहादेव— हे मुनिश्रेष्ठ! यों, श्यामसुन्दररूपिणी भगवती देवी ने इन भूभारभूत दुष्टों का छल से वधकर तथा अन्य दुष्टों के वध की प्रतीक्षा करती हुई उस रमणीय मथुरानगरी में राम के साथ निवास किया।। १–२।।

शम्भुश्च धरणीपृष्ठे स्त्रीरूपेणाष्टधाऽभवत्।
स्थितः पितृगृहे देवीं प्रतीक्षन्कृष्णारूपिणीम् ॥ ३ ॥

उधर शङ्कर भी आठ स्त्रीरूप धारण कर भूतल पर विचरण करते हुए पितृगृह में श्रीकृष्णरूपिणी देवी के भावी कार्यों की प्रतीक्षा करने लगे।। ३।।

अर्जुन आदि पाँच पाण्डव

तथा विष्णुश्च सम्भूय कुन्त्यां देवात् पुरन्दरात्।
भ्रातृभिः सहितोऽवात्सीन्नगरे हस्तिनापुरे ॥ ४ ॥
अर्जुनेति समाख्यातो महाबलपराक्रमः।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो धनुर्विद्याविशारदः ॥ ५ ॥

और भगवान् विष्णु ने भी देवराज इन्द्र द्वारा कुन्ती के गर्भ से सम्भूत होकर भाइयों सहित हस्तिनापुर में निवास किया। वे महाबलशाली 'अर्जुन' नाम से प्रसिद्ध हुए। वे सर्वशास्त्रों के मर्मज्ञ तो थे ही, साथ ही धनुर्विद्या में भी पूर्ण निपुण थे।। ४–५।।

तथा तद्भ्रातरश्चान्ये चत्वारो भीमविक्रमाः।
धर्मपुत्रादयो वीरा महाबलपराक्रमाः ॥ ६ ॥

इसी तरह उनके अन्य चार भाई धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) आदि वीर भी बहुत अधिक महाबलशाली तथा भयङ्कर पराक्रमी थे।। ६।।

ते धर्मनिरताः पञ्च पाण्डवाः सत्यशालिनः।
सम्प्राप्तयौवना राज्यमकार्षुर्मुनिसत्तम ॥ ७ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वे पाँचों ही पाण्डव धर्मानुसार आचरण करने वाले एवं सत्यशाली थे। धीरे–धीरे वे युवावस्था को प्राप्त हुए। तथा वे अपने राज्य–सञ्चालन की इच्छा करने लगे।। ७।।

धृतराष्ट्रपुत्रों से वैर

अभ्यद्विषस्तान् दुर्धर्षा धार्तराष्ट्रा महाबलाः।
धार्तराष्ट्रश्च दुर्बुद्धिः कर्णश्च शकुनिस्तथा॥ ८॥
दुर्योधनश्च सततं चिन्तयामास दुःसहः।
उपायं पाण्डवानां च निधने मुनिसत्तम!॥ ९॥

परन्तु उनसे धृतराष्ट्र के अजेय एवं महाबलशाली पुत्र वैर रखते थे। धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन, कर्ण एवं शकुनि–ये सभी दुर्बुद्धि थे। हे मुनिवर! इनमें दुर्योधन दिनरात पाण्डवों के विनाश की ही चिन्ता में लगा रहता था।। ८–९।।

विषदानादिकर्माणि कृत्वा तेषां वधेच्छया।
व्यर्थचेष्टोऽपि नो शान्तिमवाप क्रूरमानसः॥ १०॥

यद्यपि वह दुष्ट उन पाण्डवों को मारने के लिये विषदान आदि कर्मों से बहुत सी निष्फल चेष्टाएँ कर चुका था, तो भी उसके हृदय को शान्ति नहीं मिल पा रही थी।। १०।।

सत्परामर्शहेतु अक्रूर का गमन

तस्य तां बुद्धिमाज्ञाय क्षत्रियाणां क्षयङ्करीम्।
अक्रूरं प्रेषयामास हस्तिनायां स वृष्णिराट्॥ ११॥

उसकी इन चेष्टाओं से अन्त में क्षत्रियों का नाश सम्भव है– यह सोचकर यादवसम्राट् ने दुर्योधन को सत्परामर्श देने हेतु अक्रूर को भेजा।। ११।।

स गत्वा धार्तराष्ट्राणां सर्वं विज्ञाय चेष्टितम्।
वैचित्र्यवीर्यराजानं रहसीदं वचोऽब्रवीत्॥ १२॥

उस अक्रूर ने वहाँ जाकर, धृतराष्ट्रपुत्रों द्वारा की गयी सब कुचेष्टाएँ जान ली तो उस विचित्रवीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र को एकान्त में ये वचन कहे–।। १२।।

अक्रूर०— **"विचित्रवीर्यदायाद महाराज सुतांस्तव।**
निवार्य पाण्डवेयेषु स्नेहं प्रकटय प्रभो॥ १३॥

अक्रूर– "हे विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र महाराज! आप अपने पुत्रों

को पाण्डवों के प्रति द्वेषभाव से रोकिये, तथा हे प्रभो! आप स्वयं भी उन (पाण्डवपुत्रों) से स्नेह-व्यवहार कीजिये ।। १३ ।।

बाल्ये मृतः पिता तेषां त्वामृते नहि विद्यते।
यस्तेषु कुरुते स्नेहमनाथेषु महामते!॥ १४॥
तस्माद्विधाय समतां पाण्डवेषु सुतेषु च।
भुङ्क्ष्व राज्यं महाराज प्रीत्या परमयान्वितः"॥ १५॥

हे महामते! उनके वास्तविक पिता तो बचपन में ही मर गये, अब तो आप के अतिरिक्त कोई नहीं है जो उन अनाथों को स्नेह प्रदान करे। अतः हे महाराज! अपने इन दोनों ही वर्गों— पाण्डवों एवं अपने पुत्रों पर समान प्रेम भाव से स्नेह रखते हुए सुखपूर्वक अपने राज्य का उपभोग करें" ।। १४-१५ ।।

धृतराष्ट्र— **"विद्वेषः पाण्डवेयेषु यद्यप्यस्ति क्षयङ्करः।**
तथापि पुत्रवात्सल्यान्न त्यक्तुं रोचते मनः"॥ १६॥

धृतराष्ट्र— "मैं जानता हूँ कि पाण्डवों के साथ द्वेषभाव रखना अन्त में क्षत्रियों के नाश का कारण बनेगा, परन्तु पुत्रस्नेह के कारण इस द्वेषभाव को मैं छोड़ नहीं पा रहा हूँ" ।। १६ ।।

श्रीमहादेव०— **इति तन्मतमाज्ञाय सोऽक्रूरः समुपेक्ष्य च।**
श्रीकृष्णाय यथावृत्तं कथयामास नारद॥ १७॥

श्रीमहादेव जी— हे नारद! इस तरह, अक्रूर ने धृतराष्ट्र का मन्तव्य समझ कर, उसकी उपेक्षा कर, पुनः लौटकर श्री कृष्ण को धृतराष्ट्र से हुआ संवाद सुना दिया ।। १७ ।।

तच्छ्रुत्वा चिन्तयामास कृष्णः कमललोचनः।
राजन्यानां कुरुक्षेत्रे निधनं सम्भविष्यति॥ १८॥
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः शकुनेः सौबलस्य च।
अवश्यमेव चैतस्माद्विद्वेषादिति नारद॥ १९॥

उसे सुनकर कमलनयन श्रीकृष्ण ने समझ लिया कि कुरुक्षेत्र में क्षत्रियों का नाश अवश्य ही होगा। इसमें प्रबल कारण होगा दुर्बुद्धि धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन एवं सुबलपुत्र शकुनि का पाण्डवों के प्रति प्रबल विद्वेष ।। १८-१९ ।।

श्रीकृष्ण का द्वारकापुरी में वास

अथ कृष्णः पुरीं दिव्यां ब्रह्मणा परिकल्पिताम्।
द्वारकां यदुभिः सार्धं संवासाय विवेश ह॥ २०॥

हे नारद! तब श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा द्वारा कल्पित दिव्य द्वारकापुरी में यादवों के साथ रहने के लिये प्रवेश किया।। २०।।

रुक्मिणी–स्वयंवर

ततः शिवांशजाताया रुक्मिणयास्तु स्वयंवरे।
विदर्भराजेनाहूताः सर्व एव महीभुजः।
आजग्मुर्नगरं तस्य नानादेशनिवासिनः॥ २१॥

तब शिव के अंश से सम्भूत रुक्मिणी के स्वयम्वर में विदर्भनरेश भीष्मक ने सभी राजाओं को आमन्त्रित किया। तब नानादेशवासी क्षत्रिय उसके नगर में आये।। २१।।

रुक्मिर्नाम सुतस्तस्य भीष्मकस्य च दुर्मतिः।
चैद्याय शिशुपालाय भगिनीं दातुमुत्सुकः॥ २२॥
कृष्णं विद्विष्य पितरावनादृत्य न चाह्वयत्॥ २३॥

विदर्भनरेश भीष्मक का पुत्र रुक्मि दुर्बुद्धि था। वह अपनी बहन रुक्मिणी का विवाह चेदिदेश के राजा शिशुपाल से करना चाहता था। अतः उसने श्रीकृष्ण से द्वेष करते हुए तथा अपने पिता की भी अवमानना करते हुए उसको इस स्वयम्बर का आमन्त्रण नहीं भेजा।। २२–२३।।

स चेदिराजो बलवान् रुक्मेर्विज्ञाय तन्मतम्।
महता रथवंशेन सुचारुवररूपधृक्।
आजगाम मुनिश्रेष्ठ विदर्भाधिपतेः पुरम्॥ २४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वह चेदिराज बलवान् शिशुपाल रुक्मि की अनुमति जानकर रुक्मिणी के साथ विवाह की उत्सुकता में सुन्दर वेश धारण कर एक दर्शनीय रथ में बैठकर विदर्भनरेश के नगर में आया।। २४।।

ततो नारदवक्त्रेण रुक्मिण्युद्वाहमङ्गलम्।
विदर्भराजनगरे नानोत्सवसमाकुले॥ २५॥
भेरीमृदङ्गपणवानकदुन्दुभिनिःस्वनैः।
श्रुत्वा स्यन्दनमारुह्य कृष्णोऽपि प्रस्थितोऽभवत्॥ २६॥
ततस्तत्र समागत्य नभसि स्यन्दनोपरि।
जहास कृष्णस्तान्दृष्ट्वा वरवेशधरान्नृपान्॥ २७॥

इसी समय, नारद मुनि के श्रीमुख से रुक्मिणी के विवाह का समाचार सुनकर श्रीकृष्ण भी विदर्भराज के नगर में जहाँ कि विविध उत्सवों के समायोजन में अनके भेरी, मृदङ्ग, प्रणव, आनकदुन्दुभि आदि वाद्य बज रहे थे।

रथ पर चढ़कर पहुँचे। फिर वहाँ पहुँचकर आकाश में ही रथ पर बैठे बैठे। उन्होंने वहाँ उपस्थित वरवेषधारी राजाओं का परिहास किया।। २५–२७।।

ततः कमलपत्राक्षीं क्वणच्चलितनूपुराम्।
दुर्गामर्चयितुं नीयमानां नारीभिरादरात्॥ २८॥
ध्यायन्तीं कृष्णमेकान्ते हंसीगतिविनिन्दिताम्।
काङ्क्षन्तीं वासुदेवस्यागमनं रुक्मिणीं तदा॥ २९॥
जहार कृष्णो हाहेति पौराः सर्वे विचुक्रुशुः॥ ३०॥
अभ्यधावंस्तु संक्रुद्धा राजानो व्यथितान्तराः॥ ३१॥

फिर कमलनयना, पैरों में घुँघरू बाँधे रुक्मिणी को, जिन्हें उनकी सखियाँ आदर सहित दुर्गा के पूजन कराने हेतु मन्दिर ले जा रही थीं, जो कृष्ण का एकान्त ध्यान कर रही थीं और जिसके पैरों की गति गम्भीरता में हँसी की गति का भी उपहास कर रही थी तथा जो मन ही मन अपने विवाह में श्रीकृष्ण का आगमन चाह रही थी, उस रुक्मिणी को अपहरण कर लिया। यह देखकर उपस्थित नागरिक हाहाकार करने लगे। वह कोलाहल सुनकर राजा लोग मन में व्यथित होकर श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिये दौड़े।। २८–३१।।

कृष्णः समुद्यतवरायुधधारिणस्तान्
विच्छिन्नसर्ववरकार्मुकवाहनांश्च ।
लज्जाभरान्नतमुखाञ्शिशुपालमुख्यान्
कृत्वा जगाम भवनं त्रिदिवेन तुल्यम्॥ ३२॥

परन्तु श्रीकृष्ण उन विविध आयुधधारी शिशुपाल आदि राजाओं को अपने शस्त्रास्त्रों से उनके धनुष् आदि को काटकर उन्हें पराजित एवं लज्जित कर विजयी इन्द्र की तरह अपने नगर (द्वारका) को लौट गये।। ३२।।

जाम्बवतीपरिणय

तथांशसम्भवाः शम्भोः सप्तकन्याश्च नारद!
जाम्बवत्यादिकाः कृष्णो भार्यात्वेन समाग्रहीत्॥ ३३॥

हे नारद! भगवान् शङ्कर के अंश से जो अन्य सात कन्या जाम्बवती आदि उत्पन्न हुई थीं उनको भी श्रीकृष्ण ने अपनी भार्या के रूप में स्वीकार कर लिया।। ३३।।

उवास कृष्णस्तस्यां स द्वारवत्यां यदूद्वहः।
अन्याश्च विविधाः पाणिगृहीत्यश्च महामुने!॥ ३४॥

यों, वे यदुपुत्र श्रीकृष्ण उस द्वारका में आनन्द के साथ वास करने लगे। हे महामुने! उन्होंने अन्य स्त्रियों से भी विवाह किया।। ३४।।

कृत्वा बहुतरं युद्धं जित्वा वीरांश्च संयुगे।
आगत्य द्वारकां रेमे ताभिः सह यथेप्सितम्॥ ३५॥

इस तरह, वे अनेक राजाओं से युद्ध कर उन्हें पराजित कर उनकी कन्याओं के साथ विवाह कर द्वारकापुरी में आकर उनके साथ सुखपूर्वक रहने लगे।। ३५।।

राजेन्द्रत्वेन संसिक्तः पुत्रपौत्रादिसंयुतः।
उवास वृष्णिभिस्तस्यां द्वारवत्यां यदूद्वहः॥ ३६॥

अन्त में पुत्र पौत्रादि के सम्पन्न उन श्रीकृष्ण को वृष्णिवंश वालों ने अपना राजा अभिषिक्त किया तथा वे द्वारका में रहने लगे।। ३६।।

अन्याश्च विविधा भार्याः परिगृह्य महामुने!
तासु चोत्पादयामास पुत्रान् कृष्णः सहस्रशः॥ ३७॥

हे महामुने! उन श्रीकृष्ण ने अन्य भार्याएँ भी स्वीकार कर उनसे हजारों पुत्र पैदा किये।। ३७।।

तथा हत्वा महाराजं भौमं समरदुर्जयम्।
सहस्रशः समानीय स्त्रियश्चारुविलोचनाः॥ ३८॥

तथा वे समर में अन्य से दुर्जय महाराज भौमासुर को भी युद्ध में पराजित कर उसकी हजारों कमलनयना नारियों को ले आये।। ३८।।

पाण्डवों द्वारा साम्राज्यस्थापन

एतस्मिन्नन्तरे तेऽपि पाण्डवा मुनिसत्तम!
कृत्वोद्वाहादिकं शास्त्रविद्यामभ्यस्य दुर्जयान्॥ ३९॥
युयुत्सवः समाहूतवन्तः कृष्णं महामतिम्।
स तत्र गत्वा राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्॥ ४०॥
राजसूयमहायज्ञं कर्तुमादिष्टवान् मुने!
क्षयाय राजवंशानां कुरूणां द्वेषवृद्धये॥ ४१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इसी बीच, उन पाण्डवों ने भी अपना विवाहादि कर तथा दुर्जय शास्त्र विद्या का अभ्यास कर युद्ध करने की इच्छा से, इसमें परामर्श करने के लिये महामति श्रीकृष्ण को बुलाया। उन्होंने वहाँ जाकर राजा धर्मपुत्र युधिष्ठिर को हे मुने! राजसूय यज्ञ करने की सम्मति दी कि

जिससे कुरुपुत्रों के पक्षपाती राजाओं का क्षय तथा उनमें द्वेषवृद्धि हो सके।। ४०–४१।।

जरासन्धवध

स्वयमध्यक्षतामेत्य यज्ञमावर्तयत्तदा।
दिक्षु प्रस्थापयामास भीमादीन् सह सैनिकैः॥ ४२॥
विजित्य नृपतीन् सर्वानानीतुं मुनिसत्तम।
तेऽपि जित्वा नृपान् सर्वान्नानादेशनिवासिनः॥ ४३॥
आनीय नगरं प्रापुर्मागधस्य महौजसः।
जित्वा तान्नृपान्सर्वान्नीतवान्भीमविक्रमः॥ ४४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उन्होंने अपने निर्देशन में वह यज्ञ प्रारम्भ कराया। तथा भीम आदि भाइयों को सैनिकों के साथ देश देशान्तर के राजाओं को जीतकर उन्हें यज्ञ में सम्मिलित कराने के लिये भेजा। उन भीम आदि भाइयों ने सभी विविध देशनिवासी राजाओं को जीतकर यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये साथ लेकर वे मगध देश के महाप्रतापी राजा जरासंध के नगर में पहुँचे। उस भयङ्कर प्रातापी राजा ने उन सब राजाओं का बन्दी बना लिया।। ४२–४४।।

ततस्तं पातयामास शूलेन यदुनन्दनः।
भीमसेनं पुरस्कृत्य संग्रामे मुनिसत्तम!॥ ४५॥

हे मुनिवर! तब युद्ध में भीमसेन को आगे कर यदुनन्दन श्रीकृष्ण ने उस राजा जरासन्ध को शूल से मार गिराया।। ४५।।

युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ

ततः सर्वान् समानीय राजन्यान् धर्मनन्दनः।
अकरोद्राजसूयाख्यं यज्ञं सर्वक्रतूत्तमम्॥ ४६॥

तब उन सब राजाओं को साथ लेकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने सभी यज्ञों में श्रेष्ठ राजसूययज्ञ प्रारम्भ किया।। ४६।।

तत्र धर्मसुतभ्राता सहदेवो महामतिः।
सदस्यार्चनकार्येषु नियुक्तो धर्मसुनुना॥ ४७॥

उस यज्ञ के अवसर पर, अपने छोटे भाई सहदेव को धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने सब राजाओं की पूजा में नियुक्त किया।। ४७।।

मुनीन्दै समनुज्ञातः सर्वादौ यदुनन्दनम्।
अभ्यर्चयन्मुनिश्रेष्ठ पश्यतां सर्वभूभुजाम्॥ ४८॥

उपस्थित मुनिवरों की सम्मति से सर्वप्रथम यदुनन्दन श्रीकृष्ण की पूजा का निश्चय हुआ। अतः हे मुनिश्रेष्ठ सब राजाओं के देखते देखते उन यदुनन्दन की पूजा आरम्भ हुई।। ४८।।

शिशुपालवध

तद्दृष्ट्वा शिशुपालस्तु धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
कृष्णं यज्ञं च दुष्टात्मा व्यनिन्दत रुषा ज्वलन्॥ ४९॥

यह पूजा देखकर वहाँ उपस्थित (चेदिदेश का राजा) दुष्ट शिशुपाल द्वेषवश क्रोध से जलते हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिर, कृष्ण तथा उस यज्ञ की निन्दा करने लगा।। ४९।।

ततस्तं पृथिवीभारं तस्मिन् राजन्यसंसदि।
पातयामास कृष्णस्तु छित्त्वा तस्य शिरो मुने॥ ५०॥

हे मुने! भगवान् कृष्ण ने राजाओं की भरी सभा में ही उस पृथ्वी के भारस्वरूप शिशुपाल का शिर काट कर गिरा दिया।। ५०।।

पाण्डवों का द्यूत में पराभव

तद्यज्ञविभवं दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रोऽतिदुर्मतिः।
अतपत् क्रूरचेताश्च कर्णश्चापि सुदुर्मतिः॥ ५१॥

पाण्डवों का वह यज्ञवैभव देखकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्मति दुर्योधन को बहुत ईर्ष्या हुई और साथ ही कुबुद्धि कर्ण भी ईर्ष्यावश जल उठा।। ५१।।

ततः स मन्त्रयित्वा तु मातुलेन दुरात्मना।
द्यूतं चक्रे प्रतिज्ञाय पार्थेनामिततेजसा॥ ५२॥

उन दोनों ने अपने मामा (शकुनि) से मन्त्रणा कर पाण्डवों को द्यूत का निमन्त्रण दिया। और धर्मराज के साथ द्यूत खेलना आरम्भ किया।। ५२।।

तस्मिन् द्यूते छलाद्राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
जितो राज्ञाऽतिदुष्टेन धार्तराष्ट्रेन नारद॥ ५३॥

हे नारद! उस द्यूत में, दुर्योधन ने राजा युधिष्ठिर से उसका समस्त राज्य छल से जीतकर छीन लिया।। ५३।।

प्रतिज्ञावशतो राजा राज्यं सर्वं क्रमेण तु।
परितत्याज दुष्टात्मा तथाऽपि धृतराष्ट्रजः॥ ५४॥

प्रतिज्ञावश युधिष्ठिर को समग्र राज्य त्यागना पड़ा। इतने पर भी वह दुष्ट दुर्योधन सन्तुष्ट नहीं हुआ।। ५४।।

भूयो द्यूते महाराजं धर्मपुत्रं समाह्वयत्।
स तु धर्मपरो राजा धर्मोल्लङ्घनजाद्भयात्॥ ५५॥

उसने पुनः युधिष्ठिर को द्यूत के लिये ललकारा। उस धर्मभीरु युधिष्ठिर, धर्मोल्लङ्घन न हो— इस भय से।। ५५।।

पुनर्द्यूते प्रवृत्तोऽभूद्धार्तराष्ट्रेण पापिना।
प्रतिज्ञा चाकरोद् घोरां तस्मिन् द्यूते पराजये॥ ५६॥

द्वादशाब्दं वने वासमज्ञातवसतिं तथा।
एकाब्दं तत्र च द्यूते धर्मराजः पराजितः॥ ५७॥

पुनः पापी दुर्योधन के साथ जूआ खेलने में प्रवृत्त हुए। इस बार उस पापी दुर्योधन ने यह शर्त रखी कि जो पराजित होगा उसे बारह वर्ष तक वनवास तथा एक वर्ष अज्ञातवास में रहना पड़ेगा। उस द्यूत में भी धर्मराज युधिष्ठिर हार गया।। ५६–५७।।

ततो द्यूते भगवतीं द्रौपदीं परिजित्य च।
दुर्योधनः सभामध्ये तस्याश्चक्रेऽवमाननाम्॥ ५८॥

फिर उसी द्यूत में, दुर्योधन ने, भगवती द्रौपदी को भी जीत कर, भरी सभा में उस (द्रौपदी) का अपमान किया।। ५८।।

तस्य तद् दारुणं कर्म दृष्ट्वा भीष्मादयो मुने।
मेनिरे क्षत्रियाणां तं कण्टकं क्षयकारकम्॥ ५९॥

उन दुष्ट दुर्योधनादि का वह निर्दय कर्म देखकर, भीष्मादि कौरववृद्धों को बहुत कष्ट हुआ और उन्होंने मान लिया कि क्षत्रियों के लिये यह दुर्योधन विनाशकारक कण्टक बन गया है।। ५९।।

निवार्य द्रौपदीं देवीं पाण्डवेभ्यः समर्प्य च।
धार्तराष्ट्रं दुरात्मानं जगर्हुस्ते यतव्रताः॥ ६०॥

अस्तु! उन्होंने कह–सुनकर द्रौपदी देवी को पाण्डवों के लिये पुनः दिलवा दिया। और उन संयमी पुरुषों ने दुर्योधन की निन्दा की।। ६०।।

पाण्डवों का वनवास

ततस्तु पाण्डवाः सर्वे राज्यभ्रष्टा महामुने!
सामात्यैः स्वजनैरन्यैः समस्तैः परिवारितः॥ ६१॥
प्रजग्मुर्वनवासाय प्रतिज्ञां निस्तितीर्षवः।
कृष्णास्तु पृथिवीभारनिवृत्त्यै कारणं महत्॥ ६२॥

एतदेवेति निश्चित्य द्वारवत्यामुपागमत्॥ ६३॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे
पाण्डवानां द्यूते पराजयप्राप्तिर्वनवासगमनं नाम
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५५॥

हे महामुने! वे राज्यभ्रष्ट पाँचों पाण्डव अपने अमात्यों तथा पारिवारिक जनों से घिरे हुए अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति हेतु वनवास के लिये चल दिये। उधर भगवान् कृष्ण ने भी समझ लिया कि अब मेरे द्वारा पृथ्वी भार की निवृत्ति में यही सबसे बड़ा कारण होगा ऐसा निश्चय कर भगवान् कृष्ण पुनः अपनी द्वारिकापुरी लौट गये॥ ६१-६३॥

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
पाण्डवों का द्यूत पराजय एवं वनवासगमन
वर्णनात्मक पचपनवाँ अध्याय समाप्त॥

छप्पनवाँ अध्याय

[कीचकवध-वर्णन]

पाण्डवों द्वारा कामरूप में भगवती–पूजा

श्रीमहादेव०— भ्रमन्तस्ते महात्मानः पाण्डवा मुनिसत्तम।
व्यतीत्य सुचिरं कालं कामाख्यां द्रष्टुमाययुः॥
योनिपीठे भगवतीं प्रत्यक्षफलदायिनीम्॥ १॥
यत्राकार्षीत्तपः पूर्वं शम्भुर्देवाधिदैवतैः॥ २॥

श्रीमहादेव जी— हे मुनिसत्तम! वे पाण्डव, वनवासकाल में कभी घूमते हुए बहुत सा समय बिताकर प्रत्यक्षफलदात्री कामाख्या देवी के दर्शन हेतु योनिपीठ में पहुँचे। जहाँ पहले कभी भगवान् शङ्कर ने भी हजारों वर्ष तक कठोर साधना की थी।। १–२।।

तत्र ते तु भगवतीं सम्पूज्याथ विधानतः।
राज्यं सम्प्रार्थयामासुः पाण्डवा धर्मतत्पराः॥ ३॥

वहाँ धर्मात्मा पाण्डवों ने विधिपूर्वक भगवती की पूजा कर उनसे अपने राज्य की प्रार्थना की।। ३।।

शत्रूणां निधनं चापि संग्रामेऽतिसुदारुणम्।
सामात्यानां सुदुष्टानां कुरूणां पापचेतसाम्॥ ४॥

साथ ही युद्ध होने पर अपने शत्रुभूतपापी कौरवों के उनके अमात्य एवं परिवारजनों सहित नाश की भी याच्ञा की।। ४।।

तथा प्रार्थयतां तेषां पाण्डवानां महात्मनाम्।
प्रत्यक्षं सा भगवती समभ्येत्येदमब्रवीत्॥ ५॥

इस तरह याञ्चा करते हुए उन महात्मा पाण्डवों के सम्मुख वह भगवती प्रत्यक्षतः आकर ये वचन बोली–।। ५।।

देवी०— "धर्मपुत्र! महाभाग! कुरूणां कीर्तिवर्धन!
प्रतिज्ञां त्वं समुत्तीर्य हत्वा सर्वदुरात्मनः॥ ६॥
धार्तराष्ट्रान् सुदुर्धषान् राज्यं प्राप्स्यसि निश्चितम्।
तवैते भ्रातरो वीराश्चत्वारो भुवि दुर्जयाः॥ ७॥

देवी— "हे धर्मपुत्र! महाभाग! हे कौरवों के कीर्त्तिवर्धन! आप अपनी वनवास की प्रतिज्ञा पूर्णकर उस दुरात्मा दुर्योधन एवं उनके भाइयों को मारकर निश्चित ही पुनः अपना राज्य प्राप्त करोगे। क्योंकि तुम्हारे ये चारों वीर भाई पृथ्वी पर किसी से भी पराजित नहीं हो सकते।। ६–७।।

पातयिष्यन्ति संग्रामे ससैन्यान् धृतराष्ट्रजान्।
अहं तव सहायार्थं पुँरूपेणाभवं स्वयम्॥ ८॥

वसुदेवगृहे देव्यां देवक्यां निजलीलया।
छलेन पृथिवीभारनिवृत्त्यै प्रार्थिता सुरैः॥ ९॥

संग्राम में ये सभी सेनासहित धृतराष्ट्रपुत्रों को मार गिरायँगें। मैं स्वयं भी वहाँ तुम्हारी सहायता के लिये पुरुष रूप से अवतार ले चुकी हूँ, (क्योंकि) वसुदेव के घर में देवकी के गर्भ से अपनी लीला से छलपूर्वक पृथ्वी का भार हरण हेतु, देवताओं की प्रार्थना पर अवतार धारण कर चुकी हूँ।। ९।।

विष्णुश्चार्जुन इत्याख्यस्तव भ्राता महाबलः।
बभूव पृथिवीभारहरणाय ममाज्ञया॥ १०॥

और मेरी आज्ञा से विष्णु ही अतिबलशाली भाई अर्जुन के रूप में पृथ्वीभारहरण हेतु अवतरित हुआ है।। १०।।

तमहं कृष्णरूपा ते कृत्वा साहाय्यमुत्तमम्।
अर्जुनं पुरतः कृत्वा पातयिष्ये महारथान्॥ ११॥
भीष्मद्रोणादिकान् वीरानन्यांश्च क्षत्रियर्षभान्।
अनेकदेशदेशीयान् समेतान् कुरुजाङ्गलान्॥ १२॥

तो मैं कृष्णरूप में तुम्हारी उत्तम सहायता करने के लिये उपस्थित रहूँगी। अजुर्न को आगे कर इसके द्वारा सभी महारथियों योद्धाओं को।। ११।।

भीष्म, द्रोण आदि वीरों को तथा ऐसे ही अन्य देशवासी अनेक क्षत्रियप्रमुखों को, जिनमें कुरुजाङ्गलदेशवासी भी होंगे, युद्ध में मार गिराऊँगी।। १२।।

वायुपुत्रस्तु भीमोऽसौ तव भ्राता महाबलः।
धृतराष्ट्रसुतान् सर्वान् संग्रामे निहनिष्यति॥ १३॥

तुम्हारा यह छोटा भाई वायुपुत्र भीम भी अत्यधिक बलशाली है। यह युद्ध में सभी धृतराष्ट्रपुत्रों को मार गिरायगा।। १३।।

अन्याँस्तु पृथिवीभारान् प्राज्ञः शतसहस्रशः।
अपरे निहनिष्यन्ति त्वदीयाः क्षत्रियर्षभाः॥ १४॥

यह बुद्धिमान् अन्य पृथ्वी के भारस्वरूप हजारों वीरों को मार गिरायगा। अवशिष्ट को आपके सहयोगी क्षत्रियवीर मार देंगे।। १४।।

एवं हि भारते युद्धे क्षत्रियेषु हतेषु वै।
भूयः प्राप्स्यसि राज्यं च मत्प्रसादादसंशयः"॥ १५॥

इस तरह महाभारत युद्ध में सभी विरोधी क्षत्रियों के मारे जाने पर तुम मेरी कृपा से निश्चित ही अपना खोया राज्य पुनः प्राप्त कर लोगे"।। १५।।

श्रीमहादेव०— **इति देव्या वरं प्राप्य धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।**
प्रसन्नात्मा महादेवीं तुष्टाव परमेश्वरीम्॥ १६॥

श्रीमहादेव जी— इस प्रकार, वे धर्मराज युधिष्ठिर देवी से वर प्राप्त कर प्रसन्न होकर भगवती महादेवी की पुनः स्तुति करने लगे।। १६।।

कामेश्वरी स्तुतिः

युधिष्ठिर०— **"नमस्ते परमेशानि ब्रह्मरूपे सनातनि!**
सुरासुरजगद्वन्द्ये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ १७॥

हे ब्रह्मस्वरूपे! परमेश्वरि! हे सनातनि! आप देवताओं एवं असुरों द्वारा वंदिता हो। हे कामेश्वरि! आप को प्रणाम है।। १७।।

न ते प्रभावं जानन्ति ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः।
प्रसीद जगतामाद्ये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ १८॥

ब्रह्मा आदि देवता भी आपका वास्तविक प्रभाव नहीं जानते। अतः हे जगत् की आदिभूत! हे परमेश्वरि! आप मुझ पर प्रसन्न होइये। आपको प्रणाम है।। १८।।

अनादिपरमा विद्या देहिनां देहधारिणी।
त्वमेवासि जगद्वन्द्ये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ १९॥

हे जगत् की वन्दनीय! आप ही अनादि एवं उत्कृष्ट विद्या हैं, प्राणियों के देह को धारण करने वाली आप ही हैं। हे कामेश्वरि! आपको प्रणाम है।। १९।।

त्वं बीजं सर्वभूतानां त्वं बुद्धिश्चेतना धृतिः।
त्वं प्रबोधश्च निद्रा च कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २०॥

आप सब प्राणियों की मूल हैं, आप ही बुद्धि चेतना एवं धैर्य हैं। आप ही उनके लिये प्रबोध एवं निद्रा हैं। हे कामेश्वरि! आप को प्रणाम है।। २०।।

त्वामाराध्य महेशोऽपि कृतकृत्यं हि मन्यते।
आत्मानं परमात्माऽपि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २१॥

आप की आराधना कर परमात्मा भगवान् शङ्कर भी अपने आपको कृतकृत्य मानते हैं। अतः हे कामेश्वरि! आप को प्रणाम है।। २१।।

दुर्वृत्तवृत्तसंहर्त्रि पापपुण्यफलप्रदे।
लोकानां तापसंहर्त्रि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २२॥

आप दुष्ट चरित्रवालों का संहार करने वाली हैं, पाप एवं पुण्य का फल प्रदान करने वाली हैं। लोकों के कष्ट का निवारण करने वाली हैं, हे कामेश्वरि! आप को प्रणाम है।। २२।।

त्वमेका सर्वलोकानां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
करालवदने कालि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २३॥

आप ही सब लोकों की सृष्टि स्थिति एवं प्रलय की कर्त्री हैं, हे विकराल वदन वाली! हे कालि! हे कामेश्वरि! आपको प्रणाम है।। २३।।

प्रपन्नार्तिहरे मातः सुप्रसन्नमुखाम्बुजे!
प्रसीद परमे पूर्णे कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २४॥

हे शरणागतवत्सले! हे माता! हे प्रसन्नमुखकमल वाली! आप उत्कृष्टतम हैं, आप पूर्ण हैं, आप प्रसन्न होइये, हे कामेश्वरि! आपको प्रणाम है।। २४।।

त्वामाश्रयन्ति ये भक्त्या यान्ति चाश्रयतां तु ते।
जगतां त्रिजगद्धात्रि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २५॥

जो भक्त भक्तिपूर्वक आप का आश्रय लेते हैं, आप की शरण पकड़ते हैं, हे जगत् की धारण करने वाली! हे कामेश्वरि! आप को प्रणाम है''।। २५।।

शुद्धज्ञानमये पूर्णे प्रकृतिः सृष्टिभाविनी।
त्वमेव मातर्विश्वेशि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते''॥ २६॥

हे शुद्ध ज्ञान वाली! हे पूर्णा प्रकृति! आप सृष्टि की रचयित्री हैं, हे माता! आप ही विश्व की स्वामिनी हैं, हे कामेश्वरि! आप को प्रणाम है''।। २६।।

श्रीमहादेव०— **एवं स्तुता भगवती धर्मपुत्रेण धर्मिणा।**
प्रत्यक्षं प्राह राजंस्त्वं वरं वृणु यथेप्सितम्॥ २७॥

श्रीमहादेव जी— यों धर्माचारी धर्मराज द्वारा स्तुत हुई वह देवी उसके सम्मुख प्रकट हुई, तथा यों बोली— ''हे राजन्! आप अपना मनोवाञ्छित वर माँगिये''।। २८।।

राजा०— व्यतीतस्त्वत्प्रसादान्मे वने द्वादशवार्षिकः।
वासः परमदुःखौघः प्रतिज्ञातं यथा पुरा॥ २८॥

युधिष्ठिर— "हे देवि! आप की कृपा से मेरा बारह वर्ष का वनवास तो बीत गया, जो कि अतीव कष्टप्रद था, तथा जिसके लिये मैं प्रतिज्ञात था।। २८।।

वर्षे त्रयोदशे त्वस्मिन् परैरविदितैर्वयम्।
स्थास्याम इति निष्कर्षः पुरा द्यूते मया कृतः॥ २९॥

परन्तु अब यह एक वर्ष तो इस तरह बिताना है कि हमें कोई पहचान न सके, यही मेरी द्यूत के समय की गयी प्रतिज्ञा है।। २९।।

सोऽयं कृच्छ्रोऽनुसम्प्राप्तो दुष्करः सङ्कटोदयः।
यथैनं सन्तरिष्यामस्तथा सम्पादयिष्यसि"॥ ३०॥

वह कठिन समय अब सामने है, वह दुष्कर एवं विपत्तियों से भरा हुआ है। आप ऐसी कृपा कीजिये कि हम इसे निर्विघ्न समाप्त कर पायें"।। ३०।।

देवी०— "नगरे मत्स्यराजस्य पाञ्चाल्या भ्रातृभिः सह।
स्थित्वा प्रतिज्ञां निस्तीर्य भूयो राज्यमवाप्स्यसि"॥ ३१॥

देवी— "राजन्! तुम अपने (चारों) भाइयों सहित पाञ्चाली (द्रौपदी) को साथ लेकर मत्स्यराज विराट के नगर में जाकर अज्ञातवास करो। वहाँ रहकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्णकर, पुनः राज्य प्राप्त करोगे"।। ३१।।

श्रीमहादेव०— एवमुक्त्वा भगवती क्षणेनान्तरधीयत।
पश्यतो धर्मपुत्रस्य दिवि सौदामिनी यथा॥ ३२॥

श्रीमहादेव जी— ऐसा कहकर वह महादेवी क्षणमात्र में ही धर्मराज के देखते देखते अन्तर्हित हो गयीं मानों बादलों में बिजली अन्तर्भूत हो गयी हों।। ३२।।

पाण्डवों का अज्ञातवास

ततः सर्वान् समाहूय भ्रातॄन् धर्मभृतां वरः।
मन्त्रयामास वासाय मुने सर्वार्थवित्तमः॥ ३३॥

हे मुने! तब उन धर्मचारियों में श्रेष्ठ, सब विषयों के मर्मज्ञ ने अपने सब भाइयों को बुलाकर अज्ञातवास के विषय में मन्त्रणा आरम्भ की।। ३३।।

ततस्ते निश्चयं कृत्वा विसृज्यान्यान्महामते!
विराटराजनगरे प्रययुर्गुप्तरूपिणः॥ ३४॥

हे महामते! तब उन सबने एकमत से निश्चय किया और अन्य सब स्थानों को छोड़कर, गुप्त रूप धारण कर विराट् राज के नगर को चल दिये।। ३४।।

नगरान्तिकमभ्येत्य विसृज्य ज्यां धनूंषि च।
शस्त्रास्त्राणि शमीवृक्षे प्रान्तरे ते न्यवर्तयन्॥ ३५॥

नगर केपास पहुँचकर धनुषों पर डोरी ढीली कर, तथा अन्य सभी शस्त्रास्त्र एक पुराने शमीवृक्ष के कोटर में छिपाकर वे आगे बढ़े।। ३५।।

ततः स राजा प्रणिपत्य देवीमक्षान् समादाय सुवर्णचित्रान्।
क्षिप्रं ययौ मत्स्यपतेः पुरस्तात् द्विजातिरूपेण महानुभावः॥ ३६॥

तब उनमें महानुभाव राजा (युधिष्ठिर) देवी को प्रणाम कर, हाथ में सुवर्णखचित जूआ खेलने के चित्र विचित्र पासे लेकर शीघ्र ही मत्स्यराज के पास ब्राह्मण के वेष में पहुँचे।। ३६।।

तं वीक्ष्य राजेन्द्रमहानुभावं पप्रच्छ मत्स्याधिपतिः सभागतम्।
"कस्त्वं किमत्रागतवान् कुतो वा मन्ये ध्रुवं सर्वमहीश्वरोऽसि॥ ३७॥

सभा में आये उस ब्राह्मण वेषधारी महानुभाव राजा से मत्स्यराट् ने पूछा– "आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? आपको मुझसे क्या कार्य है? आप तो आकार एवं हाव–भाव से समस्त पृथ्वी के राजा के समान दिखायी देते हैं"।। ३७।।

स प्राह राजन् शरणार्थिनं मां विनष्टसर्वस्वमुपस्थितं प्रभो!
द्यूतप्रवीणं द्विजमेव विद्धि कङ्काह्वयं धर्मसुतेन पालितम्॥ ३८॥

वे ब्राह्मण बोले– हे राजन्! "हे प्रभो! मैं शरणार्थी हूँ, मेरा सब कुछ नष्ट हो चुका है। आप मुझे दयूतक्रीड़ा में कुशल एक ब्राह्मण ही समझें। मेरा नाम 'कङ्क' है। मैं पहले धर्मराज युधिष्ठिर की सेवा में रहता था"।। ३८।।

तच्छ्रुत्वा तं समादृत्य मत्स्यानामधिपः स्वयम्।
अरक्षत् स्वसभायां तु धर्मात्मानं महामतिम्॥ ३९॥

यह सुनकर मत्स्यराज ने उसका सम्मान करते हुए उस धर्मात्मा महामति को अपनी सभा में रख लिया।। ३९।।

न चैनं ज्ञातवान् कश्चिदपि राज्ञः सभागतम्।
वर्षे त्रयोदशे तस्मिन् भगवत्याः प्रसादतः॥ ४०॥

भगवती की कृपा से राजा की सभा में रहते हुए इसको एक वर्ष बीत गया, परन्तु इसे कोई पहचान नहीं सका।। ४०।।

एवं स भीमसेनोऽपि राजानं तमुपेत्य च।
नियुक्तः पाकशालायां स्थितवान् राजसम्मतः॥ ४१॥

इसी तरह दूसरा भाई *भीमसेन* भी उस राजा के पास पहुँचकर उसकी पाकशाला में नियुक्त होकर राजसम्मान पाने लगा।। ४१।।

अर्जुनो नृत्यशालायां कन्यानां नर्तकोऽभवत्।
स्त्रीवेषधारी स्थितवान् मत्स्यराजमतेन च॥ ४२॥

तीसरा भाई *अर्जुन* भी राजा की नृत्यशाला में उनकी कन्याओं का नृत्य-शिक्षक बनकर स्त्रीवेष में मत्स्यराज के यहाँ रहने लगा।। ४२।।

द्रौपद्यपि च सैरन्ध्री भूत्वा तस्य महीपतेः।
पत्नीं सुदेष्णामासाद्य स्थिता सर्वाङ्गसुन्दरी॥ ४३॥

सर्वाङ्गसुन्दर *द्रौपदी* भी सैरन्ध्री नाम से उस महीपति की रानी सुदेष्णा के यहाँ दासी बनकर रहने लगीं।। ४३।।

माद्रीसुतौ च विक्रान्तौ राजानं तमुपेत्य च।
नियुक्तावश्वशालायां गोशालायां च संस्थितौ॥ ४४॥

दोनों बलशाली *माद्रीपुत्र* (नकुल-सहदेव) भी उस राजा की अश्वशाला एवं गोशाला में नियुक्त होकर अपना अज्ञातवास बिताने लगे।। ४४।।

न चैतान् ज्ञातवान् कश्चिदपि सर्वान् महीश्वरान्।
महादेव्याः प्रसादेन तावद्वर्षे त्रयोदशे॥ ४५॥

इन सभी राजतुल्य वीरों के वहाँ रहते हुए भगवती की कृपा से अन्य कोई भी पहचान नहीं सका। यों सम्पूर्ण तेरहवाँ वर्ष समाप्त भी हो गया।। ४५।।

कीचक-वध

प्राप्ते चैकादशे मासि सुदेष्णायाः निकेतने।
तस्या भ्राता ददर्शैनां सैरन्ध्रीं कीचको बली॥ ४६॥

ग्यारहवाँ मास आते ही आते रानी सुदेष्णा के घर में उसके बलवान् भाई कीचक ने एक दिन सर्वाङ्गसुन्दरी सैरन्ध्री को देख लिया।। ४६।।

वृद्धस्य मत्स्यराजस्य स एव राज्यरक्षकः।
स तस्य मतमुल्लङ्घ्य न किञ्चित् कर्तुमुत्सहेत्॥ ४७॥

वृद्ध मत्स्यराज के राज्य का रक्षक वह कीचक ही था। वृद्धावस्था के कारण राजा उससे विना पूछे कोई भी कार्य करने का साहस नहीं कर पाता था।। ४७।।

स तां विलोक्य सैरन्ध्रीं चार्वङ्गीं दिव्यलक्षणाम्।
पप्रच्छ भगिनीं "केयं चारुसर्वाङ्गसुन्दरी॥ ४८॥

उस दिव्यलक्षण सर्वाङ्गसुन्दरी को देखकर उसने अपनी बहन से पूछा– "यह सर्वाङ्गसुन्दरी कौन है?"।। ४८।।

शचीयं किं महेन्द्रस्य किं विष्णोः कमला स्वयम्।
नैतादृशी मया दृष्टा कापि सर्वाङ्गशोभना?"॥ ४९॥

क्या यह देवराज इन्द्र की इन्द्राणी हैं? या स्वयं विष्णुपत्नी लक्ष्मी हैं? ऐसी सर्वाङ्ग सुन्दर स्त्री तो मैंने आज से पूर्व कहीं नहीं देखी"।।४९।।

सुदेष्णा०— "सैरन्ध्रीयं शृणु भ्रातरकस्मात् समुपागता।
निवेशाद्धर्मपुत्रस्य सर्वराजेश्वरस्य च॥ ५०॥

सुदेष्णा– "भाई! इसका नाम सैरन्ध्री है। यह अकस्मात् कहीं से आ गयी। यह पहले सम्राट धर्मराज (युधिष्ठिर) के रनिवास में कार्य करती थी"।। ५०।।

कीचक०— यथैषा ह्यचिरेणैव भजते मां तथा कुरु।
नो चेत् प्राणान् परित्यज्य यास्यामि यममन्दिरम्॥ ५१॥

कीचक– "तो बहन! शीघ्र ही कुछ ऐसा करो कि यह मुझे पत्नीरूप में मिल जाय! अन्यथा मैं प्राण–त्याग कर मर जाऊँगा"।। ५१।।

सुदेष्णा०— "किञ्चिद्वक्ष्यामि ते भ्रातस्तत्त्वमव्यक्तमद्भुतम्।
तच्छ्रुत्वा ब्रूहि निश्चित्य तत्करिष्ये प्रियं तव॥ ५२॥

सुदेष्णा– "भाई जी! मैं इसके विषय में तुम्हें कुछ वास्तविकता बता दूँ। फिर उसे सुनकर मुझे अपना निश्चय बताना। उसे मैं पूर्ण करने का प्रयास करूँगी।। ५२।।

इयं यदा समायाता सैरन्ध्री चारुरूपिणी।
निवासमत्र काङ्क्षन्ती तदा त्वेतन्मयोदितम्॥ ५३॥

यह सुन्दर सैरन्ध्री जब मेरे यहाँ कार्य करने आयी थी तो मैंने इससे पूछा था–।। ५३।।

"सैरन्ध्री चारुरूपासि मत्तः शतगुणैरपि।
न त्वं मत्सेवने योग्या मम चैतन्न युज्यते॥ ५४॥

हे सैरन्ध्रि! तुम तो मुझ से भी सौ गुणा अधिक सुन्दर हो। तुम मेरे यहाँ कार्य करने योग्य नहीं हो, न मुझ को ही यह उचित लगता है कि मैं तुम्हें अपने अधीन भृत्य के रूप में रखूँ।। ५४।।

यदि त्वां द्रक्ष्यते राजा राजीवसदृशाननाम्।
तदा त्वामेव चार्वङ्गि सर्वतः समुपेष्यति॥ ५५॥

मुझे तो यह भी भय है कि यदि राजा तुम जैसी सर्वाङ्गसुन्दरी कमलनयना को देख लेगा तो ऐसा न हो कि वह मुझे छोड़कर तुम्हें ही अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर ले।। ५५।।

त्वदाज्ञावशगो राजा रूपसौन्दर्यमोहितः।
न मामेष्यति दौर्भाग्यां किं मे सैरन्ध्र्यतः परम्॥ ५६॥

तब राजा तुम्हारे सौन्दर्य पर मुग्ध होकर तुम्हारी आज्ञा के अधीन हो जायगा। फिर वह मेरे पास क्यों आने लगा? बताओ सैरन्ध्रि! इससे बढ़कर मेरा क्या दौर्भाग्य होगा!।। ५६।।

तदत्र वासस्ते नास्ति गच्छ स्थानं यथेप्सितम्''।
तच्छ्रुत्वा प्राह सैरन्ध्री ''कल्याणी तव मन्दिरे॥ ५७॥
यावत् स्थास्याम्यहं तावन्न गच्छेत् पुरुषः क्वचित्।
सन्ति मे पञ्च गन्धर्वाः पतयश्चारुविक्रमाः॥ ५८॥

अतः मैं तुम्हे अपने यहाँ स्थान नहीं दे सकती। तुम अन्यत्र जा सकती हो।'' यह सुनकर सैरन्ध्री नेकहा— ''हे देवि! जब तक मैं तुम्हारे आवास में रहूँगी, तब तक वहाँ कोई अन्य पुरुष नहीं आ सकेगा; क्योंकि मेरे पाँच गन्धर्व पति अत्यधिक बलशाली हैं।। ५७–५८।।

त एव प्रतिरक्षन्ति मामहर्निशमेव हि।
न हि मां धर्षितुं शक्तः पुमानन्यो महीतले।
तन्नास्ति ते भयं राज्ञि वासं रोचय मेऽन्तिके॥ ५९॥

वे पाँचों मेरी दिनरात रक्षा करते हैं। अतः इस भूतल पर कोई अन्य पुरुष मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। अतः, हे राज्ञि! आप कोई भय न करें। आप मुझे अपनी सेवा का अवसर दें'।। ५९।।

तच्छ्रुत्वाऽहं च सैरन्ध्रीमरक्षं स्वनिवेशने।
न चेत् स्वसुखसञ्छेदमूलां किं स्थापये गृहे॥ ६०॥
तत्त्वं यदि च सैरन्ध्रीमनुगच्छसि सुन्दरीम्।
तदा त्वां पञ्च गन्धर्वा निहनिष्यन्ति निश्चितम्'॥ ६१॥

यह सुनकर इस सैरन्ध्री को अपनी सेवा में रख लिया, अन्यथा मैं अपने ही सुख को समूल नष्ट करने के लिये इसे अपने पास क्यों रखती! यों मैंने इसके विषय में सचाई बता दी, आप यदि इस सैरन्ध्री का पीछा करेंगे, तो इसके पाँचों पति निश्चय ही आप का वध कर देंगे"।। ६०–६१।।

कीचक०— "नाहं बिभेमि गन्धर्वात् सत्यमेव ब्रवीमि ते।
स्वबाहुवीर्यमाश्रित्य हनिष्ये तान्समागतान्॥ ६२॥
सैरन्ध्रीं मृदुवाक्येन नन्दयित्वा द्रुतं मम।
शय्यां वेशय चार्वङ्गी गन्धर्वान्मा भयं कुरु"॥ ६३॥

कीचक— बहन! मैं तुम्हें सत्य बता दूँ! मैं गन्धर्व आदि से भयभीत नहीं होता। सम्मुख आने पर मैं अपने बाहुबल से उन सबको परास्त कर दूँगा। अतः सैरन्ध्री को मृदुवचनों से समझा कर मेरे पक्ष में कीजिये। उसे मेरी शय्या पर भेज दीजिये। उन गन्धर्वों का भय न कीजिये"।। ६२–६३।।

श्रीमहादेव०—ततः सुदेष्णा सैरन्ध्रीं समाहूय स्मितानना॥ ६४॥
प्रोवाच "गच्छ सैरन्ध्रि कीचकस्य निवेशनम्।
स त्वामिच्छति कल्याणि भज तं चारुरूपिणम्"॥ ६५॥

श्रीमहादेवी जी— तब रानी सुदेष्णा ने सैरन्ध्री को बुलाकर मुस्कराते हुए कहा— "सैरन्ध्रि! तूँ कीचक के आवास में चली जा। वह तुझ पर आसक्त है।" हे सुन्दर रूपवाली! तू उसे तुष्ट कर।। ६४–६५।।

सैरन्ध्री०— "नाहं भजेऽन्यपुरुषंविना पञ्चपतीन्मम।
न मान्धर्षितुं शक्तः सोऽतिपापोऽतिमन्दधीः॥ ६६॥

सैरन्ध्री— "मैं अपने पाँचों पतियों से पूछे विना किसी अन्य पुरुष के पास नहीं जाती। वह मूर्ख पापी मुझसे बलात्कार भी नहीं कर पायगा।। ६६।।

यदि मां वीक्ष्य दुष्टात्मा कामोपहतचेतनः।
समुपैति ध्रुवं मृत्युस्तेभ्यस्तस्य भविष्यति"॥ ६७॥

यदि वह दुष्ट पापी काममुग्ध होकर मुझको स्पर्श करने का प्रयास करेगा तो वे मेरे पाँचों पति अवश्य ही उसे मार डालेंगे"।। ६७।।

इति तस्या वचः श्रुत्वा सुदेष्णा भ्रातरं तदा।
उवाच स्वेच्छया नैव सैरन्ध्री त्वामुपैष्यति॥ ६८॥

उस सैरन्ध्री के ये वचन सुनकर सुदेष्णा ने अपने भाई कीचक से कहा— "वह सैरन्ध्री तुम्हारे पास स्वेच्छा से नहीं आयगी"।। ६८।।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा कीचकः पापचेतनः।
बलात्सङ्कर्षणे चेष्टां विततान स दुर्मतिः॥ ६९॥

बहन की यह बात सुनकर पाप-हृदय कीचक ने उस सैरन्ध्री को बलपूर्वक हस्तगत करने की चेष्टा की।। ६९।।

तस्य तच्चेष्टितं ज्ञात्वा द्रुपदस्य सुता तदा।
भीता देवीं जगद्धात्रीं जगाम शरणं शिवाम्''॥ ७०॥

उसकी यह चेष्टा देखकर, भयभीत द्रौपदी भगवती देवी की शरण में पहुँची।। ७०।।

दुर्गाकवचम्

द्रौपदी०— ''देवि दुर्गे जगन्मातः सर्वरक्षणकारिणि!
प्रसीद, त्वत्प्रपन्नानां दुःखदारिद्र्यनाशिनि॥ ७१॥

द्रौपदी— ''हे देवि दुर्गे! जगन्माता! सभी की रक्षा करने वाली! आप मुझ पर प्रसन्न हों। आप तो शरणागत का दुःख एवं दारिद्र्य नष्ट करने वाली है।। ७१।।

दुष्टस्तम्भिनि विश्वेशि कात्यायनि महेश्वरि!
विश्वमोहिनि विश्वेशे चितिरूपे नमोऽस्तु ते॥ ७२॥

हे दुष्टों को स्तब्ध कर देने वाली विश्वेश्वरि! हे महेश्वरि कात्यायनि! हे विश्वमोहिनि! हे विश्वस्वामिनि! हे चैतन्यरूपे! आपको मेरा प्रणाम है।। ७२।।

महामोहस्वरूपा त्वं शुद्धज्ञानस्वरूपिणी।
ये त्वां स्मरन्ति संसारे ते दुर्गान्निस्तरन्ति हि॥ ७३॥

आप तो महामोहस्वरूपा हैं, आप शुद्धज्ञानस्वरूपिणी भी हैं। इस संसार में जो आपको स्मरण करते हैं वे कठिन समय से पार हो जाते हैं।। ७३।।

पातिव्रत्यस्वरूपा त्वं साध्वीनां जगदम्बिके।
निस्तारय भयाद् घोराच्छङ्करप्राणवल्लभे!॥ ७४॥

हे जगदम्बिके! आप पतिव्रताओं के लिये पातिव्रतरूप हो। हे शङ्कर की प्राणवल्लभे! आप इस समय मुझको घोर सङ्कट से मुक्त कीजिये।। ७४।।

त्वमेव देवि दीनानां सदासि परमा गतिः।
त्वामहं शरणं प्राप्ता त्राहि मां घोरसङ्कटात्''॥ ७५॥

हे देवि! आप ही दीन-हीनों की एकमात्र शरणस्थल हैं। मैं आपकी शरणागत हूँ। इस घोर विपत्ति से मेरी रक्षा कीजिये''।। ७५।।

श्रीमहादेव०— पाञ्चाल्यैवं स्तुता देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी।
अन्तरिक्षे गतोवाच "मा सैरन्ध्रि! भयं कुरु ॥ ७६ ॥

श्रीमहादेवी— पाञ्चाली (द्रौपदी) द्वारा इस तरह स्तुति करते ही वह दुर्गतिनाशिनी दुर्गा अन्तरिक्ष में स्थित होकर यों बोली—"हे सैरन्ध्रि! तूँ डर मत।। ७६ ।।

यस्त्वामन्यः पुमाँल्लोभादभिकाङ्क्षति कामुकः।
स मृत्युवशगो नूनं भविष्यति न संशयः"॥ ७७ ॥

अन्य जो कोई भी कामासक्त पुरुष किसी लोभ में पड़कर तुम्हारी तरफ आँख उठायगा तो निश्चय ही उसकी मृत्यु हो जायगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है"।। ७७ ।।

इति देव्या वरं प्राप्य सैरन्ध्री मुदितानना।
निर्भया मत्स्यराजस्य भवने विचचार ह॥ ७८ ॥

यो, देवी से वर प्राप्त कर वह सैरन्ध्री प्रसन्न मुख से मत्स्यराज के महलों में निर्भयता से घूमने लगी।। ७८ ।।

सैकदा रुचिरापाङ्गी निशायां कार्यगौरवात्।
प्रायाद् गृहे सुदुष्टस्य कीचकस्य महामुने!॥ ७९ ॥

हे महामुने! एक बार उस सुनयना सैरन्ध्री को रात के समय किसी कार्यविशेष से कीचक के घर जाना पड़ा।। ७९ ।।

तदा स पापः प्रतिवीक्ष्य सुन्दरीं समीपगां तां द्रुपदस्य पुत्रीम्।
उत्थाय जग्राह कराम्बुजे क्षणात् सा तं विनिःक्षिप्य गृहाद्विनिर्ययौ॥ ८० ॥

तब उस पापी ने सुन्दरी द्रुपदपुत्री को समीपस्थ देखकर तत्क्षण उठकर उसका हाथ पकड़ लिया। परन्तु वह उसे धक्का देकर घर से बाहर भागी।। ८० ।।

क्रुद्धं स पापोऽतिविघूर्णलोचनः प्रायात्सुताया द्रुपदस्य पश्चात्।
सा तद्भयेनातिविषण्णमानसा जगाम मत्स्याधिपतेः सभायाम्॥ ८१ ॥
यत्रास्ति धर्मस्य सुतश्च भीमो वृद्धेन राज्ञा किल देवने रतः।
तत्रागतां तां प्रतिगृह्य केशतः सूतात्मजोऽसौ सहसा पदावधीत्॥ ८२ ॥

वह पापी भी क्रुद्ध होकर आँखें चढ़ाकर उस द्रुपदपुत्री के पीछे दौड़ा। वह (द्रौपदी) उसके भय से दुःखी होकर सीधे मत्स्यराज की सभा में प्रविष्ट हो गयी, जहाँ धर्मराज युधिष्ठिर एवं भीमसेन राजा के साथ चौपड़

खेल रहे थे। वहाँ पहुँची हुई उस सैरन्ध्री को दुष्ट कीचक ने अचानक केशों से पकड़कर गिरा दिया और उस पर पादाघात किया।। ८१-८२।।

ततो विलप्य द्रुपदस्य पुत्री मत्स्याधिराजं प्रतिनिन्द्य कोपिता।
रक्तेक्षणेन प्रतिवीक्ष्य भीमं धर्मात्मजं चापि सुदीनचेतसम्॥ ८३॥

तब वह द्रुपदपुत्री रोती हुई तथा कुद्ध होकर मत्स्यराज के सम्मुख कीचक पर आरोप लगाती हुई भीम एवं युधिष्ठिर की ओर कातर नेत्रों से देखने लगी।। ८३।।

विमृज्य नेत्रे सहसा गृहं ययौ प्रतीक्ष्य कालं किल मत्स्यभूपतेः।
भीमोऽपि संवीक्ष्य च कीचकस्य विनाशनार्थं मनसा व्यचिन्तयत्॥ ८४॥

फिर वह आँखों से आँसू पोंछती हुई, मत्स्यराज का समय देखते हुए पुनः अपने आवास में लौट गयी। उधर भीम ने भी यह सब देखते हुए कीचक के वधहेतु योजना बनायी।। ८४।।

ततः स एकदा प्राह सैरन्ध्रीं पाण्डवो बली॥ ८५॥
"आमन्त्र्य नृपशालायां रात्रावानय कीचकम्।
तत्राहं तं हनिष्यामि तवैव प्रियकाम्यया।
गन्धर्वैर्निहतः पाप इत्येवं त्वं वदिष्यसि"॥ ८६॥

अन्त में, एक दिन बलवान् पाण्डव (भीम) ने सैरन्ध्री से कहा— "तुम उस कीचक को बुलाकर नृत्यशाला में ले आओ।। ८५।।

वहाँ मैं उसे तुम्हारा प्रिय करने हेतु मार डालूँगा। बाद में तुम प्रचार कर देना कि मेरे गन्धर्वपति ने इसको मार डाला।। ८६।।

तस्य तन्मतमाज्ञाय तथा चक्रे दृढव्रता।
निशार्धे भीमसेनेन स पापः कीचको हतः॥ ८७॥

भीमसेन की सम्मति जानकर सैरन्ध्री ने उस पापी कीचक को किसी तरह बातों में उलझाकर नृत्यशाला में पहुँचा दिया। वहाँ आधीरात को भीमसेन ने उसको मार दिया।। ८७।।

पौरानुवाच सैरन्ध्री गन्धर्वैः कीचको हतः॥ ८८॥

उधर सैरन्ध्री ने नागरिकों को समझा दिया कि इसको मेरे पति गन्धर्वों ने मार दिया है।। ८८।।

तच्छ्रुत्वान्ये समाजग्मुर्द्रष्टुं तमुपकीचकाः।
ते तस्य दाह उद्युक्तास्तमादाय गृहान्तरात्॥ ८९॥

यह सुनकर कीचक के दूसरे साथी वहाँ उसे देखने आये। और उसे दाहकर्म हेतु उस स्थान से बाहर दूसरे स्थान पर ले आये।। ८९।।

रात्रौ विनिर्ययुः सर्वे रुदित्वा सुचिरं बहु।
एतस्मिन्नन्तरे तेऽपि विनिश्चित्य परस्परम्॥ ९०॥

कीचकेन समं दाहं सैरन्ध्र्याश्च व्यरोचयन्।
ततो बलात्तामादाय प्रजग्मुरुपकीचकाः॥ ९१॥

रात्रिभर उसके शोक में विलाप करते रहे। इसी बीच उन्होंने परस्पर यह मन्त्रणा की कि कीचक के साथ–साथ सैरन्ध्री को भी जला डाला जाय। तब वे कीचक के साथ सैरन्ध्री को भी बलपूर्वक उठाकर ले जाने लगे।। ९०–९१।।

उच्चै रुरोद सैरन्ध्री भीमस्तज्ज्ञातवांस्तदा।
ततः प्राचीरमुल्लङ्घ्य विनिर्गत्य महाबलः॥ ९२॥

सैरन्ध्रीं मोचयामास विनिपात्योपकीचकान्।
''गन्धर्वेण हता एते'' इत्येवं चुक्रुशुर्जनाः॥ ९३॥

तब सैरन्ध्री ने जोर से रोना आरम्भ किया। उसे सुनकर बलवान् भीमसेन प्राचीर से लाँघकर वहाँ से निकलकर उन कीचक के साथियों को मारकर उनसे सैरन्ध्री को मुक्त कराया। कीचक के साथियों को मरा हुआ देखकर जनता ने समझ लिया कि इनको भी गन्धर्व ने मार दिया है।। ९२–९३।।

''राजा भीतस्तदा प्राह सैरन्ध्रीं विनयान्वितः।
त्वदर्थे निहता एते मम राज्यस्य रक्षकाः॥
मत्पुरीं त्वं परित्यज्य वासमन्यत्र रोचय''॥ ९४॥

तब राजा ने सैरन्ध्री से भयभीत होते हुए विनयपूर्वक कहा कि ''तुम्हारे कारण ये मेरे राज्य के रक्षक मारे गये हैं अतः आप मेरा यह नगर छोड़कर कहीं अन्यत्र जाकर रहिये।''।। ९४।।

सैरन्ध्री तमनुप्राह-''किञ्चित्कालं क्षमस्व मे।
अचिरेणैव यास्यामि त्यक्त्वा राजंस्तवालयम्''॥ ९५॥
ततो व्यतीतः समभूत्तेषां वर्षस्त्रयोदशः॥ ९६॥

तब सैरन्ध्री ने राजा से विनति की कि मुझे कुछ दिन का अवसर दीजिये, हे राजन् मैं स्वयं शीघ्र ही तुम्हारे भवन को छोड़कर अन्यत्र चली

जाऊँगी। इस तरह कुछ दिन बाद ही पाण्डवों के अज्ञातवास का वह तेरहवाँ वर्ष भी व्यतीत हो गया।। ९५–९६।।

न चारैः प्रतिसन्धाय यज्ञे राजा सुयोधनः।
भीष्मद्रोणमुखैः सर्वैमन्त्रयित्वा चिरं नृपः॥ ९७॥

परन्तु राजा दुर्योधन गुप्तचरों से खोज करवाकर भी पाण्डवों के विषय में कुछ भी नहीं जान पाया। तब उसने भीष्म, द्रोण आदि प्रधानजनों से बहुत समय तक मन्त्रणा की।। ९७।।

कीचकानां वधं श्रुत्वा तत्र निश्चित्य पाण्डवान्।
ससैन्यो मत्स्यराजस्य स देशं समुपागमत्॥ ९८॥

अन्त में कीचकों का वध सुनकर वहाँ पाण्डवों की उपस्थिति का निश्चय कर, राजा दुर्योधन सेना के साथ मत्स्यदेश की राजधानी पर चढ़ आया।। ९८।।

तत्रासीद् गोग्रहे युद्धं पार्थेन सह धन्विना।
भीष्मद्रोणादयः सर्वे तेन तत्र पराजिताः॥ ९९॥

वहाँ आकर उसने राजा की गौएँ पकड़वा लीं। इस कारण वहाँ युद्ध प्रारम्भ हुआ। युद्ध में पाण्डव अर्जुन ने भीष्मद्रोण आदि सब वीरों को पराजित कर दिया।। ९९।।

ततो जज्ञे विराटोऽपि पाण्डवान् समवस्थितान्।
विधिवत् पूजयामास विनयावनतो नृपः॥ १००॥

तभी मत्स्यराज विराट ने भी जाना कि इतने दिनों से उसके यहाँ पाँचों पाण्डव ही सपत्नीक रह रहे थे। तब राजा ने वितयावनत होकर उनकी सादर पूजा अर्चना की।। १००।।

अभिमन्यु–विवाह

तत्रार्जुनसुतस्याभूद्विवाहमङ्गलोत्सवः।
विराटात्मजया सार्धं सर्वेषां हर्षवर्धनः॥ १०१॥

इसके साथ ही उसी समय अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ विराट् की पुत्री उत्तरा का विवाह भी अत्यधिक धूमधाम से सम्पन्न हुआ।। १०१।।

महाभारतयुद्ध–समुद्योग

ततो युद्धसमुद्योगः प्रावर्तत महामते!
तत्रायाताश्च पाञ्चालाः सर्वसैन्यसमावृताः।

काशिराजमुखाश्चान्ये नृपाः साहाय्यहेतवे ॥ १०२ ॥

हे महामते! तब महाभारत युद्ध कैसे किन साधनों से किन राजाओं को साथ लेकर लड़ा जाय— इस पर विस्तार से चर्चा हुई। वहाँ पाञ्चाल देश के राजा (द्रुपद) अपनी समस्त सेना के साथ आये। इसी तरह पाण्डवों की सहायतार्थ काशिराज आदि अन्य राजा भी वहाँ आ पहुँचे।। १०२।।

तैर्वृताः पाण्डवाः सर्वे मत्स्यैश्च परिवारिताः।
इच्छन्तस्तुमुलं युद्धं कुरुक्षेत्रमुपागमन् ॥ १०३ ॥

इति श्रीमहाभागवते उपपुराणे कीचकवधोपाख्याने
षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

उनको तथा मत्स्य देश के राजा को साथ लेकर भयङ्कर युद्ध करने हेतु वे पाण्डव कुरुक्षेत्र में एकत्र हुए।। १०३।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
कीचकवध-उपाख्यान के साथ
छप्पनवाँ अध्याय सम्पन्न ॥

सत्तावनवाँ अध्याय

[महाभारतयुद्ध-वर्णन]

श्रीमहादेव०— तदा भूभारहाराय कृष्णाया कृष्णरूपिणी।
धार्तराष्ट्रसहायार्थं स्वसेनां संनियम्य च।
सात्यकिना समं पूर्णं स्वयं पाण्डुमुपागमत्॥ १॥
आगताः पृथिवीपाला नानादेशनिवासिनः।
पाण्डवानां कुरूणां च साहाय्यार्थं महामते॥ २॥

श्रीमहादेवजी— तब भूभारहरणहेतु कृष्णरूपिणी भगवती काली दुर्योधन की सहायता के लिये सात्यकि के सेनापतित्व में अपनी सेना देकर स्वयं पाण्डवों की तरफ आ गयी। हे महामते! इसी तरह नानादेशनिवासी अन्य राजा लोग भी आये और कोई पाण्डवों की तरफ एवं कोई कौरवों की तरफ सहायता हेतु जा मिले।। १-२।।

न तादृशः समुद्देशः क्षत्रियाणां महामुने!
कदाचित्कुत्रचिद्भूतो भविता वा कदाचन॥ ३॥

हे महामते! युद्ध हेतु क्षत्रियों का ऐसा विशाल आयोजन न कभी कहीं पहले हुआ था, न कभी आगे हो पायगा।। ३।।

हस्त्यश्वरथपादातैर्नानादेशनिवासिनाम्।
व्याप्तमासीत् कुरुक्षेत्रं धर्मक्षेत्रमयं तदा॥ ४॥

उस समय, नाना देशवासी राजाओं के हाथी घोड़े तथा पैदल सैनिकों से वह कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्रमय हो गया था।। ४।।

युद्ध न करने का सत्परामर्श

दृष्ट्वैवं तु समुद्योगं लोकक्षयकरं परम्।
भीष्माद्याः सुमहात्मानः सुयोधनमवारयन्॥ ५॥

जनसमूह के क्षयकारक ऐसे विशाल आयोजन को देखकर भीष्म, द्रोण आदि विशिष्ट कौरव पक्षपातियों ने दुर्योधन को अन्तिम बार फिर समझाया कि वह युद्ध से दूर हो जाय।। ५।।

आगत्य भगवान् व्यासः स्वयं सर्वार्थवित्तमः।
सपुत्रं धृतराष्ट्रं च निषिषेध मुहुर्मुहुः॥ ६॥

सभी बातों का परिणाम जानने वाले भगवान् व्यास ने भी स्वयं आकर समझाया और अपने पुत्र दुर्योधन के सहित धृतराष्ट्र को युद्ध से बार बार विरत किया।। ६।।

न तद् गृहीतवान् राजा कालपाशेन गुण्ठितः।
कर्णस्य मतमास्थाय युद्धमेव व्यरोचयत्॥ ७॥

परन्तु उन दोनों को, मृत्युपाश में बँधे रहने के कारण, व्यास की शुभ सम्मति समझ में नहीं आयी। अपितु वे कर्ण के परामर्श से युद्ध की ही तय्यारी करते रहे।। ७।।

ततः शङ्खनिनादैश्च भेरीदुन्दुभिनिःस्वनैः।
रथनेमिस्वनेनापि कम्पयन्तो धरातलम्।
धार्तराष्ट्राः सहामात्यैः संग्रामाय विनिर्ययुः॥ ८॥

तब वे कौरव शङ्खनाद करते हुए, नगाड़े आदि बाजे बजाते हुए, रथों के पहियों के घर घर शब्दों से पृथ्वी को कँपाते हुए युद्ध हेतु निकल पड़े।। ८।।

तान् दृष्ट्वा समुपायातान् पाण्डवानां महारथाः।
सिंहनादान्मुहुश्चक्रुः शङ्खस्वनविनिश्चितान्॥ ९॥

उन्हें देखकर पाण्डवों के महारथि भी अपना अपना शङ्ख बजाते हुए सिंहनाद करने लगे।। ९।।

स घोषो धरणीं चैव नभश्चाप्यनुनादयन्।
चकर्ष धार्तराष्ट्राणां मनस्तेजांसि सर्वतः॥ १०॥

वह रणघोष पृथ्वी और आकाश को कँपाने लगा और उससे कौरवों के मन और तेज सब ओर से प्रभावित होने से उनके हृदय काँप उठे।। १०।।

ततो धर्मसुतो राजा गुरून्युद्धे व्यवस्थितान्।
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान्प्रणिपत्य पृथक् पृथक्।
युद्धाय तैरनुज्ञातः स्वरथं पुनरागमत्॥ ११॥

तब धर्मराज युधिष्ठिर, भीष्म द्रोण आदि प्रमुख गुरुजनों को उस युद्ध में उपस्थित देखकर सबको पृथक् पृथक् प्रणाम कर, उनसे युद्ध की अनुमति लेकर, अपने रथ पर आकर पुनः आरूढ़ हुए।। ११।।

पाण्डवों द्वारा देवी–स्तुति

ततस्ते पाण्डवाः सर्वे अवप्लुत्य रथोत्तमात्।
संग्रामे जयलाभाय तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम्॥ १२॥

तब वे सभी पाण्डव अपने अपने रथ से उतर कर जगदम्बिका की युद्ध में विजय के लिए स्तुति करने लगे—।। १२।।

कात्यायनि स्तुतिः

पाण्डवा०— **"कात्यायनि त्रिदशवन्दितपादपद्मे**
विश्वोद्भवस्थितिलयैकनिदानरूपे।
देवि प्रचण्डदलिनि त्रिपुरारिपत्नि
दुर्गे प्रसीद जगतां परमार्तिहन्त्रि॥ १३॥

पाण्डव— "हे कात्यायनि! हे देवताओं द्वारा वन्दित चरणकमलों वाली! विश्व की उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलय में एकमात्र कारणभूत! हे देवि! हे दुष्टों का दलन करने वाली! हे त्रिपुरारि (भगवान् शङ्कर) की पत्नि! हे दुर्गे! आप हम पर प्रसन्न हों; क्योंकि आप प्राणियों के बड़े से बड़े दुःख का भी निवारण करने वाली हैं।।१३।।

त्वं दुष्टदैत्यविनिपातकरी सदैव
दुष्टप्रमोहनकरी किल दुःखहन्त्री।
त्वां यो भजेदिह जगन्मयि तं कदापि
नो बाधते भवसुदुःखमचिन्त्यरूपे॥ १४॥

आप तो सदा से ही दुष्ट दैत्यों की विनाशक रही हैं। दुष्टों को सम्मुग्ध करने वाली तथा सबके दुःखों का हरण करने वाली रही हैं। हे जगद्व्यापिनि! हे अचिन्त्यरूपे! इस लोक में आपकी सेवा करने वालों को कभी सांसारिक दुःख नहीं सताते।। १४।।

त्वामेव विश्वजननीं प्रणिपत्य विश्वं,
ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरहोऽत्ति शम्भुः।
काले च तान् सृजसि पासि विहंसि मात-
स्त्वल्लीलयैव नहि तेऽस्ति जनैर्विनाशः॥ १५॥

आप विश्वजननी को प्रणाम करके ही ब्रह्मा जी इस सृष्टि की रचना करते हैं, भगवान् विष्णु इसका पालन करते हैं तथा भगवान् शिव इसका भक्षण (नाश) करते हैं। समय पर उनका सर्जन करती हैं, पालन करती है। तथा आप ही उनका संहार करती हैं। आप की इच्छा के विना किसी भी प्राणी का नाश नहीं हो सकता।। १५।।

त्वं यैः स्मृता समरमूर्धनि दुःखहन्त्रि!
तेषां तनूं नहि विशन्ति विपक्षबाणाः।

तेषां शरास्तु परगात्रनिमग्नपुङ्खाः
प्राणाग्रसन्ति दनुजेन्द्रनिपातकर्त्रि॥ १६॥

हे दुःखनाशिके! युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व, जो योद्धा आपको प्रणाम करते हैं उनको शत्रुपक्ष की बाणवृष्टि कोई हानि नहीं पहुँचाती। इसकेविपरीत हे दानववधकर्त्रि! आपके भक्तों द्वारा छोड़े गये बाण शत्रु के प्राणों का नाश अवश्य करते हैं।। १६।।

यस्त्वन्मनुं जपति घोररणे सुदुर्गे
पश्यन्ति कालसदृशं किल तं विपक्षाः।
त्वं यस्य वै जयकरी खलु तस्य वक्त्राद्
ब्रह्माक्षरात्मकमनुस्तव निःसरेच्च॥ १७॥

जो कठिनाई से अन्तः प्रवेशयोग्य भयानक युद्धों में आपके मन्त्र का जाप करते रहते हैं, शत्रु उन्हें देखते ही उनसे मृत्युतुल्य भय मानते हैं। आप जिसे युद्ध में विजय दिलाना चाहती हैं उसी के मुख से आपका *ब्रह्माक्षरात्मक* मन्त्र (ह्रीँ) निकलता है।। १७।।

त्वामाश्रयन्ति परमेश्वरि ये भयेषु
तेषां भयं नहि भवेदिह वा परत्र।
तेभ्यो भयादिह सुदूरत एव दुष्टा-
स्त्रस्ताः पलायनपराश्च दिशो द्रवन्ति॥ १८॥

हे परमेश्वरि! जो प्राणी भय के क्षणों में आपका आश्रय लेते हैं, उन्हें किसी भी प्रकार का भय इस या पर लोक में नहीं सताता। उनके भय से दुष्ट लोग त्रस्त होकर दूर इधर-उधर भाग जाते हैं।। १८।।

पूर्वे सुरासुररणे सुरनायकस्त्वां
सम्प्रार्थयन्नसुरवृन्दमुपाजघान।
रामोऽपि राक्षसकुलं निजघान तद्वत्,
त्वत्सेवनादृत इहास्ति जयो न चैव॥ १९॥

पहले, देवासुर-संग्राम में, देवराज इन्द्र आप की प्रार्थना के बल पर ही उस असुरसमूह का नाश कर सके थे। श्रीरामचन्द्र भी उतने बड़े राक्षससमूह को मारने में आपकी पूजा के बल पर ही समर्थ हुए थे। आपकी सेवा के विना इस लोक में विजय नहीं हो सकती। १९।।

तत्त्वां भजामि जयदां जगदेकवन्द्यां
विश्वाश्रयां हरिविरञ्चिसुसेव्यपादाम्।

त्वं नो विधेहि विजयं त्वदनुग्रहेण
शत्रून्निपात्य समरे विजयं लभामः"॥ २०॥

अतः हम सब जयदायिनी, जगत् की एकमात्र पूज्या, विश्व की आश्रयभूता, विष्णु एवं ब्रह्मा द्वारा पूजित चरणवाली आपकी हम सेवा करते हैं, हमारी प्रार्थना है कि हम आप के अनुग्रह से अपने इन शत्रुओं को युद्ध में मारकर उन पर विजय प्राप्त करें"॥ २०॥

श्रीमहादेव०— इत्येवं संस्तुता देवी पाण्डवेयैर्महात्मभिः।
सुप्रसन्ना वरं प्रादादन्तरिक्षे गता स्वयम्॥ २१॥

श्रीमहादेव जी— इस प्रकार उन महात्मा पाण्डवों द्वारा पूजा प्राप्त देवी भगवती ने प्रसन्न होते हुए अन्तरिक्ष में उपस्थित होकर यों वर दिया—॥ १२॥

देवी०— "मत्प्रसादाद्रणे शत्रून्निपात्य रणमूर्धनि।
निष्कण्टकमिदं राज्यं भूयो भूयस्त्ववाप्स्यथ॥ २२॥

देवी— "हे पाण्डवों! तुम लोग मेरी कृपा से युद्ध में शत्रुओं को मारकर अपना राज्य निष्कण्टक (निर्बाध) रूप से पुनः प्राप्त करोगे॥ २२॥

पृथ्वीभारापहाराय युष्माकं विजयाय च।
वासुदेवस्वरूपेण जाताहं निजलीलया॥ २३॥

पृथ्वी के भारहरण हेतु तथा तुम्हारी विजय के लिये मैं स्वयं कृष्ण के रूप में अपनी इच्छा से भूमण्डल पर आ चुकी हूँ॥ २३॥

फाल्गुनस्य रथे स्थित्वा विपुले वानरध्वजे।
वासुदेवस्वरूपाहं युष्मान् रक्ष्यामि निश्चितम्॥ २४॥

लम्बी वानरध्वजा वाले अर्जुन के रथ पर बैठकर कृष्ण के रूप में निश्चय ही मैं तुम लोगों की रक्षा करती रहूँगी॥ २४॥

स्तोत्रेणानेन मां भक्त्या ये स्तोष्यन्ति नरा भुवि।
तेषां च जयदा नित्यं भविष्यामि न संशयः"॥ २५॥

संसार में जो लोग इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करते रहेंगे उन को नित्य ही जय-प्रदान करूँगी— इसमें कोई सन्देह नहीं है"॥ २५॥

श्रीमहादेव०— इत्येवं तु वरं लब्ध्वा पाण्डुपुत्रा महारथाः।
मेनिरे विजयं युद्धे सुप्रसन्नमुखाम्बुजाः॥ २६॥

श्रीमहादेव जी— इस तरह वे पाण्डव, देवी से वर प्राप्त कर मुख पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए, स्वयं को युद्ध में विजयी मानने लगे॥ २६॥

ततः पुनः समारुह्य रथान् हेमपरिप्लुतान्।
विगृह्य कवचं भूयः शङ्खान् दध्मुः पृथक् पृथक्॥ २७॥

तब पुनः वे सुवर्णमय रथों पर चढ़कर, कवच पहनकर, पृथक् पृथक् रूप से शङ्ख बजाने लगे।। २७।।

वासुदेवश्च बलवानर्जुनस्य रथे स्थितः।
पाञ्चजन्यं महाशङ्खं दध्मौ घोरतरं मुहुः॥ २८॥

बलिष्ठ श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ में (सारथिरूप में) बैठे हुए भयङ्कर ध्वनि वाले पाञ्चजन्य शङ्ख बजाने लगे।। २८।।

चकम्पे वसुधा तेन क्षुब्धमासीदिदं जगत्।
विषण्णमानसा आसन् धार्तराष्ट्राः ससैनिकाः॥ २९॥

उस ध्वनि से पृथ्वी काँप उठी, तथा समस्त जगत् क्षुब्ध हो उठा। धृतराष्ट्र पुत्र सैनिकों सहित उद्विग्न हो उठे।। २९।।

भीष्मपितामह-वध

सेनाध्यक्षस्त्वभूत्तेषां भीष्मो लोकमहारथः।
कर्णश्च भीष्मविद्वेषान्न्यस्तशस्त्रो व्यतिष्ठत॥ ३०॥

कौरवों में मूर्धन्य होने के कारण भीष्म पितामह को सेनापति बनाया गया। परन्तु उनसे द्वेष रखने के कारण कर्ण युद्ध से दूर ही रहा।। ३०।।

अग्रतः पाण्डुसैन्यानां तथैवासीद् वृकोदरः।
नागायुतबलो वीरो साक्षात्काल इवापरः॥ ३१॥

पाण्डव सेना की आगे वृकोदर (भीमसेन) थे। जिनमें दश हजार हाथियों का बल था। वे ऐसा दिखायी दे रहे हैं मानों स्वयं मृत्यु उपस्थित हो।। ३१।।

भीष्मेण समभूद्युद्धं दशरात्रं महामुने।
अर्बुदं स जघानैकः पाण्डुसैन्येषु नारद॥ ३२॥

हे महामुने! वहाँ दश दिन तक भीष्म के साथ युद्ध होता रहा। हे नारद! उसने अकेले ही अर्बुद (दश करोड़) संख्यक पाण्डवों के सैनिकों का वध कर दिया।। ३२।।

तथान्ये बहवो नष्टा धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः।
पाण्डवेयैश्च निहता धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः।
तेभ्योऽधिकतरा संख्या महाबलपराक्रमैः॥ ३३॥

इसी तरह कौरवों की तरफ से भी बहुत सैनिक भी नष्ट हुए।

अपितु महाबलशाली पाण्डवों ने उनसे अधिक सैनिकों का हनन किया जितने कि कौरवों ने मारे थे।। ३३ ।।

दशमेऽहनि संग्रामे किञ्चिच्छेषे दिवाकरे।
धनञ्जयमहास्त्रेण हतो भीष्मः शिखण्डिना॥ ३४॥

दशम, दिन, संग्राम में, जब कि सूर्यास्त होने में कुछ ही समय अवशिष्ट था, धनञ्जयरूपीमहास्त्र से शिखण्डी ने भीष्म को मार गिराया।। ३४ ।।

उत्तरायणमन्विच्छन् स धर्मात्मा महारथः।
स्थितवाञ्शरशय्यायां ख्यापयन्हि पितुर्वरम्॥ ३५॥

सूर्य के उत्तरायण होने की आशा में वे धर्मात्मा महारथ भीष्म, अपने पिता द्वारा दिये हुए वर के प्रभाव से, शरशय्या पर ही पड़े रहे।। ३५ ।।

अभिमन्युवध

ततः कर्णमुखा योधा द्रोणं कृत्वा महारथम्।
चक्रुः सुतुमुलं युद्धं भूयः पञ्च दिनानि च॥ ३६॥

तब कर्ण आदि योद्धाओं ने महारथी द्रोण को सेनापति बनाकर पाँच दिनों तक भयानक युद्ध किया।। ३६ ।।

निहतस्तत्र संग्रामे सौभद्रेयो महारथः।
अन्याय्ययुद्धमाश्रित्य धार्तराष्ट्रस्य सैनिकैः॥ ३७॥

वहाँ संग्राम में अन्यायपूर्ण युद्ध का आश्रय लेकर कौरवों ने महारथी अभिमन्यु का वध कर दिया।। ३७ ।।

जयद्रथवध

ततोऽर्जुनः प्रतिज्ञाय सायाह्ने तं जयद्रथम्।
शरौघैः पातयामास महाबलपराक्रमः॥ ३८॥

तब महाबलशाली अर्जुन ने प्रतिज्ञा कर दूसरे दिन सायङ्काल तक अगणित बाणवर्षा कर जयद्रथ का वध कर दिया।। ३८।।

द्रोणवध

एवमन्ये च निहताः सेनयोरुभयोरपि।
पञ्चमेऽह्नि तथा भग्नो द्रोणः पाञ्चालसूनुना॥ ३९॥

इस तरह दोनों सेनाओं के अनेक वीर मारे जाते रहे। पाँचवें दिन पाञ्चालसूनु (धृष्टद्युम्न) ने द्रोण का भी वध कर दिया।। ३९ ।।

घटोत्कचवध

ततः कर्णेन समभूद् युद्धं तेषां दिनद्वयम्।

कर्णेन निहतो वीरो राक्षसेन्द्रो घटोत्कचः ॥ ४० ॥

फिर दो दिन तक कर्ण के साथ युद्ध हुआ। कर्ण ने इसी बीच भीमपुत्र घटोत्कच को मार डाला ।। ४० ।।

कर्णवध

तं चाप्यपातयत् सङ्ख्ये पाण्डवो वानरध्वजः ।
अन्ये च पृथिवीपालाः सेनयोरुभयोरपि ॥ ४१ ॥

परन्तु दूसरे दिन, उस कर्ण को भी कपिध्वज महारथ अर्जुन ने मार डाला। इसी तरह दोनों सेनाओं के दूसरे राजा लोग भी उस युद्ध में मारे जाते रहे ।। ४१ ।।

शल्यवध

परस्परं समासाद्य प्रययुर्यमसादनम् ।
ततः शल्यं रणे राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४२ ॥

यों, परस्पर युद्धकर वे लोग मरते-कटते रहे। अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर ने शल्य को भी तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से मार डाला ।। ४२ ।।

दुर्योधनवध

न्यपातयद्रणे क्रुद्धः शरैः सन्नत पर्वभिः ।
ततः समभवद् युद्धं राज्ञा दुर्योधनेन हि ॥ ४३ ॥
भीमसेनस्य गदया परस्परजयैषिणोः ।
भीमेन गदया चापि हतो दुर्योधनस्ततः ॥ ४४ ॥

फिर राजा दुर्योधन के साथ भीम का गदायुद्ध आरम्भ हुआ। यद्यपि दोनों ही परस्पर विजयाभिलाषी थे, परन्तु भीम ने एक तीक्ष्ण गदाप्रहार से दुर्योधन को भी मार गिराया ।। ४३-४४ ।।

अन्ये च निहताः सर्वे पूर्वमेव महात्मना ।
दुःशासनमुखा योधा धार्तराष्ट्रा रणाजिरे ॥ ४५ ॥

दुःशासन आदि- धृतराष्ट्र सभी पुत्रों को तो युद्ध में पहले ही उस महान् बली भीम ने मार डाला था ।। ४५ ।।

ततो रात्रौ भरद्वाजसुतेन सौप्तिका हताः ।
धृष्टद्युम्नः सुदुर्धर्षो द्रौपद्याः पञ्च सूनवः ॥ ४६ ॥

तब रात्रि में, दुर्धुर्ष द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने सोते हुए धृष्टद्युम्न एवं द्रौपदी के पाँच पुत्रों को मार डाला ।। ४६ ।।

ततोऽर्जुनेन संग्रामादमरौ विनिवर्तितौ।
अश्वत्थामकृपाचार्यौ शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४७ ॥

अन्त में उस संग्राम में अर्जुन से युद्ध करके उसके तीक्ष्ण बाणों की मार से केवल दो ही योद्धा मरने से बचे— एक कृपाचार्य एवं दूसरा अश्वत्थामा ।। ४७ ।।

एवमष्टादशाहे तु अक्षौहिण्यो निपातिताः।
अष्टादश मुनिश्रेष्ठ! सेनयोरुभयोरपि ॥ ४८ ॥

इस तरह, हे मुनिश्रेष्ठ! उस भीषण युद्ध के अठारह दिनों में अट्ठारह अक्षौहिणी सेना (दोनों पक्षों की) मारी गयी ।। ४८ ।।

वासुदेवेन सहिताः पाण्डवेया महारथाः।
सर्वेषां क्ष्माभुजां चक्रुः क्रियामप्यौर्ध्वदैहिकीम् ॥ ४९ ॥

वासुदेव के साथ मिलकर पाँचों महारथी पाण्डवों ने उन राजाओं की और्ध्वदैहिक (मरने की बाद की) क्रियाएँ कीं ।। ४९ ।।

माघे मासि सिताष्टम्यां भीष्मः प्राणान् समत्यजत्।
राज्यं बुभुजिरे पार्था महादेव्याः प्रसादतः ॥ ५० ॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे महाभारतयुद्धवर्णने
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

माघमास की शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि के दिन भीष्म पितामह ने (सूर्य के उत्तरायण होने पर) प्राण त्याग दिये। एतदनन्तर महादेवी की कृपा से पाण्डवों ने एकान्ततः राज्यसुख का उपभोग किया ।। ५० ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
महाभारतयुद्धवर्णनात्मक
सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥

अठावनवाँ अध्याय

[कृष्ण का स्वर्गगमन]

श्रीमहादेव०— एवं निपात्य भूभारं छलेन मुनिसत्तम्!
स्वस्थानं पुनरागन्तुं मतिं चक्रे महीतलात्॥ १॥

श्रीमहादेव जी— हे मुनिश्रेष्ठ! यों छलपूर्वक (मायापुरुष के रूप में) भूभार को शीघ्र ही हल्का कर, श्रीकृष्ण ने भूतल से स्वस्थान को पुनः जाने का मन बनाया।। १।।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समागत्य धरातलम्।
द्वारकापुरमाविश्य कृष्णं वचनमब्रवीत्॥ २॥

इसी बीच ब्रह्मा जी ने भूतल पर आकर द्वारकापुरी पहुँचकर श्रीकृष्ण से यों निवेदन किया—।। २।।

ब्रह्मा०— "पृथिवीभारसंहृत्यै प्रार्थितास्माभिरीश्वरी।
देहं मानुषमाश्रित्य शम्भोरनुमतेन वै॥ ३॥

ब्रह्मा— हे परमेश्वरि! मानवदेह द्वारा पृथ्वी भार के विनाश हेतु हम लोगों ने आप से प्रार्थना की थी। उसमें भगवान् शङ्कर की भी अनुमति थी।। ३।।

मायापुरुषरूपेण जातासि धरणीतले।
तच्च जातु कृतं सर्वं पृथिवीभारपातनम्॥ ४॥

तब आप मायापुरुष के रूप में इस भूतल पर अवतरित हुईं। आज वह पृथ्वी का भार आपने प्रायः हल्का कर ही दिया है।। ४।।

परिपूर्णीकृतं चापि शम्भोर्यन्मनसेप्सितम्।
इदानीं पुनरागत्य स्वस्थानं पृथिवीतलात्।
स्वरूपं पुनराश्रित्य पालयास्मान्दिवौकसान्॥ ५॥

शम्भु के मन की इच्छा भी आपने पूर्ण कर ही दी। अब इस भूतल से पुनः स्वस्थान को लौट अपने यथार्थ रूप से आप हम देवलोगों का पूर्ववत् पालन करें।। ५।।

श्रीकृष्ण०—"ब्रह्मन्ममापि तत्रेच्छा विद्यते यत्त्वयोच्यते।
अचिरेण समायास्ये भूयः स्वस्थानमुत्तमम्"॥ ६॥

श्रीकृष्ण— हे ब्रह्मन्! मेरी भी वही इच्छा है, जो आप कह रहे हैं। मैं शीघ्र ही स्वस्थान को लौटूँगा।। ६।।

मन्त्रिपरिषद् को सूचना

श्रीमहादेव०— **एवमाश्वास्य धातारं विसृज्य जगदीश्वरी॥ ७॥**
श्यामसुन्दररूपा सा द्वारकात्यागपूर्वकम्।
स्वर्गारोहणमिच्छन्ती प्रत्युवाचाथ मन्त्रिणः॥ ८॥

श्रीमहादेव जी— इस तरह महेश्वरी ने ब्रह्मा जी को आश्वासन देकर तथा उन्हें विदाकर, श्रीकृष्णस्वरूप उन भगवती ने द्वारका त्या सहित स्वर्गारोहण की इच्छा से अपने मन्त्रियों से यों कहा—।। ७–८।।

श्रीकृष्ण०— **"यदुवंशसमुत्पन्ना मृताः सर्वे दिवं गताः।**
प्रायशस्तु मुनेः शापादष्टावक्रस्य मन्त्रिणः॥ ९॥

श्रीकृष्ण— "यदुवंश में उत्पन्न प्रायः सभी अष्टावक्र मुनि के शाप से आज दिवङ्गत हो चुके हैं।। ९।।

स्वल्पास्तिष्ठन्ति वंशेऽस्मिन् शूरा वृद्धावशेषिताः।
तेभ्यो न रोचते राज्यं न स्थितिश्च धरातले॥ १०॥

अब इस वंश में कुछ ही शूर वीर वृद्ध बच रहे हैं। उनको न राज्य अच्छा लगता है, न यह भूतल।। १०।।

तद्यास्यामि द्रुतं स्वर्गं निश्चितं मन्त्रिसत्तमाः।
दूतान् प्रेषयत क्षिप्रं हस्तिनायां युधिष्ठिरम्॥ ११॥

तो मन्त्रियो! मैं अब शीघ्र ही स्वर्ग चला जाना जाहता हूँ। अतः आप लोग शीघ्र ही सम्राट् युधिष्ठिर के पास दूत भेज दीजिये।। ११।।

ब्रुवन्तु मे सखायं च किरीटिनमरिन्दमम्।
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं महाबलम्।
स्वर्गारोहण उद्योगं मम ब्रह्मानुशासनात्"॥ १२॥

साथ ही मेरे मित्र शत्रुमर्दक अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा बलवान् भीमसेन को भी सूचित कर दीजिए कि मैं अब ब्रह्मा के परामर्श से पुनः स्वर्ग लौट जाना चाहता हूँ।। १२।।

श्रीमहादेव०— **इति कृष्णाज्ञया सर्वे मन्त्रिणो दीनमानसाः।**
दूतान् प्रस्थापयामासुर्हस्तिनायां त्वरान्विताः॥ १३॥

श्रीमहादेव जी— कृष्ण का यह आदेश सुनकर सभी मन्त्री मलिनचित्त

हो गये। फिर भी उन्होंने दबे मन से हस्तिनापुर को सूचना देने के लिये शीघ्र ही दूत भेजे।। १३।।

ते गत्वाऽऽहुर्महाराजं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
तथान्यान् पाण्डवांश्चापि कृष्णं स्वर्गमनोद्यतम्॥ १४॥

उन दूतों ने महाराज धर्मपुत्र युधिष्ठिर एवं अन्य पाण्डवों को श्रीकृष्ण के स्वर्गगमनेच्छा की सूचना दी।। १४।।

तच्छ्रुत्वा दुःखितास्तेऽपि पाण्डवाः समुपागताः।
कृष्णानुगमने कृत्वा मतिं स्थिरतरां मुने!॥ १५॥

उसे सुनकर वे पाण्डव दुःखी मन से शीघ्र ही द्वारकापुरी आ पहुँचे। हे मुने! उन्होंने भी कृष्ण के अनुगमन का ही विचार बना लिया।। १५।।

द्रौपद्याद्याः स्त्रियश्चापि कृष्णानुगमने मतिम्।
निश्चित्य प्रययुः सर्वा द्वारकायां त्वरान्विताः॥ १६॥

द्रौपदी आदि स्त्रियाँ भी भी कृष्ण के अनुगमन का ही विचार कर शीघ्र ही द्वारकापुरी पहुँच गयीं।। १६।।

अन्ये च बहवः श्रुत्वा कृष्णास्वर्गावरोहणम्।
कृष्णान्तिकमुपाजग्मुस्तस्यानुगमनेच्छया ॥ १७॥

इसी तरह अन्य लोगों ने भी, जिसने भी यह समाचार सुना, कृष्ण के अनुगमन की इच्छा से द्वारकापुरी की तरफ प्रयाण किया।।१७।।

तानभ्यर्च्य यथान्यायं कृष्णः कमललोचनः।
उवाच सोऽश्रुपूर्णाक्षः स्निग्धगम्भीरया गिरा॥ १८॥

उनके वहाँ पहुँचने पर कमलनेत्र श्रीकृष्ण ने उन सबकी यथायोग्य पूजा–अभ्यर्थना की। तदनन्तर वे उन सबसे आँखों मेंआँसू भरकर यों बोले–।। १८।।

श्रीकृष्ण०— "युधिष्ठिर महाराज मित्रार्जुन वृकोदर!
युष्माभिः प्रतिपाल्या मे पौरजानपदाः सदा।
अहं स्वर्गं गमिष्यामि साम्प्रतं पृथिवीतलात्"॥ १९॥

श्रीकृष्ण— "हे महाराज युधिष्ठिर! हे मित्र अर्जुन! हे वृकोदर! आप लोग मेरे इन नागरिकों की रक्षा करें। मैं अब इस भूमण्डल से पुनः स्वर्ग लौट जाना चाहता हूँ"।। १९।।

श्रीमहादेवः०— इति तस्य वचः श्रुत्वा पाण्डवास्तेऽतिदुःखिताः।
प्राहुः कृष्णं महात्मानं साश्रुनेत्राः पृथक् पृथक्॥ २०॥

श्रीमहादेव जी– श्रीकृष्ण के वचन सुनकर पाण्डव बहुत दुःखी हुए। उन सबने नेत्रों में जलभर कर पृथक् पृथक् श्रीकृष्ण से यों कहा– ।। २० ।।

युधिष्ठिर०—**"मां विद्धि निश्चितात्मानं तवानुगमने प्रभो!**
न स्थास्यामि क्षितौ कृष्ण त्वां विना पृथिवीतले"॥ २१ ॥

युधिष्ठिर– प्रभो! मैंने भी आप का अनुगमन करने हेतु अपना मन बना लिया है। हे कृष्ण! मैं आपके विना इस पृथ्वीतल पर एक क्षण भी रहना नहीं चाहता ।। २१ ।।

भीम०— **"अहं चानुगमिष्यामि त्वामेव यदुनन्दन!**
न स्थास्यामि क्षितौ कृष्ण त्वां विनाहं कथञ्चन"॥ २२ ॥

भीम– हे यदुनन्दन! मैं भी आपका ही अनुगमन करूँगा। मैं भी आपके विना किसी तरह भी इस धरातल पर नहीं रहना चाहता ।।२२ ।।

अर्जुन०— **"त्वं मे प्राणस्त्वमात्मा च त्वं गतिस्त्वं मतिर्मम।**
न त्वामृते क्षणं भूमौ स्थास्यामि यदुनन्दन!"॥ २३ ॥

अर्जुन– हे यदुनन्दन! आप ही मेरे प्राण, आत्मा, गति, मति सब कुछ हैं। मैं स्वयं एक क्षण भी आप के विना यहाँ रह पाऊँगा—यह आप कल्पना भी न कीजिये ।। २३ ।।

नकुल०— **"अहमप्यनुयास्यामि त्वामेव जगदीश्वर।**
न त्वामृते क्षणं स्थातुं शक्नोमि पृथिवीतले"॥ २४॥

नुकल– हे जगदीश्वर! मैं भी आप का ही अनुगमन करूँगा। मैं आपके विना एक क्षण भी यहाँ नहीं रुक सकता ।। २४ ।।

सहदेव०— **"तवानुगमने स्वामिन्न स्थास्यामि भुवि क्वचित्।**
त्वं मे प्राणो गतिः शक्ती रक्षकोऽपि जगत्त्रये"॥ २५ ॥

सहदेव– "हे स्वामिन्! आप के अनुगमन की बात आ जाने पर मैं इस भूतल पर कहीं भी नहीं रहना चाहता। आप ही इन तीनों लोकों में मेरे लिये प्राण, गति, शक्ति एवं रक्षक हैं" ।। २५ ।।

श्रीमहादेव०— **इत्येवं निश्चयं ज्ञात्वा पाण्डवानां महात्मनाम्।**
स्वांशजां द्रौपदीं कृष्णः स्मित्वा वचनमब्रवीत्॥ २६ ॥

श्रीमहादेव जी– उन महात्मा पाण्डवों का यह निश्चय जानकर श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए अपने ही अंश से सम्भूत द्रौपदी से पूछा– ।। २६ ।।

श्रीकृष्ण०—**"कृष्णे स्थास्यसि किं पृथ्व्यां किंवा स्वर्गं प्रयास्यसि?**
यथा रुचिस्तथा ब्रूहि मा चिरं द्रुपदात्मजे"॥ २७॥

श्रीकृष्ण— "हाँ, द्रौपदी! तुम्हारा क्या विचार है? तुम अभी भूतल पर ही रहोगी या स्वर्ग चलोगी?— यह मुझे बताओ, इसमें विलम्ब नहीं होना चाहिये"।। २७।।

द्रौपदी०— **"अहं तवांशसम्भूता त्वमाद्या कालिका परा।**
अहं त्वामनुयास्यामि जले जलमिव क्षणात्"॥ २८॥

द्रौपदी— "आप आद्या पराशक्ति काली हैं। मैं तो आपके अंश से सम्भूत हूँ। मैं तो आप का अनुगमन करूँगी। जैसे जल जल का ही अनुकरण करता है"।। २८।।

श्रीमहादेव— **अथ रामः समागत्य स्वर्गारोहे समुद्यतम्।**
कृष्णं त्रिजगतां नाथं रुदन् वचनमब्रवीत्॥ २९॥

श्रीमहादेव— तब बलराम ने आकर तीनों लोकों के स्वामी श्रीकृष्ण को स्वर्गारोहण के लिये उद्यत देखकर रोते हुए यह कहा—।। २९।।

श्रीराम०— **"यदि पृथ्वीं परित्यज्य स्वर्गमेवाधियास्यसि।**
अनुवृष्णिकुलोत्पन्नान्नीत्वा त्वं याहि मा चिरम्॥ ३०॥
एते वृष्णिकुलोत्पन्नाः सर्व एव महीभुजः।
न त्वामृते क्षितौ राजन् संस्थास्यन्ति कदाचन"॥ ३१॥

बलराम— हे राजन्! यदि आप को यह भूमण्डल छोड़कर स्वर्ग ही जाना है तो अपने साथ इन सभी वृष्णिकुलोत्पन्न जनों को भी साथ लेते चलिये; क्योंकि इनमें से एक भी आप विना यहाँ नहीं रहना चाहता।। ३०-३१।।

श्रीकृष्ण का स्वर्गप्रयाण

श्रीमहादेव— **ततः कौशेयवासास्तु कृष्णः कमललोचनः।**
दत्त्वा धनानि विप्रेभ्यः स्वपुरान्निर्ययौ द्रुतम्॥ ३२॥

श्रीमहादेव— तब कौशेयवस्त्रधारी, कमललोचन श्रीकृष्ण, ब्राह्मणों को अपरिमित धन देकर, अपने आवास से निकल पड़े।। ३२।।

तत्पश्चान्निर्ययौ रामः सहितः सर्ववृष्णिभिः।
पाण्डवाश्चापि निर्याताः सामात्या वनितागणैः॥ ३३॥

उनके बाद राम भी सभी वृष्णियों के साथ, तथा पाण्डव भी अपने अमात्य एवं परिवारजनों के साथ निकल पड़े।। ३३।।

सर्वे प्रापुः समुद्रस्य तीरे तेषां च पृष्ठतः।
अनेकदेशदेशीया जाता जानपदा मुने॥ ३४॥

ये सभी लोग उनके पीछे पीछे समुद्र तट पर पहुँचे। हे मुने! इनमें अनेक देश–प्रदेशों में उत्पन्न नागरिक तथा ग्रामवासी थे।। ३४।।

एतस्मिन्नन्तरे नन्दी रथं रत्नपरिष्कृतम्।
सिंहवाहं समानीय तत्रायातोऽन्तरिक्षतः॥ ३५॥

इसी बीच में नन्दी रत्नमण्डित रथ, जिसमें सिंह जुते हुए थे, लेकर आकाशमार्ग से वहाँ आया।। ३५।।

ब्रह्मा च बहुसाहस्त्रं रथानां मुनिसत्तम!
समानीयान्तरिक्षे तु संस्थितो दैवतैः सह॥ ३६॥

हे मुनिसत्तम! इसी तरह ब्रह्मा भी, हजारों रथ लेकर वहाँ देवताओं के साथ आकाश में आ गये।। ३६।।

आयातं जलधेस्तीरं वीक्ष्य कृष्णां सुरोत्तमाः।
पुष्पवृष्टिं सुमहतीं प्रचक्रुर्हृष्टमानसाः॥ ३७॥

श्रीकृष्ण को समुद्रतीर पर आया हुआ देखकर देवताओं ने प्रसन्न होकर अत्यधिक पुष्पवर्षा की।। ३७।।

अवादयन्त विविधान् मृदङ्गपटहादिकान्।
घण्टाश्च शतशो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ३८॥

साथ ही तरह तरह के वाद्यवृन्द जैसे ढोल, दमामे, नगाड़े, घण्टा आदि बजाने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं।। ३८।।

एवं कृते महोत्साहे कृष्णः कमललोचनः।
सम्भूय सहसा काली सिंहवाहं महारथम्॥ ३९॥

इस प्रकार महान् उत्सव करने के बाद वे कमलनयन श्रीकृष्ण काली के रूप में आकर तत्काल ही सिंह जुते रथ पर आरूढ़ हो गये।। ३९।।

आरुह्य त्रिदशश्रेष्ठैर्मुनीन्द्रैश्चातिसंस्तुता।
कैलासमगमच्छीघ्रं ब्रह्मादीनां च पश्यताम्॥ ४०॥

आरूढ़ होने के बाद, देवताओं एवं मुनीन्द्रों द्वारा स्तुति किये जाने पर, ब्रह्मादि देवताओं के देखते ही देखते अपने कैलास पर्वत पर चले गये।। ४०।।

द्रौपदी तु विलीनाऽभूत्तस्यामेव महामते!
स्पृष्ट्वा जलं समुद्रस्य सर्वलोकस्य पश्यतः॥ ४१॥

हे महामते! द्रौपदी तो सब लोगों के देखते ही देखते समुद्र के जल का स्पर्श कर उसी देवी में विलीन हो गयी।। ४१।।

ततो युधिष्ठिरो राजा साक्षाद्धर्ममयः प्रभुः।
विचित्रं रथमारुह्य प्राप स्वर्गं द्रुतं शुभम्॥ ४२॥

एतदनन्तर, साक्षात् धर्मावतार राजा युधिष्ठिर भी विचित्र रथ पर आरूढ़ होकर शीघ्र ही स्वर्ग चले गये।। ४२।।

रामार्जुनौ च संस्पृश्य जलधिं मुनिसत्तम!
त्यक्त्वा देहं समाश्रित्य रूपं नवघनप्रभम्॥ ४३॥
चतुर्भुजं लसत्पद्मशङ्खचक्रगदाधरम्।
आरुह्य गरुडं तूर्णं वैकुण्ठं प्रापतुः स्वयम्॥ ४४॥

हे मुनिसत्तम! वे दोनों राम एवं अर्जुन भी समुद्र का स्पर्श कर, मानवदेह छोड़कर, नये मेघ के मान श्यामवर्ण वाला तथा शङ्ख चक्र गदा धारण किये हुए चतुर्भज रूप धारण कर गरुड़ पर चढ़कर वैकुण्ठ की तरफ चले गये।। ४३-४४।।

भीमाद्याश्चापि सन्त्यज्य देहं तस्मिन्महाम्बुधौ।
प्रापुः स्वर्गे पुरं तत्तु वृष्णयश्च तथापरे॥ ४५॥

भीम आदि पाण्डव तथा अन्य वृष्णिजन भी समुद्र जल का स्पर्श कर स्वर्गलोक में पुनः लौट गये।। ४५।।

एवं गतेषु सर्वेषु रुक्मिण्याद्याश्च योषितः।
शाम्भवं देहमाश्रित्य ययुः स्वस्थानमुत्तमम्॥ ४६॥

इस तरह सब पुरुषों के चले जाने पर, रुक्मिणी आदि स्त्रियाँ भी अपना पूर्ववत् शङ्कर का रूप धारण कर अपने अपने उत्तम स्थान पर चली गयीं।। ४६।।

अपरा योषितश्चापि श्रीकृष्णस्य महामते!
देहांस्त्यक्त्वा बभूवुश्च पूर्ववद् भैरवाः क्षणात्॥ ४७॥

हे महामते! श्रीकृष्ण की अन्य स्त्रियाँ भी तत्काल पूर्व सदृश भैरवरूप में चली गयीं।। ४७।।

श्रुत्वा कृष्णागमं तत्र श्रीदामः सत्यमन्वयुः।
यस्याभूद्वसुदामस्तु विजया समभूत्तथा॥ ४८॥

उधर श्रीदामा ने जब कृष्ण का गमन सुना तो उसने भी उनका अनुगमन किया। विजया के अवतार वसुदामा भी अपने लोक चले गये।। ४८।।

एवं समभवद्देवी श्यामसुन्दररूपिणी।
पृथ्वीभारापहाराय भर्तुरिच्छावशेन तु॥ ४९॥

यों वह देवी पृथ्वी के भारापहरण के लिये तथा भर्ता (शङ्कर) की इच्छा पूर्ति हेतु कृष्ण (श्यामसुन्दर) रूपधारिणी ।। ४९।।

पुंरूपेण जगन्माता लीलया धरणीतले।
हत्वा च पृथिवीभारंच्छलेनैव महामते।
भूयः स्वरूपमाश्रित्य स्वस्थानं समुपागमत्॥ ५०॥

वह जगन्माता लीला करने के लिये इस धरणी पर पुरुष रूप में आयी और हे महामते! छल (पुरुषरूप) से पृथ्वी का भार हर कर।। ५०।।

कल्पान्तरे तु भूपृष्ठे द्वापरान्ते महामुने।
विष्णुः श्रीकृष्णरूपेण पूर्णांशेन जगत्प्रभुः॥ ५१॥
शम्भोर्वरप्रदानेन सम्भविष्यति लीलया।
निहनिष्यति भूभारमेवमेव महामते॥ ५२॥

पुनः अपना रूप धारण कर अपने लोक में चली गयीं। हे महामुनि! दूसरे कल्प में द्वापर के अन्त में विष्णु ही शङ्कर के वर से अपने पूर्ण अंशों के साथ कृष्ण रूप में अवतरित होकर अपनी लीला करेंगे तथा इसी प्रकार पृथ्वी के भार को हल्का करेंगे।। ५१–५२।।

कृष्णावतारचरित–श्रवण का माहात्म्य

कृष्णावतारचरितं जगदम्बिकायाः,
शृण्वन्ति ये भुवि पठन्ति च भक्तियुक्ताः।
ते प्राप्य सौख्यमतुलं परतश्च देव्याः,
सम्प्राप्नुवन्ति पदवीममरैरलभ्याम्॥ ५३॥

इति श्रीमहाभगवते उपपुराणे स्वर्गयात्रागमने
अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५८॥

जो भक्तजन जगन्माता के इस कृष्णावतारचरित को भक्तिपूर्वक सुनेंगे या इसका परायण करेंगे वे यहाँ अतुलित सुख भोगकर परलोक में देवी के सायुज्य पद को प्राप्त करेंगे, जो कि देवताओं को भी दुर्लभ है।। ५३।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में स्वर्गगमन-वर्णनात्मक
अठावनवाँ अध्याय समाप्त।।

उनसठवाँ अध्याय

[ब्रह्ममयी महाकाली का स्थानवर्णन]

श्रीनारद०—"देवदेव जगन्नाथ कृपामय जगत्प्रभो।
भूयस्ते श्रोतुमिच्छामि देव्याख्यानमनुत्तमम्॥ १॥

श्रीरद— हे देवाधिदेव! हे जगन्नाथ! हे कृपामय! हे जगत्स्वामिन्! देवी की श्रेष्ठ कथा मैं आपसे आगे भी सुनना चाहता हूँ।। १।।

मूर्तिर्या भगवत्यास्तु कैलासेऽपि शिवान्तिके।
तयोस्तु खलु दुर्गायाः सूक्ष्मं रूपं तथाऽऽलयम्॥ २॥

भगवती की वास्तविक मूर्ति में तथा कैलास पर्वत पर भगवान् शङ्कर के पास स्थित मूर्ति में क्या अन्तर है? उनका वास्तविक रूप तथा आलय क्या है?।। २।।

शारदीया महापूजा प्रसादात्त्वन्मुखाम्बुजात्।
इदानीं ब्रूहि काल्याश्च सूक्ष्मं रूपं तथाऽऽलयम्"॥ ३॥

शारदीया महापूजा का आख्यान आप अपने श्रीमुख से सुनाइये, तथा काली भगवती के सूक्ष्म रूप तथा आलय का वर्णन कीजिये।। ३।।

भगवती दुर्गा का उत्कृष्ट स्थान

श्रीमहादेव०— दुर्गायाः परमं स्थानं यन्मया ते समीरितम्।
दुर्गम्यं देवगन्धर्वयक्षकिन्नररक्षसाम्॥ ४॥

श्रीमहादेव जी— भगवती दुर्गा के उत्कृष्ट स्थान का वर्णन मैं तुमको पहले भी कर चुका हूँ, जो कि देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा राक्षसों के लिये भी दुर्लभ है।। ४।।

रम्य स्थान

तत्पार्श्वे तु सुदुर्गम्यं ब्रह्माद्यैस्त्रिदशेश्वरैः।
सुगुप्तं परमं रम्यं स्थानमस्मिन् सुशोभनम्॥ ५॥

उसके पास ही ब्रह्मा आदि देवताओं से कठिनाई से प्राप्तव्य, पूर्णतः गुप्त, उत्कृष्टतया रमणीय यह स्थान अत्यधिक सुन्दर है।। ५।।

वेष्टितं परितश्चारु सुधामयमहाब्धिना।
अनर्घ्यरत्नसम्भारघटितं ज्वलनप्रभम्॥ ६॥

यह अमृतसमुद्र द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है। इसमें महँगे रत्नजटित हैं। यह दिव्य कान्ति से देदीप्यमान है।। ६।।

रम्य नगर

तन्मध्येऽस्ति पुरं रम्यं रत्नप्राकारतोरणम्।
चतुर्द्वारं चतुर्दिक्षु मुक्ताजालातिभूषितम्।
चित्रध्वजपताकाभिरतीव समलंकृतम्॥ ७॥

उसके बीच में रत्न के परकोटे से युक्त बहिर्द्वार वाला, चार दरवाजों वाला, चारों दिशाओं में मोतियों की मालाओं से अलङ्कृत, चित्र विचित्र ध्वजाओं से अत्यधिक शोभित एक पुर है।। ७।।

विचित्रखट्वाङ्गकरा रक्तनेत्राः सहस्रशः।
रक्षन्ति भैरवाः सर्वे तानि द्वाराणि सर्वदा॥ ८॥

वहाँ हाथों में विचित्र प्रकार के खट्वाङ्ग अस्त्र लिये हुए लाल नेत्रों वाले हजारों भैरव रक्षा हेतु उन द्वारों पर सदैव नियुक्त हैं।। ८।।

तस्या आज्ञां विना यानि समुल्लङ्घ्य सुरासुराः।
न शक्नुवन्ति वै गन्तुं ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः॥ ९॥

उस देवी की आज्ञा के विना कोई भी देवता या असुर, यहाँ तक कि ब्रह्मा आदि मुख्य देवता भी उन द्वारों का उल्लङ्घन नहीं कर सकते।। ९।।

रम्य मन्दिर

तन्मध्ये मन्दिरं रम्यं नानारत्नविनिर्मितम्।
मणिस्तम्भशतैर्युक्तं सुवर्णेनातिवेष्टितम्॥ १०॥

उस नगर के बीच में विविध रत्नों से विशेष प्रकार से निर्मित, मणिमय सैकड़ों स्तम्भों से युक्त, सुवर्ण से वेष्टित एक मन्दिर है।। १०।।

रम्य सिंहासन

तन्मध्येऽयुतसिंहाढ्यं रत्नसिंहासनं महत्।
तस्योपरि प्रविन्यस्तशवोपरि महेश्वरी॥ ११॥
महाविद्या महाकाली सदा तिष्ठति नारद!
सर्वेषां हृत्सरोजस्था सैव मायामयी शुभा॥ १२॥

उस मन्दिर के मध्य में हजारों सिंहों से परिवेष्टित एक विशाल रत्नमय सिंहासन है। उस पर रखे हुए शव पर महेश्वरी देवी महाविद्या महाकाली सदा विराजमान हैं। वही मायामयी शुभा देवी सब प्राणियों के हृत्कमल में विराजमान हैं।। ११–१२।।

ब्रह्माण्डकोटिकोटीनां सृष्टिस्थितिविनाशिनी।
एकैव सा महादेवी स्वेच्छया ब्रह्मरूपिणी॥ १३॥

करोड़ों करोड़ ब्रह्माण्डों की वे रचयित्री हैं। उनकी सृष्टि स्थिति एवं विनाश की कर्त्री हैं। वह महादेवी एक ही हैं, वह स्वेच्छा से ब्रह्मस्वरूपा हैं।। १३।।

विजयादिचतुष्षष्टियोगिन्यः परिचारिकाः।
पुरकर्माणि कुर्वन्ति सदा सावहिता मुने!॥ १४॥

हे मुने! विजया आदि चौंसठ (६४) महायोगिनियाँ परिचारिका के रूप में सदा सावधान रहती हुईं उस नगर की सेवा में संलग्न रहती हैं।। १४।।

तस्यास्तु दक्षिणे भागे महाकालः सदाशिवः।
तेन सार्धं महाकाली हृष्टा संरमते सदा॥ १५॥

उस के दक्षिण भाग में भगवान् महाकाल सदाशिव सर्वदा विराजमान रहते हैं। उनके साथ वह महादेवी प्रसन्न होती हुई विहार करती रहती हैं।। १५।।

एवमन्तःपुरं तस्या भैरवैर्बहिरन्वितम्।
अत्याश्चर्यतमं सौम्यं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम्॥ १६॥

इस तरह महादेवी का वह अन्तःपुर भैरवों द्वारा सुरक्षित है; वह अत्यन्त आश्चर्यमय सौम्य तथा ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा भी अगम्य है।। १६।।

ब्रह्मेशविष्णुभिः सार्धं समागत्य महामते!
तस्या दर्शनमात्रेण सुराधीशः पुरन्दरः।
मुक्तोऽभवद् ब्रह्महत्याजनिताद्धोरकिल्बिषात्॥ १७॥

हे महामते! ब्रह्मा जी, भगवान् विष्णु तथा भगवान् शङ्कर के साथ आकर देवराज इन्द्र उनके दर्शनमात्र से ब्रह्महत्या रूप महापातक से मुक्त हो गये।। १७।।

तदैव ददृशुस्तत्र ब्रह्मविष्णुपुरन्दराः।
प्रसादाद्देवदेवस्य कालीं परमदेवताम्॥ १८॥

ब्रह्मा विष्णु एवं देवराज इन्द्र ने भगवान् देवाधिदेव शङ्कर की कृपा से उसी समय रम्य मन्दिर में उन परा देवी भगवती काली के दर्शन किये थे।। १८।।

तद्बहिर्वर्णनं वत्स शृणुष्वावहितो मुने!
सर्वतो वेष्टितं रत्नप्राकारैर्बहिरङ्गणम्।
चतुर्दिक्षु चतुर्द्वारं रत्नतोरणभूषितम्॥ १९॥

उस *(मन्दिर) के बाह्य क्षेत्र* का वर्णन भी हेमहामते! तुम ध्यानपूर्वक सुनो। उसका बाह्य प्राङ्गण चारों दिशाओं में चार द्वारा वाला तथा रत्नमय तोरण से शोभित है।। १९।।

तानि रक्षन्त्यविरतं सर्वे तु गणनायकाः।
तदन्तश्चोपयोगिन्यः कामाख्याद्या महामते!॥ २०॥

उन द्वारों की रक्षा निरन्तर सभी गणनायक करते हैं। हे महामते! वहाँ कामाख्या आदि छोटी योगिनियाँ विराजमान हैं।। २०।।

तद्बहिर्दर्शनाकाङ्क्षिब्रह्माणः कतिकोटयः।
विष्णवश्च तथाऽसंख्या वसन्ते दर्शनोत्सुकाः॥ २१॥

वहाँ देवी के दर्शनों की आकांक्षा में उन द्वारों पर करोड़ों ब्रह्मा एवं असङ्ख्य विष्णु प्रतीक्षारत खड़े रहते हैं।। २१।।

स्थिता ध्यानसमासक्ता नानाब्रह्माण्डवासिनः।
तद्बहिस्तु चतुर्द्वारं नानारत्नपरिष्कृतम्॥ २२॥

इसी तरह नाना ब्रह्माण्डवासी अन्य प्राणी भी वहाँ प्रतीक्षारत रहते हैं। इसके बाहर का द्वार भी चार दरवाजों वाला, अनेकविध रत्नों से परिष्कृत है।। २२।।

रक्षन्ति कोटिशस्तानि गणा द्वाराणि सर्वदा।
तद्बहिः कोटिशः सन्ति इन्द्राद्यास्त्रिदशेश्वराः॥ २३॥

उस द्वार की रक्षा भी अनेक गण सर्वदा करते रहते हैं। उन द्वारों पर भी अनेक इन्द्र आदि देवता देवी के दर्शन हेतु प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं।। २३।।

ध्याननिष्ठाश्चिरेणापि सकृद्दर्शनकाङ्क्षिणः॥ २४॥

देवी की एक झाँकी पानेके लिये ध्याननिष्ठ होकर प्रतीक्षारत रहते हैं।। २४।।

एवं बहुविधं द्वारं नानारत्नपरिष्कृतम्।
रक्षन्ति कोटिशः सर्वे देव्याज्ञापरिपालकाः॥ २५॥

इस प्रकार के अनके प्रकार के द्वारों वाला नाना रत्नों से परिष्कृत वह मन्दिर देवी के आज्ञाकारी सेवकों द्वारा रक्षित है।। २५।।

पारिजातवनं रम्यमुत्तरे परिकीर्तितम्।
प्रफुल्लं कुसुमाकीर्णं चित्रभ्रमरसंकुलम्॥ २६॥

उस *मन्दिर के उत्तर बाह्य प्रदेश में* रम्य पारिजात वृक्षों का वन है।

जिसमें खिले फूल शोभायमान रहते हैं। नये कुसुमों से वह वन लदा रहता है। उन पर चित्र विचित्र भौंरे मँडराते रहते हैं।। २६।।

वसन्तः सर्वदा तत्र वायुर्वाति शनैः शनैः।
विचित्रपक्षिरूपेण ब्रह्मविष्णुमुखाः सुराः।
गायन्ति चरितं काल्यास्तस्मिन्मधुरनिःस्वनैः॥ २७॥

वहाँ वसन्त ऋतु सर्वदा उपस्थित रहती है। मन्द मन्द वायु बहती रहती है। चित्रविचित्र पक्षियों के रूप में ब्रह्मा विष्णु आदि देवता मधुर कलरव करते रहते हैं। अपनी मधुर ध्वनि में काली देवी का निरन्तर गुणगान करते रहते हैं।। २७।।

पूर्वस्थं मुनिशार्दूल रम्यं चारुतरं सरः।
स्वर्णपङ्कजकह्लारकुमुदैरतिशोभितम् ॥ २८॥

उस *मन्दिर के पूर्वभाग में* हे मुनिशार्दूल! एक रमणीय सुन्दर सरोवर है। स्वर्णवर्ण के पङ्कजों, कल्हारों तथा कुमुदों से वह अतीव शोभायमान है।। २८।।

गुञ्जितभ्रमरश्रेणीपक्षवातप्रकम्पितैः ।
चम्पकाशोकपुष्पैश्च कूलं तस्य मनोहरम्॥ २९॥

गुञ्जन करते उड़ते भौरों के पङ्खों से उठी वायु से वह कम्पित है, चम्पा एवं अशोक के पुष्पों से उसके तट की शोभा में वृद्धि हो रही है।। २९।।

विचित्रमणिसोपानैः परितः परिशोभितम्।
एवं तस्याः पुरं रम्यं वाचातीतं महामते!॥ ३०॥

वह सरोवर अनेकविध मणिरत्नों से जटित सीढ़ियों से चारो ओर अलङ्कृत है। हे महामते! इस तरह वह काली देवी का नगर वाणी से वर्णनातीत है।। ३०।।

तथान्यासां च विद्यानां नवानामपि तत्र वै।
एवं प्रत्येकतो रम्यं पुरमस्ति पृथक् पृथक्॥ ३१॥

तथा इसी तरह अन्य नौ (९) महाविद्यायों के नगर भी वहाँ स्थित हैं। यों समझिये कि वहाँ सभी महाविद्यायों के नगर पृथक् पृथक् स्थित हैं।। ३१।।

तासां च दक्षिणे भागे नानारूपः सदाशिवः।
आस्ते पृथक् पृथक् तेन रमते सा पृथक् पृथक्॥ ३२॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीब्रह्ममयीमहाकालीस्थानवर्णनं
नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इसी तरह उनके *दक्षिण भाग* में अनेकरूपधारी सदाशिव भी विराजमान रहते हैं, जिनके साथ वे महाविद्याएँ पृथक् पृथक् रमण करती रहती हैं ।। ३२ ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
श्री ब्रह्ममयी महाकाली के स्थानवर्णन रूप
उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥

साठवाँ अध्याय

[देवराज इन्द्र को ब्रह्महत्या दोष]

श्रीनारद०—देवदेव महेशान! विस्तरेण मम प्रभो!
इन्द्रस्य ब्रह्महत्याऽभूद् यथा स च महामतिः ॥ १ ॥

श्रीनारद— हे देवाधिदेव! हे महेश्वर! प्रभो! अब मुझे यह बताइये कि उन महामति इन्द्र को ब्रह्महत्या कैसे लगी?।। १।।

ब्रह्माद्याश्चागमन् देवा महाकालीदिदृक्षवः।
देवदेवप्रसादेन यथा ब्रह्मादयश्च ते ॥ २ ॥
व्यतीत्य सर्वलोकान्वै तस्या लोकमुपागमन्।
यथा च तत्पुरद्वारं भैरवैरभिरक्षितम् ॥ ३ ॥
व्यतीत्यान्तःपुरगता यथा देवीं व्यलोकयन्।
ददृशुर्यादृशीं मूर्तिमेतदाचक्ष्व साम्प्रतम् ॥ ४ ॥

ब्रह्मा आदि देवता महादेवी (काली) के, दर्शन करने की इच्छा से क्यों आये थे? तथा देवाधिदेव की कृपा से वे ब्रह्मा आदि देवता सब लोकों को पार कर उसके लोक में क्यों आये थे? तथा उसके मन्दिर में कैसे पहुँचे जब कि वह मन्दिर भैरवों द्वारा अभिरक्षित था? तथा उन द्वारों को पार कर देवी के दर्शन करने पहुँचे तो उस देवी का आकार कैसा था?— ये सब बातें अब आप मुझे विस्तार से बताइये?।। २–४।।

वृत्रासुरकथा

श्रीमहादेव०— ब्रह्मदत्तवरोद्धूतः पूर्वं वृत्रो महासुरः।
निर्जित्य सकलान्देवान्स्वयमिन्द्रो बभूव ह ॥ ५ ॥

श्रीमहादेव— प्राचीन काल में ब्रह्मा जी के वर–प्रभाव से उन्नतिप्राप्त वृत्र नाम का असुर सभी देवताओं को पराजित कर स्वयं इन्द्र बन बैठा।। ५।।

चन्द्रसूर्याग्निमरुतां कुबेरस्य यमस्य च।
अपहृत्याधिपत्यं महाबलपराक्रमः।
ऐकाधिपत्यं चक्रे वै त्रिषु लोकेषु नारद ॥ ६ ॥

हे नारद! उस महाबलशाली असुर ने चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु, कुबेर

एवं यम—आदि सभी देवताओं का आधिपत्य छीनकर सभी लोकों पर अपना एकच्छत्र आधिपत्य स्थापित कर लिया।। ६।।

'ब्रह्मणा कल्पितो मृत्युर्दधीचेरस्थिनिर्मितात्।
महास्त्राद्देवराजस्य हस्तात्तस्य दुरात्मनः'॥ ७॥

'उस दुष्ट राक्षस की हत्या दधीचि ऋषि की अस्थियों से निर्मित वज्र अस्त्र से इन्द्र के हाथों होगी— ऐसी ब्रह्मा जी ने व्यवस्था की है'।। ७।।

बृहस्पत्युपदेशेन देवराजः पुरन्दरः।
सम्प्रार्थ्य पद्मयोनिं तज्ज्ञातवान्मुनिसत्तम॥ ८॥

वृहस्पति द्वारा यह बताये जाने के बाद, देवराज इन्द्र ने हे मुनिसत्तम! ब्रह्मा से पूछकर इस बात को विस्तार से जाना।। ८।।

ततो दधीचेर्निकटं स्वयमिन्द्रः समभ्यगात्।
तदस्थिभिक्षामन्विच्छञ्जगतां त्राणहेतवे॥ ९॥

फिर वह देवराज इन्द्र दधीचि ऋषि के पास जगद्रक्षानिमित्त उनसे उनके देह की अस्थियाँ माँगने के लिये स्वयं गया।। ९।।

प्रणम्य तं महात्मानं दधीचिं मुनिसत्तमम्।
कृताञ्जलिपुटः प्राह दधीचिः स्वागतं मुने॥ १०॥

हे मुने! उसने वहाँ मुनिश्रेष्ठ दधीचि का प्रणाम कर हाथ जोड़ते हुए अपने मन की इच्छा बतायी।। १०।।

ततो मुनिरपि ज्ञात्वा देवराजं समागतम्।
उत्थाय आसनं दत्वा पप्रच्छ कुशलादिकम्॥ ११॥

तब मुनि ने भी देवराज इन्द्र को आया हुआ जानकर, उठकर आसन देते हुए कुशल—मङ्गल पूछा, और कहा—।। ११।।

किमर्थमत्रागमनं देवराज वदस्व तत्।
इत्युक्तो मुनिना प्राह देवराजो मुनिं मुने॥ १२॥

"हे देवराज! आप का यहाँ आगमन किस कारण हुआ है? कृपया मुझे बताइये?" हे मुनि! ऐसा कहे जाने पर उन मुनि दधीचि से देवराज ने कहा।। १२।।

अस्माकं यादृशं वृत्तं युष्माकं किमगोचरम्।
ब्रह्मदत्तवरोद्भूतो वृत्रो नाम महासुरः।
विजित्यास्माँल्लोकपालान् त्रिलोकेशोऽभवत्स्वयम्॥ १३॥

देवराज ने कहा— "इस समय हम देवताओं पर जो कुछ घटित हो

रहा है, वह आप से गुप्त नहीं है। ब्रह्मा जी के आशीर्वचन से उन्नति प्राप्त कर यह वृत्रासुर हम सभी लोकपालों को पराजित कर तीनों लोकों का स्वामी बन बैठा है ।। १३ ।।

वयं तु तद्भयात्सर्वे स्वर्गं त्यक्त्वा दिवौकसः।
मनुष्या इव मर्त्येऽस्मिन् वसामो मुनिपुङ्गव॥ १४॥

हे मुनिपुङ्गव! हम सभी देवता उसके भय से स्वर्ग छोड़कर मनुष्यों की तरह इस मर्त्यलोक में आकर वास कर रहे हैं ।। १४ ।।

न यज्ञभागं प्राप्नोमि नार्चयन्ति च केचन।
एवं दुर्गतिमापन्नः किमन्यत्कथयामि ते॥ १५॥

इस समय न मुझको कहीं यज्ञभाग मिल रहा है, न कोई मेरी पूजा ही कर रहा है। कहाँ तक कहूँ, इस समय हम लोगों की बहुत दुर्गति हो रही है ।। १५ ।।

निस्तारयसि चेद्देवांस्त्वमेव कृपया मुने!
दुःखार्णवनिमग्नानां निष्कृतिस्तु त्वमेव हि॥ १६॥

हे मुने! आप यदि कृपा कर दें तो इस विपत्ति से देवताओं का त्राण हो जाय। इस समय हम देवताओं को इस दुर्गति से निष्कासन केवल आपके हाथों में है ।। १६ ।।

दधीचिः०—**जानामि सर्वं यद्भूतमपरं यद्भविष्यति।**
विज्ञानचक्षुषैरिन्द्र किं करोमि वदस्व तत्॥ १७॥

दधीचि— हे इन्द्र! जो अब तक हुआ है, उसे मैं अपने ज्ञानचक्षु से जानता हूँ और आगे जो होगा—उसे भी मैं जानता हूँ। अब मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ?—यह मुझे बताओ ।। १७ ।।

इन्द्र०—**कथयिष्यामि किं ब्रह्मन्भयं मे जायते भृशम्।**
यदर्थं त्वामनुप्राप्तस्तच्छृणुष्व महामुने॥ १८॥

इन्द्र— हे ब्रह्मन्! मैं आपसे अपने मन की बात कैसे कहूँ? मुझे बहुत भय लग रहा है। हे महामुने! फिर भी मैं जिस कार्यसिद्धि के लिये आपके पास आया हूँ, उसे आप सुनें ।। १८ ।।

न तस्य मृत्युर्विधिना कल्पितोऽन्यप्रकारतः।
त्वदस्थिनिर्मितास्त्रेभ्यस्तेनाहमागतोऽस्मि भोः॥ १९॥
एतत्ते कथितं सर्वं यदर्थमहमागतः।
इदानीं मुनिशार्दूल यथायोग्यं विवेचय॥ २०॥

विधि ने उस राक्षस की मृत्यु किसी अन्य प्रकार से नहीं लिखी है। केवल आप की अस्थियों से निर्मित अस्त्र से ही उसकी मृत्यु हो सकेगी। यही बात है, जिसके लिये मैं आपके पास आया हूँ। हे मुनिशार्दूल! अब आप की जो इच्छा हो वैसा करें।। १९-२०।।

श्रीमहादेव०— इत्युक्तो देवराजेन मुनीन्द्रः समचिन्तयत्।
किमेनं विमुखं कुर्यां किंवा देहं त्यजाम्यहम्॥ २१॥

श्रीमहादेव जी— देवराज द्वारा यों निवेदन किये जाने के बाद उन महामुनि ने सोचा कि क्या इनको अस्थिदान का निषेध कर रिक्तहस्त लौटा दूँ या देवकार्यहेतु अपने देह का त्याग कर दूँ?।। २१।।

एवं द्वैधमना भूत्वा किञ्चित्कालं महामतिः।
देहत्यागं विनिश्चित्य देवराजमुवाच ह॥ २२॥

यों कुछ समय तक सन्दिग्धचित्त होकर अन्त में उन महामति ने देवकार्यहेतु अपना देहत्याग सुनिश्चित कर देवराज से यों कहा—।। २२।।

दधीचि०—

सम्भ्रष्टराज्या यदि देवसङ्घा निस्तारमायान्ति महासुरेन्द्रात्।
मदस्थिभिस्तत्खलु देवराज! त्यक्ष्यामि योगेन शरीरमेतत्॥ २३॥

दधीचि— "हे देवराज! यदि राज्यच्युत देवसमूह उस महान् असुर से मेरी अस्थियों के बल पर मुक्ति पा जाय तो मैं अपने इस शरीर को योगबल से त्याग दूँगा।। २३।।

धन्यं शरीरं खलु तस्य देहिनो यस्य व्ययः स्यात्परसौख्यहेतवे।
अनित्यमेतत् स हि धर्म एव नित्यस्तदेनं परिसन्त्यजामि॥ २४॥

किसी का शरीर किसी संकटग्रस्त को सुख प्रदान करने का निमित्त बन जाय तो इससे बढ़कर उसके लिये प्रसन्नता की क्या बात हो सकती है? यह शरीर तो अनित्य है; धर्म ही नित्य है, इसके लिये मैं अपना शरीर त्याग रहा हूँ"।। २४।।

इत्येवमुक्त्वा स मुनिस्तदा मुने जाज्वल्यमानं निजतेजसा ह्यलम्।
योगेन संत्यज्य शरीरमेतदवाप मोक्षं सुरराजसम्मुखे॥ २५॥

हे मुने! यह कहकर, उस मुनि ने अपने तेज प्रदीप्त शरीर को योगबल से छोड़कर देवराज के देखते ही देखते मोक्ष प्राप्त कर लिया।। २५।।

इन्द्रस्तदालोक्य विनिःश्वसन्मुहुर्धिगस्तु लोकान्विषयैषिणोऽस्मान्।
आक्षिप्य सम्भूय विषण्णमानसस्तस्थौ स कालं कियदेव तत्र सः॥ २६॥

यह देखकर इन्द्र ने दु:खपूर्वक सोचा कि 'हम विषयाभिलाषी पुरुषों को धिक्कार है कि हम अपने लिये इतना हीन कार्य कराने के लिये उद्यत हो जाते हैं।' यह कहकर देवराज इन्द्र विषण्ण (दु:खी) मन होकर कुछ काल तक वहाँ स्थिर भाव से बैठे रहे।। २६।।

ततस्तदस्थीन्यवगृह्य सादरो महासुरेन्द्रस्य वधार्थमेव सः।
नानाविधास्त्राणि विनिर्ममे मुने तैरस्थिभिर्देवगणेन मन्त्रयन्॥ २७॥

तदनन्तर, मुनि की अस्थियों को ससम्मान लेकर, महान् असुर के वध के लिये, उनसे देवताओं के परामर्श से, नानाविध अस्त्र बनावाये।। २७।।

ततः सुरैः सार्धममोघविक्रमो महासुरं देवसुरासदं ययौ।
महोग्रधन्वा सुरवृन्दनायकः समाह्वयञ्चापि महाहवे रिपुम्॥ २८॥

पुन: सफल प्रतापवान् देवराज इन्द्र, देवताओं को साथ लेकर उग्र धनुष् उठा कर असुर के सम्मुख जाकर उसको, युद्ध हेतु ललकारने लगा।। २८।।

ततः प्रवृत्ते तु मुने महाहवे दैत्येश्वरं तं निजघान वासवः।
तदस्थिसन्निर्मिततीव्रमार्गणैर्वज्रेण चक्रेण महोज्ज्वलेन च॥ २९॥

हे मुने! तब उन दोनों में भयङ्कर युद्ध छिड़ने पर इन्द्र ने वृत्रासुर को उस ऋषि की अस्थियों से निर्मित बाणों से, वज्र से, तथा चक्र से मार डाला।। २९।।

एवं सुरेन्द्रस्य बभूव पातकं तद्ब्रह्महत्याकृतमेव नारद!
शृणु प्रवक्ष्यामि च साम्प्रतं यथा ददर्श कालीं जगदेकमातरम्॥ ३०॥

महाभागवते उपपुराणे दधीचिप्राणत्यागे देवराजस्य ब्रह्महत्यावर्णने
षष्टितमोऽध्यायः॥ ६०॥

हे नारद! इस घटना के कारण इन्द्र ब्रह्महत्याजन्य महापातक से दूषित हुआ था। अब मैं तुम्हें वह सब बताऊँगा कि उसने जगन्माता काली के दर्शन कैसे किये थे।। ३०।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
दधीचि-देहत्याग एवं ब्रह्महत्याविवरणात्मक
साठवाँ अध्याय समाप्त।।

इकसठवाँ अध्याय

[ब्रह्ममयी-स्थानानुसन्धानवर्णन]

इन्द्र द्वारा ब्रह्महत्यानिवारण की जिज्ञासा

श्रीमहादेव०— निहत्य समरे दैत्यं वृत्रं समरदुर्जयम्।
ऐरावतं समारुह्य सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥ १ ॥
ब्रह्मर्षिभिस्तूयमानो महोत्सवसमुत्सुकः।
प्रविवेश पुरं स्वीयं सहस्राक्षो महामते ॥ २ ॥

श्रीमहादेव जी— युद्ध में वृत्रासुर को, जो कि समर में दुर्जय था, मारकर सहस्र नेत्र वाले देवराज इन्द्र, ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर, सभी देवताओं से परिवृत होकर ब्रह्मर्षियों द्वारा स्तुति प्राप्त कर महोत्सव पूर्वक अपने नगर (इन्द्रपुरी=स्वर्ग) में प्रविष्ट हुए।। १–२।।

उपविश्य सभायां स देवर्षीन् देवपुङ्गवान्।
पप्रच्छावनतो भूत्वा स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥ ३ ॥

वहाँ सभा में विराजमान देवर्षियों तथा प्रमुख देवताओं से विनम्र होकर स्नेहमय गम्भीरवाणी में उन्होंने पूछा—।। ३।।

इन्द्र०— "दधीचिमुनिशार्दूलो मम वाक्यानुसारतः।
अस्थीनि मह्यं दातुं वै देहं त्यक्त्वा दिवं गतः ॥ ४ ॥

इन्द्र— मुनिश्रेष्ठ दधीचि ने मेरे कहने से अपने शरीर की अस्थियाँ मुझे देकर अपने शरीर का त्याग कर मृत्यु का वरण कर लिया।। ४।।

तन्मे जाता ब्रह्महत्या ततो मुक्तः कथञ्चन।
भवामि ब्रूत मे विप्राः किं करिष्यामि साम्प्रतम्" ॥ ५ ॥

इससे मुझको ब्रह्महत्या का पातक लगा। उससे मैं कैसे मुक्त होऊँ? हे विप्रो! इसका कोई उपाय आप लोग मुझे बताइये?।। ५।।

ऋषय— जीवन्मुक्तो मुनिश्रेष्ठ स्वेच्छया स दिवं गतः।
सम्पूर्णा ब्रह्महत्या ते न जाता वृत्रसूदन! ॥ ६ ॥

ऋषिगण— "वे मुनिश्रेष्ठ तो जीवन्मुक्त थे, वे स्वेच्छा से मरणभाव को प्राप्त हुए हैं। अतः हे वृत्रशत्रु! आपको सम्पूर्ण ब्रह्महत्या नहीं लगेगी।। ६।।

अश्वमेधं महायज्ञं महापातकनाशनम्।
कुरुष्व देवराज त्वं तत्पापशमनाय हि"॥ ७॥

फिर भी आप इस महापातक के निवारण के लिये अश्वमेधयज्ञ का अनुष्ठान कीजिये"।। ७।।

बृहस्पतिरपि श्रुत्वा तथेत्याह महामतिः।
ऊचुर्देवा अपि तथा ततः शान्तमना हरिः॥ ८॥
विवेशान्तःपुरं देवाः स्वं स्वं स्थानं ततो ययुः॥ ९॥

महामति वृहस्पति (देवगुरु) ने भी उन विप्रों के अनुसार ही अपनी सम्मति दी। देवताओं ने भी इसी बात का अनुमोदन किया। इससे देवराज शान्त चित्त से अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए। फिर सभी देवता अपने अपने स्थान पर चले गये।। ८–९।।

ततः सुरपतिर्यज्ञमश्वमेधं यथाविधि।
चकार मुनिशार्दूल! बहुसद्व्ययपूर्वकम्॥ १०॥

हे मुनिशार्दूल! तब देवराज इन्द्र ने विधिपूर्वक, अत्यधिक व्यय करके, अश्वमेधयज्ञ का आयोजन किया।। १०।।

देवर्षि नारद की असहमति

तत आगत्य देवर्षिरेकदा नारदो मुनिः।
प्राह तं सुरवृन्दानामधिपं सुरसंसदि॥ ११॥

एक बार देवर्षि नारद देवराज के पास आये और भरी देवसभा में उनसे यों बोले—।। ११।।

"तवापि कृतयज्ञस्य ब्रह्महत्याप्रवर्तिने।
ततस्तत्क्षालनार्थं त्वं यतस्व सुरभूपते"॥ १२॥

"ब्रह्महत्या की निवृत्ति के लिये भले ही आपने यज्ञ कर लिया हो, परन्तु उससे उसकी निवृत्ति नहीं होती! अतः हे देवराज! उसकी निवृत्ति के लिये पुनः प्रयास करें"।। १२।।

इन्द्र०— "अश्वमेधो महायज्ञः कृतस्तत्पापशान्तये।
तथापि वर्तते तत्किं करिष्यामि वदस्व तत्"॥ १३॥

इन्द्र—"महामुने! मैंने तो उस पाप की शान्ति के लिये अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कर दिया है। यदि फिर भी वह पाप बच गया हो तो आप उसका उपाय बताइये?"।। १३।।

नारद०— गुरुं गोतममिन्द्र त्वं पृच्छ गत्वा महामते!
कथयिष्यत्युपायं ते स हि सर्वार्थविन्मुनिः ॥ १४॥

नारद– "हे महामते! इन्द्र! आप गुरु गोतम से जाकर इस पाप की निवृत्ति का उपाय पूछें। वे आप को इसका उपाय बतायँगे; क्योंकि वे मुनि सर्वार्थवेत्ता हैं।। १४।।

गुरोर्वाक्यं परं शास्त्रं गुरोर्वाक्यं परं तपः।
गुरुस्तुष्टो वदान्यश्च तद्भवत्येव नान्यथा॥ १५॥

हे देवराज! गुरु का वाक्य ही शास्त्र है, गुरु का वाक्य ही तप है। यदि गुरु सन्तुष्ट होकर कुछ कह दें तो वह सत्य ही होता है, उससे अन्यथा नहीं हो सकता।। १५।।

प्रायश्चित्तं गुरोर्वाक्यं सर्ववेदेषु सम्मतम्।
तदाज्ञया कर्म कृत्वा पापान्निष्कृतिमाप्स्यसि"॥ १६॥

गुरुवाक्य (के अनुसार आचरण) ही पाप का प्रायश्चित्त है। यह बात सब वेदों से भी सम्मत है। अतः गुरु की आज्ञा से कर्म करने पर पापों से मुक्ति मिल जायगी"।। १६।।

श्रीमहादेव०— इत्युक्तः स मुनिः प्रायात्पुनः स्वस्थानमुत्तमम्।
इन्द्रश्चापि ययौ शीघ्रं गोतमस्यालयं तथा॥ १७॥

श्रीमहादेवजी– इस तरह सम्मति देकर देवर्षि नारद अपने स्थान पर चले गये। उधर देवराज इन्द्र भी शीघ्र ही गोतम के आश्रम पर गये।। १७।।

ददर्श तं महात्मानं मध्याह्नार्कसमप्रभम्।
लसत्पिङ्गजटामौलिं ब्रह्मध्यानपरायणम्॥ १८॥

वहाँ उन्होंने मध्याह्न के सूर्य के समान देदीप्यमान तथा लम्बी जटाओं वाले उन महात्मा को ब्रह्मध्यान में मग्न देखा।। १८।।

दृष्ट्वैवं स्वगुरुं साक्षान्महेशमिव वृत्रहा।
कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणनामापतन्मुनिम्॥ १९॥

उस वृत्रासुरहन्ता देवराज ने गुरु को देखते ही साक्षात् भगवान् शङ्कर समझ कर प्रदक्षिणा करते हुए मुनि को भूमि पर दण्डवत् (गिरकर) प्रणाम किया।। १९।।

समाधिविरमे ज्ञात्वा देवराजं समागतम्।
पप्रच्छ गोतमस्तात कुशलं ब्रूहि साम्प्रतम्॥ २०॥

समाधि से विराम के बाद उन गोतम मुनि ने देवराज को आया हुअ देखकर उनसे कुशल–मङ्गल पूछा।। २०।।

इन्द्र०— "प्रभो त्वद्दर्शनादेव सर्वं मे कुशलं मुने।
भवान्यस्य गुरुस्तस्य विद्यते नाशुभं क्वचित्॥ २१॥

इन्द्र– "प्रभो! आपके दर्शन से मुझे सब कुशल मिल गया। आ जिसके गुरु हों उसका भला कहीं अशुभ हो सकता है!।। २१।।

किं त्वेकं कृतवान् पापं न तं पश्यति सर्वथा।
तेन त्वां समनुप्राप्तो गुरुं निस्तारहेतुकम्॥ २२॥

परन्तु, भगवन्! मैंने एक पाप कर रखा है, उसका निराकरण न सूझ रहा है। इसीलिये मैं आपके श्रीचरणों में आया हूँ। कृपया उससे छू का कोई उपाय बताइये!।। २२।।

वृत्रासुरवधार्थाय दधीचेरस्थिसंग्रहात्।
सञ्जाता ब्रह्महत्या मे दुर्निवर्त्या महामते!॥ २३॥

वह पाप यह है कि मैंने वृत्रासुरवधहेतु दधीचि ऋषि से उनके देह अस्थियाँ माँग ली थीं। हे महामते! उससे मुझको यह दुर्निवार ब्रह्महत्या गयी।। २३।।

तस्यास्तु शमनार्थाय वाजिमेधं महामखम्।
कृतवाँश्च तदाप्येषा कदाचिन्न निवर्तते॥ २४॥

हे महामते! उसके निवारण हेतु मैंने अश्वमेध यज्ञ भी किया। फि इस ब्रह्महत्या ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा।। २४।।

तदहं दीनचित्तोऽस्मि गुरो निस्तारकारकम्।
उपायं वद मे नाथ ब्रह्महत्यानिवर्तकम्॥ २५॥

इस कारण मेरा चित्त बहुत ही ग्लान है। हे गुरुदेव! मुझे इससे का कोई उपाय बताइये!।। २५।।

त्वं यस्य त्राणकर्तासि गुरुः परमधर्मवित्।
तस्य पापं स्थिरतरं जातं मे बहुदुःखदम्"॥ २६॥

आप जैसे उत्कृष्ट धर्मज्ञ जिसके रक्षक हों उसका किय उसका साथ न छोड़े, इससे बढ़कर दुःखद बात क्या होगी?"।। २६

गोतम०— "वत्स खेदं त्यज न ते पापं स्थास्यति वै चिरम्।
ब्रवीम्युपायं श्रुत्वा तत् पूर्वपापप्रशान्तये॥ २७।

गोतम– "वत्स! तुम चिन्ता न करो, यह पाप तुम्हारा बहुत समय पीछा नहीं करेगा। उस पूर्वकृत पाप के शमन हेतु मैं तुम्हें उपाय बताऊँगा।। २७।।

यः कश्चिद् ब्राह्मणो नैव दधीचिर्मुनिसत्तमः।
द्वितीय इव विश्वेशो जीवन्मुक्तो महामतिः॥ २८॥

वे दधीचि मुनिश्रेष्ठ साधारण ब्राह्मण नहीं थे। वे तो (त्याग एवं तपस्या में) दूसरे भगवान् शङ्कर ही थे। वे महामति भी थे और जीवन्मुक्त भी।। २८।।

तस्य हत्यावशाज्जातं पापं घोरतरं तव।
किं नश्यत्यश्वमेघेन यज्ञेन सुरनन्दन!॥ २९॥

उनकी हत्या के कारण हुआ पाप कुछ विशिष्ट भयानक ही है। हे सुरेन्द्र! वह एक अश्वमेध यज्ञ से क्या निवृत्त होगा!।। २९।।

एनां तु ब्रह्महत्यां त्वं यदि त्यक्तुं समिच्छसि।
पश्य गत्वा महाकालीं महापातकनाशिनीम्"॥ ३०॥

इस ब्रह्महत्या से यदि तुम छुटकारा (मुक्ति) पाना चाहते हो तो महापातकनाशिनी महाकाली देवी के दर्शन करो"।। ३०।।

इन्द्र— "कीदृशी सा महाकाली कुत्रास्ते पापनाशिनी।
तन्मे वद ततो गत्वा तां पश्यामि महेश्वरीम्"॥ ३१॥

इन्द्र– "गुरुदेव! वे पापनाशिनी महाकाली कहाँ वास करती हैं?– तथा वे कैसी हैं? यह मुझे बताइये। जिससे मैं वहाँ जाकर उनके दर्शन कर सकूँ?"।। ३१।।

गौतम— **"वेदागमेषु सर्वेषु यथादृष्टं तथोदितम्।**
न मया ज्ञायते कुत्र महाकाली परात्परा॥ ३२॥

गौतम– "वेदों तथा आगमों में जैसा देखा है वैसा मैंने बता दिया। यह मैं भी नहीं जानता कि वे परात्परा महाकाली कहाँ विराजमान हैं?।। ३२।।

सर्वाभिः श्रुतिभिः प्रोक्तं दृष्ट्वा कालीं महेश्वरीम्।
विनाशयति पापानि ब्रह्महत्यादिकान्यपि॥ ३३॥

सभी श्रुतियाँ यही कहती हैं– 'श्रीकाली महेश्वरी के दर्शन–मात्र से साधक अपने ब्रह्महत्यादिक पापों को विनष्ट कर सकते हैं' "।। ३३।।

इन्द्र०— "न निस्तारं प्रपश्यामि पापादस्मात्कथञ्चन।
यतः सा कुत्र इत्येव नैव ज्ञास्ये कदाचन॥ ३४॥

इन्द्र– "लगता है, मुझको इस पाप से मुक्ति नहीं मिलेगी। जब

हमलागों को यही ज्ञात नहीं है कि वे कहाँ वास करती हैं? तो मैं उनके दर्शन कैसे कर पाऊँगा?।। ३४।।

गोतम०— "महोग्रतपसा कालीं योगिनस्तत्त्वदर्शिनः।
पश्यन्ति बहुकालेन युगान्तोदीक्षितेन च॥ ३५॥

गोतम— तत्त्वदर्शी योगिजन अत्यधिक उग्रतप से बहुत काल तक युगपर्यन्त प्रतीक्षा करने के बाद उनके दर्शन कर पाते हैं।। ३५।।

तथाचरति यस्तस्याः समायाति पुरःसरम्।
महाकाली जगद्धात्री योगगम्या सनातनी॥ ३६॥

वैसी साधना करते हुए ही साधक उस जगन्माता, योग से प्राप्य उस अविनाशिनी महाकाली के सम्मुख पहुँचता है।। ३६।।

सुराणामधिपस्त्वं तु सर्वदा राष्ट्रपालकः।
त्यक्त्वा राज्यं कथं योग्यस्तपः कर्तुं भविष्यसि॥ ३७॥

आप तो देवराज हैं, जगत् के रक्षक हैं, आप इतना व्यस्त रहते हैं कि राज्यकार्य छोड़कर एकान्त में जाकर कैसे उग्र तप कर पायँगे?।। ३७।।

तस्मादन्यं ह्युपायं ते महाकालीप्रदर्शने।
न पश्यामि विना तस्या आलये गमनादृते॥ ३८॥

फिर मुझे इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं दिखायी देता कि आप उन महाकाली के स्थान पर गये विना उनका दर्शन कर पावें।। ३८।।

तस्मात् त्वमनुसन्धाय पुरीं तस्याः पुरन्दर!
तत्र गत्वा महाकालीं पश्य ब्रह्मादिदुर्लभाम्॥ ३९॥

इसलिये हेदेवेन्द्र! आप स्वयं प्रयास कर उन ब्रह्मादि को भी दुर्लभ देवी का वासस्थान खोजकर, उनके दर्शन करने का प्रयत्न करें।। ३९।।

उपायमनुसन्धाने वक्ष्यामि सुरनायक!
गत्वादौ ब्रूहि लोकानां पितामहमनामयम्॥ ४०॥

हे सुरनायक! मैं तुम्हें उनका वासस्थान खोजने का भी एक उपाय बताता हूँ। आप पहले पितामह ब्रह्मा जी के पास जावें और उनसे पूछे।। ४०।।

सोऽपि चेन्नैव जानाति स्वयं भूत्वा तु यत्नवान्।
अनुसन्धास्यते नूनं महाकाल्याः पुरं ततः॥ ४१॥

यदि वे भी न जानते होंगे तो स्वयं प्रयत्न करके अवश्य उन महाकाली का वासस्थान खोज निकालेंगे।। ४१।।

स चेद्यद्यनुसन्धाता तदावश्यं महामते!
भविष्यत्यनुसन्धानं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते"॥ ४२॥

वे यदि किसी को प्रयत्नपूर्वक खोजने निकलें तो वह उसको खोज ही लेते हैं। यह मैं तुम्हें सत्य कह रहा हूँ"॥ ४२॥

इन्द्र०— **"न तवाज्ञा वृथा देव भविष्यति कदाचन।**
यास्येऽहं ब्रह्मसान्निध्यं तत्रोपायं भविष्यति"॥ ४३॥

इन्द्र— हे गुरुदेव! आप का आदेश व्यर्थ नहीं जायगा। मैं स्वयं पितामह ब्रह्माजी के पास जाऊँगा तो इस दुष्कर कार्य का कोई न कोई मार्ग निकलेगा ही॥ ४३॥

श्रीमहादेव०— **इत्युक्त्वा देवराजस्तं त्रिधा कृत्वा प्रदक्षिणम्।**
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ ब्रह्मलोकं तदा ययौ॥ ४४॥

श्रीमहादेव जी— हे नारद! वे देवराज अपने गुरुदेव से यों कहकर उन्हें तीन बार प्रदक्षिणा कर तथा भूमि में गिरकर दण्डवत् प्रणाम कर पुनः ब्रह्मलोक को गये॥ ४४॥

पुष्पकं रथमारुह्य मन्त्रिभिः सह नारद।
उवाच स यथावृत्तं गौतमेनाभिभाषितम्॥ ४५॥

हे नारद! वे इन्द्र अपने मन्त्रियों के साथ, पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर, ब्रह्मा जी के पास पहुँचे तथा उनसे वह सब कह दिया, जो उन्होंने अपने गुरु गोतम के मुख से सुना था॥ ४५॥

तच्छ्रुत्वा भगवान्ब्रह्मा देवराजमुवाच ह।
न ज्ञायते मया तस्याः पुरं कुत्र सुराधिप॥ ४६॥

वह सुनकर ब्रह्मा जी देवराज से यों बोले— "हे देवराज! मैं भी नहीं जानता कि उन देवी का वास कहाँ है?॥ ४६॥

कृपया देवकार्यार्थं स्वयमाविर्बभौ यदा।
तदा दृष्टा महाकाली ब्रह्मरूपा सनातनी॥ ४७॥

वे ब्रह्मरूपा अविनाशिनी महाकाली जब देवताओं के कार्य की पूर्ति हेतु स्वयं आविर्भूत होती हैं तो उनके दर्शन हो जाते हैं॥ ४७॥

पुनः सान्तर्हिता भूता सर्वदेवस्य पश्यतः।
इत्येवमेव जानामि न पुरं ज्ञायते मया"॥ ४८॥

फिर वह देवी, देवकार्य की पूर्ति के बाद, सब देवताओं के देखते—

देखते स्वयं अन्तर्हित हो जाती हैं। मैं उनके विषय में इतना ही जानता हूँ। उनका वासस्थान मैं भी नहीं जानता''।। ४८।।

इन्द्र०— ''ब्रह्मंस्त्वं चेन्न जानासि पुरं तस्यास्तदा कथम्?
ज्ञातव्यं वा मया पारं प्राप्स्यते पापसञ्चयात्''॥ ४९॥

इन्द्र— ''हे ब्रह्मन्! जब आप भी उस देवी का वासस्थान नहीं जानते तो मैं कैसे जान सकता हूँ कि मेरा इस पाप से कैसे छुटकारा होगा''।। ४९।।

ब्रह्मो०— ''त्वयि राजनि देवानां यदि स्थास्यति पातकम्।
तदा बहुविधोत्पातं भविष्यति सुरालये॥ ५०॥

ब्रह्मा— ''आपके देवताओं के राजा रहते यदि आप को पाप उद्विग्न करेगा तो इस देवलोक में अनेकविध उत्पात प्रारम्भ हो जायँगें।। ५०।।

तस्माच्च पापशान्त्यर्थं यत्नवानस्मि वै ध्रुवम्।
सर्वथैवानुसन्धास्ये पुरं तस्याः सुगोपितम्॥ ५१॥

अतः आप के इस पाप की शान्ति के लिये मैं निश्चय ही प्रयास करूँगा तथा देवी के गुप्त स्थान की खोज करूँगा।। ५१।।

यदि तामनुपश्यामि तव कार्यानुरोधतः।
भविष्यामि तदा मुक्तः किमु कार्यमतः परम्''॥ ५२॥

यदि मैं तुम्हारे कार्य के लिये उनका स्थान खोज पाऊँगा तो मैं अपने आप को मुक्त समझूँगा। इससे बढ़कर मेरा अन्य क्या कार्य हो सकता है!''।। ५२।।

श्रीमहादेव०— एवमाश्वास्य देवानामधिपं स पितामहः।
वैकुण्ठं प्रययौ दिव्यं रथमारुह्य नारद॥ ५३॥

श्रीमहादेव जी— हे नारद! इस तरह पितामह ब्रह्मा ने देवराज इन्द्र को आश्वासन देकर दिव्य रथ पर बैठकर वैकुण्ठ के लिये प्रयाण किया।। ५३।।

इन्द्रोऽपि रथमारुह्य पुष्पकं तस्य पृष्ठतः।
प्रययौ विष्णुना गुप्तं पुरं वैकुण्ठमुत्तमम्॥ ५४॥

उनके पीछे, देवराज इन्द्र भी पुष्पक विमान पर बैठकर विष्णु से रक्षित वैकुण्ठलोक पहुँचे।। ५४।।

ततो ब्रह्मा समाश्वास्य देवराजमुवाच ह।
शृणु वत्स वचो मे त्वं बहिस्तिष्ठन् सुरेश्वर॥ ५५॥

तब ब्रह्मा ने देवराज को पुनः आश्वासन देकर कहा— ''हे वत्स! सुरेन्द्र! तुम मेरी बात मानकर कुछ देर बाहर ही ठहरो।। ५५।।

अहमन्तःपुरं यामि ततस्त्वमनुयास्यसि।
आज्ञप्तो देवदेवेन ब्रह्मणा विष्णुरूपिणा॥ ५६॥

मैं पहले अन्तःपुर में जाता हूँ। फिर मेरे बुलाने पर तुम अन्दर आना''॥ ५६॥

तच्छ्रुत्वा ब्रह्मवचनं देवराजस्तथाकरोत्।
ब्रह्मा ययौ जगन्नाथो यत्रास्ते भगवान् हरिः॥ ५७॥

पितामह की आज्ञा मानकर देवराज इन्द्र भगवान् विष्णु के आवास के बाहर ही प्रतीक्षारत रहे। तथा ब्रह्मा जी विष्णु के पास अन्तःपुर में पहुँचे॥ ५७॥

लक्ष्मीसरस्वतीयुक्तो हृदि कौस्तुभमण्डितः।
नवीनजलदश्यामः शङ्खचक्रगदाधरः॥ ५८॥

वहाँ भगवान् विष्णु, लक्ष्मी सरस्वती के साथ विराजमान थे। उनका हृदयस्थल कौस्तुभमाला से विभूषित था। नवीन मेघ के समान उनका श्याम वर्ण था। उन्होंने तीन हाथों में क्रमशः शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण कर रखे थे॥ ५८॥

तं दृष्ट्वा भगवान् विष्णुः पप्रच्छ स्वागतं विभुः।
ब्रह्मा प्राह जगन्नाथं स्वागतं त्वत्प्रसादतः॥ ५९॥

ब्रह्माजी को देखकर भगवान् विष्णु ने पूछा— ''प्रभो! आप का स्वागत (कुशलक्षेम) है?'' ब्रह्मा ने भगवान् को उत्तर दिया— ''भगवन्! आपकी कृपा से सबकुछ स्वागत ही है॥ ५९॥

देवदेवः पुरद्वारि दर्शनार्थं समागतः।
प्रतीक्षते तवानुज्ञामत्रायातुं जनार्दन॥ ६०॥

देवराज भी आपके दर्शनार्थ आपके द्वार पर खड़े हैं। हे जनार्दन! वे अन्दर आने के लिये आपकी अनुज्ञा चाह रहे हैं''॥ ६०॥

तच्छ्रुत्वा गरुडं प्राह भगवान्विष्णुरव्ययः।
प्रवेशय सुराणां तमधिपं पुरमध्यके॥ ६१॥

यह सुनकर अविनाशी भगवान् विष्णु ने गरुड़ को आज्ञा दी कि वह देवराज इन्द्र को अन्दर ले आवें॥ ६१॥

तच्छ्रुत्वा गरुडस्तूर्णं गत्वा तद् द्वारमुत्तमम्।
प्रवेशयामास मुने तदन्तःपुरमुत्तमम्॥ ६२॥

हे मुने! यह सुनकर गरुड़ तत्काल द्वार पर पहुँचा और देवराज को प्रासाद में ले आया।। ६२।।

इन्द्रस्तु दण्डवद् भूमौ प्रणिपत्य जगत्पतिम्।
कृताञ्जलिपुटः प्राह धन्योऽहं तव दर्शनात्॥ ६३॥

देवराज ने प्रासाद में जगत्पति विष्णु को दण्डवत् प्रणाम किया तथा हाथ जोड़कर उनसे निवेदन किया— मैं आज आप के दर्शन पाकर धन्य हो गया।। ६३।।

त्वत्पादपङ्कजजनिः सुरवृन्दवन्द्या
गङ्गा पुनाति सकलानि जगन्ति धन्या।
तत्त्वां दृशा यदिह सर्वसुरैकवन्द्यं
पश्यामि भाग्यमतुलं मम पूर्वजातम्॥ ६४॥

आपके चरणकमलों से निःसृत देवसमूह से वन्दित गङ्गा सब प्राणियों को पवित्र करती हैं। उसी तरह, हे सभी देवताओं के पूज्य! आपका दर्शन कर मैं अपने को पूर्वजन्म का सौभाग्यशाली मानता हूँ।। ६४।।

इत्येवं परमेश्वरं सुरपतिर्विष्णुं स्तुवन् भक्तितो
ब्रह्माज्ञां प्रतिलभ्य गोतममुनेर्वाक्यं समावेदयत्।
श्रुत्वा श्रीकमलापतिः सुरपतेर्वाक्यं ततो विस्मितः,
प्रासीन्मौनमुखः पितामहपुरस्त्रैलोक्यसम्पालकः॥ ६५॥

श्रीमहाभागवते महापुराणे ब्रह्ममयीस्थानानुसन्धानार्थं देवराजस्य
चतुर्मुखविष्णुलोकगमनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥ ६१॥

यों, देवराज इन्द्र ने परमात्मस्वरूप विष्णु की भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए, ब्रह्मा जी की आज्ञा प्राप्त कर, गोतम मुनि की कही बात सुनायी। उसे सुनकर आश्चर्य करते हुए जगत्पालक विष्णु भी मौन भाव से ब्रह्मा जी का मुँह देखने लगे।। ६५।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
ब्रह्ममयी देवी के अनुसन्धानप्रसङ्ग में
इन्द्र का ब्रह्मा एवं विष्णु के लोक में गमन रूप
इकसठवाँ अध्याय समाप्त।।

बासठवाँ अध्याय

[ब्रह्मा का इन्द्र के साथ देवी के स्थान पर गमन]

श्रीमहादेव०— एवं भूत्वा कियत्कालं मौनी कमललोचनः।
उवाच देवराजं तं मृदुवाक्येन नारद॥ १॥

श्रीमहादेव जी— हे नारद! इस तरह कमलनयन भगवान् विष्णु कुछ क्षण मौन रहकर देवराज इन्द्र से मृदु एवं स्निग्ध वाक्यों से यों बोले—।। १।।

श्रीभगवान्०— न मया ज्ञायते देवी कुत्रास्ते सा महेश्वरी।
महाकाली ब्रह्मरूपा विश्वरूपा सनातनी॥ २॥

भगवान् विष्णु— "मैं भी नहीं जानता कि उन विश्वरूपा देवी काली, ब्रह्मरूपा, नित्या महेश्वरी का वास कहाँ है?।। २।।

यत्र तिष्ठति सा देवी जानीते तन्महेश्वरः।
तत्र गच्छ महेशानं यथावृत्तं निवेदय॥ ३॥

वे जहाँ रहती हैं उस स्थान को केवल भगवान् शङ्कर ही जानते हैं। अतः आप वहाँ जाइये और उनको अपनी यह सब व्यथा सुनाइये।। ३।।

अहमप्यागमिष्येऽद्य द्रष्टुं देव्याः पुरं महत्।
द्रक्ष्यामि चक्षुषा देवीं किमु कार्यमतः परम्"॥ ४॥

मै भी देवी का वह दुर्लभ स्थान देखने आऊँगा। मैं भी उनको अपने नेत्रों से देखकर स्वयं को धन्य मानूँगा। इससे बढ़कर अन्य कोई शुभ कार्य हो भी क्या सकता है!।। ४।।

श्रीमहादेव०— इत्युक्त्वा तं जगन्नाथो गरुडं सहसोत्थितः।
प्रययौ शिवसान्निध्यं ब्रह्मणा सहितः प्रभुः॥ ५॥

श्रीमहादेव जी— ऐसा कहकर वे जगन्नाथ विष्णु गरुड़ पर आरूढ़ होकर तत्काल ब्रह्मा के साथ भगवान् शङ्कर के पास पहुँचे।। ५।।

इन्द्रश्च रथमारुह्य तयोः पश्चाद्ययौ मुने॥ ६॥

हे मुने! उधर देवराज इन्द्र भी रथ पर आरूढ़ होकर उन दोनों के पीछे गये।। ६।।

दृष्ट्वा तांस्तु समायातान्नन्दी बुद्धिमतां वरः।
महेशसन्निधिं गत्वा कथयामास तत्क्षणात्॥ ७॥

उन सबको यों आया हुआ देखकर बुद्धिमान् नन्दी ने भगवान् शङ्कर को तत्काल सूचित किया।। ७।।

देवदेव जगन्नाथ विष्णुर्नारायणः स्वयम्।
आगतो ब्रह्मणा सार्धं देवराजेन च प्रभो॥ ८॥

"हे देवाधिदेव! जगन्नाथ! भगवान् विष्णु पितामह ब्रह्मा एवं देवराज इन्द्र के साथ पधारे हैं"।। ८।।

तमाह शम्भुः "शीघ्रं तान् प्रवेशय महामते!"
तच्छ्रुत्वा सोऽपि गत्वा तान्पुरं प्रावेशयन्मुने॥ ९॥

यह सुनकर भगवान् शङ्कर ने कहा– "हे महामते! उन्हें शीघ्र अन्दर ले आवो।" हे मुने! नन्दी यह आदेश सुनकर उन सबको अन्दर ले आये।। ९।।

ते शम्भोः सन्निधिं गत्वा प्रणिपत्यातिभक्तितः।
पार्वतीसहितं तं च प्रणेमुर्मुनिपुङ्गव॥ १०॥

हे मुनिवर! वे भगवान् शङ्कर के पास जाकर पार्वतीसहित उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए एक तरफ बैठ गये।। १०।।

ततस्तानाह विश्वेशः कथमत्र समागताः।
द्रुतं वदत युष्माकं किं कार्यं समुपस्थितम्॥ ११॥

तब उन सबसे शङ्कर जी ने पूछा– "आप लोग यहाँ किस प्रयोजन से पधारे हैं। आप शीघ्र ही अपना वह आवश्यक कार्य मुझे बताइये?"।। ११।।

***श्रीविष्णु०*—"इन्द्रोऽयं ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्तं महामतिः।**
पप्रच्छ मुनिशार्दूलं गोतमं शास्त्रवित्तमम्॥ १२॥

श्रीविष्णु– "यह महामति इन्द्र ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त पूछने हेतु शास्त्रज्ञ गोतम मुनि के पास गये थे।। १२।।

स च प्राह महाकालीं पश्य तस्याः पुरं व्रजन्।
पुरं तु कुत्र तन्नैव जानामि सुरनायक॥ १३॥

हे सुरनायक! उन्होंने एतदर्थ महाकाली के दर्शनहेतु जाने के लिये देवराज से कहा, परन्तु साथ ही यह भी कहा कि उनका वासस्थान कहाँ है?—यह मैं नहीं जानता।। १३।।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य ब्रह्मणोऽन्तिकमागतः।
पप्रच्छ तं पुरं देव्याः कुत्र तन्मे वद प्रभो॥ १४॥

यह सुनकर ये देवराज ब्रह्मा जी के पास गये और पूछा– देवी का स्थान कहाँ है? मुझे बताइये।। १४।।

स प्राह—'नैव जानामि कुत्र देव्याः पुरं महत्'।
ततो ब्रह्मा समायातः सुरेन्द्रेण ममान्तिकम्॥ १५॥

वे बोले– 'मैं भी नहीं जानता कि देवी का वह महान् धाम कहाँ है?' तब ब्रह्मा जी देवराज को साथ लेकर मेरे पास पहुँचे।। १५।।

पप्रच्छ मां तथेन्द्रोऽपि ब्रह्मणा प्रेरितः प्रभो।
तच्छ्रुत्वा विस्मयाविष्टः सह ताभ्यामिहागतः॥ १६॥

ब्रह्माजी के सङ्केत पर देवराज ने मुझसे भी वही प्रश्न किया। उसे सुनकर आश्चर्यचकित हो मैं उन दोनों को साथ लेकर आप के पास आया हूँ।। १६।।

त्वमवश्यं हि जानासि महाकाल्याः पुरं विभो।
स त्वमस्मान् महादेव्याः पुरं नीत्वा प्रदर्शय॥ १७॥

हे प्रभो! आप अवश्य उस देवी महाकाली का वास स्थान जानते हैं। अतः आप हम सबको देवी के वासस्थान तक पहुँचाइये।। १७।।

अयमिन्द्रो महाबाहुस्त्रिलोकेशो महेश्वर!।
महापातकयुक्तश्चेत् कथं तिष्ठेज्जगत्त्रयम्"॥ १८॥

हे महेश्वर! आप के रहते ये त्रिलोक के स्वामी देवराज महापाप से युक्त रह जायँ– तो यह समस्त जगत् कैसे स्थिर रह पायगा"।। १८।।

***श्रीशिव०*— "योगेन लक्षवर्षस्य तत्स्थानं ज्ञातवानहम्।**
यूयमागच्छत तथा यास्येऽहं मधुसूदन!।
दर्शयिष्यामि तां देवीं नीत्वा तस्याः पुरं द्रुतम्"॥ १९॥

भगवान् शङ्कर– "मैंने एक लाख वर्ष तक निरन्तर तपकर के देवी के उस वासस्थान को जाना है। हे मधुसूदन! मैं चल रहा हूँ, आप लोग भी मेरे पीछे पीछे आइये। मैं आप लोगों को साथ लेकर चलकर देवी का वासस्थान दिखा दूँगा"।। १९।।

***श्रीमहादेव०*— इत्युक्त्वा नन्दिनं प्राह" वृषं सज्जीकुरु द्रुतम्।**
यास्यामोऽद्य महाकाल्याः पुरं रत्नपरिष्कृतम्"॥ २०॥

श्रीमहादेव– विष्णु को ऐसा कहकर भगवान् शङ्कर ने नन्दी को आदेश दिया कि "वह उनका वाहन वृष सन्नद्ध करें। आज हम लोग देवी के रत्ननिर्मित वासस्थान पर जायँगे"।। २०।।

तच्छ्रुत्वा सोऽपि सहसा तथा चक्रे महामुने॥ २१॥

यह सुनकर, हे मुने! नन्दी ने शङ्कर का आदेश पालन किया।। २१।।

ततः समारुह्य वृषं महेश्वरो
विष्णुश्च तार्क्ष्यं जितवायुवेगकम्।
ब्रह्मा विमानं मणिभिः परिष्कृतं
प्रायान्महेन्द्रोऽपि च पुष्पकं तथा॥ २२॥

तब, भगवान् शङ्कर वृषभ, भगवान् विष्णु वेगवान् गरुड़ पर, ब्रह्मा मणिमय विमान पर तथा देवराज इन्द्र पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर चले।। २२।।

पथि व्रजन्तो गगने सुरोत्तमा ऊचुः समागम्य परस्परं मुने!
परात्परा सैव महामहेश्वरी श्रीकालिकाया नहि विद्यते परा॥ २३॥

हे मुने! आकाशमार्ग में जाते हुए वे विशिष्ट देवता परस्पर यों बातचीत करने लगे—वह देवी महेश्वरी महाकाली ही पर से पर हैं। उनसे बढ़कर कोई पर (उच्च) नहीं है।। २३।।

सृजत्यलं सैव जगन्महेश्वरी सम्पाति सर्वासु विपत्सु सा तथा।
अन्ते तथा संहरते च विश्वं निमित्तमात्रं तु वयं त्रयस्त्विति॥ २४॥

वह जगन्महेश्वरी ही इस जगत् की सृष्टि करती हैं तथा सभी सङ्कटों में वही इसकी रक्षा करती हैं। और अन्त में वही इस विश्व का संहार करती हैं। हम तीनों तो निमित्तमात्र हैं''।। २४।।

एवं वदन्ती बहुधा सुरोत्तमा
व्यतीत्य पन्थानमुपागमन्मुने!
श्रीकालिकाया नगरं महामुने!
स्वर्णादिभिश्चित्रितमद्भुतोपमम्॥ २५॥

हे मुने! वे तीनों यात्रा मार्ग में इसी तरह बातें करते हुए अन्त में यात्रा समाप्त कर स्वर्णादि से अलङ्कृत उस अद्भुत कालिकाधाम में पहुँचे।। २५।।

विलोक्य सर्वत्र पुरन्दरस्तथा
ब्रह्मा च विष्णुश्च बभूव विस्मितः।
अन्योन्यमूचुः समुपेत्य मत्पुरं
धिगस्तु मन्ये च विनिर्मितं मुधा॥ २६॥

उस वासस्थान की अद्भुत रचना देखकर देवराज इन्द्र, ब्रह्मा जी तथा भगवान् शङ्कर अत्यधिक आश्चर्यान्वित हुए और परस्पर कहने लगे कि

इसके सामने हमारे आवास तो कुछ भी नहीं हैं। लगता है हमारे आवास व्यर्थ ही बनाये गये हैं!।। २६।।

एवं विलोक्य नगरं जगदम्बिकायाः
ब्रह्मेन्द्रविष्णुगिरिशाः परितो भ्रमन्तः।
तस्थुश्चिरं सकलविस्मितवाञ्छितार्थाः
कोऽपि स्मरेन्नहि किमर्थमिहागताः स्मः ॥ २७॥

श्रीमहाभागते उपपुराणे ब्रह्मादीनां देवराजेन सह भगवतीस्थानगमने
द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२॥

इस तरह इधर उधर घूम घूम कर देखते हुए काली देवी का वह आवासस्थान देख कर वे तीनों देवता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) कुछ समय के लिये किङ्कर्तव्यविमूढ़ से होकर बैठे रहे। उनमें से किसी को भी यह स्मरण नहीं रहा कि हम यहाँ किसलिये आये हैं!।। २७।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
ब्रह्मा आदि देवताओं का देवराज के साथ
भगवतीस्थानगमन-वर्णनात्मक
बासठवाँ अध्याय समाप्त॥

तिरसठवाँ अध्याय

[देवराज-ब्रह्महत्याहरणोपाख्यान]

श्रीमहादेव०— कदाचित्तत्र योगिन्यः पुष्पाहार्यः समागताः।
ता ऊचुस्तान्महात्मानः किमर्थं समुपागताः॥ १॥

श्रीमहादेव जी— कुछ समय बाद, देवी के लिये पुष्प लाने वाली योगिनियाँ वहाँ आयीं। उन्होंने उन तीनों देवताओं से पूछा— "आप लोग किसलिये यहाँ आये हैं?"॥ १॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तासां स्मृत्वागमनकारणम्।
प्रोचुर्देवीं महाकालीं स्वयं द्रष्टुं समागताः॥ २॥

उनकी बात सुनकर इन तीनों देवताओं ने अपने आगमन का कारण स्मरण कर बताते हुए कहा— "हम तीनों ही भगवती महाकाली के दर्शन हेतु आये हैं"॥ २॥

योगिन्य०— "यदि देवीं महाकालीं द्रष्टुमेव समागताः।
तदात्र सुचिरं स्थित्वा किं निरीक्षथ सादराः॥ ३॥

योगिनी— "यदि आप लोग देवी के दर्शन हेतु ही आये हैं तो यहाँ खड़े खड़े इतनी देर से सम्मानपूर्वक क्या देख रहे हैं?॥ ३॥

अहो देव्याः महामाया ययेदं मोह्यते जगत्।
तयैव मोहिता यूयं विस्मृताः प्रकृतं ध्रुवम्"॥ ४॥

अरे! देवी की माया बहुत विचित्र है, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् मुग्ध है। ज्ञात होता है, निश्चय ही उसी माया से आप लोग भी मुग्ध हैं"॥ ४॥

श्रीमहादेव०— इत्युक्त्वा ता ययुस्तेऽपि सर्वे ऊचुः परस्परम्।
चिरमागत्य च वयं किं कुर्मो ह्यत्र संस्थिताः॥ ५॥

श्रीमहादेवजी— ऐसा कहकर वे योगिनियाँ चली गयीं। फिर वे देवता परस्पर बात करने लगे कि हम लोगों को यहाँ आये हुए इतना समय हो गया, परन्तु हम लोगों ने इतनी देर तक क्या किया?"॥ ५॥

विष्णुः प्राह महादेवं किमेवं मोह्यते त्वया।
बहुकालं समायाता द्रष्टुं कालीं महेश्वर!॥ ६॥
अद्यापि दृष्टा नो देवी महाकाली महेश्वरी॥ ७॥

विष्णु जी ने भगवान् शङ्कर से कहा— आपने हमसे यह छल क्यों किया? हमको यहाँ आये हुए इतना समय हो गया, परन्तु हमको देवी के दर्शन नहीं हो पा रहे हैं!।। ६–७।।

श्रीशिव०— अद्यैव गत्वा पश्यामो देवीं भुवनमातरम्।
प्रविशामो पुरीं देव्याः शुद्धां रत्नविनिर्मिताम्''॥ ८॥

भगवान् शङ्कर— ''आप चिन्ता न करें! हम लोग आज ही इस शुद्ध रत्ननिर्मित पुरी में प्रविष्ट होगें'' और भुवनमाता देवी का दर्शन करेंगे।। ८।।

इत्युक्तास्ते सुरश्रेष्ठा ध्यायन्तो हृदि कालिकाम्।
गन्तुमन्तःपुरं देव्याः प्रययुर्मुनिपुङ्गव॥ ९॥

ऐसा कहे जाने पर, वे सुरश्रेष्ठ हृदय में कालिका भगवती का स्मरण करते हुए, हे मुनिपुङ्गव! देवी के अन्तःपुर में प्रविष्ट होने के लिये चले।। ९।।

ततः स गोपुरं गत्वा महादेवः सुरोत्तमान्।
उवाच ब्रह्मविष्ण्वादीन्हर्षोत्फुल्लविलोचनः॥ १०॥

फिर गोपुर (मुख्य द्वार) में जाकर भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न होकर ब्रह्मा विष्णु एवं देवराज को यह कहा—।। १०।।

''दोधूयमानः पवनेन चोच्छ्रितो विद्युत्प्रभो हेमविचित्रितांशुकः।
सिंहध्वजोऽयं जगदम्बिकापुरःप्रासादशीर्षे परिदृश्यते महान्॥ ११॥

''सुनहरे वस्त्रवाला, बिजली की चमक से युक्त तथा हवा में लहराता हुआ यह महान् सिंहध्वज जगदम्बिका के उच्च प्रासाद के शिखर पर दिखायी दे रहा है।। ११।।

सर्वैः परित्यज्य विमानयानकं स्थित्वा क्षितौ साम्प्रतमेव भक्तितः।
प्रणम्यतां सा जगदेकवन्दिता पुरप्रवेशाखिलविघ्नशान्तये''॥ १२॥

अब सब लोग तत्काल अपना अपना विमानयान छोड़कर भूमि पर उतरकर भक्तिपूर्वक उस जगदेकवन्दिता भगवती की पुरी में प्रविष्ट होने में आने वाले विघ्नों की शान्ति के लिये प्रणाम करें''।। १२।।

एवं समाकर्ण्य शिवेन भाषितं क्षितौ तदा ते ह्यवतीर्य भक्तितः।
दृष्ट्वा ध्वजं नेमुरुपद्रवान् पुरःप्रवेशविघ्नान् ददृशुः समन्ततः॥ १३॥

भगवान् शङ्कर के ये वचन सुनकर, वे तीनों देवता पृथ्वी पर उतर कर भक्तिपूर्वक ध्वज देखकर पुरी में प्रविष्ट होने वाले विघ्नों की शान्ति के लिये प्रणाम करने लगे।। १३।।

ततः शम्भुं पुरस्कृत्य ब्रह्मविष्णुपुरन्दराः।
विविशुर्नगरीं देव्या रक्षितां भैरवीगणैः॥ १४॥

फिर भगवान् शङ्कर को आगे कर वे ब्रह्मा, विष्णु एवं देवराज इन्द्र उस देवी की भैरवीसमूहों से रक्षित नगरी में प्रविष्ट हुए।। १४।।

दृष्ट्वा तु नगरीं दिव्यां वैकुण्ठेशोऽपि चेतसा।
निनिन्द च पुरं दिव्यमात्मनो विस्मयान्वितः॥ १५॥

भगवान् विष्णु ने उस नगरी के निर्माण की सुन्दरता को देखकर आश्चर्यचकित होकर अपनी नगरी की सुन्दरता को भी मन से उतार दिया।। १५।।

ततोऽन्तःपुरबाह्ये तु ददृशुर्गणनायकम्।
चतुर्भुजं महाबाहुं स्थूलकायं गजाननम्॥ १६॥

इसके बाद उन देवताओं ने उस नगरी के बाह्य प्रदेश में चतुर्भुज, महाबाहु, स्थूलकाय एवं हाथी के मुख वाले गणेशजी को देखा।। १६।।

तमाह भगवान् रुद्रः प्रीत्या परमया युतः।
वत्स गत्वा महाकालीं द्रुतं मे वचनं वद॥ १७॥

तब भगवान् शङ्कर ने उन गणेश जी से कहा– "वत्स! तुम मेरे कहने से शीघ्र ही महाकाली देवी को जाकर मेरी बात बताओ।। १७।।

ब्रह्मा विष्णुः सुरेन्द्रश्च त्वां द्रष्टुं भक्तिभावतः।
आयाताः शम्भुमासाद्य पुरद्वारि महेश्वरि!॥ १८॥

हे महेश्वरि! ब्रह्मा, विष्णु एवं देवराजइन्द्र भक्तिभाव से आपके दर्शन हेतु आकर, भगवान् शङ्कर के साथ द्वार पर आये हैं।। १८।।

तैः सार्धं पुरबाह्ये च रुद्रश्चाप्यवतिष्ठते।
आज्ञां विधेहि तैः सार्धमायातुं वृषभध्वजम्॥ १९॥

उनके साथ द्वार पर भगवान् शङ्कर भी खड़े हैं। यदि आज्ञा हो उन के साथ वृषभध्वज को अन्दर ले आऊँ"।। १९।।

इति श्रुत्वा वचः शम्भोस्त्वरितं गणनायकः।
जगामान्तःपुरं देव्याः कथितुं शिवभाषितम्॥ २०॥

ऐसा सुनकर गणेश जी ने शीघ्र ही अन्दर जाकर भगवान् शङ्कर की बात कहने हेतु अन्तःपुर में पहुँचे।। २०।।

स प्रणम्य महादेवीं प्राञ्जलिः शिवभाषितम्।
न्यवेदयद्यथावच्च महादेव्यै महामते!॥ २१॥

हे महामते! गणेशजी ने महादेवी को प्रणाम कर हाथ जोड़कर शङ्कर की कही बात यथावत् बतायी।। २१।।

तदाकर्ण्य जगन्माता तूर्णं तं गणनायकम्।
उवाच "वत्स गच्छ त्वं क्षिप्रं तान् देववृन्दकान्॥ २२॥
ब्रह्माण्डा बहवः सन्ति ब्रह्माद्या अपि तत्रगाः।
कस्माद् ब्रह्माण्डादायाताः श्रुत्वा सर्वं निवेदय"॥ २३॥

उसे सुनकर जगन्माता ने गणेशजी को कहा– "हे पुत्र! बाहर जाओ, और शीघ्र ही पूछो।'ब्रह्माण्ड तो बहुत से हैं, तथा वहाँ ब्रह्मा भी बहुत से हैं। वे कौन से ब्रह्माण्ड से आये हैं?' उनसे पूछकर पुनः आकर हमें बताओ।। २२–२३।।

श्रुत्वा स वाक्यं गत्वा चापृच्छद्वै देवतागणान्।
ते ऊचुर्विस्मयाविष्टा न जानेऽन्यान् सुरेश्वरान्॥ २४॥

गणेश ने देवी की आज्ञा से बाहर जाकर उन देवताओं से यही पूछा। उन्होंने आश्चर्यचकित होकर कहा– "हम अन्य ब्रह्माण्डों के देवताओं के विषय में कुछ नहीं जानते"।। २४।।

पुनर्गत्वाऽब्रवीत् सोऽपि तैरुक्तं जगदम्बिकाम्।
उवाचानय विश्वेशं विष्णुं चाथ प्रजापतिम्॥ २५॥

गणेश ने देवताओं का यह उत्तर जगन्माता को जाकर सुनाया। तब जगन्माता ने आज्ञा दी कि भगवान् शङ्कर, विष्णु तथा ब्रह्मा को अन्दर ले आओ।। २५।।

ततः स समुपागत्य शिवविष्णुप्रजापतीन्।
अन्तःपुरं महादेव्याः प्रापयामास नारद॥ २६॥

हे नारद! तब गणेश ने तीनों देवताओं को जगदम्बा के अन्तःपुर में प्रवेश दिया।। २६।।

इन्द्रः स्थितो पुरे बाह्ये दुःखितो दीनमानसः।
अदृष्टवाा तां परामाद्यां साक्षात्प्रकृतिरूपिणीम्॥ २७॥

इन्द्र, उस परा आद्या प्रकृति साक्षाद् भगवती के दर्शन नहीं कर पाये और अपना मुँह लटकाये बाहर ही खड़े रहे।। २७।।

महेशप्रमुखास्ते तु मन्दिरद्वारमुत्तमम्।
सम्प्राप्य ददृशुर्देवीं रत्नसिंहासनोपरि॥ २८॥

उधर, शङ्करसहित उन देवताओं ने देवी के उस उत्तम द्वार में प्रविष्ट होकर रत्नसिंहासन पर विराजमान देवी के दर्शन किये।। २८।।

निर्वसनां मुक्तकेशीं भीमनेत्रत्रयोज्ज्वलाम्।
चतुर्भुजां महाघोरां कोटिसूर्यसमप्रभाम्॥ २९॥
रत्नोत्तमसमूहेन ज्वलत्कुण्डलमण्डिताम्।
अनर्घ्यानेकरत्नौघभूषितां जलदद्युतिम्॥ ३०॥
दिगम्बरीं भीमदंष्ट्रां विश्ववन्द्यैरपि स्तुताम्।
सर्वान्तःस्थामुत्तमस्थां मुण्डमालाविराजिताम्॥ ३१॥
वीजितां रत्नदण्डेन चामरेण सखीगणैः।
दुरीक्षां ते तदातीव कालानलसमप्रभाम्॥ ३२॥

जो कि वस्त्रविहीन थी, जिसके केश खुले थे, जिसके तीनों नेत्र देखने में भयङ्कर थे। जो चतुर्भुज एवं आकृति से अत्यधिक भयानक, करोड़ों सूर्यों के समान देदीप्यमान नाना प्रकार के रत्न जड़े हुए कुण्डलों तथा शरीर में स्थान स्थान पर महँगे रत्नों से अलङ्कृत, मेघ के समान कान्तिवाली थी। वह दिगम्बरी (नग्ना), भयङ्कर दाढों वाली, तथा समस्त विश्व द्वारा पूजितों द्वारा भी पूजित थी। ऐसी सबके अन्तः में स्थित, उत्तम आसन पर विराजमान, मुण्डमाला से शोभित, सखीसूमह द्वारा रत्नदण्डयुक्त चँवर से वीजमान कालाग्नि के समान कान्ति वाली, बहुत कठिनता से दिखायी देने वाली थी।। २९–३२।।

दक्षपार्श्वे महादेव्या महाकालं सदाशिवम्॥ ३३॥
ददृशुर्भीमनेत्रास्यं जटामुकुटमण्डितम्।
कपालखट्वाङ्गकरं मदघूर्णितलोचनम्॥ ३४॥
शशाङ्काङ्कितमूर्धानं भिन्नाञ्जननिभं प्रभुम्।
अनादिपुरुषं पूर्णं जगदन्तकरं परम्॥ ३५॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं नागेन्द्रकृतभूषणम्।
द्वीपिचर्माम्बरधरं चिताभस्मविभूषितम्॥ ३६॥

साथ ही महादेवी के दक्षिण पार्श्व में विराजमान महाकाल सदाशिव के भी दर्शन किये। जो कि भयङ्कर नेत्र तथा आकार वालों, जटाओं के मुकुट से शोभित, कपाल एवं खट्वाङ्ग अस्त्रधारी, सुरापान के प्रभाव से खिंचे हुए नेत्रों वाले मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण करने वाले, टूटे काले पहाड़ के समान, समर्थ, अनादि पूर्ण पुरुष, जगत् के संहारक, सर्वोत्कृष्ट करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा वाले, सर्पों को आभूषण रूप में धारण किये

हुए, चीते का चर्म धारण किये हुए तथा शरीर पर चिता की भस्म लगाये हुए थे।। ३३–३६ ।।

अथ ते दण्डवद्भूमौ निपत्य जगदीश्वरीम्।
प्रणेमुः परमेशानं महाकालं च नारद॥ ३७॥

हे नारद! उन तीनों देवताओं ने जगदीश्वरी भगवती तथा उन महाकाल सदाशिव को भूमि पर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया।। ३७ ।।

संस्तूय विविधैः स्तोत्रैर्वेदवेदाङ्गसम्भवैः।
एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्महाकालेन तेन वै॥ ३८॥
एकत्वमनुसम्प्राप सहसा मुनिसत्तम।
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च न दृष्ट्वा तं सदाशिवम्॥ ३९॥
चिन्तयामासतुस्तौ तु क्व गतोऽसौ महेश्वरः।
इन्द्रस्य दर्शनं देव्या भविष्यति न वा किमु॥ ४०॥

तथा वेद एवं तत्सम्बद्ध साहित्य (वेदाङ्ग) में कहे हुए विविध स्तोत्रों से उन दोनों की स्तुति की। इसी बीच भगवान् शङ्कर उन महाकाल के साथ सहसा एकाकार हो गये। हे मुनिसत्तम! तब वहाँ उपस्थित ब्रह्मा एवं विष्णु ने अपने मध्य भगवान् शङ्कर को न देखकर चिन्ता की कि भगवान् शङ्कर कहाँ गये? अब इन्द्र को भगवती के दर्शन होंगे कि नहीं!।। ३८–४० ।।

इति चिन्तयतोर्वत्स! तयोः सा जगदीश्वरी।
महाकालेन सहिता त्वदृश्या समभूत् क्षणात्॥ ४१॥

हे वत्स! वे दोनों (ब्रह्मा एवं विष्णु) ऐसा विचार कर ही रहे थे कि शङ्कर कहाँ गये! इसी बीच वह महाकाली भी तत्क्षण महाकाल सहित अदृश्य हो गयीं।। ४१ ।।

तत्रैव संस्थिता काली महाकालश्च शङ्करः।
न तौ तन्मायया मुग्धौ ददृशाते महामुने!॥ ४२॥

यद्यपि हे महामुने! वे दोनों— महाकाली एवं महाकाल शङ्कर वहीं उपस्थित थे, परन्तु अपनी दिव्य माया के कारण वे उन्हें दिखायी नहीं दे रहे थे।। ४२ ।।

ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च देव्या दर्शनकातरौ।
कृताञ्जलिपुटौ कालीं भक्त्या तुष्टुवतुर्मुने!॥ ४३॥

हे मुने! तब वे दोनों— ब्रह्मा एवं विष्णु, देवी का दर्शन न पाने से दुःखी हो, हाथ जोड़कर उस भगवती काली की स्तुति करने लगे।। ४३ ।।

महाकाल्यष्टकम्

ब्रह्मविष्णू०—

"नमामि त्वां विश्वकर्त्रीं परेशीं नित्यामाद्यां सत्यविज्ञानरूपाम्।
वाचातीतां निर्गुणां चातिसूक्ष्मां ज्ञानातीतां शुद्धविज्ञानगम्याम्॥ ४४॥
पूर्णां शुद्धां विश्वरूपां सुरूपां देवीं वन्द्यां विश्ववन्द्यामपि त्वाम्।
सर्वान्तस्थामुत्तमस्थानसंस्थाम् ईडे कालीं विश्वसम्पालयित्रीम्॥ ४५॥

ब्रह्मा एवं विष्णु— "जगत्कर्त्री, विश्वेश्वरी, नित्या, आद्या, सत्य विज्ञानरूपा, अनिर्वचनीय, निर्गुण, अतिसूक्ष्म, ज्ञानातीत एवं शुद्धविज्ञान से ज्ञेय।। ४४।।

पूर्ण, शुद्ध, विश्वरूप, शोभनरूपवाली एवं विश्ववन्द्य पूज्य काली देवी को जो सर्वत्र व्याप्त है, उत्तम स्थान पर विराजमान है, विश्व की पालनकर्त्री हैं, प्रणाम करते हैं।। ४५।।

मायातीतां मायिनीं वापि मायां भीमां श्यामां भीमनेत्रां सुरेशीम्।
विद्यां सिद्धां सर्वभूताशयस्थामीडे कालीं विश्वसंहारकर्त्रीम्॥ ४६॥

मायातीत, मायावती, मायारूप, भयङ्कर, श्यामवर्ण वाली, भयानक नेत्रों वाली, सुरेश्वरी, विद्यारूप, सिद्ध, सभी प्राणियों के हृदय में स्थित, तथा विश्व संहारकर्त्री को हम प्रणाम करते हैं।। ४६।।

नो ते रूपं वेत्ति शीलं न धाम नो वा ध्यानं नापि मन्त्रं महेशि!
सत्तारूपे त्वां प्रपद्ये शरण्ये विश्वाराध्ये सर्वलोकैकहेतुम्॥ ४७॥

हे महेश्वरि! न कोई आप का रूप जानता है, न आचार। न कोई आपका वास जानता है, न ध्यान। न कोई आपका मन्त्र ही जानता है। हे समस्त जगत् में सत्तारूप! हे शरणागतरक्षक! हे विश्वाराध्य! हे समस्त जगत् की एकमात्र हेतुभूत आप को प्रणाम है।। ४७।।

द्यौस्ते शीर्षं नाभिदेशो नभश्च चक्षूंषि ते चन्द्रसूर्यानलास्ते।
उन्मेषस्ते सुप्रबोधो दिवा च रात्रिर्मातश्चक्षुषोस्ते निमेषम्॥ ४८॥

द्यौ आप का शिर है, नभ आपका नाभिप्रदेश है, चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि आप के नेत्र हैं। हे माता! आपका आँखों का खोलना प्रबोध एवं दिन है और आँखों का मूँदना रात्रि है।। ४८।।

वाक्यं देवा भूमिरेषा नितम्बं पादौ गुल्फं जानुजङ्घस्त्वधस्ते।
प्रीतिधर्मोऽधर्मकार्यं हि कोपः सृष्टिर्बोधः संहृतिस्ते तु निद्रा॥ ४९॥

आपकी वाणी देवता है; आपके नितम्ब, पैर, गुल्फ, जानु, जङ्घा—

ये सब भूमि हैं। आपका स्नेह ही धर्म है; क्रोधं अधर्म है; आपका जागरण सृष्टि एवं निद्रा संहार है।। ४९।।

अग्निर्जिह्वा ब्राह्मणास्ते मुखाब्जं सन्ध्ये द्वे ते भ्रूयुगं विश्वमूर्तिः।
श्वासो वायुर्बाहवो लोकपालाः क्रीडा सृष्टिः संस्थितिः संहृतिस्ते॥५०॥

अग्नि आपकी जिह्वा है, ब्राह्मण आपके मुखकमल हैं, आपके दोनों भ्रू सन्ध्या हैं, विश्वमूर्ति है, आपका श्वास वायु है, बाहु लोकपाल आपकी क्रीड़ा ही सृष्टि, स्थिति एवं संहार है।। ५०।।

एवम्भूतां देवि विश्वात्मिकां त्वां कालीं वन्दे ब्रह्मविद्यास्वरूपाम्।
मातः पूर्णे ब्रह्मविज्ञानगम्ये दुर्गेऽपारे साररूपे प्रसीद"॥५१॥

ऐसी विश्वभूत, ब्रह्मविद्यास्वरूप आप काली देवी को हमलोगों का सादर प्रणाम है। हे माता! हे दुर्गा! हे ब्रह्मविज्ञान से ज्ञातव्य! हे पूर्णा! हे अपार साररूप! आप हम पर प्रसन्न हों" ।। ५१।।

श्रीमहादेव०— **एवं ताभ्यां स्तुता काली प्रसन्ना मुनिसत्तम!**
महाकालेन सहिता भूयः सन्दर्शनं ददौ॥५२॥

श्रीमहादेव जी— हे मुनिश्रेष्ठ! इस तरह जब उन दोनों देवताओं ने काली देवी की स्तुति की तो वह देवी अत्यधिक प्रसन्न हुई। तथा महाकाल के साथ पुनः उन दोनों के समक्ष प्रत्यक्ष हुई।। ५२।।

भूयश्च शङ्करस्तस्मान्महाकालशरीरतः।
निःससार महाबाहू रजताद्रिसमप्रभः॥५३॥

उधर, महाबाहु, शङ्कर भगवान् भी उन महाकाल के शरीर से पुनः पृथक् होकर रजत पर्वत के समान शोभित हुए।। ५३।।

स प्राह परमेशानीमिन्द्रोऽपि समुपागतः।
त्वां द्रष्टुं भक्तिभावेन पुरबाह्ये स्थितस्तु सः॥५४॥

वे उन भगवती से कहने लगे— "बहिर्द्वारपर देवराज इन्द्र भी भक्तिभाव से आप के दर्शन हेतु प्रतीक्षा कर रहे हैं।। ५४।।

आज्ञापय तमानीय त्वत्समीपं महेश्वरि।
दर्शयामि परामेतां मूर्तिं ते दिव्यलक्षणाम्"॥५५॥

यदि आप का आदेश हो तो हे महेश्वरि! उन्हें भी आपके समीप लाकर आपकी परा एवं दिव्य चिह्नों वाली इस मूर्ति के दर्शन कराऊँ?"।। ५५।।

इति शम्भोः समाकर्ण्य वचनं जगदम्बिका।
उवाच तं महादेवं महाकाली महामते॥ ५६॥

हे महामते! भगवान् शङ्कर की बात सुनकर जगन्माता महाकाली ने उनसे यह कहा—।। ५६ ।।

देवी०— "यद्यानेतुं महादेव! देवराजं ममालये।
समिच्छसि तदैतत्त्वं कुरु कार्यं सुरोत्तम॥ ५७॥

देवी— "हे शङ्कर! यदि देवराज इन्द्र को आप मेरे इस मन्दिर में लाना चाहते हैं तो हे सुरश्रेष्ठ! पहले आप यह कार्य कीजिये।। ५७।।

तस्य भूतं महत्पापं दधीचेरस्थिसंग्रहात्।
तन्नष्टं प्रायशो देव मत्पुराद् बहिरागमात्॥ ५८॥

उनसे पूर्व में हुआ दधीचि की अस्थिग्रहण रूप महापाप कुछ तो मेरे इस मन्दिर के बहिर्द्वार तक आने से ही नष्ट हो गया।। ५८।।

अपरं विद्यते किञ्चित्तस्योपशमनाय तु।
अन्तर्गेहरजः किञ्चिद्देहि तस्मै महामते!॥ ५९॥

अब जो यत्किञ्चित् पाप अवशिष्ट हैं, उसके नाश हेतु, उनके शरीर पर, मलने के लिये मेरे मन्दिर के अन्तर्गृह की रज, उनको दीजिये।। ५९।।

ततो निर्धूतपापः स समायातु ममान्तिके।
सम्प्राप्स्यति च मे दृष्टिं दुर्लभामपि वासवः"॥ ६०॥

उसके प्रभाव से उनका यह ब्रह्महत्या वाला पाप पूर्णतः विनष्ट हो जायगा। यों, निष्पाप होकर मेरे सम्मुख आवें तो वे इन्द्र मेरा दर्शन कर पावेंगे"।। ६०।।

श्रीमहादेव—इति काल्या समादिष्टः सोऽपि गत्वा महेश्वरः।
अन्तर्गेहरजस्तस्मै दत्त्वा पुरमवेशयत्॥ ६१॥

श्रीमहादेव जी— महादेवी काली का ऐसा आदेश पाकर, भगवान् शङ्कर, बाहर जाकर उन इन्द्र को देवीमन्दिर के अन्तर्गृह की धूलि देकर उन्हें भी (निष्पाप बनाकर) मन्दिर में ले आये।। ६१।।

तत इन्द्रः प्रविश्यान्तर्गेहं देव्या महामुने!
प्रणम्य पादे पादे तां निपत्य धरणीतले॥ ६२॥

हे महामुने! तब देवराज इन्द्र ने अन्तर्गृह में प्रविष्ट होकर भूमि में गिरकर देवी को पद-पद पर प्रणाम किया।। ६२।।

सम्प्राप मन्दिरद्वारं शिवेन सह नारद!
दृष्ट्वा त्रैलोक्यजननीं दुर्लभां त्रिदशेश्वरैः।
सहस्त्राक्षोऽपतद् भूमौ प्रणमद् दण्डवत्तदा॥ ६३॥

हे नारद! इन्द्र फिर भगवान् शङ्कर के साथ मन्दिरद्वार पर आये, देवों को भी दुर्लभ जगन्माता देवी का दर्शन किया। तथा उन सहस्राक्ष देवराज ने भूमि पर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया।। ६३ ।।

उत्थाय वेदवेदाङ्गकथितैः स्तोत्रकैरपि।
तुष्टाव तां जगद्वन्द्यां महाकालीं सुरोत्तमः॥ ६४॥

पुनः उठकर देवश्रेष्ठ ने वेद एवं वेदाङ्गों में प्रोक्त स्तोत्रों से जगद्वन्द्या महाकाली की स्तुति की।। ६४ ।।

ततः पुनर्मुनिश्रेष्ठ प्रणिपत्य महेश्वरीम्।
स्वं स्वं स्थानमुपाजग्मुर्ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः॥ ६५॥

अन्त में वे तीनों ही ब्रह्मा आदि देवता देवी को प्रणाम कर पुनः अपने अपने लोक को चले गये।। ६५ ।।

इत्युक्तं ते मुनिश्रेष्ठ यत्पृष्टं भवता मम॥ ६६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस तरह, आपने जो कुछ मुझसे पूछा था वह सब मैंने आप को बता दिया।। ६६ ।।

देवीमन्दिरदर्शनमाहात्म्य

पुण्यं सुमहदाख्यानं महाकालीप्रदर्शनम्।
य इदं शृणुयाद्भक्त्या पठेद्वा प्रयतो नरः॥ ६७॥

जो भक्तिमान् पुरुष इस पुण्यप्रद बृहद् आख्यान वाले काली दर्शन को भक्तिपूर्वक सुनेगा या प्रेम से पढ़ेगा।। ६७ ।।

तस्य नो विद्यते पापमपि ब्रह्मवधादिजम्।
भवत्यपि महापुण्यं अश्वमेधशतोद्भवम्॥ ६८॥

उसके द्वारा कृत ब्रह्महत्यादि महापातक भी विनष्ट हो जायँगे। साथ ही उसे सैकड़ों अश्वमेधयज्ञ का भी पुण्यफल प्राप्त होगा।। ६८ ।।

आरोग्यं विपुलं वित्तं पुत्रपौत्रादिसम्पदः।
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां नवम्यां वा दिनक्षये॥ ६९॥
यः पठेत् प्रयतो भूत्वा स देव्याः पदमाप्नुयात्।
अमावस्यानिशीथे वा पौर्णमास्यां पठेच्च यः॥ ७०॥

गवामयुतदानस्य सम्यक् फलमवाप्नुयात्।
विनश्यन्त्यापदः सद्यः सम्पदाशु प्रवर्तते॥ ७१॥

उसे पूर्ण नीरोग शरीर, विपुल धन, पुत्र–पौत्रादि सम्पत्ति प्राप्त होगी। अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी एवं किसी दिनक्षय के दिन जो पुरुष सर्वथा शुद्ध होकर इसका पाठ करेगा वह देवी के लोक का सायुज्य फल प्राप्त करेगा। तथा जो अमावास्या या पूर्णिमा की अर्धरात्रि के समय इसका पाठ करेगा वह दस हजार गौओं के दान का फल प्राप्त करेगा। उसकी सभी विपत्तियाँ नष्ट हो जायँगीं तथा सभी सम्पत्तियाँ शीघ्र ही सुलभ होंगी।। ६९–७१।।

न भयं विद्यते नापि शत्रुतस्तस्य नारद!
संग्रामे विजयो नित्यं भवेद्देव्याः प्रसादतः॥ ७२॥

हे नारद! उसको शत्रु से कोई भय नहीं होता है। देवी की कृपा से उसे सभी युद्धों में विजय प्राप्त होती रहती है।। ७२।।

पितृश्राद्धदिने यस्तु पठेदेतत् समाहितः।
सन्तुष्टाः पितरस्तस्य भुञ्जते कव्यमुत्तमम्॥ ७३॥

पितृश्राद्ध के दिन जो समाहित होकर इसका पाठ करेगा उसके पितर सन्तुष्ट होकर उत्तम कव्य (पिण्डादि) प्राप्त करेंगे।। ७३।।

अन्यायोपात्तवित्तादिकृतं वापि महामुने!
पितॄणां परमप्रीतिदायकं तद्भवेदिति॥ ७४॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीभगवतीद्वारगमनाद्देवराजब्रह्महत्याहरणोपाख्याने
त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥ ६३॥

अन्याय से प्राप्त वित्त आदि के सहारे से भी यह आयोजन करना चाहिये; क्योंकि यह, उतने पर भी, पितरों के लिये उत्कृष्ट प्रीतिदायक होता है।। ७४।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
भगवतीद्वार पर जाने के फलस्वरूप
इन्द्र की ब्रह्महत्या के निवारण के वर्णन रूप
तिरसठवाँ अध्याय समाप्त॥

चौसठवाँ अध्याय

[गङ्गा का जलरूप होना]

श्रीनारद०—कथितं महदाख्यानं कृपया परमेश्वर!
धन्यं पुण्यतमं दिव्यं महापातकनाशनम्॥ १॥

श्रीनारद— हे परमेश्वर! आपने कृपा कर मुझे यह भगवती का महान् आख्यान कहा जो पुण्यप्रद, दिव्य एवं महापातकों का नाशक है।। १।।

यत्पृष्टं भगवत्यास्ते तत्त्वमव्यक्तमद्भुतम्।
जन्म कर्मादिकं चापि नित्यया अपि लीलया॥ २॥

तत्रांशेनावतीर्णायाः प्रकृत्या हिमवद्गृहे।
गङ्गायाः श्रोतुमिच्छामि भूयश्चरितमुत्तमम्॥ ३॥

भगवती का नित्या होते हुए भी अपनी लीला करने की इच्छा से जो यह अव्यक्त एवं अद्भुत जन्म कर्म आदि है, प्रकृति देवी का अपने अंश से हिमवान् के घर में गङ्गा के रूप में अवतीर्ण होने का उत्तम आख्यान भी मैं सुनना चाहता हूँ।। २–३।।

यथा द्रवमयी भूता मूर्तिरेकाघहारिणी।
यथा पुनासि सा देवी त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ४॥
यथा चावातरत्पृथ्व्यां लोकानां त्राणहेतवे।
एतदन्यच्च माहात्म्यं विस्तरेण वद प्रभो॥ ५॥

जैसे वह पापनाशिनी मूर्ति एक होती हुई भी जलरूप होकर जिस तरह समग्र चराचर जगत् को पवित्र करती है और जिस तरह जगत् के रक्षण हेतु पृथ्वी पर अवतरित हुई— यह सब और अन्य माहात्म्य विस्तारसहित कृपा करके मुझे सुनाइये।। ४–५।।

गङ्गावतरणकथा

श्रीमहादेव०— शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुण्यात्पुण्यतमं परम्।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापी जन्मसंसारबन्धनात्॥ ६॥

श्रीमहादेव जी— हे वत्स! पुण्य से भी उत्कृष्ट पुण्ययुक्त यह आख्यान तुम सुनो। जिसे सुनकर पापी जन भवबन्धन से मुक्त हो जाते हैं।। ६।।

पूर्वं विष्णुः समाकर्ण्य गङ्गोद्वाहमहोत्सवम्।
दिदृक्षुः शङ्करं हृष्टं गङ्गया सहितं प्रभुम्।
वैकुण्ठमानयामास स्वपुरीं प्रीतमानसः ॥ ७ ॥

पहले समय में, कभी जब भगवान् विष्णु ने भगवान् शङ्कर के विवाह की बात सुनी तो उन्होंने गङ्गा के साथ प्रसन्न शङ्कर को देखने के लिये अपनी वैकुण्ठ नगरी में बुलाया।। ७।।

ब्रह्माद्याश्चापि वै देवास्तत्र याता महामुने!
द्रष्टुं तं परमेशानं विष्णुं च जगतः प्रभुम् ॥ ८ ॥

हे महामुने! ब्रह्मा आदि देवता भी उन प्रसन्न शङ्कर तथा जगत्पालक विष्णु को देखने के लिये वहाँ आये।। ८।।

तत्र श्रुत्वा चापरेऽपि मरीच्याद्या महर्षयः।
विविशुश्चारु निर्माय सभां दिव्यासनोपरि ॥ ९ ॥

यह सुनकर दूसरे मरीचि आदि महर्षि भी वहाँ सभा के रूप में दिव्य आसनों पर आकर विराजमान हुए।। ९।।

रत्नसिंहासने रम्ये उपवेश्य महेश्वरम्।
हृष्टः प्राह जगन्नाथः "कुरु गानं महेश्वर! ॥ १० ॥

वहाँ रत्नजटित सिंहासन पर भगवान् शङ्कर को बैठाकर, भगवान् विष्णु उनसे बोले– "हे महेश्वर! अब हर्षगान कीजिये।। १०।।

सतीवियोगदुःखार्तश्चिरं विह्वलमानसः।
स्थितोऽसि सा सतीयं त्वां पुनराप निजांशतः ॥ ११ ॥

क्योंकि आप चिरकाल से सतीवियोगजन्य दुःख से दुःखी हो रहे थे। अब आपकी वही सती पुनः अपने एक अंश से आपको प्राप्त हो गयी हैं।। ११।।

दृष्ट्वा त्वां सुप्रसन्नास्यं सगङ्गं हृष्टमानसम्।
सर्व एव प्रहृष्टाः स्मो वयं त्रिदशवन्दित! ॥ १२ ॥

हे देववन्दित! आज आपको गङ्गासहित प्रसन्नवदन देखकर हम सब भी अत्यधिक प्रमुदित हैं।। १२।।

तद्गानमतिसम्प्रीतिजनकं त्वन्मुखाच्युतम्।
श्रोतुमिच्छामि विश्वेश! कुरु गानं महेश्वर!" ॥ १३ ॥

हे महेश्वर! वह आपके मुख से निःसृत हर्षगान हमलोगों के लिये

अत्यधिक प्रीतिजनक होगा, अतः हे विश्वेश! उसे मैं आपसे सुनना चाहता हूँ, गान प्रारम्भ कीजिये"।। १३।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोरमिततेजसः।
शम्भुः सुललितं गानं चक्रेऽत्यद्भुतमुत्तमम्॥ १४॥

तेजस्वी भगवान् विष्णु के ये वचन सुनकर, भगवान् शङ्कर ने अद्भुत, उत्तम एवं ललित गान आरम्भ किया।। १४।।

प्रथमं गानमाकर्ण्य ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः।
मुमुहुः सर्व एवातिमनोज्ञं मुनिसत्तम!॥ १५॥

हे मुनिश्रेष्ठ वे ब्रह्मा आदि सुरेश्वर भगवान् शङ्कर के अति मनोहर प्रथम गान को सुनकर अत्यधिक मुग्ध हो गये।। १५।।

द्वितीयं समुपाकर्ण्य वैकुण्ठेशोऽथ नारद।
विसंज्ञः पतितो भूमौ रोमाञ्चितकलेवरः॥ १६॥

हे नारद! फिर द्वितीय गान को सुनकर वैकुण्ठाधिपति रोमाञ्चित शरीर होते हुए पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े।। १६।।

तृतीयं गानमाकर्ण्य स एव परमेश्वरः।
बभूव द्रवरूपी तु क्षणेन मुनिसत्तम!॥ १७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तृतीय गान सुनकर वही विष्णु क्षणभर में ही द्रव-(जल)मय हो गये।। १७।।

विष्णौ जलमयीभूते वैकुण्ठं प्लावितं परम्॥
बभूव व्याप्तं तोयेन सर्वतो मुनिसत्तम!॥ १८॥

हे मुनिवर! विष्णु के जलमय होते ही समग्र वैकुण्ठ जल में डूब गया। यहाँ तक कि सर्वत्र जल ही जल दिखायी देने लगा।। १८।।

ततः प्राप्य प्रबोधं तु ब्रह्माद्यास्त्रिदशोत्तमाः।
ददृशुः सकलं व्याप्तं तोयेन हरिमन्दिरम्॥ १९॥

पुनः जाग्रत् होने पर ब्रह्मादि देवताओं ने विष्णुसहित समग्र वैकुण्ठ लोक को जलमय देखा।। १९।।

अन्यच्च जलसम्पूर्णं स्थानं तस्मिन्पुराजिरे।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा हृषीकेशं विस्मयं परमं ययुः॥ २०॥

उस विष्णु के आवास में सर्वत्र जल ही जल देखकर अत्यधिक आश्चर्य किया।। २०।।

ब्रह्मा तदुपधार्याथ शिवगानसमुद्भवम्।
हरेर्द्रवत्वं तत्तोयं कमण्डलुमुपानयत्॥ २१॥

यह देखकर ब्रह्मा ने निश्चय किया कि यह सब विस्मयोत्पादक कृत्य भवान् शङ्कर के अद्भुत गायन से हुआ है। विष्णु को द्रवत्व समझकर ब्रह्म ने उस जल को अपने कमण्डलु में भर लिया।। २१।।

तत्तोयप्राप्तिमात्रेण कमण्डलुगता तु या।
गङ्गाया मूर्तिरेकासीद् द्रवरूपापरा च सा॥ २२॥

उस जल के कमण्डुल में जाते ही गङ्गा की दो मूर्तियाँ (आकार) हो गयीं। पहली भगवान् शङ्कर के पास बैठी हुई, दूसरी कमण्डलु स्थित जलमयी।। २२।।

ब्रह्मा कमण्डलौ कृत्वा गङ्गां नीरमयीं मुने!
प्रययौ स्वपुरं लक्ष्मीमाश्वास्य च सरस्वतीम्॥ २३॥

हे मुने! ब्रह्माजी ने उस जलमयी गङ्गा को अपने कमण्डलु में भरकर स्वकीय ब्रह्मलोक को प्रस्थान किया। साथ ही लक्ष्मी एवं सरस्वती को आश्वासन भी दिया।। २३।।

शिवस्तु गङ्गया सार्धं कैलासं समुपागमत्।
गताश्चान्ये दिवं सर्वे त्रिदशा अपि नारद!॥ २४॥

हे नारद! उधर भगवान् शङ्कर गङ्गा को साथ लेकर पुनः कैलास चले गये। इसी प्रकार अन्य देवता भी स्वर्ग में अपने अपने स्थान पर चले गये।। २४।।

एवं द्रवमयी भूत्वा गङ्गा ब्रह्मकमण्डलौ।
संस्थिता मुनिशार्दूल! देवी त्रैलोक्यपावनी॥ २५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वह त्रैलोक्यपावनी गङ्गा जलमयी होकर ब्रह्माजी के कमण्डलु में स्थिर रही।। २५।।

इदानीं शृणु सा देवी प्राप्य विष्णुपदं शुभा।
विष्णुपादोद्भवेत्याख्यामनुप्राप सुरेश्वरी॥ २६॥
ततः सा प्रार्थिता पृथ्व्यां यथा चावातरत्स्वयम्।
परित्राणाय लोकानां चतुर्दिक्षु चतुर्मुखी॥ २७॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे शिवनारदसंवादे गङ्गायाः द्रवरूपवर्णने
चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥ ६४॥

उस देवी ने पवित्र विष्णुपद को प्राप्त कर 'विष्णुपादोद्भवा' कैसे कहलायी– इस आख्यान को भी सुनो। उसके पृथ्वी पर आने की कैसे माँग हुई? तथा वह पृथ्वी पर कैसे आयी? कैसे उन्होंने चतुर्मुखी बनते हुए चारों दिशाओं में फैलकर वहाँ के निवासी प्राणियों का कल्याण किया?।। २६–२७।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
गङ्गा के द्रवरूप वर्णनात्मक
चौसठवाँ अध्याय समाप्त॥

पैंसठवाँ अध्याय

[बलिपातालयात्रावर्णन]

श्रीमहादेव— विरोचनसुतो राजा बलिर्दैत्यगणाधिपः।
जहार देवराजस्य त्रैलोक्यं धर्मतत्परः॥ १॥

श्रीमहादेव जी— दैत्यसमूह के अधिपति, विरोचन के पुत्र राजा बलि ने धर्मपूर्वक आचरण करते हुए देवराज इन्द्र का समस्त साम्राज्य अपने अधीन कर लिया।। १।।

ततोऽदितिर्देवमाता पुत्रराज्यापहारणे।
दुःखिता प्रार्थयामास विष्णुं त्रिजगतां प्रभुम्॥ २॥

तब देवमाता अदिति ने पुत्र (इन्द्र) के राज्यापहरण से दुःखी होकर त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णु के पास जाकर प्रार्थना की।। २।।

ततः प्रसन्नो भगवान् प्रत्यक्षं समुपागतः।
उवाच देवमातस्त्वं वृणु यत्ते समीहितम्।
दास्यामि परमप्रीत्या तपसोग्रेण तोषितः॥ ३॥

तब भगवान् विष्णु अदिति की प्रार्थना से प्रसन्न होकर साक्षात् सम्मुख आये और देवमाता से बोले— "तुम अपना मनोवाञ्छित कहो। तुम्हारी तपस्या से मैं सन्तुष्ट हूँ। मैं तुम्हें मनचाहा वर दूँगा"।। ३।।

अदिति०— "यदि प्रसन्नो भगवन् वरं मे त्वं प्रयच्छसि।
तदा बलिहृतं राज्यमिन्द्राय त्वं समर्पय"॥ ४॥

अदिति— "हे भगवन्! यदि आप मुझसे प्रसन्न होकर वर देना चाहते हैं तो मेरे पुत्र इन्द्र को, बलि द्वारा अपहृत उसका राज्य पुनः दिलवा दीजिये"।। ४।।

श्रीभगवान्०— "वैरोचनो न वध्यो मे प्रह्लादान्वयसम्भवः।
मद्भक्तो धर्मनिष्ठश्च यशस्वी लोकविश्रुतः॥ ५॥

श्रीविष्णु— "विरोचनपुत्र का मैं वध नहीं कर सकता; क्योंकि वह मेरे परमप्रिय भक्त प्रह्लाद के कुल में उत्पन्न हुआ है। वह स्वयं भी मेरा भक्त है, धर्मप्रिय है, यशस्वी है, लोक प्रसिद्ध भी है।। ५।।

तस्माद्वामनरूपेण सम्भूय त्वयि कश्यपात्।
याच्ञाया समुपाहृत्य छलाल्लोकत्रयं पुनः।
वासवाय प्रदास्यामि त्वत्पुत्रायादिते ध्रुवम्'' ॥ ६ ॥

अतः हे अदिते! मैं कश्यप द्वारा तुम्हारे गर्भ से *वामन* रूप में अवतार लूँगा और दान में माँगकर छलपूर्वक तीनों लोकों को राजा बलि से लेकर तुम्हारे पुत्र इन्द्र को सौंप दूँगा। यह निश्चित समझो'' ।। ६ ।।

श्रीमहादेव०— इति तस्यै वरं दत्त्वा भगवान् पुरुषोत्तमः।
सहसाऽन्तर्दधे विष्णुः सर्वलोकेश्वरः ॥ ७ ॥

श्रीमहादेव जी— यों, उस अदिति को वर देकर, सर्वलोकाधिपति पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु सहसा अन्तर्हित हो गये ।। ७ ।।

अथ विष्णुर्देवमातुर्गर्भगेहमुपागमत्।
जन्मने दैत्यराजस्य राज्यापहरणेच्छया ॥ ८ ॥

समय पाकर भगवान् विष्णु दैत्यराज से राज्यापहरण की इच्छा से देवमाता अदिति के गर्भ में जन्म लेने के लिये आये ।। ८ ।।

सा च तं सुषुवे पुत्रं वामनं चारुरूपिणम्।
सर्वलक्षणसम्पूर्णं सुचारुमुखपङ्कजम् ॥ ९ ॥

उस अदिति ने सुन्दराकृति वाले, सर्व शुभलक्षणसम्पन्न, सुन्दरमु ब वामन पुत्र को उत्पन्न किया ।। ९ ।।

स ह्येकदा द्विजैः सार्धं द्विजरूपो जनार्दनः।
आससाद महात्मानं बलिं धर्मपरायणम्।
सोऽयाचत बलिं भूमिं त्रिपादपरिसम्मिताम् ॥ १० ॥

वे वामन, जो कि वस्तुतः द्विजरूपधारी विष्णु थे, एक बार ब्राह्मणों के साथ धर्मपरायण महात्मा बलि के पास आये और उन्होंने बलि से तीन पैर माप की भूमि माँगी ।। १० ।।

तच्छ्रुत्वा चाह तं राजा स्वल्पं किं याचसे द्विज ॥ ११ ॥
द्वीपं वा वर्षमेकं वा ग्रामं वापि तदर्धकम्।
न याचे कथं विप्र दास्ये तुभ्यं न संशयः ॥ १२ ॥
स्वल्पं दानं द्विजसुत! दातुः कीर्तिविनाशकम्।
तस्मात्स्वल्पतरं दातुं न तुभ्यं रोचते मनः ॥ १३ ॥

यह सुन राजा ने कहा— 'ब्राह्मण! इतना कम क्यों माँग रहे हो? एक द्वीप, एक वर्ष. (या कम से कम) एक ग्राम या उसका अर्धभाग ही माँग लो,

मैं दूँगा। विप्र! तुम माँग क्यों नहीं रहे हो? मैं तुम्हें अवश्य दूँगा— इसमें संशय न करो। हे द्विजपुत्र! अल्पदान माँगना भी दाता की कीर्ति को धूमिल करता है। अतः तुमको कम देने की इच्छा नहीं करती"।। ११–१३।।

श्रीवामन०—"किं तेन ते महाराज! यन्मया काङ्क्षितं तव।
तदेव देहि नाकीर्तिस्तव तेन भविष्यति॥ १४॥

वामन— "महाराज! आप को इससे क्या प्रयोजन है कि मैंने आपसे क्या माँगा है? जो मैंने माँगा है वही आप दीजिये। इसमें आप की अपकीर्ति नहीं होगी।। १४।।

मह्यं त्रिपादभूदानपुण्यं कीर्तिकरं परम्।
भविष्यति महाराज! यथा भूतं न भावि च"॥ १५॥

आप मुझे तीन पैर माप की भूमि देंगे तो आप को इसी का पुण्य इतना अधिक होगा कि उतना न किसी को आज तक हुआ है, न आगे किसी को होगा"!।। १५।।

श्रीमहादेव०— एवं वचनमाकर्ण्य वामनस्य महात्मनः।
सभ्या ऊचुर्महाराजं बलिं धर्मपरायणम्॥ १६॥

श्रीमहादेव जी— महात्मा वामन के ये वचन सुनकर महाराज धर्मात्मा बलि को उसके सभासदों ने कहा—।। १६।।

सभ्या— "यद्याचते द्विजसुतस्तदेव त्वं प्रयच्छ भो!
ग्रहीतुस्तुष्टिदं दानं सफलं कीर्तिवर्धनम्"॥ १७॥

मन्त्रिगण— राजन्! ब्राह्मण जो कुछ माँग रहा है, वही दे दीजिये। याचक की सन्तुष्टि ही दाता की कीर्ति बढ़ाती है"।। १७।।

श्रीमहादेव०— इत्याकर्ण्य वचस्तेषां राजा तस्मै द्विजातये।
त्रिपादसम्मितां भूमिं दातुं तिलकुशं दधे॥ १८॥

श्रीमहादेव जी— राजा ने मन्त्रियों का परामर्श सुनकर ब्राह्मण को तीन पैर माप वाली भूमि देने के लिये तिल एवं कुश हाथ में लिये।। १८।।

एतस्मिन्नेव काले तु दैत्यानां गुरुराह तम्।
"क्षणं तिष्ठ महाराज! वचनं मेऽवधारय॥ १९॥

इसी समय दैत्यों के गुरु (शुक्राचार्य) वहाँ आये और राजा से बोले— "हे महाराज! कुछ क्षण ठहरिये। पहले मेरी बात सुन लीजिये!।। १९।।

नायं द्विजसुतो नूनं द्विजरूपी जनार्दनः।
मायया वामनो भूत्वा त्वदन्तिकमुपागतः॥ २०॥

मुझे लगता है— यह ब्राह्मण नहीं है, यह तो छद्मरूप में स्वयं विष्णु है। यह धूर्तता से वामन ब्राह्मण का रूप धारण कर आपके पास आया है।। २०।।

यद्याचते मुहुस्तत्र त्रिपादपरिसम्मिताम्।
भूमिं तदिन्द्रकायार्थं निश्चितं विद्धि भूपते॥ २१॥

और यह जो बार बार त्रिपादपरिमित भूमि माँग रहा है, हे राजन्! इस विषय में निश्चित समझ लीजिये कि इन्द्र के प्रयोजन से ही वह सब कुछ माँग रहा है।। २१।।

त्वयैतस्मै यदि पुनस्त्रिपादपरिसम्मिता।
भूमिः प्रदीयते तर्हि तव लोकत्रयं ध्रुवम्।
नेष्यत्ययं चातिखर्वो दातुमिन्द्राय निश्चितम्"॥ २२॥

यदि आपने इसको त्रिपाद परिमिति भूमि दे दी तो निश्चित समझ लीजिये कि आपके तीनों लोक गये। यह बहुत बड़ा धूर्त है। यह वह सब कुछ इन्द्र को ही देगा— यह निश्चित है"।। २२।।

बलि०— कुलदेव कथं विष्णुर्मम लोकत्रयं गुरो!
सम्प्रदास्यति चेन्द्राय मत्तो नीत्वा छलेन वा॥ २३॥

बलि— "हे गुरो! कुलदेव विष्णु कैसे मुझ से तीनों लोक छलपूर्वक छीन कर इन्द्र को दे देंगें।"।। २३।।

भृगु०— "नासाध्यं विद्यते विष्णोर्देवकार्यानुरोधिनः।
किञ्चिदत्र महाराज दारुणं कर्म निश्चितम्॥ २४॥

भृगु (शुक्राचार्य)— "सदैव देवहित में लगे रहने वाले विष्णु के लिये कुछ भी अकरणीय नहीं है। इसकी इस याच्ञा में भी कुछ कष्टकर बात छिपी हुई है।। २४।।

स एव भगवान्नूनमदित्या गर्भसम्भवः।
मायया वामनो भूत्वा त्वत्तो भूमिं प्रयाचते॥ २५॥

निश्चय ही वह भगवान् विष्णु अदिति के गर्भ से उत्पन्न होकर आज तुम से धूर्तता करते हुए, वामन बनकर भूमि माँग रहा है।। २५।।

तस्माद्राजँस्त्वमेतस्मै भूमिं मा देहि कश्चन।
यदि त्रैलोक्यराज्यं त्वं समिच्छसि महामते"॥ २६॥

अतः हे महामते! यदि आप अपना त्रैलोक्य–राज्य बचाये रखना चाहते हैं तो हे राजन्! इसे आप त्रिपादपरिमित भूमि न दें"।। २६।।

बलि०— **"दास्यामीत्येवमुक्त्वाहं न दास्ये वा कथं गुरो!**
दास्यामि वा कथं भूमिं छलग्राही ह्ययं यदि"॥ २७॥

बलि– "हे गुरुदेव! मैं तो देने का वचन दे चुका हूँ। अब मैं इनको इसका निषेध कैसे कर सकता हूँ। यदि यह धूर्तता से याचक बना होता तो यह इतनी कम भूमि क्यों माँगता!"।। २७।।

श्रीमहादेव०— **इति राज्ञो वचः श्रुत्वा शुक्रो दानवपूजितः।**
मुहुस्तं वारयामास भूमिदानसमुद्यतम्॥ २८॥

श्रीमहादेव जी– राजा की बात सुनकर, दानवोंके पूजनीय शुक्राचार्य ने भूमिदान के लिये उद्यत राजा को इस कार्य के निमित्त बार बार निषेध किया।। २८।।

तच्छ्रुत्वा स तु धर्मात्मा तूष्णींभूय महामुने।
निश्चित्य चेतसा दानं गुरोर्वचनमब्रवीत्॥ २९॥

हे महामुने! गुरु का यह निषेधादेश सुनकर भी राजा चुप ही रहे। तथा मन में दान का निश्चय कर अपने गुरुदेव से यों बोले–।। २९।।

बलि०— **"गुरो यदि स्वयं विष्णुर्मायावामनरूपधृक्।**
त्रैलोक्यं याचते तर्हि किं मे भाग्यमतः परम्॥ ३०॥

बलि– हे गुरुदेव! यदि भगवान् विष्णु वामन का मायारूप धारण कर मुझसे त्रिपादपरिमित भूमि के बहाने से त्रिलोकी माँगने आये हैं तो इससे बढ़कर मेरा भाग्य क्या होगा?।। ३०।।

यस्य प्रीतिं समुद्दिश्य दानं किमपि मानवः।
कुर्वन् यत् फलमाप्नोति तदनन्ततमं मतम्॥ ३१॥

मनुष्य जिस विष्णु की प्रसन्नता को ध्यान में रखकर जो कुछ करता है, उसे उसका अनन्त फल प्राप्त होता है।। ३१।।

तस्मै वामनरूपाय विष्णवे द्विजरूपिणे।
त्रैलोक्यं सम्प्रदास्यामि किं मे भाग्यमतः परम्॥ ३२॥

तो इस द्विजरूप विष्णु को यदि मैं त्रिलोकी का राज्य दान कर देता हूँ तो इससे बढ़कर मेरा सौभाग्य क्या होगा?।।३२।।

विष्णोः सम्प्रीतये कर्म न करोति विमूढधीः।
करोति यस्तु सन्क्वापि निमज्जति न वै गुरो॥ ३३॥

हे गुरुदेव! जो विष्णु का प्रसाद पाने के लिये कार्य नहीं करता है वह मूर्ख है और जो करता है वह कहीं भी रहता हुआ नहीं डूब पाता!।। ३३ ।।

तस्माद्वामनरूपाय विष्णवे द्विजरूपिणे।
त्रिपादभूमिं दास्यामि प्रीतिं तस्य समुद्दिशन्''॥ ३४॥

अत: उसका स्नेह पाने के लिये मैं तो इन वामन द्विजवेषधारी विष्णु को त्रिपाद–परिमित भूमि का दान अवश्यं करूँगा'' ।। ३४ ।।

इत्युक्त्वा स गुरुं राजा विष्णोः प्रीतिं समुद्दिशन्।
त्रिपादसम्मितां भूमिं ददौ तस्मै परात्मने॥ ३५॥

गुरु से ऐसा निवेदन कर राजा बलि ने विष्णु भगवान् के प्रसाद का ध्यान रखते हुए उस परमात्मा (विष्णु) को त्रिपादपरिमिता भूमि दान कर दी।। ३५ ।।

स स्वस्तीत्येवमाभाष्य वामनो मुनिसत्तम!
विश्वरूपी बभौ विष्णुस्त्रिपादो जगदीश्वरः॥ ३६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वह वामन उन राजा के लिये 'स्वस्ति' कहकर तीन चरणवाले जगत्स्वामी विष्णु के विश्वरूप में आ गये।। ३६ ।।

तस्यैकं तु पदं वत्स ब्रह्माण्डं स्फोटयत्तदा।
ऊर्ध्वं जगाम ब्रह्माण्डे तदा तस्मिन्पदाम्बुजे॥ ३७॥
कमण्डलुस्थितं तत्तु तोयं प्रादात् प्रजापतिः।
तदा नीरमयी गङ्गा प्राप्य विष्णोः परं पदम्।
तत्रैवावस्थितिं चक्रे सर्वपापप्रणाशिनी॥ ३८॥

हे वत्स! उनका एक चरण तो ब्रह्माण्ड को फोड़ता हुआ, ऊपर ब्रह्माण्ड में चला गया। तब उनके चरणों में ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु से जल छोड़ा। तब वह नीरमयी गङ्गा बनकर सर्वपापनाशिका के रूप में उनके चरणों में ही रह गया।। ३७–३८ ।।

विष्णुस्तु प्राह राजानं बलिं धर्मपरायणम्।
सापराध इव स्पृष्ट्वा पादेनैकेन तच्छिरः॥ ३९॥

तब भगवान् विष्णु ने अपराधी की तरह उस धर्मपरायण राजा बलि के शिर का स्पर्श कर कहा—।। ३९ ।।

''तव लोकत्रयं वत्स! न्यस्तं तिष्ठतु साम्प्रतम्।
शक्राय तावत्पातालं व्रज त्वं सह दानवैः॥ ४०॥

"हे वत्स! अपने इन तीनों लोकों का इन्द्र के लिये त्याग कर अब आप दानवों के साथ पाताल लोक में जाकर वास करें।। ४०।।

तवापि देवराजत्वं भविष्यत्यष्टमे मनौ।
तदा लोकत्रयं भूयस्त्वमाप्स्यसि न संशयः"॥ ४१ ॥

हाँ, आज के आप द्वारा किये गये इस दान के पुण्य प्रभाव से आप भी आठवें मन्वन्तर में देवराज बनेंगे। तब आपको अपने ये तीनों लोक पुनः मिल जायँगें"।। ४१।।

इति विष्णोर्वचः श्रुत्वा बलिः सर्वासुरैः सह।
पातालं प्रययौ विष्णुं प्रणिपत्य महामुने!॥ ४२ ॥

हे महामुने! विष्णु के ये वचन सुनकर राजा बलि, भगवान् विष्णु को प्रणाम कर समस्त दानवों के साथ पाताल लोक चला गया।। ४२।।

वैकुण्ठे जगतां नाथः प्रययौ त्रिदशेश्वरः।
गङ्गा तु संस्थिता तस्य चरणे लोकपावनी॥ ४३ ॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे वामनावतारे बलिपातालयात्राकथने
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥ ६५॥

उधर, जगदीश्वर भगवान् विष्णु भी वैकुण्ठलोक में पधारे और लोकपावनी गङ्गा उनके चरणों में ही निवास करने लगीं।।४३।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
वामनावतार-प्रसङ्ग वर्णन रूप
पैसठवाँ अध्याय समाप्त॥

छाछठवाँ अध्याय

[भगीरथ-गङ्गासंवादवर्णन]

श्रीमहादेव०— एवं हरितनुं प्राप्तां ज्ञात्वा गङ्गां विधिस्तथा।
शून्यं कमण्डलुं चापि विलोक्य मुनिसत्तम!॥ १॥
चेतसा चिन्तयामास क्षणं त्रिदशवन्दितः।
"इयं द्रवमयी गङ्गा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा॥ २॥
पुण्यात्पुण्यतमा धन्या स्थिता मम कमण्डलौ।
प्राप्ता हरिपदाम्भोजं निश्चला समभूदियम्॥ ३॥

श्रीमहादेव जी— हे मुनिवर! इस तरह ब्रह्माजी ने गङ्गा को विष्णु के शरीर में एकीकृत हुई जानकर तथा अपने कमण्डलु को रिक्त देखकर क्षणपर्यन्त उस देवपूजित ने सोचा— "यह जलमयी गङ्गा तीनों लोकों के लिये दुर्लभ हो गयी। यह पुण्य से पुण्यतमा थी जो कि मेरे कमण्डलु में थी। अब भगवान् विष्णु के शरीर के साथ एकीकृत होकर एक स्थान पर स्थिर हो गयी।। १–३।।

नूनं नदी स्वयं भूत्वा स्वर्गं मर्त्यं रसातलम्।
पवित्रं प्रकरिष्यन्ती सिद्धसङ्गमवाप्स्यति॥ ४॥

परन्तु (एक दिन आयगा कि) यह गङ्गा फिर नदी बनकर स्वर्ग, मर्त्य एवं रसातल (पाताल) तीनों लोकों को पवित्र करती हुई सिद्धसङ्ग (कपिलाश्रम) को प्राप्त करेगी।। ४।।

तदहं तपसा सद्यो देवीं गङ्गां सुरेश्वरीम्।
भूयो विष्णुपदाम्भोजाद् द्रावयिष्यामि निश्चितम्"॥ ५॥

तो मैं तपस्या कर, इन देवी सुरेश्वरी गङ्गा को पुनः विष्णु के चरणकमलों से निकाल कर जलमयी बनाने का प्रयास करूँगा"।। ५।।

इति सञ्चिन्त्य स विधिर्वैकुण्ठं समुपागतः।
गङ्गां सम्प्रार्थयामास स्थितां विष्णुतनौ मुने!॥ ६॥

ऐसा सोचकर वे ब्रह्मा शीघ्र ही वैकुण्ठ लोक में गये तथा हे मुने! वहाँ विष्णुशरीर में स्थित गङ्गा जी से प्रार्थना की।। ६।।

चिरं प्रार्थयतस्तस्य गङ्गा त्रैलोक्यपावनी।
प्रत्यक्षं समुपागत्य वचनं त्विदमब्रवीत्॥ ७॥

इस तरह उनके प्रार्थना करते करते वह त्रैलोक्यपावनी गङ्गा ब्रह्मा जी के सम्मुख प्रकट हुईं और यह बोली।। ७।।

गङ्गा०— "अहं हरितनौ ब्रह्मन्स्थास्ये कालं कियद्ध्रुवम्।
ततो द्रवमयी भूत्वा विष्णोः पादाम्बुजात्पुनः।
निःसृत्य पावयिष्यामि लोकत्रयमसंशयम्॥ ८॥

गङ्गा— "हे ब्रह्मन्! मैं कुछ काल तक अभी भगवान् विष्णु के ही शरीर में रहूँगी। फिर जलमय होकर विष्णु के चरणकमलों से निकलकर निश्चय ही समग्र जगत् को पवित्र करूँगी।। ८।।

स्तुता भगीरथेनाहं राज्ञा चामिततेजसा।
भागीरथीति विख्याता यास्येऽहं धरणीतले॥ ९॥

जब अमित तेजस्वी भगीरथ राजा यहाँ आकर मेरी स्तुति करेंगे तो मैं पृथ्वी पर जाऊँगी। वहाँ मेरा 'भागीरथी' यह नाम प्रख्यात होगा।। ९।।

उद्धृत्य तत्पितॄन् सर्वान्सिद्धसङ्घमवाप्य च।
पातालं सम्प्रविश्यामि लोकानां त्राणहेतवे"॥ १०॥

तब उनके सभी वंशजों का उद्धार कर सिद्धसङ्घ को प्राप्त कर पातालोकवासियों की रक्षा हेतु वहाँ जाऊँगी"।। १०।।

ब्रह्मा०— "अहं वाप्यनुजानामि ज्ञानदृष्ट्या सुरोत्तमे।
भगीरथस्य राज्ञस्त्वं कीर्तिं संवर्धयिष्यसि॥ ११॥

ब्रह्मा— "हे सुरश्रेष्ठे! मैं भी ज्ञानदृष्टि से देखकर आपकी बात का अनुमोदन करता हूँ कि आप राजा भगीरथ की कीर्ति का संवर्धन करेंगी।। ११।।

अहं चापि तदर्थं त्वां प्रार्थिता शिवसुन्दरि।
यत्त्वं भूयो विनिःसृत्य त्रैलोक्यमधियास्यसि"॥ १२॥

हे शिवसुन्दरि! मैंने भी आप से पहले यही प्रार्थना की थी कि लोक को पवित्र करने हेतु पृथ्वीतल पर आवें। अब आप भी यह स्वीकार कर ही रही हैं"।। १२।।

श्रीमहादेव०— ततो गङ्गा भगवती स्वयमन्तर्दधेऽचिरात्।
ब्रह्मापि स्वपुरं प्रायात् सर्वलोकपितामहः॥ १३॥

श्रीमहादेव जी— इसके बाद भगवती गङ्गा भी वहाँ अन्तर्हित हो गयी और पितामह ब्रह्मा भी अपने ब्रह्मलोक में पुनः लौट आये।। १३।।

राजा भगीरथ की तपस्या

अथ विष्णुतनुं प्राप्तां गङ्गां द्रवमयीं क्षितौ।
आनेतुं गुरुणादिष्टः पितृञ्छापप्रभावतः॥ १४॥
भस्मीभूतान्मुनीन्द्रस्य कपिलस्यामितेजसः।
उद्दिधीर्षुर्महात्मा स राजा सगरवंशजः॥ १५॥
भगीरथः परात्मानं विष्णुं लोकेश्वरेश्वरम्।
चिरमाराधयामास यतात्मा मुनिसत्तम!॥ १६॥

हे मुनिवर! अति तेजस्वी कपिलमुनि के शाप से अपने पूर्वजों (पितरों) को मुक्त कराने की इच्छा से गुरु द्वारा आज्ञा प्राप्त कर, सगरवंश के प्रसिद्ध संयमी राजा भगीरथ ने, विष्णुदेह में प्रविष्ट भगवती गङ्गा को पृथ्वीतल पर लाने के लिये, परमात्मस्वरूप लोकेश्वर भगवान् विष्णु की चिरकाल तक आराधना की।। १४–१६।।

ततः प्रसन्नो भगवान् परात्मा पुरुषोत्तमः।
प्रत्यक्षं समभूत्तस्य राज्ञः पुण्यतमात्मनः॥ १७॥

उस पुण्यात्मा भगीरथ की इस चिरकालीन आराधना से परमात्मस्वरूप पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने प्रसन्न होकर उसको प्रत्यक्ष दर्शन दिये।। १७।।

तं दृष्ट्वा जगतां नाथं शङ्खचक्रगदाधरम्।
पीताम्बरं सुपर्णस्थं वनमालाविराजितम्॥ १८॥
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ स्तोत्रमाह महीपतिः॥ १९॥

उन शङ्ख–चक्र गदाधारी, पीताम्बर, वनमाला से शोभित, गरुड़ पर आरूढ़, जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु को देखते ही राजा भगीरथ ने भूमि में गिरकर दण्डवत् प्रणाम कर यों स्तोत्रपाठ किया।। १८–१९।।

भगीरथ०— "त्रैलोक्यपावन जगत्परिवन्द्यपाद!
विश्वेश विश्वग महापुरुषप्रधान!
नारायणाच्युत हरे मधुकैटभारे!
विष्णो प्रसीद परमेश्वर ते नमोऽस्तु॥ २०॥

भगीरथ— "हे त्रैलोक्यपावन! हे जगत् के द्वारा वन्दनीयचरण! हे विश्वनाथ, हे महापुरुषप्रधान! हे नारायण, हे अच्युत! हे हरे! हे मधु एवं कैटभ के शत्रु! हे विष्णु! आप मुझ पर प्रसन्न हों। आप परमेश्वर हैं, अतः आप को प्रणाम है।। २०।।

विश्वैककारण पुराण जगन्निधान!
श्रीवत्सलाञ्छन विभो मधुसूदनाख्य!
गोविन्द वामन जनार्दन विश्वमूर्ते!
विष्णो प्रसीद परमेश्वर ते नमोऽस्तु॥ २१॥

हे विश्व के एकमात्र कारणभूत! हे पुराणपुरुष! हे जगन्निधान! हे श्रीवत्सचिह्न! हे विभो! हे मधुसूदन! हे गोविन्द! हे वामन! हे जनार्दन! हे विश्वमूर्ते! हे विष्णो! आप मुझ पर प्रसन्न हों। आप परमेश्वर हैं, अतः आपको प्रणाम हैं।। २१।।

अत्यन्तविक्रम जगन्मय वासुदेव!
दैत्यान्तकान्तक भयान्तक कान्त पूर्ण!
वैकुण्ठ माधव धराधर चारुरूप!
विष्णो प्रसीद परमेश्वर ते नमोऽस्तु॥ २२॥

हे अत्यधिक विक्रमशालिन्! हे जगन्मय! हे वासुदेव! हे दैत्यनााक! हे भयनाशक! हे स्वामिन्! हे पूर्णस्वरूप! हे वैकुण्ठ! हे माधव! हे भूमिधर! हे सुन्दरमूर्ते! हे विष्णो! आप मुझ पर प्रसन्न हों, आप परमेश्वर हैं, अतः आपको प्रणाम हैं।। २२।।

लक्ष्मीपतेऽमरपते जगदेकनाथ!
मायाश्रयैककरुणामय केशवेश!
आनन्दसान्द्र कमलेक्षण शुद्धबोध!
वाणीपतेऽखिलपते सततं नतोऽस्मि॥ २३॥

हे लक्ष्मीपते! हे देवेश! हे जगत् के एकमात्र स्वामिन्! हे मायाश्रय! हे करुणामय! हे केशवेश! हे आनन्दस्वरूप! हेकमलनयन! हे शुद्धज्ञान! हे वाणीपते! हे अखिलपते! आप को मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ।। २३।।

नमस्ते विश्वरूपाय विष्णवेऽमिततेजसे।
सच्चिदानन्दरूपाय शुद्धज्ञानात्मने नमः॥ २४॥

हे विश्वरूप! हे विष्णो! हे अपरिमित तेजस्विन्! हे सच्चिदानन्दस्वरूप! हे शुद्धज्ञानात्मन्! आपको प्रणाम है।। २४।।

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः।
यत्त्वां पश्यामि नेत्राभ्यां देवैरपि सुदुर्लभम्''॥ २५॥

आज मेरा समस्त जन्म सफल हो गया, आज मेरा समस्ततप भी

सफल हो गया कि देवताओं को भी दुर्लभ आपके दर्शन कर पा रहा हूँ''।। २५।।

श्रीमहादेव०— इत्यादिस्तुतिवाक्यैस्तु स स्तुतो जगदीश्वरः।
उवाच नृपशार्दूलं भगीरथमरिन्दमम्॥ २६॥

श्रीमहादेव जी— ऐसे स्तुतिवचनों से स्तुत वे जगत् के स्वामी विष्णु उन शत्रुघातक राजा भगीरथ से यों बोले—।। २६।।

श्रीभगवान्०— ''किं तेऽभिलषितं राजन्वरं तद्वरयाधुना।
प्रीत्याहं सम्प्रदास्यामि तव भावेन निश्चितम्''॥ २७॥

भगवान् विष्णु— ''राजन्! आप अपने मन की इच्छा कहिये, मैं उसे प्रसन्नता से पूर्ण करूँगा''।। २७।।

भगीरथ०— ''पितरो ब्रह्मशापेन भस्मीभूय मम प्रभो।
अधोगतिमनुप्राप्तास्तेषां निष्कृतिकारणात्॥ २८॥
गङ्गां द्रवमयीं नेतुं क्षित्यामिच्छामि पावनीम्॥ २९॥

राजा भगीरथ— ''हे प्रभो! मेरे पूर्वज ब्रह्मशाप से दग्ध होकर अधोगति (पापयोनि) को प्राप्त हो गये हैं, वहाँ से उन्हें मुक्ति दिलाने के लिये मैं पवित्र जलमयी गङ्गा को पृथ्वी पर ले जाना चाहता हूँ।। २८–२९।।

सा ते तनुमनुप्राप्य स्थिता त्रैलोक्यपावनी।
कमण्डलुकृतावासा ब्रह्मणः परमात्मनः॥ ३०॥

वे त्रैलोक्यपावनी ब्रह्मा जी के कमण्डलु से निकलकर आपके शरीर में प्रविष्ट होकर स्थिर भाव से बैठ गयी हैं।। ३०।।

तां त्वं ददासि चेद् गङ्गां स्वशरीरकृतालयाम्।
तदा मे पितरः सर्वे प्रयान्ति परमं पदम्॥ ३१॥

यदि आप स्वशरीर में निवास करती गङ्गाजी को मुझे दे दें तो मेरे सभी पूर्वज उस हीनयोनि से निकलकर परमपद को प्राप्त कर सकेंगे।। ३१।।

एतदेव जगन्नाथ वाञ्छितं विद्यते मम।
त्वत्तः सर्वात्मना देव प्रणतानां कृपाकरः''॥ ३२॥

हे प्रणतों पर दया करने वाले! हे जगन्नाथ! आप से प्राप्त करने के लिये मेरे मन की यही इच्छा है।। ३२।।

भगवान्०— ''वत्स क्षितितलं गत्वा गङ्गा द्रवमयी स्वयम्।
मच्छरीराद्विनिःसृत्योद्धरिष्यति पितॄँस्तव॥ ३३॥

भगवान् विष्णु— "हे वत्स! द्रवमयी गङ्गा, मेरे शरीर से निकलकर, भूतल पर जाकर तुम्हारे पूर्वजों का स्वयं उद्धार करेगी।। ३३।।

त्वं तु मां परमाराध्यां देवानामपि दुर्लभाम्।
सम्प्रार्थय महाराज तथा शम्भुं जगत्पतिम्।
ततः सम्पत्स्यतेऽभीष्टं सर्वमेव भगीरथ"॥ ३४॥

अतः हे भगीरथ! महाराज तुम पहले परम आराधनीय, देवताओं के लिये भी दुर्लभ भगवती गङ्गा की आराधना करो, साथ ही जगत्पति भगवान् शङ्कर की भी। तभी तुम्हारा मनोरथ सर्वथा सफल होगा"।। ३४।।

श्रीमहादेव०— **इति तस्मै वरं दत्त्वा भगवान्पुरुषोत्तमः।**
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ राज्ञस्तस्य समीपतः॥ ३५॥

श्रीमहादेव— यों, उस राजा भगीरथ को वर देकर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु इस राजा के सामने से अन्तर्हित हो गये।। ३५।।

स तु गत्वा महाराजो हिमाद्रेरुत्तरं शिरः।
गङ्गामाराधयामास यतात्मा मुनिसत्तम॥ ३६॥

उधर, संयतेन्द्रिय राजा भगीरथ भी हिमालय पर्वत के उत्तर शिखर पर जाकर, हे मुनिश्रेष्ठ, भगवती गङ्गा की आराधना करने लगे।। ३६।।

गते तु बहुसाहस्रे वर्षे तस्य तपस्यतः।
प्रसन्ना समभूद्गङ्गा शिवशक्तिः स्मितानना॥ ३७॥
सा प्रत्यक्षमनुप्राप्य राजानं यतमानसम्।
उवाच "राजन्वृणु तं यत्तेऽभिलषितं वरम्"॥ ३८॥

उनको तपस्या करते करते जब हजारों वर्ष बीत गये तो शिव की शक्तिस्वरूप भगवती गङ्गा प्रसन्न हुई तथा वह मुस्कराते हुए, उन संयतेन्द्रिय राजा के सम्मुख आयीं। और बोलीं— "हे राजन्! आप की जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो"।। ३७–३८।।

भगीरथ०— **"मातस्त्वं सुप्रसन्ना मे यदि त्वं शिवसुन्दरी।**
तदा हरिपदाम्भोजान्निःसृत्यैहि धरातले॥ ३९॥
पवित्रां धरणीं कृत्वा प्रविश्य विवरस्थलम्।
उद्धारय पितॄन्पूर्वान्मुनिना भस्मसात्कृतान्॥ ४०॥

भगीरथ— "हे शिवसुन्दरि! माता! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो विष्णु के चरणकमलों से निकल कर भूतल पर आकर पृथ्वी को पवित्र कर

समुद्र की तरफ नीचे आकर मेरे पूर्वजों का उद्धार कीजिये, जो कि ऋषि के शाप से भस्म हो चुके हैं।। ३९–४०।।

पितृणां यदि निस्तारं करोषि त्रिदशस्तुते!
तदाहं कृतकृत्यः स्यादेतन्मे वाञ्छितं शिवे"॥ ४१॥

हे देवपूज्ये! यदि आप मेरे पूर्वजों का उद्धार कर देंगी तो मैं अपने आप को कृतकृत्य मानूँगा। हे शिवे! यही मेरे मन का अभिलाष है"।। ४१।।

गङ्गा०— "एवमस्तु, महाराज! विष्णुपादाम्बुजादहम्।
विनिःसृत्योद्धरिष्यामि तव पूर्वतमान् पितृन्॥ ४२॥

गङ्गा— "ऐसा ही होगा, महाराज! मैं विष्णु जी के चरणकमलों से निकलकर तुम्हारे पूर्वजों का उद्धार करूँगी।। ४२।।

त्वतः सम्प्रार्थिता यस्माद् भूत्वा विष्णुपदाम्बुजात्।
क्षिताववतरिष्यामि तस्मात्कन्या भवाम्यहम्॥ ४३॥

तुमसे प्रार्थित होकर मैं विष्णु के चरणकमलों से निकलकर भूमि पर अवतार लूँगी, अतः कन्या बनकर आऊँगी।। ४३।।

तेन भागीरथीत्याख्या लोके मे सम्भविष्यति।
त्वया तु जगतां नाथः शम्भुर्गत्वा प्रसाद्यताम्॥ ४४॥

अतः लोक में 'भागीरथी' इस नाम से मेरा आह्वान किया जायगा। आप ऐसा कीजिये कि भगवान् शङ्कर के पास जाकर उनसे कृपाभिक्षा माँगिये।। ४४।।

स मे प्रियतमो भर्ता तस्याहं वशवर्तिनी।
तेन गन्तुं न शक्नोमि विना तस्याज्ञया प्रभो!॥ ४५॥

क्योंकि वे मेरे प्रिय पति हैं, मैं उनके अधीन हूँ। अतः, राजन्! मैं उनकी आज्ञा के विना अन्यत्र कहीं जाने में असमर्थ हूँ।।४५।।

तस्मात् प्रसन्नतां याते शङ्करे त्वयि भूपते!
मेरुशृङ्गं समारुह्य शङ्खं जलदनिःस्वनम्॥ ४६॥
सन्ध्यास्यसि यदा राजँस्तदा विष्णुपदाम्बुजात्।
विनिःसृत्य विनिर्भिद्य ब्रह्माण्डमतिवेगिता।
त्वदानुगा वसुमतीं यास्यामि जलरूपिणी॥ ४७॥

हे राजन्! आपसे उनके प्रसन्न हो जाने पर तुम जब सुमेरु पर्वत पर चढ़कर मेघगर्जन के तुल्य शङ्खध्वनि करोगे। तब हे राजन् मैं विष्णु के

चरणकमलों से निकल कर अत्यन्त वेग से ब्रह्माण्ड की तरफ बढ़ूँगी और जल के रूप में तुम्हारे पीछे पीछे चलती हुई पृथ्वी पर आऊँगी।। ४६–४७।।

उद्धृत्य त्वत्पितॄन्सर्वान्विवरं समुपेत्य च।
पातालमनुयास्यामि तव कीर्तिविवर्धिनी''॥ ४८॥

वहाँ तुम्हारे पितरों का उद्धार कर छिद्रों में प्रवेश करती तथा तुम्हारी कीर्ति बढ़ाती हुई, अन्त में, पाताल में प्रवेश कर जाऊँगी''।। ४८।।

श्रीमहादेव०— **इत्युक्त्वा सा भगवती गङ्गा शङ्करगेहिनी।**
पश्यतो नृपतेस्तस्य क्षणादन्तरधीयत॥ ४९॥

श्रीमहादेव जी— ऐसा कहकर भगवान् शङ्कर की पत्नी भगवती गङ्गा उस राजा के देखते ही देखते क्षण में ही अन्तर्हित हो गयी।। ४९।।

भगीरथश्च भूपालो पितृणां कीर्तिवर्धनः।
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने गङ्गाभिदर्शनात्॥ ५०॥

अपने पूर्वजों की कीर्ति बढ़ाते हुए राजा भगीरथ ने भी गङ्गा के दर्शन से अपने आपको कृतकृत्य माना।। ५०।।

गत्वा गङ्गाज्ञया राजा धर्मात्माऽसौ भगीरथः।
महेशं प्रार्थयामास तस्मिन्नेव नगोत्तमे।
निराहारी शताब्दं तु नियतात्मा महामते!॥ ५१॥

वह धर्मात्मा राजा भगीरथ गङ्गा की आज्ञा से उसी श्रेष्ठ कैलास पर्वत पर जाकर महेश्वर की आराधना करने लगे। हे महामते! वहाँ से सौ वर्ष तक निराहार रहकर भगवान् शङ्कर की आराधना करते रहे।। ५१।।

ततः प्रसन्नो देवेशः शङ्करः प्रभुरव्ययः।
प्रत्यक्षं समभूत्तस्य पञ्चास्यो वृषभध्वजः॥ ५२॥

जिससे प्रसन्न होकर वे अविनाशी प्रभु शङ्कर उस राजा के सम्मुख पञ्चमुख एवं वृषध्वज रूप में प्रकट हुए।। ५२।।

तं वीक्ष्य रजताभासं पञ्चास्यं शूलधारिणम्।
व्याघ्राजिनपरीधानं जटामण्डितमस्तकम्॥ ५३॥
विभूतिलिप्तसर्वाङ्गं नीलकण्ठं स्मिताननम्।
नागेन्द्रभूषितं चारुचन्द्रार्धकृतशेखरम्॥ ५४॥
दण्डवत् पतितो राजा नाम्नामष्टसहस्त्रकैः।
तुष्टाव देवदेवेशं पूर्णं सर्वसुरोत्तमम्॥ ५५॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे भगीरथगङ्गासंवादे
श्रीशिवदर्शनप्राप्तिर्नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

उन रजत के समान श्वेतकान्तिवाले पञ्चमुख एवं वृषभध्वज, व्याघ्र चर्मावृत, जटाओं से शोभित मस्तक वाले, सभी अङ्गों पर विभूति लपेटे, नीलकण्ठ, स्मित हास्य करते हुए, नागराजों का आभूषण पहने, अर्धचन्द्र से शोभित मस्तक वाले, सुरश्रेष्ठ, देवाधिदेव भगवान् शङ्कर को उनके एक हजार आठ नाम लेते हुए भगीरथ ने स्तुति की।। ५३–५५।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
भगीरथ गङ्गा संवाद में शिवदर्शन प्राप्तिरूप
छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥

सड़सठवाँ अध्याय

[शिवसहस्त्रनामस्तोत्र]

भगीरथ०— "ॐ नमस्ते पार्वतीनाथ देवदेव परात्पर!
अच्युतानघ पञ्चास्य भीमास्य रुचिरानन॥ १॥
व्याघ्राजिनधरानन्त पारावारविवर्जित!
पञ्चानन महासत्त्व महाज्ञानमय प्रभो॥ २॥

भगीरथ— हे *पार्वतीनाथ*, हे *देवाधिदेव*, हे *उत्कृष्ट से उत्कृष्टतर*, हे *अच्युत*, हे *अनघ*, हे *पञ्चमुख*, हे *भीममुख*, हे *रुचिरानन*, हे *व्याघ्रचर्माम्बरधारिन्*, हे *अनन्त*, हे *पारावाररहित*, हे *पञ्चानन*, हे *महासत्त्व*, हे *महाज्ञानमय*, हे *प्रभो!* आपको प्रणाम है।। १–२।।

अजितामितदुर्धर्ष विश्वेश परमेश्वर!
विश्वात्मन्विश्वभूतेश विश्वाश्रय जगत्पते॥ ३॥
विश्वोपकारिन्विश्वैकधाम विश्वाश्रयाश्रय!
विश्वाधार सदानन्द विश्वानन्द नमोऽस्तु ते॥ ४॥

हे *अजित*, हे *अमित*, हे *दुर्धर्ष*, हे *विश्वेश*, हे *परमेश्वर*, हे *विश्वात्मन्*, हे *विश्वभूतेश*, हे *विश्वाश्रय*, हे *जगत्पते*, हे *विश्वोपकारिन्*, हे *विश्वैकधाम*, हे *विश्वाश्रयाश्रय*, हे *विश्वाधार*, हे *सदानन्द*, हे *विश्वानन्द*, आपको प्रणाम है।। ३–४।।

शर्व सर्वविदज्ञानविवर्जित सुरोत्तम!
सुरवन्द्य सुरस्तुत्य सुरराज सुरोत्तम॥ ५॥
सुरपूज्य सुरध्येय सुरेश्वर सुरान्तक!
सुरारिमर्दक सुरश्रेष्ठ तेऽस्तु नमो नमः॥ ६॥

हे *शर्व*, हे *सर्वविद्*, हे *अज्ञानविवर्जित*, हे *सुरोत्तम*, हे *सुरवन्द्य*, हे *सुरस्तुत्य*, हे *सुरराज*, हे *सुरोत्तम*, हे *सुरपूज्य*, हे *सुरध्येय*, हे *सुरेश्वर*, हे *सुरान्तक*, हे *सुरारिमर्दक*, हे *सुरश्रेष्ठ* आप को प्रणाम है।। ५–६।।

त्वं शुद्धः शुद्धबोधश्च शुद्धात्मा जगतां पतिः।
शम्भुः स्वयम्भूरत्युग्र उग्रकर्मोग्रलोचनः॥ ७॥

आप *शुद्ध* हैं, और *शुद्धबोध* हैं, *शुद्धात्मा* हैं, *जगत्पति* हैं, आप *शम्भु* हैं। आप ही *स्वयम्भू*, *अत्युग्र*, *उग्रकर्मा* हैं, तथा आप *उग्रलोचन* हैं।। ७।।

उग्रप्रभावश्चात्युग्रमर्दकोऽत्युग्ररूपवान् ।
उग्रकण्ठः शिवः शान्तः सर्वशान्तिविधायकः ॥ ८ ॥

आप *उग्रप्रभाव* हैं, आप *अत्युग्रमर्दक* तथा *अत्युग्ररूपवान्* हैं। आप *उग्रकण्ठ* हैं। आप *शिव, शान्त* एवं *सर्वशान्तिविधायक* हैं ।। ८ ।।

सर्वार्थदः शिवाधारः शिवाय निरमित्रजित् ।
शिवदः शिवकर्ता च शिवहन्ता शिवेश्वरः ॥ ९ ॥

आप *सर्वार्थदाता* एवं *शिवाधार* हैं, आप शिव के *समस्त शत्रुओं के विजेता* हैं। आप *शिव (मङ्गल) के दाता* हैं, *शिवकर्ता* और *अशिवहन्ता* एवं *शिवेश्वर* भी आप ही हैं ।। ९ ।।

शिशुशैशवयुक्तश्च पिङ्गकेशो जटाधरः ।
गङ्गाधरकपर्दी च जटाजूटविराजितः ॥ १० ॥

और आप *शिशु* एवं *शैशवयुक्त* हैं, *पिङ्गकेश* तथा *जटाधर* हैं। आप *गङ्गाधर* भी हैं और *कपर्दी* भी, साथ ही *जटाजूट से शोभित* हैं ।। १० ।।

जटिलो जटिलाराध्यः सर्वदोन्मत्तमानसः ।
उन्मत्तकेश उन्मत्त उन्मत्तानामधीश्वरः ॥ ११ ॥

आप *जटिल* हैं, *जटिलाराध्य* हैं, *सर्वदा उन्मत्तमानस* रहते हैं। *उन्मत्तकेश, उन्मत्त* एवं *उन्मत्तों के अधीश्वर* भी आप ही हैं ।। ११ ।।

उन्मत्तलोचनो भीमस्त्रिनेत्रो भीमलोचनः ।
बहुनेत्रो द्विनेत्रो च रक्तनेत्रः सुनेत्रकः ॥ १२ ॥

आप को ही *उन्मत्तलोचन, भीम, त्रिनेत्र, भीमलोचन, बहुनेत्र, द्विनेत्र* और *रक्तनेत्र* एवं *सुनेत्र* भी कहते हैं ।। १२ ।।

दीर्घनेत्रश्च पिङ्गाक्षः सुप्रभाक्ष्यः सुलोचनः ।
सोमनेत्रोऽग्निनेत्राख्यः सूर्यनेत्रः सुवीर्यवान् ॥ १३ ॥

आप *दीर्घनेत्र, पिङ्गाक्ष, सुप्रभाक्ष्य, सुलोचन, सोमनेत्र* तथा *अग्निनेत्र, सूर्यनेत्र* एवं *सुवीर्यवान्* भी कहलाते हैं ।। १३ ।।

पद्माक्षः कमलाक्षश्च नीलोत्पलदलेक्षणः ।
सुलक्षणः शूलपाणिः कपाली कपिलेक्षणः ॥ १४ ॥

पद्माक्ष, कमलाक्ष और *नीलोत्पलदलेक्षण* आप हैं। *सुलक्षण, शूलपाणि, कपाली* एवं *कपिलेक्षण* आप को ही कहते हैं ।। १४ ।।

व्याघूर्णनयनो धूर्तो व्याघ्रचर्माम्बरावृतः ।
श्रीकण्ठो नीलकण्ठाख्यः शितिकण्ठः सुकण्ठकः ॥ १५ ॥

व्याघूर्णनयन, धूर्त, व्याघ्रचर्माम्बरावृत, श्रीकण्ठ, नीलकण्ठ, शितिकण्ठ एवं *सुकण्ठ* भी आप ही कहलाते हैं।। १५।।

चन्द्रचूडश्चन्द्रधरश्चन्द्रमौलिः शशाङ्कभृत्।
शशिकान्तः शशाङ्काभः शशाङ्काङ्कितमूर्धजः॥ १६॥

आप ही *चन्द्रचूड़, चन्द्रधर, चन्द्रमौलि, शशाङ्काभृत्, शशिकान्त, शशाङ्काभ*, एवं *शशाङ्काङ्कितमूर्धज* भी कहलाते हैं।। १६।।

शशाङ्कवदनो वीरो वरदो वरलोचनः।
शरच्चन्द्रसमाभासः शरदिन्दुसमप्रभः॥ १७॥

शशाङ्कवदन, वीर, वरद, वरलोचन, शरच्चन्द्रसमाभास एवं *शरदिन्दु–समप्रभ* भी आप ही कहलाते हैं।। १७।।

कोटिसूर्यप्रतीकाशश्चन्द्रास्यश्चन्द्रशेखरः।
अष्टमूर्त्तिर्महामूर्तिर्भीममूर्तिर्भयानकः ॥ १८॥

तथा आप ही के *कोटिसूर्यप्रतीकाश, चन्द्रास्य, चन्द्रशेखर, अष्टमूर्ति, महामूर्ति, भीममूर्ति* एवं *भयानक* नाम भी हैं।। १८।।

भयदाता भयत्राता भयहर्ता भयोज्झितः।
निर्भूतो भूतवन्द्यश्च भूतात्मा भूतभावनः॥ १९॥

और ये नाम की आप ही के हैं– *भयदाता, भयत्राता, भयहर्ता, भयोज्झित, निर्भूत* और *भूतवन्द्य, भूतात्मा* एवं *भूतभावन* ।। १९।।

कौपीनवासा दुर्वासा विवासा कामिनीपतिः।
करालः कीर्तिदो वैद्यः किशोरः कामनाशनः॥ २०॥

तथा ये संज्ञाएँ भी आपकी ही हैं– *कौपीनवासा, दुर्वासा, विवासा, कामिनीपति, कराल, कीर्तिद, वैद्य, किशोर* एवं *कामनाशन* ।। २०।।

कीर्तिरूपः कुन्तधारी कालकूटकृताशनः।
कालकूटसुरूपी च कुलमन्त्रप्रदीपकः॥ २१॥

आप *कीर्त्तिरूप* भी हैं, और *कुन्तधारी* भी। आप *कालकूटकृताशन* हैं। तथा *कालकूटसुरूपी* हैं और *कुलमन्त्रदीपक* भी।। २१।।

कलाकाष्ठात्मकः काशीविहारी कुटिलाननः।
महाकाननसंवासी कालीप्रीतिविवर्धनः॥ २२॥

आप *कलाकाष्ठात्मक* हैं, आप *काशीविहारी* और *कुटिलानन* भी हैं। आप *महाकाननसंवासी* भी हैं और *कालीप्रीतिविवर्धन* भी।। २२।।

कालीधरः कामचारी कुलकीर्तिविवर्धनः ।
कामाद्रिः कामुकवरः कार्मुकी काममोहितः ॥ २३ ॥

आप *कालीधर* हैं, *कामचारी* हैं, *कुलकीर्तिविवर्धन* हैं। आप *कामाद्रि* भी हैं तथा *कामुकवर* भी। *कार्मुकी* एवं *काममोहित* भी आप ही हैं।। २३ ।।

कटाक्षः कनकाभासः कनकोज्ज्वलगात्रकः ।
कामातुरः क्वणत्पादः कुटिलभ्रुकुटीधरः ॥ २४ ॥

आप *कटाक्ष*, *कनकाभास*, *कनकोज्ज्वल गात्र*, *कामातुर*, *क्वणत्पाद*, *कुटिलभ्रूकुटीधर* हैं।। २४ ।।

कार्त्तिकेयपिता कोकनदभूषणभूषितः ।
खट्वाङ्गयोद्धा खड्गी च गिरीशो गगनेश्वरः ॥ २५ ॥

आप *कार्त्तिकेयपिता* हैं, *सुवर्णभूषणभूषित* हैं, *खट्वाङ्गयोद्धा* हैं, *खड्गी* हैं और *गिरीश* एवं *गगनेश्वर* भी आप ही हैं।। २५ ।।

गणाध्यक्षः खेटकधृक् खर्वः खर्वतरः खगः ।
खगारूढः खगाराध्यः खेचरः खेचरेश्वरः ॥ २६ ॥

आप *गणाध्यक्ष* हैं, *खेटकधृक्* हैं, *खर्व*, *खर्वतर* एवं *खग* हैं। *खगारूढ*, *खगाराध्य*, *खेचर* एवं *खेचरेश्वर* भी आप ही हैं।। २६ ।।

खेचरत्वप्रदः क्षोणीपतिः खेचरमर्दकः ।
गणेश्वरो गणपिता गरिष्ठो गणभूपतिः ॥ २७ ॥

आप *खेचरत्वप्रद*, *क्षोणीपति*, *खेचरमर्दक* हैं। *गणेश्वर*, *गणपिता*, *गरिष्ठ* एवं गणभूपति भी हैं।। २७ ।।

गुरुर्गुरुतरो ज्ञेयो गङ्गापतिरमर्षणः ।
गीतप्रियो गीतरतः सुगोप्यो गोपवृन्दपः ॥ २८ ॥

आप को ही *गुरु*, *गुरुतर*, *ज्ञेय*, *गङ्गापति*, *अमर्षण*, *गीतप्रिय*, *गीतरत*, *सुगोप्य*, *गोपवृन्दप* भी कहते हैं।। २८ ।।

गवारूढो जगद्भर्ता गोस्वामी गोस्वरूपकः ।
गोप्रदो गोधरो गृध्रो गरुत्मान् गोकृतासनः ॥ २९ ॥

आप ही *गवारूढ*, *जगद्भर्त्ता*, *गोस्वामी*, *गोस्वरूप*, *गोप्रद*, *गोधर*, *गृध्र*, *गरुत्मान्* एवं *गोकृतासन* भी कहलाते हैं।। २९ ।।

गोपीशो गुरुतातश्च गुहावासी सुगोपितः ।
गजारूढो गजास्यश्च गजाजिनधरोऽग्रजः ॥ ३० ॥

आप *गोपीश* और *गुरुतात* हैं, *गुहावासी* हैं, *सुगोपित* हैं। *गजारूढ* भी हैं और *गजास्य* भी। *गजाजिनधर* और *अग्रज* आप ही कहलाते हैं ।। ३० ।।

ग्रहाध्यक्षो ग्रहगणो दुष्टग्रहविमर्दकः।
गानरूपी गानरतः प्रचण्डो गानविह्वलः॥ ३१॥

ग्रहाध्यक्ष, ग्रहगण, दुष्टग्रहविमर्दक, गानरूपी, गानरत, प्रचण्ड एवं *गानविह्वल* भी आपको ही कहते हैं ।। ३१ ।।

गानमत्तो गुणी गुह्यो गुणग्रामाशयो गुणः।
गूढबुद्धिर्गूढमूर्तिर्गूढपादविभूषितः ॥ ३२॥

आप ही *गानमत्त, गुणी, गुह्य, गुणग्रामाशय, गुण, गूढबुद्धि, गूढमूर्ति, गूढपादविभूषित* भी कहलाते हैं ।। ३२ ।।

गोप्ता गोलोकवासी च गुणवान् गुणिनां वरः।
हरो हरितवर्णाक्षो मृत्युर्मृत्युञ्जयो हरिः॥ ३३॥

आप के ही ये नाम भी हैं— *गोप्ता, गोलोकवासी, गुणवान्, गुणिवर, हर, हरितवर्णाक्ष, मृत्यु, मृत्युञ्जय* एवं *हरि*।। ३३ ।।

हव्यभुग्हरिसम्पूज्यो हविर्हविर्भुजां वरः।
अनादिरादिः सर्वाद्य आदितेयवरप्रदः॥ ३४॥

तथा लोक में आप इन नामों से भी आहूत होते हैं— *हव्यभुक्, हरिसम्पूज्य, हवि, हविर्भुग्वर, अनादि, सर्वाद्य* एवं *आदितेयवरप्रद*।। ३४ ।।

अनन्तविक्रमो लोके लोकानां पापहारकः।
गीष्पतिः सद्गुणोपेतः सगुणो निर्गुणो गुणी॥ ३५॥

लोक में आप *अनन्तविक्रम, लोकपापहारक, गीष्पति, सद्गुणोपेत, सगुण, निर्गुण* एवं *गुणी*— इन नामों से आहूत होते हैं ।।३५ ।।

गुणप्रीतो गुणवरो गिरिजानायको गिरिः।
गौरीभर्ता गुणाढ्यश्च गोश्रेष्ठासनसंस्थितः॥ ३६॥

गुणप्रीत, गुणवर, गिरिजानायक, गिरि, गौरीभर्ता एवं *गुणाढ्य* तथा *गोश्रेष्ठासनसंस्थित* भी आप ही कहलाते हैं ।। ३६ ।।

पद्मासनः पद्मनेत्रः पद्मतुष्टः सुपद्मकः।
पद्मवक्त्रः पद्मकरः पद्मारूढपदाम्बुजः॥ ३७॥

आप के ये नाम भी हैं— *पद्मासन, पद्मनेत्र, पद्मतुष्ट, सुपद्म, पद्मवक्त्र, पद्मकर, पद्मारूढपदाम्बुज*।। ३७ ।।

पद्मप्रियतमः पद्मालयः पद्मप्रकाशकः।
पद्मकाननसंवासः पद्मकाननभुञ्जकः॥ ३८॥

तथा आप इन नामों से भी लोक में प्रसिद्ध हैं— *पद्मप्रियतम, पद्मालय, पद्मप्रकाशक, पद्मकाननसंवास* एवं *पद्मकाननभुञ्जक*।। ३८।।

पद्मकाननसंवासी पद्मारण्यकृतालयः।
प्रफुल्लवदनोत्फुल्लकमलाक्षप्रफुल्लकृत् ॥ ३९॥

आप *पद्मकाननसंवासी* भी हैं, तथा *पद्मारण्यकृतालय* भी हैं। साथ ही *प्रफुल्ल वदन, उत्फुल्लकमलाक्ष, प्रफुल्लकृत* भी हैं।। ३९।।

फुल्लेन्दीवरसन्तुष्टः प्रफुल्लकमलासनः।
फुल्लाम्भोजकरोत्फुल्लमानसः पापहारकः॥ ४०॥

आपको *फुल्लेन्दीवरसन्तुष्ट* तथा *प्रफुल्लकमलासन* भी कहते हैं। *फुल्लाम्भोजकर, उत्फुल्लमानस* एवं *पापहारक* भी आप ही हैं।। ४०।।

पापापहारी पुण्यात्मा पुण्यकीर्तिः सुपुण्यवान्।
पुण्यः पुण्यतमो धन्यः सुपूतात्मा परात्मकः॥ ४१॥

आप *पापापहारी* भी हैं *पुण्यात्मा* भी। *पुण्यकीर्ति* एवं *सुपुण्यवान्* भी आप ही हैं। साथ ही, *पुण्य, पुण्यतम, धन्य, सुपूतात्मा* एवं *परात्मक* भी आप ही कहलाते हैं।। ४१।।

पुण्येशः पुण्यदः पुण्यनिरतः पुण्यभाजनः।
परोपकारी पापिष्ठनाशकः पापहारकः॥ ४२॥

आप *पुण्येश* हैं, और *पुण्यद* भी हैं *पुण्यनिरत* एवं *पुण्यभाजन* भी। परोपकारी, पापिष्ठनाशक *एवं* पापहारक भी आप को ही कहते हैं।। ४२।।

पुरातनः पूर्वहीनः परद्रोहविवर्जितः।
पीवरः पीवरमुखः पीनकायः पुरान्तकः॥ ४३॥

आप *पुरातन, पूर्वहीन* एवं *परद्रोहवर्जित* हैं। *पीवर, पीवरमुख, पीनकाय, पुरान्तक भी* आप हैं।। ४३।।

पाशी पशुपतिः पाशहस्तः पाषाणविट्पतिः।
पलात्मकः परावेत्ता पाशबद्धविमोचकः॥ ४४॥

पाशी, पशुपति, पाशहस्त, पाषाणविट्पति, पलात्मक, परावेत्ता, पाशविद्धविमोचक—*ये सब नाम आपके ही हैं*।। ४४।।

पशूनामधिपः पाशच्छेत्ता पाशविभेदकः।
पाषाणधारी पाषाणशयानः पाशिपूजितः॥ ४५॥

आप *पशुओं के अधिप* भी हैं तो *पाशछेत्ता* भी और *पाशविभेदक* भी *पाषाणशयान*, *पाषाणधारी* एवं *पाशिपूजित* भी।। ४५।।

पश्वारूढः पुष्पधनुः पुष्पवृन्दसुपूजितः।
पुण्डरीकः पीतवासा पुण्डरीकाक्षवल्लभः ॥ ४६ ॥

आप का नाम *पश्वारूढ* भी है तो *पुष्पधनु पुष्पवृन्दसुपूजित*, *पुण्डरीक*, *पीतवासा* एवं *पुण्डरीकाक्षवल्लभ* भी आप ही हैं।। ४६।।

पानपात्रकरः पानमत्तः पानातिभूतकः।
पोष्टा पुष्टकरः पूतः परित्राताऽखिलेश्वरः ॥ ४७ ॥

आप की ये भी संज्ञाएँ हैं– *पानपात्र*, *पानमत्त*, *पानातिभूतक*, *पोष्टा*, *पुष्टकर*, *पूत*, *परित्राता* एवं *अखिलेश्वर* ।। ४७।।

पुण्डरीकाक्षकर्ता च पुण्डरीकाक्षसेवितः।
पल्लवस्थः प्रपीठस्थः पीठभूमिनिवासकः ॥ ४८ ॥

पुण्रीकाक्षकर्ता और *पुण्डरीकाक्षसेवित* भी आप ही हैं तथा *पल्लवस्थ*, *प्रपीठस्थ* एवं *पीठभूमिनिवासक* भी आप ही हैं।। ४९।।

पिता पितामहः पार्थप्रसन्नाभीष्टदायकः।
पितृणां प्रीतिकर्ता च प्रीतिदः प्रीतिभाजनः ॥ ४९ ॥

पिता, *पितामह*, *पार्थप्रसन्नाभीष्टदायक*, *पूर्वजों के प्रीतिकर्ता*, *प्रीतिद* एवं *प्रीतिभाजन* भी आप ही हैं।। ४९।।

प्रीत्यात्मकः प्रीतिवशी सुप्रीतः प्रीतिकारकः।
प्रीतिहृत्प्रीतिरूपात्मा प्रीतियुक्तस्त्वमेव हि ॥ ५० ॥

प्रीत्यात्मक, *प्रीतिवशी*, *सुप्रीत*, *प्रीतिकारक*, *प्रीतिहृत्*, *प्रीतिरूपात्मन्*, *प्रीतियुक्त* भी आप ही हैं।। ५०।।

प्रणतार्तिहरः प्राणवल्लभः प्राणदायकः।
प्राणी प्राणस्वरूपश्च प्राणग्राही सुनिर्दयः ॥ ५१ ॥

प्रणतार्तिहर, *प्राणवल्लभ*, *प्राणदायक*, *प्राणी*, *प्राणस्वरूप*, एवं *प्राणग्राही* और *सुनिर्दय* आप ही हैं।। ५१।।

प्राणनाथः प्रीतमनाः सर्वेषां प्रपितामहः।
वृद्धः प्रवृद्धरूपश्च प्रेतः प्रणयिनां वरः ॥ ५२ ॥

आप का इन नामों से भी आह्वान किया जाता है; जैसे– *प्राणनाथ*, *प्रीतिमना*, *सभी के प्रपितामह*, *वृद्ध* एवं *प्रवृद्धरूप*, *प्रेत* और *प्रेमियों में श्रेष्ठ*।। ५२।।

पराधीशः परं ज्योतिः परनेत्रः परात्मकः।
पारुष्यरहितः पुत्री पुत्रदः पुत्ररक्षकः॥ ५३॥

पराधीश, परज्योति, परनेत्र, परात्मक, पारुष्यरहित, पुत्री, पुत्रद एवं *पुत्ररक्षक*— ये भी आपके ही नाम हैं।। ५३।।

पुत्रप्रियः पुत्रवश्यः पुत्रवत्परिपालकः।
परित्राता परावासः परचेताः परेश्वरः॥ ५४॥

आप *पुत्रप्रिय, पुत्रवश्य, पुत्र की तरह प्रतिपालक* हैं और आप ही *परित्राता, परावास, परचेता* एवं *परेश्वर* भी कहलाते हैं।। ५४।।

पतिः सर्वस्य सम्पाल्यः पवमानः परान्तकः।
पुरहा पुरुहूतश्च त्रिपुरारिः पुरान्तकः॥ ५५॥

पति, सर्वसम्पाल्य, पवमान, परान्तक, पुरहा, पुरुहूत, त्रिपुरारि तथा *पुरान्तक*— ये सब आपके ही नाम हैं।। ५५।।

पुरन्दरातिसम्पूज्यः प्रधर्षो दुष्प्रधर्षणः।
पटुः पटुतरः प्रौढः प्रपूज्यः पर्वतालयः॥ ५६॥

तथा ये नाम भी आपके ही हैं— *पुरन्दरातिसम्पूज्य, प्रधर्ष, दुष्प्रधर्षण, पटु, पटुतर, प्रौढ़, प्रपूज्य* एवं *पर्वतालय*।। ५६।।

पुलिनस्थः पुलस्त्याख्यः पिङ्गचक्षुः प्रपन्नगः।
अभीरुरसिताङ्गश्च चण्डरूपः सिताङ्गकः॥ ५७॥

और *पुलिनस्थ, पुलस्त्य, पिङ्गचक्षु, प्रपन्नग, अभीरु,* एवं *असिताङ्ग, चण्डरूप* तथा *सिताङ्गक* ये नाम भी आपके ही हैं।। ५७।।

सर्वविद्याविनोदश्च सर्वसौख्ययुतः सदा।
सुखहर्ता सर्वमुखी सर्वलोकैकपावनः॥ ५८॥

आपको *सर्वविद्याविनोद* कहते हैं तथा *सदा सर्वसौख्ययुत* भी। *सुखहर्ता, सर्वमुखी, सर्वलोकैकपावन* भी आपके ही नाम हैं।। ५८।।

सदावनः सारदश्च सुसिद्धः शुद्धरूपकः।
सारः सारतरः सूर्यः सोमः सर्वप्रकाशकः॥ ५९॥

सदावन और *सारद, सुसिद्ध, शुद्धरूप, सार, सारतर, सूर्य, सोम, सर्वप्रकाशक*— ये सब भी आपके नाम हैं।। ५९।।

सोममण्डलधारी च समुद्रः सिन्धुरूपवान्।
सुरज्येष्ठः सुरश्रेष्ठः सुरासुरनिषेवितः॥ ६०॥

और *सोममण्डलधारी, समुद्र, सिन्धुरूपवान्, सुरज्येष्ठ, सुरश्रेष्ठ* एवं *सुरासुरनिषेवित*—ये सब नाम भी आपके अह्वान में प्रयुक्त होते हैं।। ६०।।

सर्वधर्मविनिर्युक्तः सर्वलोकनमस्कृतः।
सर्वाचारयुतः सौरः शाक्तः परमवैष्णवः॥ ६१॥

सर्वधर्मविनियुक्त, सर्वलोकनमस्कृत, सर्वाचारयुत, सौर, शाक्त एवं *परमवैष्णव* भी आपके ही नाम हैं।। ६१।।

सर्वधर्मविधानज्ञः सर्वाचारपरायणः।
सर्वरोगप्रशमनः सर्वरोगापहारकः॥ ६२॥

तथा ये भी आपके नाम हैं— *सर्वधर्मविधानज्ञ, सर्वाचारपरायण, सर्वरोगप्रशमन* एवं *सर्वरोगापहारक*।। ६२।।

प्रकृष्टात्मा महात्मा च सर्वधर्मप्रदर्शकः।
सर्वसम्पद्युतः सर्वसम्पद्दानसमेक्षणः॥ ६३॥

प्रकृष्टात्मा तथा *महात्मा, सर्वधर्मप्रदर्शक, सर्वसम्पद्युत* एवं *सर्वसम्पद्-दानसमेक्षण*— इन नामों से भी आपका ही आह्वान होता है।। ६३।।

सहास्यवदनो हास्ययुक्तः प्रहसिताननः।
साक्षी समक्षवक्ता च सर्वदर्शी समस्तवित्॥ ६४॥

आप *सहास्यवदन* भी हैं और *हास्ययुक्त भी* एवं *प्रहसितानन* भी। *साक्षी, समक्षवक्ता*, और *सर्वदर्शी, समस्तविद्* भी आप ही कहलाते हैं।।६४।।

सकलज्ञः समर्थज्ञः सुमनाः शैवपूजितः।
शोकप्रशमनः शोकहन्ताऽशोच्यः शुभान्वितः॥ ६५॥

सकलज्ञ, समर्थज्ञ, सुमना, शैवपूजित, शोकप्रशमन, शोकहन्ता, अशोच्य एवं *शुभान्वित*— ये सब आपके ही नाम हैं।। ६५।।

शैलज्ञः शैलजानाथः शैलनाथः शनैश्चरः।
शशाङ्कसदृशज्योतिः शशाङ्कार्धविराजितः॥ ६६॥

शैलज्ञ, शैलजानाथ, शैलनाथ, शनैश्चर, शशाङ्क सदृशज्योति, एवं *शशाङ्कार्धविराजित*— इन सब नामों से आप ही बोधित होते हैं।। ६६।।

साधुप्रियः साधुतमः साध्वीपतिरलौकिकः।
शून्यरूपः शून्यदेहः शून्यस्थः शून्यभावनः॥ ६७॥

तथा ये नाम भी आपके ही हैं— *साधुप्रिय, साधुतम, साध्वीपति, अलौकिक, शून्यरूप, शून्यदेह, शून्यस्थ* एवं *शून्यभावन* ।। ६७।।

शून्यगामी श्मशानस्थः श्मशानाधिपतिः सुवाक्।
शतसूर्यप्रभः सूर्यः सूर्यदीप्तः सुरारिहा।
शुभान्वितः शुभतनुः शुभवृद्धिः शुभात्मकः॥ ६८॥

साथ ही आप *शून्यगामी, श्मशानस्थ, श्मशानाधिपति, सुवाक्, शतसूर्यप्रभ, सूर्य, सूर्यदीप्त*, सुरारिहा, शुभान्वित, शुभतनु, शुभबुद्धि, शुभात्मक भी हैं।। ६८।।

शुभान्विततनुः शुक्लतनुः शुक्लप्रभान्वितः।
सुशौक्लः शुक्लदशनः शुक्लाभः शुक्लमाल्यधृक्॥ ६९॥

आप को ही लोग *शुभान्विततनु, शुक्लतनु, शुक्लप्रभान्वित, सुशौक्ल, शुक्लदशन, शुक्लाभ*, एवं *शुक्लमाल्यधृक्* भी कहते हैं।। ६९।।

शुक्लपुष्पप्रियः शुक्लवसनः शुक्लकेतनः।
शेषालङ्करणः शेषरहितः शेषवेष्टितः॥ ७०॥

आप *शुक्लपुष्पप्रिय* भी हैं, *शुक्लवसन* एवं *शुक्लकेतन* भी हैं और *शेषालङ्करण, शेषरहित*, एवं *शेषवेष्टित* भी आप के ही नाम है।। ७०।।

शेषारूढः शेषशायी शेषाङ्गदविराजितः।
सतीप्रियश्च सशङ्कः समदर्शी समाधिमान्॥ ७१॥

शेषारूढ, शेषशायी, शेषाङ्गदविराजित, सतीप्रिय और *सशङ्क, समदर्शी* एवं *समाधिमान्*– ये संज्ञाएँ भी आपकी ही हैं।। ७१।।

सत्सङ्गी सत्प्रियः सङ्गी निःसङ्गी सङ्गवर्जितः।
सहिष्णुः शाश्वतैश्वर्यः सामगानरतः सदा॥ ७२॥

सत्सङ्गी, सत्प्रिय, सङ्गी, निःसङ्गी, सङ्गवर्जित, सहिष्णु, शाश्वतैश्वर्य तथा *सदा सामगानरत*– ये सब भी आपके ही नाम हैं।। ७२।।

सामवेत्ता साम्यतरः श्यामापतिरशेषभुक्।
तारिणीपतिराताम्रनयनस्त्वरिताप्रियः॥ ७३॥

आप *सामवेत्ता* भी हैं *साम्यतर* भी, तथा, *श्यामापति* एवं *अशेषभुक्* भी आप ही हैं। *तारिणीपति, आताम्रनयन* एवं *त्वरिताप्रिय* भी आप ही को कहते हैं।। ७३।।

तारात्मकस्त्वग्वसनस्तरुणीरमणोरतः।
तृप्तिरूपस्तृप्तिकर्ता तारकारिनिषेवितः॥ ७४॥

तथा ये नाम भी आपके ही हैं– *तारात्मक, त्वग्वसन, तरुणी–रमण, रत, तृप्तिरूप, तृप्तिकर्ता*, एवं *तारकारिनिषेवित* ।। ७४।।

वायुकेशो भैरवेशो भवानीशो भवान्तकः।
भवबन्धुर्भवहरो भवबन्धनमोचकः॥ ७५॥

वायुकेश, भैरवेश, भवानीश, भवान्तक, भवबन्धु, भवहर एवं *भवबन्धनमोचक*— इन सब नामों से भी आपको ही सम्बोधित किया जाता है।। ७५।।

अभिभूतोऽभिभूतात्मा सर्वभूतप्रमोहकः।
भुवनेशो भूतपूज्यो भोगमोक्षफलप्रदः॥ ७६॥

आपके ये नाम भी हैं— *अभिभूत, अभिभूतात्मा, सर्वभूतप्रमोहक, भुवनेश, भूतपूज्य* एवं *भोगमोक्षफलप्रद* ।। ७६।।

दयालुर्दीननाथश्च दुःसहो दैत्यमर्दकः।
दक्षकन्यापतिर्दुःखनाशको धनधान्यदः॥ ७७॥

तथा इन नामों से भी आप ही बोधित होते हैं— *दयालु, दीननाथ,* और *दुःसह, दैत्यमर्दक, दक्षकन्यापति, दुःखनाशक* एवं *धनधान्यद*।। ७७।।

दयावान् दैवतश्रेष्ठो देवगन्धर्वसेवितः।
नानायुधधरो नानापुष्पगुच्छविराजितः॥ ७८॥

दयावान्, दैवतश्रेष्ठ, देवगन्धर्वसेवित, नानायुधधर एवं *नानापुष्पगुच्छ-विराजित*— ये सब नाम भी आपके ही हैं।। ७८।।

नानासुखप्रदो नानामूर्त्तिधारी च नर्तकः।
नित्यविज्ञानसंयुक्तो नित्यरूपोऽनिलोऽनलः॥ ७९॥

आप इन नामों से भी सम्बोधित किये जाते हैं— *नानासुखप्रद, नानामूर्त्तिधारी* और *नर्तक, नित्यविज्ञानसंयुक्त, नित्यरूप, अनिल* एवं *अनल*।। ७९।।

लब्धवर्णो लघुतरो लघुत्वपरिवर्जितः।
लोलाक्षो लोकसम्पूज्यो लावण्यपरिसंयुतः॥ ८०॥

लब्धवर्ण, लघुतर, लघुत्वपरिवर्जित, लोलाक्ष, लोकसम्पूज्य, एवं *लावण्यपरिसंयुत*— ये संज्ञाएँ भी आप की ही हैं।। ८०।।

नपुरीन्याससंस्थश्च नागेशो नगपूजितः।
नारायणो नारदश्च नानाभरणभूषितः॥ ८१॥

तथा ये नाम भी आपके ही हैं— *नपुरीन्याससंस्थ* एवं *नागेश, नगपूजित, नारायण, नारद, नानाभरणभूषित* ।। ८१।।

नगभूतो नग्नवेशो नग्नः सानन्दमानसः।
नमस्यो नतनाभिश्च नम्रमूर्धाभिवन्दितः॥ ८२॥

नगभूत, नग्नवेश, नग्न, सानन्दमानस, नमस्य और *नतनाभि* एवं *नम्रमूर्धाभिवन्दित* ।। ८२ ।।

नन्दिकेशो नन्दिपूज्यो नानानीरजमध्यगः।
नवीनबिल्वपत्रौघतुष्टो नवघनद्युतिः ॥ ८३ ॥

नन्दिकेश, नन्दिपूज्य, नानानीरजमध्यग, नवीनबिल्वपत्रौघतुष्ट एवं *नवघनद्युति* भी ।। ८३ ।।

नन्दः सानन्द आनन्दमयश्चानन्दविह्वलः।
नालसंस्थः शोभनस्थः सुस्थः सुस्थमतिस्तथा ॥ ८४ ॥

नन्द, सानन्द, आनन्दमय एवं *आनन्दविह्वल, नालसंस्थ, शोभनस्थ, सुस्थ* तथा *सुस्थमति*– ये नाम भी आपका ही आह्वान करने में प्रयुक्त होते हैं ।। ८४ ।।

स्वल्पासनो भीमरुचिर्भुवनान्तकराम्बुदः।
आसन्नः सिकतालीनो वृषासीनो वृषासनः ॥ ८५ ॥

आप के ये नाम भी हैं– *स्वल्पासन, भीमरुचि, भवनान्तकराम्बुद, आसन्न, सिकतालीन, वृषासीन* एवं *वृषासन* ।। ८५ ।।

वैरस्यरहितोऽवार्यो व्रती व्रतपरायणः।
ब्राह्मयो विद्यामयो विद्याभ्यासी विद्यापतिस्तथा ॥ ८६ ॥

आप *वैरस्यरहित* हैं, *अवार्य* हैं, *व्रती* हैं, *व्रतपरायण* हैं। *ब्राह्मय, विद्यामय*, तथा *विद्याभ्यासी* एवं *विद्यापति* भी हैं ।। ८६ ।।

घण्टाकारो घोटकस्थो घोररावो घनस्वनः।
घूर्णचक्षुरघूर्णात्मा घोरहासो गभीरधीः ॥ ८७ ॥

घण्टाकार, घोटकस्थ, घोरराव, घनस्तन, घूर्णचक्षु, अधूर्णात्मा, घोरहास तथा गभीरधी भी आप ही हैं ।। ८७ ।।

चण्डीपतिश्चण्डमूर्तिश्चण्डमुण्डी प्रचण्डवाक्।
चितासंस्थश्चितावासश्चितिदण्डकरः सदा ॥ ८८ ॥

तथा आप *चण्डीपति, चण्डमूर्ति, चण्डमुण्डी, प्रचण्डवाक्, चितासंस्थ, चितावास* तथा *सदाचितिदण्डकर* भी हैं ।। ८८ ।।

चिताभस्माभिसंलिप्तश्चितानृत्यपरायणः ।
चिताप्रमोदी चित्साक्षी चिन्तामणिरचिन्तकः ॥ ८९ ॥

आप *चिताभस्माभिसंलिप्त* हैं, तथा *चितानृत्यपरायण* हैं। *चिताप्रमोदी, चित्साक्षी, चिन्तामणि* एवं *अचिन्तक* भी हैं ।। ८९ ।।

चतुर्वेदमयश्चक्षुश्चतुराननपूजितः ।
चिरवासाश्चकोराक्षश्चलन्मूर्तिश्चलेक्षणः ॥ ९० ॥

आप *चतुर्वेदमय* हैं, आप *चक्षु* हैं, *चतुराननपूजित* हैं, आप *चिरवासा, चकोराक्ष, चलन्मूर्ति* एवं *चलेक्षण* भी हैं।। ९०।।

चलत्कुण्डलभूषाढ्यश्चलद्भूषणभूषितः ।
चलन्नेत्रश्चलत्पादश्चलन्नूपुरराजितः ॥ ९१ ॥

आप *चलत्कुण्डलभूषाढ्य* हैं, *चलद्भूषणभूषित* हैं, *चलन्नेत्र* हैं, *चलत्पाद* एवं *चलन्नूपुरराजित* हैं।। ९१।।

स्थावरः स्थिरमूर्तिश्च स्थावरेशः स्थिरासनः ।
स्थापकास्थैर्यनिरतः स्थूलरूपी स्थलालयः ॥ ९२ ॥

आप *स्थावर, स्थिरमूर्ति*, और *स्थावरेश, स्थिरासन, स्थापक, अस्थैर्यनिरत, स्थूलरूप* एवं *स्थलालय* हैं।। ९२।।

स्थैर्याधिपः स्थितिपरः स्थाणुरूपी स्थलाधिपः ।
ऐहिको मदनार्तश्च महीमण्डलपूजितः ॥ ९३ ॥

आप *स्थैर्याधिप* हैं, *स्थितिपर* हैं, *स्थाणुरूपी* तथा *स्थलाधिप* हैं। *ऐहिक, मदनार्त* और *महीमण्डलपूजित* हैं।। ९३।।

महीप्रियो मत्तरवो मीनकेतुर्विमर्दकः ।
मीनरूपो मीनसंस्थो मृगहस्तो मृगासनः ॥ ९४ ॥

आप *महीप्रिय* हैं, *मत्तरव* हैं, *मीनकेतु* हैं, *विमर्दक* हैं। *मीनरूप* हैं, *मीनसंस्थ* हैं, *मृगहस्त* हैं, *मृगासन* हैं।। ९४।।

मार्गस्थो मेखलायुक्तो मैथिलीश्वरपूजितः ।
मिथ्याहीनो मङ्गलदो माङ्गल्यो मकरासनः ॥ ९५ ॥

आपके ये नाम भी हैं— *मार्गस्थ, मेखलायुक्त, मैथिलीश्वरपूजित, मिथ्याहीन, मङ्गलद, माङ्गल्य* एवं *मकरासन*।। ९५।।

मत्स्यप्रियो मधुरगीर्मधुपानपरायणः ।
मृदुवाक्यपरः सौरप्रियो मोदान्वितस्तथा ॥ ९६ ॥

आप *मत्स्यप्रिय, मधुरगी, मधुपानपरायण, मृदुवाक्यपर, सौरप्रिय* तथा *मोदान्वित* भी कहलाते हैं।। ९६।।

मुण्डालिभूषणो दण्डी उद्दण्डोज्ज्वललोचनः ।
असाध्यसाधकः शूरसेव्यः शोकापनोदनः ॥ ९७ ॥

आप ही *मुण्डालिभूषण, दण्डी, उद्दण्ड, उज्ज्वललोचन, असाध्य-साधक, शूरसेव्य,* एवं *शोकापनोदन* भी हैं।। ९७।।

श्रीपतिः श्रीसुसेव्यश्च श्रीधरः श्रीनिकेतनः।
श्रीमतां श्रीस्वरूपश्च श्रीमाञ्छ्रीनिलयस्तथा॥ ९८॥

आप *श्रीपति* और *श्रीसुसेव्य, श्रीधर, श्रीनिकेतन, श्रीमानों के श्री स्वरूप* और *श्रीमान्* तथा *श्रीनिलय* भी हैं।। ९८।।

श्रमादिक्लेशरहितः श्रीनिवासः श्रियान्वितः।
श्रद्धालुः श्राद्धदेवश्च श्राद्धो मधुरवाक् तथा॥ ९९॥

आप के ये नाम भी हैं- *श्रमादिक्लेशरहित, श्रीनिवास, श्रियान्वित, श्रद्धालु, श्राद्धादेव, श्राद्ध* तथा *मधुरवाक्*।। ९९।।

प्रलयाग्न्यर्कसङ्काशः प्रमत्तनयनोज्ज्वलः।
असाध्यसाधकः शूरसेव्यः शोकापनोदनः॥ १००॥

प्रलयाग्नि अर्कसङ्काश, प्रमत्तनयनोज्ज्वल, असाध्यसाधक, शूरसेव्य तथा *शोकापनोदन*- ये नाम भी आपके ही हैं।। १००।।

विश्वभूतमयो वैश्वानरनेत्रोऽधिमोहकृत्।
लोकत्राणपरोऽपारगुणः पारविवर्जितः॥ १०१॥

आप का इन नामों से आह्वान किया जाता है- *विश्वभूतमय, वैश्वानरनेत्र, अधिमोहकृत, लोकत्राणपर, अपारगुण* एवं *पारविवर्जित* ।। १०१।।

अग्निजिह्वो द्विजास्यश्च विश्वास्यः सर्वभूतधृक्।
खेचरः खेचराधीशो सर्वगः सार्वलौकिकः॥ १०२॥

तथा ये नाम भी आपके ही है- *अग्निजिह्व* और *द्विजास्य, विश्वास्य, सर्वभूतधृक्, खेचर, खेचराधीश,* सर्वज्ञ एवं *सार्वलौकिक*।। १०२।।

सेनानीजनकः क्षुब्धाब्धिवारिक्षोभविनाशकः।
कपालविलसद्धस्तः कमण्डलुभृदर्चितः॥ १०३॥

सेनानीजनक, क्षुब्धाब्धिवारिक्षोभविनाशक, कपालविलसद्धस्त, कमण्डलुभृत्, एवं *अर्चित*- ये नाम भी आपके ही हैं।। १०३।।

केवलात्मस्वरूपश्च केवलज्ञानरूपकः।
व्योमालयनिवासी च बृहद्व्योमस्वरूपकः॥ १०४॥

केवल, आत्मस्वरूप और *केवलज्ञानरूपक, व्योमालयनिवासी* तथा *बृहद्व्योमस्वरूप*- ये संज्ञाएँ भी आपकी ही है।। १०४।।

अम्भोजनयनाम्भोधिशयानः पुरुषातिगः।
निरालम्बावलम्बश्च सम्भोगानन्दरूपकः॥ १०५॥

अम्भोजनयन, अम्बोधिशयान, पुरुषातिग, निरालम्ब और *अवलम्ब* तथा *सम्भोगानन्दरूप*– इन संज्ञाओं से भी आपका ही आह्वान होता है॥ १०५॥

योगनिद्रामयो लोकप्रमोहापहरात्मकः।
बृहद्वक्रो बृहन्नेत्रो बृहद्बाहुर्बृहद्बलः॥ १०६॥

आप के नाम ये भी हैं– *योगनिद्रामय, लोकप्रमोहापहारात्मक, बृहद्वक्र, बृहन्नेत्र, बृहद्बाहु* एवं *बृहद्बल*॥ १०६॥

बृहत्सर्पाङ्गदो दुष्टबृहद्व्यालविमर्दकः।
बृहद्भुजबलोन्मत्तो बृहत्तुण्डो बृहद्वपुः॥ १०७॥

बृहत्सर्पाङ्गद, दुष्टबृहद्व्यालविमर्दक, बृहद्भुजबलोन्मत्त, बृहत्तुण्ड, बृहद्वपु– ये नाम भी आप के ही हैं॥ १०७॥

बृहदैश्वर्युक्तश्च बृहदैश्वर्यदः स्वयम्।
बृहत्सम्भोगसन्तुष्टो बृहदानन्ददायकः॥ १०८॥

तथा *बृहदैश्वर्ययुक्त* और *स्वयं बृहदैश्वर्यद, बृहत्सम्भोगसन्तुष्ट, बृहदानन्ददायक*– इन नामों से भी आपको जाना जाता है॥ १०८॥

बृहज्जटाजूटधरो बृहन्माली बृहद्धनुः।
इन्द्रियाधिष्ठितः सर्वलोकेन्द्रियविमोहकृत्॥ १०९॥

बृहज्जटाजूटधर, बृहन्माली, बृहद्धनु, इन्द्रियाधिष्ठित सर्वलोकेन्द्रिय–विमोहकृत्– ये नाम भी आपकी ख्याति में परिगणित हैं॥ १०९॥

सर्वेन्द्रियप्रवृत्तिकृत् सर्वेन्द्रियनिवृत्तिकृत्।
प्रवृत्तिनायकः सर्वविपत्तिपरिनाशकः॥ ११०॥

आप का एक नाम *सर्वेन्द्रियप्रवृत्तिकृत्* है तो दूसरा नाम है– *सर्वेन्द्रियनिवृत्तिकृत्*। *प्रवृत्तिनायक* एवं *सर्वविपत्तिपरिनाशक* भी आपके ही नाम हैं॥ ११०॥

प्रवृत्तिमार्गनेता त्वं स्वतन्त्रेच्छामयः स्वयम्।
सत्प्रवृत्तिरतो नित्यं दयानन्दशिवाधरः॥ १११॥

आप *प्रवृत्तिमार्गनेता* हैं, *स्वयं स्वतन्त्रेच्छामय* हैं। *नित्यसत्प्रवृत्तिरत* एवं *दयाधर, आनन्द* तथा *शिवाधर* भी हैं॥ १११॥

क्षितिरूपस्तोयरूपी विश्वतृप्तिकरस्तथा।
तर्पस्तर्पणसम्प्रीतिस्तर्पकस्तर्पणात्मकः॥ ११२॥

आप *क्षितरूप* हैं, *तोयरूप* हैं तथा *विश्वतृप्तिकर* हैं। आप को ही *तर्प*, *तर्पणसम्प्रीत*, *तर्पक* एवं *तर्पणात्मक* भी कहते हैं।। ११२।।

तृप्तिकारणभूतश्च सर्वतृप्तिप्रसाधकः।
अभेदाभेदकोच्छिद्यच्छेदकोऽछेद्य एव हि॥ ११३॥

और आप *तृप्तिकारणभूत* भी हैं, *सर्वतृप्तिप्रसाधक* भी। आप *अभेदाभेदक* हैं, *उच्छिदयछेदक* तथा अच्छेदय भी हैं।। ११३।।

अच्छिन्नधन्वाच्छिन्नेषुरच्छिन्नध्वजवाहनः।
अधृष्टः समधृष्टास्त्रः समधृष्ट्यबलोन्नतः॥ ११४॥

आप का नाम *अच्छिन्नधन्वा* भी है और *अच्छिन्नेषु* भी। *अच्छिन्नध्वज* एवं *अच्छिन्नवाहन* भी आप ही कहलाते हैं। आप *अधृष्ट* हैं, *समधृष्टास्त्र* हैं, आप *समधृष्टि* एवं *अबलोन्नत* हैं।। ११४।।

चित्रयोधी चित्रकर्मा विश्वसङ्कर्षकः स्वयम्।
भक्तानामीप्सितकरः सर्वेप्सितफलप्रदः॥ ११५॥

आप *चित्रयोधी* भी हैं और *चित्रकर्मा* भी। आप *स्वयं विश्वसङ्कर्षक* है तथा *भक्तों को उनका वाञ्छित प्रदान करने वाले* हैं तथा *सर्वेप्सितफलप्रद* भी हैं।। ११५।।

वाञ्छिताभीष्टफलदो भिन्नज्ञानप्रवर्तकः।
बोधनात्मा बोधनार्थातिगः सर्वप्रबोधकृत्॥ ११६॥

आप *वाञ्छिताभीष्टफलद* हैं तथा *भिन्नज्ञानप्रवर्तक* भी। आप *बोधनात्मा* है और *बोधनार्थातिग* भी और *सर्वप्रबोधकृत्* भी।।११६।।

त्रिजटश्चैकजटिलश्चलज्जूटभयानकः।
जटाटीनो जटाजूटस्पृष्टावरवचः स्वयम्॥ ११७॥

त्रिजट और *एकजिटल*, *चलज्जूटभयानक*, *जटाटीन*, *स्वयं जटाजूट स्पृष्टावरवच*—ये आपके ही नाम हैं।। ११७।।

षाणमातुरस्य जनकः शक्तिप्रहरतां वरः।
अनर्घास्त्रप्रहारी चानर्घधन्वा महार्घ्यपात्॥ ११८॥

आप *षाण्मातुरपिता* हैं, *शक्तिप्रहारकों में श्रेष्ठ* हैं, *अमोघअस्त्रप्रहारी* हैं, *अमोघधन्वा* है तथा *महार्घ्यपाद* भी।। ११८।।

योनिमण्डलमध्यस्थः मुखयोनिरजृम्भणः।
महाद्रिसदृशः श्वेतः श्वेतपुष्पस्त्रगन्वितः॥ ११९॥

योनिमण्डलमध्यस्थ, मुखयोनि, अजृम्भण, महाद्रिसदृश, श्वेत, श्वेतपुष्पों की माला से शोभित हैं ।। ११९ ।।

मकरन्दप्रियो नित्यं मासर्तुहायनात्मकः ।
नानापुष्पप्रसूर्नानापुष्पैरर्चितगात्रकः ॥ १२० ॥

आप *मकरन्दप्रिय* हैं, *नित्य मास ऋतु हायनात्मक* हैं, *नानापुष्पप्रसू एवं नानापुष्पों से पूजितगात्र* भी आप ही हैं ।। १२० ।।

षडङ्गयोगनिरतः सदायोगार्द्रमानसः ।
सुरासुरनिषेव्यांघ्रिर्विलसत्पादपङ्कजः ॥ १२१ ॥

आप *षडङ्गयोगनिरत* हैं, सदा योगार्द्रमानस हैं, *सुरासुरनिषेव्यांघ्रि* एवं *विलसत्पादपङ्कज* हैं ।। १२१ ।।

सुप्रकाशितवक्राब्जः सितेतरगलोज्ज्वलः ।
वैनतेयसमारूढः शरदिन्दुसहस्रवत् ॥ १२२ ॥

आप *सुप्रकाशितमुखपङ्कज* तथा *सितेतरगलोज्ज्वल* हैं। वैनतेय–समारूढ हैं तो *सहस्रशरच्चन्द्रतुल्य* भी ।। १२२ ।।

जाज्वल्यमानं तेजोभिर्ज्वालापुञ्जो यमः स्वयम् ।
प्रज्वलद्विद्युदाभश्च साट्टहासभयङ्करः ॥ १२३ ॥
प्रलयानलरूपी च प्रलयाग्निरुचिः स्वयम् ।
जगतामेकपुरुषो जगतां प्रलयात्मकः ॥ १२४ ॥
प्रसीद त्वं जगन्नाथ जगद्योने नमोऽस्तु ते ॥ १२५ ॥

तेजःप्रदीप्त, ज्वालापुञ्ज, प्रज्वलद्विद्युदाभ, साट्टहासभयङ्कर भी आप ही हैं। *साक्षात् मृत्युस्वरूप, जगत् के प्रथम पुरुष* एवं *प्रलयाग्नि रूप, प्रलयाग्नि रुचि, जगत्प्रलयकर्ता* भी आप ही हैं। अतः, *हे जगद्योने! हे जगन्नाथ!* आप मुझ पर प्रसन्न हों। आपको बार बार प्रणाम है ।। १२३–१२५ ।।

***श्रीमहादेव०*—एवं नामसहस्रेण राज्ञा वै संस्तुतो हरः ।**
प्रत्यक्षमगमत्तस्य सुप्रसन्नमुखाम्बुजः ॥ १२६ ॥

श्रीमहादेव जी— इस पकार उपरिलिखित सहस्रनामों के माध्यम से राजा द्वारा स्तुति किये जाने के बाद भगवान् शङ्कर कमलवत् प्रसन्न नेत्रों से राजा के सम्मुख प्रकट हुए ।। १२६ ।।

स तं विलोक्य त्रिदशैकनाथं पञ्चाननं श्वेतरुचिं प्रसन्नम् ।
वृषाधिरूढं भुजगाङ्गदैर्युतं ननर्त राजा धरणीभुजां वरः ॥ १२७ ॥

वह श्रेष्ठ राजा (भगीरथ) पञ्चमुख, सुरेश्वर, श्वेतरुचि, प्रसन्नमुख,

वृषभ पर आरूढ़, सर्पों के कङ्कन धारण किये हुए भगवान् शङ्कर के शुभ्र दर्शन पर, हर्षविह्वल होकर नाच उठा।। १२७।।

प्रोवाच चेदं परमेश्वराद्य मे एतानि सर्वाणि सुखार्थकानि।
तपश्च होमश्च मनुष्यजन्म यत्त्वां प्रपश्यामि दृशा परेशम्॥ १२८॥

और बोला— हे परमेश्वर! आज मेरे वे सब कर्म, जो मैंने अपने सुख पाने के लिये किये थे, जैसे यह मुनष्य जन्म, मेरा उग्र तप, यज्ञ—आदि सब कुछ सफल हो गये जब मैंने आपका यह दुर्लभ दर्शन पा लिया।। १२८।।

मत्तो न त्वन्योऽस्ति महीतले वा स्वर्गे यतस्त्वं मम नेत्रगोचरः।
सुरासुराणामपि दुर्लभेक्षणः परात्परः पूर्णमयो निरामयः॥ १२९॥

आज मुझसे बढ़कर सौभाग्यशाली इस भूतल पर या स्वर्ग में कौन है, जिसको आपके ये साक्षात् दर्शन हुए हैं! आपका यह प्रत्यक्ष दर्शन तो देवताओं एवं दैत्यों को भी दुर्लभ है; क्योंकि आप तो उत्कृष्ट से भी उत्कृष्ट हैं, पूर्ण एवं निर्विकार हैं।। १२९।।

ततस्तमेवं प्रतिभाषमाणं प्राह प्रपन्नार्तिहरो महेश्वरः।
"किं ते मनोवाञ्छितमेव विद्यते वृणुष्व तत्पुत्र ददामि तुभ्यम्" ॥ १३०॥

यों स्तुति करते हुए राजा से शरणागत के दु:खनाशक भगवान् शङ्कर इस प्रकार बोले— "हे पुत्र! तुम अपने मन की इच्छा कहो, मैं उसे पूर्ण करूँगा"।। १३०।।

स चाह "पूर्वं कपिलस्य शापतः पातालरन्ध्रे मम पूर्ववंशजाः।
भस्मीबभूवुः सगरस्य पुत्रा महाबला देवसमानविक्रमाः॥ १३१॥

तब राजा ने निवेदन किया— "पहले कभी देवताओं के तुल्य बलशाली मेरे पूर्व वंशज सगरपुत्र महामुनि कपिल के शाप से भस्म होकर पातालविवर में चले गये।। १३१।।

तेषां तु निस्तारणकाम्यया ह्यहं गङ्गां धरण्यामभिनेतुमीहे।
सा तु त्वदीया परमा हि शक्तिः विनाज्ञया ते नहि याति पृथ्वीम्॥ १३२॥

उन मेरे पूर्वजों की मुक्ति के लिये मैं गङ्गा जी को भूतल पर ले जाना चाहता हूँ। वह आपकी विशिष्ट शक्ति हैं तथा आपकी आज्ञा के विना पृथ्वी पर नहीं जायँगीं।। १३२।।

तदेतदिच्छामि समेत्य गङ्गा क्षितौ महावेगवती महानदी।
प्रविश्य तस्मिन्विवरे महेश्वरी पुनात् सर्वान्सगरस्य पुत्रान्"॥ १३३॥

अत: मैं चाहता हूँ कि यह भगवती गङ्गा महावेगवाली नदी बनकर

भूतल पर उस विवर में प्रविष्ट होकर सगर के उन सभी पुत्रों को पवित्र करें''।। १३३।।

इत्येवमाकर्ण्य वचः परेश्वरः प्रोवाच वाक्यं क्षितिपालपुङ्गवम्।
मनोरथस्तेऽयमवेहि पूर्णो मम प्रसादादचिराद्भविष्यति॥ १३४॥

राजा की यह प्रार्थना सुनकर, भगवान् ने राजा को यह उत्तर दिया– ''राजन्! तुम यह समझ लो कि तुम्हारा यह मनोरथ मेरी कृपा से शीघ्र ही सफल हो जायगा।। १३४।।

ये चापि मां भक्तित एवं मर्त्याः स्तोत्रेण चानेन नृप स्तुवन्ति।
तेषां तु पूर्णाः सकला मनोरथा ध्रुवं भविष्यन्ति मम प्रसादात्॥ १३५॥

अथ च, हे राजन्! जो श्रद्धालु पुरुष तुम्हारे कहे स्तोत्र से भक्तिपूर्वक मेरा स्तवन करेंगे उनके भी सभी मनोरथ मेरी कृपा से शीघ्र ही सफल होते रहेंगे''।। १३५।।

श्रीमहादेव०— **इत्येवं स वरं लब्ध्वा राजा हृष्टमनास्ततः।**
दण्डवत् प्राणिपत्याह धन्योऽहं त्वत्प्रसादतः॥ १३६॥

श्रीमहादेव— राजा ने इस प्रकार भगवान् से वर प्राप्त कर भगवान् को दण्डवत् प्रणाम कर उनसे निवेदन किया– 'हे भगवन्! मैं आपकी कृपा से धन्य हो गया हूँ''।। १३६।।

ततश्चान्तर्दधे देवः क्षणादेव महामते!
राजा निर्वृत्तचेताः स बभूव मुनिसत्तम॥ १३७॥

हे महामते! तदनन्तर, भगवान् शङ्कर उसी क्षण अन्तर्धान हो गये और हे मुनिश्रेष्ठ! सफल मनोरथ राजा भी सन्तुष्ट हो गया।। १३७।।

स्तोत्रपाठमाहात्म्य

राज्ञा कृतमिदं स्तोत्रं सहस्त्रनामसंज्ञकम्।
यः पठेत् परया भक्त्या स कैवल्यमवाप्नुयात्॥ १३८॥

जो भक्त राजा द्वारा कृत इस सहस्त्रनामस्तोत्र का श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा, उसे अवश्य मुक्ति मिलेगी।। १३८।।

न चेह दुःखं कुत्रापि जायते तस्य नारद!
जायते परमैश्वर्यं प्रसादाच्च महेशितुः॥ १३९॥

हे नारद! उसको इस लोक में कोई दुःख न ही होगा, अपितु वह भगवान् शङ्कर की कृपा से उत्कृष्ट ऐश्वर्य अधिगत करेगा।। १३९।।

महापदि भये घोरे यः पठेत् स्तोत्रमुत्तमम्।
शम्भोर्नामसहस्राख्यं सर्वमङ्गलवर्धनम्॥ १४०॥
महाभयहरं सर्वं सुखसम्पत्तिदायकम्।
स मुच्यते महादेवप्रसादेन महाभयात्॥ १४१॥

जो पुरुष भयानक विपत्ति से ग्रस्त होने पर भगवान् शङ्कर के सुख सम्पत्तिदायक महाभयहर, मङ्गलदायी सहस्रनाम स्तोत्र का पाठ करेगा वह भगवान् शङ्कर की कृपा से उस विपत्ति से छुटकारा पा जायगा।। १४०–१४१।।

दुर्भिक्ष्ये लोकपीडायां देशोपद्रव एव वा।
सम्पूज्य परमेशानं धूपदीपादिभिर्मुने॥ १४२॥
यः पठेत्परया भक्त्या स्तोत्रं नामसहस्रकम्।
न तस्य देशे दुर्भिक्षं न च लोकादिपीडनम्॥ १४३॥
न चान्योपद्रवो वापि भवेदेतत् सुनिश्चितम्।
पर्जन्योऽपि यथाकाले वृष्टिं तत्र करोति हि॥ १४४॥

हे मुने! दुर्भिक्ष के समय, महामारी के समय, देश में उपद्रव के समय, धूप दीप नैवेद्य आदि से भगवान् शङ्कर की पूजा कर। जो परम भक्ति के साथ इस सहस्रनामस्तोत्र का पाठ करेगा तो उसके देश में न दुर्भिक्ष होग , न महामारी फैलेगी, न देश में कोई अन्य उपद्रव बढ़ेगा– यह सुनिश्चित है। अपितु मेघों से समय पर वृष्टि होगी।। १४२–१४४।।

यत्रेदं पठ्यते स्तोत्रं सर्वपापप्रणाशनम्।
सर्वसस्ययुता पृथ्वी तस्मिन् देशे भवेद् ध्रुवम्॥ १४५॥

जिस स्थान पर सर्वपापनाशक इस स्तोत्र का पाठ होगा उस देश की भूमि पूर्णतः धान्यसमृद्ध होगी– यह निश्चित है।। १४५।।

न दुष्टबुद्धिर्लोकानां तत्रस्थानां भवेदपि।
नाकाले मरणं तत्र प्राणिनां जायते मुने॥ १४६॥

हे मुने! वहाँ के निवासियों की बुद्धि सत्पथगामिनी होगी। वहाँ अकाल–मृत्यु का होना असम्भव है।। १४६।।

न हिंस्रास्तत्र हिंसन्ति देवदेवप्रसादतः।
धन्या देशाः प्रजा धन्या यत्र देशे महेश्वरम्॥ १४७॥
सम्पूज्य पार्थिवं लिङ्गं पठेद्यत्रेदमुत्तमम्।
चतुर्दश्यां तु कृष्णायां फाल्गुने मासि भक्तितः॥ १४८॥

देवाधिदेव की कृपा से वहाँ हिंस्र पशुओं का भी कोई भय न होगा।

वह देश धन्य होगा, वहाँ के निवासी धन्य होंगे। जहाँ पार्थिवलिङ्ग की अर्चना के साथ, भगवान् शङ्कर की पूजा कर इस स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ होता है; विशेषतः फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी (शिवरात्रि) के दिन।। १४७–१४८।।

यः पठेत्परमेशस्य नाम्नां दशशताख्यकम्।
स्तोत्रमत्यन्तसुखदं न पुनर्जन्मभाग्भवेत्॥ १४९॥

जो भगवान् शङ्कर के इस सहस्रनाम स्तोत्र का पाठ करता है वह उसके लिये अत्यन्त सुखदायी होता है। तथा उस स्तोत्रपाठी का पुनर्जन्म नहीं होता।। १४९।।

वायुतुल्यबलो नूनं विहरेद्धरणीतले।
धनेशतुल्यो धनवान् कन्दर्पसमरूपवान्।
विहरेद्देवतातुल्यो निग्रहानुग्रहे क्षमः॥ १५०॥

वह इस भूतल पर वायु के समान वेगवान्, कुबेर के समान धनवान् तथा कामदेव के समान रूपसम्पन्न होकर पृथ्वी पर विचरण करता है। वह इस स्तोत्रपाठ के प्रभाव से जनता का निग्रह अनुग्रह करने में समर्थ हो जाता है।। १५०।।

गङ्गायां वा कुरुक्षेत्रे प्रयागे वा महेश्वरम्।
परिपूज्य पठेद्यस्तु स कैवल्यमवाप्नुयात्॥ १५१॥

जो कुरुक्षेत्र में या गङ्गाक्षेत्र प्रयाग में भगवान् शङ्कर की पूजा कर इस स्तोत्र का पाठ करता है वह अन्त में कैवल्य (मुक्ति) प्राप्त कर लेता है।। १५१।।

काश्यां यस्तु पठेदेतत् स्तोत्रं परममङ्गलम्।
तस्य पुण्यं मुनिश्रेष्ठ किमहं कथयामि ते॥ १५२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! काशी क्षेत्र में इस परममङ्गल स्तोत्र के पाठ का माहात्म्य मैं तुम्हें क्या बताऊँ!।। १५२।।

एतत्स्तोत्रप्रसादेन स जीवन्नेव मानवः।
साक्षान्महेशतामेति मुक्तिरन्ते करस्थिता॥ १५३॥

इस स्तोत्रपाठ केप्रभाव से वह जीवित रहते हुए ही भगवान् शङ्कर के तुल्य प्रभावशाली हो जाता है और अन्त में मुक्ति तो उसको हस्तामलकवत् उपस्थित है ही।। १५३।।

प्रत्यहं प्रपठेदेतद् बिल्वमूले नरोत्तमः।
स सालोक्यमवाप्नोति देवदेवप्रसादतः॥ १५४॥

जो पुरुष श्रेष्ठ बिल्ववृक्ष के नीचे प्रतिदिन इस स्तोत्र का पाठ करता है वह भगवान् शङ्कर की कृपा से सालोक्य पद प्राप्त करता है।। १५४।।

यो ह्येतत्पाठयेत् स्तोत्रं सर्वपापनिबर्हणम्।
स मुच्यते महापापात्सत्यं सत्यं वदामि ते॥ १५५॥

जो इस पापनाशक स्तोत्र का नित्य पाठ कराता है वह पाँच महापातकों से भी छुटकारा पा जाता है— यह तुम्हें सत्य ही समझना चाहिये।। १५५।।

न तस्य ग्रहपीडा स्यान्नापमृत्युभयं तथा।
न तं द्विषन्ति राजानो न वा व्याधिभयं भवेत्॥ १५६॥

इस स्तोत्रपाठ के प्रभाव से न उसे ग्रहपीड़ा होगी, न अपमृत्यु प्रकार का भय। न उसके साथ किसी राजा की शत्रुता टिक पायगी, न उसे किसी रोग का भय होगा।। १५६।।

पठेदेतद्धृदि ध्यात्वा देवदेवं सनातनम्।
सर्वदेवमयं पूर्णं रजताद्रिसमप्रभम्॥ १५७॥

इस स्तोत्र का पाठ करने से पूर्व, भगवान् शङ्कर का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—"वे नित्य अविनाशी देवाधिदेव हैं। सर्वदेवमय हैं। पूर्ण हैं। रजतपर्वत के समान प्रभावाले हैं।। १५७।।

प्रफुल्लपङ्कजास्यं च चारुरूपं वृषध्वजम्।
जटाजूटज्वलत्कालकूटशोभितविग्रहम् ॥ १५८॥

उनका मुखकमल प्रफुल्ल है। रूप सुन्दर है। वे वृषभध्वज हैं। उनका समस्त शरीर जटाजूट एवं प्रदीप्त कालकूट से शोभित है।। १५८।।

त्रिशूलं डमरुं चैव दधानं दक्षवामयोः।
द्वीपिचर्माम्बरधरं शान्तं त्रैलोक्यमोहनम्॥ १५९॥

वे त्रिशूल एवं डमरू क्रमशः दक्षिण एवं वामकर में धारण किये हुए हैं। व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं। शान्त स्वरूप हैं। वे त्रैलोक्यमोहक हैं"।। १५९।।

एवं हृदि नरो भक्त्या विभाव्यैतत् पठेद्यदि।
इह भुक्त्वा परं भोगं परत्र च महामते!॥ १६०॥
शम्भोः स्वरूपतां याति किमन्यत्कथयामि ते॥ १६१॥

हे महामते! यों हृदय में भगवान् का ध्यान कर इस स्तोत्र का पाठ

करने वाला इस लोक में परम ऐश्वर्य भोगकर, परलोक में भगवान् शङ्कर का स्वरूपत्व पा लेता है। इस विषय में तुम्हें अधिक क्या कहूँ।। १६०–१६१।।

तत्रैव सद्भक्तियुतः पठेदिदं स्तोत्रं मम प्रीतिकरं परं मुने!
मर्त्यो हि योऽन्यः खलु सोऽपि कृच्छ्रं जगत्पवित्रायत एव पापतः॥ १६२॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे गङ्गायाः
आगमनोपाख्याने शिवसहस्रनामकथनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥ ६८॥

हे मुने! जो कोई अन्य पुरुष भक्तियुक्त होकर मुझको अतिप्रीतिदायक इस स्तोत्र का पाठ करेगा वह इस जगत् को पाप से पवित्र ही करेगा— ऐसा ही समझो।। १६२।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
गङ्गावतरण-प्रसङ्ग में
शिवसहस्रनामवर्णनरूप
सड़सठवाँ अध्याय समाप्त॥

अड़सठवाँ अध्याय

[गङ्गा-निर्गमन]

श्रीमहादेव०— अथ राजा स पुण्यात्मा ज्येष्ठे मासि शुभेऽहनि।
हस्तायां मङ्गलदिने शुक्लपक्षे महामुने।
आरुरोह रथं दिव्यं ध्मायन् शङ्खं महास्वनम्॥ १॥
स रथस्थो महाबाहुर्व्यराजत महामुने।
मध्याह्नार्क इवातीव तेजसा ह्यमितेन वै॥ २॥

श्रीमहादेव— हे महामुने! एतदनन्तर वह पुण्यात्मा राजा ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष (दशमी) के शुभ दिन मङ्गलवार को हस्तनक्षत्र के योग में दिव्यरथ पर आरूढ़ होकर महाध्वनियुक्त शङ्ख बजाता हुआ वह महाबाहु राजा ऐसा शोभित हुआ। मानो मध्याह्न का सूर्य अपने अपरिमित तेज से युक्त होकर रथ पर विराजमान हों।। १–३।।

सर्वाभरणसम्पन्नो मुकुटोज्ज्वलमस्तकः।
तेजस्वी रुचिरश्यामः सुवासा रक्तलोचनः॥ ३॥
राजर्षी राजवर्यश्च सुप्रन्नमुखाम्बुजः।
काकपक्षधरो धन्यो राजन्यतिलको बलिः॥ ४॥
रथश्च विमलाभासो नानारत्नविभूषितः।
सुमेरुशृङ्गसङ्काशः कान्त्यातीव व्यराजत॥ ५॥

वे सभी अलङ्कारों से युक्त तथा मस्तक पर मुकुट धारण किये हुए थे। वे तेजः सम्पन्न, सुन्दर श्यामवर्ण वाले, दर्शनीय वस्त्र पहने, रक्त, नेत्र, राजर्षि, राजश्रेष्ठ, प्रसन्नमुख मुकुट में काकपक्ष (कानों पर लटकने वाले घुँघरु) लगाये हुए, सौभाग्यसम्पन्न राजाओं का तिलक लगाये हुए, बलवान् राजा विमल कान्तिवाला नाना रत्नों से विभूषित रथ में बैठकर सुमेरुपर्वत के समान शोभित हो रहे थे।। ४–५।।

चित्रध्वजपताकाभिर्हयैः काञ्चनभूषितैः।
विरेजे रथराजस्तु राज्ञः सूर्यरथोपमः॥ ६॥

उस राजा का चित्रपताकाओं से युक्त तथा सुवर्णमण्डित घोड़ों से खींचा जा रहा रथ सूर्यके रथ के समान लग रहा था।। ६।।

एतस्मिन्नन्तरे क्षोणी ज्ञात्वा तं नृपसत्तमम्।
गङ्गावतारं भूमौ दिव्यरूपं समागतम्॥ ७॥
सा तं प्रणम्य राजानं धर्मात्मानं भगीरथम्।
अब्रवीन्मुनिशार्दूल! वाक्यं सुरुचिरं तदा॥ ८॥

इसी बीच गङ्गा को स्वर्ग से भूमण्डल लाने की बात सुनकर पृथ्वी उस राजा के सम्मुख आयी।। वह उस धर्मात्मा राजा भगीरथ को प्रणाम कर, हे मुनिश्रेष्ठ! मधुर वचनों से यों बोली–।। ७–८।।

धरणी०— "राजन् धर्ममयः साक्षात्त्वं महात्मा महीक्षितः।
ज्ञातं मया समुद्धर्तुं पितृन् सगरवंशजान्॥ ९॥
गङ्गां पुण्यतमां धन्यां विष्णोर्देहकृताश्रयाम्।
समानेष्यसि यत्रासन् सगरा भस्मरूपिणः॥ १०॥

धरणी– "हे राजन्! आप तो साक्षात् धर्मरूप हैं। आप महात्मा एवं दूरदर्शी हैं। सुना है, आप अपने पूर्वज सगरपुत्रों का उद्धार करने हेतु पुण्यमयी गङ्गा को, जो कि इस समय भगवान् श्री विष्णु के शरीर में वास कर रही है, वहाँ ले जायँगें जहाँ सगरपुत्र भस्म हुए पड़े हैं।। ९–१०।।

तत्र ते प्रार्थयाम्येतच्चतुर्दिक्ष्वेव भूपते!
आसमुद्राच्चतुर्धारा भूत्वा मां स पुनाति वै"॥ ११॥
यथा तथा विधातव्यं त्वया पुण्यात्मना सदा॥ १२॥

हे भूपते! मुझे इस विषय पर आपसे ही यही निवेदन करना है कि भगवती गङ्गा चारों दिशाओं से चार धाराओं में बहकर समुद्र तक पहुँचती हुई मुझे पवित्र करें। आप इस विषय में ऐसा ही कुछ कीजिये"।। ११–१२।।

राजो०— "यदा हरिपदाम्भोजान्निसृत्य द्रवरूपिणी।
शाम्भवी सा महाशक्तिर्मेरुशृङ्गमवाप्स्यति॥ १३॥
तदा त्वयापि सा देवी समाराध्या सुरेश्वरी॥ १४॥

राजा– जब विष्णुपद से निकलकर वह शाम्भवी महाशक्ति जलमयी होकर सुमेरुशिखर पहुँचे तब हे पृथ्वि! तुम्हें भी वहाँ उपस्थित होकर उस सुरेश्वरी से प्रार्थना करनी चाहिये।। १३–१४।।

अहं च प्रार्थयिष्यामि त्वत्कृते तां विशेषतः।
ततस्ते सम्भवित्री सा यथेष्टफलदायिनी॥ १५॥

मैं भी आपकी तरफ से उनसे निवेदन करूँगा। तब हो सकता है, वे आपके अनुकूल कुछ कर दें।। १५।।

अहं स्वर्गपुरं यामि तामानेतुमनाः क्षितौ।
त्वमेहि तत्र तां भक्त्या सम्प्रार्थयितुमुत्तमान्''॥ १६॥

इस समय मैं उनको इस भूमि पर अवतरित होने का निवेदन करने हेतु स्वर्गलोक को जा रहा हूँ। आप भी वहाँ चलकर उन भगवती से निवेदन कीजिये''।। १६।।

श्रीमहादेव०— राज्ञा सहैव सा क्षोणी सुप्रसन्नमुखाम्बुजा।
स्वर्गाभिगमने चक्रे मतिं स्थिरतरां मुने॥ १७॥

श्रीमहादेव— हे मुने! तब वह पृथ्वी भी प्रसन्नमुख से राजा के साथ स्वर्ग जाने का दृढ़ निश्चय कर बैठी।। १७।।

ततः प्राह स राजापि सारथिं रथिनां वरः।
वाहयस्व रथं तूर्णं स्वर्गं नय महाबल!॥ १८॥

तब राजा ने अपने सारथि को आदेश दिया कि हे महाबल! रथ को स्वर्ग की तरफ बढ़ाओ।। १८।।

तच्छ्रुत्वा चालयामास सारथिस्तुरगोत्तमान्।
वायुतुल्यप्रवेगान् वै तत्क्षणान्मुनिसत्तम॥ १९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह आदेश सुनकर, सारथी ने उसी क्षण रथ के वायुवेग तुल्य घोड़ों को शीघ्रता से चलने का संकेत दिया।। १९।।

ततः सम्प्राप सहसा मेरुशृङ्गं रथोत्तमः।
राजा दध्मौ महाशङ्खं सुगान्तजलदस्वनम्॥ २०॥

यों वह श्रेष्ठ रथ सहसा सुमेरु शिखर पर पहुँच गया। वहाँ पहुँच कर राजा ने प्रलयकालीन मेघ के समान ध्वनि वाला शङ्ख बजाया।। २०।।

स शब्दः समनुप्राप वैकुण्ठनगरं यदा।
तदा विष्णुपदाम्भोजान्निःसृत्य द्रवरूपिणी॥ २१॥
गङ्गा कलकलध्वानं कृत्वा वेगवती स्वयम्।
पपात मेरुशृङ्गं तु प्रकृतिर्नीररूपिणी॥ २२॥
तदा राजातिहृष्टात्मा शङ्खशब्दं विहाय वै।
ननर्त कृतकृत्यः सन्दृष्ट्वा गङ्गा द्रवात्मिकाम्॥ २३॥

वह शङ्खध्वनि जब बैकुण्ठलोक तक पहुँची तब भगवती गङ्गा रूपिणी प्रकृति देवी विष्णु के चरणों से निकलकर जलमयी बनकर कलकल ध्वनि करती हुई, स्वयं वेग से सुमेरु के शिखर पर आकर गिरी, तब राजा ने शङ्ख

बजाना छोड़कर, जलमयी गङ्गा के दर्शन कर स्वयं को कृतकृत्य मानते हुए हर्षवश नृत्य प्रारम्भ किया।। २१–२३ ।।

विरते शङ्खशब्दे तु सापि वेगं विहाय वै।
विरराम कियत्कालं तस्मिन्मेरोस्तु शीर्षके ॥ २४॥

उधर शङ्खध्वनि रुक जाने पर भगवती गङ्गा भी बहना छोड़कर एक स्थान पर कुछ समय के लिये रुक गयी।। २४ ।।

एतस्मिन्नन्तरे क्षोणी गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्।
समुपागत्य वै तुष्टा स्तोत्रेणानेन भक्तितः ॥ २५ ॥

इसी बीच, पृथ्वी ने भी वहाँ आकर त्रैलोक्यपावनी भगवती गङ्गा देवी की इस स्तोत्र से भक्तिपूर्वक स्तुति आरम्भ की।। २५ ।।

धरणीकृता गङ्गास्तुतिः

धरणी०— "देवि गङ्गे जगद्धात्रि ब्रह्मरूपे सुरेश्वरि!
लोकनिस्तारणार्थाय द्रवरूपे प्रसीद मे ॥ २६ ॥

धरणी— "हे गङ्गे देवि! हे जगद्धात्रि! हे ब्रह्मरूपे! हे सुरेश्वरि! आप लोगों को (पाप से) मुक्ति दिलाने हेतु जलमयी बनी हुई हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हों।। २६ ।।

तवाम्बुकणिकं भक्त्याप्यभक्त्या वापि यः स्पृशेत्।
सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति गङ्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ २७ ॥

जो पुरुष आप के जल का एक विन्दु का भी, श्रद्धा या अश्रद्धा से स्पर्श कर लेता है वह हे गङ्गे देवि! मुक्ति प्राप्त कर लेता है। आपको प्रणाम है।। २७ ।।

ये त्वां पश्यन्ति लोका हि पापात्मानोऽपि वै सकृत्।
न तेऽपि यमदण्ड्याः स्युर्देवि गङ्गे नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥

जो कोई पापी जन आप का एक बार दर्शन कर ले, उसे यमयातनाएँ नहीं भोगनी पड़तीं। आपको प्रणाम है।। २८ ।।

ये स्मरन्ति सकृन्नाम गङ्गेति परमाक्षरम्।
न तस्यास्ति समो लोके देवो वा मानुषोऽपि वा ॥ २९ ॥

जो पुरुष एक बार भी 'गङ्गा' ये अक्षर उच्चारण कर लेता है, उसके समान (पवित्र) लोक में कोई देवता या मनुष्य नहीं होता।। २९ ।।

त्वां नमन्ति सदा भक्त्या प्रकृतिं द्रवरूपिणीम्।
न तेषां दुर्गतिः क्वापि न वा भीतिर्यमादपि॥ ३०॥

जो आप जलमयी प्रकृति देवी को सदा भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं, उनकी न कभी कोई दुर्गति होती है, न उन्हें यमदण्ड का ही कोई भय होता है॥ ३०॥

प्राप्नुवन्ति परं मोक्षं गङ्गे देवि नमोऽस्तु ते।
त्वमेका परमा शक्तिः सर्वभूताशये स्थिता॥ ३१॥

वे अन्त में परम मोक्ष पद प्राप्त कर लेते हैं। हे गङ्गे देवि! आपको प्रणाम है। आप ही एकमात्र शक्ति हैं, जो समस्त प्राणियों के हृदय में व्याप्त हैं॥ ३१॥

अविद्याहारिणी विद्या विष्णुदेहकृतालये।
विष्णुपादाब्जसम्भूते देवि गङ्गे नमोऽस्तु ते॥ ३२॥

हे गङ्गे देवि! आप अविद्या का उच्छेद करनेवाली विद्या हैं। आपने भगवान् विष्णु के शरीर में अपना वास बना रखा है। आप विष्णु के चरणकमलों से सम्भूत हैं। अतः हे गङ्गे देवि! आपको प्रणाम है॥ ३२॥

विश्वात्मिके जगद्वन्द्ये शिवध्यानपरायणे।
गिरिराजसुते देवि गङ्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ ३३॥

हे विश्वात्मिके! हे जगद्वन्द्ये! हे शिवध्यानपरायणे! हे गिरिराजपुत्रि! हे देवि गङ्गे! आपको प्रणाम है॥ ३३॥

त्वयि भक्तिस्त्वयि प्रीतिस्त्वयि श्रद्धा मतिस्त्वयि।
येषामस्ति न ते मृत्योर्वशमायान्ति कुत्रचित्॥ ३४॥

जिन श्रद्धालुओं की आप में भक्ति है, प्रीति है, श्रद्धा है, आप में ही ध्यान है, वे कभी मृत्यु (पाप) के वश में नहीं होते॥ ३४॥

न वाऽधःपतनं तेषां न वा दुःखं न वा भयम्।
त्वत्प्रसादाद्भवेद्देवि गङ्गे मातर्नमोऽस्तु ते॥ ३५॥

आप की कृपा से, उनका अधःपतन (हीनगति) भी नहीं होता, न उनको कोई दुःख होता है, न कोई भय। हे गङ्गे देवि! आपको प्रणाम है॥ ३५॥

शुद्धबोधात्मिके सर्वलोकचैतन्यरूपिणि।
प्रसीद गङ्गे पापानि ध्वंस विश्वेशि ते नमः''॥ ३६॥

हे शुद्धबोधात्मिके! हे सर्वलोकचैतन्यरूपिणि! आप मुझ पर प्रसन्न

होइये! हे गङ्गे देवि! मेरे पापों का नाश कीजिये! हे विश्वेश्वरि! आपको प्रणाम है"।। ३६।।

श्रीमहादेव०— इत्येवं संस्तुवन्तीं तां धरणीं जगदम्बिका।
गङ्गा प्राह वचो देवीं दिव्यरूपां महामुने॥ ३७॥

श्रीमहादेव— हे महामुने! इस प्रकार स्तुति करती हुई दिव्यरूपा देवी पृथ्वी को जगन्माता भगवती गङ्गा ने ये वचन कहे—।। ३७।।

गङ्गा०— "क्षिते किं याचसे मत्तस्तद्ब्रूहि तव वाञ्छितम्।
किमर्थं स्तौषि धरणि दृष्ट्वा मां वै द्रवात्मिकाम्॥ ३८॥

गङ्गा— "हे पृथ्वि! तुम मुझसे क्या चाहती हो? अपने मन की इच्छा कहो। मुझ जलमयी की स्तुति तुम क्यों कर ही हो?"।। ३८।।

धरणी०— "अनुगृह्य महात्मानं राजानं त्वं भगीरथम्।
प्रयासि विवरस्थानं यत्रास्य पितरः पुरा।
भस्मीभूता मुनेः शापात् सगरस्य महामते॥ ३९॥

धरणी— "आप महात्मा राजा भगीरथ पर अनुग्रह कर उस विवरस्थान पर पधार रही हैं जहाँ इनके पूर्वज सगर के पुत्र मुनि के शाप से भस्म हुए पड़े हैं।। ३९।।

अत्रैतत् प्रार्थये दिक्षु चतुर्ष्वेव सुरेश्वरि।
आसमुद्राच्चतुर्धारा भूत्वा त्वं मम पृष्ठतः।
विहृत्य सरितां श्रेष्ठे पवित्रं कुरु मे तनुम्॥ ४०॥

यहाँ मेरा इतना ही निवेदन है कि आप वहाँ जाती हुई समुद्रपर्यन्त अपने को चार धाराओं में विभक्त कर मेरे शरीर को पवित्र करें।। ४०।।

गङ्गा०— भगीरथस्तुता विष्णोः पदं त्यक्त्वाहमागता।
न तस्याभिमतादन्यत् कर्तुं शक्नोमि किञ्चन॥ ४१॥

गङ्गा— हे धरणि! मैं भगीरथ के निवेदन करने पर अपना विष्णुपद का वासस्थान छोड़कर यहाँ आयी हूँ। अतः मैं उनकी सम्मति के विना कुछ करने में समर्थ नहीं हूँ।। ४१।।

श्रीमहादेव०— ततो भगीरथो राजा धरणीहितकाम्यया।
प्रणिपत्य वचः प्राह गङ्गां परमवेगिनीम्॥ ४२॥

श्रीमहादेव जी— तब राजा भगीरथ ने पृथ्वी की हितकामना की दृष्टि से परम वेग वाली गङ्गा देवी को प्रणाम कर यों निवेदन किया।। ४२।।

राजा०— मातर्गङ्गे महाभागे पुण्ये पुण्यतमोत्तमे।
धरणीयमनुग्राह्या त्वया त्रिदशवन्दिते॥ ४३॥

राजा भगीरथ— "हे माता गङ्गे! हे पुण्ये! हे पुण्यतमों में श्रेष्ठ! हे देवताओं द्वारा पूज्य! आप इस पृथ्वी पर अनुग्रह कीजिये"।। ४३।।

श्रीमहादेव०— एवं मतमभिज्ञाय राज्ञस्तस्य महामतेः।
पश्चिमोत्तरपूर्वासु त्रिधा भूत्वानुवेगिनी।
निःससार जगन्माता स्वर्गात्त्रैलोक्यपावनी॥ ४४॥

श्रीमहादेव— इस तरह महामति राजा की सम्मति जानकर, पश्चिम, उत्तर एवं पूर्व दिशाओं में त्रिधा विभक्त होकर वह पतितपावनी जगन्माता गङ्गा स्वर्ग से वेगपूर्वक निकली।। ४४।।

अपरैका महाधारा भगीरथपथानुगा।
अवाच्यां दिशि मार्गे तु स्वर्गे वेगवती बभौ॥ ४५॥

एक अन्य विशाल धारा भगीरथ के पीछे पीछे चलती हुई दक्षिण पार्श्ववाले मार्ग में, स्वर्ग में, शोभित हुईं।। ४५।।

सा धारा प्लावयित्वा च स्वर्गं सुरतरङ्गिणी।
दक्षिणाभिमुखी वेगात्कियद्दूरं जगाम ह॥ ४६॥

गङ्गा की वह धारा स्वर्ग को प्लावित करती हुई दक्षिण की तरफ कुछ दूर चली।। ४६।।

अग्रे भगीरथो राजा मध्याह्नर्कसमप्रभः।
अपूर्वं रथमारुह्य ध्मायन् शङ्खमुपागमत्॥ ४७॥

आगे मध्याह्न के सूर्य के समान राजा भगीरथ अपूर्व रथ पर आरूढ़ होकर शङ्ख बजाते हुए चल रहे थे।। ४७।।

त्रिदिवं प्लवमानं तु दृष्ट्वा देवाः सकिन्नराः।
देव्यश्च समुपागत्य गङ्गां भक्त्याभ्यपूजयन्॥ ४८॥

स्वर्ग को प्लावित होते हुए देखकर, देवता, किन्नर एवं देवियाँ वहाँ आकर भक्तिपूर्वक भगवती गङ्गा की पूजा करने लगीं।। ४८।।

अथाह देवराजस्तं राजानं सूर्यवंशजम्।
विनयेन महाबाहुं सहितः सर्वदैवतैः॥ ४९॥

तब देवराज इन्द्र ने सब देवताओं के साथ आकर उन सूर्यवंशी राजा महाबाहु भगीरथ से नम्रतापूर्वक यों कहा—।। ४९।।

"भो भो क्षत्रियशार्दूल पुण्यकीर्ते भगीरथ!
त्रैलोक्यदुर्लभां गङ्गां नीत्वा यासि महीतले।
क्षणं तिष्ठ महाभाग! वचोऽस्माकं निशामय"॥ ५०॥

"हे क्षत्रियश्रेष्ठ! हे पुण्यकीर्ति भगीरथ! आप त्रिलोकी में दुर्लभ भगवती गङ्गा को पृथ्वी तल पर ले जा रहे हैं। कृपया एक क्षण ठहरिये और हमारी बात सुनिये" ।। ५०।।

इति देवाधिराजस्य वचः श्रुत्वा भगीरथः।
विरम्य तत्र देवेशं प्रत्युवाच पुरन्दरम्॥ ५१॥

राजा भगीरथ देवराज के वचन सुनकर वहाँ कुछ क्षण ठहरकर देवराज से यों कहने लगे– ।। ५१ ।।

"किमर्थं देवराज! त्वं ममादिशसि तद्वद।
करिष्यामि तदेवाहं तवाज्ञावशगः प्रभो"॥ ५२॥

"हे देवराज! आप मुझे क्यों रोक रहे है?– कृपया यह बताइये। हे प्रभो! आप जो कहेंगे मैं वही करूँगा" ।। ५२ ।।

देवराज०— "आनीता भवता गङ्गा ब्रह्मादीनां सुदुर्लभा।
क्षितावेव समग्रां तां नीत्वा यासि कथं नृप!॥ ५३॥

देवराज— "राजन्! आप ब्रह्मादि को सुदुर्लभ इस गङ्गा को प्राप्त कर एकमात्र पृथ्वी पर ही इसे क्यों ले जा रहे हैं? ।। ५३ ।।

एका सुललिता धारा स्वर्गे व्याप्यावतिष्ठतु।
यथा मर्त्ये तथा स्वर्गे कीर्तिस्तेऽपि विराजताम्"॥ ५४॥

इसकी एक सुललित धारा को स्वर्ग में छोड़ते जाइये। जिससे भूमण्डल की तरह आपकी कीर्ति स्वर्ग में भी गायी जाती रहे" ।। ५४ ।।

श्रीमहादेव— इति देवाधिराजस्य वचनं वै निशम्य सः।
राजा सम्प्रार्थयामास गङ्गां तत्र महामुने!॥ ५५॥

श्रीमहादेव जी— हे महामुने! देवराज के ये वचन सुनकर, राजा भगीरथ ने गङ्गा भगवती से यों प्रार्थना की– ।। ५५ ।।

"मातर्गङ्गे महाभागे धारैका ते सुरालये।
सम्पावनार्थं देवानामपि तिष्ठतु शोभना"॥ ५६॥

"हे गङ्गा माता! आपकी एक सुन्दर धारा इस स्वर्ग में बहती रहे, जिससे देवताजन भी पवित्र होते रहें" ।। ५६ ।।

इत्येवं प्रार्थिता राज्ञा गङ्गा द्रवमयी तदा।
भूत्वाऽपरा महाधारा उत्तराभिमुखी ययौ॥ ५७॥

हे मुने! यों राजा द्वारा निवेदन किये जाने पर, भगवती गङ्गा जलमयी होकर उसकी एक धारा उत्तर की तरफ चलने लगी।। ५७।।

सा तु धारा महापुण्या स्वर्गलोकस्य पावनी।
मन्दाकिनीति विख्याता स्थिता स्वर्गपुरे मुने॥ ५८॥

वह धारा भी विशेष पुण्यप्रद एवं स्वर्ग को भी पवित्र करने वाली स्वर्ग में *'मन्दाकिनी'* नाम से विख्यात हुई।। ५८।।

तत्र देवाः सगन्धर्वाः सर्वे देवर्षयस्तथा।
स्नानावगाहनं नित्यं कुर्वन्ति परमादृताः॥ ५९॥

वहाँ गन्धर्वों तथा देवर्षियों सहित सभी देवता सादर स्नान करते रहते हैं।। ५९।।

अथ राजा तु सन्ध्माय शङ्खं भूयो रथोपरि।
दक्षिणां दिशमभ्यायाद् गङ्गा कृत्वा तु पृष्ठतः॥ ६०॥

तब राजा भगीरथ, शङ्ख बजाते हुए, रथ पर बैठकर दक्षिण की तरफ चल दिये, जिनके पीछे पीछे गङ्गा जी भी आ रही थीं।। ६०।।

सुमेरोर्दक्षिणं शृङ्गं, समवाप्य भगीरथः।
दृष्ट्वा तुङ्गं महाबाहुर्गङ्गामाह कृताञ्जलिः॥ ६१॥

इस तरह राजा भगीरथ सुमेरु पर्वत के दक्षिण शिखर के पास पहुँचकर, उस शिखर को देखकर, महाबाहु भगीरथ ने माता गङ्गा से, हाथ जोड़कर, पूछा—।। ६१।।

मातरेनं महाशृङ्गं निर्भिद्याहं कथं शिवे!
पृथिव्यां त्वां नयिष्यामि तन्मे वद सुरोत्तमे॥ ६२॥

"हे माता! मैं इस महान् शिखर को लाँघकर आपको पृथ्वी पर कैसे ले जा पाऊँगा—यह बताइये?"।। ६२।।

गङ्गा०— **"अहमत्रैव तिष्ठामि त्वं चोल्लङ्घ्य गिरेः शिरः।**
दक्षिणं पार्श्वमभ्येहि रथेनानेन भूपते!॥ ६३॥

गङ्गा— "हे राजन्! ऐसा करिये— मैं यहीं ठहरती हूँ। आप अपने रथ पर इस गिरिशिखर को लाँघकर इसके दक्षिण किनारे चले जाइये।। ६३।।

तत्र त्वया कृते शङ्खनिस्वनेऽतिसुघोरके।
अहं परमवेगेन विनिर्भिद्य गिरेः शिरः।

अन्विष्य रथमार्गं ते चानुयास्यामि निश्चितम्''॥ ६४॥

वहाँ जब आप भयङ्कर शङ्खनाद करेंगे तो मैं तीव्र वेग से इस गिरिशिखर को भेदकर तुम्हारे रथमार्ग का अनुसरण करती हुई निश्चित ही आपके पीछे चली आऊँगी।। ६४।।

श्रीमहादेव०— इति गङ्गाज्ञया राजा व्यतीत्य शिखरं गिरेः।
महता रथवेगेन दक्षिणं पार्श्वमाययौ॥ ६५॥

श्रीमहादेव जी— इस तरह भगवती गङ्गा की आज्ञा से राजा भगीरथ उस गिरिशिखर को लाँघ कर उसके दक्षिण किनारे चले गये।। ६५।।

तत्र दध्मौ महाशङ्खं युगान्तजलदस्वनम्।
तेनासीत्तुमुलः शब्दो व्याप्तं तेन नभोऽन्तरम्॥ ६६॥

वहाँ उन्होंने प्रलयकाल के मेघगर्जन के समान शङ्खनाद किया, उससे तीव्र शब्द हुआ। वह शब्द समस्त आकाश में व्याप्त हो गया।। ६६।।

तमाकर्ण्य महाशब्दं गङ्गा परमवेगिनी।
निर्भिद्य दक्षिणं शृङ्गं मेरोः स्वयमवातरत्॥ ६७॥

श्रीमहाभगवते उपपुराणे गङ्गानिर्गमनं
नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः॥ ६८॥

उस शङ्खनाद को सुनकर गङ्गा भगवती उत्कृष्ट वेग के साथ सुमेरु को भेदकर उसके दक्षिण किनारे स्वयं आ गयीं।। ६७।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
गङ्गानिर्गमन नामक
अड़सठवाँ अध्याय समाप्त॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

[गङ्गा का भूतल पर आगमन]

श्रीमहादेव०— ज्येष्ठे शुक्लदशम्यां तु गङ्गा वै निःससार ह।
परित्राणाय लोकानां महापातकिनामपि॥ १॥

श्रीमहादेव जी— भगवती गङ्गा का, महापातकयुक्त जनों का भी परित्राण करने के लिये, ज्येष्ठ शुक्ला (गङ्गा–) दशमी के दिन इस भूतल पर अवतरण हुआ।। १।।

तस्यां स्नानं तपो दानं गङ्गायां मुनिसत्तम।
महाफलप्रदं तद्वन्मम महापातकनाशनम्॥ २॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस दिन इस (गङ्गा) में स्नान करना, तप तथा दान करना, महान् फलप्रद एवं महापापों का भी नाशक होता है।। २।।

दशजन्मार्जितं पापं हरते तत्र जाह्नवी।
तस्मात् सा दशमी प्रोक्ता मुने दशहरा तिथिः॥ ३॥

हे मुने! उस दिन यह जाह्नवी दशजन्म तक कृत पापों का भी हरण कर लेती है, अतः उसे 'दशहरा' कहते हैं।। ३।।

हस्तमङ्गलयोगे तु तस्यां भागीरथी स्वयम्।
पापं दशविधं हन्ति दशजन्मसु सञ्चितम्॥ ४॥
स्नानावगाहनैर्नृणां तत्रावश्यं प्रयत्नतः।
स्नातव्यं देहिभिः सर्वैर्महापापान्मुमुक्षुभिः॥ ५॥

उस तिथि के दिन, हस्तमङ्गल के योग में, स्नान करने से भगवती भागीरथी स्वयं दश जन्मों तक सञ्चित मनुष्यों के दश प्रकार के पापों का नाश करती हैं। अतः उसमें सभी मनुष्यों को प्रयत्नपूर्वक स्नान अवगाहन करना चाहिये। इसी से उनके सर्वविध पाप विनष्ट होंगे।। ४–५।।

हिमाद्रि पर गङ्गा का अवतरण

अथ स्वर्गाद्विनिःसृत्य राज्ञस्तस्य रथानुगा।
महावेगवती गङ्गा दक्षिणां दिशमाययौ॥ ६॥

तब स्वर्ग से निकलकर, राजा भगीरथ के रथ के पीछे–पीछे बहती हुई भगवती गङ्गा प्रबल वेग से दक्षिण दिशा की तरफ चल पड़ी।। ६।।

पथि देवर्षिगन्धर्वैर्मनुजैश्चातिभक्तितः।
चित्रपुष्पसमूहैश्च बिल्वपत्राक्षतादिभिः ॥ ७ ॥

मार्ग में, देव, ऋषि, गन्धर्व एवं मनुष्यों द्वारा अत्यन्त श्रद्धा भक्ति पूर्वक चित्र–विचित्र पुष्पों से तथा विल्वपत्र एवं अक्षत आदि से पूजा प्राप्त की।। ७।।

समपूज्यत सा गङ्गा चारुदूर्वादलैरपि।
तैः पुष्पैश्चित्रिता गङ्गा शुद्धस्फटिकसन्निभा ॥ ८ ॥

इस तरह वह गङ्गा सुन्दर दूर्वा की पत्तियों से भी पूजित हुईं। उन पुष्पों के उसमें तैरने के कारण वह गङ्गा मूलतः स्फटिक के समान श्वेत होते हुए भी चित्र विचित्र लगने लगीं।। ८।।

फेनैः सुरुचिरा वेगवती सुरतरङ्गिणी।
व्यतीत्य पर्वतान् दुर्गान् दुर्भेद्यान्भीमनिःस्वना ॥ ९ ॥
द्रावयन्ती गजान् सिंहान्निषधाख्यं महाबलम्।
व्यतीत्य हेमकूटं च हिमाद्रेः प्राप सन्निधिम् ॥ १० ॥

ऊपर बहते हुए फेन (झाग) से शोभायमान वह वेगवती गङ्गा दुर्गम एवं दुर्भेद्य पर्वतों को लाँघती तथा भयङ्कर गर्जना करती हुई मार्ग में बैठे हुए हाथी एवं सिंहों को उद्विग्न करती हुई, निषधनामक हेमकूट पर्वत को पार कर अन्त में हिमालय पर्वत के पास आ पहुँची।। ९–१०।।

तत्रागत्य महावेगवती गङ्गा बभौ तदा।
शम्भोर्मौलौ समारोढुं फेनराशिविचित्रिता ॥ ११ ॥

वहाँ आकर, वह महान् वेग वाली गङ्गा प्रबल फेन राशि से शोभित होती हुई, भगवान् शङ्कर के मस्तक पर आरूढ होने को सन्नद्ध हुई।। ११।

अथ ज्ञात्वा महादेवो गङ्गां निकटमागताम्।
मौली विस्तीर्णजटया बध्वा सेतुमितस्ततः।
हिमाद्रेः शिखरे तस्थौ तां धर्तुं शिरसा मुने! ॥ १२ ॥

हे मुने! तब भगवान् शङ्कर, गङ्गा को समीप आयी हुई जानकर, उसे अपने शिर पर धारण करने हेतु शिर की जटाओं से इधर उधर सेतु (अवरोधक) बनाकर उस गङ्गा के अवरोध हेतु हिमालय के शिखर पर विराजमान हुए।। १२।।

अथ वै ज्येष्ठमासस्य पौर्णमास्यां दिनार्धके।
गङ्गावेगादनुप्राप शम्भोर्मौलिं महामते ॥ १३ ॥

ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन मध्याह्न में, हे महामते! वह गङ्गा भगवान् शङ्कर के शिर पर आकर विराजमान हुईं।। १३।।

स ज्ञात्वा मौलिमापन्नां गङ्गां गङ्गाधरस्तदा।
ननर्त परमानन्दः पूर्णात्मा जगदीश्वरः॥ १४॥

तब वे पूर्णात्मा जगदीश्वर, गङ्गाधर, भगवान् शङ्कर अपने शिर पर विराजमान गङ्गा को जानकर आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगे।। १४।।

प्रमथास्तस्य देवस्य कोटिकोटिसहस्रशः।
ननृतुः पार्श्वतस्तुष्टा वीक्ष्य नृत्यं महेशितुः॥ १५॥

उन भगवान् शङ्कर को नाचते हुए देखकर उनके पार्षद करोड़ों प्रमथ भी उनके आस-पास हर्ष विभोर होकर नाचने लगे।। १५।।

गङ्गा शम्भोः शिरः प्राप्य परमानन्दसंयुता।
व्यचरत् फेनपुष्पौघरुचिराऽतितरङ्गिणी॥ १६॥

वह फेनमिश्रित पुष्पराशि से शोभित वेगवती गङ्गा भी भगवान् शङ्कर के मस्तक पर आरूढ़ होकर आनन्दविभोर होती हुई विचरण करने लगीं।। १६।।

राजा तु पश्चादालोक्य गङ्गया रहितां दिशम्।
नृत्यन्तं देवदेवं च महाचिन्तापरोऽभवत्॥ १७॥

इसी समय राजा ने पीछे देखा तो गङ्गा कहीं दिखायी न दीं। उधर भगवान् शङ्कर आनन्दमग्न होकर नाच रहे थे। यह देखकर राजा को बहुत चिन्ता हुई।। १७।।

तत्र श्रुत्वा महाशब्दं शम्भोर्मौलौ भगीरथः।
गङ्गां शम्भुशिरः प्राप्तां मेने परमकोपनाम्॥ १८॥

राजा भगीरथ ने, भगवान् शङ्कर के शिर पर कलकल शब्द सुनकर, समझ लिया कि अतीव क्रोधी गङ्गा तो भगवान् शङ्कर के शिर पर विराजमान हैं।।१८।।

ततो महास्वनं शङ्खं राजा दध्मौ भगीरथः।
तच्छ्रुत्वा व्यचरद् गङ्गा गवेषन्ती विनिर्गमम्॥ १९॥

यह देखकर राजा ने महाध्वनि वाला अपना शङ्ख बजाया। उस ध्वनि को सुनकर गङ्गा ने उन जटाओं से निकलने का मार्ग खोजा।। १९।।

शम्भोर्मौलौ महावेगा भगीरथवशानुगा।
अप्राप्य निःसृतिद्वारं शङ्खध्वन्युपकर्षिता।
निनाय च मुने तत्र वर्षमेकं महानदी॥ २०॥

क्योंकि वह भले ही भगवान् शङ्कर के शिर पर आरूढ़ थीं, पर थीं तो भगीरथ के अधीन। अतः उस का शङ्खनिनाद सुनते हुए आतुर होकर जटाओं से बाहर निकलने का मार्ग खोजने लगी। परन्तु उसे निःसरणमार्ग नहीं मिल रहा था। उधर उसे शङ्खध्वनि भी निरन्तर सुनायी दे रही थी, अतः वह विचलित हो गयी। फिर भी उसे, प्रयास करने पर भी, एक वर्ष तक निःसरणमार्ग नहीं मिला।। २०।।

अथ राजा महादेवं नृत्यन्तं प्रणिपत्य च।
प्राञ्जलिः प्राह धर्मात्मा सूर्यवंशप्रदीपनः॥ २१॥

तब उस सूर्यवंशी धर्मात्मा राजा ने भगवान् शङ्कर को नाचते हुए देखकर उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़ते हुए यों निवेदन किया—।। २१।।

राजा०— **"देवदेव जगद्वन्द्य प्रणतानां कृपाकर!**
देहि शीर्षात्सुरधुनीं पितॄणां त्राणहेतवे॥ २२॥

राजा— "हे देवाधिदेव! हे जगत्पूज्य! हे शरणागतों की रक्षा करने वाले! आप मुझे अपने पूर्वजों को त्राण हेतु, स्वकीय शिर से गङ्गाजी को उतार कर दीजिये।। २२।।

त्वयैव मे वरो दत्तो गङ्गा त्रिपथगा स्वयम्।
विवरस्थानमभ्येति मत्पितॄनुद्धरिष्यति॥ २३॥

आपने ही तो पहले कभी मुझको वर दिया था कि यह गङ्गा नदी तुम्हारे पूर्वजों के त्राण हेतु भूतल पर जायगी।। २३।।

सेयं हरितनोश्चापि मयाऽऽनीता त्वया हृता।
निष्कृतिस्तत्कथं देव मत्पितॄणां भविष्यति!॥ २४॥

उसको मैं किसी तरह भगवान् विष्णु के शरीर से निकालकर लाया तो अब आपने उसको छिपा लिया। अब मेरे पूर्वजों का उद्धार कैसे होगा!।। २४।।

तस्मात्तां देहि निःसार्य शिरसः परमेश्वर।
त्वया दत्तं वरं पूर्णं सफलं कुरु शङ्कर!"॥ २५॥

अतः हे परमेश्वर! उसे अपने शिर से उतार कर मुझे दे दें। इस तरह हे शङ्कर! आप अपनी पहले कही बात (वर) को पूर्ण कीजिये"।। २५।।

गङ्गादशहरा

श्रीशिव०— **"दास्यामि सरितां श्रेष्ठां तुभ्यं राजन्न संशयः।**
पितॄणां ते विमुक्त्यर्थं प्राक् स्वीकृतवरेण हि॥ २६॥

भगवान् शङ्कर— "हे राजन्! मैं इस श्रेष्ठ नदी को तुम्हें अवश्य दूँगा, इसमें कोई सन्देह न करो। इससे तुम्हारे पूर्वजों की भी मुक्ति हो जायगी। ऐसा ही मैंने तुमको वर भी दिया था।। २६।।

किं त्वियं ज्येष्ठमासस्य दशम्यां शुक्लपक्षभे।
तावत्तिष्ठ महीपाल शिखरेऽस्मिन्महामते!"॥ २७॥

परन्तु यह ज्येष्ठ शुक्ल दशमी के दिन, जबकि हस्तमङ्गल योग होगा, मेरे शिर से उतरेगी। अतः हे राजन्! तब तक आप इसी गिरिशृङ्ग पर इनकी प्रतीक्षा करें"।। २७।।

श्रीमहादेव०—इति श्रुत्वा मुनिश्रेष्ठ राजा तत्र भगीरथः।
प्रतीक्ष्य तां तिथिं कालं व्यतीयाय कियत्तरम्॥ २८॥

श्रीमहादेव जी— हे मुनिश्रेष्ठ! यह सुनकर राजा भगीरथ ने उस (दशमी) तिथि की प्रतीक्षा करते हुए वहाँ रहकर ही कुछ समय बिताया।। २८।।

ततः प्राप्य तिथिं तां तु राजा दध्मौ महास्वनम्।
शङ्खं दिव्यतुषाराभं गङ्गे गङ्गेति चाब्रुवत्॥ २९॥

उस तिथि के आने पर, उस दिन राजा ने अपना श्वेत शङ्ख बजाया। और 'गङ्गा' 'गङ्गा' इस नाम से उनका आह्वान भी किया।। २९।।

तच्छ्रुत्वा सा महावेगवती कलकलं ध्वनिम्।
कृत्वा शम्भुजटामध्ये बभ्राम सरितां वरा॥ ३०॥

उसे सुनकर वे प्रवाहवती गङ्गा कलकल ध्वनि करती हुई शङ्कर की जटा में इधर उधर घूमने लगी; परन्तु उसे निकलने का मार्ग फिर भी नहीं मिला।। ३०।।

अप्राप्य निःसृतिद्वारं पीड़िता शङ्खनिःस्वनैः।
शम्भोः शरणमापन्ना गङ्गा तं समुवाच ह॥ ३१॥

इधर शङ्खध्वनि निरन्तर हो रही थी, और उधर गङ्गाजी को जटाओं से निकलने का मार्ग दीख नहीं रहा था, इस कारण वे विह्वल हो उठीं। तब उन्होंने भगवान् शङ्कर के शरणागत होकर यह निवेदन किया—।। ३१।।

गङ्गा०— प्रभो देव जगन्नाथ! तवाहं शरणं गता।
देहि वर्त्म विनिर्यामि भगीरथवशानुगा॥ ३२॥

गङ्गा— "हे प्रभो! हे देव! हे जगन्नाथ! मैं आपके शरण में आयी हूँ। मुझे अपनी जटाओं से निकलने का मार्ग दीजिये; क्योंकि मैं इस समय राजा भगीरथ के वश में हूँ।। ३२।।

पृथिव्यां सर्वभूतानां निस्तारार्थं महेश्वर!
व्यथितास्मि भृशं राज्ञः शङ्खध्वानेन कर्षिता"॥ ३३॥

हे शङ्कर! पृथ्वीवासी समस्त प्राणियों की पापों से रक्षा हेतु मैं वहाँ जाने के लिये राजा की इस शङ्खध्वनि से व्यग्र हूँ"।। ३३।।

श्रीमहादेव०— इति गङ्गावचः श्रुत्वा शम्भुः सव्येन पाणिना।
जटाबन्धं विनिर्भिद्य दक्षिणस्यां दिशि क्षणात्॥ ३४॥

श्रीमहादेव जी— गङ्गा जी का यह निवेदन सुनकर, भगवान् शङ्कर ने क्षणभर में ही अपने बाँये हाथ से बन्धी जटा खोलकर दक्षिण दिशा की ओर फैला दी।। ३४।।

ततः सा निर्ययौ शम्भोः शीर्षान्निःसृत्य सस्वना।
दक्षिणां दिशमत्युग्रवेगाद्राज्ञो रथं प्रति॥ ३५॥
राजाऽपि चालयामास रथं हेमपरिष्कृतम्॥ ३६॥

तब वह गङ्गा, कलकल निनाद करती हुई, भगवान् शङ्कर की जटा से निकलकर अति उग्र वेग से रथ के पीछे पीछे दक्षिण दिशा की तरफ बह चली। राजा ने भी यह देखकर अपना हेमपरिष्कृत (सुवर्णमय) रथ शीघ्र ही आगे बढ़ाया।। ३५–३६।।

ततो गिरिपतेः पृष्ठे विहरन्तीं सरिद्वराम्।
गच्छन्तीं गजसिंहादीन् द्रावयन्तीं दिशो दश॥ ३७॥
श्रुत्वा मेना गिरीन्द्रश्च द्रष्टुं निकटमाययौ॥ ३८॥

तब क्रमशः हिमालय के शिखरों को पार करती हुई गङ्गा को देखने के लिये जो कि वेग से बहती हुई दशों दिशाओं में स्थित सिंह आदि प्रबल प्राणियों को उद्विग्न कर रही थीं, मेनका एवं पर्वतराज हिमालय वहाँ आये।। ३७–३८।।

तौ दृष्ट्वा पितरौ गङ्गा प्रणिपत्य सुरोत्तमा।
ताभ्यां सम्पूजिता तूर्णं पपात धरणीतले॥ ३९॥

अपने माता–पिता को देखकर, गङ्गा ने उनको प्रणाम किया। और उन दोनों ने भी उसका यथोचित सम्मान किया। तब वह बहती हुई आगे बढ़ी।। ३९।।

ततः समभवत् पुष्पवृष्टिर्दिक्षु विदिक्षु च।
लोकानां जयशब्दश्च सर्वतः समपद्यत॥ ४०॥

उस समय, दिशाओं विदिशाओं से उन गङ्गा देवी पर पुष्पवृष्टि होने

लगी तथा समीपस्थ प्राणियों ने हर्षोत्फुल्ल होकर उनका जय जयकार आरम्भ किया।। ४०।।

सम्प्राप्य धरणीपृष्ठं गङ्गा भागीरथी तदा।
जज्वाल तेजसाऽतीव तप्तकाञ्चनसन्निभा॥ ४१॥

तब वह भागीरथी गङ्गा धरातल पर पहुँच कर अपने तेज से ऐसी शोभायमान हुई जैसे तपा हुआ सुवर्ण चमका करता है।। ४१।।

वेगश्चतुर्गुणश्चासीन्निःस्वनश्च महत्तरः।
तथापि धरणी गङ्गालाभादानन्दिताभवत्॥ ४२॥

कभी वह अपने चतुर्गुण वेग से प्रवाहित होती थीं, कभी उसका प्रवाह शान्त, विना किसी शब्द के हो जाता था। तो भी पृथ्वी को इतना ही आनन्द था कि गङ्गा जी इस धरातल पर तो आयी!।। ४२।।

सापि वेगवती गङ्गा रथनेमिगतं मुनेः।
पन्थानं मृगयन्त्यागाद्दक्षिणस्यां कलस्वना॥ ४३॥
वृक्षान् शालपियालादीन् द्रोणपुष्पवनानि च।
सर्वांश्च नगरग्रामगृहादीनि च सर्वतः॥ ४४॥
प्लावयित्वा महादेवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः।
प्राभ्यधावत वेगेन भगीरथवशानुगा॥ ४५॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे गङ्गाभूपृष्ठागमनं नाम
ऊनसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६९॥

इस तरह वह वेगवती गङ्गा कलकल निनाद करती, रथ के पीछे पीछे चलती हुई दक्षिण दिशा में स्थित (कपिल) मुनि के आश्रम को खोजती हुई बढ़ रही थीं। शाल एवं पियाल आदि वृक्षसमूहों को, द्रोणपुष्प के झुण्डों को तथा सामने पड़ने वाले नगरों, ग्रामों एवं घरों को सब तरफ से प्लावित करती, देवताओं एवं ऋषियों द्वारा पूजित वह महादेवी राजा भगीरथ के रथ के पीछे चलती हुई, वेग से प्रवाहित होती रहीं।। ४३–४५।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में गङ्गा भूपृष्ठागमनवर्णनरूप
उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।

सत्तरवाँ अध्याय

[गङ्गा-समुद्रतीरप्राप्ति वर्णन]

गङ्गा का हरद्वार में अवतरण

श्रीमहादेव०— व्यतीत्यैवं महादेवी योजनानां बहूनि सा।
हरिद्वारं समायाता राज्ञा तेन महात्मना॥ १॥

श्रीमहादेव— वह महादेवी गङ्गा अनेक योजन लम्बा मार्ग पार कर, अन्त में राजा भगीरथ के पीछे पीछे *हरद्वार* तक आ पहुँची।। १।।

तत्र सप्तर्षयो वीक्ष्य गङ्गां देवसुदुर्लभाम्।
अभ्यर्च्य वीक्ष्य सानन्दाः शङ्खशब्देन नारद॥ २॥

हे नारद! वहाँ सप्तर्षियों ने, देवताओं को भी दुर्लभ उस गङ्गा का आगमन सुनकर, उनका दर्शन एवं पूजन कर, उनके आगे राजा के शङ्ख शब्द को सुनकर आनन्द मनाया।। २।।

दध्मुस्तेऽपि महाशङ्खान् सप्तसप्तसु दिक्षु च।
तच्छ्रुत्वा सप्तधाराभूद् गङ्गा भागीरथी तदा॥ ३॥

तथा सप्तर्षियों ने भी इसी अवसर पर अपने अपने शङ्खों से भी ध्वनि की। जिसे सुनकर भगवती गङ्गा जी सात धाराओं में विभक्त हो गयीं।। ३।।

प्रयाग में अवतरण

परमं वेगमास्थाय राज्ञस्तस्य समीपतः।
ततो निर्भिद्य पाषाणं वेगात् सा शाम्भवी परा॥ ४॥
अग्निकोणमुखी प्रायात् सरिद्भिः सङ्गतापगा।
प्रयागदेशमागत्य सार्धं यमुनया शिवा॥ ५॥

और उस राजा के पास से ही निकलकर प्रबल वेग से शिलाओं को तोड़ती हुई वह शाम्भवी पराशक्ति (गङ्गा) अग्निकोण दिशा की तरफ जाती हुई, मार्ग में मिलने वाली नदियों को अपने में मिलाती हुई *प्रयाग* क्षेत्र में आकर यमुना नदी के साथ मिल गयी।। ४–५।।

सरस्वत्या च सम्मिश्रा समभून्मुनिपुङ्गव!
तत्र भागीरथी पुण्या देवानामपि दुर्लभा॥ ६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वहीं यह देवदुर्लभ भागीरथी गङ्गा सरस्वती नदी से सम्पृक्त हो गयीं ।। ६ ।।

तत्र स्नानं तपो दानं पुण्यात् पुण्यतरं मुने!
अपि ब्रह्मादयः सर्वे सुराधीशाश्च तत्र वै।
स्नात्वा पवित्रमात्मानं मन्यन्तेऽन्यस्य का कथा॥ ७॥

हे मुने! इस संगम पर स्नान तप एवं दान करना पुण्य से भी पुण्यतर माना जाता है। ब्रह्मा आदि विशिष्ट देवता भी वहाँ स्नान कर स्वयं को धन्यतम मानते हैं, फिर दूसरों की तो बात ही क्या कही जाय!।। ७ ।।

गङ्गा जी का काशी में अवतरण

ततः पूर्वमुखी भूत्वा कियद्दूरं महेश्वरी।
द्रष्टुं महेश्वरं काश्यामुत्तराभिमुखी ययौ॥ ८॥

फिर वह महेश्वरी प्रयाग से कुछ दूर तक पूर्वमुख होकर भगवान् शङ्कर के दर्शन हेतु काशी जाने के लिये उत्तराभिमुख होकर बहने लगी ।। ८ ।।

तत्र पुण्यतमा गङ्गा महापापविमोचनी।
महामोक्षप्रदा काशी तथा तद्वच्च सा मुने॥ ९॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि देहं सन्त्यजतः शिवा।
निर्वाणमोक्षदा देवी तत्र गङ्गा सुरोत्तमा॥ १०॥

हे महामुने! जैसे वह काशी भक्तों के लिये महामोक्षप्रद है, उसी तरह यह गङ्गा भी वहाँ ऐसे पुरुषों के लिये जो जाने या अनजाने देह त्याग करते हैं उनके लिये महापातकनाशिनी तथा निर्वाणमोक्षप्रदायिनी है ।। ९–१० ।।

न तत्र त्यजतां देहं देहिनां पापिनामपि।
अपेक्षा विद्यते मुक्तौ सत्यं सत्यं महामुने॥ ११॥

हे महामुने! यह बात पूर्ण सत्य है कि वहाँ (काशी में गङ्गा किनारे पर) देह त्याग करनेवालों को पृथग्रूप से मोक्ष–प्राप्ति हेतु कोई प्रयास नहीं करना पड़ता ।। ११ ।।

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे॥ १२॥

सचाई तो यह है कि गङ्गा (मरणकाल में) सर्वत्र सुलभ हो सकती है, परन्तु तीन स्थानों में अत्यधिक दुर्लभ हैं ।। १२ ।।

भैरव का भ्रमनाश

अथ गङ्गां तु सम्प्राप्तां काशीं परमवेगिनीम्।
दृष्ट्वा क्षेत्राभिसंरक्षाकारी भैरवपुङ्गवः।
दण्डमुद्यम्य वेगेन प्राभ्यधावत नारद॥ १३॥

हे नारद! यों भगवती गङ्गा को काशी के समीप आया देखकर, काशी के क्षेत्राभिसंरक्षक भैरव श्रेष्ठ अपना दण्ड उठाकर शीघ्र ही उधर दौड़े ।। १३ ।।

स प्राह गङ्गां दुर्धर्षः "का त्वं नीरमयी कुतः।
समायाता कथं काशीं संप्लावयसि निम्नगे?॥ १४॥
पुरीयं देवदेवस्य शङ्करस्य महात्मनः।
एतस्य रक्षकं किं त्वं मां न जानासि भैरवम्!"॥ १५॥

उन दुर्धर्ष भैरव ने गङ्गा जी से पूछा– तूँ जल का रूप धारण किये हुए कौन है? कहाँ से आयी है? अयि क्षुद्र नदि! तूँ इस काशी को डुबाने हेतु क्यों आयी है? तूँ नहीं जानती कि यह देवाधिदेव भगवान् शङ्कर की नगरी है? क्या तूँ इस के संरक्षक रूप में मुझ भैरव को भी नहीं जानती?" ।। १४–१५ ।।

अथ गङ्गाऽब्रवीद्वाक्यं भैरवं भीमलोचनम्।
उद्यद्दण्डकरं घोरं साक्षात्कालं युगान्तकम्॥ १६॥

तब गङ्गा देवी ने उस भयङ्कर नेत्र तथा दण्डधारी साक्षात् कालरूप भैरव को देखकर उत्तर दिया– ।। १६ ।।

"अहं द्रवमयी गङ्गा देवी शङ्करगेहिनी।
आयात धरणीपृष्ठं शम्भोर्मौलौ प्रतिष्ठिता॥ १७॥
द्रष्टुं विश्वेश्वरं काश्यां निकटं समुपागता।
न काशीं प्लावयिष्येऽहं तिष्ठ त्वं कालभैरव!"॥ १८॥

"मैं जलमयी 'गङ्गा' नामक भगवान् शङ्कर की पत्नी हूँ। मैं उनके मस्तक पर विराजमान रहती हूँ। मैं तो धरणीतल पर आकर भगवान् शङ्कर के दर्शन हेतु काशी के निकट आयी हूँ। मैं काशी को प्लावित नहीं करूँगी। हे कालभैरव! आप चिन्ता न करें" ।। १७–१८ ।।

श्रीमहादेव०— एवमुक्तो महाबाहुर्गङ्गया कालभैरवः।
संहृत्य दण्डं तां नेमे देवीं शङ्करगेहिनीम्॥ १९॥

श्रीमहादेवजी– भगवती गङ्गा देवी द्वारा ऐसा उत्तर दिये जाने पर

उस महाबाहु कालभैरव ने अपना दण्ड रखकर उन शङ्करपत्नी को प्रणाम किया।। १९।।

एवं सम्मानिता तत्र भैरवेण महात्मना।
कामाख्यां द्रष्टुमुद्युक्ता गङ्गा पूर्वानताभवत्॥ २०॥

इस तरह वह देवी महात्मा कालभैरव द्वारा सम्मानित होकर *कामाख्या देवी* के दर्शन हेतु कुछ पूर्वाभिमुख हुईं।। २०।।

तदभिज्ञाय राजापि किञ्चित्कालं महामतिः।
सारथिं वारयामास शङ्खध्मानं न्यवारयत्॥ २१॥

यह जानकर, उस महामति राजा ने भी कुछ समय तक अपने सारथि को, जो शङ्ख बजा रहा था, रोका।। २१।।

एतस्मिन्नेव काले तु जह्नुः शङ्खमवादयत्।
तच्छ्रुत्वा चातिवेगेन गङ्गा तस्याश्रमं ययौ॥ २२॥

इसी समय जह्नु ऋषि ने शङ्ख बजाया। उसे सुनकर गङ्गा देवी प्रबल वेग से उनके आश्रम पर पहुँची।। २२।।

तत्र वेगेन गच्छन्तीं दृष्ट्वा गङ्गां भगीरथः।
भूयो दध्मौ महाशङ्खं महाजलदनिःस्वनम्॥ २३॥

तब राजा भगीरथ ने गङ्गा जी को उधर वेग से जाते देखकर, अपना शङ्ख बलपूर्वक बजाया। जिसकी ध्वनि मेघगर्जन के समान थी।। २३।।

तच्छब्दं सा निशम्याथ पूर्वशब्दं बुबोध च।
जह्नुनाम्ना मुनीन्द्रेण हृता परमतेजसा॥ २४॥

यह शङ्खध्वनि सुनकर गङ्गा जी को वास्तविकता समझ में आयी कि पहले वाली शङ्खध्वनि परम तेजस्वी जह्नु ऋषि ने हमको वञ्चना देने के लिये की थी।। २४।।

ततः श्रुत्वा भगवती गङ्गा क्रोधान्विता मुने!
तस्याश्रमं प्लावयितुं ययौ वेगसमाश्रिता॥ २५॥

हे मुने! यह सुनकर भगवती गङ्गा क्रुद्ध होकर उस (जह्नु) के आश्रम को जलप्लावित करने के लिये वेग से उधर जाने लगीं।। २५।।

तज्ज्ञात्वा स मुनिश्चापि ब्रह्मतेजोबलेन च।
गण्डूषीकृत्य तां गङ्गां समस्तां निःपपौ हठात्॥ २६॥

यह जानकर वे मुनि भी स्वकीय ब्रह्मतेज के प्रताप से समस्त गङ्गा को एक कुल्ला (गण्डूष) भर बनाकर बलपूर्वक पी गये।। २६।।

ततश्च समभूच्छब्दो हाहेति दिवि सर्वतः।
क्षितौ च मनुजादीनां सर्वेषां प्राणिनां तथा॥ २७॥

मुनि द्वारा ऐसा किये जाते ही, आकाश में सब तरफ हा–हाकार मच गया। यही स्थिति पृथ्वी पर भी प्राणियों तथा मनुष्यों में भी हो गयी।। २७।।

रुरोद राजा दुःखार्तः पृथ्वी दुःखमवाप च।
दिशश्च व्याकुला आसन् म्लानतेजा दिवाकरः॥ २८॥

राजा को दुःख के कारण रोना आ गया। पृथ्वी को भी निःसीम पीड़ा हुई। दिशाएँ व्याकुल हो गयीं तथा सूर्य म्लान्त (धूलि से आवृत) हो गये।। २८।।

ततो रुदन्तं संवीक्ष्य राजानं भक्तवत्सला।
उवाच "शङ्खं भूयस्त्वं वादयस्व भगीरथ॥ २९॥
न मां संरक्षितुं शक्तः कोऽपि लोके महामते!
त्वच्छङ्खनिःस्वनाकृष्टमानसामतिवेगिनीम्" ॥ ३०॥

तब राजा को रोता हुए देखकर वह भक्तवत्सल गङ्गा यों बोली– "हे भगीरथ! तुम पुनः शङ्ख बजाओ। हे महामते! मुझे आपकी शङ्खध्वनि सुनने के बाद इस संसार में कोई बलपूर्वक रोक नहीं सकता"।। २९–३०।।

गङ्गयैवं समादिष्टो राजा हृष्टमनाः पुनः।
दध्मौ शङ्खं महाशब्दं क्षोभयन्धरणीतलम्॥ ३१॥

गङ्गा के द्वारा दिया गया यह आदेश सुनकर प्रसन्नचित्त राजा ने पृथ्वी को कँपाते हुए भयङ्कर शङ्खध्वनि की।। ३१।।

तच्छ्रुत्वा सा महादेवी जानू निर्भिद्य तस्य वै।
निःससार महावेगा सहसातितरङ्गिणी॥ ३२॥

उस शङ्खध्वनि को सुनने के साथ ही भगवती गङ्गा उस ऋषि की जङ्घा फोड़कर वेगपूर्वक बाहर निकल आयी।। ३२।।

ततो गङ्गातिवेगेन मुनिजङ्घाद् बहिर्गता।
मुनिश्चापि तदा ज्ञात्वा नत्वा स्तुतिमथाकरोत्॥ ३३॥

तब वह गङ्गा मुनि की जङ्घा से वेगपूर्वक बाहर आ गयीं। मुनि ने भी गङ्गा भगवती का प्रभाव जानकर उनको प्रणाम करते हुए उनकी यों स्तुति करना आरम्भ किया–।। ३३।।

गङ्गा–स्तुतिः

मुनि०— "मातस्त्वं परमासि शक्तिरतुला सर्वाश्रया पावनी,
लोकानां सुखमोक्षदाखिलजगत्सम्वन्द्यपादाम्बुजा।

न त्वां वेद विधिर्न वा स्मररिपुर्नो वा हरिर्नापरे,
सञ्जानन्ति शिवे महेशशिरसा मान्ये कथं वेद्म्यहम्॥ ३४॥

मुनि— हे माता! आप उत्कृष्ट एवं अतुलनीय शक्ति हैं। आप सबकी आश्रयस्थान हैं। आप पवित्र करने वाली हैं। लोगों को सुख एवं मोक्ष की दात्री हैं। समस्त जगत् आपके चरणकमलों की पूजा करता है। न आपका तत्त्व समग्रतया ब्रह्मा ने जाना, न भगवान् विष्णु ने, न शङ्कर ने, न किसी अन्य विशिष्ट देवता ने। हे देवि! आप की वास्तविकता भगवान् शङ्कर के मुख से ही सुनी जा सकती है, मेरे जैसे पामरजन क्या कह सकते हैं!।। ३४।।

किं तेऽहं प्रवदामि रूपचरितं यच्चेतसो दुर्गमम्,
पारावारविवर्जितं सुरधुनी ब्रह्मादिभिः पूजिता।
स्वेच्छाचारिणि संवितत्य करुणां स्वीयैर्गुणैर्मां शिवे,
पुण्यं त्वं तु कृतागसं शरणगं गङ्गे क्षमस्वाम्बिके॥ ३५॥

आप के रूप तथा चरित्र का मैं क्या वर्णन करूँ! जो कि मन या बुद्धि से दुरधिगम है। अथ च जिसका कोई आदि अन्त भी नहीं जान सकता। आप देवनदी हैं, ब्रह्मा आदि विशिष्ट देवता भी आपको पूजनीय समझते हैं। हे स्वेच्छाचारिणि! हे शिवे! आप अपने सात्त्विक गुणों से स्वकीय करुणा को मुझ पर डालिये। मुझ पापी शरणागत को, हे अम्बिके! आप क्षमा करें।। ३५।।

धन्यं मे भुवि जन्म कर्म च तथा धन्यं तपो दुष्करं,
धन्यं मे नयनं यतस्त्रिनयनाराध्यां दृशा लोकये।
धन्यं मत्करयुग्मकं तव जलं स्पृष्टं यतस्तेन वै,
धन्यं मत्तनुरप्यहो तव जलं तस्मिन् यतः सङ्गतम्॥ ३६॥

हे त्रिनयनाराध्या! आज मेरा इस लोक में जन्म, मेरा कर्म, मेरा चिरकाल से आज तक किया दुष्कर तप, मेरे ये नेत्र— सब कुछ धन्य और सफल हुए कि आज आपका दर्शन हो गया। मेरे ये दोनों हाथ तथा मेरा यह शरीर भी धन्य हो गया कि जिससे आज आप के पवित्र जल का स्पर्श हो पाया!।। ३६।।

नमस्ते पापसंहर्त्रि हरमौलिविराजिते!
नमस्ते सर्वलोकानां हिताय धरणीगते॥ ३७॥

हे पापहर्त्रि! हे हर के मस्तक पर विराजनेवाली, हे सब प्राणियों के हित के लिये धरणी पर आने वाली आपको प्रणाम है।। ३७।।

स्वर्गापवर्गदे देवि गङ्गे पतितपावनि!
त्वामहं शरणं यातः प्रसन्ना मां समुद्धर''॥ ३८॥

हे स्वर्ग, अपवर्ग (मोक्ष) को देने वाली! हे देवि गङ्गे! हे पतितपावनि! मैं आपकी शरण में आया हूँ। मुझ पर आप प्रसन्न होइये।। ३८।।

श्रीमहादेव०— एवं स्तुता मुनीन्द्रेण गङ्गा तं मुनिसत्तमम्।
दिव्यरूपधरोवाच सुप्रसन्नमुखाम्बुजा॥ ३९॥

श्रीमहादेव जी— यों जब उस मुनि ने देवी की स्तुति की तो देवी उस पर प्रसन्न हो गयी, तथा उसने दिव्य रूप धारणकर प्रसन्नमुख से यों कहा—।। ३९।।

गङ्गोवाच— ''अहं तव सुता तात यतस्त्वद्देहनिर्गता।
तव नास्त्यपराधोऽत्र मुने त्वं सुस्थिरो भव॥ ४०॥

गङ्गा— हे तात! मैं तो आपकी पुत्री हूँ; क्योंकि मैं आपके देह से निकली हूँ। हे मुने! आप का कोई अपराध नहीं है। आप शान्त होइये।। ४०।।

अद्यप्रभृति मे नाम जाह्नवीत्यभवत्पितः!
कीर्तिस्ते हि मुनिश्रेष्ठ लोके ख्याता भविष्यति॥ ४१॥

हे पिता! आज से मेरा एक नाम *'जाह्नवी'* भी होगा। इससे हे मुनिवर! आप की जगत् में कीर्त्ति फैलेगी।। ४१।।

ये स्मरिष्यन्ति लोकेऽत्र जाह्नवीति सकृन्मुने!
न तेषां प्रभविष्यन्ति पापानि दुःखमेव वा॥ ४२॥

हे मुने! लोक में जो भक्तजन एक बार भी 'जाह्नवी' इस नाम का उच्चारण करेंगे उन पर न किसी पाप का प्रभाव होगा, न दुःख का ही।। ४२।।

त्वं च मे परमो भक्तस्तवैव चरितं च ये।
स्मरिष्यन्ति मुनिश्रेष्ठ तेषां तुष्टा ह्यहं तदा''॥ ४३॥

तुम मेरे परम भक्त हो, अतः तुम्हारे चरित्र को भी जो स्मरण करेंगे, हे मुनिश्रेष्ठ! उन पर मैं सदा प्रसन्न रहूँगी।। ४३।।

श्रीमहादेव०— एवमाभाष्य बहुधा गङ्गा तं मुनिसत्तमम्।
पूजिता तेन सद्भक्त्या गन्तुमिच्छुर्महामतिम्।
राजानमब्रवीद्वाक्यं पुण्यकीर्तिं भगीरथम्॥ ४४॥

श्रीमहादेव जी— इस प्रकार भगवती गङ्गा ने उस मुनिवर की बहुधा प्रशंसा कर, उसकी भक्तिपूर्वक पूजा कर, पुण्यकीर्ति, महामति राजा भगीरथ से यह कहा—।। ४४।।

गङ्गा०— "त्वया सम्प्रार्थिता तात त्यक्त्वा विष्णुशरीरकम्।
आगताहं महीपृष्ठं तेनैव वशगा तव॥ ४५॥

गङ्गा— "हे तात! तुम्हारे द्वारा प्रार्थना किये जाने पर, मैं विष्णुशरीर छोड़कर, तुम्हारे अधीन होकर इस धरणीतल पर आयी हूँ।। ४५।।

प्राच्यामहं समभवं कामाख्यादर्शनेच्छया।
तत्र प्रथममेवाभून्मुनिना सह वैरसम्॥ ४६॥

मैंने कामाख्या के दर्शन की इच्छा से पूर्व की तरफ मुख कर लिया था, परन्तु उससे पूर्व ही इन मुनि से यह वैरस्य (अरुचिकर विवाद) हो गया।। ४६।।

तत्त्वां पृच्छामि ते यत्र गमने वर्तते रुचिः।
तत्राहमनुयास्यामि यथारुचि तथा वद॥ ४७॥

अब मैं पुनः आप से पूछती हूँ, आप की जिधर चलने की रुचि हो, बताइये मैं उधर ही चलूँ"।। ४७।।

राजा०— "दक्षिणस्यां मुनेः शापान्मम पूर्वपितामहाः।
भस्मीभूतास्तु येषां त्वामुद्धाराय धरातलम्।
आनीतवानहं तेषामुद्धाराय द्रुतं व्रज"॥ ४८॥

राजा— "हे देवि! दक्षिण दिशा में मुनि के शाप से मेरे पितामह भस्मीभूत हुए पड़े हैं। उनके ही उद्धार के लिये मैं आपको धरातल पर लाया हूँ। अतः उनके उद्धार के लिये आप शीघ्र चलें।। ४८।।

श्रीमहादेव— इत्युक्त्वा तं महाबाहुः पुनः शङ्खमपूरयत्।
गङ्गापि प्रययौ पश्चाद्दक्षिणां दिशमेव हि॥ ४९॥

श्रीमहादेव जी— यह कहकर उन महाबाहु राजा ने पुनः शङ्खध्वनि की। उसे सुनकर भगवती गङ्गा दक्षिण दिशा की तरफ ही चल दीं।। ४९।।

ततो राजा कियद्दूरं गत्वा श्रान्तो भगीरथः।
विरराम रथोपस्थः सारथिश्च श्रमातुरः॥ ५०॥

तब राजा भगीरथ कुछ दूर यात्रा कर थक गये। सारथि की भी यही दशा हो गयी। अतः रथ रोक दिया गया और वे रथ पर ही विश्राम करने लगे।। ५०।।

एतस्मिन्नन्तरे जह्नोर्मुनेः पुत्री महामते!
पद्माऽभ्यवादयच्छङ्खं दिदृक्षुर्भगिनीं मुने॥ ५१॥

हे महामते! जह्नु मुनि की पुत्री पद्मा ने शङ्ख बजाकर अपनी बहन गङ्गा के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की।। ५१।।

तच्छ्रुत्वा चञ्चला देवी तच्छब्दं प्रति वेगिता।
वह्निकोणमुखी प्रागात् स्वल्पदूरं सुनिम्नगा॥ ५२॥

वह शङ्खध्वनि सुनकर वह गङ्गा देवी उसी ध्वनि की तरफ चल पड़ी। इस तरह वह अग्निकोण दिशा में कुछ ही दूर पहुँची होंगी कि।। ५२।।

राजा विलोक्य गच्छन्तीं गङ्गामन्यत्र तत्क्षणात्।
सारथिं कथयामास "चालयाश्वान् द्रुतं सखे॥ ५३॥

राजा ने उनको अन्यत्र जाते हुए देख लिया। उन्होंने सारथि से कहा—"देखो मित्र! ये गङ्गा देवी पुनः कहीं अन्यत्र जा रही हैं। अतः रथ के घोड़ों को वेग से चलाओ।। ५३।।

गङ्गान्यत्र निशम्यैव शङ्खध्मानविमोहिता।
सन्धावति यथा गौर्वा वत्सशब्दातिकर्षिता"॥ ५४॥

यह गङ्गा शङ्खध्वनि सुनने के साथ उधर ही चलने का मन बना लेती है, जैसे कोई सवत्सा गौ अपने वत्स की ध्वनि से आकृष्ट होकर उधर ही चल देती है"।। ५४।।

एवमुक्त्वा स राजापि द्रुतं शङ्खमवादयत्।
सारथिश्च रथं तूर्णं चालयामास नारद॥ ५५॥

हे नारद! इतना कहकर वे राजा भी बलपूर्वक शङ्खध्वनि करने लगे। साथ ही सारथि ने भी रथ को शीघ्रता से चलाया।। ५५।।

तदाकर्ण्य पुनर्देवी राज्ञस्तस्य रथानुगा।
समभूत्तेन पद्मातिक्रुद्धा जलमयी बभौ॥ ५६॥
सा तु पूर्वदिशं प्रायाद्विस्तीर्णसलिला नदी।
पुण्या वेगवती सिन्धुराजेनापि सुसङ्गता॥ ५७॥

वह शङ्खध्वनि सुनकर गङ्गा पुनः राजा के रथ के पीछे चलने लगी। इससे *पद्मा* अत्यधिक क्रुद्ध हुईं। उसने भी जलमयी बड़ी नदी का रूप धारण कर लिया और वह पूर्व की तरफ वेग से बहने लगीं तथा अन्त में जाकर समुद्र से मिल गयी।। ५६–५७।।

ततः सा तु महादेवी गङ्गा या पापहारिणी।
वेगं परममास्थाय दक्षिणां दिशमभ्यगात्॥ ५८॥

अन्वेषयन्ती सगरान्वयांस्तु समुद्रसान्निध्यमुपेत्य वेगिता।
धारासहस्त्रैः परितोऽस्य विस्तृता बभौ स तस्याः कलनिःस्वनाकुलः ॥ ५९ ॥

वह पापहारिणी गङ्गा महादेवी प्रबल वेग से बहती हुई दक्षिण दिशा की तरफ चल दी और वह सगरवंशजों को खोजती हुई समुद्र तक पहुँच गयी। वहाँ पहुँचकर वह हजारों धाराओं में विभक्त हो गयी और उससे मनोहर कलकल निनाद होने लगा।। ५९।।

सिन्धुस्तदाज्ञाय सुरेशपूजितां
गङ्गां महावेगवतीं समागताम्।
आगत्य धारां परिसंवितत्य वै
अभ्यर्चयत् पुष्पसुगन्धधूपकैः ॥ ६० ॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीगङ्गासमुद्रतीरप्राप्तिर्नाम
सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

समुद्र ने जब जाना कि महावेगवती गङ्गा वहाँ आ गयी हैं तो वह भी वहाँ आकर उन्हें पुष्प, गन्धद्रव्य एवं धूप दीप निवेदन कर उनकी पूजा करने लगा।। ६०।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
श्री गङ्गा का समुद्रतट-प्राप्तिवर्णनात्मक
सत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

[गङ्गा का विवरस्थल से पातालप्राप्ति-वर्णन]

सगरपुत्रों का उद्धार

श्रीमहादेव०— ततः सा सिन्धुना सङ्गं समवाप्य महामुने!
परमं मोदमापन्ना विवरं समुपेत्य च।
पातालमुपसङ्गम्य कपिलस्यान्तिकं ययौ॥ १॥
कपिलस्त्वथ विज्ञाय गङ्गां देवादिदुर्लभाम्।
आगतां लोकभाग्येन पाद्याद्यैः समपूजयत्॥ २॥
तेन सम्पूजिता गङ्गा प्रत्युवाच महामुनिम्॥ ३॥

श्रीमहादेवजी— तब वे गङ्गादेवी समुद्र से सङ्गम पाकर बहुत प्रसन्न होते हुए विवर तक पहुँच कर पाताल जाकर कपिलमुनि के समीप पहुँची। कपिलमुनि ने जब देवदुर्लभ गङ्गादेवी का आगमन जाना तो उन्होंने इस बात को प्राणियों का सौभाग्य समझा और अर्घ्य पाद्य आदि से उनकी पूचा–अर्चना की। उस पूजा–अर्चना के बाद गङ्गा देवी ने महामुनि से पूछा–।। १– ३।।

"मुने ब्रूहि द्रुतं कुत्र सगरा भस्मरूपिणः"।
ततः सन्दर्शयामास मुनिः सगरसन्ततीः॥ ४॥

"हे मुने! कृपया मुझे शीघ्र ही यह बताइये कि सगरपुत्रों की भस्म कहाँ है?" यह सुनकर मुनि ने राजा सगर की सन्ततियों की भस्म दिखा दी।। ४।।

दृष्ट्वा गङ्गापि तद्भस्म आत्मानं प्रापयत् क्षणात्।
प्लावयामास वेगेन सर्वतो भस्मसात्कृतान्।
सगरान् सरितां श्रेष्ठा गङ्गा त्रैलोक्यगामिनी॥ ५॥

गङ्गा देवी ने यह भस्म देखकर क्षणभर में ही स्वयं को वहाँ पहुँचाया। तथा उन भस्मीभूत सगरपुत्रों को अपने पवित्र जल से आप्लावित कर दिया।। ५–६।।

तत्क्षणात् सगरास्ते तु दिव्यरूपधराऽभवन्।
अपूर्वं रथमास्थाय ब्रह्मलोकमुपागमन्॥ ६॥

पितृणां निष्कृतिं दृष्ट्वा राजा परमहर्षितः।
ननर्त स रथोपस्थे जय गङ्गेति संस्तुवन्॥ ७॥
दध्मौ शङ्खं महाशब्दं रोमाञ्चितकलेवरः।
तेजस्वी तरुणादित्यसन्निभो राजवन्दितः॥ ८॥

तत्क्षण वे सगरपुत्र दिव्यरूपधारी हो गये तथा वे सभी सगरपुत्र दिव्यरथ में बैठकर ब्रह्मलोक पहुँचे। उधर पूर्वजों का उद्धार देखकर राजा भगीरथ भी अत्यधिक प्रमुदित हुए। वह प्रसन्नता से रथ के पास ही खड़े होकर नाचने लगा और गङ्गा देवी का जय–जयकार किया, तथा रोमाञ्चितकलेवर हुआ। उस समय राजा तेजःसम्पन्न, बालसूर्य के समान प्रदीप्त एवं राजवन्दित लग रहा था।। ६–८।।

गङ्गा तद्ध्वनिमाकर्ण्य महावेगं समाश्रिता।
विवरद्वारतो भस्म मर्त्यलोकमुपानयत्॥ ९॥
धारानुसंस्थिता चैका पातालेऽपि सुनिर्मला।
ख्याता भोगवती सा तु सर्वलोकफलप्रदा॥ १०॥
सा तथा क्रमतो गत्वा कारुण्यं जलमाविशत्।
ब्रह्माण्डं भासते यत्र मुने शतसहस्रशः॥ ११॥

उसने शङ्खनाद किया। उस नाद को सुनकर गङ्गाजी वेगपूर्वक वहाँ आयी तथा विवरद्वार से सगरपुत्रों की भस्म को मर्त्यलोक में पहुँचाया। साथ ही अपनी एक निर्मल जलधारा पाताल में भी छोड़ दी। हे मुने! यह सर्वलोकफलप्रदा जलधारा *'भोगवती'* कहलायी। फिर वह गङ्गा देवी क्रमशः आगे बढ़ती हुई करुणासागरजल में जा मिली, जहाँ लाखों ब्रह्माण्ड प्रकाशमान हैं।। ९–११।।

भगीरथस्तु सम्पूज्य गङ्गां सागरसङ्गताम्।
प्रणम्य स्वपुरं प्रायात् प्रसन्नात्मा महीश्वरः॥ १२॥

उधर अन्त में, राजा भगीरथ भी सागर में मिली गङ्गा देवी की विधिपूर्वक पूजाकर पुनः प्रसन्न होते हुए अपनी राजधानी में आ गये।। १२।।

एवं भगवती गङ्गा विष्णुदेहकृतालया।
हिताय सर्वभूतानां पृथिव्यां समुपागमत्॥ १३॥

इस तरह गङ्गा भगवती, जिन्होंने विष्णु के शरीर में अपना आवास बना रखा था, सभी प्राणियों के हित के लिये पृथ्वी पर अवतरित हुईं।। १३।।

गङ्गावतरणाख्यान का माहात्म्य

य इदं पुण्यमाख्यानं गङ्गावतरणं क्षितौ।
पठेद्वा पाठयेद्वापि तस्य मुक्तिः करे स्थिता॥ १४॥

जो इस लोक में इस पवित्र 'गङ्गावतरण' आख्यान का पाठ करेगा या दूसरें को सुनायगा उसको अपनी मुक्ति हस्तामलकवत् ही समझनी चाहिये।। १४।।

आयुर्वृद्धिर्भवेत्तस्य यशोवृद्धिश्च जायते।
सर्वत्र लभते सौख्यं मङ्गलं सर्वतो भवेत्॥ १५॥

उसकी इस पाठ के प्रभाव से आयु एवं यश—दोनों में वृद्धि होगी। वह सर्वत्र, सब अवस्थाओं में, सुख एवं सौभाग्य प्राप्त करेगा।। १५।।

पितृश्राद्धदिने विप्रसन्निधौ भक्तितत्परः।
प्रपठेद्य इदं तस्य पितरः परमां गतिम्।
समुपायान्ति सन्तृप्ताः पापिनोऽपि महामते॥ १६॥

पितृश्राद्ध के दिन जो इस आख्यान का भक्तिपूर्वक. ब्राह्मण के समीप पाठ करेगा उसके पूर्वज परम गति को प्राप्त करेंगे। हे महामते! उसके पापी पूर्वज भी इस पाठ—श्रवण के प्रभाव से सन्तृप्त होते हुए परमगति को प्राप्त करेंगे।। १६।।

अकालेऽप्यथवाऽदेशे कृतं दम्भाश्रितैरपि।
पितृणां परमप्रीतिकारणं तद्भवेद् ध्रुवम्॥ १७॥

अकाल के समय या कुत्सित देश में या दर्पपूर्वक किया गया इसका पाठ भी पूर्वजों के लिये उत्कृष्ट प्रीति का ही कारण बनेगा।। १७।।

एकादशीदिने भक्त्या यः पठेत् प्रयतो नरः।
तस्य गङ्गाप्रसादेन सर्वसिद्धिः प्रजायते॥ १८॥

एकादशी के दिन जो पुरुष व्यवस्थित होकर इस आख्यान का पाठ करेगा उसको महादेवी गङ्गा की कृपा से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होंगी।। १८।।

अतुलं वर्धते सौख्यं पुत्रदारादिसङ्कुलम्।
गृहाश्रमं श्रिया युक्तं भवेद्देव्याः प्रसादतः॥ १९॥

उसको देवी की कृपा से पुत्र, पत्नी आदि सौभाग्ययुक्त गृहस्थाश्रम का सुखोपभोग मिलेगा।। १९।।

काश्यां यः प्रपठेदेतत्पुण्याख्यानं महामुने।
स साक्षादेव विश्वेशो लोकानां मोक्षदायकः।
तस्य सन्दर्शनात्पापी मुच्यते घोरपातकात्॥ २०॥

हे महामुने! जो भक्त *काशी में रहकर* इस पुण्याख्यान को पढ़ेगा वह साक्षात्, प्राणियों के मुक्तिदाता भगवान् शङ्कर का रूप धारण कर लेगा। इतना ही नहीं, उस पाठकर्ता के दर्शनमात्र से अन्य पापियों का भी उद्धार सम्भव है॥ २०॥

संक्रान्त्यां पौर्णमास्यां वा यः पठेदेतदुत्तमम्।
पुण्याख्यानं स चाप्नोति वाजिमेधफलादिकम्॥ २१॥

संक्रान्ति या पूर्णिमा के दिन जो इस उत्तम आख्यान का पाठ करेगा वह अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त करेगा॥ २१॥

गङ्गातीरं समभ्येत्य स्नात्वा नियममास्थितः।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि न तस्यास्ति समो भुवि॥ २२॥

पवित्र गङ्गा तट पर बैठकर स्नान कर, विधिपूर्वक जो इसे पढ़ेगा या सुनेगा, इस पृथ्वी पर उसकी सदृशता अन्य कोई नहीं कर पायगा॥ २२॥

लिखितं तिष्ठते यापि गेहे यस्यैतदुत्तमम्।
तेषां न प्रभवेत् क्वापि दौर्भाग्यं वा रिपुः क्वचित्॥ २३॥
आजन्म गङ्गास्नानस्य फलं चापि समुद्भवेत्॥ २४॥

जिसके घर में यह उत्तम आख्यान *लिखा हुआ* रहेगा, उसका न कोई शत्रु होगा, न कोई दौर्भाग्यसम्पन्न घटना उसके साथ घटेगी। इतना ही नहीं, उसे आजन्म गङ्गास्नान का पुण्यफल भी प्राप्त होगा॥ २३-२४॥

न तस्य ग्रहपीडा स्यान्न वा बन्धुवियोजनम्।
न व्याधिपीडनं वापि जायते शत्रुतो भयम्॥ २५॥

न उसको कोई ग्रहपीड़ा होगी, न बन्धु-बान्धव का असामयिक वियोग। न कोई रोगपीड़ा होगी, न किसी प्रकार का शत्रुभय॥ २५॥

गङ्गासमं क्षितौ तीर्थं विद्यते न महामुने!
तस्मादस्याः समाख्यानं महापुण्यतमं स्मृतम्॥ २६॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीगङ्गाविवरस्थलद्वारात्
पातालप्राप्तिर्नामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१॥

हे महामुने! इस भूमण्ड पर गङ्गा के समान अन्य कोई तीर्थ नहीं है। अतः इसका आख्यान (पढ़ने तथा सुनने में) महान् पुण्यफलदायक है ।। २६ ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में

गङ्गा का पाताल-प्राप्ति वर्णनरूप

एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।

बहत्तरवाँ अध्याय

[गङ्गामाहात्म्य-वर्णन]

श्रीमहादेव०— सेयं सुरधुनी पुण्या महापातकनाशिनी।
स्पर्शनाद्दर्शनाच्चापि निर्वाणफलदायिनी॥ १॥

श्रीमहादेवजी— ये देवनदी गङ्गा महापातकों का भी नाश करने वाली है। इसके (जल) स्पर्श एवं दर्शन से निर्वाणफल मिलता है।। १।।

इदानीं शृणु वक्ष्यामि माहात्म्यं मुनिसत्तम।
गङ्गाया द्रवरूपिण्याः संक्षेपेण समाहितः॥ २॥

हे मुनिवर! उन जलरूपिणी भगवती गङ्गा का माहात्म्य तुम स्वस्थचित्त होकर सुनो।। २।।

गङ्गानाममाहात्म्य

प्रातरुत्थाय यो गङ्गां हेलयापि नरः स्मरेत्।
न तस्याशुभभीतिस्तु विद्यते भुवनत्रये॥ ३॥
प्रवर्तते गृहे सम्पद्विनश्यन्त्यापदः क्षणात्।
पापानि संक्षयं यान्ति जन्मान्तरकृतान्यपि॥ ४॥

जो पुरुष प्रातः उठकर भगवती गङ्गा का परिहास में भी नाम स्मरण करता है उसे तीनों लोकों में किसी भी प्रकार के अशुभ का भय नहीं रहता। उसके घर में सम्पत्ति बढ़ने लगती है, विपत्ति से क्षणभर में छुटकारा मिलने लगता है, उसके पाप क्षीण होने लगते हैं, भले ही वे जन्मान्तर के ही क्यों न हों।। ३–४।।

भवन्ति च सुपुण्यानि चाक्षयानि महामते!
दुःस्वप्नदर्शने वापि विपत्तावतिदुर्गमे।
स्मृत्वा गङ्गां सकृन्मर्त्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ ५॥

हे महामते! उसके अक्षय सत्पुण्य बढ़ने लगते हैं। कोई भी मनुष्य दुःस्वप्न दिखायी देने पर, विपत्ति पड़ने पर या अतिदुर्गम यात्रापथ में यदि एक बार भी गङ्गा का नाम स्मरण कर लेता है तो वह उसमें आने वाली विपत्तियों से त्राण पा जाता है।। ५।।

क्रियारम्भे स्मरेद्देवीं गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्।
तदा सा सफला भूयाद्यथाविधि कृतापि च॥ ६॥

किसी भी कार्य को प्रारम्भ करते समय, त्रैलोक्यपावनी गङ्गा का नाम ले लेने पर, वह कार्य अवश्य ही सम्पन्न होता है।। ६।।

जपहोमादिसंसक्तः प्राकृतं यदि भाषते।
तदा स्मृत्वा सकृद् गङ्गां पुनः कर्म समाचरेत्॥ ७॥

जप या होम आदि पवित्र कार्य करते समय, यदि प्रमादवश किसी अपशब्द का प्रयोग हो जाय तो कर्ता पुरुष को गङ्गा का नाम लेने के बाद ही वह कार्य पुनः आरम्भ करना चाहिये।। ७।।

मुमुक्षुर्यत्र कुत्रापि यदि गङ्गामनुस्मरेत्।
तदा तन्मुक्तये गङ्गासन्निधौ वसते स्वयम्॥ ८॥

यदि कोई मुमुक्षु गङ्गा जी का नाम स्मरण करता है तो भगवती उसकी मुक्ति हेतु स्वयं वहाँ आकर उपस्थित हो जाती हैं।। ८।।

सर्वार्थसाधिनी गङ्गा सर्वपापप्रमोचिनी।
सर्वाशुभविहन्त्री च सर्वसम्पत्प्रदायिनी॥ ९॥

गङ्गा सभी अर्थों की साधिका है, सभी पापों से मुक्त कराती हैं, सभी अशुभों का विनाश करती हैं तथा सभी सम्पत्तियों की प्रदात्री हैं।। ९।।

स्वर्गापवर्गदा पुंसां प्रत्यक्षा प्रकृतिः स्वयम्।
यस्तां नैव स्मरेत्तस्य विफलं जीवनं स्मृतम्॥ १०॥

वह प्रकृति देवी साक्षात् स्वर्ग एवं अपवर्ग की देने वाली हैं। अतः जो उसका स्मरण नहीं करता उसका जीवन निष्फल ही समझिये।। १०।।

सर्वतीर्थकृतस्नानैः सर्वदेवाभिपूजनैः।
सर्वयज्ञतपोदानैः सर्वतीर्थाभिदर्शनैः॥ ११॥
सर्वाभिवन्द्यपादाब्जवन्दनैः स्तवनैरपि।
यथा न जायते पुण्यं तथा गङ्गास्मृतेर्भवेत्॥ १२॥

सब तीर्थों में स्नान करने से, सब देवताओं के पूजन से, सभी प्रकार के यज्ञ तप तथा दानकर्मों से, सब तीर्थों के मन्दिरों में दर्शन करने से, या सर्वपूज्यों की वन्दना से जो पुण्य उपलब्ध होता है, वह भगवती गङ्गा के नाम–स्मरणमात्र से हो जाता है।। ११–१२।।

नाम्नां सहस्रमध्ये तु सत्यं सत्यं महामुने!
भगवत्याः परं नाम गङ्गेति समुदीरितम्॥ १३॥

हे महामुने! पीछे हमने भगवती के जो सहस्रनाम गिनाये हैं, उनमें भगवती का एक उत्कृष्ट नाम 'गङ्गा' भी है।। १३।।

नीचोऽपि कथितः श्रेष्ठो गङ्गास्मृतिपरायणः।
प्रोक्तस्त्वनुत्तमो नीचो गङ्गास्मृतिपराङ्मुखः॥ १४॥

लोकव्यवहार में, उस नीच को भी 'श्रेष्ठ' ही कहा जाता है, जो गङ्गा का नाम स्मरण करता है। परन्तु यदि कोई अन्य बातों में श्रेष्ठ होते हुए भी गङ्गा का नाम स्मरण नहीं करता है तो वह वस्तुतः 'हीन' ही है।। १४।।

न गङ्गास्मरणं यत्र दिने समुपजायते।
तद्दिनं दुर्दिनं ज्ञेयं मेघच्छन्नं च दुर्दिनम्॥ १५॥

जिस दिन घर में गङ्गा का स्मरण न हो वही दिन वस्तुतः 'दुर्दिन' कहलाता है, मेघों से आवृत दिन को तो दुर्दिन व्यवहार में कह दिया जाता है।। १५।।

मिथ्याभाषणजं पापं परदाराभिसम्भवम्।
अवैधहिंसाजनितं सुरापानादिजं तथा॥ १६॥
अन्यच्च दुरितं किञ्चिद्यद्यदस्ति महामते!
तत्सर्वं विलयं याति गङ्गानामानुसंस्मृतेः॥ १७॥

हे महामते! मिथ्याभाषणजन्य पाप, परदाराओं से सम्भोगजन्य पाप, अवैध हिंसाजन्य पाप, सुरापानादि से जन्य पाप या ऐसा ही अन्य कोई पाप भी गङ्गा के नाम–स्मरणमात्र से नष्ट हो जाता है।। १६–१७।।

गङ्गा के उद्देश्य से की गयी यात्रा का माहात्म्य

गङ्गामुद्दिश्य यो गच्छेन्नरः प्रयतमानसः।
पदे पदेऽश्वमेधः स्याद्वाजपेयशतं तथा॥ १८॥

गङ्गा को लक्ष्य कर जो उनकी ओर समाहित चित्त से जाता है उसको पद पद पर अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। या सौ वाजपेय यज्ञ का फल होता है।। १८।।

नृत्यन्ति पितरः सर्वे गङ्गामुद्दिश्य गच्छताम्।
पापानि प्रपलायन्ते गर्हितान्यपि दूरतः॥ १९॥

गङ्गा के उद्देश्य से यात्रा करने वालों के सभी पूर्वज हर्ष से नाचने लगते हैं; क्योंकि उस यात्रा से उनके निन्दनीय पाप भी क्षीण होने लगते हैं।। १९।।

मुमूर्षुर्जाह्नवीयात्रां कुरुते यस्तु मानवः।
तं दृष्ट्वा दूरतो यान्ति यमदूता भयार्दिताः॥ २०॥

मरने की स्थिति में पहुँचा हुआ पुरुष भी यदि गङ्गा के उद्देश्य से

यात्रा करता है तो उसे देखकर यमदूत, दूर से ही डरकर भाग जाते हैं।। २०।।

देहावसानकं तस्य यत्र कुत्रापि सम्भवेत्।
तत्रैव मुक्तिर्विज्ञेया गङ्गायां तु विशेषतः॥ २१॥

गङ्गा के उद्देश्य से जाते हुए यात्री की यदि कहीं मार्ग में मृत्यु हो जाय तो उसकी वहीं मुक्ति समझनी चाहिये। गङ्गा के तट पर हो तो और भी अच्छा है।। २१।।

गङ्गामुद्दिश्य गच्छन्तं पथि भाग्यादुपस्थितम्।
आतिथ्यं कुरुते यस्तु तस्य पुण्याधिकं स्मृतम्॥ २२॥

गङ्गा के उद्देश्य से चलते यात्री का जो अतिथि सत्कार करता है उसका पुण्य अन्य पुण्यों से विशिष्ट होता है।। २२।।

प्रणमेच्चापि तं यस्तु विनयेनाभिभाषते।
सोऽपि पापात् प्रमुच्येत सत्यं सत्यं न संशयः॥ २३॥

गङ्गा के उद्देश्य से जाते हुए यात्री को जो प्रणाम करता है, या विनयपूर्वक उससे संवाद करता है वह भी पाप से मुक्त हो जाता है—इसमें कोई सन्देह नहीं।। २३।।

यस्तु मोहात्तिरस्कुर्यात् स पापात्मा तु नारद।
पच्यते नरके घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ २४॥

हे नारद! परन्तु जो पापी प्रमादवश ऐसे यात्री का तिरस्कार करता है, वह चौदह इन्द्रों के कार्यकाल (एक कल्प) तक, घोर नरक में वास करता है।। २४।।

कृतापराधो यदि वा भवेद् गङ्गानुगो जनः।
सोऽपि त्याज्यः क्षितीशेन न च दण्ड्यः कथञ्चन॥ २५॥

राजा का कोई अपराधी भी यदि गङ्गा के उद्देश्य से यात्रा कर रहा है, तो राजा भी उस अपराधी को अपराधमुक्त समझे तथा उसे किसी तरह का दण्ड न दे।। २५।।

गङ्गामुद्दिश्य सङ्गच्छन् श्रान्तो यस्य जलं पिबेत्।
कूपवापीतडागानां तस्य भाग्यं महत्तरम्॥ २६॥

गङ्गा के उद्देश्य से चलता हुआ यात्री यदि मार्ग में थककर किसी के द्वारा निर्मापित कूँए, तालाब या बावड़ी से अपने उपयोग हेतु जल ग्रहण करता है तो उस निर्माता का भी सौभाग्य ही समझना चाहिये।। २६।।

गङ्गायात्री को यानसुविधा का माहात्म्य

अशक्तो गमने यस्तु व्रजन्तं जाह्नवीं प्रति।
यानैः प्रस्थापयेद्वत्स तस्य पुण्यं निबोध मे॥ २७॥

हे वत्स! गङ्गा के उद्देश्य से जाता हुआ यात्री यदि मार्ग में अशक्त हो जाय तो उसके लिये यान की व्यवस्था करने वाला यात्री कैसा पुण्य प्राप्त करता है? उसे भी सुनो।। २७।।

पितरः परमां प्रीतिं प्राप्नुवन्ति च शाश्वतीम्।
पुण्यं च जायते तस्य पापं सर्वं विनश्यति॥ २८॥

(यान की सुविधा देने वाले) ऐसे पुरुष के पूर्वज परम हर्ष मानते हैं। तथा उसके पुण्य बढ़ते हैं और सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।। २८।।

अन्ते च मृत्युर्विज्ञेयो निश्चितं जाह्नवीजले।
पृथिव्यां परमा कीर्तिः सन्ततिः पुत्रपौत्रिकी।
शाश्वती जायते तस्य चान्ते गङ्गास्मृतिर्भवेत्॥ २९॥

और किसी भक्त यात्री की गङ्गा में स्नान करते समय मृत्यु हो जाय तो उसकी लोक में कीर्ति होती है। तथा उसकी पुत्र पौत्र आदि सन्तति–परम्परा बहुत लम्बी चलती है और अन्त में गङ्गा की स्मृति होती है।। २९।।

गङ्गादर्शनमात्रेण ब्रह्महापि नरः क्षणात्।
मुच्यते घोरपापेभ्यो मुने नास्त्यत्र संशयः॥ ३०॥

हे मुने! गङ्गा के दर्शनमात्र से ब्रह्महत्याकर्ता पुरुष भी घोर पापों से क्षण भर में मुक्त हो जाता है इसमें कोई संशय नहीं।। ३०।।

आगत्य प्रणमेद्देवीं यस्तु भक्त्या समाहितः।
शरीरं सार्थकं तस्य नृषु जन्म च सार्थकम्॥ ३१॥

जो यात्रा के अन्त में आकर भगवती गङ्गा को शुद्धचित्त से प्रणाम करता है उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। शरीर तथा मनुष्यजन्म भी सफल हो जाता है।। ३१।।

धन्याश्च पितरस्तस्य स तु धन्यतमः स्मृतः।
न तस्य विद्यते पापं नापि मृत्युभयं तथा॥ ३२॥

उसके पूर्वज तथा वह स्वयं धन्य होता है। उसका न कोई पाप शेष रह जाता है, न उसे मृत्युभय ही रहता है।। ३२।।

अतुलं लभते सौख्यं परत्र च महामते!
गङ्गायां जायते मृत्युर्गङ्गास्मृतिपुरःसरम्॥ ३३॥

हे महामति! जिसकी गङ्गा में मृत्यु होती है वह परलोक में अतुल ऐश्वर्य का उपभोग करता है उसको परजन्म में भी गङ्गा की स्मृति रहती है।। ३३।।

गङ्गादर्शन का माहात्म्य

दर्शनात् कृतकृत्याश्च गङ्गायाः सर्वदेवताः।
ऋषयश्च महात्मानो मानवानां तु का कथा॥ ३४॥

गङ्गा के दर्शन से सब देवता, ऋषि एवं महात्मा भी कृतकृत्य हो जाते हैं, फिर साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या कही जाय!।। ३४।।

सम्पर्केणापि यो गङ्गां सम्पश्यति महामते!
न सोऽपि यमदण्ड्यः स्यात् कृतपापसहस्रकः॥ ३५॥

हे महामते! किसी अन्य कारण से जाता हुआ भी कोई पापी गङ्गा के दर्शन कर लेता है तो वह भी यमदण्ड का भागी नहीं रह पाता, भले ही उसने हजार पाप किये हों।। ३५।।

सर्वान्तक व्याध का दृष्टान्त

अत्र ते शृणु वक्ष्यामि रहस्यमतिशोभनम्।
सेतिहासं मुनिश्रेष्ठ! गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्॥ ३६॥

हे मुनिवर! यहाँ मैं आपको एक मनोरम रहस्यमय ऐतिहासिक दृष्टान्त सुनाता हूँ, जिससे इस गङ्गा–माहात्म्य की विशेषता और अधिक स्पष्ट हो जायगी।। ३६।।

पुराऽऽसीदतिदुर्धर्षः शवरान्वयसम्भवः।
व्याधः परमपापात्मा नाम्ना सर्वान्तको बली॥ ३७॥

पहले एक दुर्धर्ष, शबरकुल में उत्पन्न, परमपापी सर्वान्तक नामक कोई बलवान् व्याध था।। ३७।।

आजीवं विनिहत्यैव प्राणिनः स बहून् बलात्।
मांसादिविक्रयं कृत्वा स्वकुटुम्बमबीभरत्॥ ३८॥

वह जीवनपर्यन्त बहुत से निरीह प्राणियों को हठात् मारकर उनके माँस–विक्रय से अपने कुटुमब का भरण–पोषण करता था।। ३८।।

परस्त्रीगमनं चक्रे परद्रव्यापहारणम्।
न तु धर्माश्रितं कर्म कृतं तेन दुरात्मना॥ ३९॥

परस्त्रीगमन एवं परद्रव्य का अपहरण उसके लिये साधारण बात थी। उस दुष्ट ने समस्त जीवन में कोई धर्माचरण किया ही नहीं।। ३९।।

स ह्येकदा वनं गत्वा हत्वाऽनेकविधान् पशून्।
नद्यास्तीरं समासाद्य भ्रान्तश्चक्रेऽवगाहनम्॥ ४०॥

वह एक बार वन में जाकर बहुत से पशुओं को मारकर, नदी किनारे जाकर उसमें स्नान करने लगा।। ४०।।

एतस्मिन्नन्तरे राजा चित्रसेनो नृपोत्तमः।
मृगयार्थं समायातस्तस्मिन्नेव हि कानने॥ ४१॥

इसी बीच प्रसिद्ध राजा चित्रसेन उसी वन में आखेट खेलने हेतु आया।। ४१।।

स ददर्श दुरात्मानं व्याधं सर्वान्तकाह्वयम्।
मांसभारसमायुक्तं स्वपुरे गमनोद्यतम्॥ ४२॥

उस राजा ने सर्वान्तक नामक उस दुष्ट व्याध को बहुत से मरे हुए पशुओं को लेकर पुनः अपने नगर में जाते हुए देखा।। ४२।।

एतस्मिन्नेव काले तु राजा दृष्ट्वा मृगोत्तमम्।
बाणं धनुषि सन्धाय लक्षं चक्रे महाबलः॥ ४३॥

इसी बीच राजा को एक अच्छा मृग दिखायी दिया। उस वलिष्ठ राजा ने उसको देख कर उस पर बाण चलाने की तत्परता दिखायी।। ४३।।

मृगस्तु वीक्ष्य राजानमुद्यतास्त्रं महौजसम्।
प्राभ्यधावत वेगेन राजा बाणं समाहिनोत्॥ ४४॥

मृग ने जब देखा कि राजा मुझ पर बाण चलाने को उद्यत हैं तो वह वेग से भागने लगा। भागते हुए मृग पर राजा ने बाण छोड़ा।। ४४।।

तेन विद्धो मृगः सोऽपि तस्य व्याधस्य सन्निधिम्।
उपागमन्मुनिश्रेष्ठ स्रवद्रक्तपरिप्लुतः॥ ४५॥

हे मुनिवर! उस बाण से विद्ध होकर मृग उस व्याध के समीप आकर मरने की स्थिति में पहुँच गया।। ४५।।

व्याधस्त्वदृष्ट्वा राजानं मृगं दृष्ट्वा च विह्वलम्।
पाशेन बद्ध्वा जगृहे राजा तच्च व्यलोकयत्॥ ४६॥

व्याध ने राजा को वहाँ न देखकर तथा मृग को आहत देखकर उसे रस्सी से बाँधकर, पकड़ लिया। राजा ने उसको ऐसा करते देख लिया।। ४६।।

ततः स राजाऽप्यागत्य क्रुद्धस्तं पापचेतसम्।
बबन्ध बलवान् पाशैर्विविधैर्मुनिसत्तम!॥ ४७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तब शीघ्र ही क्रुद्ध राजा ने वहाँ आकर उस पापी को रस्सियों से बन्धवा लिया।। ४७।।

ततस्तु मृगमादाय राजा तं चापि पापिनम्।
स्वपुरं प्रति निर्यातः समारुह्य हयोत्तमम्॥ ४८॥

तब राजा ने वह मृग लेकर, तथा उस पापी व्याध को भी साथ लेकर घोड़े पर चढ़कर अपने नगर की तरफ प्रस्थान किया।। ४८।।

तत्र नावं समारुह्य गङ्गां राजा समातरत्।
व्याधो ददर्श तां देवीं तदा सम्पर्कतो मुने॥ ४९॥

हे मुने! मार्ग के बीच गङ्गा नदी पड़ने पर व्याध एवं मृग सहित राजा नाव पर चढ़कर इस पार आया। व्याध ने इसी प्रसङ्ग में भगवती गङ्गा के दर्शन किये।। ४९।।

ततो राजा समागत्य पुरं तं पापचेतसम्।
कारागारेऽतिसंक्रुद्धः स्थापयामास दुःसहे॥ ५०॥

तब राजा ने अपने नगर में आकर उस पापी को कठोर कारागार में डाल दिया।। ५०।।

ततः काले गते तत्र व्याधः सर्वान्तकाह्वयः।
ममार बद्ध्वा तं पाशैर्यमदूता उपागमन्॥ ५१॥

समय बीतने पर वह सर्वान्तक व्याध मर गया और यम के दूत उसे बाँधकर ले चले।। ५१।।

एतस्मिन्नेव काले तु शिवदूताः शिवाज्ञया।
निर्जित्य यमदूतांस्ताञ्छिवलोकमुपानयन्॥ ५२॥

इसी समय भगवान् शङ्कर की आज्ञा से शङ्कर के दूत वहाँ पहुँच गये। उन यमदूतों को पराजित कर उसे शिवलोक में ले गये।। ५२।।

ततस्ते निर्जिता दूता धर्मराजमुपेत्य च।
न्यवेदयन् यथावृत्तं शिवदूताभिचेष्टितम्॥ ५३॥

तब हारे हुए यमदूतों ने धर्मराज के पास जाकर, शिवदूतों के साथ हुए अपने पराजय को सुनाया।। ५३।।

तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्तु चित्रगुप्तं महामतिम्।
पप्रच्छ "एष व्याधः किं नीतः सर्वेशसन्निधिम्॥ ५४॥

वह सब सुनकर यमराज ने महामति चित्रगुप्त से पूछा— "यह व्याध शिवलोक में कैसे पहुँचा?।। ५४।।

पश्यास्य विद्यते पापं पुण्यं वापि तथा कियत्।
विना पापं न पश्यामि पुण्यं किञ्चिदहं पुनः"॥ ५५॥

इसका पाप या पुण्य कितना है? मुझे तो ऐसा लगता है कि इसने केवल पापों के अतिरिक्त कोई पुण्य नहीं किया"।। ५५।।

ततः स चित्रगुप्तस्तु धर्माधर्मविवेचकः।
न्यवेदयच्च सम्पर्काद्गङ्गादर्शनमुत्तमम्।
सर्वपापहरं पुण्यं महापातकनाशनम्॥ ५६॥

तब उस धर्माधर्मविवेचक चित्रगुप्त ने बताया कि नगर आते समय इसने जो नाव से चढ़कर गङ्गा पार की थी, उसी प्रसङ्ग में इसने गङ्गा जी के दर्शन किये थे, जो कि सर्वपापहर है। पुण्यप्रद तथा महापातकनाशक भी है।। ५६।।

धर्मराज द्वारा गङ्गा की प्रशंसा

तच्छ्रुत्वा विस्मयं प्राप्य धर्मराजो महामते।
गङ्गां प्रणम्य दूताँस्तानिदं वचनमब्रवीत्॥ ५७॥

महामते! धर्मराज ने यह सुनकर आश्चर्य करते हुए गङ्गा को प्रणाम कर अपने दूतों से यह कहा—।। ५७।।

धर्मराज०—"दूताः पश्यन्ति ये गङ्गां सम्पर्केणातिपावनीम्।
न ते कदाचिन्मे दण्ड्या अपि पापशतैर्युताः॥ ५८॥

धर्मराज— "दूतो! सुनो। जो प्राणी मर्त्यलोक से मर कर यहाँ आता है, उसने यदि कभी किसी भी प्रसङ्ग में गङ्गा जी के दर्शनमात्र भी किये हैं तो ऐसे लोग किसी भी दशा में हमारे लिये दण्डनीय नहीं हैं, भले ही उन्होंने सैकड़ों पाप क्यों न किये हों!।। ५८।।

ये स्मरन्ति सकृद् गङ्गां देवीं पतितपावनीम्।
न ते कदाचिन्मे दण्ड्या अपि पापशतैर्वृताः॥ ५९॥

जो पतितपावनी गङ्गा को एक बार भी स्मरण करते हैं वे मेरे लिये कभी दण्डनीय नहीं हैं, भले ही उन्होंने सैकड़ों पाप किये हों।। ५९।।

ये ध्यायन्ति सदा भक्त्या देवीं तां द्रवरूपिणीम्।
न तेऽपि मम दण्ड्या वै कृतपापशता अपि॥ ६०॥

जो पतितपावनी गङ्गा का एक बार भी भक्तिपूर्वक ध्यान करते हैं, वे..............।। ६०।।

येऽभ्यर्चन्ति तु तां गङ्गां विनिमज्जन्ति वाम्भसि।
न ते कदाचिन्मे दण्ड्या महापातकिनो जनाः ॥ ६१ ॥

जो पतितपावनी गङ्गा की एक बार भी पूजा करते हैं या इसमें स्नान करते हैं, वे .... ।। ६१ ।।

गङ्गायां त्यजतां देहमहमाज्ञावशः स्वयम्।
ते नमस्याः सुरेन्द्राणां दण्डशङ्कास्ति तत्कुतः" ॥ ६२ ।।

जो पतितपावनी गङ्गा में देहत्याग करते हैं, मैं स्वयं उनकी आज्ञा के वश में हूँ। वे तो देवराज इन्द्र द्वारा भी प्रणम्य हैं, उन्हें दण्ड देने की बात तो बहुत दूर है!" ।। ६२ ।।

श्रीमहादेव०— इत्येवं विनिशम्य ते यमभटा गङ्गाप्रभावं मुने,
वक्त्राच्छ्रीयमराजधर्मविदुषो जग्मुः परं विस्मयम्।
अध्यायं प्रपठेत् समाहितमना यश्चैनमत्युत्तमं,
नो भीतिः खलु विद्यते यमभटात्तस्योरुपापादपि ॥ ६३ ॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीगङ्गामाहात्म्यकथने
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

श्रीमहादेव जी— इस प्रकार, हे मुने! वे यमदूत यमराज के मुख से गङ्गा का प्रभाव सुनकर अत्यधिक विस्मित हुए।

जो श्रद्धालु पुरुष समाहित चित्त होकर इस अध्याय का पाठ करेगा उसको अधिक से अधिक बड़ा पाप करने पर भी यमराज से कोई भय नहीं होता ।। ६३ ।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
गङ्गामाहात्म्यवर्णन रूप
बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

[गङ्गामाहात्म्यवर्णन]

श्रीमहादेव०— गङ्गायां तु कृतस्नानो मुच्यते घोरपातकात्।
ब्रह्महा चैव गोघ्नश्च सुरापो गुरुतल्पगः॥ १॥

श्रीमहादेव जी— गङ्गा में स्नान करने वाला पुरुष घोर से घोर पाप से भी मुक्त हो जाता है। भले ही वह ब्रह्महत्याकारक हो या गोहत्याकारक। मद्य पीता हो या गुरु की शय्या पर सोया हो।। १।।

पतितोऽपि महादेव्याः प्रसादान्मुनिसत्तम!
विना मन्त्रादिभिश्चापि सद्भक्तिविधुरोऽपि च॥ २॥
सकृत्स्नात्वा नरो ज्ञानादज्ञानादपि मुच्यते।
अनन्तं जायते पुण्यमक्षयं सप्तजन्मजम्॥ ३॥

हे मुनिवर! पतित से पतित पुरुष भी महादेवी के कृपा–प्रसाद से, विना किसी मन्त्रजाप के, विना किसी भक्तिभाव के एक बार जाने अनजाने गङ्गा स्नान करने वाले पुरुष को सात जन्म तक अक्षय एवं अनन्त (असीम) पुण्य प्राप्त होता है।। २–३।।

वित्तं परमसौख्यं च जायते जाह्नवीतटे।
विध्युक्तेन कृतस्नाने भक्त्या गङ्गाजले मुने।
निर्धूतपापः परमं पदं याति नरोत्तमः॥ ४॥

हे मुने! जाह्नवीतट पर भक्तिपूर्वक जाकर, यथाविधि गङ्गास्नान करने वाला पुरुष, धन सम्पत्ति एवं परम सौख्य को प्राप्त करता है तथा ऐसा श्रेष्ठ पुरुष पापरहित होकर उत्कृष्टतम पद को प्राप्त करता है।। ४।।

अन्यत्रापि स्मरन् गङ्गां यदि स्नानं समाचरेत्।
तत्रापि लभते पुण्यं गङ्गास्नानजतुल्यकम्॥ ५॥

अन्यत्र भी यदि कोई पुरुष, गङ्गा का स्मरण करता हुआ, साधारण जल से ही स्नान करता है तो वह भी गङ्गा स्नान के समान ही फल प्राप्त करता है।। ५।।

प्रातः गङ्गास्नान का फल

प्रातः स्नानं तु यः कुर्यात् प्रत्यहं जाह्नवीजले।
स पुण्यात्मा मुनिश्रेष्ठ साक्षाच्छम्भुरिवापरः।

तं दृष्ट्वा पापिनो पापान्मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥ ६ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जो पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल गङ्गास्नान करता है उस पुण्यात्मा को दूसरा शङ्कर ही समझना चाहिये। उस प्रातःस्नायी पुरुष के दर्शन कर पापीजन भी पाप से मुक्त हो जाते हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं।। ६।।

तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधानतः।
यः कुर्याज्जाह्नवीतोये तस्य पुण्यं निबोध मे ॥ ७ ॥

तुला, मकर एवं मेष राशि पर सूर्य के होने पर, विधिपूर्वक गङ्गास्नान करने वाले को जो पुण्य होता है उसका पुण्यफल मुझसे सुनो।। ७।।

उद्धृत्योभयवंश्यानां पितॄणां बहुकोटिशः।
स्वयं शङ्करतामेति देहं त्यक्त्वा न संशयः ॥ ८ ॥

ऐसा पुरुष माता तथा पिता— दोनों के वंशों के पूर्वजों के पापसमूह को उखाड़कर, देहपात के बाद वह स्वयं शङ्करत्व को प्राप्त कर लेता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।। ८।।

महायज्ञसहस्राणि व्रतपूजाशतानि च।
नार्हन्ति जाह्नवीस्नानकलामेकां महामुने ॥ ९ ॥

हे महामुने! हजारों महायज्ञ तथा सैकड़ों व्रत-पूजाविधान भी गङ्गास्नान के एक भाग की तुलना नहीं कर पाते।। ९।।

माघस्य शुक्लसप्तम्यां गङ्गायामरुणोदये।
स्नात्वा प्रमुच्यते प्राणी जन्मसंसारबन्धनात् ॥ १० ॥

माघ शुक्ल सप्तमी के दिन, अरुणोदय के समय, गङ्गास्नान करने वाला प्राणी जन्म-मरण के भवबन्धन से छुटकारा पा जाता है।। १०।।

तस्मिन्नेव दिने सूर्यं पूजयन् जाह्नवीतटे।
मुक्तो भवेन्महारोगाद्रोगी सत्यं न संशयः ॥ ११ ॥

उसी दिन, गङ्गातट पर सूर्य की पूजा करता हुआ पुरुष बड़े से बड़े रोग से भी मुक्त हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं।। ११।।

पौर्णमास्यां नरः स्नात्वा विधिवज्जाह्नवीजले।
निर्धूतपापः सायुज्यमन्ते प्राप्नोति शम्भुना ॥ १२ ॥

पूर्णिमा के दिन, विधिपूर्वक गङ्गाजल में स्नान करके कोई भी पुरुष क्षीणपाप होकर अन्त में भगवान् शङ्कर के सायुज्य स्थिति को प्राप्त कर लेता है।। १२।।

कार्त्तिक्यां पौर्णमास्यां तु स्नात्वा दृष्ट्वा च जाह्नवीम्।
महापातकसङ्घैस्तु मुच्यते नात्र संशयः॥ १३॥

कार्तिक पूर्णिमा के दिन, गङ्गा में स्नान कर या उसके दर्शन कर, महापातकों से भी छुटकारा पा जाता है– इसमें कोई सन्देह नहीं।। १३।।

चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां स्नात्वा विधिविधानतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम्॥ १४॥

चैत्रकृष्ण त्रयोदशी के दिन, विधि–विधान से गङ्गा स्नान कर, सभी पापों से विमुक्त होकर, मनुष्य परम पद को प्राप्त कर लेता है।। १४।।

आरोग्यमतुलैश्वर्यं यदन्यच्च मनोगतम्।
सर्वं सम्पद्यते गङ्गाप्रसादान्मुनिपुङ्गव॥ १५॥

हे मुनिवर! आरोग्य, अतुलित ऐश्वर्य या अन्य जो भी मन की इच्छा हो, वह सब गङ्गा की कृपा से उपलब्ध हो जाता है।। १५।।

अन्यच्चापि दिने यस्मिन् कस्मिन्नपि महामते!
स्नात्वा पापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम्॥ १६॥

हे महामते! किसी दूसरे साधारण दिन भी गङ्गास्नान करके पापमुक्त होकर परम पद प्राप्त किया जा सकता है।। १६।।

सन्तर्पयन्ति गङ्गायां पितृन् ये तु समाहिताः।
तेषां तु पितरो यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥ १७॥

जो पुरुष समाहित होकर पूर्वजों के लिये गङ्गा जी में तर्पण करते हैं उनके वे पूर्वज निर्विघ्न रूप से ब्रह्मलोक में पहुँच जाते हैं।। १७।।

अपवाद

उद्धृत्य गङ्गासलिलं नान्यत्र तर्पयेत्पितृन्।
तर्पयेद्यदि मोहेन प्रायश्चित्ती भवेत्तदा॥ १८॥

गङ्गाजल लेकर अन्यत्र जाकर पूर्वज पितरों का तर्पण नहीं करना चाहिये। जो प्रमादवश करे तो उसको इस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिये।। १८।।

गङ्गातट पर श्राद्धकर्म

पितृन्सन्तर्पयेद्यो हि गङ्गायां सुसमाहितः।
स एव प्रोच्यते पुत्रो नान्यः पुत्रः समुच्यते॥ १९॥

जो पुरुष समाहितचित्त होकर गङ्गा में पितरों का तर्पण करता है वही वास्तविक पुत्र है, दूसरा कोई पुत्र नहीं कहलाता।। १९।।

गङ्गातीर्थं समासाद्य श्राद्धं कुर्याच्च तर्पणम्।
पितृणां तृप्तये मर्त्यस्त्वन्यथा नरकं व्रजेत्॥ २०॥

गङ्गातीर्थ पर आकर पितरों की तृप्ति के लिये श्राद्ध एवं तर्पण अवश्य करना चाहिये। अन्यथा उसको नरक में जाना पड़ता है।। २०।।

गङ्गामुद्दिश्य गच्छन्तं वीक्ष्य तस्य पितामहाः।
श्राद्धं बुभुक्षवः सर्वे नृत्यन्ति प्रहसन्ति च॥ २१॥

गङ्गा का उद्देश्य लेकर यात्रा करने वाले के सभी पितामहादि पूर्वज श्राद्ध भोजन की इच्छा से हर्षपूर्वक नाचने गाने लगते हैं।। २१।।

निराशाः पितरो यान्ति श्राद्धाभावे यतो मुने!
तस्मात्स निरयं याति यदि श्राद्धं न चाचरेत्॥ २२॥

हे मुने! यदि श्राद्ध न किया जाय तो पितर निराश होते हैं। तथा इस प्रमाद के कारण उस पुरुष को नरक में जाना पड़ता है।। २२।।

गङ्गासलिलपक्वान्नं देवानामपि दुर्लभम्।
तदन्नेन कृते श्राद्धे पितरो यान्ति निवृत्तिम्॥ २३॥

गङ्गाजल से निर्मित पक्वान्न देवताओं को भी दुलर्भ हैं। उस जल से निर्मित अन्न से किये गये श्राद्ध से पितृगण तृप्त होते हैं।। २३।।

सन्तुष्टाः पितरो यस्य तस्य जन्म तु सार्थकम्।
विफलं जीवनं तस्य पितरो यस्य कोपिताः॥ २४॥

जिसके पूर्वज पितृगण सन्तुष्ट हैं, उसी पुरुष का जन्म सार्थक है यदि किसी ने अपने पितृगण को ही कुपित कर दिया तो उसके जीवन क ही क्या लाभ!।। २४।।

रुष्टैः पितृगणैर्नृणां धर्मो नैव प्रजायते।
तस्मात्पितृन् सुसन्तर्प्य धर्मकर्म समाचरेत्॥ २५॥

जिसके पितर असन्तुष्ट रहें, उसके धर्म की वृद्धि नहीं होती। अ पितरों को सन्तुष्ट करके ही धार्मिक कार्य प्रारम्भ करने चाहिये।। २५।

गङ्गायां यदि भाग्येन चन्द्रसूर्यग्रहं लभेत्।
तदा स्नात्वा पितृश्राद्धं कुर्याद्विधिविधानतः।
अक्षय्यं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां तृप्तिकारकम्॥ २६॥

गङ्गा–तट पर पहुँचने पर यदि *सूर्य ग्रहण या चन्द्र ग्रहण हो जाय* गङ्गा में स्नान करे, तब विधि–विधानपूर्वक पितृश्राद्ध करना चाहिये। पितृ–श्राद्ध अक्षय तथा पितरों को सन्तोषजनक होता है।। २६।।

गङ्गाश्राद्धशतं श्रेष्ठ निर्वाणपददायकम्।
पुरश्चर्यां तदा कृत्वा सिद्धमन्त्रो भवेत् पुमान्॥ २७॥

सौ श्राद्धों की अपेक्षा गङ्गा पर किया हुआ एक ही श्राद्ध निर्वाण फलप्रद होता है। पुनः पुरश्चर्या करनी चाहिये, जो कि पुरुष को सिद्धमन्त्र बना देती है।। २७।।

असाध्यं साधयेच्चापि शिवतुल्यो भवेत्स्वयम्।
पुरश्चरणकृच्छ्राद्धं कारयेदन्यतोऽपि वा॥ २८॥

पुरश्चरण के साथ कराया गया श्राद्ध पुरुष को शिव के समान बना देता है। यह असाध्य को भी साध्य बना देता है।। २८।।

न श्राद्धविरहं कुर्यात् कदाचिदपि मोहितः।
अक्षय्यायां युगाख्यायां स्नात्वा वै जाह्नवीजले॥ २९॥
पितृन् सन्तर्प्य दानेन न पुनर्जन्मभाग्भवेत्॥ ३०॥

अक्षय तृतीया के दिन, गङ्गा स्नान करके श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। इस दिन प्रमादवश कभी भी श्राद्ध करना नहीं छोड़ना चाहिये। उस समय, दानपूर्वक पितरों को सन्तृप्त करने वाले का इस संसार में पुनः जन्म नहीं होता।। २९–३०।।

गङ्गायां तु पुरश्चर्यां कृत्वा पापविवर्जितः।
सिद्धमन्त्रो महाज्ञानी भवेद्वै साधकोत्तमः॥ ३१॥

ऐसा साधक जो गङ्गा तट पर श्राद्ध कर पुरश्चर्या करता है वह निष्पाप, सिद्धमन्त्र एवं महाज्ञानी बन जाता है।। ३१।।

दानं ध्यानं जपो होमोऽभ्यर्चनं श्राद्धतर्पणम्।
बहुपुण्यकरं प्रोक्तं गङ्गायां मुनिसत्तम!॥ ३२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! गङ्गाक्षेत्र में आकर, दान ध्यान जप होम पूजा श्राद्ध तर्पण– ये सब अतीव पुण्यप्रद माने गये हैं।। ३२।।

गङ्गा में मल–मूत्र विसर्जन का निषेध

गङ्गायां मोहतो नैव विण्मूत्रं विसृजेन्नरः।
विसृजेन्निरयं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ३३॥

किसी भी पुरुष को प्रमादवश गङ्गा में मल एवं मूत्र का विसर्जन नहीं करना चाहिये। यदि कोई ऐसा करता है तो वह चौदह इन्द्रों के कार्यकाल तक नरक में वास करता है।। ३३।।

असत्यभाषणं लोभं हित्वा च परनिन्दनम्।
परद्रोहादिकं पापं वर्जयेत् सुसमाहितः॥ ३४॥

इसी तरह, गङ्गातट पर असत्य भाषण, लोभ, परनिन्दा, परद्रोह आदि पाप समाहित पुरुष को नहीं करना चाहिये।। ३४।।

यदि कुर्याच्च मोहेन तदा तत्पापशान्तये।
कृत्वा स्नानं नमस्कृत्य क्षेत्रादन्तर्हितो भवेत्॥ ३५॥

यदि प्रमादवश गङ्गाक्षेत्र में पुरुष से ऐसे कार्य हो जायँ तो वहाँ गङ्गा को प्रणाम तथा स्नान कर उस क्षेत्र का परित्याग कर देना चाहिये।। ३५।।

गङ्गा साधारण नदी नहीं

यस्तु गङ्गां महादेवीं प्रकृतिं नीररूपिणीम्।
नदीति मन्यते मोहात् स याति नरकान् बहून्॥ ३६॥

यदि कोई पुरुष जलमयी प्रकृतिरूपा गङ्गा महादेवी को प्रमादवश साधारण नदी समझता है तो वह बहुत काल तक नरकों में पड़ा रहता है।। ३६।।

साक्षाद् ब्रह्ममयीं पूर्णां लोकानां त्राणहेतवे।
द्रवरूपेण निर्याता शक्तिराद्येति भावयेत्॥ ३७॥

उन्हें तो साक्षात् ब्रह्ममयी, पूर्णा, लोकों की रक्षा हेतु भूतल पर अवतरित आद्या शक्ति समझना चाहिये।। ३७।।

तीन स्थानों में गङ्गा की दुर्लभता

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे॥ ३८॥
महाफलप्रदा गङ्गा तस्मात्तत्र विशेषतः।
प्रयतः स्नानदानादीन् कुर्यान्मर्त्यो महामतिः॥ ३९॥

गङ्गा सर्वत्र सुलभ हैं, केवल तीन स्थानों पर दुर्लभ हैं– १. हरिद्वार में, २. प्रयाग में, ३. गङ्गा–सागर सङ्गम पर। अर्थात् इन तीन स्थानों पर गङ्गा का अधिक महत्त्व है; क्योंकि गङ्गा उक्त तीन स्थानों पर किये हुए कार्य का अधिक फल देने वाली हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुष को इन स्थानों पर सावधान होकर स्नान, दान आदि करना चाहिये।। ३९।।

काशीक्षेत्र में स्नान–दान आदि का महत्त्व

काश्यां यस्तु समागत्य गङ्गायां विधिवन्नरः।
स्नानमुत्तरवाहिन्यां कुरुते भक्तिभावतः॥ ४०॥

स साक्षाच्छिवतामेति देवपूज्यतमः स्मृतः।
पितृणां तर्पणं चापि तत्र निर्वाणदायकम्॥ ४१॥

जो पुरुष काशी में आकर शास्त्रविधिपूर्वक उत्तरवाहिनी गङ्गा में भक्तिभाव से स्नान करता है वह साक्षात् शिवतुल्य हो जाता है, तथा देवता भी उसकी पूजा करते हैं। पितरों को तर्पण देना वहाँ मोक्षप्रदायक होता है।। ४१।।

सर्वतीर्थादिनिलया काशी विश्वेश्वरालया।
दुर्लभा पृथिवीबाह्या पृथिव्यन्तःस्थितापि च॥ ४२॥

विश्वेश्वर का स्थान काशी सभी तीर्थों का समाहार है। यह काशी साधारण जन के लिये दुर्लभ, लोक के अन्तर्गत होते हुए भी (वस्तुतः) लोक से बाहर है।। ४२।।

सा स्थली जाह्नवीतोयं जलं यत्र महामते!
तत्र मुक्तिः करस्था तु देहिनां पापिनामपि॥ ४३॥

हे महामते! वही स्थान महत्त्वपूर्ण है जहाँ जल गङ्गाजल के रूप में मिलता है। वहाँ पापी प्राणियों के लिये भी मुक्ति प्राप्त करना तो हस्तामलकवत् ही है।। ४३।।

अन्नपूर्णान्नदा यत्र माता देहभृतां स्वयम्।
गङ्गा च जलदा यत्र ज्ञानदा च सरस्वती॥ ४४॥

जहाँ तीन तीन देवियाँ साक्षात् रहती हैं— १. अन्न देने वाली अन्नपूर्णा, २. जल प्रदान करने वाली गङ्गा तथा ३. ज्ञान प्रदान करने वाली सरस्वती।। ४४।।

ब्रह्मादितो मुनिश्रेष्ठ! यत्र मृत्यु परं पदम्।
पिता विश्वेश्वरो यत्र मोक्षमार्गोपदेशतः।
तां काशीं यो न सेवेत विधिना वञ्चितस्तु सः॥ ४५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जहाँ पिता विश्वेश्वर के मार्गोपदेश द्वारा मृत्यु मोक्ष प्राप्त कर लेना ही ब्रह्मादि से श्रेष्ठ परम पद है। ऐसी महत्त्वपूर्ण काशी का जो आश्रय नहीं लेता वह मन्दभाग्य ही है।। ४५।।

मणिकर्ण्यां कृतस्नानः काश्यां विश्वेश्वरं प्रभुम्।
सम्पूज्य बिल्वपत्राद्यैः शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ४६॥

वहाँ मणिकर्णिका में स्नान करके बिल्पत्र आदि से भगवान् विश्वनाथ की पूजा कर 'शिवसायुज्य' मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।। ४६।।

गङ्गामृत्तिकया कृत्वा तिलकं मुनिसत्तम!
यत्किञ्चित्कुरुते कर्म तत्सर्वं पूर्णतामियात्॥ ४७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! गङ्गा की मृत्तिका से ललाट पर तिलक करके जो मनुष्य कार्य प्रारम्भ करता है उसके सभी कार्य पूर्ण होते हैं।। ४७।।

यत्र कुत्रापि गङ्गायाः सलिलैर्देवपूजनम्।
श्राद्धाभिषेककर्मादि कुरुते मानवोत्तमः॥ ४८॥

श्रेष्ठ मानव को तो यह करना चाहिये कि (काशी में) जहाँ कहीं भी रहे वह गङ्गाजल से देवपूजन तथा श्राद्धकर्म आदि करता रहे।। ४८।।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि विधिहीनं भवेद्यदि।
दाम्भिकं भावमास्थाय कृतं वा द्रव्यवर्जितम्॥ ४९॥
अशुद्धद्रव्यसङ्गेन कृतं वा पापचेतसा।
सम्पूर्णफलदं सर्वं तथापि खलु तद्भवेत्॥ ५०॥

इस क्षेत्र में यदि जाने अनजाने, विधिहीन, दम्भभाव के आधृत होकर भी कोई कार्य किया जाता है, द्रव्यरहित या अशुद्ध द्रव्य से, पापयुक्त मन से भी कोई (देवपूजनादि) कार्य किया जाता है तो भी वह शुद्ध ही कहलाता है।। ४९–५०।।

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीगङ्गामाहात्म्यकथने
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७३॥

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
गङ्गामाहात्म्यकथनरूप
तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।

चौहत्तरवाँ अध्याय

[धनाधिप-मुक्ति का वर्णन]

श्रीमहादेव०— गङ्गायां सन्त्यजन् देहं ज्ञानतो मुनिसत्तम!
कैवल्यं समवाप्नोति मानवः पापवर्जितः॥ १॥

श्रीमहादेव— हे मुनिश्रेष्ठ! गङ्गा में ज्ञानपूर्वक अपने शरीर का त्याग करने वाला मनुष्य पापरहित होकर मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है।। १।।

अज्ञानाच्छिवसायुज्यं त्यक्त्वा तत्र कलेवरम्।
प्राप्नुयान्मानवो गङ्गाप्रसादादतिपातकी॥ २॥

यदि अतिपापमय पुरुष भी अज्ञानवश वहाँ देहत्याग करता है तो वह गङ्गाजी के प्रभाव से शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है।। २।।

मृतस्य यत्र कुत्रापि मांसमस्थि च नारद।
प्रपतेज्जाह्नवीतोये सोऽपि स्वर्गमवाप्नुयात्॥ ३॥

हे नारद! इतना ही नहीं जहाँ कहीं भी मृत पुरुष के देह की अस्थियाँ या माँस गङ्गाजल में डाल दिया जाय तो वह भी स्वर्ग प्राप्त कर लेता है।। ३।।

यदि पापसहस्त्रं स्याद् ब्रह्महत्यादिगर्हितम्।
यत्र कुत्रस्थितं मांसमस्थि गङ्गाजलं लभेत्।
मृतस्य सोऽपि निर्याति स्वर्गं लोकमनामयम्॥ ४॥

यदि कोई पुरुष ब्रह्महत्या जैसे हजारों गर्हित (निन्दित) पाप करके जहाँ कहीं मरा हो, उसका मांस, उसकी अस्थियाँ गङ्गाजल में लाकर डाल दी जायँ तो वह भी अनामय (निर्विघ्न) स्वर्गलोक को प्राप्त कर लेता है।। ४।।

मुक्तिविशेष

गङ्गायां च जले मुक्तिर्वाराणस्यां जले स्थले।
जले स्थले चान्तरिक्षे त्रिधा सागरसङ्गमे॥ ५॥

१. गङ्गातीर पर जल में मृत्यु होने पर मुक्ति होती है, २. वाराणसी क्षेत्र में जल या स्थल— कहीं भी मृत्यु होने पर मुक्ति होती है, तथा ३. गङ्गा–सागर क्षेत्र में जल, स्थल या अन्तरिक्ष कहीं भी मृत्यु होने पर मुक्ति हो जाती है।। ५।।

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि शृणु सावहितो मुने!
आश्चर्यं महदाख्यानं मुने श्रोतृसुखावहम्॥ ६॥

यहाँ मैं एक इतिहास का आख्यान सुनाऊँगा, हे मुने! आप उसे सावधान होकर सुनें। वह आख्यान अतीव आश्चर्यजनक तथा श्रोताओं को सुनने में सुखदायक है।। ६।।

धनाधिप वैश्य की कथा

आसीत् परमपापात्मा वैश्यो नाम्ना धनाधिपः।
दस्युकर्मरतो नित्यं परदाररतः सदा॥ ७॥

एक उत्कृष्ट पापी, लूटपाट करने वाला, दूसरों की स्त्रियों से नित्य व्यभिचार में लगा रहने वाला धनाधिप नामक वैश्य था।। ७।।

स पापात्मा त्यजन् देहं यमस्य वशतामगात्।
यमस्तं पातयामास नरके त्वसिपत्रके॥ ८॥

वह मरने के बाद, यम के अधीन हो गया। यम ने उसको असिपत्र नरक में डाल दिया।। ८।।

देहस्तस्य त्वनिर्दग्धः स्थितोऽरण्यस्य मध्यतः।
तं चखाद शृगालस्तु क्षुधार्तो मुनिसत्तम!॥ ९॥

परन्तु उसका देह विना जला, वन में पड़ा रहा। हे मुनिश्रेष्ठ! वहाँ एक भूखा शृगाल आया और उस देह को खाने लगा।। ९।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कानने मुनिसत्तम!
आगत्य गृध्रराजस्तं शृगालं प्राभ्यधावत॥ १०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इसी बीच वहाँ एक बड़ा गृध्रराज आया, और उस शृगाल को वहाँ से भगा दिया।। १०।।

कियद्गतोऽतिश्रान्तस्तु गङ्गायां समुपेत्य वै।
पपौ जलं मुनिश्रेष्ठ! तत्र तन्मांसमाविशत्॥ ११॥

वह शृगाल कुछ दूर जाकर थक गया। पास ही गङ्गा नदी बह रही थी। हे मुनिश्रेष्ठ! वह शृगाल वहाँ जल पीने लगा। जल पीते समय उसके मुख से माँस का टुकड़ा गङ्गा में गिर गया।। ११।।

तत्तोयस्पर्शमात्रेण स पापी घोरकिल्बिषात्।
विमुक्तः शाङ्करं देहं प्राप्य स्वर्गं जगाम ह॥ १२॥

गङ्गाजल के स्पर्शमात्र से वह पापी उन भयङ्कर पापों से मुक्त होकर शिवशरीर को प्राप्त कर स्वर्ग पहुँच गया।। १२।।

रक्षकास्त्वसिपत्रस्थं गच्छन्तं वीक्ष्य पापिनम्।
धर्मराजमुपागत्य वचनं चेदमब्रुवन्॥ १३॥

तब असिपत्र नरक के रक्षक उस पापी को वहाँ से जाते देखकर धर्मराज के पास जाकर यों कहने लगे।। १३।।

रक्षका०— प्रभोऽसिपत्रे नरके यः पापी रक्षितस्त्वया।
स साक्षाच्छाङ्करं देहं प्राप्य स्वर्गं जगाम ह॥ १४॥

रक्षक—प्रभो! जिस पापी को असिपत्र नरक में आपसे डाला गया था, वह साक्षात् शिवशरीर प्राप्त कर स्वर्ग की ओर चला गया।। १४।।

तच्छ्रुत्वा विस्मयं प्राप्य यमः प्राह भटान्प्रति।
विज्ञाय कारणं तस्य ज्ञानदृष्ट्या तपोधनः॥ १५॥

रक्षकों से यह बात सुनकर धर्मराज आश्चर्य चकित हुए और उन तपोधन के ज्ञानदृष्टि से वास्तविकता जान उन दूतों से कहा—।। १५।।

यम ०— दूता गङ्गाजलस्पर्शाच्छृगालकवलीकृते।
मांसे चातिनिकृष्टोऽपि मुक्तोऽसौ सहसाऽभवत्!॥ १६॥

धर्मराज— "दूतो! ऐसा ज्ञात होता है शृगाल द्वारा उसके शरीर का मांस मुख से ले जाकर गङ्गाजल में डाल देने से उस पापी को शिव-शरीर प्राप्त हो गया तथा वह अतिनिकृष्ट होने पर भी सहसा मुक्त हो गया।। १६।।

श्रीमहादेव०— तच्छ्रुत्वा विस्मयं प्राप्य दूताः स्वस्थानमाययुः।
स्मरन्तो जाह्नवीतोयमाहात्म्यं मुनिसत्तम!॥ १७॥

श्रीमहादेव जी— यमराज के ये वचन सुनकर उसके दूत आश्चर्यचकित होते हुए गङ्गाजल की प्रशंसा करते करते अपने स्थान पर आ गये।। १७।।

स तु स्वर्गपुरे देवैः स्तूयमानो महामते!
सम्प्राप्य शिवसायुज्यं मुमोद सुचिरं मुने॥ १८॥

उधर वह धनाधिप वैश्य, हे महामते! देवताओं द्वारा पूजा जाता हुआ, शिवसायुज्य प्राप्त कर चिरकाल तक स्वर्ग में वास करता रहा।। १८।।

(धनाधिप वैश्य की कथा समाप्त।

गङ्गामाहात्म्य

एवं भगवती गङ्गा महापातकनाशिनी।
दर्शनात् स्पर्शनाच्चापि मोक्षदा च यतस्ततः।
सर्वात्मना नरो भक्त्या गङ्गामेव समाश्रयेत्॥ १९॥

इस प्रकार, यह भगवती गङ्गा जिस किसी तरह दर्शन या स्पर्शन कर लेने पर, बड़े से बड़े पाप का नाश करने वाली हैं।। १९।।

अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्नैयत्यवर्जितः।
तस्मात्प्रागेव तां गङ्गां मुमुक्षुः समुपाश्रयेत्॥ २०॥

आज हो या सौ वर्ष के बाद, प्राणी की मृत्यु का होना तो निश्चित ही है तो क्यों न मुमुक्षु को उससे पूर्व ही उन गङ्गा का आश्रय ग्रहण कर लेना चाहिये।। २०।।

अतर्कितमिवागम्य शमनोऽतिदुरासदः।
यावत्केशान्न गृह्णाति तावद् गङ्गामुपाश्रयेत्॥ २१॥

अकल्पित की तरह आकर यह दुर्जय मृत्यु जब तक हमारे केश न आ पकड़े उससे पूर्व ही हमें गङ्गा का आश्रय ग्रहण कर लेना चाहिये।। २१।।

पुत्रमित्रकलत्रादि न बन्धुः कथ्यते मुने!
गङ्गैव परमा बन्धुर्भवमोचनकारिणी॥ २२॥

हे मुने! ये पुत्र, मित्र, कलत्र (स्त्री) आदि 'बन्धु' विपत्ति में सहायक नहीं कहलाते, वस्तुतः गङ्गा ही परम बन्धु है जो संसार से मुक्ति दिला देती।। २२।।

दर्शनात् स्पर्शनान्नामकीर्तनाद्ध्यानतोऽपि च।
सुखदा मोक्षदा गङ्गा बन्धुः परम ईरिता॥ २३॥

दर्शन करने से, स्पर्श करने से, नाम कीर्तन से, ध्यान से, सुख एवं मोक्ष प्रदान करने वाली यह गङ्गा ही वास्तविक 'बन्धु' है।। २३।।

महाघोरतरे याम्ये भये निर्भयदायिनीम्।
गङ्गां ये नाश्रयन्तीह ज्ञेयास्ते चात्मघातिनः॥ २४॥

जो पुरुष यम सम्बन्धी महाघोर कष्ट (मृत्यु) उपस्थित होने पर भी निर्भयताप्रदायिनी महादेवी गङ्गा का आश्रय नहीं लेते उनसे बढ़कर अभागा आत्मघाती कौन है?।। २४।।

वृथा पुत्रादिकं सर्वं मोहबन्धप्रवर्तकम्।
शाश्वती मुक्तिदा गङ्गेत्येवं मत्वा समाश्रयेत्॥ २५॥

'ये संसार में उपस्थित सभी पुत्रादिक केवल मोहबन्धन के प्रवर्तक हैं। शाश्वती मुक्ति देने वाली तो केवल गङ्गा ही है'— यह समझकर गङ्गा का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये।। २५।।

मुमुर्षुं प्रापयेद्गङ्गां निर्वाणपददायिनीम्।
सोऽपि निर्वाणमायाति जाह्नव्यास्तु प्रसादतः ॥ २६ ॥

मरण के समीप पहुँचे हुए मनुष्य को यदि मोक्षप्रदायिनी गङ्गा के किनारे पहुँचा दिया जाय तो वह पहुँचाने वाला भी भगवती गङ्गा की कृपा से मोक्ष पा लेता है ।। २६ ।।

गङ्गैव परमो बन्धुर्गङ्गैव परमं सुखम्।
गङ्गैव परमं वित्तं गङ्गैव परमा गतिः ॥ २७ ॥

'गङ्गा ही परम बन्धु है', 'गङ्गा ही परमसुख है', 'गङ्गा ही उत्कृष्ट धन है', 'गङ्गा ही उत्कृष्ट गति है' ।। २७ ।।

गङ्गैव परमा मुक्तिर्गङ्गा सारतरेति ये।
विभावयन्ति तेषां तु न दूरस्था कदाचन ॥ २८ ॥

'गङ्गा ही परम मुक्ति है', 'गङ्गा ही इस जगत् में सारभूत है'— ऐसा जो निश्चय कर लेते हैं, उनसे मोक्ष पद दूर नहीं रहता ।। २८ ।।

गङ्गेति वदतां गङ्गा पृष्ठतश्चानुधावति।
शङ्खस्वनाद्यथा पूर्वं भगीरथमुपाययौ ॥ २९ ॥

'गङ्गा' यह नाम लेने वालों के पीछे गङ्गा स्वयं दौड़ती हैं, जैसे कि पहले कभी भगीरथ की शङ्खध्वनि के पीछे पीछे गङ्गा दौड़ी दौड़ी चली आयी थी ।। २९ ।।

गङ्गातीरं परित्यज्य योऽन्यत्र निवसेन्नरः।
करस्थां सन्त्यजन्मुक्तिं सोऽन्वेषी नरकस्य तु ॥ ३० ॥

गङ्गातट को छोड़कर जो पुरुष अन्यत्र वास करता है वह हाथ में आयी मुक्ति को छोड़कर नरक की ही खोज करता है ।। ३० ।।

धन्यः स देशो यत्रास्ति गङ्गा त्रैलोक्यपावनी।
गङ्गाहीनस्तु यो देशो न प्रदेशः स भण्यते ॥ ३१ ॥

वह देश धन्य है, जिसमें त्रैलोक्यपावनी गङ्गा बहती हैं; क्योंकि गङ्गाविहीन देश तो 'देश' नहीं कहा जा सकता ।। ३१ ।।

गङ्गातीरे वरं भिक्षा वरं प्राणवियोजनम्।
अन्यत्र पृथिवीपत्यं न नरः प्रार्थयेत् क्वचित् ॥ ३२ ॥

गङ्गातीर पर रहने के लिये यदि भिक्षायाचन करना पड़े तो वह भी ठीक है। गङ्गातीर पर रहने से भौतिक कष्टों से यदि मृत्यु हो जाय तो वह भी

उचित है; परन्तु यदि गङ्गा तीर छोड़ने से पृथ्वी का आधिपत्य भी मिलता है तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिये।। ३२।।

यस्मिन् देशे वसेदेको गङ्गाभक्तिपरो नरः।
सोऽपि पुण्यतमो देशस्तत्र दानं महाफलम्॥ ३३॥

जिस देश में एक भी गङ्गा का उपासक रहता है वह पवित्रतम देश ही माना जाना चाहिये। वहाँ किया हुआ दान अधिक फलदायी होता है।। ३३।।

श्राद्धं च तर्पणं तत्र पितृणां तृप्तिकारकम्।
अनन्तफलदं ज्ञेयं जपहोमादिकं तथा॥ ३४॥

गङ्गातट पर किया गया पितरों के लिये तृप्तिकारक श्राद्ध एवं तर्पण तथा जप होम आदि अनन्त फलप्रद होते हैं।। ३४।।

गङ्गा नाम परं सौख्यं गङ्गा नाम परं तपः।
गङ्गेति संस्मरन्नित्यं तस्य नास्ति यमाद्भयम्॥ ३५॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे गङ्गाजलस्पर्शेन धनाधिपमुक्तिपदगमनं नाम
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७४॥

गङ्गा का नाम अत्यन्त सुखदायक है, गङ्गा ही उत्कृष्ट तप है, 'गङ्गा' नाम का नित्य स्मरण करता हुआ पुरुष मृत्यु से कोई भय नहीं मानता।। ३५।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
गङ्गाजलस्पर्श से धनाधिपमुक्ति वर्णनात्मक
चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

[भगवती गङ्गा के १०८ नाम]

श्रीनारद०—"गङ्गा नाम परं पुण्यं कथितं परमेश्वर!
नामानि कति शस्तानि गङ्गायाः प्रणिशंस मे" ॥ १ ॥

नारद का प्रश्न— हे परमेश्वर! आपने 'गङ्गा' नाम का माहात्म्य तो विस्तार से बता दिया। परन्तु अब आप भगवती गङ्गा के कुछ नामों का भी विस्तृत वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

गङ्गाजी के एक सौ आठ नाम

श्रीमहादेव०— नाम्नां सहस्रमध्ये तु नामाष्टशतमुत्तमम्।
जाह्नव्या मुनिशार्दूल तानि मे शृणु तत्त्वतः ॥ २ ॥

श्री महादेव जी— हे मुनिवर! यों तो उन भगवती गङ्गा के हजारों नाम हैं, परन्तु उनमें विशिष्ट एक सौ आठ नाम आप को सुनाता हूँ ॥ २ ॥

ॐ गङ्गा त्रिपथगा देवी शम्भुमौलिविहारिणी।
जाह्नवी पापहन्त्री च महापातकनाशिनी ॥ ३ ॥

ॐ गङ्गा, त्रिपथगा, देवी, शम्भुमौलिविहारिणी, जाह्नवी, और *पापहन्त्री* तथा *महापातकनाशिनी*— ये गङ्गा के नाम हैं ॥ ३ ॥

पतितोद्धारिणी स्रोतस्विनी परमवेगिनी।
विष्णुपादाब्जसम्भूता विष्णुदेहकृतालया ॥ ४ ॥

पतितोद्धारिणी, स्रोतस्विनी, परमवेगिनी, विष्णुपादाब्जसम्भूता, विष्णुदेहकृतालया— ये भी गङ्गा जी के नाम हैं ॥ ४ ॥

स्वर्गाब्धिनिलया साध्वी स्वर्णदी सुरनिम्नगा।
मन्दाकिनी महावेगा स्वर्णशृङ्गप्रभेदिनी ॥ ५ ॥

तथा ये नाम भी गङ्गा जी के ही हैं— *स्वर्गाब्धिनिलया, साध्वी, स्वर्णदी, सुरनिम्नगा, मन्दाकिनी, महावेगा, स्वर्णशृङ्गप्रभेदिनी* ॥ ५ ॥

देवपूज्यतमा दिव्या दिव्यस्थाननिवासिनी।
सुचारुनीररुचिरा महापर्वतभेदिनी ॥ ६ ॥

गङ्गा के संज्ञापरक नाम ये भी हैं— *देवपूज्यतमा, दिव्या, दिव्यस्थान-निवासिनी, सुचारुनीररुचिरा* एवं महापर्वतभेदिनी ॥ ६ ॥

भागीरथी भगवती महामोक्षप्रदायिनी।
सिन्धुसङ्गगता शुद्धा रसातलनिवासिनी॥ ७॥

और ये नाम भी गङ्गा जी के लिये ही प्रयुक्त होते हैं— *भागीरथी, भगवती, महामोक्षप्रदायिनी, सिन्धुसङ्गगता, शुद्धा एवं रसातलनिवासिनी*।। ७।।

महाभोगा भोगवती सुभगानन्ददायिनी।
महापापहरा पुण्या परमाह्लाददायिनी॥ ८॥

महाभोगा, भोगवती, सुभगानन्ददायिनी, महापापहरा, पुण्या, परमाह्लाद-दायिनी— ये नाम भी गङ्गा जी के ही हैं।। ८।।

पार्वती शिवपत्नी च शिवशीर्षगतालया।
शम्भोर्जटामध्यगता निर्मला निर्मलानना॥ ९॥

ये संज्ञाएँ भी भगवती गङ्गा की ही हैं— *पार्वती, शिवपत्नी* और *शिवशीर्षगतालया, शम्भुजटामध्यगता, निर्मला,* एवं *निर्मलानना*।। ९।।

महाकलुषहन्त्री च जह्नुपुत्री जगत्प्रिया।
त्रैलोक्यपावनी पूर्णा पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी॥ १०॥

महाकलुषहन्त्री, जह्नुपुत्री और जगत्प्रिया, त्रैलोक्यपावनी, पूर्णा, पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी— ये संज्ञाएँ गङ्गा भगवती की ही हैं।। १०।।

जगत्पूज्यतमा चारुरूपिणी जगदम्बिका।
लोकानुग्रहकर्त्री च सर्वलोकदयापरा॥ ११॥

इन शब्दों को भी भगवती गङ्गा के नाम समझिये— *जगत्पूज्यतमा, चारुरूपिणी, जगदम्बिका, लोकानुग्रहकर्त्री* और *सर्वलोकदयापरा*।। ११।।

याम्यभीतिहरा तारा पारा संसारतारिणी।
ब्रह्माण्डभेदिनी ब्रह्मकमण्डलुकृतालया॥ १२॥

याम्यभीतिहरा, तारा, पारा, संसारतारिणी, ब्रह्माण्डभेदिनी, ब्रह्मकमण्डलुकृतालया— ये शब्द भी भगवती गङ्गा के नाम हेतु प्रयुक्त होते हैं।। १२।।

सौभाग्यदायिनी पुंसां निर्वाणपददायिकी।
अचिन्त्यचरिता चारुरुचिरातिमनोहरा॥ १३॥

भगवती गङ्गा के ये नाम भी हैं— *सौभाग्यदायिनी,* और *मनुष्यों को मोक्षदायिका, अचिन्त्यचरिता, चारुरुचिरा, अतिमनोहरा*।। १३।।

मर्त्यस्था मृत्युभयहा स्वर्गमोक्षप्रदायिनी।
पापापहारिणी दूरचारिणी वीचिधारिणी॥ १४॥

मर्त्यस्था, मृत्युभयहा, स्वर्गमोक्षप्रदायिनी, पापापहारिणी, दूरचारिणी एवं *वीचिधारिणी*— ये नाम भी भगवती के ही हैं।। १४।।

कारुण्यपूर्णा करुणामयी दुरितनाशिनी।
गिरिराजसुता गौरी भगिनी गिरिशप्रिया॥ १५॥

ये संज्ञाएँ भी भगवती की ही हैं— *कारुण्यपूर्णा, करुणामयी, दुरितनाशिनी, गिरिराजसुता, गौरी, भगिनी* एवं *गिरिशप्रिया*।। १५।।

मेनकागर्भसम्भूता मैनाकभगिनी प्रिया।
आद्या त्रिलोकजननी त्रैलोक्यपरिपालिनी॥ १६॥

मेनकागर्भसम्भूता, मैनाकभगिनी, प्रिया, आद्या, त्रिलोकजननी एवं *त्रैलोक्यपरिपालिनी*— ये नाम भी भगवती गङ्गा के ही हैं।। १६।।

तीर्थश्रेष्ठतमा श्रेष्ठा सर्वतीर्थमयी शुभा।
चतुर्वेदमयी सर्वा पितृसन्तृप्तिदायिनी॥ १७॥

इन शब्दों को भी भगवती का नाम ही जानना चाहिये— *तीर्थश्रेष्ठतमा, श्रेष्ठा, सर्वतीर्थमयी, शुभा, चतुर्वेदमयी, सर्वा, पितृसन्तृप्तिदायिनी*।। १७।।

शिवदा शिवसायुज्यदायिनी शिववल्लभा।
तेजस्विनी त्रिनयना त्रिलोचनमनोरमा॥ १८॥

शिवदा, शिवसायुज्यदायिनी, शिववल्लभा, तेजस्विनी, त्रिनयना, त्रिलोचनमनोरमा— ये शब्द भगवती गङ्गा के नाम हेतु प्रयुक्त होते हैं।। १८।।

सप्तधारा शतमुखी सगरान्वयतारिणी।
मुनिसेव्या मुनिसुता जह्नुजानुप्रभेदिनी॥ १९॥

तथा ये नाम भी भगवती गङ्गा के हैं— *सप्तधारा, शतमुखी, सगरान्वयतारिणी, मुनिसेव्या, मुनिसुता* एवं *जह्नुजानुप्रभेदिनी*।। १९।।

मकरस्था सर्वगता सर्वाशुभनिवारिणी।
सुदृश्या चाक्षुषतृप्तिदायिनी मकरालया॥ २०॥

और ये नाम भी भगवती गङ्गा के ही हैं— *मकरस्था, सर्वगता, सर्वाशुभनिवारिणी, सुदृश्या, चाक्षुषतृप्तिदायिनी* एवं *मकरालया*।। २०।।

सदानन्दमयी नित्यानन्ददा नगपूजिता।
सर्वदेवाधिदेवैश्च परिपूज्यपदाम्बुजा॥ २१॥

सदानन्दमयी, नित्यानन्ददा, नगपूजिता एवं *सर्वदेवाधिदेवपरिपूज्यपदाम्बुजा*— ये सब नाम भी भगवती गङ्गा के लिये प्रयुक्त होते हैं।। २१।।

(गङ्गा अष्टोत्तरशत नामस्तोत्र सम्पूर्ण।।)

स्तोत्रपाठ का माहात्म्य

एतानि मुनिशार्दूल नामानि कथितानि ते।
शस्तानि जाह्नवीदेव्याः सर्वपापहराणि च॥ २२॥

हे मुनिशार्दूल! भगवती गङ्गा के ये जो नाम (ऊपर लिखे) तुमको बताये हैं, सभी उनके लिये प्रसिद्ध हैं तथा सर्वपापहर हैं।। २२।।

य इदं पठते भक्त्या प्रातरुत्थाय नारद!
गङ्गायाः परमं पुण्यं नामाष्टशतमेव हि॥ २३॥
तस्य पापानि नश्यन्ति ब्रह्महत्यादिकान्यपि।
आरोग्यमतुलं सौख्यं लभते नात्र संशयः॥ २४॥

हे नारद! जो श्रद्धालु पुरुष प्रातःकाल उठकर इस अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ करता है उसके सभी ब्रह्महत्यादि पाप भी नष्ट हो जाते हैं। उसे पूर्ण स्वास्थ्य, अतुल ऐश्वर्य मिलता है— इसमें कोई सन्देह नहीं।। २३–२४।।

यत्र कुत्रापि संस्नायात् पठेत् स्तोत्रमनुत्तमम्।
तत्रैव गङ्गास्नानस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम्॥ २५॥

एक बात और! जो भक्त जहाँ कहीं भी स्नान करते समय यदि इस स्तोत्र का पाठ करता है तो उसे वहाँ ही गङ्गास्नान का फल मिलता है— यह निश्चित है।। २५।।

प्रत्यहं प्रपठेदेतद् गङ्गानामशताष्टकम्।
सोऽन्ते गङ्गामनुप्राप्य प्रयाति परमं पदम्॥ २६॥

जो प्रतिदिन गङ्गा के इन अष्टोत्तरशत नामों का पाठ करता है वह देहावसान के बाद भगवती गङ्गा के सान्निध्य में परम पद प्राप्त करता है।। २६।।

गङ्गायां स्नानसमये यः पठेद्भक्तिसंयुतः।
सोऽश्वमेधसहस्राणां फलमाप्नोति मानवः॥ २७॥

गङ्गा में स्नान करते समय जो पुरुष इस स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ करता है वह हजार अश्वमेधयज्ञों का फल प्राप्त करता है।। २७।।

गवामयुतदानस्य यत्फलं समुदीरितम्।
तत्फलं समवाप्नोति पञ्चम्यां प्रपठन्नरः॥ २८॥

करोड़ गौओं के दान का शास्त्रोक्त फल इस स्तोत्र का *पञ्चमी के दिन* पाठ करने से मिल जाता है।। २८।।

सागरसङ्गम का वैशिष्ट्य

कार्त्तिक्यां पौर्णमास्यां तु स्नात्वा सागरसङ्गमे।
यः पठेत् स महेशत्वं याति सत्यं न संशयः॥ २९॥

कार्तिक पूर्णिमा के दिन सागरसङ्गम पर स्नान करते समय इस स्तोत्र का पाठ महेश–पद प्राप्त करा देता है– इसमें कोई सन्देह नहीं।। २९।।

सिन्धुना तीर्थराजेन सर्वतीर्थमयी स्वयम्।
सङ्गता समभूद्यत्र तीर्थं नास्ति ततोऽधिकम्॥ ३०॥

क्योंकि ये तीर्थमयी गङ्गा जब तीर्थराज समुद्र के साथ मिल गयीं तो इस (सागरसङ्गम) से बढ़कर तीर्थ कौन होगा!।। ३०।।

काशी का वैशिष्ट्य

अन्यत्र जाह्नवीतीर्थे निर्वाणं ज्ञानतो भवेत्।
वाराणस्यां स्थले वापि जले वा मुनिसत्तम॥ ३१॥
ज्ञानादज्ञानतश्चापि विज्ञानं परिकल्पितम्।
स्थले वा जाह्नवीतोये गगनेऽज्ञानतोऽपि च।
अज्ञानादपि सन्त्यज्य देहं मुक्तिमवाप्नुयात्॥ ३२॥
तत्र त्यजति यो देहं नरोऽन्यस्येच्छया मुने।
सोऽपि निर्वाणमाप्नोति महातीर्थप्रसादतः॥ ३३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जाह्नवी तट पर अन्यत्र कहीं भी ज्ञान से मोक्ष होता है, परन्तु वाराणसी में जल या स्थल कहीं भी ज्ञान या अज्ञान से, देहावसान के बाद, मोक्ष हो ही जाता है। स्थल या गङ्गाजल या अन्तरिक्ष में जो पुरुष दूसरे की इच्छा से (अन्य द्वारा वध प्राप्त) देह छोड़ने वाला पुरुष भी यहाँ भगवती गङ्गा की कृपा से निर्वाण प्राप्त कर लेता है।। ३१–३३।।

तीर्थश्रेष्ठतमां गङ्गां नृणां सर्वार्थसाधिनीम्।
शक्तिं नीरमयीं मूर्तिं लोकनिस्तारकारिणीम्॥ ३४॥

तीर्थों में श्रेष्ठ भगवती गङ्गा को, जो कि सर्वार्थसाधिका है, शक्तिस्वरूपा है, जलमयी मूर्ति है, लोक निस्तारण की हेतु है।।३४।।

अविद्याच्छेदिनीं देवीं ब्रह्मविद्याप्रदायिनीम्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना समुपाश्रयेत्॥ ३५॥

अविद्या की नाशिका है तथा ब्रह्मविद्या की दात्री है। इनका इतना शीघ्र आश्रयण कर लेना चाहिये कि मानो मृत्यु हमारे पीछे शिर के केश पकड़ने आ रही है।। ३५।।

इत्युक्तं ते मुनिश्रेष्ठ गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्।
पवित्रं परमं गुह्यं महापातकनाशनम्॥ ३६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस तरह मैंने आपको यह उत्तम गङ्गामाहात्म्य सुना दिया, जो कि परम गोपनीय है, तथा महापातकों का नाशक है।। ३६।।

यश्चैतन्महदाख्यानं प्रपठेद्भक्तिसंयुतः।
स देव्याः पदवीं याति मुने नास्त्यत्र संशयः॥ ३७॥

जो इस विस्तृत आख्यान को भक्तिपूर्वक पढ़ेगा वह देवी के चरणों को प्राप्त कर लेगा– इसमें कोई सन्देह नहीं।। ३७।।

स्तोत्रपाठ का माहात्म्य

यत्रैतत् पठ्यते पुण्यं गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्।
तत्र गङ्गा वसेत् साक्षात् सर्वतीर्थैः समावृता॥ ३८॥

जहाँ इस पवित्र एवं उत्तम गङ्गामाहात्म्य का पाठ होता है वहाँ सभी तीर्थों के साथ भगवती गङ्गा का साक्षात् वास होता है।। ३८।।

अत्र यत्क्रियते कर्म दैवं पित्र्यं च मानवैः।
तदक्षयतमं लोके फलदं परिकीर्तितम्॥ ३९॥

इस गङ्गातट पर जो भी देवतासम्बन्धी या पितृसम्बन्धी कार्य पुरुषों द्वारा किया जाता है वह अक्षय फलदायक होता है।।३९।।

लिखितं तिष्ठते यत्र पुण्याख्यानमिदं मुने।
तद्देशं स्पृशेत् पापं भयात्सत्यं न संशयः॥ ४०॥

हे मुने! जहाँ यह पवित्र आख्यान लिखित रहता है, उस देश में पाप का स्पर्श भी नहीं हो पाता– यह सत्य एवं असन्दिग्ध है।।४०।।

आसन्ने मृत्युकाले तु भक्त्या यः शृणुयान्नरः।
न मृत्युवशतामेति स याति परमां गतिम्॥ ४१॥

मृत्युकाल समीप आने पर जो भगवती का यह आख्यान सुनता है उसको मृत्यु कोई हानि नहीं पहुँचा सकती, उसका मोक्ष अवश्य हो जाता है।। ४१।।

एकादश्यां कृतस्नानस्तुलसीबिल्वसन्निधौ।
उपोष्य प्रपठेदेतत् स याति परमां गतिम्॥ ४२॥

जो पुरुष *एकादशी के दिन* स्नान तथा उपवास व्रत धारण कर तुलसी या बिल्व वृक्ष के पास बैठकर इस आख्यान का पाठ करता है उसको परम पद प्राप्त होता है।। ४२।।

पितृश्राद्धदिने यस्तु पठेद्विप्रस्य सन्निधौ।
तस्य तृप्तिमुपायान्ति पितरः शाश्वतीं मुने!॥ ४३॥

श्राद्ध के दिन जो किसी ब्राह्मण के सम्मुख बैठकर इसका पाठ करता है उसके पितर स्थायी तृप्ति को प्राप्त करते हैं।। ४३।।

महाष्टम्यां निशीथे तु प्रपठेन्मानवोत्तमः।
स याति परमं सौख्यं महादेव्याः प्रसादतः॥ ४४॥

महाष्टमी के दिन अर्धरात्रि में जो पुरुष इसका पाठ करता है वह भगवती की कृपा से परम सुख, प्राप्त कर लेता है।। ४४।।

आत्यन्तिकं मुनिश्रेष्ठ! फलमेतस्य कथ्यते।
नैतस्य सदृशं लोके पुण्याख्यानं प्रगीयते॥ ४५॥

हे मुनिवर! इस आख्यान का आत्यन्तिक फल यही कहा जा सकता है कि इसके सदृश पवित्र आख्यान अन्य कोई नहीं है।। ४५।।

महापापहरं पुण्यं स्मृतं पुण्यतमादपि।
एतदाख्यानमाकर्ण्य नरः स्वर्गमवाप्नुयात्॥ ४६॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीगङ्गादेव्याः अष्टोत्तरशतनाम
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७५॥

यह महापाप हर है, पुण्य से भी पुण्यतम है। इस आख्यान को सुनकर मनुष्य स्वर्ग भी प्राप्त का लेता है।। ४६।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
श्री गंगादेवी का अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र रूप
पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

[कामाख्यामाहात्म्य वर्णन]

कामरूप तीर्थ का माहात्म्य

श्रीनारद०—"प्रभो देव जगन्नाथ श्रुत्वा तव मुखाम्बुजात्।
गङ्गामाहात्म्यमतुलं पवित्रोऽस्मि न संशयः॥ १॥

श्री नारद— हे प्रभो! हे देव! हे जगदीश! आपके श्रीमुख से अनुपम गङ्गामाहात्म्य सुनकर मैं पवित्र हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं।। १।।

भूयस्ते श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यमतिविस्तरात्।
कामरूपस्य तीर्थस्य तत् समाचक्ष्व साम्प्रतम्"॥ २॥

अब मैं आपसे ही कामरूप तीर्थ का माहात्म्य विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ। उसे कृपया सुनाइये।। २।।

श्रीमहादेव०— शृणु सावहितो वक्ष्ये माहात्म्यं मुनिसत्तम!
कामरूपस्य तीर्थस्य यत्र साक्षात्स्वयं शिवा।
प्रत्यक्षफलदा मर्त्ये स्थानं नास्ति ततोऽधिकम्॥ ३॥

श्रीमहादेव जी— हे मुनिवर! आप सावधान होकर सुनें। मैं आपको कामरूप तीर्थ का माहात्म्य सुनाता हूँ। जहाँ प्रत्यक्षफलदात्री शिवा भगवती साक्षात् विराजमान रहती हैं। उससे बढ़कर कोई अन्य स्थान मर्त्त्यलोक में नहीं है।। ३।।

यत्र देवाः सगन्धर्वा ब्रह्माद्याश्च सुरोत्तमाः।
प्रत्यहं समुपागत्य सेवन्ते भक्तितत्पराः॥ ४॥

जहाँ सभी देवता, गन्धर्व, ब्रह्मा आदि विशिष्ट देवता प्रतिदिन भक्तिपूर्वक आकर उनकी सेवा करते हैं।। ४।।

योनिरूपा महामाया पूर्णाद्या परमेश्वरी।
पृथ्व्या लोकहितार्थाय तत्रास्ते निजलीलया॥ ५॥

जहाँ स्वयं साक्षात् योनिरूपा, महामाया, पूर्णा, आद्या भगवती महेश्वरी स्वकीय लीला हेतु पृथ्वी पर लोकहित के लिये विराजमान हैं।। ५।।

यत्राकार्षीत्तपः पूर्वं ब्रह्मा विष्णुस्तथेश्वरः।
अभीप्सुर्भगवत्यास्तु कामाख्यां मुनिसत्तम॥ ६॥

हे मुनीश्वर! जहाँ ब्रह्मा जी, भगवान् विष्णु एवं भगवान् शङ्कर ने अपनी अपनी मनःकामना पूर्ति हेतु उग्र तप किया था।। ६।।

यत्र कृत्वा पुरश्चर्यां वसिष्ठो मुनिसत्तमः।
सिद्धमन्त्रोऽभवत् पूर्वं सृष्टिकर्त्रेव चापरः॥ ७॥

जहाँ पुराकाल में मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ पुरश्चर्या करके ऐसे सिद्धमन्त्र बनाये थे मानो दूसरे ब्रह्मा जी ही हों।। ७।।

अव्याहताज्ञा ये चान्ये सिद्धा देवर्षयस्तथा।
ते सर्वे मुनिशार्दूल कामाख्यायाः प्रसादतः॥ ८॥

अन्य महर्षि भी यहाँ तपस्या कर भगवती कामाख्या के प्रभाव से ऐसे सिद्ध हो गये कि जिनकी आज्ञा टालने का कोई साहस नहीं कर सकता।। ८।।

सिद्धमन्त्राः समभवंस्तत्र जप्त्वा महामनुम्।
खेचरत्वमनुप्रापुस्तथा देवाधिपूज्यताम्॥ ९॥

ऐसे भी सिद्धमन्त्र पुरुष हो चुके हैं जिन्होंने कामाख्या में महादेवी का महामन्त्र जपकर उसके प्रभाव से उन्होंने आकाशचारित्व प्राप्त कर लिया तथा देवताओं में अग्रगण्य बन गये।। ९।।

योनिरूपां भगवतीं सुगुप्तां मुनिसत्तम!
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा सुसम्पूज्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥ १०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उन सुगुप्ता योनिरूपा भगवती का दर्शन स्पर्शन एवं पूजन कर साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।। १०।।

विहरेत् पृथिवीपृष्ठे शूलपाणिरिवापरः।
निग्रहानुग्रहे शक्तो देवानामपि नारद!॥ ११॥

हे नारद! देवी का वह श्रद्धालु भक्त धरातल पर दूसरे भगवान् शङ्कर के समान समर्थ भाव से घूमता है। उसमें इतना सामर्थ्य आ जाता है कि वह देवताओं पर भी निग्रह या अनुग्रह रख सकता है।। ११।।

तदाज्ञावशगाः सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः।
नासाध्यं विद्यते तस्य मुने लोकत्रये तथा॥ १२॥

इन्द्रसहित सभी देवता देवीभक्त के वश में होते हैं। उसके लिये इन तीनों लोकों में कुछ भी असाध्य नहीं है।। १२।।

तस्यैव जन्म सफलं यो गत्वा योनिमण्डले।
प्रणमेत् परया भक्त्या देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥ १३॥

इस लोक में उस पुरुष का ही जन्म सफल कहा जा सकता है जो योनिमण्डल में जाकर भगवती त्रिपुरभैरवी की उपासना करता है।। १३।।

क्षेत्रस्पर्शनमात्रेण ब्रह्महापि नरः क्षणात्।
मुच्यते नात्र सन्देहः कामाख्यायाः प्रसादतः ॥ १४ ॥

इस कामाख्या क्षेत्र की धूलि के स्पर्शमात्र से ब्रह्महत्याकारी पुरुष भी भगवती की कृपा से महापातक से मुक्त हो जाता है।। १४।।

कामाख्यादर्शनं वत्स देवानामपि दुर्लभम्।
तद्यः पश्यति कामाख्यां स देवपरिपूजितः ॥ १५ ॥

हे वत्स! कामाख्या का दर्शन देवताओं को भी दुर्लभ है। जिसने एक बार भी कामाख्या देवी का दर्शन कर लिया उसकी देवता भी पूजा करते हैं।। १५।।

जन्मान्तरसहस्रैस्तु सञ्चितं पापपुञ्जकम्।
क्षणेन भस्मसात्कुर्यात् कामाख्यायाः प्रदर्शनम् ॥ १६ ॥

इतना ही नहीं, कामाख्या देवी का दर्शन हजारों जन्मों के सञ्चित पापसमूह को एक क्षण में ही नष्ट कर सकता है।। १६।।

गोपनीयं त्वया वत्स नान्यत्रैतत् प्रकाश्यताम्।
कामाख्यासदृशं तीर्थं नास्त्येव धरणीतले ॥ १७ ॥

हे वत्स! परन्तु तुम्हें यह बात गुप्त रखनी चाहिये। किसी दूसरे से नहीं कहना चाहिये कि इस भूमण्डल पर कामाख्या के समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है।। १७।।

अङ्गप्रत्यङ्गपातेन सत्याः पुण्यतमो मुने!
देशो भारतखण्डेऽस्मिन्नृणां पापप्रणाशकः ॥ १८ ॥

हे मुने! इस भारतखण्ड में सती देवी के अङ्ग–प्रत्यङ्ग जिस जिस क्षेत्र में गिरे वह देश देवी की कृपा से प्राणियों के पापनाशक हो गये।। १८।।

अङ्गेषु भगवत्यास्तु योनिः श्रेष्ठतमा यतः।
योनिरूपा हि सा देवी सर्वासु स्त्रीष्ववस्थिता ॥ १९ ॥

उन भगवती के अङ्गों में योनि ही श्रेष्ठ मानी जाती है; क्योंकि योनिरूपा वह देवी सभी स्त्रियों में विराजमान हैं।। १९।।

सा योनिः पतिता यत्र तत्र साक्षात् स्वयं सती।
तेन नास्ति समं स्थानं पुण्यदं धरणीतले ॥ २० ॥

उन भगवती सती की योनि का जहाँ पात हुआ उसके समान पुण्यदायक स्थल इस देश में अन्य कोई नहीं है।। २०।।

शम्भुर्वाराणसीक्षेत्रे नराणां मुक्तिदायकः।
आराध्यः सिद्धगन्धर्वैर्देवकिन्नरराक्षसैः॥ २१॥

वाराणसी क्षेत्र में भगवान् शङ्कर प्राणियों को मुक्ति प्रदान करते हैं, जो कि सिद्ध, गन्धर्व, देव, किन्नर, राक्षस—सभी के पूज्य हैं।। २१।।

स शम्भुः काङ्क्षते यत्र मुक्तिस्तस्मान्महेश्वरीम्।
प्रत्यहं समुपागत्य स्थानं नास्ति ततोऽधिकम्॥ २२॥

वे भी उन महेश्वरी से मोक्षज्ञान की कामना से प्रतिदिन इस कामाख्या क्षेत्र में आते हैं तो इससे उत्कृष्ट स्थान कौन होगा?।। २२।।

प्रदक्षिणं कृतं येन तीर्थं श्रीयोनिमण्डलम्।
कृतं लोकत्रयं तेन प्रदक्षिणमशेषतः॥ २३॥

जिसने योनिमण्डल की प्रदक्षिणा कर ली, समझ लीजिये उसने तीनों लोकों की प्रदक्षिणा कर ली।। २३।।

निर्माल्यं शिरसा यस्तु कामाख्यायाः प्रधारयेत्।
स देवपूज्यतामेत्य विहरेद् भैरवोपमः॥ २४॥

जो कामाख्या देवी का निर्माल्य (पूजापुष्प) शिर पर धारण करता है वह भैरव के समान देवताओं से भी सत्कार पाता है।। २४।।

न तस्य विद्यते भीतिः कुत्रापि धरणीतले।
भयदाः प्रपलायन्ते भयात्तस्य सुदूरतः॥ २५॥

उसे इस धरातल में कहीं किसी से भी भय नहीं होता। अपितु भयोत्पादक प्राणी उससे भय मान कर दूर रहते हैं।। २५।।

देवी के प्रसाद की महिमा

प्रसादो येन केनापि दत्तो देव्या महामुने!
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यो नात्र कार्या विचारणा॥ २६॥

हे महामुनि! जिस किसी भी जाति या वर्ण में उत्पन्न पुरुष यदि देवी का प्रसाद दे रहा हो तो उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम कर ग्रहण कर लेना चाहिये। इसमें किसी प्रकार का (ऊँच-नीच का) विचार नहीं करना चाहिये।। २६।।

उत्तमोऽपि मुने वर्णो न्यूनवर्णादवाप्य वै।
प्रसादं भक्षयेद्भक्त्या नत्वा च शिरसा पुनः।
विभूतिं समवाप्नोति कैवल्यं तत्प्रसादतः॥ २७॥

हे मुने! उत्तम वर्ण के पुरुष को हीन वर्ण के पुरुष से प्रसाद प्राप्त कर, उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम कर ग्रहण करना चाहिये। देवी की कृपा से वह (प्रसाद खाने वाला) पुरुष इस लोक में अतुल ऐश्वर्य तथा अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है।। २७।।

कामाख्या में कृत श्राद्ध की महिमा

तत्र श्राद्धं कृतं येन पितृणां तृप्तिमिच्छता।
गयाश्राद्धं कृतं तेन सहस्राब्दं न संशयः॥ २८॥

यदि किसी पुरुष ने अपने पितरों की तृप्ति हेतु कामाख्या क्षेत्र में श्राद्ध किया है तो उसके लिये समझ लीजिये कि उसने हजार वर्ष तक गया–श्राद्ध किया है।। २८।।

लौहित्य में स्नान की महिमा

लौहित्ये तु कृतस्नानः प्रयतः साधकोत्तमः।
पुरश्चर्यां नरः कृत्वा सिद्धमन्त्रो भवेद् ध्रुवम्॥ २९॥

लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नदी में स्नान कर साधक शुद्धचित्त से यदि पुरश्चर्या (मन्त्रजप) करता है, वह निश्चित ही सिद्धमन्त्र हो जाता है।। २९।।

अव्याहताज्ञः स भवेन्भवेश्वर इवापरः।
भूचरः खेचरत्वं च प्राप्नुयात्तत्प्रसादतः॥ ३०॥

वह भगवान् शङ्कर की तरह अव्याहत (अबाधित) आज्ञा वाला होता है और वह देवी की कृपा से भू और आकाशचरण की शक्ति भी प्राप्त कर लेता है।। ३०।।

मन्त्रजप में मुहूर्त आदि का निषेध

कालादींस्तत्र मोहेन कदाचिन्न विचारयेत्।
पुरश्चर्याविधौ मन्त्री विचार्य नरकं व्रजेत्॥ ३१॥

साधक को पुरश्चर्या (मन्त्रजाप) विधि में समय विशेष या मुहूर्तविशेष का भ्रम नहीं करना चाहिये। ऐसा करने वाला साधक नरकगामी होता है।। ३१।।

सुरत्वं सुरराजत्वं ब्रह्मत्वं वा शिवत्वकम्।
विष्णुत्वं सुलभं तत्र जपतां भैरवीमनुम्॥ ३२॥

भैरवीमन्त्र का जप करने वाले को देवत्व, इन्द्रत्व, ब्रह्मत्व तथा शिवत्व एवं विष्णुत्व अतीव सुलभ होता है।। ३२।।

जमदग्निसुतो रामः कार्तवीर्यवधेच्छया।
तत्र कृत्वा पुरश्चर्यां प्रत्यक्षं विष्णुतामगात्॥ ३३॥

जमदग्निपुत्र परशुराम ने कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) के वध की इच्छा से इसी स्थान पर पुरश्चर्या कर विष्णुत्व प्राप्त किया था।। ३३।।

तथैव भुवि ये चान्ये कुर्युस्तत्र पुरस्क्रियाम्।
ते सर्वे समतामेत्य अन्ते मोक्षमवाप्नुयुः॥ ३४॥

उसी तरह इस पृथ्वी पर अन्य साधकों ने भी पुरश्चर्या की थी। वे सभी देवों की समता प्राप्त कर अन्त में मोक्ष प्राप्त कर गये।। ३४।।

कामाख्या परमं तीर्थं कामाख्या परमं तपः।
कामाख्या परमो धर्मः कामाख्या परमा गतिः॥ ३५॥

कामाख्या एक उत्कृष्ट तीर्थ है। कामाख्या एक उत्कृष्ट तप:स्थल है। कामाख्या एक परम धार्मिक क्षेत्र है। कामाख्या क्षेत्र उत्कृष्ट गति प्रदान करने वाला स्थान है।। ३५।।

कामाख्या परमं वित्तं कामाख्या परमं पदम्।
विभाव्यैवं मुनिश्रेष्ठ न पुनर्जन्मभाग्भवेत्॥ ३६॥

कामाख्या उत्कृष्ट ऐश्वर्य प्राप्ति का साधन है। कामाख्या में की गयी साधना परम पद तक पहुँचाती है। यह विचार कर हे मुनिश्रेष्ठ! वह साधक पुनर्जन्म का अधिकारी नहीं रह जाता।। ३६।।

दर्शनं बहुसाहस्रजन्मान्तरसुसञ्चितम्।
विद्यते सुमहत्पुण्यं यस्य तस्यैव जायते॥ ३७॥

यह कामाख्या देवी का दर्शन, किसी किसी साधक को ही हजारों जन्मों से अर्जित पुण्य के प्रताप से हो जाता है।। ३७।।

तीर्थं श्रीकामरूपाख्यं देवानामपि दुर्लभम्।
अन्येषां दुर्लभं ज्ञेयं देवीलोकं यथा मुने!॥ ३८॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे कामाख्यामाहात्म्यवर्णने
षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७६॥

हे मुने! यह कामाख्या तीर्थ देवताओं को भी दुर्लभ है। अन्य साधारण प्राणियों को तो फिर यह देवीलोक दुर्लभ होगा ही।। ३८।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में कामाख्यादेवी माहात्म्य रूप
छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

[महाकामाख्याकवचवर्णन]

श्रीनारद०— "कामरूपे महाक्षेत्रे काऽधिष्ठात्री महेश्वरी।
विद्यानां दशमूर्तीनां तन्मे ब्रूहि महेश्वर॥ १॥

श्रीनारद— हे महेश्वर! इस कामरूप महाक्षेत्र की मुख्य अधिष्ठात्री देवी कौन हैं? तथा दश महाविद्याओं की अधिष्ठात्री देवी कौन हैं?—कृपया विस्तार से बताइये।। १।।

श्रीमहादेव०— दशैवैता महाविद्याः क्षेत्रस्था मुनिसत्तम!
साधकानां हितार्थाय जपपूजाफलप्रदाः॥ २॥
कामाख्या कालिका देवी स्वयमाद्या सनातनी।
तस्याः पार्श्वे स्थिताश्चान्या नव विद्या महामते॥ ३॥

श्रीमहादेव जी— हे मुनिश्रेष्ठ! दशों ही महाविद्याएँ लोकहित में साधकों के जप एवं पूजा का फल प्रदान करने हेतु इस क्षेत्र में विराजमान रहती हैं, इनमें अविनाशिनी कामाख्या भगवती कालिका देवी प्रमुख हैं। हे महामते! अन्य नौ महाविद्याएँ उन्हीं के आस–पास विराजमान रहती हैं।। २–३।।

सर्वविद्यात्मिका काली कामाख्यारूपिणी यतः।
ततस्तां तत्र सम्पूज्य पूजयित्वेष्टदेवताम्।
इष्टमन्त्रं जपेद्भक्त्या सिद्धमन्त्रो भवेत् तदा॥ ४॥

क्योंकि काली देवी कामाख्यारूपिणी हैं एवं सर्वविद्यात्मिका हैं। अतः उसकी पूजाकर, तथा एतदनन्तर अपने इष्टदेवता की पूजा कर यदि कोई साधक अपने अभीष्ट मन्त्र का जप करता है तो वह मन्त्र एक दिन 'सिद्धमन्त्र' हो जाता है।। ४।।

महाकाली का ध्यान

ध्यायतां परमेशानीं कामाख्यां कालिकां पराम्।
रक्तवस्त्रपरीधानां घोरनेत्रत्रयोज्ज्वलाम्॥ ५॥
चतुर्भुजां भीमदंष्ट्रां युगान्तजलदद्युतिम्।
मणिसिंहासने न्यस्तां सिंहप्रेताम्बुजस्थिताम्॥ ६॥

हरिः सिंहः शवः शम्भुर्ब्रह्मा कमलरूपधृक्।
ललज्जिह्वां महाघोरां किरीटकनकोज्ज्वलाम्॥ ७॥
अनर्घ्यमणिमाणिक्यघटितैः भूषणोत्तमैः।
अलंकृतां जगद्धात्रीं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्॥ ८॥

सर्वप्रथम साधक को उन भगवती कामाख्या परामहाकाली के इस रूप का ध्यान करना चाहिये—

वे रक्त वस्त्र धारण किये हुए हैं, उनके तीनों नेत्र भयङ्कर उज्ज्वल हैं। वे चार भुजाओं वाली हैं। उनकी दाढ़ भय प्रदान करने वाली हैं। उनका वर्ण प्रलयकालीन मेघ के समान श्याम है। वे मणिमय सिंहासन पर विराजमान हैं। वे सिंह, शव एवं कमल पर विराजमान् हैं। वहाँ भगवान् विष्णु ही सिंहस्वरूप हैं, भगवान् शङ्कर शवरूप हैं, तथा ब्रह्मा कमलरूप हैं। उनकी जिह्वा लपलपाती रहती है। वे देखने में महाभयानक हैं। सुवर्णमय मुकुट धारण किये हुए हैं। वे महँगे मणिरत्नों से युक्त श्रेष्ठ आभूषण धारण की हुई हैं। सर्वथा अलङ्कृत हैं। जगन्माता हैं तथा सृष्टि की स्थिति, रक्षा एवं प्रलय करने वाली हैं।। ५–८।।

अन्य नौ महाविद्याएँ

वामे तारा भगवती दक्षिणे भुवनेश्वरी।
अग्नौ तु षोडशी विद्या नैर्ऋत्यां भैरवी स्वयम्॥ ९॥

इनके वामभाग में भगवती *तारा* विराजमान हैं। दक्षिण भाग में *भुवनेश्वरी* देवी विराजमान हैं। अग्निकोण में *षोडशी* विद्या हैं तथा नैर्ऋत्य कोण में स्वयं *भैरवी* विराजमान हैं।। ९।।

वायव्यां छिन्नमस्ता च पृष्ठतो बगलामुखी।
ऐशान्यां सुन्दरी विद्या चोर्ध्वमनङ्गनायिका॥ १०॥

वायव्य कोण में *छिन्नमस्ता* देवी विराजमान हैं। पीछे भगवती *बगलामुखी*। ईशान कोण में भगवती *सुन्दरी* तथा ऊपर की तरफ *अनङ्गनायिका* हैं।। १०।।

याम्यां धूमावती विद्या महापीठस्य नारद!
अधस्ताद्भगवान्रुद्रो भस्माचलमयः स्वयम्॥ ११॥

दक्षिण में *धूमावती* विद्या हैं। हे नारद! इस महापीठ के नीचे स्वयं भगवान् रुद्र स्वयं भस्म पर्वत के रूप में स्थित हैं।। ११।।

ब्रह्मविष्णुमुखाश्चान्ये देवाः शक्तिसमन्विताः।
सदा सन्निहितास्तत्र पीठे लोके सुदुर्लभे॥ १२॥

उस सुदुर्लभ लोक में स्थित उक्त महापीठ में शक्तिपात प्राप्त अन्य देवता भी ब्रह्मा, विष्णु एवं भगवान् शङ्कर सहित सर्वदा उपस्थित रहते हैं।। १२।।

देवी की पूजा

तत्र सम्पूजयेद्देवीं परिवारसमन्विताम्।
विविधैरूपचारैश्च यथाविभववित्तैः॥ १३॥

वहाँ बैठकर (देवी के) परिवार सहित देवी की पूजा विविध पूजाद्रव्यों से, अपने वैभव एवं वित्त के अनुसार करें।। १३।।

इच्छन्देव्याः परां प्रीतिं सद्भक्त्या प्रयतो नरः।
न पुनर्जननाशङ्का विद्यते मुनिसत्तम!॥ १४॥

यदि वह देवी के उत्कृष्ट स्नेह का इच्छुक हो तो उसे भक्तिपूर्वक सावधान चित्त से पूजा करनी चाहिये। इससे हे मुनिश्रेष्ठ! उस साधक के पुनर्जन्म की सम्भावना नहीं रहती।। १४।।

बिल्वपत्रं महादेव्यै यो दद्याद् भक्तिभावतः।
स साक्षाच्छङ्करो ज्ञेयः सर्वलोकेश्वरेश्वरः॥ १५॥

जो श्रद्धाभक्तिपूर्वक भगवती को विल्वपत्र समर्पित करता है, उसे साक्षात् सर्वलोकेश्वर भगवान् शङ्कर ही जानना चाहिये।। १५।।

त्रिपत्रं बिल्वपत्रं तु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
यदात्मकमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ १६॥
तद्ददाति च यो देव्यै पूर्णायै मुनिसत्तम!
सम्पूर्णजगतो दानफलं सम्प्राप्नुयान्नरः॥ १७॥

इनमें भी त्रिपत्र विल्वपत्र तो ब्रह्मा विष्णु महेश— इस त्रिमूर्ति का अनुकरण करता है। जैसा कि जितना बड़ा यह सम्पूर्ण जगत् स्थावर जङ्गम रूप है, हे मुनिश्रेष्ठ! उन पूर्णा देवी को यदि यह समग्र जगत् भेंट में चढ़ा दिया जाय तो भी यह भेंट उस त्रिपत्र बिल्वपत्र की समानता नहीं कर सकती।। १६–१७।।

सम्पूर्णकामो भूपृष्ठे विहरेन्मानवोत्तमः।
तस्य जन्म च सम्पूर्णं न पुनर्जायते क्वचित्॥ १८॥

यह त्रिपत्र बिल्वपत्र से भगवती की पूजा करने वाला साधक अपनी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण मानता हुआ समग्र भूमण्डल पर सन्तोषवृत्ति से विचरण

करता है। उसका यह जन्म अन्तिम है। उसके इस लोक में पुनर्जन्म की कोई सम्भावना नहीं रहती।। १८।।

कामाख्यास्थित शिव की पूजा

तत्र यो भक्तिभावेन भस्माचलमयं शिवम्।
पूजयेद्भस्मलिप्ताङ्गो बिल्वपत्रैर्महामते!
स याति परमं मोक्षं भुक्त्वा भोगं मनोरथम्॥ १९॥

हे महामते! इस कामाख्या पीठ में भस्मपर्वत के रूप में स्थित भगवान् शङ्कर की जो साधक, अपने शरीर में भस्म लपेट कर, विल्वपत्रों से पूजा करता है वह इस लोक में अपनी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर अन्त में मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है।। १९।।

रुद्राक्षधारण का महत्त्व

रुद्राक्षं बिभृयान्नित्यं शैवः शाक्तोऽथ वैष्णवः।
युक्तस्तेन महापुण्यं कृत्वा कर्म समश्नुते॥ २०॥

प्रत्येक साधक को, फिर भले ही वह शैव हो, या वैष्णव, या फिर शाक्त ही हो, नित्य रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। इससे महान् पुण्यफल प्राप्त होता है।। २०।।

रुद्राक्षधारी सम्पूज्य रुद्रं संहारकारकम्।
रुद्रत्वं समवाप्नोति क्षेत्रेऽस्मिन्नात्र संशयः॥ २१॥

रुद्राक्ष धारण करने वाला साधक, संहारकारक रुद्र की पूजा कर, इस क्षेत्र में रुद्रत्व भाव प्राप्त कर लेता है— इसमें कोई संशय नहीं।। २१।।

अमायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा दिनक्षये।
नवम्यां रजनीयोगे यो जपेद् भैरवीमनुम्॥ २२॥
क्षेत्रेऽस्मिन्प्रयतो भूत्वा निर्भयः साहसं वहन्।
तस्य साक्षाद्भगवती प्रत्यक्षं जायते ध्रुवम्॥ २३॥

अमावास्या, चतुर्दशी, अष्टमी अथवा किसी तिथिक्षय के दिन या नवमी की रात्रि में जो भैरवीमन्त्र का जप करता है, वह जप इस क्षेत्र में सावधान होकर निर्भयता और साहसपूर्वक करना चाहिये। ऐसा करने से भगवती देवी उस साधक को प्रत्यक्ष दर्शन निश्चय ही देती हैं।। २३।।

आत्मसंरक्षणार्थाय मन्त्रसंसिद्धयेऽपि च।
प्रपठेत् कवचं देव्यास्ततो भीतिर्न जायते॥ २४॥

परन्तु साधक को यहाँ भय की निवृत्ति के लिये, आत्मसंरक्षण एवं निर्विघ्न मन्त्रसिद्धि हेतु, मन्त्रजप से पूर्व, देवी के कवच का पाठ कर लेना चाहिये, जिससे मन्त्रजाप के समय किसी प्रकार के भय की आशङ्का न रहे।। २४।।

तस्मात् पूर्वं विधायैवं रक्षां सावहितो नरः।
प्रजपेत् स्वेष्टमन्त्रस्तु निर्भीतो मुनिसत्तम!॥ २५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अतः मन्त्रजप से पूर्व, साधक को रक्षाविधान की व्यवस्था करके ही अपने इष्ट मन्त्र के जप का आरम्भ सावधानी के साथ निर्भीक होकर करना चाहिये।। २५।।

देवीकवच

नारद०— **"कवचं कीदृशं देव्या महाभयनिवर्तकम्।**
कामाख्यायास्तु तद् ब्रूहि साम्प्रतं मे महेश्वर!"॥ २६॥

श्री नारद— हे महेश्वर! कामाख्यादेवी का वह महाभयनिवर्तक कवच कौन सा है? अब कृपया मुझे वह बताइये।। २६।।

श्रीमहादेव०— **श्रृणुष्व परमं गुह्यं महाभयनिवर्तकम्।**
कामाख्यायाः सर्वश्रेष्ठं कवचं सर्वमङ्गलम्॥ २७॥

श्रीमहादेव— हे मुनिवर! वह कामाख्या देवी का सर्वविध मङ्गलप्रद एवं सर्वश्रेष्ठ महाभयनिवर्तक कवच मुझसे ध्यानपूर्वक सुनो!।। २७।।

यस्य स्मरणमात्रेण योगिनीडाकिनीगणाः।
राक्षस्यो विघ्नकारिण्यो याश्चान्या विघ्नकारिकाः॥ २८॥
क्षुत्पिपासा तथा निद्रा तथान्ये ये च विघ्नदाः।
दूरादपि पलायन्ते कवचस्य प्रसादतः॥ २९॥

जिसके स्मरणमात्र से योगिनी एवं डाकिनियों का समूह, विघ्नकारिणी, राक्षसी, एवं अन्य ऐसी ही विघ्नकारिणी हीन देव-जातियाँ तथा भूख, प्यास निद्रा अथवा ऐसे ही अन्य विघ्नकारक उपद्रव इस कवच-पाठ के प्रभाव से दूर से ही भाग जाते हैं।। २८-२९।।

निर्भयो जायते मर्त्यस्तेजस्वी भैरवोपमः।
समासक्तमनाश्चापि जपहोमादिकर्मसु।
भवेच्च मन्त्रतन्त्राणां निर्विघ्नेन सुसिद्धये॥ ३०॥

इस कवच का प्रभाव ही ऐसा है कि साधक पुरुष भैरव के समान निर्भय तथा प्रतापवान् बन जाता है तथा उसका चित्त जप होम आदि कर्मों में

लगा रहता है। इसके प्रभाव से मन्त्र–तन्त्रों की सिद्धि भी निर्विघ्न भाव से हो जाती है।। ३०।।

कामाख्या कवचम्

ॐ प्राच्यां रक्षतु मे तारा कामरूपनिवासिनी।
आग्नेय्यां षोडशी पातु याम्यां धूमावती स्वयम्॥ ३१॥

ॐ पूर्व दिशा में कामरूपनिवासिनी तारा भगवती मेरी रक्षा करें। आग्नेयी दिशा में षोडशी भगवती तथा दक्षिण दिशा में स्वयं धूमावती देवी मेरी रक्षा करें।। ३१।।

नैर्ऋत्यां भैरवी पातु वारुण्यां भुवनेश्वरी।
वायव्यां सततं पातु छिन्नमस्ता महेश्वरी॥ ३२॥

नैर्ऋत्य दिशा में भैरवी देवी, तथा वारुणी दिशा में भुवनेश्वरी देवी, वायव्य में निरन्तर छिन्नमस्ता देवी मेरी रक्षा करें।। ३२।।

कौबेर्यां पातु मे देवी श्रीविद्या बगलामुखी।
ऐशान्यां पातु मे नित्यं महात्रिपुरसुन्दरी॥ ३३॥

कौवेरी दिशा में श्रीविद्या देवी वगलामुखी एवं ऐशान्य दिशा में महात्रिपुरसुन्दरी देवी मेरी रक्षा करें।। ३३।।

ऊर्ध्वं रक्षतु मे विद्या मातङ्गी पीठवासिनी।
सर्वतः पातु मे नित्यं कामाख्या कालिका स्वयम्॥ ३४॥

ऊपर की तरफ, इसी कामाख्या पीठ में रहने वाली श्री विद्या मातङ्गी देवी मेरी रक्षा करें तथा इसी पीठ में रहने वाली कामाख्या काली देवी मेरी सब तरफ से रक्षा करें।। ३४।।

ब्रह्मरूपा महाविद्या सर्वविद्यामयी स्वयम्।
शीर्षे रक्षतु मे दुर्गा भालं श्रीभवगेहिनी॥ ३५॥

ब्रह्मविद्या एवं महाविद्या तथा सर्वविद्यामयी एवं शङ्कर भगवान् की पत्नी भगवती दुर्गा मेरे शिर तथा मस्तक की रक्षा करें।। ३५।।

त्रिपुरा भ्रूयुगं पातु शर्वाणी पातु नासिकाम्।
चक्षुषी चण्डिका पातु श्रोत्रे नीलसरस्वती॥ ३६॥

त्रिपुरादेवी मेरी भौहों की......, शर्वाणी मेरी नासिका की......, चण्डिका मेरे नेत्रों की........, तथा नीलसरस्वती मेरे कानों की रक्षा करें।। ३६।।

मुखं सौम्यमुखी पातु ग्रीवां रक्षतु पार्वती।
जिह्वां रक्षतु मे देवी जिह्वाललनभीषणा॥ ३७॥

सौम्यमुखी देवी मेरे मुख की....... तथा पार्वती जी मेरी ग्रीवा की...........। मेरी जिह्वा की रक्षा वह लपलपाती जिह्वा से भयङ्कर लगने वाली देवी करें ।। ३७ ।।

वाग्देवी वदनं पातु वक्षः पातु महेश्वरी।
बाहू महाभुजा पातु कराङ्गुलीः सुरेश्वरि॥ ३८ ॥

श्री वाग्देवी मेरे वदन (मुखाकृति) की रक्षा करें। महेश्वरी देवी मेरे वक्ष (छाती) की रक्षा करें। महाभुजा देवी मेरी बाहुओं की रक्षा करें तथा सुरेश्वरी मेरे हाथ की अंगुलियों की रक्षा करें ।। ३८ ।।

पृष्ठतः पातु भीमास्या कट्यां देवी दिगम्बरी।
उदरं पातु मे नित्यं महाविद्या महोदरी॥ ३९ ॥

भीममुखवाली देवी मेरे पृष्ठ भाग की रक्षा करें तथा दिगम्बरी देवी मेरे कटि प्रदेश की रक्षा करें। तथा महोदरी महाविद्या मेरे उदर की रक्षा करें ।। ३९ ।।

उग्रतारा महादेवी जङ्घोरू परिरक्षतु।
गुदं मुष्कं च मेढ्रं च नाभिं च सुरसुन्दरी॥ ४० ॥

उग्रतारा महादेवी मेरी जाँघों की रक्षा करें। मेरी गुदा, मूत्रेन्द्रिय, अण्डकोश तथा नाभि प्रदेश की रक्षा सुरसुन्दरी देवी करें ।। ४० ।।

पादाङ्गुली सदा पातु भवानी त्रिदशेश्वरी।
रक्तमांसास्थिमज्जादीन् पातु देवी शवासना॥ ४१ ॥

मेरे पैरों की अंगुलियों की रक्षा त्रिदशेश्वरी भवानी करें तथा शवासना देवी रक्त मांस अस्थि मज्जा आदि की रक्षा करें ।। ४१ ।।

महाभयेषु घोरेषु महाभयनिवारिणी।
पातु देवी महामाया कामाख्यापीठवासिनी॥ ४२ ॥

दारुण महाभय उपस्थित होने पर, महाभयनिवारिणी कामाख्या–पीठवासिनी महामाया देवी मेरी रक्षा करें ।। ४२ ।।

भस्माचलगता दिव्यसिंहासनकृताश्रया।
पातु श्रीकालिकादेवी सर्वोत्पातेषु सर्वदा॥ ४३ ॥

भस्मपर्वत स्थित. दिव्य सिंहासन पर विराजमान श्री कालिकादेवी सभी उत्पातों से मेरी रक्षा करें ।। ४३ ।।

रक्षाहीनं तु यत्स्थानं कवचेनापि वर्जितम्।
तत्सर्वं सर्वदा पातु सर्वरक्षणकारिणी॥ ४४ ॥

तथा सर्वरक्षणकारिणी देवी मेरे शरीर के उन स्थानों की रक्षा करें जिन्हें मैं रक्षामन्त्रों में गिना नहीं पाया हूँ या कवचवर्जित रह गये हैं।। ४४।।

इदं तु परमं गुह्यं कवचं मुनिसत्तम!
कामाख्याया मयोक्तं ते सर्वरक्षाकरं परम्॥ ४५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह कामाख्या देवी का परम गोपनीय तथा सर्वरक्षाकर कवच मैंने आपको सुना दिया।। ४५।।

अनेन कृत्वा रक्षां तु निर्भयः साधको भवेत्।
न तं स्पृशेद्भयं घोरं मन्त्रसिद्धिविरोधकम्॥ ४६॥

साधक इससे अपने शरीर की रक्षा कर निर्भय होकर मन्त्रजप में प्रवृत हो तो उसे मन्त्रसिद्धि (इच्छा) में विघ्नकारक कोई भी भीषण भय स्पर्श नहीं कर सकता।। ४६।।

जायते च मनःसिद्धिर्निर्विघ्नेन महामते!
इदं यो धारयेत्कण्ठे बाहौ वा कवचं महत्॥ ४७॥

हे महामते इस कवच को जो कण्ठ या बाहु में बाँध कर रखेगा उस साधक की मनःसिद्धि भी निर्विघ्न पूर्ण हो जाती है।। ४७।।

अव्याहताज्ञः स भवेत् सर्वविद्याविशारदः।
सर्वत्र लभते सौख्यं मङ्गलं तु दिने दिने॥ ४८॥

उसके आदेश सर्वत्र निर्विघ्न प्रचारित होंगे तथा वह सभी विद्याओं में पारङ्गत हो जायगा। वह सर्वत्र सुख अनुभव करेगा तथा प्रतिदिन उसका मङ्गल (अभ्युदय) बढ़ता रहेगा।। ४८।।

यः पठेत् प्रयतो भूत्वा कवचं चेदमद्भुतम्।
स देव्याः पदवीं याति सत्यं सत्यं न संशयः॥ ४९॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीमहाकामाख्याकवचवर्णनं नाम
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥

जो साधक सावधान होकर इस अद्भुत कवच का पाठ करता है, वह देवी की पदवी प्राप्त कर लेता है, वह सत्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।। ४९।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
श्रीमहाकामाख्याकवचवर्णनरूप
सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।

अठहत्तरवाँ अध्याय

[योनिपीठ-माहात्म्यवर्णन]

विशेष दिन में पूजा का महत्त्व

श्रीमहादेव०— वैशाखतृतीयायां तत्र सम्पूज्य चण्डिकाम्।
यो जपेत् परमं मन्त्रं तस्य कोटिगुणोत्तरम्।
जायते सुमहत्पुण्यं पुनर्जन्म न विद्यते॥ १॥

श्रीमहादेव जी— *वैशाख मास की (अक्षय) तृतीया के दिन* चण्डिका देवी की पूजा कर, जो मन्त्र का जप करता है उसे करोड़ों गुणा अधिक पुण्य होता है। उसका पुनर्जन्म भी नहीं होता।। १।।

शिवरात्रिचतुर्दश्यां रात्रौ सम्पूज्य शङ्करम्॥ २॥
सर्वतीर्थमये तस्मिन् क्षेत्रे देवादिदुर्लभे।
उपोष्य नियतो भूत्वा प्रहरे प्रहरे नरः॥ ३॥
पूजयेत् परया भक्त्या मां सदा तत्र संस्थितः।
प्राप्नोति स महापुण्यं वाजिमेधशतोद्भवम्॥ ४॥

शिवरात्रि के (फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी के) दिन भगवान् शङ्कर की पूजा कर देवादिदुर्लभ उस सर्वतीर्थयुक्त क्षेत्र में उपवास कर, शुद्धचित्त होकर, साधक, एक-एक प्रहर में वहाँ बैठकर उत्कृष्ट श्रद्धा भक्ति के साथ मेरी (शङ्कर की) पूजा करे, तो उसे सौ अश्वमेध यज्ञों का पुण्य होता है।। २-४।।

बिल्वपत्र से पूजा का महत्त्व

अन्यच्च यन्महापुण्यं स्नानदानादिसम्भवम्।
काश्यां तत्र दिने चापि पूजने यत्फलं तथा॥ ५॥
गवां कोटिसहस्राणां कुरुक्षेत्रे प्रदानतः।
यत्फलं जायते तस्मादधिकं मुनिसत्तम॥ ६॥
एकं मे बिल्वपत्रं यः प्रदद्याद्भक्तिभावतः।
स याति परमां मुक्तिं सत्यं सत्यं न संशयः॥ ७॥

और भी अन्य तीर्थों में कृत स्नान-दानादि के कारण जो पुण्यफल मिलता है, या काशी में उस दिन में पूजन का जो फल है या कुरुक्षेत्र में

करोड़ों गौओं के दान का जो महत्त्व है हे मुनिश्रेष्ठ! उससे अधिक फल जो मुझ को भक्तिभावपूर्वक एक बिल्वपत्र समर्पित करता है वह परम मुक्ति प्राप्त करता है— इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।। ५–७।।

स्वर्णपुष्पसहस्त्रैश्च मणिमाणिक्यसञ्चयैः।
अनर्घ्यरत्नैरभ्यर्चा न तथा प्रीतिकारिका।
यथा प्रीतिकरं बिल्वपत्रं मम महामुने॥ ८॥

हजारों स्वर्णपुष्पों से या मणिमाणिक्य आदि रत्नसमूहों से की हुई पूजा मुझे उतनी प्रिय नहीं है जितनी हे महामुने! बिल्वपत्र से की हुई पूजा मुझे प्रिय है।। ८।।

बिल्वमूले प्रपूज्याथ शङ्करं लोकशङ्करम्।
सुरश्रेष्ठत्वमाप्नोति न ततो विच्युतिर्भवेत्॥ ९॥

जो बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर मेरी पूजा करता है वह इन्द्र-प्रद प्राप्त कर लेता है, फिर उस पद से कभी च्युत नहीं होता।। ९।।

बिल्वमूले वसेत्तीर्थं सर्वश्रेष्ठतमं परम्।
तत्र सम्पूजनं शम्भोर्महापातकनाशनम्॥ १०॥

बिल्ववृक्ष के नीचे शिवमन्दिर (तीर्थ) बना कर रहना चाहिये क्योंकि वही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। वहाँ बैठकर शङ्कर का पूजन महापातकों का भी नाश कर देता है।। १०।।

ब्रह्मरूपी स्वयं रुद्रः सर्वलोकहिताय वै।
पृथिव्यां संस्थितः साक्षात् सर्वलोकेश्वरेश्वरः॥ ११॥

ब्रह्मरूपी भगवान् रुद्र (शङ्कर) सभी प्राणियों के हित के लिये साक्षात् सर्वलोकेश्वर बनकर पृथ्वी पर विराजमान हैं।। ११।।

अतः पुण्यतमं स्थानं महापातकनाशनम्।
विल्वमूलं मुनिश्रेष्ठ सर्वतीर्थान्महत्तरम्॥ १२॥

अतः हे मुनिश्रेष्ठ! बिल्ववृक्ष से बढ़कर कोई महापातकनाशक पुण्यमय स्थान नहीं है, जो सब तीर्थों से बढ़कर है।। १२।।

गङ्गा काशी गयातीर्थं प्रयागश्च महामते!
कुरुक्षेत्रं च यमुना तथैव च सरस्वती॥ १३॥
गोदावरी नर्मदा च तथान्यत्तीर्थमुत्तमम्।
सदा सन्निहितं ज्ञेयं बिल्वमूलेषु नारद!॥ १४॥

हे महामते नारद! गङ्गातट, काशी, गया तीर्थ, प्रयाग, कुरुक्षेत्र,

यमुनातट, सरस्वती गोदावरी नर्मदा आदि नदियों के तट या अन्य सभी तीर्थ बिल्ववृक्ष के नीचे स्थायी रूप से रहते हैं।। १३–१४।।

तत्र यत्क्रियते कर्म दैवं पैत्रं विधानतः।
तदक्षयतमं ज्ञेयं कोटिजन्मसुनिश्चितम्॥ १५॥

बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर जो भी देवसम्बन्धी या पितृसम्बन्धी कर्म किये जायँ उन्हें अक्षय समझा जाय तथा वे सब कार्य करोड़ों जन्म तक सुरक्षित रहते हैं।। १५।।

यस्तु बिल्वतरोर्मूले देहं त्यजति मानवः।
स याति परमं सौख्यं पदं ब्रह्मादिदुर्लभम्॥ १६॥

जो पुरुष बिल्ववृक्ष के नीचे देहत्याग करता है, वह अग्रिम जन्म में उत्कृष्ट ऐश्वर्य प्राप्त करता है तथा ब्रह्मा आदि के दुर्लभ पद भी प्राप्त कर सकता है।। १६।।

एवं पुण्यतमो यस्माद् बिल्ववृक्षः परात्परः।
शम्भोः प्रीतिकरो नित्यं तस्मात्तस्य त्रिपत्रकैः॥ १७॥
पूजयित्वा महेशानं मुच्यते भवबन्धनात्।
फलं तस्य तथा शम्भोः परमाह्लाददायकम्॥ १८॥

क्योंकि बिल्ववृक्ष इतना महत्त्वपूर्ण है, उत्कृष्टतम है, भगवान् शङ्कर के लिये नित्य प्रीत्युत्पादक है, अतः इस वृक्ष के तीन पत्तों वाले गुच्छ से भगवान् शङ्कर की पूजा कर साधक भवबन्धन से मुक्त हो सकता है। इसका यही फल है और यह भगवान् शङ्कर के लिये परम आह्लाददायक है।। १७–१८।।

दत्त्वा तस्मै नरः सद्यो महापुण्यं समश्नुते।
अन्यत्र यत्र कुत्रापि बिल्वपत्रादिकं मुने!।
महाप्रीतिकरं ज्ञेयं कामरूपे विशेषतः॥ १९॥

उन्हें यह बिल्वपत्र समर्पित कर तत्काल ही उत्कृष्ट पुण्य का फल उपभोग करता है। हे मुने! अन्यत्र भी जहाँ कहीं भी की गयी बिल्वपत्र से पूजा उनके लिये प्रीतिकर ही होती है, किन्तु विशेषतः यह पूजा कामरूप में महत्त्वपूर्ण होती है।। १९।।

अन्यत्ते किं मुने वक्ष्ये कामाख्यातीर्थतः क्वचित्।
नापरं विद्यते स्थानं महापुण्यफलप्रदम्॥ २०॥

हे मुने! अब तुम्हें इस तीर्थ की क्या विशेष वर्णन करूँ इससे बढ़कर कोई तीर्थस्थान नहीं है।। २०।।

चैत्रे मासि सिताष्टम्यां सर्वतीर्थमये शुभे॥ २१॥
लौहित्ये विधिवत्स्नात्वा तत्तोयैर्जगदम्बिकाम्।
पूजयेत्तत्र यो भक्त्या स मुक्तो भवबन्धनात्॥ २२॥

चैत्रशुक्ल अष्टमी के दिन सर्वतीर्थस्वरूप पवित्र ब्रह्मपुत्र (लौहित्य) नदी में विधिवत् स्नान कर जो उसके जल से भक्तिपूर्वक वहाँ जगदम्बा की पूजा करता है वह भवबन्धन से मुक्त हो जाता है।। २१–२२।।

सर्वतीर्थमयं स्थानं सर्वतीर्थादिकं परम्।
योनिपीठं महादेव्याः सर्वदेवसुदुर्लभम्॥ २३॥

महादेवी का यह योनिपीठ सर्वतीर्थमय है, अपि तु सभी तीर्थों से उत्कृष्ट है तथा यह देवताओं के लिये भी दुर्लभ है।। २३।।

सर्वदेवमयी पूर्णा यत्र पूज्यतमा स्वयम्।
सर्वतीर्थमयं पुण्यं लौहित्यं च सुदुर्लभम्॥ २४॥
अष्टम्यां च महापुण्यां तिथिं परमदुर्लभाम्।
एतेषां सङ्गतिर्यस्य बहुपुण्यवशेन वै।
तस्य भूयः क्षितौ जन्मशङ्कैव हि न विद्यते॥ २५॥

जहाँ कि सर्वदेवमयी पूज्या भगवती पूर्णा साक्षात् विराजमान हैं। सर्वतीर्थयुक्त पवित्र लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नदी भी सुदुर्लभ है, परमदुर्लभ, महापुण्ययुक्त अष्टमी की तिथि– इन तीनों (भगवती, लौहित्य नदी एवं अष्टमी) की सङ्गति बहुत पुण्य से मिला करती है। इनके सङ्गम पर यदि पूजा की जाय तो साधक के पुनर्जन्म की आशङ्का ही नहीं रहती।। २४– २५।।

तत्र यस्तर्पयेद्भक्त्या पितृन् लौहित्यवारिणा।
तस्य ते पितरो यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥ २६॥

वहाँ जो श्रद्धालु अपने मृत पितरों का ब्रह्मनद के पवित्र जल से तर्पण करता है, उस तर्पण से तृप्त होकर वे पितर निर्विघ्न रूप से ब्रह्मलोक में प्रवेश कर जाते हैं।। २६।।

अन्यच्चापि तपो दानं तत्र पुण्यफलप्रदम्।
अन्यतीर्थसहस्त्रेभ्यो ह्यधिकं मुनिसत्तमाः!॥ २७॥

हे मुनिश्रेष्ठो! और जो भी पुण्यफलप्रद तप या दान वहाँ रहकर

किया जाता है वह अन्य हजारों तीर्थों पर किये गये तप या दानों से अधिक फलदायक होता है।। २७।।

यथा पूज्यतमे लोके भवानी भवसुन्दरी।
पत्रेषु तुलसीपत्रं बिल्वपत्रं च शोभनम्॥ २८॥

जैसे इस श्रेष्ठ लोक में देवी भवानी सर्वसुन्दर श्रेष्ठ हैं, पत्रों में तुलसी पत्र तथा बिल्वपत्र ही श्रेष्ठ है।। २८।।

यथा मायाविनां श्रेष्ठः पुरुषः स गदाधरः।
तथा तीर्थेषु सर्वेषु श्रेष्ठं श्रीयोनिपीठकम्॥ २९॥

जैसे इस लोक में व्यवहार में भगवान् विष्णु सबसे कुशल हैं उसी तरह सभी तीर्थों में श्रीयोनिपीठ सर्वोत्तम है।। २९।।

य इदं तीर्थराजस्य योनिपीठस्य नारद!
माहात्म्यं श्रृणुयान्मर्त्यः स देव्याः पदवीमियात्॥ ३०॥

हे नारद! जो श्रद्धालु पुरुष इस तीर्थराज योनिपीठ का माहात्म्य सुनेगा वह देवी के लोक का अनुगामी होगा।। ३०।।

इत्युक्तं तीर्थराजस्य योनिपीठस्य नारद!
माहात्म्यं परमं गुह्यं भूयः किं श्रोतुमिच्छसि?॥ ३१॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे
योनिपीठमाहात्म्यवर्णनेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७८॥

हेनारद! इस प्रकार हमने आपको परम गोपनीय यह योनिपीठ का माहात्म्य सुना दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो।। ३१।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
श्रीयोनिपीठमाहात्म्यवर्णनरूप
अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।।

उन्नासीवाँ अध्याय

[तुलसीमाहात्म्यवर्णन]

श्रीनारद०— श्रुतं भवन्मुखाम्भोजान्माहात्म्यं परमेश्वर!
योनिपीठस्य तीर्थस्य महापातकनाशनम्॥ १॥

श्रीनारद— हे परमेश्वर! आपके श्रीमुख से श्रीयोनिपीठ तीर्थ का महापापनाशक माहात्म्य सुना।। १।।

तत्र त्वयोक्तं संक्षेपाद् बिल्वपत्रस्य चेश्वर!
अनुत्तमं महापुण्यं माहात्म्यं तच्च संश्रुतम्॥ २॥

हे ईश्वर! उसी माहात्म्य में आपने यथाप्रसङ्ग बिल्वपत्र का महान् पुण्यप्रद माहात्म्य भी संक्षेप में सुना दिया।। २।।

साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि तुलस्याः परमाद्भुतम्।
माहात्म्यमथ संक्षेपाद्रुद्राक्षस्य शिवस्य वै।
पूजायाश्च महादेव! संक्षेपादनुशाधि मे॥ ३॥

अब मैं आपके श्रीमुख से तुलसीपत्र, रुद्राक्ष एवं शिवपूजा का माहात्म्य भी सुनना चाहता हूँ। उन्हें आप मुझे संक्षेप में सुनाइये।।३।।

तुलसीमाहात्म्य

श्रीमहादेव०— तुलस्याः शृणु माहात्म्यं संक्षेपेण महामते!
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो नरो मुक्तिमवाप्नुयात्॥ ४॥

श्रीमहादेव जी— हे महामते! अब आप मुझसे तुलसीपत्र का माहात्म्य संक्षेप में सुनिये। जिसे सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्ति पा जाता है।। ४।।

तुलसीद्रुमरूपस्तु भगवान् पुरुषोत्तमः।
सर्वलोकपरित्राता विश्वात्मा विश्वपालकः॥ ५॥

तुलसी का वृक्ष साक्षाद् भगवान् विष्णु का रूप है। जो सभी लोकों को रक्षक, विश्वात्मा तथा विश्वपालक हैं।। ५।।

दर्शनात् स्पर्शनान्नामकीर्तनाद्धारणादपि।
प्रदानात् पापसंहर्त्री नराणां तुलसी सदा॥ ६॥

इसके दर्शन, स्पर्शन, नामकीर्तन एवं धारण तथा दान से मनुष्यों के सभी पाप नष्ट हो जाते है; क्योंकि तुलसीवृक्ष की यही महिमा है।। ६।।

प्रातरुत्थाय सुस्नातो यः पश्येत् तुलसीद्रुमम्।
स सर्वतीर्थसंसृष्टिफलमाप्नोत्यसंशयम्॥ ७॥

दर्शन— जो श्रद्धालु पुरुष प्रातःकाल उठकर स्नानकर तुलसी वृक्ष के दर्शन करता है, वह सभी तीर्थों में भ्रमण का फल निश्चय प्राप्त कर लेता है।। ७।।

दृष्ट्वा गदाधरं देवं क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे।
यत्पुण्यं समवाप्नोति तुलसीदर्शनाच्च तत्॥ ८॥

श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में भगवान् विष्णु के दर्शन का जो फल प्राप्त होता है वही फल तुलसी–दर्शन का होता है।। ८।।

दिनं तच्च शुभं प्रोक्तं तुलसी यत्र दृश्यते।
न तत्र जायते तस्य विपत्तिः कुत्रचिन्मुने॥ ९॥

हे मुने! वह दिन शुभ माना जाता है, जिस दिन सर्वप्रथम तुलसी के दर्शन हो जायँ। उस दिन पुरुष को किसी सङ्कट का सामना नहीं करना पड़ता।। ९।।

अपि जन्मान्तरकृतं पापमत्यन्तगर्हितम्।
विनश्यति मुनिश्रेष्ठ तुलसीवृक्षदर्शनात्॥ १०॥

यदि कोई जन्मान्तर में भी अतिगर्हित पाप किया हो, हे मुनिश्रेष्ठ! वह पाप भी तुलसीवृक्ष के दर्शन से विनष्ट हो जाता है।। १०।।

अशुचिर्वा शुचिर्वापि यः स्पृशेत्तुलसीदलम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तस्तत्क्षणाच्छुद्धतामियात् ॥ ११॥

स्पर्शन— स्नानादि से शुद्ध हो या अशुद्ध, जो तुलसी–पत्र का स्पर्श कर लेता है वह सभी पापों से मुक्त होकर उसी समय शुद्धि प्राप्त कर लेता है।। ११।।

प्रयाति च पदं विष्णोरन्ते देवसुदुर्लभम्।
तुलसीस्पर्शनं मुक्तिस्तुलसीस्पर्शनं व्रतम्॥ १२॥

तथा देहावसान के बाद वह अति दुर्लभ विष्णु लोक में पहुँच जाता है। तुलसी के स्पर्श मात्र से मोक्ष मिल जाता है। प्रतिदिन तुलसी का स्पर्श भी एक व्रत है।। १२।।

प्रदक्षिणीकृता येन तुलसी मुनिसत्तम!
कृतः प्रदक्षिणस्तेन विष्णुः साक्षान्न संशयः॥ १३॥

प्रदक्षिणा— हे मुनिवर! जिसने तुलसी की प्रदक्षिणा कर ली उसके लिये समझो कि उसने भगवान् विष्णु की ही प्रदक्षिणा कर ली!।। १३ ।।

तुलसीं प्रणमेद्यस्तु भक्त्या मानवसत्तमः।
स याति विष्णुसायुज्यं न पुनः प्रपतेत्क्षितौ ॥ १४ ॥

प्रणाम— जो सदाचारी पुरुष भक्तिपूर्वक तुलसी को प्रणाम करता है वह विष्णु–सायुज्य प्राप्त कर लेता है। उसका मर्त्यलोक में पुनर्जन्म नहीं होता।। १४ ।।

तुलसीकाननं यत्र तत्र साक्षाज्जनार्दनः।
लक्ष्मीसरस्वतीयुक्तो मोदते मुनिसत्तम!॥ १५ ॥

जहाँ तुलसी के पौधे लगे रहते हैं वहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु का लक्ष्मी–सरस्वती के सहित वास होता है— ऐसा समझिये।। १५ ।।

यत्र विष्णुर्जगन्नाथः सर्वदेवमयः प्रभुः।
तत्राहं सह रुद्राक्षैः सावित्र्या च प्रजापतिः ॥ १६ ॥

भगवान् शङ्कर कहते हैं— जहाँ सर्वदेवताओं में व्याप्त प्रभु विष्णु का वास है वहीं मैं भी रुद्राक्ष एवं सावित्री तथा ब्रह्मा सहित वास करता हूँ।। १६ ।।

तस्मात्तत्परमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम्।
यो गच्छेत्स व्रजेद्विष्णोर्वैकुण्ठनगरं मुने॥ १७ ॥

अतः हे मुने! उस देवदुर्लभ विशिष्ट स्थान पर जाने वाला पुरुष अन्त में विष्णु भगवान् के वैकुण्ठ में वास करने का अधिकारी बन जाता है।। १७ ।।

स्नात्वा प्रमार्जयेद्यस्तु तत्क्षेत्रं पापनाशनम्।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकमवाप्नुयात्॥ १८ ॥

स्नानादि से शुद्ध होकर जो पुरुष उस पापनाशक क्षेत्र की शुद्धि (मार्जन) करता है वह भी पापमुक्त होकर अन्त में वैकुण्ठ लोक में पहुँच जाता है।। १८ ।।

यः कुर्यात्तुलसीमूलमृदा तिलकमुत्तमम्।
कपाले कण्ठदेशे च कर्णे करकुचद्वये॥ १९ ॥
ब्रह्मरन्ध्रे तथा पृष्ठे पार्श्वयोर्नाभिदेशके।
स पुण्यात्मा मुनिश्रेष्ठ विज्ञेयो वैष्णवोत्तमः ॥ २० ॥

तुलसी के मूल की मिट्टी से तिलक— जो श्रद्धालु पुरुष तुलसी के पौधे की जड़ के पास की मिट्टी से अपने मस्तक पर तिलक करता है, साथ

ही जो कपाल, कण्ठदेश, दोनों कान, हाथ, दोनों स्तन, ब्रह्मरन्ध्र, पृष्ठभाग, पार्श्वभाग तथा नाभि प्रदेश में भी उस मिट्टी का तिलक करता है। हे मुनिवर! ऐसे पुरुष को श्रेष्ठ वैष्णव समझना चाहिये।। १९–२०।।

तुलसीपुष्पवृन्तेन पूजयेद्यो जनार्दनम्।
सोऽप्युक्तो वैष्णवश्रेष्ठः सर्वपापविवर्जितः॥ २१॥

तुलसी पुष्पों के वृन्त से पूजन— जो भक्त भगवान् विष्णु की पूजा तुलसी पुष्पों के गुच्छों (मञ्जरी) से करता है वह निष्पाप पुरुष भी वैष्णवश्रेष्ठ कहलाता है।। २१।।

वैशाखे कार्तिके माघे प्रातः स्नात्वा विधानतः।
यो ददाति सुरेशाय विष्णवे परमात्मने॥ २२॥
तुलसीपत्रकं तस्य फलं बहुगुणं स्मृतम्।
गवामयुतदानस्य वाजपेयशतस्य च॥ २३॥

वैशाख, कार्तिक, माघ मास में प्रातःकाल स्नान कर परमात्म–स्वरूप भगवान् विष्णु को विधिपूर्वक जो श्रद्धालु तुलसी पत्र चढ़ाता है उसका पुण्य फल कोटि गोदान एवं शत वाजपेय यज्ञों की अपेक्षा विशेष गुणयुक्त समझा जाता है।। २२–२३।।

यत्फलं समवाप्नोति कार्त्तिके पूजनाद्धरेः।
तुलसीपत्रकैस्तद्वत् तुलसीपुष्पकैरपि॥ २४॥

कार्तिक मास में भगवान् विष्णु की पूजा से जो पुण्यफल मिलता है वही फल तुलसीपत्र या तुलसी पुष्पों द्वारा की गयी पूजा से भी प्राप्त होता है।। २४।।

तुलसीकानने यस्तु जगन्नाथं समर्चयेत्।
महाक्षेत्रकृतायाः स पूजायाः फलमाप्नुयात्॥ २५॥

जो भक्त तुलसी वृक्षों के मध्य बैठकर भगवान् विष्णु का पूजन करता है वह महाक्षेत्र में की गयी विशिष्ट पूजा का फल प्राप्त कर लेता है।। २५।।

तुलस्या रहितं नैव कर्म कुर्याद्विचक्षणः।
कुर्वन्न कर्मणस्तस्य सम्यक्फलमवाप्नुयात्॥ २६॥

अतः बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह भगवान् की पूजाविधि में कोई भी कर्म तुलसी के विना न करे; अन्यथा उसका उचित फल नहीं मिलता।। २६।।

तुलस्या रहिता सन्ध्या कालातीतेव निष्फला।
तुलसीवृन्दमध्ये तु निर्माय हरिमन्दिरम्॥ २७॥
तृणैर्वेष्टकवृन्दैर्वा तत्र यः स्थापयेद्धरिम्।
नियतं सेवनासक्तः स हरेः समतामियात्॥ २८॥

तुलसी के पौधों के मध्य में भगवान् विष्णु का मन्दिर स्थापित कर, उसके चारों तरफ तृण या किसी अवरोधक से अवरोध कर, जो भक्त नित्य पूजा करता है वह उस पूजा के प्रभाव से एक दिन भगवान् विष्णु का सायुज्य प्राप्त कर लेता है।। २७–२८।।

यस्तु तत्तुलसीवृक्षं विष्णुरूपं विभाव्य च।
त्रिविधं प्रणमेन्मर्त्यः स विष्णोः समतां व्रजेत्॥ २९॥

तथा जो भक्त उस तुलसी वृक्ष को भगवान् विष्णु को रूप समझकर दिन में तीन बार नियमपूर्वक प्रणाम करता है, वह भगवान् विष्णु के ही सदृश हो जाता है।। २९।।

तुलसी–स्तोत्र

"नमस्ते देवदेवेश सुरासुरजगद्गुरो।
त्राहि मां घोरसंसारान्नमस्तेऽस्तु तवानघ!॥ ३०॥

"हे देव देवेश! हे सुरासुर जगद्गुरो! आप इस भयङ्कर संसार से मेरी रक्षा करें। हे निष्पाप! आप को प्रणाम है"।। ३०।।

यस्तु श्रीतुलसीं मर्त्यः प्रणमेत्तारिणीं धिया।
त्रिधा प्रदक्षिणीकृत्य सप्तधा वा महामते!
मन्त्रेणानेन सद्भक्त्या स तरेद्घोरसङ्कटम्॥ ३१॥

जो भक्त इस मन्त्र से संसारतारिणी तुलसी को बुद्धिपूर्वक तीन बार या सात बार परिक्रमा कर प्रणाम करता है वह भयङ्कर से भयङ्कर सङ्कट पार कर लेता है।। ३१।।

त्रैलोक्यनिस्तारपरायणे शिवे यथैव गङ्गा सरितां वरा स्वयम्।
तथैव लोकत्रयपावनार्थं द्रुमेषु साक्षात्तुलसीस्वरूपिणी॥ ३२॥

"हे संसार से मुक्ति दिलाने वाली भगवति! जैसे नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा इस त्रिलोकी को पवित्र करने हेतु आयी हैं, उसी प्रकार वृक्षों में आप तुलसी भी हैं।। ३२।।

"त्वं ब्रह्मविष्णुप्रमुखैः सुरोत्तमैः पुरार्चिता विश्वपवित्रहेतवे।
जाता धरण्यां जगदेकवन्द्यो नमामि भक्त्या तुलसि! प्रसीद॥ ३३॥

''पूर्वकाल में इस त्रिलोकी को पवित्र करने हेतु ब्रह्मा, विष्णु एवं भगवान् शङ्कर ने भी आप से प्रार्थना की थी। उसी के कारण, हे जगदेक-वन्द्ये! आप इस लोक में अवतरित हुई हैं। हे तुलसि! मैं भक्तिपूर्वक आप को प्रणाम करता हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न हों''।। ३३ ।।

एवं यः प्रणमत्येनां प्रत्यहं मुनिसत्तम!
तस्य सर्वार्थदा देवी यत्र कुत्रापि तिष्ठतः ॥ ३४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस तरह जो भक्त प्रतिदिन इन तुलसी भगवती को प्रणाम करता है वह कहीं भी रहे उसकी सभी इच्छाएँ तुलसी जी पूर्ण करती हैं।। ३४।।

तुलसी सर्वदेवानां परमा प्रीतिवर्धिनी ॥ ३५॥
सर्वदेवाधिसंस्थानं यत्रास्ते तुलसीवनम्।
पितरः परया प्रीत्या वसन्ति तुलसीवने ॥ ३६॥

तुलसी सभी देवताओं की उत्कृष्टतया प्रीतिवर्धिका हैं वह सभी देवताओं का वासस्थान है जिस घर में तुलसी के वृक्ष समूहरूप से लगे हुए हैं उस भक्त के पूर्वज (पितर) भी प्रसन्नतापूर्वक उस वृक्षसमूह में वास करते हैं।। ३५-३६।।

अवश्यं तुलसी देया पितृदेवार्चनादिषु।
अदत्त्वा मनुजैः सम्यक् न कर्मफलमाप्यते ॥ ३७॥

मनुष्य को देवता तथा पितरों के पूजाविधान में तुलसीपत्र का अवश्य प्रयोग करना चाहिये। इसका प्रयोग किये विना यह पूजाविधान पूर्णतः सफल नहीं हो पाता।। ३७।।

विष्णोस्त्रैलोक्यनाथस्य पितृणां च विशेषतः।
सर्वेषामेव देवानां देवीनां च महामते! ॥ ३८॥

हे महामते! विष्णु-पूजा में, पितरों के श्राद्ध में या अन्य देवी देवताओं की पूजा के अवसर पर तुलसीपत्रों का उपयोग अवश्य करना चाहिये।। ३८।।

परमप्रीतिदा ज्ञेया तुलसी लोकमुक्तिदा।
तस्माद्धि तुलसी देया दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ ३९॥

तुलसी सभी देवताओं के लिये उत्कृष्ट प्रीतिदायक है, तथा मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करनेवाली है; अतः देवपूजा तथा पितृपूजा मे तुलसी का उपयोग अवश्य करना चाहिये।। ३९।।

यत्रास्ते तुलसीवृक्षस्तत्र भागीरथी स्वयम्।
तीर्थैः समस्तैः सहिता वसतिं कुरुते सदा॥ ४०॥

जहाँ तुलसी वृक्ष स्थित है वहाँ भगवती भागीरथी, सब नदियों के साथ, स्वयं उपस्थित रहती हैं।। ४०।।

तस्मात्तत्र मुनिश्रेष्ठ! देहं सन्त्यजतां नृणाम्।
गङ्गायां मरणे यादृक् फलं स्यात्तादृगेव हि॥ ४१॥

अतः, हे मुनिश्रेष्ठ! तुलसी वृक्ष के समीप देहत्याग करनेवालों को वही फल मिलता है जो गङ्गातट पर देहत्यागियों को मिला करता है।। ४१।।

आमलकीवृक्ष

धात्रीवृक्षश्च चेत् तत्र वर्तते बहुभाग्यतः।
तदाधिकतरं ज्ञेयं स्थलं तद् बहुपुण्यदम्॥ ४२॥

आमलकी वृक्ष— यदि सौभाग्य से (उस भक्त के घर में) तुलसी वृक्ष के समीप आँवले का वृक्ष भी स्थित हो तो उस का अपेक्षाकृत अधिक फल समझना चाहिये। अर्थात् वह अधिक पुण्य देने वाला है।। ४२।।

तत्र देहभृतां देहपरित्यागान्महामते!
अज्ञानतोऽपि मुक्तिः स्यात् सत्यं न संशयः॥ ४३॥

हे महामते! वहाँ अज्ञान से भी प्राणियों को, देह त्याग करने पर, मोक्षपद मिलता ही है— वह सत्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं।। ४३।।

बिल्ववृक्ष

एतयोः सन्निधौ यत्र बिल्ववृक्षोऽपि विद्यते।
तत्स्थानं हि महातीर्थं साक्षाद्वाराणसीसमम्॥ ४४॥

बिल्ववृक्ष— यदि इन दोनों (तुलसी एवं आँवला) वृक्षों के साथ बिल्ववृक्ष भी वहाँ स्थित हो तो वह स्थान उतना ही पुण्यफलप्रद होता है जितना वाराणसी क्षेत्र।। ४४।।

तत्र सम्पूजनं शम्भोर्देव्या विष्णोश्च भावतः।
बहुपुण्यप्रदं ज्ञेयं महापातकनाशनम्॥ ४५॥

वहाँ शङ्कर एवं विष्णु तथा देवी का यथाविधि श्रद्धापूर्वक पूजन अतीव पुण्यफलप्रद तथा महापातकों के नाश करने वाला है।। ४५।।

तत्रैकं बिल्वपत्रं यो महेशाय निवेदयेत्।
स साक्षात् परमेशस्य पदवीं समवाप्नुयात्॥ ४६॥

उस पूजा में यदि वह बिल्वपत्र भगवान् शङ्कर को अर्पित कर दे तो वह पूजक भक्त साक्षात् शङ्कर की पदवी प्राप्त कर लेता है।। ४६।।

तथा विष्णुं च सम्पूज्य तुलस्यामलकीदलैः।
प्रयाति विष्णोः सायुज्यं सत्यमेव महामते!॥ ४७॥

इसी तरह विष्णु की पूजा करते समय तुलसी पत्र एवं आमलकी फलों का अर्पण करने से वह पूजक साक्षात् विष्णु की पदवी प्राप्त कर लेता है।। ४७।।

तत्रैकं बिल्वपत्रं यो महेशायाथ विष्णवे।
देव्यै वा प्रददातीह सोऽपि पापाद्विमुच्यते॥ ४८॥

उस पूजा के समय जो भक्त एक बिल्वपत्र भगवान् शङ्कर को, एक भगवान् विष्णु को तथा एक देवी को अर्पित करता है वह भी पापों से विमुक्त हो जाता है।। ४८।।

तत्र प्राणान् परित्यज्य मोक्षं प्राप्नोति मानवः।
न पुनर्जन्म चाप्नोति तत्क्षेत्रस्य प्रभावतः॥ ४९॥

वहाँ (तीनों वृक्षों के नीचे) प्राण–त्याग करने वाला मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। उस क्षेत्रविशेष के प्रभाव से उसका पुनर्जन्म नहीं होता।।४९।।

इत्युक्तं ते मुनिश्रेष्ठ माहात्म्यं वै समासतः।
य इदं श्रृणुयान्मर्त्यः सोऽपि स्वर्गमवाप्नुयात्॥ ५०॥

श्रीमहाभागवते पुराणे तुलसीमाहात्म्यवर्णन नाम
ऊनाशीतितमोऽध्यायः॥ ७९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस तरह मैंने आपको (तुलसीदल आदि का) माहात्म्य संक्षेप में सुना दिया। जो पुरुष इस माहात्म्य का श्रवण करेगा, उसे भी स्वर्ग ही मिलेगा—यह विश्वास करना चाहिये।। ५०।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
तुलसीमाहात्म्य वर्णन रूप
उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त॥

अस्सीवाँ अध्याय

[रुद्राक्ष-माहात्म्यवर्णन]

श्रीमहादेव०— इदानीं शृणु वक्ष्यामि माहात्म्यं मुनिसत्तम।
रुद्राक्षस्य परं गुह्यं पुण्याख्यानं समासतः॥ १॥

श्रीमहादेव जी— हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं आपको रुद्राक्ष का परम गोपनीय माहात्म्य संक्षेप में सुनाता हूँ॥ १॥

शरीर पर रुद्राक्ष धारण का प्रभाव

अङ्गेषु धारणात् सर्वदेहिनां पापसञ्चयम्।
विनाशयति रुद्राक्षफलं जन्मशतार्जितम्॥ २॥

रुद्राक्ष के शरीर पर धारण करने से सभी मनुष्यों के वे पाप भी जो उनसे सैकड़ों जन्मों से पूर्व हुए हों, नष्ट हो जाते हैं—यह रुद्राक्ष का महत्त्व है॥ २॥

गुरोरप्रणतेर्जातं देवानां च महात्मनाम्।
अप्रणामाद् द्विजातीनां दर्पादज्ञानतोपि वा॥ ३॥
यत्पापं सञ्चितं पूर्वं जन्मकोटिषु नारद।
तत्पापं नाशमायाति शिरसाप्यभिधारणात्॥ ४॥

शिर पर रुद्राक्ष धारण— हे नारद! गुरु, देवता, महात्मा तथा ब्राह्मण—इनको जाने अनजाने प्रमादपूर्वक न किये हुए प्रणाम का अपराध, यदि सैकड़ों जन्म पूर्व भी हुआ हो, तो वह शिर पर रुद्राक्षधारण से नष्ट हो जाता है॥ ३–४॥

असत्यभाषणाल्लोभात् परोच्छिष्टादिभक्षणात्।
सुरापानाच्च सम्भूतं यत्पापं जन्मकोटिषु।
कण्ठेऽभिधारणादस्य तत्पापं नाशमाप्नुयात्॥ ५॥

कण्ठ पर रुद्राक्ष धारण— असत्य भाषण से, लोभ से, दूसरे का उच्छिष्ट भोजन खाने से, मद्यपान से उद्भूत करोड़ों जन्मों के पाप भी कण्ठ पर रुद्राक्ष धारण से विनष्ट हो जाते हैं॥ ५॥

परद्रव्यापहाराच्च परदेहातिताडनात्।
अस्पृश्यवस्तुसंस्पर्शात्तथा गर्ह्यपरिग्रहात्॥ ६॥

यत् पापं सञ्चितं पूर्वं कोटिजन्मसु नारद।
तत्पापं नाशमायाति करे रुद्राक्षधारणात्॥ ७॥

हाथ पर रुद्राक्षधारण— दूसरे के द्रव्य के अपहरण या शरीर के ताड़न से, अस्पृश्य वस्तु के स्पर्श से, निन्दनीय वस्तुओं के संग्रह से, जो पाप सैकड़ों जन्मों से सञ्चित होता है, वह भी नष्ट हो जाता है।। ६–७।।

असत्प्रसङ्गं श्रुत्वा च यत्पापं पूर्वसञ्चितम्।
तत्पापं नाशमायाति कर्णे रुद्राक्षधारणात्॥ ८॥

कान पर रुद्राक्षधारण— पापमय प्रसङ्ग सुनने से जो पूर्व सञ्चित पाप है उसका भी नाश, कान पर रुद्राक्ष धारण करने से, हो जाता है।।८।।

परस्त्रीगमनाद् ब्रह्मवधाद्वेदस्य कर्मणः।
सन्त्यागात् सञ्चितं पापं यत्पूर्वं बहुजन्मसु।
तत्पापं नाशमायाति तत्र कुत्रापि धारणात्॥ ९॥

शरीर के किसी अङ्ग पर रुद्राक्षधारण— परस्त्रीगमन से, ब्रह्मवध से, वेदविहित कर्म के त्याग से, जो बहुत से जन्मों का सञ्चित पाप हो, वह भी, शरीर पर कहीं भी रुद्राक्षधारण करने से, नष्ट हो जाता है।। ९।।

रुद्राक्षभूषणैर्युक्तं दृष्ट्वा सम्प्रणमेत्तु यः।
सोऽपि पापात्प्रमुच्येत कृतपापशतोऽपि चेत्॥ १०॥

रुद्राक्षयुक्त अलङ्करण— जो पुरुष रुद्राक्षयुक्त अलङ्करण धारण किये हुए पुरुषविशेष को देखकर प्रणाम करता है उसके सैकड़ों पाप भी, उस प्रणाम के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं।। १०।।

रुद्राक्षधारी विहरेन्महारुद्र इवापरः।
निर्भयो धरणीपृष्ठे देवपूज्यतमः स्वयम्॥ ११॥

रुद्राक्ष धारण करने वाला पुरुष इस भूमण्डल पर दूसरे भगवान् शङ्कर की तरह स्वयं निर्भय होकर घूमता है।। ११।।

विधृत्य चैकं रुद्राक्षं शम्भुं वा परमेश्वरीम्।
विष्णुं वा योऽर्चयेत् सोऽपि शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ १२॥

एकमुख रुद्राक्ष धारण कर जो शिव, देवी एवं विष्णु की पूजा करत है वह अन्त में शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है।। १२।।

रुद्राक्ष के विना की गयी निष्फल पूजा

अविधृत्य नरो यस्तु रुद्राक्षं मुनिसत्तम!
कुरुते पैतृकं कर्म दैवं वापि विमोहितः।

न तस्य फलमाप्नोति वृक्षा तत्कर्म च स्मृतम्॥ १३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जो पुरुष, रुद्राक्ष धारण किये विना, प्रमादवश देवपूजा या पितृतर्पण करता है उसका फल उसे नहीं मिल पाता; क्योंकि उसका वह पूजाविधान निष्फल हो जाता है।। १३।।

रुद्राक्षमाला से मन्त्रजप का महत्त्व

रुद्राक्षमालया मन्त्रं यो जपेच्छिवदुर्गयोः।
स प्रयाति नरः स्वर्गं महादेवप्रसादतः॥ १४॥

जो पुरुष शिव और दुर्गा के मन्त्रों का जप रुद्राक्षमाला के सहारे करता है वह भगवान् शङ्कर की कृपा से, देहावसान के बाद, स्वर्ग प्राप्त करता है।। १४।।

काश्यां वा जाह्नवीक्षेत्रे तीर्थेऽन्यस्मिंश्च वा नरः।
रुद्राक्षरहितः कर्म नैव कुर्यात् कदाचन॥ १५॥

काशी या अन्यत्र जाह्नवी तट पर या अन्य तीर्थ में रुद्राक्षरहित होकर पूजादि कर्म नहीं करना चाहिये।। १५।।

एकमुख रुद्राक्ष की महिमा

एकवक्त्रं तु रुद्राक्षं गृहे यस्य हि वर्तते।
तस्य गेहे वसेल्लक्ष्मीः सुस्थिरा मुनिसत्तम!॥ १६॥

हे मुनिश्रेष्ठ जिसके घर में एकमुख रुद्राक्ष वर्तमान है उस घर में लक्ष्मी का स्थिर वास होता है।। १६।।

न दौर्भाग्यं भवेत्तस्य नापमृत्युः कदाचन।
बिभर्ति यस्तु तं कण्ठे बाहौ वा मुनिसत्तम!॥ १७॥

तथा जो पुरुष एकमुख रुद्राक्ष बाहु या कण्ठ में धारण करता है वह सदा सौभाग्यशाली होता है। उसकी अपमृत्यु कभी नहीं होती।। १७।।

तस्य प्रसन्नो भगवाञ्छम्भुर्देवः सुदुर्लभः।
कुरुते यत्परं धर्मकर्म तच्च महाफलम्॥ १८॥

ऐसे भक्त पर देव दुर्लभ भगवान् शङ्कर भी प्रसन्न रहते हैं। तथा उसके द्वारा किये हुए सभी धार्मिक कृत्य सफल होते हैं।। १८।।

रुद्राक्षधारी सन्त्यज्य देहं वै यत्र कुत्रचित्।
अवश्यं स्वर्गमाप्नोति तत्र नास्त्येव संशयः॥ १९॥

ऐसे रुद्राक्षधारी को, भले ही उसका कहीं भी देहपात हो, अवश्य ही स्वर्ग प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।। १९।।

गङ्गायां तु विशेषेण फलदं तस्य धारणम्।
काश्यां ततोऽधिकं ज्ञेयं किमन्यत्कथयामि ते॥ २०॥

गङ्गा तट पर रहने वाले साधक को तो उसे विशेष रूप से धारण करना चाहिये। काशी में तो उसका और भी अधिक महत्त्व समझना चाहिये।। २०।।

इति ते कथितं पुण्यं माहात्म्यं मुनिसत्तम!
रुद्राक्षस्य तु संक्षेपान्महापातकनाशनम्॥ २१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस तरह मैंने तुमको रुद्राक्ष का माहात्म्य, जो कि महापापनाशक है, संक्षेप में सुना दिया।। २१।।

य इदं प्रपठेद्भक्त्या शृणुयाद्वापि यो नरः।
प्राप्नोति स पदं शम्भोरपि देवैः सुदुर्लभम्॥ २२॥

जो श्रद्धालु पुरुष इसे श्रद्धापूर्वक सुनेगा या पढ़ेगा वह देवदुर्लभ भगवान् शङ्कर का पद प्राप्त कर लेगा।। २२।।

बिल्वमूले पठेदेतच्चतुर्दश्यामुपोषितः।
स मुच्यते महापापादपि जन्मशतार्जितात्॥ २३॥

बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर चतुर्दशी के दिन उपवास व्रत रखते हुए जो इस माहात्म्य का पाठ करता है वह सैकड़ों जन्मों से अर्जित महापातकों से भी मुक्त हो जाता है।। २३।।

गङ्गायां वा कुरुक्षेत्रे काश्यां वा मुनिसत्तम!
सेतुवन्धे महातीर्थे गङ्गासागरसङ्गमे॥ २४॥
शिवरात्रिचतुर्दश्यां यः पठेच्छिवसन्निधौ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकमवाप्नुयात्॥ २५॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनेऽशीतितमोऽध्यायः॥ ८०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! गङ्गातट, काशी, कुरुक्षेत्र, सेतुबन्ध, महातीर्थ, गङ्गासागर सङ्गम—इन सब पुण्य स्थानों पर शिवरात्रि की चतुर्दशी के दिन, शिवलिङ्ग के पास बैठकर, जो इस माहात्म्य का पाठ करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर अन्त में शिवलोक प्राप्त कर लेता है।। २४–२५।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में रुद्राक्षमाहात्म्य वर्णन रूप
अस्सीवाँ अध्याय समाप्त॥

इक्यासीवाँ अध्याय

[महादेव नारद प्रश्नोत्तरकथन]

घोर कलिकाल में शिवपूजा का माहात्म्य

श्रीमहादेव०— शृण्णुष्वावहितो वत्स! माहात्म्यं भक्तिभावतः।
पूजायाः श्रीमहेशाय संक्षेपेण ममाग्रतः॥ १॥

श्रीमहादेव जी— हे वत्स! अब तुम मुझसे संक्षेप में कहे जाते हुए शिवपूजा का माहात्म्य भी सुनो।। १।।

कलौ सर्वे भविष्यन्ति मानवा धर्मवर्जिताः।
नराः पापरताः सर्वे सत्यधर्मपराङ्मुखाः॥ २॥

कलिकाल में सभी पुरुष धर्माचरणरहित होने लगेंगे। पाप कर्मों में उनका चित्त लगा रहेगा, तथा सत्यधर्म से विपरीत आचरण करेंगे।। २।।

परदाररता नित्यं परद्रोहपरायणाः।
परनिन्दारताश्चैव परवित्तापहारिणः॥ ३॥

उस समय कुछ लोग परनारियों से सम्भोग में ही आनन्द मानेंगे, और कुछ लोग दूसरों से हिंसा द्वेष ही करते रहेंगे। कुछ परनिन्दा में लगे रहेंगे तो कुछ लोग दूसरों के धनादि के अपहरण में।। ३।।

गुरुभक्तिविहीनाश्च गुरुनिन्दारताः सदा।
स्वस्वकर्मविहीनाश्च धनलुब्धाः कलौ युगे॥ ४॥

कलिकाल में कुछ लोग गुरुजनों में श्रद्धा भक्ति न रखकर उनकी निन्दा में ही लगे रहेंगे। स्व स्व कर्म से विहीन होकर परसम्पत्ति को अपना बनाने में ही मन लगाये रखेंगे।। ४।।

भविष्यन्ति द्विजाः सर्वे शूद्राचाररताः सदा।
श्रुतिहीनास्तपोहीना योगाभ्यासविवर्जिताः॥ ५॥

उस समय ब्राह्मण भी शूद्रवत् आचरण करने लगेंगे। वे सब वेदपाठ तथा तपस्या से रहित होकर योगाभ्यास से भी विरत रहेंगे।। ५।।

भविष्यन्ति कलौ वत्स शिश्नोदरपरायणाः।
स्त्रियः सर्वा भविष्यन्ति पतिभक्तिविवर्जिताः॥ ६॥

इस तरह कलिकाल में आपना ही पेट भरने में तथा इन्द्रियसुख–

प्राप्ति में ही लीन रहेंगे। सभी स्त्रियाँ भी पतिभक्ति को कोई महत्व नहीं देंगी।। ६।।

भ्रष्टाश्च प्रायशस्ता वै श्वश्रूद्रोहपरायणाः।
अल्पसस्या वसुमती नराश्चान्नविवर्जिताः॥ ७॥

वे स्त्रियाँ प्रायः चरित्रभ्रष्ट हो जायँगी, सास एवं ससुर की निन्दा करेंगी। उस समय पृथ्वी पर धान्य की उत्पत्ति कम हो जायगी। मनुष्यों के पास भी अन्न की कमी हो जायगी।। ७।।

करग्रहरता नित्यं राजानो म्लेच्छरूपिणः।
भविष्यति सतां हानिरसतामुन्नतिः सदा॥ ८॥

राजा लोग भी केवल जनता से कर ग्रहण का ही कार्य करेंगे। उनका आचरण म्लेच्छों की तरह हो जायगा। सज्जन दुर्बल हो जायँगें एवं असज्जन सबल।। ८।।

एवं घोरकलौ चापि नराणां पापचेतसाम्।
मुक्तिप्रदं महादेवपूजनं मुनिसत्तम!॥ ९॥

हे मुनिवर! उस घोर कलिकाल में भी, उन पापी जनों का उद्धार केवल भगवान् शङ्कर की पूजा से ही हो सकेगा। जिसके कारण उनकी भवबन्धन से मुक्ति सम्भव होगी।। ९।।

शिवपूजा–पद्धति

निर्माय पार्थिवं लिङ्गं शिवशक्त्यात्मकं परम्।
पूजयेत् प्रयतो भूत्वा नहि तं बाधते कलिः॥ १०॥

पृथ्वी की मृत्तिका से लिङ्ग का आकार बनाकर उस में शिवशक्ति की भावना कर, शुद्ध मन से जो उसकी पूजा करेगा उस पर कलियुग का दुष्प्रभाव नहीं पड़ेगा।। १०।।

उपायो विद्यते नान्यः सत्यं सत्यं कलौ युगे।
शम्भोराराधनात् स्वल्पसाधनान्मुनिसत्तम॥ ११॥

हे मुनिवर! इस कलियुग में भगवान् शङ्कर की आराधना के अतिरिक्त, जो कि स्वल्पसाधन साध्य है, अन्य कोई उपाय नहीं है।। ११।।

मूर्तिर्मृदा बिल्वदलेन पूजा अयत्नसाध्यं वदनेन वाद्यम्।
फलं च सायुज्यपदप्रदानं निःस्वस्य विश्वेश्वर एव देवः॥ १२॥

मिट्टी की मूर्ति, बिल्वपत्र से पूजा किसी यत्न के विना मुख से बजाया जाने वाला वाद्य (बम–बम की ध्वनि), इन सब का आसाधारण

फल होगा शिवसायुज्य की प्राप्ति। इस तरह धनहीनों के भगवान् शङ्कर ही आश्रय हैं।। १२।।

शम्भोराराधनसमं नास्ति कर्म कलौ युगे।
शाक्तो वा वैष्णवः शैवः पूर्वं सम्पूज्य शङ्करम्॥ १३॥

अतः कलियुग के शिवपूजा के समान आवश्यक कर्म कोई नहीं है। भले ही कोई शाक्त हो या वैष्णव, उसे पूजा प्रारम्भ करते समय सर्वप्रथम शङ्कर की पूजा करनी चाहिये।। १३।।

पश्चात् प्रपूजयेत् स्वेष्टदेवतां भक्तिभावतः।
आदौ लिङ्गं प्रपूज्येत बिल्वपत्रैश्च नारद!
अन्यथा शूद्रवत् सर्वं शिवपूजां विना कृतम्॥ १४॥

तदनन्तर वह आराधक भक्तिभाव से अपने इष्टदेव की पूजा प्रारम्भ करे। हे नारद! सर्वप्रथम उसे बिल्वपत्रों से शिवलिङ्ग की पूजा करनी चाहिये। अन्यथा, शिवपूजा के विना की गयी वह समस्त पूजा निरर्थक ही सिद्ध होगी।। १४।।

व्यतिक्रमं तु यो दर्पान्मोहाद्वापि समाचरेत्।
सोऽधः पतति पापात्मा तस्यार्चा विफला भवेत्॥ १५॥

एक बात और, जो इस पूजा में व्यतिक्रम करेगा अर्थात् पहले इष्टदेव की पूजा और अन्त में शिवपूजा, तो उस पापी का अधःपतन निश्चित है। तथा उसकी वह समग्र पूजा–अर्चना तो विफल है ही।। १५।।

यो ध्यायति महादेवं सर्वलोकेश्वरेश्वरम्।
स तेन साम्यमायाति न पुनर्जन्मभाग्भवेत्॥ १६॥

जो सर्वलोकाधिपति भगवान् शङ्कर की नित्य पूजा (ध्यान) करता है वह शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।। १६।।

पूजयेद्यस्तु सद्भक्त्या सर्वदेवात्मकं शिवम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्नुयात्॥ १७॥

जो सच्चे भक्तिभाव से सर्वदेवतामय शिव की आराधना करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर शिवलोक की प्राप्ति कर लेता है।। १७।।

पाद्यं यस्तु महेशाय ददाति मनुजोत्तमः।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकमवाप्नुयात्॥ १८॥

जो सद्भक्त भगवान् शङ्कर को पाद्य (पैर धोने के लिये) जल देता है वह भी पापमुक्त होकर स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है।। १८।।

अर्घ्यादिकं तु यत्किञ्चिद्दीयते शम्भवे मुने!
सर्वं तत्सम्प्रदद्याच्च लिङ्गोपरि कियत्कियत्॥ १९॥

हे मुने! साधक भगवान् शङ्कर को जो कुछ भी अर्ध्य भेंट चढ़ाता है वह उसे लिङ्ग पर शनैः शनैः चढ़ाना चाहिये।। १९।।

प्रसादग्रहण में विधि–निषेध

अग्राह्यं तन्महाबुद्धे प्रसादं नापि भक्षयेत्।
विष्णोर्ग्राह्यं च नान्यस्य ग्रहणाद्विष्णुकोपभाक्॥ २०॥

हे महाबुद्धे! शिवलिङ्ग पर चढ़ा हुआ प्रसाद नहीं खाना चाहिये। इसके विपरीत भगवान् विष्णु की पूजा पर चढ़ा हुआ प्रसाद अवश्य खाना चाहिये; अन्यथा साधक को भगवान् का कोपभाजन बनना पड़ता है।। २०।।

शालिग्रामशिलास्पर्शात् सर्वं तद् ग्राह्यमेव च।
अनादिलिङ्गनिर्माल्यं भुक्त्वा शङ्करतां व्रजेत्।
प्रसादं भक्षयेन्मर्त्यः स्वयं शङ्करतां व्रजेत्॥ २१॥

परन्तु शालग्राम शिला के स्पर्श से सब कुछ ग्राह्य हो जाता है।

अनादिलिङ्ग (ज्योतिर्लिङ्ग) का निर्माल्य (प्रसाद) खाकर भक्त शङ्करत्व प्राप्त कर लेता है।। २१।।

शिवं यः पूजयेद्भक्त्याऽप्यभक्त्या वापि नारद!
स नैव यमदण्ड्यः स्यात्सत्यं सत्यं न संशयः॥ २२॥

हे नारद! जो पुरुष भक्तिपूर्वक या उपेक्षापूर्वक भगवान् शङ्कर की पूजा करता है उसे यमदण्ड नहीं भोगना पड़ता। यह बात पूर्ण सत्य है।। २२।।

आरोग्यमतुलं सौख्यं प्रजापुष्टिविवर्धनम्।
शिवलिङ्गार्चनं कृत्वा प्राप्नुयान्मानवोत्तमः॥ २३॥

शिवलिङ्ग का पूजक सदा सुखपूर्वक रहता है, उसके पुत्र पौत्रादिक सुखी एवं स्वस्थ रहते हैं।। २३।।

यो नृत्यति महेशस्य सन्निधौ भक्तितत्परः।
स प्राप्य शाम्भवं लोकं मोदते सुचिरं मुने!॥ २४।।

'हे मुने! जो अतिशय भक्ति के कारण शिव के सम्मुख नृत्य करता है वह शिवलोक में पहुँच कर वहाँ चिरकाल तक, सुखपूर्वक वास करता है।। २४।।

गीतं वाद्यं च यः कुर्यान्मनुजः शिवसन्निधौ।
स शम्भोरन्तिकस्थायी भवेत्तत्प्रमथेश्वरः ॥ २५ ॥

जो शिव के सम्मुख भक्तिपूर्वक गायन एवं नृत्य करता है वह शिव के समीप रहने का सौभाग्य पा जाता है और अन्त में प्रमथगण का अधिपति बन जाता है।। २५।।

यत्र देशे वसेच्छम्भुपूजाभक्तिपरायणः।
सोऽपि पुण्यतमो देशो गङ्गाहीनोऽपि चेन्मुने!॥ २६ ॥

ऐसा शम्भुपूजक भक्त जिस देश में वास करता है वह देश भी पवित्र ही माना जाना चाहिये, भले ही उस देश में गङ्गा न बहती हो।। २६।।

बिल्वमूले महादेवं यः पूजयति भक्तितः।
सोऽश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ २७ ॥

जो बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर भगवान् शङ्कर की आराधना करता है वह हजारों अश्वमेधयज्ञों का पुण्यफल प्राप्त करता है।। २७।।

गङ्गायां यो महादेवं बिल्वपत्रैः प्रपूजयेत्।
स कैवल्यमवाप्नोति कृतपापशतोऽपि चेत् ॥ २८ ॥

गङ्गा क्षेत्र जो बिल्वपत्रों से भगवान् शङ्कर की पूजा करता है वह, भले ही उसने सैकड़ों पाप किये हुए हो, मोक्ष प्राप्त कर लेता है।। २८।।

काश्यां यः पूजयेच्छम्भुं हेलयापि नरोत्तमः।
तस्यान्ते मुक्तिदाता स महेशः स्वयमेव हि ॥ २९ ॥

जो पुरुषश्रेष्ठ! काशी क्षेत्र में भगवान् शङ्कर की पूजा यदि उपेक्षापूर्वक भी करता है तो भगवान् शङ्कर उसको अन्त में मुक्त कर देते हैं।। २९।।

पुण्ये भारतखण्डे तु स्थलं यत्पुण्यदायकम्।
तत्र सम्पूज्य विश्वेशं न पुनर्जन्मभाग्भवेत् ॥ ३० ॥

इस पुण्यमय भारतखण्ड में जो भी पुण्यदायक स्थान है वहाँ भगवान् शङ्कर की पूजा करने वाला पुनर्जन्म प्राप्त नहीं करता।। ३०।।

गङ्गासागर–माहात्म्य

हिमाद्रेर्दक्षिणे पार्श्वे गङ्गासागरसङ्गमम्।
यावत्पुण्यतमो देशः सर्वकामफलप्रदः ॥ ३१ ॥

हिमालय के दक्षिण पार्श्व में गङ्गा और सागर का सङ्गमस्थल है।

अत्यधिक पुण्यमय प्रदेश है तथा सभी मनःकामनाओं को पूर्ण करने वाला है।। ३१।।

एतस्मिन्नास्ति कर्मान्यच्छिवपूजासमं मुने!
महापापहरं पुण्यं सर्वापद्विनिवारकम्॥ ३२॥

हे मुने! इस स्थान पर शिवपूजा से बढ़कर कोई उत्तम कार्य नहीं है। वह महान् पुण्यप्रद है, पापहारी है, सभी आपत्तियों का विनाशक है।। ३२।।

असङ्ख्यानि च कर्माणि पुण्यदानि महामुने!
उक्तान्यनेकशास्त्रेषु नृणां पापहराणि वै॥ ३३॥

हे महामुने! शास्त्रकारों ने उस स्थान के असङ्ख्य पुण्यप्रद एवं पापहर कर्म बताये हैं।। ३३।।

तेषु श्रेष्ठतमं ज्ञेयं शिवसम्पूजनं परम्।
कीर्तनं शिवनाम्नश्च दुर्गानाम्नो विशेषतः॥ ३४॥

उन में भी श्रेष्ठ कार्य भगवान् शङ्कर की पूजा है। इसके बाद शङ्कर और देवी के नामकीर्तन का क्रम आता है।। ३४।।

दुर्गायाः पूजनं तद्वद् रामनामप्रकीर्तनम्।
श्रवणं तद्गुणानां च तीर्थेषु भ्रमणं तथा।
विज्ञेयं परमं श्रेष्ठं कलौ पातकनाशनम्॥ ३५॥

फिर दुर्गा देवी का पूजन, उसी तरह रामनामकीर्तन, उन (राम) के गुणों का श्रवण, तीर्थों में भ्रमण—ये सभी कर्म कलिकाल में पापनाशक हैं।। ३५।।

संस्मृत्य शम्भोर्नामानि यत्किञ्चित् कुरुते नरः।
कर्मवेदादिशास्त्रोक्तं तदक्षय्यतमं भवेत्॥ ३६॥

शम्भु का नाम स्मरण करते हुए मनुष्य जो कुछ भी करता है, जैसे वेदादि शास्त्रोक्त कर्म, वे सब अक्षय होते हैं।। ३६।।

शिवेति विश्वनाथेति विश्वेशेति हरेति च।
गौरीपते प्रसीदेति यो नरो भाषते सकृत्॥ ३७॥
तस्य संरक्षणार्थाय पृष्ठतः प्रमथैः सह।
शूलमादाय वेगेन स्वयं धावति शूलभृत्॥ ३८॥

जो श्रद्धालु जन 'हे शिव, हे विश्वनाथ, हे विश्वेश, हे हर! हे गौरीपते! आप मुझ पर प्रसन्न होइये'— ऐसा एक बार भी कहता है, उसकी रक्षा के

लिये, शूलपाणि भगवान् शङ्कर अपने अनुचरों के साथ, शूल लेकर, स्वयं भागे आते हैं।। ३७–३८।।

शिवनाम स्मरन्मर्त्यस्त्यक्त्वा देहं महामते!
साक्षान्महेशतां याति कृतपापशतोऽपि चेत्॥ ३९॥

जो पुरुष भगवान् शङ्कर का नाम लेते हुए अपने देह का त्याग करता है वह साक्षात् महेशत्व प्राप्त कर लेता है, भले ही उसने सैकड़ों पाप क्यों न किये हों।। ३९।।

यत्र कुत्र च संस्थाय संस्मरेत्परमेश्वरम्।
तत्रैव सर्वतीर्थानि निवसन्ति महामते॥ ४०॥

जहाँ कहीं रहकर भगवान् का स्मरण किया जाता है हे महामते! वहीं सब तीर्थों का वास समझना चाहिये।। ४०।।

शिवपूजामाहात्म्य समाप्त॥

इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टं मुनिसत्तम!
महापापहरं पुण्यं सर्वमङ्गलदं परम्॥ ४१॥

हे महामते! आपने जो कुछ भी पूछा वह सब मैंने आपको सुना दिया। यह समग्र संवाद महापातकों का नाशक तथा सर्वमङ्गलदायक है।। ४१।।

य इदं शृणुयान्मर्त्यः सश्रद्धः पठतेऽथवा।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम्॥ ४२॥

जो भी पुरुष इस संवाद को श्रद्धापूर्वक पढ़ेगा अथवा सुनेगा वह सभी पापों से मुक्त हो जायगा और मोक्ष प्राप्त कर लेगा।। ४२।।

उपसंहार

व्यास०— एतावदुक्तं देवेन पृष्टेन मुनिना स्वयम्।
खण्डेऽस्मिञ्जैमिने वाक्यं पुण्यं परमशोभनम्॥ ४३॥

महर्षि व्यास— हे जैमिने! नारद मुनि द्वारा पूछे गये सभी प्रश्नों का उत्तर इस खण्ड में श्रीमहादेव जी ने दे दिया। इन दोनों का यह संवाद पुण्यप्रद एवं अत्यधिक श्रवण सुन्दर है।। ४३।।

एतद्यः शृणुयान्मर्त्यः पठेद्वा भक्तिसंयुतः।
सोऽन्ते निर्वाणमाप्नोति भुक्त्वा भोगान्मनोगतान्॥ ४४॥

जो श्रद्धालु पुरुष इस संवाद को भक्तिपूर्वक पढ़ेगा या सुनेगा वह अन्त में मोक्ष प्राप्त कर लेगा तथा उससे पूर्व यहाँ भी अनन्त ऐश्वर्य का भोग करेगा।। ४४।।

सुगुप्तमेतत् परमं कथितं शूलपाणिना।
महात्मने मुनीन्द्राय नारदाय महामते!
यस्य संविद्यते गेहे तमापन्न स्पृशेत् क्वचित्॥ ४५॥

हे महामते! यह परम गोपीय आख्यान श्री शूलपाणि महादेव जी ने महात्मा मुनिराज नारद को सुनाया था। यह आख्यान (महाभागवत) जिस श्रद्धालु के घर में रहेगा, उसको कोई सङ्कट नहीं सता सकता।। ४५।।

य इदं परमाख्यानं श्रावयेद्विष्णुसन्निधौ।
सद्भक्त्या जैमिने तस्य पापं नश्यति तत्क्षणात्॥ ४६॥

जो इस आख्यान को भगवान् विष्णु के सम्मुख बैठकर भक्तिपूर्वक सुनायगा, उसके सभी पाप क्षणभर में नष्ट हो जायँगें।। ४६।।

अप्यनेकशतं कोटिजन्मान्तरसुसञ्चितम्।
एतदाकर्ण्य सन्त्यज्य पापं मोक्षमवाप्नुयात्॥ ४७॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे श्रीमहादेवनारदप्रश्नोत्तरकथने
एकाशीतितमोऽध्यायः॥८१॥

॥ समाप्तं चेदं महाभागवतं नामोपपुराणम्॥

भले ही उसके करोड़ों पूर्वजन्मों के पाप ही क्यों न सञ्चित हों, श्रद्धालु पुरुष इस आख्यान को सुनकर पापमुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लेगा।। ४७।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में शिवपूजाविधिवर्णनात्मक
इक्कासीवाँ अध्याय समाप्त।।

॥ महाभागवत नामक उपपुराण सम्पन्न॥

प्रकाशित पुस्तकें :

वृहद्देवी सूक्तम्

❖

ब्रह्मार्चन पद्धति

शीघ्र प्रकाश्य

कालिका उपपुराणम्

❖

देवी उपपुराणम्

❖

दिव्य चण्डीक्रमा दुर्गा सप्तशती

Sri Mahabhagavata Upapurana : Mrityunjaya Tripathi :
DSVV 18262